त्वरित चिकित्सा करने योग्य रोगों के लक्षण, निदान, सापेक्ष निदान एवं चिकित्सा का विस्तृत सांगोपांग सचित्र विवेचन, आशुकारी आयुर्वेदीय प्रयोग एवं औषधियों का वर्णन।

—लेखक एवं संकलनकर्ता—

आयु० वाचस्पति कवि० गिरिधारीलाल मिश्र आयु० चक्र०

ए० एम० बी० एस०, एम० ए० एम० एस०, एम० एस्-सी० ए०, साहि०रत्न, साहित्यालंकार

अधीक्षक चिकित्सक—श्री केदारमल स्मारक धर्मार्थ आयुर्वेद चिकित्सालय

तेजपुर (असम)—७८४००१

: प्रकाशक :

निर्मल आयुर्वेद संस्थान, डी-७८ औद्योगिक नगर, अलीगढ़-६

सन् १९८५

मूल्य— बीस रुपया

सङ्कटकालीन चिकित्सा

के

यशस्वी लेखक एवं सङ्कलनकर्ता

आयुर्वेद चक्रवर्ती (श्रीलंका)

कविराज गिरिधारीलाल मिश्र

आयुर्वेद वाचस्पति, साहित्यायुर्वेदरत्न

ए.एम.बी.एस., एम.ए.एम.एस., एम.एम.सी.(ए)

अध्यक्ष—पूर्वोत्तर भारतीय आयुर्वेद स्नातक संघ

उपाध्यक्ष—असम राज्य आयुर्वेद महासभा

संगठन मन्त्री—अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

अधीक्षक चिकित्सक—केदारमल मेमोरियल आयुर्वेदिक हास्पीटल,

तेजपुर—७८४००१ (असम) भारत।

प्रकाशकीय

चिरकाल से जिसकी प्रतीक्षा थी, वह ग्रन्थ रत्न "सङ्कट कालीन चिकित्सा (आकस्मिक व्याधि चिकित्सा)" अपने कृपालु ग्राहकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे अतीव हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। मानव जीवन क्षण भंगुर है लेकिन 'जब तक सांस तब तक आस" वाली कहावत के अनुसार इस अमूल्य जीवन की रक्षा का भरसक प्रयास करना भी मानव मात्र का परम पावन कर्तव्य है। फिर चिकित्सक का तो यह कर्तव्य और भी गुरुतर हो जाता है। मानव २ प्रकार की व्याधियों से पीड़ित होता है—प्रथम तो वे हैं जो असम्यक् आहार विहार, प्रज्ञापराध के कारण दोषों के कुपित होने से शनैःशनैः उत्पन्न होती हैं और चिकित्सा करने पर शनैः शनैः ही शांत होती हैं। इस प्रकार के रोगों में रोगी के परिवारीजनों को एवं चिकित्सकों को सोचने-समझने एवं विचारने के लिये पर्याप्त समय रहता है। द्वितीय प्रकार के वे रोग हैं जो किसी दुर्घटनावश (या दोषों के अकस्मात प्रकुपित होने से) अचानक ही तीव्र वेग से प्रादुर्भूत होते हैं और मानव जीवन एकदम संकट में जान उसके परिवारीजन तुरन्त किसी अच्छे अस्पताल के इमरजेंसी विभाग में चिकित्सा हेतु लेजाते हैं। आजकल साधारण समाज में यह धारणा बलवती है कि आयुर्वेद में आकस्मिक प्रादुर्भूत होने वाली व्याधियों की कोई उपयुक्त चिकित्सा नहीं है जिससे रोगी के जीवन पर मंडराये सङ्कट को तुरन्त निरस्त कर उस आकस्मिक व्याधि से त्राण पाया जा सके। इसी धारणा की निवृत्ति हेतु इस ग्रंथ रत्न को प्रकाशित करने का विचार हुआ और उसका मूर्त रूप आपके कर कमलों में प्रस्तुत है।

आज के इस व्यस्त युग में रोगी अपनी व्याधि से तुरन्त छुटकारा पाना चाहता है और अपनी इस भ्रामक धारणा के आधार पर कि आयुर्वेद में कोई त्वरित चिकित्सा नहीं है वह एलोपैथी की शरण में चला जाता है। कभी-कभी तो अकस्मात तीव्र वेग वाले रोग से ग्रसित रोगी आने पर आयुर्वेद चिकित्सक भी घबड़ा जाता है और रोगी को तुरन्त ही किसी अच्छे अस्पताल के इमरजैंसी वार्ड में उपचार हेतु परामर्श दे देता है क्योंकि आत्ययिक अवस्थाओं में आयुर्वेदिक चिकित्सा का उसे पर्याप्त ज्ञान नहीं होता। इसी अज्ञान को दूर करने हेतु हमने "सङ्कट कालीन चिकित्सा" प्रकाशित करने का प्रस्ताव सुप्रसिद्ध विद्वान श्री गिरिधारी लाल जी मिश्र के समक्ष प्रस्तुत किया और आपने सुहृदयतापूर्वक हमारा प्रस्ताव स्वीकार कर कार्य प्रारम्भ कर दिया। इससे पूर्व आप सन् ८१ में "मुख एवं कण्ठ रोग चिकित्सांक" का सफल सम्पादन कर

चुके हैं। सन् १९८३ में "मूत्र रोग चिकित्सा" को पाठक पढ़ ही चुके हैं जिसकी कि आयुर्वेद जगत में अत्यन्त प्रशंसा हुई थी। अब इस "सङ्कट कालीन चिकित्सा" में आपकी लेखनी एवं सम्पादन कला और अधिक परिष्कृत रूप में उपस्थित हुई है। आशा है कि पाठकगण भी इसकी प्रशंसा किये बिना न रह सकेंगे। आपने सम्पूर्ण सामग्री हमें दिसम्बर १९८४ में ही भेज दी थी। इसके पश्चात् उपयुक्त डिजायनों एवं ब्लाकों की व्यवस्था फरवरी के मध्य तक हो पाई थी और मुद्रण कार्य फरवरी के मध्य से ही प्रारम्भ कर दिया गया था।

संकटकालीन रोग असीम हैं। उनकी कोई गणना नहीं की जा सकती। एक रोग, जोकि अपने स्वाभाविक रूप में है, उसमें कभी-कभी अकस्मात ही कोई ऐसा उपद्रव हो जाता है कि रोगी का जीवन संकट में लगने लगता है। फिर भी जहां तक हो सका है इस ग्रन्थ में ऐसी सभी व्याधियों के समावेश का प्रयास किया है जिनसे रोगी का जीवन संकटग्रस्त प्रतीत होने लगे। लेकिन इसमें उन रोगों का समावेश नहीं किया गया है जिनकी चिकित्सा आयुर्वेद पद्धति द्वारा होनी संदिग्ध है यथा कैंसर। ऐलोपैथी के आधार पर किये जाने वाले शल्य कर्मों का विवरण भी हमने छोड़ दिया है क्योंकि शल्य कर्म करने की व्यवस्था १% वैद्यों के पास भी नहीं है और जो इनका ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं वे आधुनिक विज्ञान की पुस्तकों से भली भांति कर सकते हैं। हमारा प्रमुख लक्ष्य तो साधारण चिकित्सक ही है तथा उसके समक्ष वही चिकित्सा प्रस्तुत करना हमारा ध्येय है जो उसकी पहुँच एवं समझ से परे न हो।

इस "सङ्कट कालीन चिकित्सा" के प्रकाशन में जिनसे भी सहयोग प्राप्त हुआ है उनका अत्यन्त आभारी हूं। कवि० गिरिधारी लाल जी मिश्र आयु० चक्रवर्ती (श्री लङ्का) का अत्यन्त आभारी हूं जिन्होंने अल्पकाल में ही इस दुरूह विशाल कार्य को सम्पन्न किया है। इसमें अधिकांश लेखों का लेखन आपने स्वयं ही किया है जो कि आपकी अद्भुत लेखन कर्मठता एवं विद्वता का द्योतक है। आपका जीवन परिचय अन्यत्र प्रकाशित है उससे भी आपकी विद्वता का परिचय प्राप्त होगा। श्री मिश्र जी के अतिरिक्त अन्य अनेकों आयुर्वेदज्ञों—लेखकों का भी सहयोग एवं सत्परामर्श हमें पग-पग पर उपलब्ध होता रहा है। इस हेतु उन सभी का हृदय से आभारी हूं। इसके चित्रकार श्री सुरेश मोहन सक्सैना का सुन्दर डिजायन बनाने हेतु आभारी हूं। मेरा ज्येष्ठ पुत्र चि० नवीन कुमार शर्मा सरोजिनी नायडू कालेज आगरा में चतुर्थ वर्ष में अध्ययनरत है। इस "सङ्कट कालीन चिकित्सा" के शरीर रचना सम्बन्धी सभी चित्र उसके द्वारा ही बनाये गये हैं। चि० नवीन अपना ही बच्चा है तथा आशा है कि हमारे द्वारा होने वाले आगामी प्रकाशनों में और भी अधिक पर्याप्त सहयोग प्राप्त होगा। कम्पोजीटर श्री पं० अनोखे लाल शर्मा, श्री पन्नालाल, अपने कर्मचारी सर्वश्री राकेशकुमार शर्मा, किशनलाल शर्मा, राकेश सक्सैना, सतपाल (मशीनमैन), अनिल, ओमप्रकाश उस्ताद का आभारी हूं जिनका कि पग-पग पर सम्पूर्ण सहयोग मिला है।

भवदीय

[signature]

३-७-८५ (बुद्ध पूर्णिमा)
गुलजार नगर, रामघाट रोड
अलीगढ़

निर्मल आयुर्वेद संस्थान, डी-७८ औद्योगिक नगर
(फैक्टरी एरिया), अलीगढ़।

आज के युग में यान्त्रिक सुविधाओं एवं यातायात के साधनों तथा तकनीकी विकास के फलस्वरूप दुनिया एक परिवार के रूप में छोटी हो गयी है। फलस्वरूप विश्व के विविध खण्डों में चलने वाले ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी विचारों का आदान-प्रदान तक सरल कार्य हो गया है। विज्ञान के द्वारा आविष्कृत भौतिक सुख-साधनों का प्रयोग आज सर्वत्र हो रहा है और मानव की सुख प्राप्ति की इच्छा जन्मजात व स्वाभाविक एषणा ही है। एतदर्थ कष्टों से वह तुरन्त मुक्त होना चाहता है क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिकों की साधना भौतिकता व बहिर्मुखी है अतः आधुनिक चिकित्सक भी ऐसे उपायों में अधिक तल्लीन होने लगे जिससे मानव को रोग के कष्ट से निवारण तुरन्त मिले। रोग की निर्मूलता पर ध्यान नहीं दिया जाता। यद्यपि आज आशुकारी चिकित्सा में एलोपैथी चरमोत्कर्ष पर है, पर यह सत्य है कि उसके आशुकारी औषधियों के दुष्परिणाम प्राणघातक तो हैं ही, एक के बाद एक रोगों के जन्मदाता भी हैं। आज के अधिकांश जटिल रोग जैसे—हृदय रोग, रक्तचाप, मधुमेह, कैंसर, एलर्जी, अनिद्रा, कोलेस्ट्रोल, पोलियो आदि चरमोत्कर्ष पर हैं और आधुनिक चिकित्सकों के पास रोग की मात्र लाक्षणिक शान्ति के कोई उपाय नहीं हैं। कष्ट के मात्र तात्कालिक निवारण के कारण लोग कहते रहते हैं कि एलोपैथ में ही संकटकालीन चिकित्सा है और इन रोगों के लिए ही जीवन भर दवयें भी खाते रहते हैं, ये रोग चेलैंज बने हुए हैं।

आचार्य चरक ने इन्द्रिय स्थान में रोगियों की मरणासन्न अवस्था के अत्यन्त ही स्पष्ट चित्र अंकित किये हैं। यह विवेचन कितने गहन अध्ययन और अनेकालिक परीक्षणों के उपरान्त ही निश्चित किये गये होंगे जिनका विचार मात्र सम्पूर्ण शरीर को रोमाञ्चित कर देता है। इसमें चिकित्सा शास्त्र का वह निचोड़ है जिसको हृदयङ्गम करके वैद्य अपकीर्ति से बच सकता है तथा गतायुष रोगी के परिवार वाले भी अकारण की अर्थहानि तथा परेशानी से बच सकते हैं तथा आधुनिक शोधकों के लिए एक चेलैंज (Challenge) है कि इन लक्षणों से युक्त 'गतायुष' है एवं यह चेलैंज चरक के काल से आज तक यथावत् अनुसन्धानकर्ताओं के समक्ष है।

संकटकालीन चिकित्सा में प्रावीण्य प्राप्त करने वाले चिकित्सकों को अरिष्ट विज्ञान का गहन अध्ययन अवश्य करना चाहिये जिससे अपयश से बच सके। रोगी के अभिभावकों की यह हार्दिक इच्छा होती है कि रोगी को बड़े से बड़े चिकित्सक को दिखावें तथा यशस्वी चिकित्सकों के समक्ष ऐसे केस अवश्य आते ही हैं। ऐसी स्थिति में 'यावत् कण्ठगते प्राणा तावत् कार्यतिकार्या प्रतिक्रिया' के अनुसार चिकित्सा कार्य में संलग्न होकर भी अभिभावकों को आसन्न मृत्यु की सूचना अप्रिय कटु शब्दों में नहीं बल्कि सांकेतिक भाषा में देनी चाहिये जिससे अपकीर्ति से बच सके।

आयुर्वेद में प्रायः प्रत्येक रोग की साध्य, कृच्छ्रसाध्य स्थिति का विस्तृत विवेचन है जिनमें कृच्छ्रसाध्य तथा असाध्य लक्षण आपात्कालीन स्थिति के हैं। प्राचीन आयुर्वेद तत्वज्ञों ने शरीर के धारक तत्वत्रय—शरीरोदक (कफतत्व), शरीराग्नि (पित्ततत्व) एवं शरीरगति (वाततत्व) का गहन अध्ययन कर 'रोगस्तु दोषवैषम्य दोष साम्यमरोगता' 'दोषों की साम्यावस्था आरोग्य तथा विषमावस्था रोग' सिद्धान्त प्रतिपादित किया था अतः दोष की स्थिति के अनुसार ही रोग की स्थिति होती है। दोषों की प्रकोपावस्था (Acute condition) ही संकटकालीन स्थिति है जो मात्र कोई रोग विशेष न होकर ऐसी प्राणघातक अवस्था विशेष है जो किसी रोग में दोष प्रकोप की स्थिति

के अनुसार उत्पन्न होकर प्राणघातक स्थिति उत्पन्न कर देती है जिसमें येनकेन प्रकारेण प्राण संरक्षण प्रथम कर्त्तव्य है। आधुनिक चिकित्सा में इसे ही संकटकालीन चिकित्सा कहते हैं। आयुर्वेद वैज्ञानिकों ने रोगी की ऐसी स्थिति के लिए अत्यन्त ही उत्तम वैज्ञानिक शब्द 'आत्ययिक व्याधि' प्रयोग किया है जिसका तात्पर्य त्वरित चिकित्सा करने योग्य स्थिति को ही माना है, पर आधुनिक युग में आधुनिक चिकित्सकों द्वारा आम जनता में 'संकटकालीन चिकित्सा' शब्द योगरूढ हो जाने के कारण ही इसका नाम 'संकटकालीन चिकित्सा' रखा है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा के सिद्धान्त दोष वैषम्य के अनुसार—(१) हेतु विपरीत चिकित्सा, (२) व्याधि विपरीत चिकित्सा, (३) उभय विपरीत चिकित्सा के रूप में स्थापित किये गये हैं जिनमें हेतु विपरीत चिकित्सा का ही प्राधान्य है किन्तु हेतु-दोष के बलाबल से उत्पन्न व्याधि स्वरूप को भी प्राणघातक अवस्था उत्पन्न होने पर चिकित्सा का आधार बनाकर प्राण रक्षा की प्राथमिकता दी जाती है। कारण शरीर में प्राण की स्थिति का होना ही जीवन है। अतः जीवन रक्षा के लिए आचार्य सुश्रुत का आदेश है—

अतिपातिषु रोगेषु नेच्छेद्विधिमिमं भिषक्। प्रदीप्तागारवत् शीघ्रं तत्र कुर्यात् चिकित्सितम् ॥

अर्थात् जिस प्रकार घर में आग लग जाने पर आग को बुझाने के लिये तत्काल सभी सम्भव उपाय किये जाते हैं उसी प्रकार रोग की प्राणघातक आपात्कालीन अवस्था में रोग के पूर्वकर्म आदि के बिना ही मनुष्य की प्राण रक्षा के लिये तत्काल चिकित्सा कार्य करना चाहिये।

यद्यपि मुख्य व्याधि को ध्यान में रखते हुये ही उपद्रव का निवारण करना चाहिये तथापि यदि रोग के उपद्रव निवारण में मुख्य व्याधि या दोष के प्रतिकूल भी कोई चिकित्सा करनी पड़े तो करनी चाहिये। कारण अधिक हानिकारक उपद्रव के निवारणार्थ अल्प हानिकारक व्याधि व दोष वृद्धि भी जाय तो यह ग्राह्य है जैसा कि चक्रपाणि ने प्रसङ्गवश सन्निपात चिकित्सा प्रसङ्ग में स्पष्ट किया है—

यथा इयं चोष्ण वर्धनादि दोष रूपा सान्निपातिक चिकित्सा यद्यपि न विशुद्धा यदुक्तं प्रयोगः शमयेत् व्याधि योऽन्यमन्यमुदीरयेत् नासौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेत् यो न कोपयेत् (च० चि० ८) इति। तथापि—सान्निपात चिकित्सायां गत्यन्तरा संभवे सति अल्प दोष बहुगुणतया क्रियते इति ज्ञेयम्।—च० चि० ३/२८७

अतः उपर्युक्त उद्धरण आयुर्वेद की सङ्कटकालीन चिकित्सा विवेचन का पुष्ट प्रमाण है। रोग अनादि हैं, चिकित्सा अनादि है। प्राचीनकाल में भी संकटकालीन चिकित्सा होती थी। मृत्यु अनादि काल से अवश्यम्भावी है। मृत्यु की चिकित्सा न थी, न होगी।

आशुगुणकारी द्रव्य की आशु क्रिया के लिये यह आवश्यक है कि वह शीघ्रातिशीघ्र रोग के अधिष्ठान तक पहुँच जाय। पाचक संस्थान द्वारा शोषित होने में पर्याप्त समय लगता है। अतः औषध को सीधे रक्त में पहुँचाने के उपाय निकाले गये। सिर में शस्त्र द्वारा काकपदाकार क्षत बनाकर वहाँ औषध भर दी जाती थी जिससे वह सीधे रक्त में मिलकर शरीर में फैलकर शीघ्र प्रभाव प्रदर्शित करती थी। आचार्य शार्ङ्गधर ने लघु सूचिकाभरण रस (मध्य खण्ड अ. १२) के प्रसंग में लिखा है—'रक्तभेषज संपर्कात् मूर्च्छितोऽपि हि जीवति' अर्थात् रक्त से औषध का सम्पर्क होते ही मूर्च्छित उठ बैठता है। इसी सिद्धान्त पर इन्जेक्शन का आविष्कार हुआ है।

आदिकाल से ही मानव की कामना रोग और वेदना से शीघ्र मुक्त होने की रही है। अतः आशुकारी द्रव्य की उपयोगिता वेदनाशामक तथा प्राण रक्षक के रूप में होती है। एतदर्थ संकटकालीन अवस्था में सफलता बोध के लिये आयुर्वेद में निष्ठा एवं ज्ञान की परिपक्वता का परीक्षा-स्थल है। आचार्य सुश्रुत आशुकारी द्रव्य की परिभाषा में लिखते हैं—आशुकारी तथाऽशुत्वात् धावत्यम्भसि तैलवत्। सु० सू० ४६ अर्थात् पानी में तेल की बूंद डालने पर जैसे तुरन्त फैल जाती है वैसे ही जो द्रव्य शरीर में शीघ्र व्याप्त हो जाय वह आशुगुणकारी है जिसमें निम्न गुण अपेक्षित हैं—

(१) सूक्ष्म (Penetrating)—जो द्रव्य निपात होते ही रक्त में प्रविष्ट हो जाय।

(२) व्यवायी (Rapidly asimiable)—शीघ्र शरीर की धातुओं में व्याप्त हो जाय।

(३) आशु (Rapidly acting)—शरीर में पहुँचकर शीघ्र अपना कर्म प्रदर्शित करें।

उपरोक्त गुणों को देखकर ही मद्य तथा विष को भी औषधि में प्रयुक्त किया। "नानौषधिभूतं जगत किञ्चिद् वर्तते" कहकर किसी द्रव्य को औषध की सीमा से बाहर नहीं रखा एवं विषों को भी 'युक्तियुक्त रसायन' कहकर प्रयुक्त किया। काष्ठौषधियों में सुरातत्व (मद्य) की परिकल्पना कर आसव-अरिष्ट का निर्माण हुआ। विषों में वत्सनाभ, कुचला, धतूर, संखिया, भल्लातक आदि अतीव उपयुक्त एवं आशुगुणकारी औषध द्रव्य सिद्ध हुये जो आधुनिक विज्ञान द्वारा भी अपनाये गये। मद्य तथा विष मुख द्वारा सेवन करने पर भी श्लेष्मकला से शीघ्र शोषित होकर रक्त द्वारा शरीर में फैलकर शीघ्र अपना प्रभाव प्रदर्शित करते हैं।

आज ए. पी. सी., एनासीन, नोवलजीन, बेलार्गन आदि दवाइयां तत्काल ज्वर, सिरशूल, उदरशूल व अन्य शूल में आम जनता द्वारा भी खूब प्रयोग होती हैं जिनमें विष द्रव्य ही संयुक्त है तथा लगातार एवं अनुचित प्रयोग हानिकर है। यही कारण है कि एक रोग से मुक्त होने के बाद दूसरा रोग हो जाता है। पर आयुर्वेद के औषध प्रयोगों में विषों का प्रयोग भी उनका शोधन अमृतीकरण कर किया जाता है जिससे कोई दुष्प्रभाव नहीं हो।

आयुर्वेद विश्व का प्राचीनतम सर्वांगपूर्ण चिकित्सा विज्ञान है तथा आज की विकासमान चिकित्सा पद्धतियों का जनक है। आयुर्वेद के सूक्ष्मतम सूत्रों का गहन अध्ययन करने से आज की विकासमान उपलब्धियों का आयुर्वेद में समावेश पाते हैं एतदर्थ ही आज के आयुर्वेदज्ञ अन्य चिकित्सा पद्धति की ग्राह्य उपलब्धियों को आयुर्वेद में आत्मसात् कर लेने की बात पर जोर देते हैं पर वह आयुर्वेदीय सिद्धान्तानुसार होना चाहिये। आज का वैद्य यदि संकटकालीन चिकित्सा के रूप में आशुगुणकारिता की आड़ में यदि अन्धाधुन्ध एलोपैथिक दवाइयों का प्रयोग करता है तो इससे २ हानियां हैं। एक तो वह अनुकरणित एलोपैथिक दवाइयों तक ही उसका ज्ञान सीमित होकर आयुर्वेद का अभ्यास एवं अनुसंधान छूट जाता है। दूसरा औषधों से निराश उच्च अधिकारीगण जब उसकी चिकित्सा में आते हैं तथा उनको एलोपैथिक दवा देता है तो उनकी नजरों में आयुर्वेदज्ञ के रूप में कोई सम्मान नहीं रहता है तथा आयुर्वेद का अपमान होता है। अतः आयुर्वेदज्ञों को चाहिये कि वर्तमान दवाइयों के क्रियाशील तत्वों को आयुर्वेद में आत्मसात करें तथा रक्ताधान, सिरा द्वारा लवण जल प्रवेश (सलाइन चढ़ाना), आक्सीजन प्रयोग एवं सूचीवेध तथा शल्यकर्म को आयुर्वेद में आत्मसात् करें। शल्यकर्म एक क्रिया है जैसे दर्जी कपड़ा सिलता है। कपड़ा 'मेड इन जापान' हो, सुई 'मेड इन जर्मनी' हो इससे क्या फर्क पड़ता है। कपड़ा, सूई, धागा कहीं का बना हो सिलाई एक कर्म है। शरीर व शस्त्र कहीं का बना हो काटना-सिलना कर्म है। इसमें आयुर्वेद एलोपैथ कुछ नहीं है। वैद्यों को शल्य कर्म के साधनों का प्रयोग विज्ञान की देन समझकर करना चाहिये। आयुर्वेद का भण्डार अनन्त है, अमूल्य है। जरूरत अनुसन्धान की है। काल बलवान है। आयुर्वेद वह दीप है जो विश्वचिकित्सा विज्ञान को आत्मसात् कर आलोकित करेगा।

हिमालय की तलहटियों में व आधुनिक प्रयोगशालाओं में रोगमुक्ति का उपाय ढूढने वालों को जो भी ज्ञान प्राप्त हुआ वह आयुर्वेद है एतदर्थ हमने जहां से भी जो कुछ सामग्री संकलित की है हृदय से आभारी हैं। अपने सहयोगी लेखक बन्धुओं के आज तक के प्राप्त सभी लेखों का समावेश करते हुये उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूं।

—विनीत—

तेजपुर (असम) | वसन्त पञ्चमी २०४१ | आयुर्वेद चक्रवर्ती गिरिधारीलाल मिश्र

गणतन्त्र दिवस १९८५ | २६—१—८५

—०✱०—

सङ्कटकालीन चिकित्सा

(आकस्मिक व्याधि चिकित्सा)

की

विषय-सूची

—※—

संकटकालीन चिकित्सा के सिद्धान्त

वैद्य बनवारी लाल गौड़ भिषगाचार्य, आयु० बृह०

गुलाबी नगरी, जयपुर में राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान में अध्यापन कार्यरत श्री बनवारीलाल गौड़ आयुर्वेद के उद्‌भट विद्वान एवं उच्चकोटि के लेखक तथा सफल पीयूषपाणि चिकित्सक हैं। आपकी पांच पुस्तकें तथा कई शोध पत्र प्रकाशित हो चुके हैं तथा अपने उल्लेखनीय सेवाकार्य हेतु राजस्थान के स्वास्थ्य मन्त्री द्वारा सम्मानित हुए हैं। आपके विद्वत्तापूर्ण मौलिक लेख आयुर्वेदीय पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं हंसमुख एवं मिलनसार प्रवृत्ति के धनी हैं। इनके प्रस्तुत लेख "संकटकालीन चिकित्सा के सिद्धान्त" में अत्यन्त ही स्पष्ट रूप से सिद्धान्त पक्ष का विवेचन किया है। आपका यह लेख पठनीय एवं मननीय है। श्री गोपेश जी के शब्दों में—

रोगापहर्ता ग्रन्थकर्ता शिक्षा प्रदाताय च यो नियुक्तः।
सुधिः सुशीला गुण ग्राहकश्च वैद्योऽयमच्छ बनवारि गौड़ः॥

—गिरिधारीलाल मिश्र।
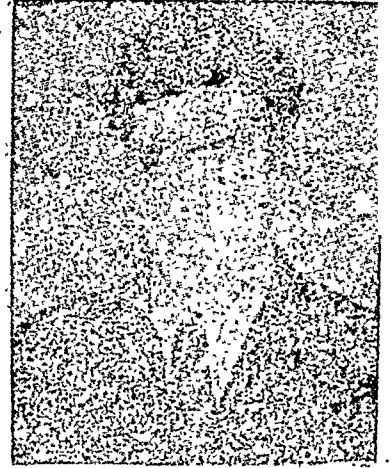
शरीर को सभी प्रकार की वेदनाओं से मुक्ति दिलवाना चिकित्सा का प्रमुख उद्देश्य रहता है। भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं से वेदनाओं का निवारण करने के कारण चिकित्सा विभिन्न पद्धतियों में विभक्त हो गई है। आयुर्वेद अनादि और शाश्वत है। सम्पूर्ण चिकित्सा प्रक्रियायें सिद्धान्त रूप से इसमें निहित हैं। अतः किसी भी प्रसङ्ग में इनकी अन्य चिकित्सा-पद्धतियों से तुलना करने की कोई आवश्यकता नहीं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि नवीन पद्धतियों में उपेक्षित होते हुए आयुर्वेदीय सिद्धान्तों का पुनरीक्षण करें। इस क्रम में किसी पद्धति की आलोचना करने की भी आवश्यकता नहीं है। हो सके तो उन पद्धतियों के विकसित उपक्रमों का आयुर्वेदीय सिद्धान्तों से समन्वय करके चिकित्सा में उपयोग किया जा सकता है। लेकिन जो उपक्रम आयुर्वेद चिकित्सा-सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं है उन्हें तिरोहित दिया जाना चाहिए। बहुत से ऐसे वैकारिक लक्षण एवं उपद्रवात्मक लक्षण हैं जो प्राणों के लिए संकट उत्पन्न कर देते हैं। इस स्थिति में चिकित्सा के सामान्य क्रम हटकर विशिष्ट चिकित्सा की व्यवस्था करनी पड़ती है इसे ही वर्तमान काल में संकटकालीन चिकित्सा के में संबोधित किया जाता है। यह व्यवस्था प्राचीन में नहीं रही हो यह कहना गलत है। आचार्यों द्वा अनेक स्थलों पर सद्यः, आशु, त्वरित आदि शब्दों प्रयोग संकटकालीन स्थितियों में सद्य उपचारार्थ गया है। इस प्रसङ्ग में सुश्रुत के इन वचनों को उद्धृ करना ही पर्याप्त होगा जिसमें उन्होंने संकटकाली

स्थिति में विशिष्ट विधि को प्रयुक्त करने का संकेत दिया है। यथा—

अतिपातिषु रोगेषु नेच्छेद् विधिमिमां भिषक्।
प्रदप्तागारवद् शीघ्रं तत् कुर्यात् चिकित्सितम्॥
(सुश्रुत सू. ५/४१)

इस विशिष्ट विधि का आचार्यों ने कहीं पृथकशः उल्लेख नहीं किया है, पर विभिन्न सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में संकेतित भावों के अनुरूप यहां संकटकालीन चिकित्सा के सिद्धान्तों का उल्लेख किया जा रहा है। इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर प्रयुक्त किये गये उपक्रमों से किसी भी संकटकालीन स्थिति से रोगी को बचाया जा सकता है।

संकटोत्पादक परिस्थितियां—

संसार में प्राणों को प्राथमिकता दी जाती है। सभी एषणाओं में प्राणैषणा का प्रामुख्य है। जबकि गंभीरता से मनन किया जाय तो प्राणों पर ही सर्वदा सर्वाधिक संकट आने की संभावना रहती है। सङ्कटकालीन सिद्धांतों के वर्णन से पूर्व यहां संक्षेप में उन स्थितियों का उल्लेख किया जा रहा है जो प्राणों पर सङ्कट उत्पन्न कर सकती हैं—

१. रोगोपद्रव एवं कुछ विशिष्ट रोग—श्वास, हिक्का, तीव्र ज्वर, अपस्मार, विसूचिका, अलसक एवं आन्त्र रोग, मूर्च्छा, संन्यास, आक्षेपक आदि।

२. विष—प्रयोग या शरीर में विष सञ्चय।

३. शरीराङ्गों का क्रियानाश—हृदय, फुफ्फुस, वृक्क, मस्तिष्क का क्रियातिपात आदि।

४. विशिष्ट धातुओं का नाश—रस, रक्त-धातु एवं बलीर्मांश का क्षय।

५. संज्ञा या चेष्टा का नाश।

चिकित्सा सिद्धान्त—

किसी भी रोग की चिकित्सा नियत सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर की जाती है। लेकिन संकटकालीन स्थिति कोई रोग विशेष नहीं है, अपितु परिस्थिति विशेष है जो किसी भी रोग में उत्पन्न हो सकती है, यह ऊपर निर्दिष्ट 'संकटोत्पादक परिस्थितियां' से स्पष्ट है। ऐसी स्थिति में मुख्य चिकित्सा-सिद्धान्तों को छोड़कर येन-केन प्रकारेण प्राण-संरक्षण परमावश्यक होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि सङ्कटकालीन चिकित्सा के कोई नियत सिद्धान्त नहीं हैं। परिस्थिति के अनुरूप कोई भी उपक्रम प्रयुक्त करके संकट का निवारण किया जा सकता है। यह एक सामान्य निर्देश है जो संकटकालीन परिस्थिति के लिये प्रयुक्त है। इसी क्रम में एक बात और जान लेना आवश्यक है कि संकटकालीन चिकित्सा के नियत सिद्धान्त नहीं होते हुए भी कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जिनकी पालना करने पर संकट-निवारण में भरपूर सहयोग मिलता है। ये ऐसे सिद्धान्त हैं जिन्हें किसी भी प्रकार की परिस्थिति में काम में लिया जा सकता है अतः इन्हें 'संकटकालीन चिकित्सा के सामान्य सिद्धांत' कहा जा सकता है। इनका क्रमशः उल्लेख किया जा रहा है—

१. मुख्य व्याधि के अनुरूप—

कभी-कभी किसी रोग विशेष में उपद्रवों के उत्पन्न हो जाने पर संकट उत्पन्न हो जाता है ऐसी स्थिति में प्रायः मुख्य व्याधि की दोष-दूष्यसंमूर्च्छना और तदनुरूप नियत चिकित्सा सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुये उपद्रवों के निवारण का प्रयत्न करना चाहिये। उपद्रवात्मक जो लक्षण विशेषरूपेण कष्टदायी हो उसीका पहले निवारण करे।

२. मुख्य व्याधि के प्रतिकूल भी—

यद्यपि मुख्य व्याधि को ध्यान में रखते हुए ही उपद्रव का निवारण करना चाहिए, फिर भी यदि उपद्रव के निवारण में मुख्य व्याधि के या दोष के प्रतिकूल भी कोई चिकित्सा करनी पड़े तो की जा सकती है। हो सकता है कि इस चिकित्सा से मुख्य व्याधि बढ़ जाय तथा दोष भी अधिक प्रकुपित हो जाय, अतः यह विशुद्ध चिकित्सात्मक प्रयोग नहीं माना जा सकता। लेकिन अधिक हानिकारक उपद्रव के निवारण क्रम में यदि अल्प-हानिकारक व्याधियां (दोष) बढ़ भी जाय तो यह सह्य है, अतः ऐसा किया जा सकता है। जैसाकि चक्रपाणि ने सन्निपात-चिकित्सा के प्रसङ्ग में स्पष्ट किया है, यथा—

इयं चोकवर्धनादिदोषरूपा सन्निपात-चिकित्सा यद्यपि न विशुद्धा, यदुक्तं प्रयोगः शमयेद् व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत् । नासौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद् यो न कोपयेत् (च. नि. ८), इति, तथाऽपि सन्निपातचिकित्सायां गत्यन्तरासम्भवे सति अल्पदोषबहुगुणतया क्रियत इति ज्ञेयम् ।

(च. चि. ३/२८६ पर चक्रपाणि)

उपद्रव आशुचिकित्स्य हैं—

मुख्य व्याधि अथवा दोषवर्धक चिकित्सा करने को उचित बताने में एक तर्क यह भी दिया जा सकता है कि उपद्रव आशु-चिकित्स्य हैं। अतः उनका शीघ्र-निवारण करना चाहिये क्योंकि ये शीघ्रतापूर्वक प्राणों को नष्ट करते हैं तथा अधिक पीड़ाकारक होते हैं। इसलिये मुख्य व्याधि के अनुकूल या प्रतिकूल किसी भी उपक्रम या उपाय से उनका प्रशमन आवश्यक है। जैसाकि चरक में कहा गया है—स तु पीड़ाकरतरो भवति······तस्मादुपद्रवं त्वरमाणोऽभिबाधेत् ।

इसकी व्याख्या में चक्रपाणि लिखते हैं—'···उपद्रवस्य आशुचिकित्स्यत्वं व्युत्पादयन्नाह—सत्वित्यादि । ···अभिबाधेतेति त्वरया चिकित्सेत्, सा च चिकित्सा मूलव्याधिप्रशमनेन तथा स्वतन्त्राऽपि भवतीत्युक्तमेव ।

(चक्रपाणि)

यद्यपि आयुर्वेद में उपद्रव सम्बोधन का प्रयोग किसी व्याधि में बाद में उत्पन्न हुये पीड़ाकारक रोग या लक्षण के लिये किया गया है तथापि चिकित्सा के उपर्युक्त सिद्धान्त को किसी भी संकटोत्पादक परिस्थिति के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है, चाहे वह रोग के उपद्रव रूप में उत्पन्न हुआ हो अथवा किसी आगन्तुक कारण से सहसा उत्पन्न हुआ हो।

३. अग्नि-संरक्षण—

पाञ्चभौतिक शरीर के सभी भावों की वृद्धि या क्षय पाञ्चभौतिक द्रव्यों के प्रयोग से सम्भव है। कुछ ऐसे उपक्रम भी हैं जो इन भावों की अभिवृद्धि या क्षय में सहायक कारण होते हैं। द्रव्यों और उपक्रमों का प्रयोग-स्थल शरीर होता है, अतः इसका क्रियात्मक सहयोग प्राप्त किये बिना ये रोग का निवारण नहीं कर सकते। शरीर का यह क्रियात्मक सहयोग इन द्रव्यों का परिपाक करके शरीर में उचित स्रोतस् में परिभ्रमण करने देने पर प्राप्त हो जाता है। आयुर्वेद में परिपाक करने वाले भावों को 'अग्नि' सम्बोधन से सम्बोधित किया गया है। दूसरी पद्धतियां भले ही 'अग्नि' को स्वीकृत न करती हों, पर उन्हें भी, उपर्युक्त-प्रक्रिया तो स्वीकृत करनी ही पड़ती है। अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बाहर से प्राप्त तत्वों को शरीर के जो भाव अवशोषित करते हैं, उनका व्यवस्थित होना परमावश्यक है। उदाहरण के रूप में यह कहा जा सकता है कि मन्थ, तर्पण, बस्ति या ग्लूकोज एवं रक्त देने जैसी प्रक्रियायें तभी उपयोगी हैं जब कि शरीर इनको ग्रहण न करने में अनुकूलता प्रदर्शित कर रहा हो, अन्यथा अक्षमत्व या एलर्जी की स्थिति में इन द्रव्यों का प्रयोग अनुपयोगी हो जायगा। शरीर में इन तत्वों का अवशोषण अग्नि के द्वारा होता है जो १३ प्रकार की) जठराग्नि १, धात्वाग्नि ७, महाभूताग्नि ५) हैं किसी भी चिकित्साक्रम में अग्नि का संरक्षण आवश्यक है। संकटकालीन चिकित्सा में विशेष रूप से यह ध्यान रखना आवश्यक है कि व्यक्ति की अग्नि क्षीण न होने पावे। प्रायः लघु उष्ण, दीपन, पाचन एवं अनुलोमन द्रव्यों का प्रयोग करने से अग्नि का संरक्षण होता है। अग्नि प्रदीप्त एवं व्यवस्थित हो तो किसी भी प्रकार के संकट के निवारण में सहायता मिलती है। आयुर्वेद में अग्नि का संरक्षण 'रोग और आरोग्य' दोनों ही अवस्थाओं में महत्त्वपूर्ण माना गया है तथा अग्नि को इसी आधार पर चिकित्सा का मूल माना है।

४. विशिष्ट अवयवों का संरक्षण—

संकटकाल में सभी मर्मों का संरक्षण प्राथमिक रूप से करना चाहिए, क्योंकि इनमें प्राण विशेष रूप से स्थिर रहते हैं। इस क्रम में संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कुछ विशिष्ट अवयवों का विशेष रूप से संरक्षण करना चाहिए। इनका संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत है—

(१) हृदय संरक्षण—हृदय को शरीर में प्रमुख स्थान प्राप्त है। वह रक्त संवहन के माध्यम से सम्पूर्ण शरीर का नियमित पोषण करता है। इसके कार्य बन्द कर देने

का परिणाम एक मात्र मृत्यु ही है। इसके कार्य में विकृति होने पर भी भयङ्कर परिणाम होते हैं। प्रायः सभी रोग अपनी तीव्रावस्था में हृदय को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। हृदय को सद्यः प्राणहर मर्म माना गया है। अतः इस पर होने वाले दुष्प्रभावों का तात्कालिक निवारण आवश्यक है। इस स्थिति में हृद्रोग के चिकित्सा सिद्धान्तों के अनुसार उपक्रम करने चाहिए। कोई भी व्याधि आगे या पीछे हृदय को अवश्य प्रभावित करती है अतः यदि वह हृदय को प्रभावित कर चुकी है तो उसका निवारण करना करना चाहिए, यदि उसने अभी तक हृदय को प्रभावित नहीं किया है तो हृदय का संरक्षण करना चाहिए। अन्य उपक्रमों के साथ ही हृदय को बल देने वाले उपक्रमों या द्रव्यों का प्रयोग करने से हृदय का संरक्षण सम्भव है। आचार्य सुश्रुत ने विष प्रकरण में हृदय की रक्षाका निर्देश करते हुए कहा है कि अजेय घृत और अमृतघृत पीकर विष के प्रभाव से हृदय की रक्षा की जा सकती है।[1] इस प्रक्रिया को उन्होंने हृदयावरण कहा है। तथापि हृदयावरण की यह प्रक्रिया विष प्रकरण में कही गई है तथापि इसका उद्देश्य विस्तृत माना जाना चाहिए। यह एक संकेतमात्र है, जिसका यह अर्थ करना चाहिए कि हृदय का आवरण सभी सांघातिक रोगों में किया जाय। आचार्य सुश्रुत शल्य चिकित्सक थे अतः वह जानते थे कि शल्यक्रिया या वेदना की अधिकता के कारण प्रमुख अवयवों की तीव्र प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हृदय में संक्षोभ होकर प्राणोपघात हो सकता है। इस संक्षोभ की स्थिति को प्राप्त न होने देने के लिये हृदयावरण या हृदय की रक्षा की प्रक्रिया अन्य उपकर्मों के साथ ही करने से प्राणों के संकट का निवारण किया जा सकता है।

(२) मस्तिष्क संरक्षण—हृदय और मस्तिष्क दोनों ही अवयव महत्वपूर्ण हैं। हृदय से मस्तिष्क का भी पोषण होता है अतः हृदय की प्राथमिक रूप से रक्षा करते हुए मस्तिष्क का भी संरक्षण करना चाहिए। अत्यधिक रसक्षय या रक्तक्षय अथवा दाह या आघात आदि के कारण मस्तिष्क के कार्य में बाधा पड़ती है। भ्रम, मूर्च्छा, संन्यास उन्माद एवं प्रलाप आदि अनेक अवस्थायें मस्तिष्क की विकृति के कारण उत्पन्न हो सकती हैं। अतः मस्तिष्क संरक्षण को भी प्रमुखता दी जानी चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि मस्तिष्क में रक्त संवहन उचित मात्रा में बना रहे। इसके अतिरिक्त प्रबल वेदनाओं की अनुभूति न हो इसके लिये वेदनास्थापन (वेदना निवारण) के लिये उपयुक्त द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। प्रायः इस कार्य के लिये अवसादक द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है। उत्पन्न लक्षण के प्रतिकूल न हो तो निद्राकारक भावों का प्रयोग मस्तिष्क-संरक्षण के लिये सर्वथा उपयोगी है। क्योंकि निद्रा के आजाने से लक्षणों की तीव्रता में कमी आने के साथ-साथ वेदना का निवारण एवं धातुओं का पोषण होता है तथा धातुओं को बल प्राप्त होता है। आक्षेप, विसर्प, वमन, अतीसार एवं शूल आदि की तीव्र सांघातिक अवस्था में निद्राकारक द्रव्यों का उपक्रमों (अभ्यङ्ग, संवाहन आदि) से पर्याप्त लाभ प्राप्त होता है।

(३) वृक्क-संरक्षण—शरीर के रोग को दूर करने में या रोग का प्रतिरोध करने में रक्त का प्रमुख स्थान है। लेकिन इस प्रक्रिया में रक्त पर्याप्त मात्रा में दूषित होता है। सामान्य अवस्था में भी रक्त के दूषित तत्त्वों को मूत्र के रूप में बहिर्भूत करने वाले वृक्कों पर रुग्णावस्था में अधिक भार आ पड़ता है। क्योंकि रक्त के दूषित तत्वों को विशेष रूप से बहिर्भूत करके शरीर को विषमय होने से बचाना इन्हीं पर निर्भर है। अनेक संकट कालीन स्थितियों में वृक्कों के कार्य में बाधा होकर स्थिति और भी विकट हो जाती है तथा कई बार जलोदर, शोथ एवं विष प्रयोग आदि में प्रत्यक्षतः वृक्क का कार्यावरोध होकर भी संकटकालीन स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः ऐसी स्थिति में दो प्रकार के उपक्रम करने पड़ते हैं-(क) परो-

---

[1]—हृदयावरणं नित्यं कुर्याच्च विषमभ्यगः।
पिबेद् घृतमजेयाख्यममृताख्यं च बुद्धिमान्। सर्पिर्दधि पयः क्षौद्रं पिबेद् वा शीतलं जलम्। (सु.क.१/७९-८०)

रूप से वृक्कों को हानि पहुँचाने वाले हेतुओं का निवारण करने का प्रयत्न किया जाता है। प्रायः रक्त के दूषण को दूर करके इस स्थिति का निवारण किया जा सकता है। रसक्षय, एवं रक्तक्षय से होने वाले वृक्क कार्यावरोध को रस एवं रक्त की वृद्धि के द्वारा दूर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यदि तीव्र वीर्य औषधियों से उत्पन्न विष के कारण वृक्क के कार्यों में बाधा पहुँच रही हो तो इन औषधियों के प्रयोग को बन्द करके इनके विरुद्ध गुणयुक्त औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। (ख) प्रत्यक्षतवृक्कों का कार्यावरोध करने वाले रोगों का उनके चिकित्सा सिद्धान्तों के अनुसार निवारण करना चाहिये। मूत्रल भेषज तथा मूत्र विरजनीय भेषज के प्रयोग से मूत्र विषमयता (यूरीमिया) की स्थिति से बचा जा सकता है। रक्तमोक्षण एवं जलौकावचारण के द्वारा भी रक्तस्थ दूषिततत्त्वों का निर्हरण करके वृक्कों को सहायता प्रदान की जा सकती है। वर्तमानकाल में विकसित विधि 'डायलेसिस' (Dialysis) के द्वारा भी वृक्क के कार्य में सहायता प्रदान की जा सकती है। इस विधि से रक्तस्थ दूषित तत्त्वों का निर्हरण किया जाता है।

(४) फुफ्फुस-संरक्षण—रक्तसंवहन एवं संज्ञा चेष्टा संवह के साथ-२ श्वसन प्रक्रिया का भी समुचित रूप से बना रहना आवश्यक है। इस कार्य को प्रबुद्ध रूप से सम्पन्न करने वाले अवयव फुफ्फुसों को किसी भी संकट-कालीन स्थिति में बल प्रदान करते रहना चाहिए। इस कार्य के लिये विभिन्न उपयोगी द्रव्यों, योगों एवं उपक्रमों का समुचित प्रयोग होना चाहिये। यदि शरीर में श्वसन-प्रक्रिया समुचित न होने से आक्सीजन की कमी हो रही हो तो विकसित विधि से दक्ष चिकित्सक द्वारा आक्सीजन का प्रयोग करना भी सिद्धांत सम्मत ही है[1]। उपयुक्त अवसर आने पर कृत्रिम श्वास प्रक्रिया भी की जानी चाहिए।

ये प्रमुख अवयव हैं जिनका संरक्षण संकट-कालीन स्थितियों में अधिक महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त परिस्थिति के अनुसार अन्य अवयवों के संरक्षण की व्यवस्था भी करनी चाहिये।

५. हेतु निवारण—

सङ्कट उत्पन्न करने वाले हेतु (शल्य, विष या शोकजन्य स्थिति) का प्राथमिक रूपेण निवारण करने का प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि संकटोत्पादक लक्षणों या स्थिति का अनुवर्तन (पोषण) इन हेतुओं के द्वारा निरन्तर होते रहने से लाक्षणिक उपचार करते रहने पर भी संकट का निवारण नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त यदि प्राण संकट उत्पन्न करने में किसी धातु के क्षय अथवा अवयव की किसी हानि का हेतुत्व है तो उनका निवारण करने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि चिकित्सा में हेतु (निदान) वर्जन का होना परमावश्यक है। आचार्य ने इसकी स्पष्ट घोषणा की है—

"संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम्।"

६. वेदनास्थापन—

संकट-कालीन स्थिति में सर्वाधिक कष्ट शरीर में होने वाली विभिन्न वेदनाओं से होता है। अतः हेतु निवारण के साथ-२ यह प्रयत्न करना चाहिये कि रोगी की वेदना का यदि सर्वथा निवारण न भी हो सके तो भी तात्कालिक रूप से वेदना की कष्टदायी अनुभूति न हो इसकी अस्थायी व्यवस्था कर देनी चाहिए। आधुनिक चिकित्सक तो इसे प्राथमिकता प्रदान करते हैं। अतः सभी प्रकार की वेदनाओं में नाड़ीतन्त्र को अवसन्न करने के लिए विभिन्न अवसादक (Analgesic) औषधियों का प्रयोग करते हैं। चरक ने पञ्चाशत् महाकषायों की गणना में 'वेदनास्थापन' भी एक वर्ग रखा है जिसका तात्पर्य है, उत्पन्न वेदना को नष्ट करके शरीर को प्राकृत रूप में स्थित कर देना। यथा—'वेदनायां सम्भूतायां तां निहत्य शरीरं प्रकृतौ स्थापयतीति वेदनास्थापनम्।' (चक्रपाणि)।

सुख और दुःख की अनुभूति मन के सहयोग से ज्ञानेन्द्रियाँ करवाती है, अतः दुःखमूलक वेदना की अनुभूति भी इन्हीं के माध्यम से होगी। इसलिये मन सहित ज्ञानेन्द्रियों के अवजयन का प्रयास करना चाहिए। आचार्यों द्वारा कही गई सत्त्वावजय की प्रक्रिया यहां विधेय है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेदीय विधि से शुद्ध और संस्कारित, अधिक गुण एवं अल्पदोष युक्त विभिन्न अवसादक द्रव्यों (भाग,

[1]—सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्। (चरक)

गांजा, अफीम, कुचला, वत्सनाभ, धतूरा आदि) का युक्ति पूर्वक प्रयोग करके वेदना का निवारण किया जा सकता है।

७. धातु संरक्षण—

धातु शरीर का धारण करते हैं, इस धारण-क्रम में इनका निरन्तर क्षय होता है, जिसकी पूर्ति आहार के माध्यम से होती रहती है। कभी-२ किसी विशेष रोग में या विशिष्ट आगन्तुक कारणों से धातुओं का क्षय तीव्रगति से होने लगता है, जिसके परिणाम-स्वरूप प्राणों पर सङ्कट आ जाता है। किसी भी धातु का अत्यधिक क्षय होने पर दूसरे धातु भी प्रभावित होकर क्षीणता को प्राप्त होते हैं। यों तो किसी भी धातु का क्षय होना शरीर के लिये हानिकारक है फिर भी रस, रक्त और शुक्र का क्षय जब भी होता है तीव्रगति से होता है, अतः इनका क्षय अधिक प्राणघातक है। यदि इनकी स्थिति ठीक हो तो अन्य धातुओं के क्षय की न्यूनाधिक रूप में इनके द्वारा पूर्ति होते रहने से प्राणघातक, स्थिति शीघ्र नहीं आ सकती। अतः शरीर से निकलते हुये रस, रक्त एवं शुक्र को तत्काल रोकने के प्रयत्न करने चाहिये। यही नहीं रस और रक्त के स्वरूप में सर्वाधिक अंश जलीय है अतः वमन, अतिसार आदि में इसके अत्यधिक क्षय से रस और रक्त अत्यन्त प्रभावित होते हैं। इसलिए जलीयांश का संरक्षण और तर्पण क्रिया से शरीर में पूरण का प्रयत्न करना चाहिए। रस, रक्त, शुक्र और जलीयांश के संरक्षण और पूरण के साथ-२ अन्य धातुओं के संरक्षण और पूरण की व्यवस्था भी करनी चाहिये।

८. समुचित पोषण—

यद्यपि यह धातु संरक्षण का ही उपक्रम है, फिर भी इसके महत्व को देखते हुए इसका पृथक् उल्लेख किया जा रहा है। यह स्पष्ट है कि शरीर आने वाली व्याधियों और सङ्कटस्वरूपक लक्षणों के निवारण का स्वयं प्रयत्न करता है। इसके कारण शरीर के विभिन्न तत्त्वों का क्षय होता है तथा अनेक अवयवों में शिथिलता आजाती है। इसलिए ऐसी स्थिति में शरीर को अधिक पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है, लेकिन उसकी अग्नि में उतनी प्रखरता नहीं रहती कि वह गुरु, स्निग्ध एवं सान्द्र पदार्थों को पचा सके। साथ ही धातुओं और शरीरावयवों में भी इतना शैथिल्य और निष्क्रियता आ जाती है कि वे पोषण की लम्बी प्रक्रिया की प्रतीक्षा नहीं कर सकते। अतः रोगी एवं रोग की स्थिति को देखते हुए दीपन, पाचन, लघु, द्रव एवं पौष्टिक तत्त्वों से युक्त आहार का प्रयोग मात्रापूर्वक करें। जहां तक हो सके सौम्य एवं द्रवात्मक आहार को प्राथमिकता देनी चाहिए।

९. मल-विसर्जन—

दोष-दूष्य सम्मूर्च्छना की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप शरीर में मल-विसर्जन की प्रक्रिया बाधित होती है। अतः नियमित रूप से विसृष्ट होने वाले मल स्रोतस् में ही सञ्चित होने लगते हैं। इसके अतिरिक्त रोग के निवारण की प्रक्रिया में भाग लेने वाले धातुओं और अवयवों में इस प्रक्रिया के कारण मलस्वरूपक विविध विष सञ्चित होते रहते हैं। साथ ही कुछ शीघ्र प्रभावी तीव्र औषधियों के विष का भी सञ्चय होते रहने से शरीर मल का आगार बन जाता है। अतः ऐसे प्रयत्न करने चाहिये कि मूत्र, पुरीष एवं स्वेद आदि के माध्यम से अधिक से अधिक मल उत्सृष्ट हो जांय। इससे सङ्कट-निवारण में सहयोग मिलता है।

१०. अतिशीत या अति उष्ण स्थिति का निवारण—

स्वस्थ शरीर का एक नियत तापक्रम होता है जिसका नियन्त्रण प्राकृत दोष और धातुओं के सहयोग से शरीरस्थ विभिन्न अवयवों द्वारा होता है। यदि विकृतिवश शरीर में अतिशीत या अति उष्ण स्थिति आजाय तो उसका निवारण आभ्यन्तर प्रयोगों तथा वाह्य उपक्रमों द्वारा करना चाहिए। अन्यथा शीघ्र प्राणान्त हो सकता है।

११. सत्त्वावजय—

रोगी और रोग की चाहे जो स्थिति हो उसका मन अस्थिर एवं भयग्रस्त नहीं होना चाहिये। अतः अहित अर्थों (शब्द स्पर्शादि) से मन का सर्वदा निग्रह करना आवश्यक है।

उपसंहार—

१–शरीर में प्राणों की स्थिति का होना प्राथमिक है,

—शेषांश पृष्ठ ५६ पर देखें।

आदि काव्य में संकट कालीन चिकित्सा

वैद्यराज अम्बालाल जोशी आयु० केशरी

"वाल्मीकि रामायण में आयुर्वेद" ग्रन्थ के यशस्वी प्रणेता आयुर्वेद केशरी वैद्यराज अम्बालाल जी जोशी ने "आदिकाव्य में संकटकालीन चिकित्सा" का प्रकरण-खोज निकाला है जो उनकी अनुसन्धानात्मक प्रवृत्ति का प्रतीक है। आपकी विद्वता तथा स्वाध्यायशीलता आपके लेखों में पद-पद पर दृष्टिगोचर होती है। आपके अनुभवपूर्ण लेख आयुर्वेदीय पत्रिकाओं के पृष्ठों को सुशोभित करते रहते हैं। धन्वन्तरि पर एवं मुझ पर आपकी सदैव कृपा रही है। एतदर्थ हृदय से आभारी हूँ।

—गिरिधारीलाल मिश्र।
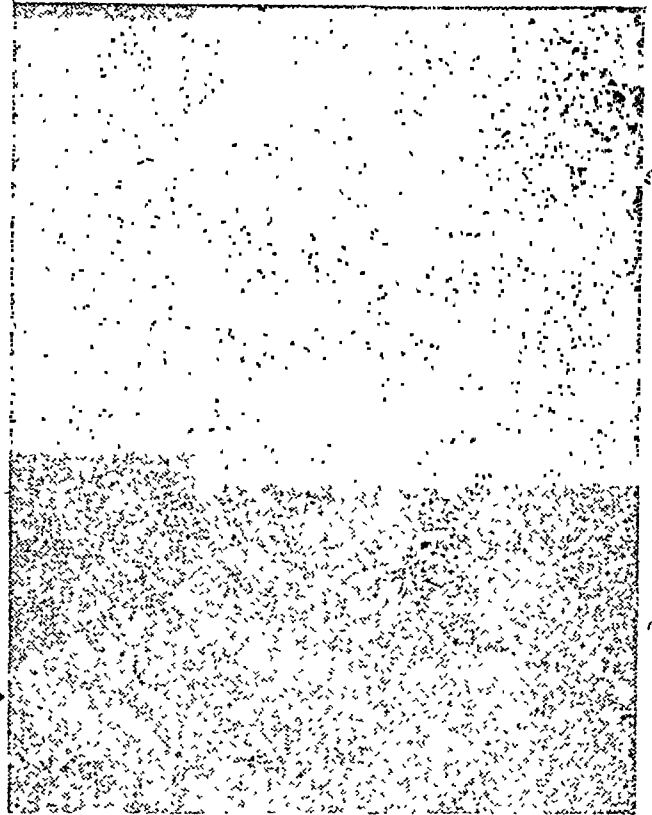
आदि काव्य वाल्मीकीय रामायण में युद्ध प्रकरण में राम वन गमन तथा विश्वामित्र ऋषि के यज्ञ रक्षण के प्रसंग में संकटकालीन उपचारों का वर्णन मिलता है।

वास्तविक बात तो यह है कि मानव जन्म के बाद से मृत्यु तक वह संकटों से मुक्त नहीं है और इसीलिये उसके जीवन प्रसंग में संकटकालीन चिकित्सा का उतना ही महत्व है जितना उसके अन्य जीवन वृत्तों का।

रामायण में यह प्रसंग दो प्रकार से आया है। प्रथम तो निकट आने वाले संकटों से रक्षा तथा दूसरा संकट आने पर उसका उपचार। यह उपचार तीन प्रकार से किया जाता था—प्रथम मन्त्रों द्वारा, दूसरा औषधियों द्वारा तथा तीसरा मन्त्रों तथा औषधियों द्वारा संयुक्त रूप से। इसमें औषधियों को मन्त्रों से शक्तिशाली बनाकर किया जाता था।

यह सुन कर कि श्री राम ऋषि विश्वामित्र के मख की रक्षा के लिये उनके साथ जा रहे हैं—माता कौशल्या ने आकस्मिक संकटों की रक्षा के लिए अपने पुत्र श्री राम के मस्तक पर अक्षत चन्दन और रोली लगाकर सिद्धि प्रदाता विशल्यकरणी नामक मन्त्रपूत शुभ औषधि लेकर उसे पढ़ते हुए श्री राम के हाथ में बांध दी। उसके गुणों

में उत्कर्ष लाने के लिये और मन्त्र पाठ किया ।[1]

इधर साथ ले जाते हुए मुनि विश्वामित्र ने भी श्रीराम को बला तथा अतिबला नामक प्रसिद्ध प्रभावकारी मन्त्र प्रदान किये । ये मन्त्र श्री राम को श्रम ज्वर (रोग तथा चिन्ता) तथा रूप विकृति आदि से बचाते रहते थे ।[2] इस मन्त्र के प्रभाव को बताते हुए मुनि ने राम को इसे निरन्तर जपते रहने का उपदेश दिया—

त्रिषु लोकेषु वा राम न भवेत् सदृशस्तव ।
बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव ॥
—अ० २२/१५

तात रघुनन्दन श्री राम ! बला तथा अतिबला मन्त्रों का पठन करने के बाद तीनों लोकों में तुम्हारे समान कोई नहीं रहेगा ।

सघन वन में अपनी कुटिया की रक्षा के लिए गज-कन्द (एणेय मान्सम्) नामक वनौषधि का लेपन किया ।

कैकय देश से अयोध्या की ओर जाते हुए भरत एल-ग्राम के पास बहने वाली नदी को पारकर आगे बढ़ते हुए आग्नेयकोण में स्थित शल्याकर्षण नामक देश में गये । यहां शरीर के शल्यों को निकालने के लिए औषधि उपलब्ध होती थी । यह देश इसी औषधि के दिव्य गुणों के कारण उसीके नाम से पुकारा जाता था ।[3]

इन्द्रजीत के साथ युद्ध करते हुए श्रीराम और लक्ष्मण मूर्छित हो गये । श्रीराम तो थोड़ी ही देर में आत्मशक्ति से सचेत हो गये परन्तु लक्ष्मण अचेत पड़े रहे । परन्तु उनके मुख मण्डल से ज्ञात कर विभीषण ने—'नरसेन्द्र हास्याते लक्ष्मी दुर्लभा' क्योंकि दुर्लभ लक्ष्मी ने वीर लक्ष्मण के मुख मण्डल का परित्याग नहीं किया इसलिए ये अभी जीवित हैं अतः इनका उपचार होना चाहिए कहा । वानर राज सुषेण ने जो सुग्रीव के श्वसुर होते थे ने अपना अनुभव सुनाया—देवासुर संग्राम के समय देवों को दैत्यों ने बुरी तरह से घायल कर दिया । देवों को अचेत होते देख कर देव गुरु बृहस्पति उन्हें मन्त्रोपचार द्वारा तथा दिव्य औषधियों के द्वारा सचेत करते थे ।[4] मेरा यह मत है कि उन औषधियों को सम्पाती और पनस सागर के तट से ले आवें । ये दोनों ही वानर वहां चन्द्र और द्रोण पर्वतों पर प्रतिष्ठित हुई वनौषधियों में से दो महौषधियों को जानते हैं— उनमें से एक का नाम संजीवकरणी तथा दूसरी का नाम विशल्यकरणी है जिसका आविष्कार स्वयं ब्रह्मा जी ने किया था । क्षीर सागर का मन्थन करते समय देवताओं ने उन दोनों ही पर्वतों को समुद्र के बीच में प्रतिष्ठित किया था ।[5]

दूसरी बार फिर मेघनाद के द्वारा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर सड़सठ करोड़ वानरों को हताहत कर दिया तथा श्री राम लक्ष्मण और सभी प्रमुख वानर वीर मूर्छित होकर गिर पड़े और मृत्यु के समीप पहुँच गये । जाम-वन्त ने विभीषण के द्वारा हनुमान को बुलाकर कहा—"हनुमान ! समुद्र के ऊपर-ऊपर उड़कर बहुत दूर का रास्ता तय कर तुम्हें पर्वत श्रेष्ठ हिमालय पर जाना है ।[6] वहां पहुँच कर तुम्हें स्वर्णमय ऋषभ और कैलाश पर्वतों के दर्शन होंगे । वीर ! उन दोनों पर्वतों के बीच एक औषधियों का पर्वत दिखाई देगा जो अत्यन्त ही दीप्तिमान है। उसमें इतनी चमक है जिसकी तुलना नहीं है। यह पर्वत सब प्रकार की औषधियों से सम्पन्न है ।[7] जिसके शिखर पर उत्पन्न चार औषधियां तुम्हें दिखाई देंगी जो अपनी

१—इति पुत्रस्याशिषश्च कृत्वा शिरसि भामिनी । गन्धैश्चापि समालेप्य राममायत लोचना ॥
औषधिं च सुसिद्धाया विशल्यकरणी शुभाम् ॥ चकार रक्षां कौशल्या मन्त्रमभिजजाप च ॥
२—मन्त्र तन्त्रौ गृहाणाद्य बलामतिबलां तथा । न श्रमो ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययम् ॥
३—आग्नेयं शल्याकर्षम् (अ. ७२।३)
४—तान्यार्तान् नष्ट संज्ञांश्च गत सूश्च बृहस्पति । विद्याभिर्मन्त्र युक्ताभिरौषधिभिश्चिकित्सति ॥ यु. ५०।२८
५—हरयस्तु विजानन्ति पर्वतो ते महौषधीम् । संजीवकरणी दिव्य विशल्यां देव निर्मितम् ॥ यु. ५०।३०
६—हिमवन्त नगश्रेष्ठ हनुमत गन्तु मर्हसि । यु. ७४।२९
७—तयोःशिखरयोर्मध्ये प्रदीप्त मतुल प्रभम् । यु. ७४।३१

प्रभा से दशों दिशाओं को प्रकाशित किये रहती हैं। उनके नाम हैं—मृत संजीवनी, विशल्य करणी, सुवर्ण करणी तथा संधानी। ये चारों महौषधियां हैं।[1] तुम उन सब औषधियों को लेकर लौटो और वानरों को प्राण दान दो।

उपरोक्त औषधियों के नाम से ही उनके गुणों का ज्ञान हो जाता है। मृतसंजीवनी—मूर्छित व्यक्तियों को पुनर्जीवन देने वाली, विशल्य करणी-देहगत शल्यों को निकाल कर देह को विशल्य बना देने वाली, सुवर्ण करणी शरीरगत कष्टों को मिटाकर देह को व्रण रहित बना देने वाली तथा सन्धानी अस्थिभग्न को तत्काल ठीक कर देने वाली थी। चारों ही औषधियां दिव्य यानि अचूक तथा सद्यःप्रभाव कारी थी। वे औषधियां यह जान कर कि उन्हें कोई लेने आया है अदृश्य हो जाती थीं।[3] हनुमान उस सम्पूर्ण पर्वत को ही उखाड़ कर ले आये।[2] उन औषधियों की सुगन्ध लेकर दोनों ही राजकुमार श्री राम और लक्ष्मण स्वस्थ हो गये। इसी प्रकार दूसरे वानर भी स्वस्थ होगये।[4] हनुमान जी ने उस पर्वत को वापिस उसी स्थान पर स्थापित कर दिया।[5]

मेघनाद का वध कर आये लक्ष्मण के घाव श्रीराम की आज्ञा से सुषेण ने औषधियां सुंघा कर भर दिये। औषधि सूंघते ही लक्ष्मण के शरीर में घुसे बाण निकल गये और उनकी सारी पीड़ा जाती रही[6] अन्य सभी वानर, रीछ वीर भी हर्षित होकर उठ बैठे।[7]

रावण के युद्ध करते हुए शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण मूर्छित हुये। श्रीराम शोक से व्याकुल हुए। सुषेण ने आश्वासन देते हुए कहा आपके भाई शोभावर्धन मरे नहीं हैं। ऐसा कहते हुए उन्होंने लक्ष्मण के शारीरिक आशा-वर्धक लक्षण बताये। पुनः हनुमान महौषधि पर्वत पर भेजे गये।[8] हनुमान ने दक्षिण शिखर पर उगी चारों औषधियों को पर्वत सहित उठालिया और सुषेण के पास जा कर रख दिया। सुषेण ने उन औषधियों को उखाड़ कर[9] कूट पीस कर उनका रस लक्ष्मण की नाक में टपका दिया[10] और लक्ष्मण पुनः स्वस्थ होकर उठ बैठे।[11]

उपरोक्त प्रसंग में रामायण काल में उपलब्ध कुछ दिव्य औषधियों का नामोल्लेख किया गया है। ये औषधियां निश्चय ही आज पहचानी नहीं जा रही हों फिर भी उस समय तो उनकी प्रभावकारिता दिव्यता असन्दिग्ध थी। वे औषधियां (संकटकालीन) थीं—

(१) गजकन्द (एणेय मांसम) (२) शल्यकर्षण (३) विशल्य करणी (४) बला (५) अतिबला (६) संजीवनी (मृत संजीवनी) या संजीव करणी (७) सुवर्ण करणी (स्वर्ण करणी) (८) सन्धानी या सन्धानकरणी (९) सोम (शाप निवर्तक) (१०) अमृत (११) मोहिनी।

उपरोक्त युद्ध प्रसंगों के अतिरिक्त विषों का उल्लेख तथा उनका निवारण भी रामायण में बताया गया है जो आकस्मिक संकट ही माना जावेगा। इसमें हलाहल विष, तीक्ष्ण विष, मारक विष, उग्र विष, अत्यन्त उग्र विष, अमृत संयुक्त विष का नामोल्लेख प्रमुख हैं। इनमे अधिकांश विषों का उपयोग भोजन द्वारा, पेयों द्वारा ही किया जाता था। विषों में बुझे शर या अन्य शस्त्रों का प्रयोग

१—मृत संजीवनी चैव विशल्यकरणीमपि। सवर्ण्यकरणी चैव सन्धानकरणी तथा॥ पृ. ७४।३३

२—आलुप्य तं औषधि पर्वतेन्द्रं ततोषधीनां विचयं चकार। पृ. ६२

३—सर्वे समुत्पाट्य उत्पत्य मात। पृ. ७४।६८

४—गन्धेन तासां प्रवरौषधीनां सुप्ता निशान्तेष्विव संप्रबुद्धा। ७४।७४

५—ततो हरि गन्ध वहात्महंस्तु तमौषधि शैलमुदग्रवेगः।

६—स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्य समपद्यत। तदा निर्वेदनश्चैव य संरूढ व्रणस्तिथा॥ पृ. ९१।२५

७—ततः प्रकृति मापन्नो हृतशल्यो गतक्लमः। शोणिति प्रमुदे तस्मिन विगत ज्वर॥ पृ. ९१।२७

८—सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतेहि महोदयं। पृ. १०१।३०

९—सुषेणो वानरः श्रेष्ठो जग्रा हौत्पाट्य चौषधीः। पृ. १०१।४२

१०—ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीन्वानरोत्तमः। लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेण सुमहा द्युति। पृ. १०१।४४

११—विशल्यो विरुज शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात्॥ पृ. १०१।४५

भी विष प्रभावकर या मारक बताया गया है। एक बार यह भी कहा गया है कि रावण द्वारा विष वाण श्री राम को स्पर्श कर निर्विष हो जाते थे। इनका निवारण भी मन्त्रों द्वारा तथा औषधियों द्वारा किया जाया करता था। स्थान-स्थान पर विभिन्न प्रकार के सर्पों के विष प्रभावों का भी उल्लेख किया गया है। उनकी जाति भी बतायी है।

यह सर्व सत्य बताया गया है कि विष का प्रतिकार अमृत ही है। अमृत का प्रभाव सर्वथा विष से विपरीत है। यह भी बताया गया है कि क्षीर सागर मन्थन के बाद सारा बचा हुआ अमृत इन्द्र के यहां सुरक्षित रक्खा गया था जिसे गरुड ने वहां जाकर चुरा लिया (अरण्य)। गरुड स्वयं एक सुप्रसिद्ध विष चिकित्सक थे। वे अमृत के संजीवक चमत्कारी प्रभाव से पूर्ण परिचित थे। इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर उन्होंने अमृत को वहां से चुराया। अमृत मृत को जीवित करने की तथा जीवित को अमर कर देने वाली अत्यन्त ही प्रभावकारी दिव्य औषधि है। जिसे देवों और असुरों के विज्ञ वैज्ञानिकों ने मिलकर ज्ञान सागर का मन्थन कर सहस्त्रों वर्षों के परिश्रम के बाद प्राप्त किया। यह परिचर्या आज एक गाथा मात्र बनकर रह गई है।

उपरोक्त प्रसङ्गों से पृथक रामायण में मानसिक उद्वेगों का वर्णन भी किया है तथा उसकी चिकित्सा भी बताई है। उदाहरणस्वरूप श्री राम तथा लक्ष्मण को मूर्छित अवस्था में मृत समझ कर सुग्रीव शोक मोहित होकर अर्ध चेतन अवस्था में भूमि पर गिर पड़े। तब विभीषण ने उनके नेत्रों को अपने भीगे हाथों से पोंछा तथा उनके मुख पर ठंडे जल के छींटे मारे "ततो स्यल्कि नेत्र" तथा "सलिलमादाय" जिससे सुग्रीव चेतन हुए। यु. २८।८

मानसिक उन्माद रोग का उल्लेख करते हुए उनके वेग काल में अगरु चन्दन का लेप बताया गया है। संभवतः यह पित्तोन्माद की चिकित्सा हो।

मूढ गर्भ की संकटकालीन चिकित्सा करते हुए शल्य चिकित्सा गर्भस्थ शिशु के टूक-टूक कर बाहर निकाल देता है।[12] ऐसा सीता जी ने मुख से बताया है।

अचेतन व्यक्ति को चेतन करने के लिए ठंडे जल (पद्म उत्पल-कमल की सुगन्ध से पूरित कर) मुख पर छिड़कने का विधान भी बताया गया है।

मृत्यु के मुख में गये हुए लक्ष्मण जहां इन औषधियों से स्वस्थ हुए वहां स्वयं के आत्मबल से भी चेतना में आये ऐसा रामायण में उल्लेख है। युद्धस्थल में रावण के प्रहार से लक्ष्मण अस्वस्थ हो कर मूर्छित हो गये। रावण ने उन्हें उठाने का प्रयास किया परन्तु वे उठे नहीं। लक्ष्मण ने भगवान विष्णु के अचिन्त्य रूप से अपना चिन्तन किया—

विष्णोरमीमांस्य भागमात्मनं प्रत्यनुस्मरत्।

यु० ५९।११२

इस चिन्तन से लक्ष्मण को छोड़कर यह शक्ति रावण के रथ पर पुनः लौट आई। लक्ष्मण तुरन्त ही भगवान विष्णु के अचिन्तनीय अंश रूप का चिन्तन कर स्वस्थ और नीरोग होगये। यह आत्मबल का स्मरण एवं प्रयोग था और इसीसे लक्ष्मण जी ने स्वास्थ्य लाभ किया। संकट के समय में जब कभी रोग-निवारक औषधि प्रयोग उपलब्ध न हो तो प्रभु स्मरण का बल ही रोग निवारक होता है।

रामायण में मानसिक संकटों के लिये निम्न प्रयोग बताये हैं। (१) मलयानिल (स्वस्थकर तथा श्रमहर) (२) सोमलता-पापनिवारक तथा मानसिक विकार शामक (३) बला तथा अतिबला (बुद्धि, ज्ञान, चातुर्य) तथा सौमञ्जस्य और वाक् पटुता में वृद्धि करने वाला (४) उत्तम आभरण (५) विशल्यकरणी (सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली) तथा अन्तिम (६) स्वयं रामायण (निरामयं विशोकश्च)। (आयुष्या रोग्यकरा काव्यम्)

उपरोक्त आधार पर यह कहा जा सकता है कि रामायण में आयुर्वेदीय ग्रंथ होते हुए भी, संकटकालीन चिकित्सा के अनेक प्रसंग भरे पड़े हैं जिनमें से कुछ का संकलन यहां किया जा सका है।

★★

१२—तस्मिन्नागच्छति लोकनाथे गर्भस्य जन्तोरिव शल्य कृन्त ॥ यु. २८।६

योगीराज शिव द्वारा पार्वती के मानस पुत्र गणेश का सिर काट डालने पर शल्य वैद्यों ने गजशावक की गर्दन को काटकर गणेश के धड़ में जोड़ दिया और उन्हें मरने से बचा लिया। दक्ष प्रजापति की, गर्दन कट जाने पर शल्य वैद्यों ने बकरे की गर्दन काटकर उनके धड़ में जोड़ दिया और उनको मृत्यु के महान सङ्कट से बचा लिया। वृद्ध च्यवन ऋषि का जब षोडसी सुकन्या से विवाह हो गया तो अश्विनीकुमार (द्वय) शल्य वैद्यों ने उन्हें रसायन (च्यवनप्राशावलेह) आदि सेवन कराकर युवा बना दिया। युद्धों में सैनिकों के हाथ, पैर, कटि, वक्ष या धड़ कट जाने पर सन्ध्या को युद्ध समाप्ति की वेला में शल्य वैद्य उनकी चिकित्सा करके नये-२ हाथ पैर या धड़ का निर्माण कर देते थे और दूसरे दिन वे ही सैनिक पुनः युद्ध में लड़ने को जाते थे। सर्प दंष्ट्र, कीट दष्ट्र या अलर्क विष प्रविष्ट होने पर चिकित्सक मन्त्र एवं सिद्ध औषधियों से उनकी सफल चिकित्सा करते थे।

प्राचीन काल में शल्य कर्म द्वारा कटे ग्रीवा का सन्धान, मन्त्र द्वारा सर्प, वृश्चिक एवं पागल कुत्ते, गीदड़ की विष का निराकरण, कटे पैर का पुनर्निर्माण, शुक्राचार्य की संजीवनी प्रक्रिया द्वारा मरे व्यक्ति को पुनर्जीवित करना, देवताओं के गुरु आचार्य वृहस्पति पुत्र का कच को असुरों द्वारा पीसकर और उसे मद्य में मिलाकर शुक्राचार्य (असुरों के गुरु) को पिला देने पर भी जिस किसी भी तरह संजीवनी विद्या द्वारा कच को पुनर्जीवित करना तथा कटे चिड़े उदर में शुक्राचार्य के मृत होने पर कच द्वारा उनको भी पुनर्जीवित करना आदि ऐसे अनोखे गोपनीय किन्तु गौरवशाली संकटकालीन चिकित्सा कर्म योगायुर्वेद शोध प्रेमी आधुनिक रिसर्च स्कालरों के लिए प्रेरणा विन्दु हैं।

प्राचीन एवं अर्वाचीन ज्ञान सम्पन्न शल्य चिकित्सा विशेषज्ञों ने इन प्रेरणा विन्दुओं पर अहर्निश गहनतम शोध कार्य किये हैं और कर रहे हैं। इस सन्दर्भ में जो औषधि, मन्त्र एवं विशिष्ट साधना-विधि पकड़ में आये हैं वे हैं एक दिन प्रातः धूप, दीप, पान, सुपारी, जौ, तिल रोरी से अभिषिक्त कर निमन्त्रण दे आना तथा दूसरे दिन पूजा, अर्चना कर अमृता, अपामार्ग, पाषाणभेद, विशल्य-करणी, निम्ब, निर्गुण्डी, शरपुंखा, विल्व पत्र, कृष्ण तुलसी, भृङ्गराज, आंवला, द्रोणपुष्पी, कालीमिर्च शुण्ठी, हरीतकी आदि के प्रयुज्य अङ्ग को ले आना तथा इन औषधि द्रव्यों का क्षार एवं सत्व (सूचना—शुण्ठी, हरीतकी कालीमिर्च अपवाद हैं—क्योंकि ये बाजार में पंसारी से मिलते हैं), पञ्च वर्षीय बालकों का ताजा मूत्र, काष्ठ कोयला चूर्ण, शास्त्रोक्त विधि विधान से निर्मित मृतसंजीवनी सुरा आदि औषधियां, ॐ भूर्भुवः आदि गायत्री मन्त्र एवं मूलाधार (गुद मार्ग) और स्वाधिष्ठान (जननेन्द्रिय) के मध्य स्थित कुण्डलिनी को उड्डियान, खेचरी, महाबन्ध आदि प्रक्रिया से प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में जाग्रत कर सहस्रार (मस्तिष्क) तक पहुँचाना और धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा उसे वहां स्थिर रखना।

साधन की यह प्रक्रिया यों तो बोलने में बहुत सरल है किन्तु साधने (करने) में महा कठिन। इसमें संयम नियम का पालन, ब्रह्मचर्य व्रत धारण तथा प्रत्येक दिन ब्रह्ममुहूर्त में नित्यकर्म एवं स्नान से निवृत्त होकर एकान्त एवं शांत कक्ष में या खुले आसमान के नीचे नियमित रूप से करना अति अनिवार्य है। योग साधना की प्रक्रिया में प्रायः संजीवनी (अमृत) का शोध कर लिया गया है किन्तु औषधि में इस प्रकार की शोध प्रायः अभी तक अधूरी है, फिर भी वैज्ञानिक शोध में अहर्निश कार्यरत हैं। आर्थिक कमजोरी शोध का मार्ग रुद्ध किए हुए है।

सङ्कटकालीन अर्थात् आपत्तकालीन अवस्था में आचार्य

सुश्रुत से निम्न प्रेरणा प्रदान की है। यदुक्तं 'सुश्रुत संहिता' ग्रन्थे—

"अति पातिषु रोगेषुनेच्छेद विधिमिमां भिषक्।
प्रतप्तागारवद् शीघ्रं तत्र कुर्यात् चिकित्सितम्॥"

अभिप्राय यह है कि आपत्कालीन अवस्था में पूर्व कर्म आदि के बिना ही मनुष्य की प्राण-रक्षा के लिए ठीक उसी प्रकार तत्काल चिकित्सा-कार्य पूर्ण करना चाहिए जिस प्रकार गृह में आग लगने पर आग बुझाने के लिए तत्क्षण सभी सम्भव प्रयास किये जाते हैं।

चरक संहिता में भी यत्रतत्र आपातकालीन अवस्था में सामान्य चिकित्सा सिद्धान्त रेखा का उल्लंघन कर मनुष्य की प्राणरक्षा के लिए तत्काल फलप्रदायिनी आशुगुणकारी चिकित्सा-कार्य करने की मन्त्रणा दी गई है। चूंकि अनेक स्थलों पर सूत्र रूप में इनका उल्लेख है अतएव इस संक्षिप्त लेख में उन सबका उद्धरण देना असम्भव है।

रसायनाचार्य नागार्जुन ने 'अल्प मात्रोप योगित्वाद रूचेर प्रसंगतः, क्षिप्रमारोग्य दायित्वादोष धिम्योऽधिको रसः।' उक्ति से सङ्कटकाल में पारद मिश्रित विभिन्न रस औषधियों को प्रयोग करने का उल्लेख किया है जो आशुगुणकारी के साथ-साथ बहुत अल्प मात्रा में सेवनीय एवं निरापद होती थीं।

शार्ङ्गधर संहिता में मूर्च्छित व्यक्ति को उठ खड़ा करने के लिए लघु सूचिकाभरण की कल्पना की गई है। यदुक्तं—'रक्तभेषजसंपर्कात् मूर्च्छितोऽपिहि जीवति' (शा. पू० मध्य खण्ड, अ० १२)।

"रसेन्द्रसार' ग्रंथ में सङ्कटकालीन अवस्था में रस-चिकित्सा को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यदुक्तं—

"अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेर प्रसङ्गतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादोषधिभ्योधिको रसः॥"

रस-रसायन ही नहीं दिव्य काष्ठौषधियां भी सङ्कटकालीन अवस्था में चमत्कारिक लाभ दिखलाती हैं। यदुक्तं—ज्वरंहन्तिशिरोबद्धा सहदेवी जटा यथा।"

'रस रत्न समुच्चय' ग्रन्थ में मूर्च्छा, सर्पविष, संन्यास, सन्निपात आदि भयङ्कर सङ्कटकालीन अवस्था में "दाप-सूचिकाग्रेण सर्वेषां सन्निपातिनाम्। सूच्यग्रेण दातव्यं पंच [illegible] जलेनच।" उक्ति द्वारा सूई की नोक में औषधि को भरकर अन्तः प्रविष्ट करें तो शीघ्र लाभ होने का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन समय में सन्निपात व्याधि से ग्रस्त रोगी या सर्पदंष्ट्र व्यक्ति के सिर में काकपद यन्त्र से काकपदाकार क्षत निर्माण कर आशुगुणकारी औषधि (सूचिकाभरणौषधि) सूई की नोक से वहां रख दी जाती थी परिणामस्वरूप वह अन्दर प्रविष्ट होकर सीधे रक्त के सम्पर्क में आकर समस्त शरीर में प्रसारित हो जाती थी जिससे वह रोगी शीघ्र आरोग्य लाभ करता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि सङ्कटकालीन अवस्थाओं में आशुकारी औषधि की आवश्यकता होती है।

सङ्कटकालीन चिकित्सा के लिए आवश्यक है कि चिकित्सक के कार्य एवं औषधियां आशुगुणकारी हों। सकटकालीन चिकित्सक तो निरन्तर अभ्यास के द्वारा शीघ्रातिशीघ्र कार्य करने में समर्थ हो सकते हैं, किन्तु किसी औषधि की गुणकारिता के लिए यह आवश्यक है कि उसमें सूक्ष्म (Penetrating) व्यवायी (Readily assimilable) और (Rapidly acting) आशुगुण वर्तमान हों सूक्ष्म गुण के कारण औषधि सेवन करते ही अथवा रक्त के सीधे सम्पर्क में अन्तः क्षेपण द्वारा आते ही गहनतम अवयवों और धातुओं में प्रविष्ट हो जाते हैं यथा—कृष्ण सर्प विष, कालीमिर्च, द्रोणपुष्पी पत्र-मूलत्वक् क्षार आदि। व्यवायी गुण के कारण औषधि शरीर में शीघ्र शोषित होकर जाठराग्नि के द्वारा पाचन की प्रतीक्षा नहीं करके ओष्ठ, गाल, मुख, आमाशय आदि अन्नवह स्रोतस प्रणाली की श्लैष्मिक कला द्वारा शीघ्र ही शोषित होकर सीधे रक्त में पहुँच जाती है और अपनी क्रिया प्रारम्भ कर देती है। जठर (आमाशय) में पहुँचे शेष औषधि का पाक बाद में होता रहता है। यदुक्तं सुश्रुत संहिता ग्रंथे—

"व्यवायि चाखिलं देहं व्याप्य पाकाय कल्पते।"
(सु० सू० ४६)

आशु गुण का अभिप्राय है कि औषधि अधिष्ठान में पहुँच कर शीघ्र ही अपनी क्रिया दिखलाने लग जाय। इन गुणों के साथ तीक्ष्ण गुण का रहना आशुकारी कर्म में और भी तीव्रता ले आता है। द [illegible] कारण है कि रस-भस्म, मद्य, दिव्य वनौषधि के साथ विष को भी अतिसूक्ष्म मात्रा में आशुकारी औषधि के रूप में स्वीकार किया गया है।*

आत्ययिक स्थिति

आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी

आचार्य विश्वनाथ जी द्विवेदी आयुर्वेद जगत के ख्याति प्राप्त लेखक चिकित्सक एवं अनुसन्धानक हैं। एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित तथा २०० से अधिक अनुसन्धानात्मक महानिबन्धों के निर्देशक हैं। भगवान धन्वन्तरि से आपके दीर्घायु की कामना करते हैं। आप 'धन्वन्तरि' के "सन्दिग्ध वनौषधि विशेषांक" का लेखन-सम्पादन कर चुके हैं।

—गिरिधारीलाल मिश्र।

आयुर्वेद जीवन विज्ञान है। यह चिकित्सा सम्बन्धी सब प्रकार के विचार देता है, चाहे यह आतुर परायण हो या स्वस्थ परायण हो। आपात चिकित्सा के विषय का भी बहुत ही स्पष्ट और गंभीर विवेचन किया है। प्रत्येक रोग की साध्य और असाध्य लक्षण इसीका विवेचन करता है। इसमें असाध्य चिकित्सा का वर्णन मूलतः आपात चिकित्सा या इमरजेंसी का ही है। बहुत से लेखकों का विचार है कि इमरजेंसी का विचार आयुर्वेद में नहीं है। सुश्रुत व वाग्भट्ट ने आपात चिकित्सा को इमरजेंसी की संज्ञा दी है। नियतमरण चिन्हों का जो वर्णन है वह चिकित्सकों के लिए आपत्ति सूचक है। किस रोग में क्या लक्षण होते हैं वह चिकित्सक के लिए कब आत्ययिक रूप धारण करेगा यह वर्णन किया है।

आज की आपात स्थिति जो विचार है वह मार्मिक रोगों की क्रिया हानि होने की स्थिति पर निर्णय किया जाता है। क्योंकि शरीर धारक वस्तु (शारीरिक दोषों) का विचार कर किया जाता है। इसका आधार कोई सोचता नहीं।

प्राचीन चिकित्सकों ने शरीरधारक तत्वत्रय का ज्ञान बहुत पहिले ही गंभीर अध्ययन के बाद किया था। वह तीन धारक तत्व शरीरोदक[1] (श्लेष्म द्रव्य), शरीराग्नि[2] (पित्त तत्व) व शरीर गति[3] चेष्टाप्रदायक (वात तत्व) थे। इनकी मात्रा समान बनी रहे तो शरीर सक्रिय रहता है अन्यथा निष्क्रिय या मृत हो जाता है। अतः रोग की परिभाषा में—

रोगस्तु धातु वैषम्य, धातु साम्यमरोगिता। माना था और 'धातु साम्य क्रिया चोक्ता तंत्रस्यास्य प्रयोजनम्' का उद्बोध किया था।

पुनर्वसु आत्रेय ने कहा था कि ३ मर्म प्रधान हैं। यों तो शरीर में १०८ मर्मस्थल (Vital place) हैं। इनमें तीन प्रधान हैं। शिर, हृदय और वस्ति[1]।

हृदय—यह शरीर का सर्वश्रेष्ठ अङ्ग (महत) महान अङ्ग मानकर वर्णन किया है। यह हृदय दो

१—श्लेष्मा उदक कर्मणा शरीरं धारयति। २—पित्त आग्नेय कर्मणा शरीरं धारयति।

३—वायुः प्रवर्त्त चेष्टाणां गति कर्मणा शरीरं धारयति। —सुश्रुत।

१—सप्तोत्तरं मर्म शतं यदुक्तं, शरीर संख्या मधिपत्तेभ्यः।
मर्माणि बस्ति, हृदयं शिरश्च प्रधान भूतानि वन्दति तज्ज्ञः॥ —चरक २६

प्रकार का है। (१) पर हृदय (२) अपर हृदय। पर हृदय मस्तिष्क है।

षडंग भंग विज्ञानं, इन्द्रियाण्यर्थ पंचकम्।
आत्मा च सगुणश्चेतः, चिन्त्यं च हृदि संस्थितम्॥

यह हृदय षडङ्ग का विशिष्ट ज्ञान स्थल है। पंच ज्ञानेन्द्रियों का अर्थ (ज्ञान) आत्मा का स्थान व चेतना का स्थान मन और चिन्त्य वस्तु का स्थल है। इसके ऊपर आघात होने पर मूर्च्छा व छिन्न-भिन्न होने पर या क्रिया विघात होते ही मरण हो जाता है।

अपर हृदय—रक्तवाही हृदय है। जो रक्त संवहन करता है, सारे शरीर को रक्त प्रदान करता है। शरीर पोषण करता है। पर्याय—अर्थ, महत्, हृदय[1] है।

यह दोनों शरीर के महान प्रदेश हैं। पर हृदय का स्थान[3] शिर है। यह सार्व विज्ञान का आयतन्त्र है। इसमें शरीर स्पर्श विज्ञान, स्पर्शनेन्द्रिय का स्थान है। यह ओज का स्थान (शक्ति) है। यहीं चैतन्यता का स्थान है। इसकी संज्ञा महदर्थ है। स्थल शिर या उत्तमांग है।

अतः आत्ययिक स्थिति में हृदय की रक्षा करना प्रधान कर्त्तव्य है। रक्तवाही हृदय के दोषापन्न होते ही पर हृदय की क्रिया का विघात होता है और बेहोशी होती है। मद, मूर्च्छा, संन्यास, अतत्वाभिनिवेष भ्रम मनस्तापादि रोग हो जाते हैं।

३. वस्ति—वस्ति से मूत्र संग्राही वस्ति (Urinary bladder) का ज्ञान सब करते हैं। वस्ति से वस्ति-शिर (वृक्क) का ज्ञान नहीं होता। वस्ति शब्द से पूरे वस्ति (मूत्र संस्थान) का ज्ञान लेना चाहिए। यह प्रधान मर्म है। वृक्क के विगुण होते ही रक्तवाही संस्थान के विगुण होते ही परहृदय विगुण होता है। वृक्क के विगुण होते ही रक्तवाही हृदय विगुण हो जाता है। इसके विगुण होते ही पर हृदय की क्रिया पर प्रभाव पड़ता है। यह रक्तगत दोषों को निकाल कर हृदय की रक्षा करता है। इसकी क्रिया में हानि होते ही रक्त में यूरिया आदि भयंकर हानिकारक पदार्थ शरीर में रक्त द्वारा फैलकर शरीर को रोगी बनाते हैं।

इसमें लगा उपबृंहक पित्त तत्व का उष्णता प्रबन्धक का कार्य करता है। यह हृदय की गति नियामक भी है और हृदय की क्रिया में चिन्त्य विषय पर विचार्य क्रिया में भी सहायक है। अतः शरीर मन व आत्मा का पोषक है अतः इसका नाम 'साधक' पित्त का आधार है। यह मूत्र का उत्पादक और वस्ति मूत्र प्रकोष्ठ है। अतः जब जब इसकी क्रिया बन्द होती है या कम होती है तो नाना प्रकार के रोग भीषण बहुमूत्र, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राभाव आदि रोगों से शरीर को पीड़ित होते देखते हैं। क्रिया हानि होने पर भयंकर रोग यूरीमिया हो जाता है।

यह तीन मर्म प्रधान मर्म हैं शिर, हृदय व वस्ति।

आत्ययिक स्थिति में इनमें शिर के उपर प्रभाव पड़कर संज्ञा-चेतना की हानि होती है। इससे मद, मूर्च्छा व संन्यास हो जाता है। तम भ्रम संज्ञानाश होकर मनुष्य चेतना रहित हो जाता है। हृदय के ऊपर प्रभाव पड़कर रक्त संवहन में परिसरीय रक्तसंवहन की अल्पता, हाथ पैर की शीतता आदि लक्षण होते हैं। रक्तस्राव होकर रक्त हानि, दौर्बल्य, मस्तिष्क में रक्त पोषणाभाव होकर मृत्यु हो जाती है। वस्ति की क्रिया हानि से रक्त में दूषित वस्तु पहुंचना और हृदय की क्रिया को विगुण करना होता है। शरीर पोषक लवणादि (एलेक्ट्रोलाइस) की कमी हो जाती है। मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात व मूत्रनिरोध मूत्रक्रिया हानि होती है। इस प्रकार आत्ययिक हालत में सर्वप्रथम इन तीनों मर्मों की रक्षा करना, कम हुए का को पूरा करना, अधिक कार्य से होने वाली क्रिया (विकृति क्रिया) को रोकना, समक्रियाओं की रक्षा कर समत्व लाना है।

यदि रक्त की कमी है तो रक्तक्षेपण, यदि रक्ताधिक्य है, रक्तभार वृद्धि है तो उसे कम करना, क्षय है तो बढ़ाना और विगुण स्थिति को सम लाना है।

१—अर्थे दशमहामूला सिरा सक्ता महाफला। महच्चार्थं च हृदयं पर्यायैः रुच्यते बुधैः॥ —च० सू० ३०-१
२—यद्धि तत्स्पर्श विज्ञानं, धारियं तत्र संश्रितम्। तत् परस्यौजसः स्थानं तत्र चैतन्य संग्रहः॥ —च० सू० १७-१८
३—प्राणाः प्राणभृतां यत्राश्रिता सर्वेन्द्रियाणि च। तदुत्तमांगमंगानां शिरः तदभिधीयते॥ —च० सू० १७-१२
४—साधकं हृदगतं प्राणः

चिकित्सा के इस महान सूत्र—

याभिः क्रियाभिः जायन्ते शरीरेधातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां, कर्मतद्भिषजां स्मतम् ।।
—चरक ।

"क्षीणावहृतितव्या, वृद्धाह्रास यितव्या, समापालनीया:", इस पर क्रिया विधियों को करके "धातु साम्य्-क्रियाचोक्ता तंत्रस्मास्य-प्रयोजनम्" । इस पर ध्यान देना चाहिए । धातु साम्य क्रिया ही सर्वमान्य क्रिया है । जो लोग यह समझते हैं कि इन्जेक्शन नया आविष्कार है वे नितान्त भ्रम में हैं।

प्राचीन शल्य शास्त्रियों ने शिरावेध, सिराताड़न (एक्यूपंचर) और अग्निकर्म क्षार कर्म का निर्देश किया है । वह इन्जेक्शन की क्रिया नहीं जानते थे ? रक्तक्षय होने पर रक्तभरण नही करते थे । रक्तभार (मद्) की वृद्धि का ज्ञान नहीं था यह प्रलाप मात्र है ।

हाँ, कुछ नये साधन, यन्त्र [एक्सरे] आदि परिवर्धित रूप में आये है । आत्ययिक स्थिति तब आती है जब रोगी का हृदय कार्य करने से विरत हो जाता है या रक्त अधिक निकल जाता है या रोगी बेहोशी की हालत में हास्पिटल पहुँचता है अथवा असाध्यावस्था मे आतुरालय लाया जाता है या यों कहिए कि हृदय रक्त संवहन क्रिया, मस्तिष्क की संज्ञा संवहन क्रिया विलुप्त होने लगती है या विकृत हो जाती है । तभी आपत्तिजनक लक्षण या क्रिया हानि होती है और चिकित्सक को आत्ययिक स्थिति में डाल देती है । एतदर्थ इन्द्रिय स्थान में वर्णित ज्ञान पर ध्यान देकर तब चिकित्सा की जाती है । उदाहरणार्थ रक्तातिप्रवृत्ति या विसंज्ञता में, हृत् कार्यावरोध में की स्थिति ।

रक्तस्राव में अधिक रक्तस्राव से कई व्याधिया लग जाती हैं । महर्षि सुश्रुत का कथन है कि रक्तातिप्रवृत्ति से—

'तदति प्रवृत्तं शिरोभितापमांध्यमधिमंथं तिमिरप्रादुर्भावम्, धातुक्षयाक्षेपकं, दाहं, पक्षाघातं मेकाग विकारं, हिक्काश्वास कासो, पाण्डु रोग, मरणं चापादयति ।' —सु. सू. अ. १४–३०

अर्थात् रक्त के अधिक निकल जाने पर रक्तक्षय से शिरोऽभिताप (संपीडन) अंधता, अधिमंथ, तिमिर, धातुक्षय, आक्षेप, दाह, पक्षाघात, एकाङ्गघात, हिक्का, श्वास, कास, पाण्डु रोग और मृत्यु तक हो जाती है ।

रक्त ही जीवन है, रक्त ही सब धातु पोषक है ।

देहस्यरुधिरं मूलं, रुधिरेणैवधार्यते ।
तस्माद्यत्नेन संरक्ष्य, रक्तं जीव इति स्थितिः ।।
—सुश्रुत

अतः रुधिर संवहन में त्रुटि, रक्तसंवाहक हृदय कार्य त्रुटि, धातुक्षय की स्थिति, आपात स्थिति शरीर में उत्पन्न हो जाती है और चिकित्सक को एक आपत्ति की स्थिति में डाल देती है । अतः सुश्रुत का कथन है कि—

रसज पुरुषं विद्यात, रसंरक्षेत् प्रयत्नतः ।
अन्नात्पानाच्च महिमाना चाराच्चदिप्यतेन्द्रितः ।।

अतः चिकित्सक को निराश रूप होकर पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए । इसके उपक्रम में पथ्य से (अन्न से), पान से (द्रव वस्तु पिलाकर) अन्य आचारों से उसकी रक्षा करनी चाहिए । अन्य आचार, काकपदाङ्कन, सूचीवेधन, (त्वगीय या मांसगत या शिरा द्वारा भरण) आदि अन्य चिकित्सकीय आचारों द्वारा रक्षा करनी चाहिए ।

१ पाण्डु रोग में या रक्तपित्त में या अन्य रोगों में रक्तपान, रक्तभरण तक का निर्देश दिया है । अतः सूची द्वारा वेधन (त्वगीय, मांसगत, शिराभरण) आश्चर्य व्यक्त न कर इसको सूचीवेधन का अङ्ग मानना चाहिए । यह कोई वैद्यों के लिऐ नया विषय नही है । जिस विज्ञान ने मुख द्वारा द्रव व अन्न को क्षेपण परासाधा और चिकित्सा में वस्ति चिकित्सा का आविष्कार किया उनकी सन्तान स्टमक ट्यूब द्वारा पोषण (द्रव्य) को नया आविष्कार माने आश्चर्य होता है । त्वरीय कार्य करके संज्ञा में लाने का जिस चिकित्सा प्रणाली ने उपदेश दिया उसका अनुयायी वैद्य आत्ययिक स्थिति मे निरीह होकर सूचीवेध द्वारा (इस्ट्रावेनस) चिकित्सा को नई पद्धति कहे, आश्चर्य का विषय है । रसभरण रक्तभरण (ग्लूकोज विद नोर्मल) को नया आविष्कार कहे यह आश्चर्य नहीं तो क्या है ?

याभिः क्रियाभिः जायंते शरीरे धातवः समाः ।

रक्त कम होने पर रक्तभरण, रस कम होने पर

रस भरण या ग्लूकोज भरण, शरीर में द्रव कम होने पर द्रव (नार्मल सेलाइन) भरण का स्पष्ट निर्देश है। वह क्रिया जिनसे शरीर के धातु पूरे हो, (रक्तौघ भरण) शिरागत भरण, वायु भरण (Oxygen therapy) या अन्य क्रिया हो, इन न जाने वो अत्र द्वारा अनुसंधानित हैं। अतः ये नवीन नहीं हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि सूत्र के प्रति संस्कार करने वाले महोदयों ने यह छोड़ दिया है या छूट गये हों। वाग्भट ने कहा है—

व्यापदां कारणं जीवयन्व्यापत्स्वेतासु बुद्धिमान।
प्रयते तातु रारोग्ये ग्रत्यजीकेन हेतुना।

—वाग्भट

नातिपातिपुरोगेषु वेच्छेत विधिनिर्मलिकक्।
प्रदीप्तागारवच्छीघ्रं तत्र कुर्यात् प्रतिक्रियाम्॥

आत्ययिक शब्द का प्रयोग—

शिराव्यध में शिरा का भेद—अतिशीत, अतिउष्ण, अतिवात (आंधी इत्यादि) व बादल रहने पर शिराव्यध नहीं करना चाहिए। यहां पर आत्ययिक रोग को छोड़ कर कहा है।

नातिशीतोष्ण वाताभ्रेष्वत्ययिकात् जहात्॥

—अ. हृ. सूत्र अ. २७–६

यहां पर संकटकालीन नहीं कहा है। आत्ययिक रोग को छोड़कर लिखा है। संकटकालीन आपने गढ़ा है। आत्ययिक शब्द ही रखिये। आत्ययिक शब्द Emergency के लिए प्रयुक्त है।

रक्त के अधिक नाश होने पर ओज धातु जो द्रव रूप में सारे शरीर में रहता है, नाश हो जाता है। उसके क्षय से तत्काल बल का नाश हो जाता है। ओज का स्वरूप बतलाते हुए उसका स्वरूप वर्णन किया है।

ओजः सोमात्मकमस्निग्धं, शुक्लं शीतं स्थिरं परम्।
विविक्त मृदु मृत्स्नं च प्राणायतनमुत्तमम्।

इसके क्षय होने से शरीर भिन्न-२ अवयवों में संग्रहीत यह उदक रूप ओज क्षय होता है। यह तीन प्रकार का है—१. विस्रंस, २. व्यापत, ३. क्षय।

इसके क्षय को धातु या मलक्षरण पर यह बनते हैं।

१. विस्रंस—सन्धि शैथिल्य, गात्रकम्प, दोषच्यवन क्रिया सन्निरोध, बहु क्षारण क्षय है। इसे सामान्य सब कहते हैं,

२. व्यापद—१. इसमें स्तब्ध गुरु गात्रता (Heaviness), २. वात शोथ (Inflamation), ३. वर्णभेद, ४. ग्लानि (Nausea), ५. तन्द्रा (ड्राउजीनेस), निद्रा होता है।

३. क्षय—१. मूर्च्छा, २. मांस क्षय।

४. मोह, ५. प्रलाप, ६. मरण तक हो जाता है।

इस प्रकार ओजःक्षय की पूरी संज्ञा शाक (Shock) से मिलती जुलती है। इस प्रकार व्यापत और विस्रंस की हालत शोक का लक्षण लेता है और मरण तक हो जाता है। इमरजेंसी की चिकित्सा में यही ध्यान देना चाहिए।

पृष्ठ ४६ का शेषांश

इस स्थिति के उपरांत ही अन्य उपक्रम और योग-प्रयोग सम्भव है; अतः किसी भी तरह प्राणों का संरक्षण करना चाहिए।

२–प्राण संरक्षण ही प्रमुख उद्देश्य होने से सङ्कटकालीन चिकित्सा के लिये कोई सिद्धांत नियत नहीं हैं, फिर भी प्राण संरक्षण में सहायक कुछ उपक्रमों का प्रयोग उपयोगी रहता है। अतः उन्हें संकट कालीन चिकित्सा का अंश मान कर प्रयुक्त किया जाता है, इसलिये सिद्धांत रूप में उनका वर्णन अनुचित भी नहीं है।

३–प्राण के प्रमुख आयतन विशिष्ट मर्मों, अवयवों और धातुओं का संरक्षण सङ्कट-निवारण क्रम में प्रमुख रूप से किया जाता है।

४–प्रधान हेतु का निवारण और तीव्र वेदनाओं का प्रशमन या अवसाद के कारण अनुभूति न होने देना भी इस स्थिति में उपयुक्त रहता है।

५–समुचित पोषण और मलों का विसर्जन नियत रूप से करते हुए शरीर के 'धारि-स्वरूप' को बनाये रखा जा सकता है।

इन सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए कोई भी आयुर्वेदज्ञ किसी भी स्थिति का सामना करके संकट का निवारण कर सकता है।

वैद्यराज श्री वेनीमाधव अश्वनी कुमार शास्त्री आयुर्वेद के मर्मज्ञ उच्चकोटि के विचारक हैं। आप ग्वालियर के शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय के कायचिकित्सा विभागाध्यक्ष तथा जीवाजी विश्वविद्यालय की आयुर्वेद फैकल्टी के 'डीन' पद पर प्रतिष्ठित प्रथम आयुर्वेदज्ञ हैं जिन्हें मध्य प्रदेश के महामहिम राज्यपाल महोदय का मानद चिकित्सक होने का गौरव प्राप्त है। आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए आपके सहयोग के प्रति आभार प्रकट करते हैं। —विशेष सम्पादक।
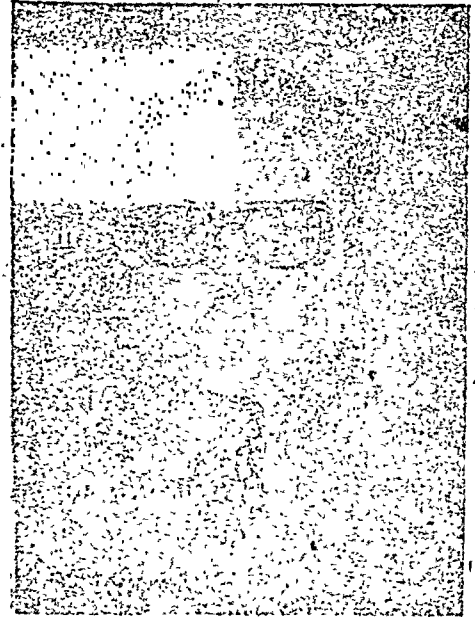
यद्यपि दोष वैषम्य के अनुसार आयुर्वेदिक चिकित्सा सिद्धान्त-हेतु विपरीत चिकित्सा, व्याधि विपरीत चिकित्सा तथा उभया विपरीत चिकित्सा के रूप में स्थापित किये गये हैं। इन सिद्धान्तों की मान्यता प्रयोग एवं परीक्षण सिद्ध होकर आज भी मान्य है। हेतु विपरीत चिकित्सा का यथार्थ मूल है। किंतु—दोष के बलाबल से उत्पन्न व्याधि स्वरूप भी कभी-२ अवस्था के अनुसार चिकित्सा का आधार बनाया जाता है। ऐसी ही अवस्था सङ्कटकालीन चिकित्सा कहलाती है। माडर्न मेडीसिन में इसे Emmergency treatment कहते हैं। यद्यपि माडर्न मेडिसिन की चिकित्सा शैली एवं ड्रग्स के दुष्परिणामों से आज एमरजैन्सी ट्रीटमेन्ट का क्षेत्र व्याधियों के अतिरिक्त भी बहुत विस्तृत होगया है। वैद्यों को स्मरण होना चाहिए कि एण्टीबायटिक्स, हार्मोन्स तथा अन्य कृत्रिम रासायनिक औषध द्रव्यों का दुष्प्रभाव प्रतिक्रिया (Reaction) रूप में प्रायः देखा जाता है। इस स्थिति में संकटकालीन चिकित्सा की अत्यावश्यकता अनुभव की जाती है।

शारीरिक रोगावस्था जिसमें मूलतः शरीर की रचना एवं क्रियाओं की विकृति पाई जाती है, उनकी संकटकालीन चिकित्सा सीमित हो सकती है। किन्तु वर्तमान युग में औद्योगिक दुर्घटनायें, रासायनिक द्रव्यों के दुष्प्रभाव, विभिन्न विषैली गैसेज, धुंआ, रङ्ग, पैट्रोकैमीकल्स, सड़क यातायात दुर्घटनाओं का समावेश करने से तथा विषों के प्रभाव को सम्मलित करने पर संकट कालीन चिकित्सा बहुत बड़ा विषय बन गया है। आज के प्रत्येक पद्धति के चिकित्सक को उसका समुचित ज्ञान सैद्धान्तिक एवं

व्यवहारिक रूप से होना परमावश्यक हो गया है। अतः आयुर्वेदिक दृष्टि से वर्तमान युग में किस स्थिति तक हम संकटकालीन चिकित्सा में योगदान कर सकते हैं वह प्रस्तुत किया जा रहा है।

आयुर्वेदीय संकटकालीन चिकित्सा के आधार—

यद्यपि प्रत्येक विज्ञान की अपनी आधारभूत शैली के अनुसार ही चिकित्सा सारणीका निर्णय होता है तथापि रोग की दशा के समय हेतु विपरीत होता है। व्याधि प्रभाव जब उग्र संकट (Acute Condition) उत्पन्न कर देता है तब व्याधि विपरीत चिकित्सा का मुख्य विचार होता है। शारीरिक व्याधियों (Diseases due to internal causes) के लिये आयुर्वेदीय आत्ययिक चिकित्सा अपने विविध रूपों में कार्यकर होती देखी गई है। आज भी आयुर्वेदिक चिकित्सा के लिये आभ्यन्तर प्रयोग हेतु केवल मुख मार्ग ही एक मात्र मार्ग व्यवस्था है। सूचीवेध क्रम आयुर्वेद में ग्राह्य नहीं है। मूर्च्छित रोगियों में या संज्ञानाश की दशा में नस्य प्रयोग–अंजन विधि–तथा सूचिका भरण प्रयोग निर्देशित हैं।

मूर्च्छा (unconciousness) तथा संज्ञानाश (Coma) की दशा में संज्ञा स्थापन द्रव्यों का प्रयोग करने का विधान संहिताकाल से ही प्रचलित है। रसौषधि युग में इस प्रयोग हेतु बहुत अनुसंधान हुए तथा नये त्वरित लाभकर द्रव्य निर्मित हुए। इनमें सूचिकाभरण रस का नाम उल्लेखनीय है।

संज्ञाप्रबोधनार्थ—प्रधमन नस्य, कट्फल नस्य, श्वास-कुठार रस नस्य, प्रमुख योग व्यवहार में लाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त निम्न योग भी प्रचलित हैं—

मातुलुङ्गादि नस्य, मधूकसार नस्य, सैंधवादिनस्य, लशुनादिनस्य, षड्ग्रन्थादिनस्य, आर्द्रकादिनस्य, सन्निपात ज्वर चिकित्सा में कहे गये योग सुगम एवं सद्यःपरिणाम कारक हैं।

अंजन रूप में—कुक्कुटाण्ड जल प्रयोग, शिरीषाअंजन पतंगविष्ठादिअंजन, तथा अनेकों वर्ति प्रयोग संज्ञाप्रबोधन कराते हैं। किसी भी रोग की दोष दूष्य सम्मूर्च्छनाजनित अवस्था में मूर्च्छा-सन्यास होने पर उक्त संज्ञाप्रबोधन कार्य कराने के बाद मुख्य रोग की औषधि का प्रयोग यथासंभव त्वरित सद्यःफलदायक अनुपान और उग्रवीर्य द्रव्य युक्त औषधि के रूप में आरम्भ करना चाहिये।

संज्ञानाश के बाद संज्ञावान् रोगी में पाई जाने वाली आत्ययिक दशा के लिए अवस्था विशेष के सम्मुख त्वरित लाभकर उपायों का सविधि उल्लेख पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। सभी प्रयोग शास्त्रोक्त हैं।

अश्मरी शूल सहित मूत्रकृच्छ्र—(१) पञ्चगुण तैल का अभ्यंग (२) सेक दें (अवगाह सेक विशेष लाभकारी है) (३) गोखुरू का क्वाथ यवक्षार प्रक्षेप के साथ थोड़ी-२ मात्रा में आधा-२ घण्टे से कोष्ण दिया जाय।

अर्श भ्रंश जन्य गुद शूल—(१) हजारा गेंदा की पत्ती तथा समान भाग भांग की पत्ती पीसकर घी में सेककर उपनाह स्वेद दें। (२) अवगाह स्वेदन करावें। रात्रि में कोष्ठ शोधनार्थ (३) एरण्डभृष्ट हरीतकी चूर्ण गर्म दूध से दें।

पित्ताश्मरीशूल (वमिसहित)—(१) कोकिलाक्ष (तालमखाने) का क्षार २५० मि.ग्रा. बार-२ नीबू की शिकञ्जी या ताजा अनार के रस या नारियल के पानी से दें। (२) शंखवटी १-१ गोली गर्म जल से दें।

यकृच्छूल—(१) एलुआ+लालफिटकरी पीसकर वृन्ताक (बैंगन के) रस में गाढ़ा पीसकर गर्म कर लेप करें, हल्का सेंक दें। (२) उड़द के आटे की रोटी बनाकर एक तरफ से सेककर कच्ची तरफ एरण्ड तैल चुपड़कर बांधें।

आनाह (आंत्रगत), शूल, पुरीषवातनिरोध, आम संचय—(१) शूलवज्रणी वटी ५०० मि. ग्रा. १ लौंग के साथ पीसकर आर्द्रक स्वरस गर्मकर मिलाकर दें। ऐसी ३ मात्रा आध घण्टे से दें। (२) पञ्चगुण तैल उदर पर लगाकर गर्म जल के पुटक (Hotwater Bag) से सेक दें। (३) गर्म जल एवं शीतल जल की पट्टी उदर पर बार-२ क्रमशः रखें। (४) शंखवटी १-१ गोली गर्म जल से आधा-२ घंटे से दें। (५) कर्पूरार्क, ३-३ बूंद शर्करा जल में डालकर दें। (६) नीबू चीरकर आधा नमकीन आधा मीठाकर सेक कर चूसने को दें।

हिक्का—(१) मयूर पिच्छ भस्म १२५ मि.ग्रा., छोटी पीपल का चूर्ण १२५ मिग्रा. मिलाकर शहद से २-३ मात्रा २-२ घण्टे के अन्तर से दें। (२) स्वर्णसूतशेखर १२५ मि.ग्राम १-१ घण्टे से ३ बार दें। (३) शिवाक्षार पाचन १॥

ग्राम मात्रा में दो बार गर्म जल से भी (४) ... मुंह में मिश्री रखकर आचूषण करने से भी लाभ होता है।

श्वास वेग (तमकश्वास)—(१) श्वासचिंतामणि रस १२५ मि. ग्रा. खमीरा बनफ्शा के साथ दें बार-बार। (२) मुक्तापञ्चामृत १२५ मि.ग्रा., खमीरा आवरेशम सादा के साथ बार-२ दें। (३) स्फटिका भस्म १२५ मि. ग्रा. शहद से बार-२ दें। (४) पुष्कर मूल चूर्ण ५०० मि. ग्रा. सिद्ध मकरध्वज ६५ मि. ग्रा. मिलाकर मधु से १-१ घण्टे के अन्तर से दें। (५) चन्दनबला लाक्षादि तैल गर्मकर सैंधानमक डालकर उभयवक्ष पार्श्व एवं पृष्ठ पर प्रयोग करें। (६) गर्म जल थोड़ा-२ बार-२ पीने को दें। (७) दूध उबालकर उसकी वाष्प सुंघाने से भी त्वरित लाभ होता है।

वमि (किसी भी रोग में)—(१) खताई जहरमोहरा पिष्टी २५० मिग्रा. मात्रामें बार-बार शहद से। (२) स्वर्ण सूतशेखर १२५ मि.ग्राम मात्रा में बार बार शहद से (३) ग्लूकोज १ ग्राम, सोडाबाईकार्ब ५०० मि. ग्राम मिलाकर यूंही चूसने से लाभ होता है। ( ) बड़ी इलायची के बीज का चूर्ण ५०० मि.ग्राम शहद के साथ बार बार दें। नीबू का स्वरस शक्कर डाल पकाकर बार बार चाटने से।

तीव्र संताप (ज्वर)—(१) पादतल पर घृत अभ्यंग (२) मुक्तापिष्टी १ रत्ती शहद या खमीरा गावजुबां के साथ कई बार (३) पुटपक्व विषमज्वरान्तक लौह १ रत्ती मात्रा में लवङ्ग चूर्ण १ रत्ती के साथ मधु से कई बार। (४) षडंगपानीय बनाकर ठण्डाकर बार-बार देने से (५) शीतपट्टिका प्रयोग।

तीव्रकास—(१) कालीमिर्च १ रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती मिलाकर २-३ बार शहद से (२) समशर्करचूर्ण १॥ ग्राम दिन मे ३-४ बार शहद से (३ शुद्ध टंकण २ रत्ती बार बार शहद से ४) दालचीनी चूर्ण १ रत्ती, मुलेठी घनसार ४ रत्ती शहद में मिलाकर।

वक्षशूल (हृदय)—(१) मृगश्रृङ्ग भस्म २ रत्ती, मकरध्वज स्वर्णयुक्त १ रत्ती कई बार खमीरा मरवारीद के साथ (२) पुष्करमूल चूर्ण ४ रत्ती, रससिंदूर १ रत्ती कई बार शहद से (३) पृश्निपर्णी २ तोला को कुचलकर क्षीरपाक विधि से पकाकर २-३ बार (४) रसराज रस १ रत्ती शहद से कई बार।

वक्षशूल (अम्लशूल) आमाशय व्रण—१. अविपत्तिकर चूर्ण १॥ ग्राम २-३ बार जल से। २. चूने का पानी १० एमएल आधा कप मीठे दूध में डालकर २-३ बार ३. नारिकेल लवण २ रत्ती जल से १-१ घण्टे से ४. स्वर्णसूतशेखर रस १ रत्ती २-३ बार शहद से।

बहुमूत्र—१. पुष्पधन्वारस १ रत्ती दो बार शहद से २. विडंगारिष्ट २० एमएल २ बार भोजन के बाद ३. हल्दी चूर्ण, चन्द्रप्रभावटी १/२-१/२ ग्राम २ बार जल से।

गृध्रसी शूल—१. शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण, शुद्ध टंकण चूर्ण १-१ रत्ती २ बार मलाई से २. वातकुलान्तक रस १ रत्ती, हिंग्वाष्टक चूर्ण १ ग्राम, सर्पगन्धा घन वटी १ रत्ती २ बार गर्म जल से।

विश्वाची शूल—१. बृहत्वात चिन्तामणि रस १ रत्ती, मुलेठी चूर्ण ४ रत्ती, वातगजांकुश-रस १ रत्ती ३ बार गर्म दूध से।

शिरःशूल वमि सहित—१. प्रवालपंचामृत १ रत्ती २-३ बार मधु से २. जहरमोहरा खताई पिष्टी २ रत्ती २-३ बार मधु से ३ सोडाबाईकार्ब १० ग्रेन जल से।

शिरःशूल (अर्द्धावभेदक)—१. गोदन्तीभस्म, श्रृङ्गभस्म, कपर्दभस्म २-२ रत्ती, ३ मात्रा पेड़ा या बरफी के साथ निराहार प्रातः २. सैंधवलवण जल में घोलकर नस्य।

शिरःशूल (नेत्राभिष्यंद)—१. नेत्र पर मलाई का उपनाह स्वेद २. मातृस्तन्य नेत्रबिंदु बारबार डालें ३. रसौत, केशर, कपूर को पीसकर शंख प्रदेश में लेप करें। ४. कोष्ठ शोधनार्थ मृदुविरेचन दें।

कर्णशूल—१. वचारसोनादि तैल गर्मकर डालें।

दन्तशूल १ कर्पूरार्क स्पर्श करें।

रक्तपित्त ऊर्ध्वग (ष्ठीवनवमि)—१. कामदुधा (मुक्तायुक्त) स्वर्णगैरिक चूर्ण २-२ रत्ती २-३ बार शर्बत उन्नाव से . मुक्तापंचामृत १ रत्ती २-३ बार शहद से ३. वासारिष्ट बबूलारिष्ट २०-२० एमएल मिलाकर २-३ बार।

नासा रक्तस्राव—१ मातृस्तन्य नाकमें डालें २. दूर्वा स्वरस का नस्य दें ३. शिर पर गीली मिट्टी की पट्टी रखें।

—शेषांश पृष्ठ ६६ पर देखें।

आयुर्वेद में सद्यःलाभकर चिकित्सा के सिद्धान्त, द्रव्य व उपकरण

श्री मदनगोपाल वैद्य (चरक रहस्य प्रकाशिका के लेखक), आरोग्यधाम आयुर्वेद विद्यालय, फैजाबाद (उ.प्र.)

—:o:—

चरक रहस्य प्रकाशिका के यशस्वी लेखक वैद्यराज मदनगोपाल जी आयुर्वेद के मर्मज्ञ विद्वान हैं। आशुफलप्रद चिकित्सा में सन्तर्पण-अपतर्पण सिद्धान्तों का बड़ा सटीक विवेचन प्रस्तुत करते हुए आपने संकटकाल में आशुफलप्रद सफल विधियों का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। —विशेष सम्पादक।

अति प्राचीन काल से ही सद्यः लाभकर चिकित्सा के बीज-चिकित्सा सिद्धांत उपक्रम व द्रव्य के रूप में यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं। सन्तर्पण-अपतर्पण चिकित्सा के दो मुख्य सिद्धान्त का अति उत्कर्ष रूप में विकास रसायन, वाजीकरण तथा काया कल्प के रूप में हुआ। १० सेर भक्षै रोगिया १० नारी लपटाय। वृद्धवति तरुण होत है कहत तो गोरख राय। इन रसायन प्रयोगों से इन्द्रिय शक्ति, वल बुद्धि मेधा आयु आदि की भी अभिवृद्धि की जाती है थी और अब भी की जा सकती है। रोगियों को ३०-४० सेर दुग्ध प्रयोग करते हुए चिकित्सक हम लोगों के जीवन में मौजूद थे। राज घरानों के चिकित्सक अद्भुद् शक्तिवर्धक औषधियों के निर्माणहेतु मशहूर थे। ताजे फल, शाक, धारोष्ण दूध, सद्यःमांस ताजा घृत ये सद्यः प्रभावकारी माने गये हैं। यथा—

> सद्यगोमांस नवं चान्नं वाला स्त्री क्षीर भोजनम्।
> घृतमुष्णोदके स्नानं सद्यः प्राणकराणि षट ॥
>
> —भावप्रकाश

भारतीय राजाओं के युद्ध में सद्यःलाभकर चिकित्सा के कौशल सेना के चिकित्सक करते थे। राणा सांगा के शरीर में ८० घाव की कथा प्रसिद्ध है पर चिकित्सक उन्हें अपने कौशल से चिकित्सा चमत्कार दिखाते थे। राजा के चिकित्सकों में महान परीक्षक होते थे जो दिव्य भोजन बनवाते थे। भारतीय रजवाड़े बहु पत्नी वाले चिकित्सकों की वदौलत हुआ करते थे। सद्यः वलवीर्य प्राप्त करने हेतु मुख मैथुन का विकास हुआ। मुख से शिश्न चूषण से वीर्यपात होने पर मुखमैथुन करने वाले को सद्यः वीर्य प्राप्त होता था जिसे वह घूटक कर पी लेता था और उसे इस से कई गुना शक्ति प्राप्ति होती थी। जीवनीय आयुष्य द्रव्यों की ऋषियों ने खोज की और उसका प्रयोग कर यशस्वी हुए। विटामिन इनके आगे बिल्कुल तुच्छ हैं।

कभी-२ ऐसे आत्ययिक रोगी आते हैं कि उनका निदान भी पूरा नही हो पाता पर रोगी को सद्यः शान्ति देनी होती है। इसीसे चरक ने कहा है—कि विकारनामा कुशलो न जिह्रीयात् हि कदाचन्।··· ···

> तस्माद्विकार प्रकृतीराधिष्ठानान्तराणि च।
> समुत्थान विशेषांश्चबुद्ध्वा कर्मसमाचरेत् ॥
> यो ह्येतत् त्रितय ज्ञात्वाकर्माण्यारभते भिषक्।
> ज्ञानपूर्वं तथा न्यायं स कर्मसुनमुह्यति ॥

सद्य लाभकर चिकित्सा के लोभ में विषों का प्रयोग करने लगे। रोगी को वेदनाविहीन बनाने हेतु निद्राजनक औषधि का प्रयोग होने लगा। आयुर्वेदज्ञ अपने शास्त्र को भूलकर सलाइन इन्फ्यूजन ग्लूकोजपोषण, ब्लडट्रांसफ्यूजन के फेर में पड़ गये। अपने शास्त्र दिव्य उपक्रम होते हुए भी आधुनिकों के फेर में पड़ गये। अपने पास अच्छे से अच्छे उपचार होते हुये हम उनके प्रयोग को भूल गये और इन्जेक्शन व पेंसलिन आदि हानिकर मार्गों को ग्रहण कर लिया। ब्लडप्रेशर के प्रवाह में बहुत चिकित्सक बह गये। अब वैद्यगण नासमझी से ऐसा कहने लगे हैं कि आयुर्वेदिक दवा देर से असर करती हैं। ऐसा सुनकर दुःख होता है।

सद्यःलाभकर चिकित्सा का सिद्धान्त आयुर्वेद में इतना परिपुष्ट है कि तुरन्त आप उसे मान लेंगे। सद्यःलाभकर चिकित्सा के कई सिद्धान्त अनेक उपक्रम व

प्रचुर द्रव्य शास्त्रों में वर्णित हैं। सद्यःलाभकर चिकित्सा के अतिरिक्त आयुर्वेद में अति आश्चर्यजनक चिकित्सा विधानों का पृथक विधान है जहाँ अभी आधुनिक विज्ञान की पहुँच नहीं। आयुर्वेद बिना पाश्चात्य उपचार के प्रयोग के अपने सिद्धान्तों द्वारा, अपने उपक्रमों द्वारा, अपने द्रव्यों द्वारा सद्यःलाभकर चिकित्सा करने में पूर्णतः सक्षम है।

इन सिद्धान्तों, उपक्रमों व द्रव्यों के वर्णन के पूर्व कुछ निरीक्षण परीक्षण विश्वास पैदा करने हेतु जानने आवश्यक हैं—

आरोग्यसाधन के निरीक्षण परीक्षण—

स्वस्थ मनुष्य को आहार-विहार के द्वारा उसकी आवश्यकता की पूर्ति की जाती है। भूख प्यास प्रकृति के सबसे बड़े निदेशक हैं। प्यास लगने पर तरल पेय द्रव्य जलादि तथा भूख लगने पर यथारुचि आहार दिया जाता है जिससे शरीर की आवश्यकता की पूर्ति सद्यः होती है। मनुष्य को जाड़े में धूप में बैठना या अग्नि सेवन रुचिकर होता है। गरमी में शीतल स्थान की तलाश होती या कृत्रिम शीतल वातावरण की व्यवस्था पंखा चलाकर, खस की टट्टी लगाकर की जाती है जिससे व्यक्ति को शान्ति मिलती है। गर्मी के मौसम में पहाड़ों पर सम्पन्न लोग विसर्ग विलास करते हैं।

आहार सेवन से प्रत्येक व्यक्ति को मलमूत्र का त्याग नियमित रूप से करना पड़ता है। १० इन्द्रियों के मल नियमित रूप से निकलते रहते हैं। इन मलों के आधार पर चिकित्सक १००% सफल यशस्वी चिकित्सक बन सकता है और मल निःसरण प्रक्रिया की विकृति दूर करके मल को प्रकृत दशा प्रदान की जा सकती है। जिनको त्रिदोष चिकित्सा कठिन मालूम पड़ती होवे वे मल चिकित्सा विधान से सफल व यशस्वी चिकित्सक बन सकते हैं। १० इन्द्रियों के १० प्रकार के मल हैं जिन सबका निरीक्षण करना होता है। वैद्य के लिये मानव काया सबसे बड़ी प्रयोगशाला है जिसके सही शुद्ध उपयोग से सभी रोग निश्चित रूप से सिद्ध होते हैं।

चिकित्सा में उष्ण शीत का प्रयोग—

जाड़े के मौसम में हमें गरम कपड़ा सेवन करने लगते हैं। गरम आहार विहार से परम शान्ति मिलती है। गरमी के मौसम में शीतल उपचार, शीतल जल, शीतल पेय, शीतल पंखा से सद्यः शान्ति मिलती है। गरमी में विवाह (बारात) में कोकाकोला जैसे शीतल पेय पिलाये जाते हैं।

यूनानी चिकित्सा में शीत उष्ण—१. सर्द २. गरम ३. स्निग्ध (तर) ४. रूक्ष (खुश्क). ये ४ शब्द यूनानी के प्राण हैं। इन चार गुणों में ही सब गुण समाविष्ट माने जाते हैं।

आयुर्वेद में इन ४ शब्दों में से केवल २ की महिमा कही गई है जिनका नाम शीत उष्ण है। शेष दो को स्निग्ध-रूक्ष उष्ण का परिणाम माना जाता है। शीत का कार्य संतर्पण करना या विसर्ग कर्म करना है। उष्ण आदान कर्म या अपतर्पण करना है। इसके अतिरिक्त वैद्यक में वायु की गति की महिमा अति विशाल रूप से मानी गई है। वायु की गति दिशा भेद से पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में उत्तर, दक्षिण, पूरब, पच्छिम ४ प्रकार की है। पर उत्तरी गोलार्ध में यह हवा पूरब उत्तर एक साथ चलती है जिसे पूरबी हवा कहते हैं। दक्षिण पच्छिम वायु एक साथ चलती है जिसे पछुवा हवा कहते हैं। पूरब पछुवा वायु के भेदों को वनस्पति वैज्ञानिक कृषि वैज्ञानिक मानता है और उनकी बल महत्ता को स्वीकार करता है। इसी प्रकार गर्मी सर्दी तथा वायु गति के प्रभाव को विज्ञान पूर्ण रूप से मानता है पर दुर्भाग्य से ऐलोपैथी नहीं मानता है।

गर्मी सर्दी शीत उष्ण के मिश्रण से वायु की उत्पत्ति—

यह नित्य का अनुभव है कि गर्मी सर्दी के मिश्रण से गर्मी सर्दी का जो संघर्ष होता है उससे वायु की उत्पत्ति होती है। तवे पर रोटी नित्य बनाई जाती है। उस गर्म तप्त तवे पर शीतल जल डाल दें तो आवाज सुनाई पड़ेगी, पानी में बुलबुले देखने को मिलेंगे। क्रमशः गर्मी सर्दी का मिश्रण भाप के रूप में परिणत होता हुआ दिखाई देगा। इस प्रकार गर्मी सर्दी के मिश्रण के गंभीर परिणाम होते हैं और उनका प्रभाव सद्यः होता है।

शीत उष्ण ये दो गुण सद्यःलाभकर चिकित्सा के

मूल मन्त्र है। चरक ने विपरीत चिकित्सा का गहराई से प्रतिपादन किया है और उसके लिये शीत उष्ण दो प्रकार निर्धारित किये हैं। शीत अधोगामी व संतर्पक है तथा उष्ण ऊर्ध्वगामी व अपतर्पक है।

वायु की गति जिसे आयुर्वेद में विक्षेप संज्ञा दी गई है यह संतर्पण अपतर्पण या विसर्ग आदान दो प्रकार का काम करता है।

आयुर्वेदज्ञ केवल शीत उष्ण विक्षेप विज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण चिकित्सा कौशल आशु चिकित्सा कौशल अद्भुद रूप से तथा निश्चित व सफल रूप से दिखा सकता है।

विसर्ग आदान विक्षेप (शीत उष्ण व वायुगति) केवल ३ शब्दों के प्रयोग से सिद्ध यशस्वी चिकित्सक बन सकता है और रोगी को निश्चित रूप से सद्य: शांति दे सकता है। अग्नि तापने से सद्य: शांति मिलती है। इसी प्रकार शीत का अभाव गर्मी के मौसम में सद्य: सुखप्रद होता है। शीत उष्ण का प्रभाव मानव काया पर सद्य: प्रभावी होता है। अतएव चिकित्सा में शीत उष्ण का प्रयोग सद्य: प्रभाव कर है। जिस प्रकार भौतिक शीतल तथा उष्ण सद्य: प्रभावकारी है उसी प्रकार शीत उष्ण प्रभावकारी द्रव्य भी सद्य: लाभकर होते हैं यथा अग्निदग्ध पर आमलकी का प्रलेप। यदि आमलकी हरी प्राप्त हो तो और भी सद्य: प्रभावकर है। सभी द्रव्य जितने ताजे नवीन व स्वस्थ होंगे वे रोग को दूर करने में उतने ही शीघ्र प्रभावकारी होते हैं।

चरक में सद्य:प्रभावकारी इष्टतम चिकित्सा सिद्धांत—

ये सिद्धांत प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर लिखे गये हैं। च. सू. अ. १०

इदं चेदं च नः प्रत्यक्षं (नः अस्माकमर्थ)

१. यदनातुरेण भेषजेनातुरं चिकित्साय।
२. क्षामयक्षामेण कृशं दुर्बलमाप्याययामः।
३. स्थूलं मेदास्विनमपतर्पयामः
४. शीतेनोष्णाभिभूतमुपचरामः ।। शीताभिभूतमुष्णेन।
५. न्यूनान् धातून्पूरयामः ।। व्यतिरिक्तान् ह्रासयामः।

व्याधीन् मूलविपर्ययेणोपचरन्तः
सम्यक् प्रकृतो स्थापयामः।
तेषां नः तथा कुर्वताभयं भेषज समुदायः
कान्ततया भवति। च. सू. अ. १०

(१) प्रथम सिद्धांत स्वस्थ औषधि द्वारा अस्वस्थातुर की चिकित्सा करना बताया है। औषधि द्रव्य स्वस्थ ही नया ताजा होगा उसका प्रभाव उतना ही तीव्र होगा। प्राचीन द्रव्य गुणहीन होजाते हैं। अतः यदि द्रव्य सद्यः हरित रूप से मिल सके तो वे ही सद्यःकर होंगे। द्रव्य का चयन संरक्षण, ठीक समय पर ग्रहण व वांछित अंग फल मूलत्वक्पत्र निर्यास आदि का ग्रहण चिकित्सक के यश को बढ़ाते हैं। यह दुःख की बात है कि Drugs Act तो बना पर कच्चे द्रव्य के की क्षमता-सुरक्षा हेतु कोई कानून न बना। और नकली कालातीत द्रव्य के बेचने की पुरी छूट है।

(२) दुर्बल क्षीण रोगी की चिकित्सा संतर्पण बृंहण विधि से करनी चाहिए।

(३) स्थूल मेदस्वी रोगी की चिकित्सा अपतर्पण विधि से करनी चाहिए।

(४) उष्ण मौसम द्रव्य या आहार तथा पित्त रोग से पीड़ित की चिकित्सा शीतल औषधि आहार विहार से करनी चाहिए। शीत रोग से ग्रस्त रोगी की चिकित्सा उष्ण उपचार से करनी चाहिए।

(५) न्यून या क्षीण धातु की वृद्धि की जानी चाहिए। वृद्ध धातु को शरीर से बाहर निकाल देना चाहिये ताकि वृद्ध धातु की मात्रा कम हो जाय।

रोग के कारणों के विपरीत उपचार करने से रोगी को साम्य प्रकृति होने तक उपचार करें। ऐसा करने से अग्निवेशादि सब चिकित्सकों का यह अनुभव है कि इससे चिकित्सा में कान्ततम अभीष्टतम सफलता प्राप्त होती है और रोगी को सद्यः शांति मिलने के साथ पूर्ण लाभ भी मिलता है। चिकित्सा के अनेक सिद्धांतों में यह श्रेष्ठतम चिकित्सा सद्यः फलप्रद व वांछनीय चिकित्सा पद्धति मानी गई है जिसका प्रत्यक्ष अनुभव प्रत्येक चिकित्सक, प्रत्येक रोगी तथा प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। चिकित्सक सद्यःलाभ देने का यश प्राप्तकर हर प्रकार से सुखी हो सकता है।

आयुर्वेद में पञ्चकर्म—सद्यःलाभकर विधान—

आयुर्वेद शास्त्र में पञ्चकर्म या सप्तकर्म शरीर के मलों के निर्हरण हेतु प्रसिद्ध है जिनसे भी सद्यःलाभ मिलता है।

वमन, विरेचन, शिरो विरेचन (नस्यकर्म) आस्थापन अनुवासन उत्तरवस्ति के साथ-२ स्नेहन स्वेदन उपक्रम अभी प्राचीन रूप में ही प्रचलित हैं। इन कर्मों की व्यवस्था यदि चिकित्सालय में हो तो और भी उत्तम फल मिल सकता है तथा साध्यता व सद्यःलाभकर प्रभाव की वृद्धि हो सकती है।

पंचकर्मों का कार्य केवल संशोधन या अपतर्पण माना जाता है पर यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो पंचकर्म विधान से संशोधन के साथ ही संतर्पण कार्य भी अति अदभुद् व सुखकर ढंग से होता है। यदि किसी को हैजा हो जाय तो उसे तुरन्त वस्ति देवें। वस्ति देने का प्रभाव यह होगा कि प्रकृति जिस मल को मुख गुदा मार्ग से निकालना चाहती है आप प्राकृतिक विधान की मदद करेंगे। आन्त्रों के मल बाहर निकल जाने पर आमाशय के मल जो मुख मार्ग से निकल रहे थे वे खिसक कर नीचे आजावेंगे और वमन तुरन्त बंद होगा। वस्ति देने से उदर के मल का निर्हरण होने के साथ ही जिस द्रव माध्यम से वस्ति दी जाती है उससे शरीर का संतर्पण भी हो जाता है और वस्ति देने से सैलाइन इन्फ्यूजन द्वारा संतर्पण की आवश्यकता न होगी। मल निर्हरण के बाद पोषक तर्पक बृंहण वस्ति दी जा सकती है और आप हैजा रोग में पंचकर्म विधान से सद्यः शान्ति, उत्कृष्टतम् शान्ति दे सकते हैं।

जहां कहीं भी ऐलोपैथ ग्लूकोजादि से संतर्पण पहुँचाता है वह कार्य वस्ति प्रक्रिया से बड़ी सफलतापूर्वक किया जा सकता है तथा लोगों पर आयुर्वेद का कौतूहल दिखाया जा सकता है। यह दुःख की बात है कि आयुर्वेदज्ञ को अपने हथियार चलाना नहीं आता है।

आयुर्वेदज्ञों की यह धारणा अवश्य ही भ्रमपूर्ण है कि पञ्चकर्म से केवल संशोधन होता है। पञ्चकर्म से संशोधन व संतर्पण दोनों क्रियायें एक साथ बड़ी सफलता से सम्पन्न की जा सकती हैं।

स्नेहन स्वेदन भी संतर्पण करने में सहायक होते हैं। नस्य में भी संतर्पण अपतर्पण साथ-२ होते हैं। अतः यह निश्चित व प्रभावित बात है कि पञ्चकर्म संतर्पण व अपतर्पण दोनों ही होते हैं विशेषतः जब द्रव्य बृंहण संतर्पण वस्ति का निश्चित विधान शास्त्र में है।

लवणविलयन या ग्लूकोज चढ़ाने या रक्त चढ़ाने की अपेक्षा वस्ति से संतर्पण करना सदा सुखकर सुलभ व सद्यः लाभकर है। वस्ति प्रक्रिया से सद्यः बल प्रदान किया जा सकता है। दोषों को सद्यः घटाया जा सकता है।

सद्यःलाभकर अनेक उपक्रमों का वर्णन आयुर्वेद में है पर उनका वर्णन किसी पुस्तक में ही किया जा सकता है। ऊपर विपरीत उपक्रम तथा संशोधन उपक्रम का वर्णन किया गया है।

सद्यःलाभकर द्रव्य व उनके कल्प व संस्कार—

(१) द्रव्यों में मधुर अम्ल लवण द्रव्य का बल श्रेष्ठ व शीघ्र प्रभावकर होता है अतः अनुपान में प्रायः मधुर अम्ल लवण का प्रयोग होता है। अनुपान भी शीतल या उष्ण स्निग्ध या रूक्ष होता है।

(२) द्रव्यों में स्वरस व क्षीर श्रेष्ठ बल वाले माने जाते हैं व सद्यः प्रभावकारी होते हैं। आजकल विज्ञान इतना समुन्नत है कि वृषभ शुक्र संरक्षित कर कृत्रिम गर्भाधान किया जाता है।

आप सद्यः लाभहेतु क्षीर व स्वरस का संरक्षण कर अम्लमृत बनावें और प्रयोग करें तो एलोपैथी की नाक काट लें।

(३) घृत व उष्णोदक स्नान सद्यः लाभकर माने गये हैं अतः अनुपान में घृत वा विहार में उष्णोदक का प्रयोग कर देखें। किसी भी दुर्घटना का रोगी आवे तुरन्त उष्णोदक स्नान करावें उसे सद्यः शान्ति मिलेगी। क्षत पर तप्त घृत से प्रकार पुचारा दे तुरन्त शांति मिलेगी। सूतिकागृह में उष्ण जल का चमत्कार देखें।

(४) शीतल व उष्ण तरल पेय का प्रयोग कर रोगी का बलाधान करें।

शीतल व उष्ण बृंहण वस्ति से रोगी का बलाधान करें।

(५) द्रव्य संस्कार द्वारा बलाधान—आमलकी चूर्ण को आमलकी स्वरस की भावना देकर जिसने प्रयोग किया होगा उन्हें द्रव्य संस्कार का चमत्कार निश्चित दिखाई देगा। गोक्षुरु को दुग्ध की ७ वार भावना देकर सुखावें व भावना दें तो उसकी कार्यक्षमता में अद्भुद वृद्धि होगी।

आटे की रोटी नित्य खाते हैं। आटे को दूध या दही या घृत में सान कर रोटी या पूड़ी बनावें, दद्भुद गुण वृद्धि होगी पोषण होगा ; आयुर्वेद में जीवनीय व आयुष्य द्रव्यों का वर्णन है पर कोई फार्मेसी अभी इनका निर्माण नहीं करती। जीवनीय द्रव्यों को दुग्ध में भिगोकर जल के स्थान पर दुग्ध में क्वाथ कर मिश्री मिलाकर दूध पिलावें कई गुना शक्ति देगा। इस क्वाथ को शीतल कर अर्क खींचलें और पोषण संतर्पण हेतु इस जीवनीय अर्क को पिलावें तो इससे महासंतर्पण व बलाधान होगा। इस अर्क की सूई लगावें, स्वर्ण के सदृश शक्ति देगा। द्रव्य संस्कार द्वारा द्रव्य के गुण बढ़ाने का प्रचुर विधान शास्त्र में है उनका पूरा-२ लाभ उठावें।

महिलाओं में पंचकर्म वस्ति या उत्तरवस्ति हेतु प्रशिक्षित महिला सहायक चिकित्सक की परमावश्यकता होगी उसके लिये वैद्य समाज को तैयार होना पड़ेगा।

शाकाहारी के लिये सद्यः लाभकर शाकाहारी द्रव्याहार विहार व मांसाहारी के लिये मांसाहारी आहार-विहार की व्यवस्था करनी होगी। विष या मादक द्रव्य का प्रयोग या निद्राकर द्रव्य का प्रयोग केवल चुने हुए रोगियों में सावधानी के साथ किया जा सकता है।

सद्यः लाभकर चिकित्सा करने वाले वैद्य को पीयूदपाणि चिकित्सक भी कहते हैं।

सद्यः लाभकर चिकित्सक की आवश्यकता सेना के घायल सैनिक, दुर्घटनाग्रस्त नागरिक, प्रसवगृह, वेहोशी की अवस्था या तीव्र शूल की दशा या तीव्रदाह संताप की दशा या इन्द्रियकर्म की अतिहीन या अतिवृद्धि की दशा में प्रलाप की दशा में तथा उग्र कष्ट की दशा में होती है।

रोगी के अभिभावक रोग का निदान हो या न हो, रोग अच्छा हो या न हो, पर रोगी को कष्ट कम करने में या कष्ट का पूर्ण लोप करने में सफल होने पर ही चिकित्सक के गौरव को स्वीकार करता है। ऐसे समय में सुलभ व सद्यः प्रभावकारी द्रव्य, उपचार की आवश्यकता होती है।

सद्यः लाभकर चिकित्सा का लक्ष्य—

१. रोग का निदान पूरा हो या न हो, रोग साध्य हो या न हो पर रोगी के कष्ट को निर्मूल करना प्रथम लक्ष्य है।

२. रोगी को चेतना न होने पर चेतना लाना बलाधान करना।

३. रोगी के धातु व मल की उचित व्यवस्था करना।

४. पांच मिनट से लेकर ३ घण्टे के अन्दर रोगी के अभिभावक को संतुष्ट करना।

५. वेहोशी की दशा में बात करा देना।

६. निकट सम्वन्धी या प्रेमी के आने तक रोगी को जीवित रखना।

अन्तिम लक्ष्य नं. ५,६ आयुर्वेद की अलौकिक चिकित्सा योगाक्षेत्र में आते हैं। यह अलौकिक चिकित्सा पीयूषपाणि विज्ञ चिकित्सक से ही प्राप्त हो सकती है। अलौकिक चिकित्सा का क्षेत्र भी काफी व्यापक है और एलोपैथी की पहुँच उस सीमा तक नहीं है।

सद्यःलाभकर चिकित्सा की सफलता का श्रेय युक्तिज्ञ कर्मकुशल वैद्य व उपस्थाता को है। द्रव्य–द्रव्यांग, द्रव्यकल्पना, द्रव्य का शीत उष्ण या संतर्पक अपतर्पक उपयोग चिकित्सा के विपुल उपक्रम तथा रोग के अधिष्ठान का विचार कर रोगी के विविध कष्टों को तुरन्त दूर करना यही चिकित्सक का चिकित्सा कौशल है। सौभाग्य से आयुर्वेद शास्त्र में विविध उपक्रमों व द्रव्यों की कमी नहीं है जो सद्यः लाभकर हैं पर भाग्यवानों को ही ये आयुर्वेद रत्न दिखाई देते हैं। देखने वाले, जानने वाले इनका प्रयोग कर यशस्वी बनते हैं और पीयूषपाणि कहलाते हैं। शीत उष्ण उपचार से बढ़कर सद्यः प्रभावी कोई उपचार किसी चिकित्सा पद्धति में नही है।

अतिवीर्यवान् सद्यः प्रभावी द्रव्य—

१. क्षीर—वट दुग्ध, उदुम्वर, दुद्धी ये शीतल और

है। अर्क दुग्ध, स्नुही दुग्ध, स्वर्णक्षीरी दुग्ध ये उष्ण गुण वाले हैं।

२. स्वरस—गुडूची, आमलकी, बांसा, दूर्वा, अनार रस, पुनर्नवा, अमरबेल, एरण्ड पत्र, शोभांजन पत्र या त्वक रस, आर्द्रक ताम्बूल, तुलसी, दूर्वा ये महा बलशाली द्रव्य हैं जिनका स्वरस अतिलाभकर व सद्यः प्रभावी है।

३. रस—मधुर अम्ल लवण। मधु, सिता, शर्करा, गुड, घृत दुग्ध, तैल, दधि, मस्तु, अनार रस नारिकेलजल, सद्यः प्रभाव की दृष्टि से अतिप्रभावशाली हैं।

शरवत चन्दन, शरवत वनफसा, खस, धनियां, अमलतास, फालसा आदि के शरवत का त्वरित चमत्कार देखें।

४. संतर्पक अपतर्पक वस्ति, उत्तर वस्ति, बृंहण वृष्य बल्य वस्ति, लवणविलयन ग्लूकोजद्रव व खून चढ़ाने की अपेक्षा सद्यःलाभ हेतु वस्ति मार्ग से शर्करा अम्ल लवण व पशु रक्त सद्यः प्राप्त कर प्रयोगकर उसका चमत्कार देखें।

५. जीवनीयगण आयुष्य द्रव्य साधित शरवत, घृत तैल अर्क का प्रयोग जल दुग्ध के माध्यम से करके आयुर्वेद का चमत्कार देखें। मुर्दा जिंदा करके यशस्वी बनें।

६. रस चिकित्सा का कौशल पृथक अपने श्रम व विधान से बने तो केवल लोहभस्म, अभ्रक भस्म ये सब रोग दूर हो सकते हैं।

मल्ल चन्द्रोदय. मल्लसिन्दूर, मोती भस्म, स्वर्ण भस्म, उत्तम रजत भस्म भी अपना चमत्कार दिखाते हैं।

७. कुछ लोग स्वर साधना मारक युक्ति का भी प्रयोग करते हैं।

संक्षेप में रोगी की सुसाध्यता वैद्य की युक्ति व श्रम पर निर्भर करती है। विश्वास व निष्ठा भी वैद्य में असीम मात्रा में होनी चाहिए और शाकाहारी व मांसाहारी सभी द्रव्यों का संग्रह करना चाहिये।

सद्यःलाभकर द्रव्य—

पलाश, पुनर्नवा, शतवीर्या, सहस्त्रवीर्या (दूर्वा) इनको चाहे जितनी बार काटें इनमें इतनी अधिक प्राणशक्ति है कि पुनः हरे हो जाते हैं। इन गुणों के कारण ही उनके ये नाम हैं।

चित्रक, कुटज, पाठी इतने तीव्र प्रभावकर हैं कि 'चीता कोरय्या पाठी जारें, वैद्य की दाढ़ी' एक कहावत बन गई है

अमृत शब्द के त्रिलिंग अर्थ का संग्रह करने पर गुडूची पारद, वत्सनाभ घृत दुग्ध पारद, मतीरा रक्तत्रिवृत् मदिरा, ज्योतिष्मती, वाराहीकन्द वनशृंग, दूर्वा, तुलसी, आमलकी, पिप्पली, इन्द्रवारुणी, नासपाती द्राक्षा, पटोल ये अर्थ होते हैं। ये सब आयुर्वेद के अतिशीघ्र प्रभावकारी द्रव्य हैं। अमरा शब्द के अर्थ अमरवेल आदि भी अतिदिव्य द्रव्य हैं—

महौषधा विश्वमाता (कण्टकारी) आदि द्रव्य भी अति शीघ्र प्रभावकारी हैं। कमलकेशर अति उग्र वृष्य द्रव्य है और मांसाहारी को पशु लिंग जितना बल देता है शाकाहारी को उतना ही बल देता है।

शूलहर द्रव्य आयुर्वेद में मांडूर तुम्बुरू, हिंगु, सौवर्चल, नृसार, एरण्ड, तुलसी, अजवाइन, शोभांजन, टंकण आदि अति प्रसिद्ध हैं। ये शूल को जड़ मूल से नाश करते हैं। सिर का भी शूल नाशक मशहूर है।

नकली तौर से शूल शांत करने वाले एलोपैथिक द्रव्यों के कुपरिणामों को रोगी को गम्भीरता से भुगतना पड़ता है और बहुव्यय भी करना पड़ता है।

आमाशय, पक्वाशय आन्त्र, यकृत् वृक्क वस्तिगवीनी आदि शूल के स्थान हैं। चिकित्सक को युक्तिपूर्वक इन स्थानों के मल निर्हरण का उपाय करना चाहिये।

रोग दृष्टि से सद्यः लाभकर विधानों की एक पुस्तक बननी चाहिये क्योंकि एक लेख में सब बातें लिखना असम्भव है।

शूल प्रशमन के लिये निद्राकर द्रव्यों का प्रयोग अति भयंकर है।

शूल रोग के जीर्ण होने पर उस स्थान में शोथ पैदा होना एक साधारण बात है। शोथ स्थल को लेपादि से निराम बनाना चिकित्सक का परम कौशल है जो प्रायः सद्यः लाभकर व निद्राकर होता है। गर्म पानी के सेंक के बजाय गरम पानी के टब में बैठाना अधिक लाभकर शीघ्र प्रभावकारी है।

किसी भी संकटग्रस्त रोगी के आने पर चिकित्सक को केवल यह विचार कर निर्णय करना होता है कि इस रोगी को उष्ण उपचार से लाभ होगा या शीत उपचार

से । जब इसका तथा निर्णय चिकित्सक करले तो चिकित्सक को जरूर त्वरित सफलता मिलेगी और रोगी को संतर्पण या अपतर्पण या दोनों विधानों से संकट को दूर करेगा ।

रोग द्वेष परीक्षा से इस बात का निर्णय होता है कि रोगी को उष्ण उपचार की जरूरत है या शीत उपचार की । कुछ लोग मुंह ढककर नहीं सो सकते ऐसे लोगों को शीत उपचार लाभ करेगा । कुछ लोग बिना मुंह ढके नींद नहीं आती ऐसे लोगों को उष्ण उपचार हितकर होगा । यदि रोगी शीत पेय पसन्द करे तो शीतल उपचार करें । यदि रोगी गरम पेय पसन्द करे तो गरम उपचार करें । यदि कोई मल अवरुद्ध हो तो उनको ढीलाकर निकालें । मल स्वयं निकल रहा हो तो भी मल निःसरण कर प्रयास करें । कफज व वातज रोगों मे सूर्योदय व सूर्यास्त क बाद औषधि दें । पित्तज रोग में सूर्योदय व सूर्यास्त क पूर्व औषधि दें । औषधि हमेशा खाली पेट लवे । नाश्ता भोजन बाद में कुछ अन्तर से देवें ।

सद्यःलाभकर चिकित्सा म रसायन चिकित्सा का बड़ा महत्व ह पर उसका सफलता वानस्पतिक अनुपान पर निर्भर करता ह ।

चिकित्सक को आयुर्वेदिक विधि से चिकित्सा में शर्माना नहीं चाहिए । अस्पताल म रोगी को खुले पखेदार कमरे म रखा है पर आयुर्वेद दृष्ट्या जिनको पंखे का निषेध ह उनको पंखा रहित गरम कमरे मे रखना चाहिये । आयुर्वेदानुसार हर रोगी को दूध व फल हितकर नहीं है। आप आयुर्वेद विवेक स काम लेकर यश व गौरव प्राप्त कर और इस भ्रम को दूर करें कि आयुर्वेद दवायें देर स लाभ करती है ।

पृष्ठ ५९ का शेषांश

अधोगरक्तपित्त रक्तार्श रक्त प्रदर—१. बोलबद्ध रस २ रत्ती दूध से २. कुटज चूर्ण ४ रत्ती, पञ्चामृत पर्पटी १ रत्ती २-३ बार बलशर्बत से ३. निम्बोली चूर्ण ४ रत्ती शुद्ध लाल फिटकरी २ रत्ती मिलाकर २ बार जल से ४. पुष्यानुग चूर्ण केशर युक्त १।। ग्राम चावल के धोवन व शहद से ।

शीतपित्त उदर्द कोठ—१. हरिद्राखण्ड ३ ग्राम २-३ बार गर्म मीठे दूध से २. बगैर बुझा हुआ चूना १ रत्ती बताशे में रखकर गर्म दूध से लें ३. गर्म जल में खाने का सोडा डालकर स्नान करें । ४. स्वर्णगैरिक डालकर गुड़ के पूये तिल तैल में सेंककर गर्म खावें ।

तीव्र अतिसार (बड़ों में)—१. चातुर्जात चूर्ण, कर्पूर रस चूर्ण, प्रवाल भस्म २-२ रत्ती मिलाकर दो तीन बार जल से २. अतीसार वारणो रस १ रत्ती १ लौंग पीसकर चूर्ण के साथ २-३ बार जल से ।

अतिसार बालकों में—१. अर्क सौंफ आधा चम्मच छोटी, अर्क अजवाइन आधा चम्मच, अर्क कपूर ६ बूंद मिलाकर २-३ बार २. सिद्ध प्राणेश्वर चूर्ण, प्रवाल पंचामृत १-१ रत्ती ३-४ बार जीरे के पानी से ३. शक्कर २ बड़े चम्मच सैंधानमक १ छोटा चम्मच उबाला हुआ गर्म जल १ ग्लास में डालकर ठंडाकर बार बार पीने को दें ४. नारयल का पानी १-१ चम्मच बार-बार ।

अजीर्ण (कृमि-अतिसार-शूल)—१. संजीवनी वटी, आनन्द भैरव रस, शंख भस्म २-२ रत्ती मिलाकर १ लवङ्ग चूर्ण, १ चम्मच शक्कर मिलाकर गर्म जल से १-१ घण्टे से २. कर्पूरार्क २-२ बूंद शर्करा जल में बार बार ३. स्वर्ण सूतशेखर रस, प्रवाल पञ्चामृत १-१ रत्ती मिलाकर ३ बार शहद से ।

अतिक्षवथु (छींक)—१. अणु तैल गर्मकर नस्य २. केशर डालकर गर्म दूध ३. गर्म रबड़ी खालीपेट खावें ।

आक्षेप—१. वातकुलान्तक रस १ रत्ती मांस्यादि क्वाथ के अनुपान से २-३ बार २. कस्तूरी भूषण रस १ रत्ती तगरादि क्वाथ के अनुपान से ३. कृष्ण चतुर्मुख रस १ रत्ती बचा चूर्ण २ रत्ती २ बार मधु से ।

मूत्रावरोध (पौरुष ग्रन्थि वृद्धि)—१. हरीतक्यादि क्वाथ १ तोला २ बार । २. आरग्वधादि क्वाथ २ तोला २ बार ३. चन्द्रप्रभावटी, गोक्षुरादि गुग्गुल १-१ गोली त्रिफला चूर्ण २ ग्राम ३ बार गर्म जल से ।

आयुर्वेद चक्रवर्ती ताराशंकर वैद्य, प्रधानाचार्य—श्री अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय, रामपुरी-जगतगंज, वाराणसी।

आयुर्वेद में चिकित्सा क्रम सापेक्ष्य है। वहां दोषज रोगों में कारण तथा आम नाश न करते हुए सम्प्राप्ति क्रम से दोष-द्रव्यों पर प्रहार करना, उन्हें शमित करना और बाहर करना प्रधान लक्ष्य होता है। परन्तु उग्र शूल और वेदना होने पर आमनाशन और क्रम पर निर्भर रहना असम्भव है। रोग के कुछ कारणों की भी उपेक्षा कर सर्वप्रथम शूल या वेदना को कम या नष्ट करना ही पड़ता है। ऐसा न करने से आतुर हाथ से निकल जाता है और वैद्य को अपयश मिलता है। इसलिए जीर्ण रोगों में जहां पीड़ा उग्र नहीं है, ग्रंथों में वर्णित चिकित्सा क्रम से कार्य करते हुए रोग निवारण करना चाहिए परन्तु असह्य पीड़ा में चिकित्सा क्रम पूर्णतया या सामान्यतया नहीं चलता। वहां सीधे पीड़ा पर प्रहार करना पड़ता है। इसके लिये आशुकारी द्रव्यों या योगों का आश्रय लेना चाहिए। याद रखें, आशु शब्द का तात्पर्य तत्क्षण नहीं अपितु शीघ्र होता है। जो गुण शीघ्र काम करता है उसे 'आशु' कहते हैं। यह विष और मद्य में सर्वाधिक प्रभावकारी रूप में रहता है। इसलिए कि इस गुण के आधार सूक्ष्म, व्यवायि एवं तीक्ष्ण गुण भी उनमें विद्यमान रहते हैं। सूक्ष्म गुण वाले द्रव्य स्रोतों में सूक्ष्मता से शीघ्र प्रवेश करते हैं। व्यवायि गुण वाले सामान्य पाक क्रम की बिना अपेक्षा किये अविलम्ब सारे शरीर में व्याप्त होते हैं। तीक्ष्ण गुण नुकीले तीर के समान शीघ्र लक्ष्य में घुसकर रोग का वेध करता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि शीघ्र पीड़ाहरण करने के लिये विष और मद्य का प्रयोग अनिवार्य है। परन्तु यह सर्वदा ध्यान रखें, कि ये 'ओज' का नाश कर हृदय एवं मस्तिष्क की क्रियाओं को नष्ट करते हुए समस्त शरीर को नष्ट करते हैं। इसलिए विष और मद्य का सेवन करते हुए ओजस्कर द्रव्यों का अवश्य प्रयोग करना चाहिए। ओजस्कर द्रव्यों में स्वर्ण, रजत आदि द्रव्य धातुयें, शिलाजतु, मणिमुक्ता रत्न आदि ओजयुक्त द्रव्य अष्टवर्ग सहित जीवनीय गण तथा उनके प्रतिनिधि एवं दुग्ध घृत आदि होते हैं। उपर्युक्त द्रव्यों में जीवनीयगण तथा दुग्ध, घृत, फल का प्रयोग सब जगह नहीं होता। शिलाजतु का प्रयोग भी कम होता है। पर शेष द्रव्यों का प्रयोग निर्द्वन्द्व होकर आशुकारी औषधियों के साथ अवश्य विवेकपूर्वक होना चाहिए। उपर्युक्त सभी द्रव्य 'हृदयावरण', (देखें सुश्रुत सूत्र स्थान) भी हैं जो हृदय एवं मस्तिष्क की भी रक्षा करते हैं। पुनः यह स्पष्ट निवेदन है कि आशुकारी औषधियों के साथ ओजस्कर एवं हृदयावरण का प्रयोग अनिवार्य है। इससे पीड़ा तो शीघ्र दूर होगी ही, हृदय-मस्तिष्क समस्त एवं शरीर भी सुरक्षित रहेगा। आशुकारी औषधि का बल भी बढ़ेगा।

नवज्वर, नव अतिसार, नव आमातिसार में ओजस्कर द्रव्यों को नहीं देना चाहिए क्योंकि इससे वहां सूक्ष्म आम को बल मिलता है जिससे व्याधि बढ़ती है परिणामस्वरूप उपद्रव बढ़ जाते हैं। इनमें कम ओजस्कर प्रवाल और वंशलोचन आवश्यकतानुसार मिलायें। शेष रोगों में जहां नवज्वर या आम के बढ़ने की सम्भावना न हो वहां आशुकारी औषधियों का प्रयोग ओजस्कर द्रव्यों के

साथ अवश्य करना चाहिये। आयुर्वेदीय चिकित्सा ग्रन्थों में प्रत्येक रोगों में आशुकारी एवं ओजस्कर द्रव्यों के साथ तत्तद्रोगनाशक प्रयोग लिखे हैं। वृद्ध और यशस्वी वैद्यों के समीप भी ऐसे प्रयोग सुरक्षित हैं। जनसाधारण में विशिष्ट व्यक्तियों, जङ्गली जातियों, साधु-सन्यासियों दीनहीन एवं अपराधी प्रवृत्ति की जातियों और व्यक्तियों में भी ऐसे चमत्कारिक प्रयोग हैं।

सावधान ! बहुत से प्रयोग केवल आशुकारी भी मिलेंगे उनमें ओजस्कर द्रव्यों या प्रक्रिया का अभाव होगा। इसलिए उनमें ओजस्कर का संयोग कर देना चाहिए। अनुपान और पथ्य रोगानुसार करें।

यहां विशेष आवश्यक वर्णन उपस्थित है—

विषम ज्वर—कच्ची फिटकरी (लाल या सफेद) का चूर्ण १ मा० बराबर गुड़ या चीनी के साथ ज्वरवेग के पूर्व दें। जिस रोगी को भांग अनुकूल हो उसे भांग भी पिलाई जा सकती है। बाद मे फिटकरी का लावा (स्फटिका भस्म) २ र० की मात्रा से २४ घण्टे में तीन बार नीम की गुरुच के रस या उष्ण जल से दें।

इन ज्वरों में तिक्त रस के द्रव्य यथा करंज, सप्तपर्ण, यवतिक्त आदि विशेष काम करते हैं। सन्निपात ज्वर में 'वैताल रस' तत्काल लाभदाई है।

जीर्ण ज्वर या जीर्ण ज्वरयुक्त यक्ष्मा आदि—स्फटिका भस्म का उपर्युक्त मात्रा और अनुपान मे प्रयोग करें। याद रखें, कच्ची फिटकरी अधिक कषाय रस से युक्त और संकोचक होती है। वह उन रोगों और यकृत्प्लीहावृद्धि के रोगों में हानिकारी होती है। स्फटिका भस्म का प्रयोग दो-चार दिन तक लगातार और बाद में क्रम भङ्ग कर बीच-बीच में यदा-कदा हो सकता है। यक्ष्मा में ज्वर के दृष्टिकोण से लिखित अन्य योग भी हैं।

अतिसार—रक्तातिसार अहिफेन के योग यथा अहिफेनासव ५-५ बूंद ३-४ बार और कर्पूर वटी ५-५ बूंद का प्रयोग २-३ दिन तक प्रतिदिन करें।

सामान्य अतिसार में उपर्युक्त अतिसार के प्रयोग करें। कर्पूर रस तत्क्षण कार्यकारी है। रक्तातिसार और आमातिसार न हो तो जायफल+जावित्री+लवंग का समभाग चूर्ण ४ रत्ती की मात्रा में ४-५ बार प्रयोग करने से लाभदाई होता है।

जीर्ण आमातिसार—राल का चूर्ण ४ रत्ती की मात्रा से ३-४ बार दें, लाभदाई होता है।

किसी भी अतिसार में पथ्य में दही और लाजमण्ड को न भूलें। प्रवाहिका में मलाईयुक्त दही ३ भाग, मधु १ भाग मिलाकर खाने से बड़ा लाभ होता है।

हृत्शूल—वातेभ केशरी १ गोली (अभाव में वृहद्वात चिन्तामणि १ गोली) पुष्कर मूल क्वाथ से (अभाव में १ मा० चूर्ण मिलाकर मधु या पान के रस से), मृत संजीवनी सुरा २ तोला समान जल से दें। देशी शराब से स्थानीय मृदुमर्दन भी लाभदाई है। तुरन्त हृद्रोगजन्य और वातजन्य पार्श्वशूल में भी ये प्रयोग लाभदाई है।

श्वास कष्ट—श्वासकास चिन्तामणि १ तोला प्रातः, मध्याह्न, साय और रात्रि में शर्बत अडूस और शर्बत लिसोड़ा से देने में लाभदाई है। भोजनोत्तर कनकासव २ तोला समान जल से अवश्य देना चाहिए।

कास—स्वर्णपत्री हरताल भस्म १/४ रत्ती मधु से।

धनुष्टंकार—उपर्युक्त हृत्शूल के प्रयोग करें। उत्तम वेदनाशामक और निद्राकार रस तरङ्गिणी के निद्रोदय रस को किसी भी उग्र वेदना में न भूलें। ध्यान रहे इसमें अहिफेन है जो प्रत्येक शूल या पीड़ा मे ओजस्कर द्रव्य के साथ दिया जा सकता है।

मूर्च्छा या मुमूर्षु अवस्था की तन्द्रा में 'ब्रह्म रस' का सिर में पच्छ मारकर यथाविधि करें।

पित्त भावित योगों पर भी ध्यान दें।

रक्त निकलने पर चोट में तुरन्त शुद्ध मधु लगाकर पट्टी बांध दें अथवा ऊन की भस्म बांध दें। अर्श, रक्त प्रदर आदि से रक्त निकलने पर ऊन भस्म खिलायें।

वातरोगों में वृहद्वात चिंतामणि, पित्त के रोगों में स्वर्ण सूतशेखर रस एवं कफ के रोगों मे वृहत् कस्तूरी भैरव तत्काल यश देते हैं।
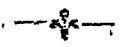
'आयुर्वेद के उदीयमान लेखक एवं प्रभातकालीन भानु श्री भानुप्रताप आर. मिश्र ने अल्पकाल में ही आयुर्वेदीय पत्रकारिता ने अपना सम्माननीय स्थान अर्जित कर लिया है तथा आयुर्वेद की सभी पत्रिकाओं में आपके विद्वत्तापूर्ण लेख जिनमें आपके अनुभव की पुट रहती है निरन्तर प्रकाशित होते रहते हैं। आपने गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय से बी. ए. एम. एस. परीक्षा उत्तीर्ण की है तथा आपकी आयुर्वेद सेवाओं के लिये कला संस्कृति साहित्यायुर्वेद विद्यापीठ मेरठ द्वारा आप को डी.एस.सी. (ए) की उपाधि से अलङ्कृत किया गया। सम्प्रति आप लोधा के आयुर्वेद महाविद्यालय में विवेचक तथा मानद औषधि निर्देशक के रूप में कठोर परिश्रम, धैर्य एवं लगन के साथ अपनी सेवायें दे रहे हैं। आपने इस कृति के लिये अपने लेख के अतिरिक्त श्री शोधन बलाणी जी के लेखों का भी हिन्दी अनुवाद करके प्रेषित किया है। आपके सहयोग के लिये हृदय से आभारी है।

—विशेष सम्पादक

'आयुर्वेद में आशुकारी चिकित्सा नहीं है' यह मान्यता जग में मशहूर है। खुद वैद्य भी इस मान्यता के सामने कोई बचाव करने की दलील करता हो, ऐसा देखने सुनने को नहीं मिलता है। ऐसी परिस्थिति में आयुर्वेद में आशुकारी चिकित्सा इस विषय पर एक छोटा सा लेख लिखने की इच्छा हुई।

इस छोटे से लेख को पढ़कर कोई सोचे कि आयुर्वेद में इतनी ही तात्कालिक चिकित्सा है। यह सोचना गलत है। आज से हजारों वर्ष पहले ब्रेन सर्जरी, अश्मरी की रुग्ण क्रिया समर सुश्रुषा आदि करने वाले महान वैद्यों के सुश्रुत, चरक आदि ग्रंथों में विपुल प्रमाण में इमर्जेन्सी साहित्य लिखा हुआ है। परन्तु इसे बाहर निकाले कौन? इसका अनुभव कौन करे?

आज वैद्य है फिर भी नहीं जैसे। जो वैद्य दिखाई देते हैं उनमें अधिकतर आयुर्वेद के बदले एलोपैथिक चिकित्सा करते हैं। महाविद्यालय होने पर भी इसमें कोई सुधार नहीं। डाक्टर होने की इच्छा होने के कारण और मेडिकल कालेज में प्रवेश न मिलने के कारण आयुर्वेद के महाविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करके जैसे-तैसे पास होकर, आयुर्वेद में जरा सा रस लिए बिना मात्र प्रमाणपत्र लक्ष्मी लक्ष्य से पूरा करके पाँच-पच्चीस एलोपैथिक औषधियों या इन्जेक्शनों को याद करके अपना जीवन आराम से बिताते हों वहाँ आयुर्वेद के भूले-बिसरे अनेक विषयों को पुनर्जीवित करने का ख्याल कहाँ?

(१) सद्य व्रण— गिरने से चोट लगने से, मारने से या कट जाने आदि कारणों से एकाएक घाव हो जाता है और उसमें से रक्तस्राव हो रहा हो। ऐसी स्थिति में शुद्ध फिटकरी का बारीक चूर्ण दबाकर ऊपर से सख्त पट्टी बंधन करने से तुरन्त रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

मार्च १९७६ में मैं उत्तर प्रदेश के गोण्डा जिला में चिकित्सा व्यवसाय करता था। वहाँ रमेश को लकड़ी चीरते समय हाथ में कुल्हाड़ी लग गई। हाथ में से रक्त गंगा की धार की तरह बह रहा था। उसने पास के कई डाक्टरों के पास पट्टा बंधवाया। परन्तु कोई डाक्टर हाथ से बहता हुआ रक्त रोक न सका। अन्त में वह हमारे पास आया। मैंने सर्व प्रथम टूर्नीकेट बांध दिया फिर

डा० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, के० ३०/६ घासीटोला, वाराणसी।

निर्मल आयुर्वेद संस्थान के अधिकारियों ने इस वर्ष 'सङ्कट कालीन चिकित्सा, विशेषांक' के प्रकाशन का निश्चय सकल्प किया है, जो आयुर्वेद के पहलवान तथा जनता के हित मे होगा। रोग वे ही हैं चिकित्सा भी वही है, फिर यह सकट किस बात है ? हम इस प्रकरण मे सर्व प्रथम इस बात को स्पष्ट कर रहे हैं।

संकटकाल—शारीरिक, मानसिक तथा आगन्तुज व्याधियां कभी भी, कहीं भी उत्पन्न हो सकती हैं, वहां चिकित्सा उपलब्ध न हो औषधि द्रव्य उपलब्ध न हो, कोई सहयोगी न हो अपने पास मे द्रव्य न हो इस प्रकार के अनेक संकट भाग्यानुसार उपस्थित हो सकते हैं। ये परिस्थिति सम्बन्धी संकट हैं। चिकित्सा सम्बन्धी सकटकाल (Em[illegible]) इसे कहते है कि जब रोगी के जीवन-मृत्यु में थोड़ा सा अन्तर हो, अर्थात् उचित उपचार होजाने पर जीवन लाभ नहीं तो मृत्यु होना निश्चित सा रहता है।

सामान्य समाधान—ऊपर परिस्थिति सम्बन्धी जो संकट बतलाये गये हैं, उनमें से प्रथम 'चिकित्सक उपलब्ध न हो, इस संकट का समाधान प्रस्तुत 'संकटकालीन चिकित्सा' में होगा। 'औषधि द्रव्य उपलब्ध न हों' इस संकट का समाधान है—प्रत्युत्पन्नमति चिकित्सक, क्योंकि 'नानौषधिभूतंजगत किञ्चित्' अर्थात् संसार में कोई द्रव्य ऐसा नहीं जो औषधोपयोगी न हो, उसका उपयोग करना कुशल चिकित्सक की योग्यता पर निर्भर है। यदि चिकित्सक पास में है तो वह आपत्तिकाल में शारीरिक तथा आर्थिक दोनों प्रकार की सहायता कर सकता है।

संकटकाल में परीक्षा की दृष्टि से आधुनिक परीक्षण के सभी साधन अनुपयोगी सिद्ध होते हैं, क्योंकि पहले तो वे सब जगह उपलब्ध नहीं हो सकते। यदि उपलब्ध हों भी तो जब तक रोगी की जान चली जाये तब तक उनके परीक्षण का परिणाम ही नहीं मिल पाता, अतः ऐसी विषम परिस्थितियों में नाड़ी विशेषज्ञ चिकित्सक का विशेष सम्मान तथा उपयोग देखा जाता है। फिर भी संकट में पड़े हुए उस रोगी की निम्नलिखित परीक्षायें करनी ही चाहिए—
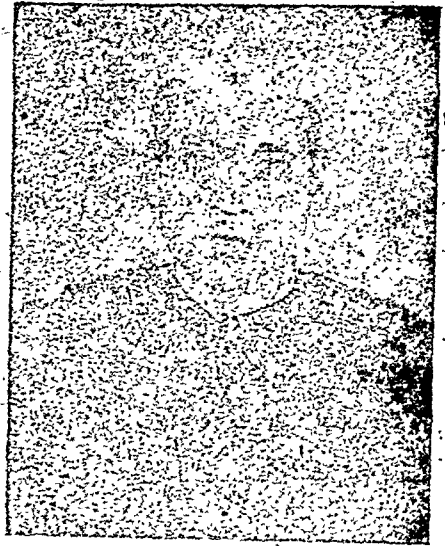
नाड़ीगति, तापमान, श्वास-प्रश्वास आंखों की पुतली का संकोच या विस्तार तथा चेतनाशक्ति की स्थिति क्या है?

आघातजनित स्थितियों तथा हृद् रोग की स्थिति में नाड़ी रुक-रुक कर चलती है, जबकि नाड़ी का रुक-२ कर चलना मृत्यु का सूचक होता है, अतः नाड़ी परीक्षा

करते समय ऐसी परिस्थितियों पर अवश्य ध्यान दें। तापमान का परीक्षण करते समय देश-काल की परीस्थिति का विचार भी कर लेना चाहिए। श्वास रोग तथा भयभीत रोगी के अतिरिक्त श्वास-प्रश्वास की गति का ठीक-२ परीक्षण किया जा सकता है, आंखों की पुतली पित्त की विकृति में स्वयं विकृत हो जाती है, अतः निदान करते समय इन सभी विषयों पर ध्यान परम आवश्यक है। अब यहां कतिपय संकट्कालीन (Emergencies) रोगों का उल्लेख किया जा रहा है।

सर्प दंश (Snakebite)—सर्पों के अनेक भेद होते हैं। इनमें भारतीय कोबरा (Indian Cobra) जब काटता है तो वह एक बार में १५० मिलि. विष दंश स्थान पर उड़ेल देता है, जबकि इसकी १५ मिलि. की मात्रा घातक होती है, भिन्न-२ सर्पों में इस अनुपात में भेद होता है। यह विष हलका, पीला ग्लिसरीन जैसा दिखाई देता है। इसका दुष्प्रभाव वातनाड़ियों तथा रक्त पर होता है।

चिकित्सा—तत्काल उस दंष्ट स्थान को ब्लेड आदि से काटकर उसमें से कुछ रक्त बहा दें, जहां काटा हो उससे ऊपर कपड़े आदि से कसकर बांध दें, रुग्ण को थोड़ी-२ देर में २-२ तोला की मात्रा में 'नरमूत्र' प्रकारान्तर से पिलायें। वह मूत्र कुष्ठी मधुमेही या प्रमेही पुरुष का न हो। इस सम्बन्ध में शास्त्र का आदेश है, 'नरमूत्र गरं हन्ति', नरमूत्र विषनाशक होता है तथा 'मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्द्रिहिक्का श्वासगरेषु च'। अर्थात् प्यास,वमन,हिक्का श्वास, विष प्रयोग में बार-बार औषधि का प्रयोग कराना चाहिये।

नरमूत्र का सेवन कराकर हमने अनेक बार सर्पदष्ट रोगी पर सफलता प्राप्त की है। दंष्ट स्थान पर फिटकरी के घोल में भिगोया हुआ कपड़ा रखें और इसे बदलते रहें। एक बार रखे हुए कपड़े का पुनः रखने में उपयोग न करें।

दंष्ट स्थान पर नीबू को काटकर रगड़ते रहें, आप ध्यान से देखें नीबू का रङ्ग बदलता हुआ नजर आयेगा, इसी प्रकार २-४ नीबू रगड़कर ही विश्रामलें, लाभ होगा। फिर चिकनी मिट्टी का लेप लगा दें।

अथवा शार्ङ्गधर संहिता में निर्दिष्ट संजीवनी वटी का लेप लगायें, सूख जाने पर फिर नया लेप लगायें।

अथवा सिरीष की जड़ की छाल, पत्र, पुष्प तथा बीजों को गोमूत्र से पीसकर लेप करें और लेप को सूखने पर बदल दें। इस बदले हुए लेप को ऐसे स्थान पर फेंकें जहां से कोई पशु, पक्षी, बालक आदि मुख में न डाल सकें।

श्वान दंश (Rabies)—सामान्य रूप से कुत्ते के काटने पर किसी प्रकार का भावी आतंक नहीं होता है, किन्तु यदि पागल कुत्ता काट लेता है तो उसकी चिकित्सा तत्काल करानी चाहिए। इसकी चिकित्सा व्यवस्था सरकार की ओर से निःशुल्क की जाती है। शहरों में नकि देहातों में, कुत्ते और मनुष्य, पशु आदि गावों, देहातों में भी अधिक संख्या में रहते हैं।

विकृति लक्षण पागल कुत्ता जब किसी पुरुष को काट लेता है, तो वह जल या जलाशय, (कुआं, नदी, तालाब) को देखकर डरने लगता है, भोजन उसके गले में आसानी से नहीं उतर पाता, उसे जलसन्त्रास (Hydrophobia) रोग हो जाता है। यह रोग पागल गीदड़ तथा भेड़िया के काटने से भी होजाता है, इधर पागल कुत्ता, भेड़िया, गीदड़ के स्वभाव मे भी सहसा परिवर्तन आजाता है, उसके भौंकने का स्वर पहले की अपेक्षा बदला हुआ प्रतीत होता है, उसके मुंह से लार चूने लगती है, वह बेचैन हो इधर-उधर घूमने लगता है, किसी एक स्थान पर स्थिर नहीं रह पाता, कभी-२ पक्षाघात भी होजाता है, कुछ दिनों बाद वह स्वयं मर जाता है। यदि वह काटने के बाद पूर्ण स्वस्थ दिखलाई दे और १ सप्ताह के बाद भी जीवित दिखलायी दे तो उसे किसी हालत में पागल न समझें।

चिकित्सा—कुत्ता, सियार आदि के पागल लक्षणों द्वारा दंष्ट कर देने से सर्व प्रथम कफ धातु दूषित हो जाती है, तदनन्तर वह वात दोष को प्रकुपित कर देती है। अतः दंष्ट स्थान पर से रक्तमोक्षण करें, तदनन्तर बैंगन के वृन्त को जला उसके गुल से दंष्ट स्थान को जला दें, उस जले स्थान पर गोघृत लगा दें। उसके

बाद रोगी को "पंचतिक्त घृत" १ या २ तोला गाय के दूध के साथ १ सप्ताह सेवन करायें।

अथवा गुड़, तेल, मदार दूध सामभाग मिला इसका लेप लगायें। इसका नाम 'श्वानविषहर लेप' है।

शुद्ध कुचिला में चौथाई भाग काली मिर्च मिला मात्रा अवस्थानुसार मात्रा निर्धारण कर देते रहने से विष की शांति हो जाती है।

धतूरयोग—काले धतूरे का रस, दूध, शुद्ध देशी घी और गुड़ १०-१० तोला मिला मात्रा के अनुसार पिलाने से विष शमन हो जाता है।

विच्छू विष (Scorpion Sting)—वृश्चिकस्य विष पुच्छे'। अर्थात् विच्छू के पूंछ के अन्तिम मोड़ में सुई के समान नुकीली विष ग्रंथि होती है। इसको चुभा देने से दाह युक्त असह्य वेदना होती है, जो दंष्ट स्थान से ऊपर की ओर फैलती है।

चिकित्सा—सर्व प्रथम दंष्टस्थान पर चाकू या ब्लेड से छील कर थोड़ा सा रक्तस्राव करावें। उस पर स्प्रिट से भीगा हुआ वस्त्र रखें, सूखने पर उसे बदल दें। यह प्राथमिक उपचार है इससे वेदना शमन होगा।

तदनन्तर दष्ट स्थान पर घी, नमक को मिला गर्म करके लेप की भांति लगायें तथा पीने के लिये विषम मात्रा में मधु-घृत मिला पीने के लिए दें।

अथवा चूना और नौसादर सामभाग मिला उसमें २-४ बून्द पानी डाल सुंघाना चाहिये, इससे बेहोशी तत्काल दूर होजाती है।

यहां जो भी रोग तथा उनकी चिकित्सा लिखी गयी है, वह मृत्यु के मुख में जाते हुए रोगी को राहत देने के लिए है। फिरतो आप चिकित्सा कर या करा सकते हैं। इन आश्चर्यप्रद प्रयोगों पर विशेष ध्यान दें।
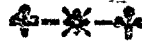
कतिपय रोगों की संकटकालिक चिकित्सा → पृष्ठ ७१ का शेषांश

मूत्रावरोध के रोगियों को करायें और इसका परिणाम जो मिले उसे हमें सूचित करें। यह हमारी हार्दिक अपील है।

(९) गर्भपात जन्य रक्तस्राव—यह केस फरवरी १९७९ का है। मनोरमा बहन के अधिक संतान के कारण गर्भपात निष्णात डाक्टर के यहां ३ महिने का गर्भ का पात कराया। रक्तस्राव भी उस समय बन्द हो गया था। गर्भपात के १ सप्ताह बाद रक्तस्राव प्रारम्भ होगया। फिर उसी डाक्टर के पास चिकित्सा के लिए गई। डाक्टर महाशय ने इन्जेक्शन आदि दिया। रक्तस्राव बन्द हो गया। ४ दिन बाद पुनः रक्तस्राव प्रारम्भ हो गया। फिर उसी डाक्टर महाशय के पास चिकित्सा हेतु गयी। पुनः डाक्टर ने पूर्ववत दवा दी, रक्तस्राव बन्द हो गया। इसके बाद एक सप्ताह बाद पुनः रक्तस्राव प्रारम्भ हो गया। अब ये डाक्टरी दवाओं से काफी निराश हो गई थी। इसलिये शायद आयुर्वेद की शरण में आई हो। मैंने मनोरमा बहन का परीक्षण करके बाद में उन्हें गरम आहार जैसे मिर्च, काली मिर्च, गरम मसाला आदि सब बंद करा दिया। दूध, घी, सौंफ जैसे शीत आहार खाने की विशेष सलाह दी। शुद्ध सौराष्ट्री २ ग्राम, चन्द्रकला रस आधा ग्राम, नागकेशर आधा ग्राम की १ मात्रा की ऐसी ६ पुड़िया शहद के साथ ४-४ घण्टे पर खाने को दी। एक ही पुड़िया खाने से रक्तस्राव बन्द हो गया। रक्तस्राव बन्द होते ही शेष पुड़िया का उपयोग करूं या न करूं इसे पूछने के लिये हमारे पास आयीं मैंने उन्हें शेष दवा खाने की सलाह दी और कहा दो दिन तक दवा लो। तीन दिन की चिकित्सा में मनोरमा बहन का रक्तस्राव नहीं हुआ। नियमित मासिक धर्म आता है।
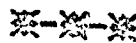
आयुर्वेद में सङ्कटकालीन चिकित्सा नहीं, एक भ्रामक प्रचार

वैद्य ब्रजबिहारी मिश्र एम. ए. (द्वय), आयुर्वेद रत्न
संगठन मन्त्री—अ. भा. आयु. सम्मेलन, बिन्दकी (फतेहपुर) उ० प्र०

वैद्यराज श्री ब्रजबिहारी मिश्र आयुर्वेद जगत के जाने-माने लेखक हैं एवं पीयूषपाणि चिकित्सक के रूप में आपने अपने क्षेत्र में बड़ा ही सुयश तथा सम्मान प्राप्त किया है। मिलनसार, सेवाभावी और संगठक तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में आपका सम्माननीय व्यक्तित्व है। आप अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के उत्तर प्रदेशीय संगठन मन्त्री तथा श्री संस्कृत मार्तण्ड विद्यालय, बिन्दकी के प्रवन्धक एवं सुप्रसिद्ध हिन्दी दैनिक पत्र "आज" के पत्र प्रतिनिधि हैं। आपने प्रत्येक खण्ड के लिए लेख भेजकर कृतार्थ किया है। —विशेष सम्पादक।

आयुर्वेद विद्वेषियों द्वारा सुनियोजित ढङ्ग से प्रचारित एवं प्रसारित इस भ्रामक धारणा ने कि आयुर्वेद में सङ्कटकालीन रोगों के निवारण की आशुलाभकारी चिकित्सा नहीं है, जन साधारण से लेकर बड़े बड़े राजनेताओं एवं अशिक्षितों से लेकर उच्चकोटि के शिक्षाविदों तक को भ्रमित कर रक्खा है जबकि यथार्थ इसके ठीक विपरीत है अर्थात् आयुर्वेद में ही संकटकालीन व्याधियों के अच्छे करने की क्षमता है, अन्य चिकित्सा पद्धतियों में नहीं। मेरे उक्त लिखने का आशय आयुर्वेद की प्रशंसा तथा अन्य चिकित्सा पद्धतियों की निन्दा करने से नहीं है अपितु आयुर्वेद की औषधियों का सर्वव्यापकत्व एवं अन्य चिकित्सा पद्धतियों का सर्वत्र न प्राप्त होना है। औषध के अभाव में सुयोग्य डाक्टर चिकित्सा करने में असमर्थ हो जाता है जबकि वैद्य उसी क्षेत्र की किसी न किसी जड़ी बूटी से रोगशमन करने में सफल रहता है। परीक्षण तथा उपकरण के अभाव में आधुनिक चिकित्सक रोग निवारण की कौन कहे सम्यक निदान नही कर पाते जबकि वैद्य नाड़ी आदि पंचविध परीक्षणों से न केवल रोग निदान अपितु तत्कालीन उचित चिकित्सा कर रोगी को प्राणदान देने में सफल रहते हैं। संकटकालीन अवस्था में जहां डाक्टर उपकरण के अभाव का रोना रोकर रोगी को बड़े शहर में जाकर चिकित्सा कराने का परामर्श देता है वहीं अपनी प्रत्युपन्नमति से आयुर्वेदज्ञ किस प्रकार रोग निवारण करता है वह निम्न यथार्थ वर्णन से स्पष्ट होगा—

बच्चे के शिश्न से पैसा निकालना—बात पुरानी है। हमारे नगर बिन्दकी के ठठराही मुहल्ले के ठठेर जाति का एक २-३ वर्षीय बालक खेल-खेल में अपने शिश्न में छेद वाला तांबे का पैसा (उन दिनों १ पैसे का सिक्का छेददार चलता था) बार-बार डालता और उसे निकाल लेता। दूसरे बालक इस कृत्य को देखकर हंसते और उस बालक को पुनः पुनः इसे करने की प्रेरणा देते। थोड़ी देर तो यह खेल चलता रहा किन्तु कुछ समय पश्चात् पैसा बालक के शिश्न मूल में फँस गया और शिश्नेन्द्रिय में सूजन आ गई तथा दर्द होने लगा। बालक की पीड़ा बढ़ती गई और वह चिंघाड़ मारकर रोने लगा। जब उनके माता-पिता को पता लगा तो उन्होंने पैसा निकालने का यत्न किया किंतु सूजन एवं वेदना के कारण शिश्नेन्द्रिय छूने मात्र से बालक को मर्मान्तिक वेदना होती। वे लोग नगर के राजकीय चिकित्सालय में ले गये जहां डाक्टर ने पैसा निकालने का निष्फल प्रयत्न किया किंतु बालक की असह्य पीड़ा तथा बेहोशी देने की दवा के अभाव मे बालक को त्राण देने में असमर्थता व्यक्त करते हुए डाक्टर महोदय ने उसे शीघ्र कानपुर के हैलेट हास्पीटल ले जाने का परामर्श दिया। मरता क्या न करता। बालक के माता-पिता कानपुर ले जाने की तैयारी करने लगे। तब तक किसी सज्जन ने वैद्यराज पं० मन्नूलाल मिश्र को दिखाने का परामर्श दिया। बालक को वैद्य जी के पास ले गए तथा डाक्टर द्वारा कानपुर ले जाने के परामर्श से अवगत कराया। वैद्य जी हँसे और २ पैसे की बर्फ लाने का आदेश दिया। बर्फ आते ही वैद्य जी ने उसे पिसवाकर

आधी दायें और आधी बायें हाथ में कम्पाउण्डर को देकर बालक के शिश्न के ऊपर नीचे से दबाये रखने को कहा। पहले तो बालक बहुत रोया, हाथ-पैर चलाये किन्तु कुछ ही क्षण में शान्त हो गया। बरफ की शीतलता के कारण कुसी शिश्न सिकुड़ गई और पैसा आसानी से बाहर निकल आया। सैकड़ों रुपया व्यर्थ में व्यय होने से बच गया। आयुर्वेद का चमत्कार देख सभी वैद्य जी के प्रति नतमस्तक हो चले गये।

सङ्कटकालीन रोग और आयुर्वेद

संकटकालीन रोगों के अन्तर्गत मूर्च्छा, हृद्गति अवरोध, उदरशूल, वृक्कशूल, रक्तस्राव, ऊर्ध्वरक्तपित्त, धनुर्वात, अर्दित, पक्षाघात, विष भक्षण, सर्पदंश, वृश्चिक (बिच्छू) दंश, बर्रे दंश, पागल कुत्ते का काटना, पागल शृगाल का काटना, ऊपर से गिरने से अस्थि भङ्ग, चोट, मोच, सूजन, जल में डूबना, शस्त्र से आघात लगना, विशूचिका (हैजा), कर्ण, दन्त, मस्तिष्क शूल आदि आते हैं। उपर्युक्त संकटकालीन रोगों के शमन में आधुनिक चिकित्सा काफी सफल है किन्तु आधुनिक सभ्यता से कोसों दूर जङ्गल में रहने वाले हमारे वनवासियों के मध्य आधुनिक औषधियाँ अभी उन लोगों तक नहीं पहुँच पाई हैं। आधुनिक चिकित्सा में सर्पदंश की चिकित्सा सर्पविष प्रतिविष के सूचीवेध द्वारा की जाती है किन्तु देहात में या वन में जहां उक्त सूचीवेध प्राप्य नहीं है वहाँ सर्पदंश की चिकित्सा करने में आधुनिक चिकित्सा असमर्थ है। आयुर्वेद नरमूत्र के साथ संजीवनी वटी खिलाकर सर्पदंश ठीक करता है। यदि संजीवनी वटी नहीं है और रोगी स्वमूत्र भी पान नहीं करना चाहता तो वन्योषधि के द्वारा सर्प बिच्छू और बर्रे दंश के आयुर्वेद रोगियों को अच्छा करता है।

इसी प्रकार अस्थिभग्न को हड़जोड़ के लेप से, चोट मोच में हल्दी, चूना मिलाकर गरम लेप लगाने से शीघ्र लाभ होता है। फिटकरी को दूध के साथ पिलाने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। प्याज के रस और पोदीना के रस को मिलाकर देने से विशूचिका में तत्काल लाभ होता है। उदर शूल को मिटाने हेतु गुड़ और चूना मिलाकर रोगी को गरम जल से देने से तत्काल लाभ होता है। वृक्कशूल में गरम जल के सेक से लाभ होता है। सिंगिया, संखिया विष के प्रभाव को दूर करने के लिए आयुर्वेद प्रथम रोगी को वमन कराने का परामर्श देता है फिर गोघृत पिलाने से लाभ होता है। जल में डूबे हुए व्यक्ति को जल से बाहर निकाल कर पेट के पानी को निकाल देना चाहिए फिर यदि जरा भी श्वास है तो तुरन्त नमक पिलाकर नीचे ऊपर बिछाकर रोगी को लिटा देना चाहिए। १ घण्टे के भीतर ही रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। पागल कुत्ते के काटे स्थान में चीरा लगाकर रक्त निकाल देना चाहिए, फिर उसमें कुचला चूर्ण को पीसकर भर देने से विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है। कर्णशूल मिटाने के हेतु हुरहुर की पत्ती का स्वरस या प्याज का स्वरस थोड़ा गरम करके कान में डालना चाहिए, शीघ्र आरोग्य मिलता है। इसी तरह दन्तशूल के लिए आयुर्वेद में लौंग का तेल लगाने का विधान बताया गया है। तेल न निकलने पर लौंग दबा देने से भी लाभ होता है। आयुर्वेद के अनुसार कोई भी वनस्पति ऐसी नहीं है जिसका उपयोग रोग निवारण हेतु न हो। आवश्यकता है उसके गुण तथा उपयोग विधि जानने की। अतः यह कहना कि 'आयुर्वेद में संकटकालीन रोग निवारण की शीघ्र फलदाई चिकित्सा नहीं है' निरी मूर्खता है।

—:o—o:—

आयुर्वेद में सद्यः चिकित्सा

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज बी० एस० ए० एम०

श्री अशोक भाई तलाविया, गुजरात के प्रसिद्ध वैद्य श्री शोभन भाई वैद्य के सुपुत्र हैं तथा गुजराती भाषा में स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। हिन्दी में उनका यह पहला लेख है। आशा है भविष्य में भी आपका सहयोग मिलता रहेगा।

आपके अनुभूत प्रयोग' निश्चय ही पाठकों के लिये उपयोगी सिद्ध होंगे।

—गिरिधारीलाल मिश्र।

चिकित्सक के पास रोगी अपना चिकित्सा कराने हेतु आता है। तब उसे एकमात्र इच्छा होती है कि वैद्य जी अतिशीघ्र मुझे व्याधि से मुक्ति दिलवा दें। भावार्थ यह है कि जो भी रोग है वह सभी सद्यः चिकित्सा के लिए है। चिकित्सक का धर्म है कि सभी रोग की अति शीघ्र चिकित्सा करके रोगी के प्राण की रक्षा करना। ज्वर, अतिसार, अम्लपित्त, अश्मरी, व्रण, शिरोरोग इत्यादि सभी रोग में सद्यः चिकित्सा ही करनी चाहिए। आयुर्वेद के संहिता ग्रन्थों में भी जगह जगह पर आशुफलप्रद औषध का वर्णन मिलता है। सद्यः, अचिरात, त्वरया, तत्काल आदि शब्दों का प्रयोग करके सद्यः चिकित्सा बतलाई है।

वर्तमान समय में आयुर्वेद के सामने एक बड़ी समस्या सद्यः चिकित्सा की है क्योंकि उनके सामने आधुनिक चिकित्सा विज्ञान जैसे प्रगतिशील चिकित्सा पद्धति खड़ी है। तब हम आयुर्वेद के सहारे क्या सद्यः चिकित्सा कर सकते हैं? यह प्रश्न युवा वैद्य के सामने जरूर आता है। दूसरा विकट प्रश्न यह है कि अधिकतम आयुर्वेद स्नातक आयुर्वेद को अपनाना ही नहीं चाहते। अतः इमरजेंसी और आयुर्वेद के प्रत्यक्ष अनुभव वह कर ही नहीं सकता?

हमारा आयुर्वेद पुराना है। शाश्वत है। निर्दोष चिकित्सा पद्धति है। सुश्रुत शस्त्र क्रिया का ग्रन्थ है। चरक काय चिकित्सा का ग्रन्थ है। माधव निदान का का ग्रन्थ है। यह सब हम हर जगह बोलते हैं, लिखते हैं, पढ़ते भी हैं। मगर अनुभवात्मक दृष्टि से कुछ करने को तैयार नहीं हैं। यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। कोई भी रुग्ण चिकित्सा हेतु हमारे पास आता है तो उसका पूरा विवरण सुनकर हिम्मत देकर चिकित्सा करनी चाहिए। बात-बात में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के सर्जन या कोई विशेषज्ञ के पास भेज देना आयुर्वेद का अपमान है। अपनी तो मानहानि होगी ही। अच्छी

तरह शास्त्र पढ़कर, सोचकर, अनुभवी चिकित्सक के अनुभव को पढ़कर जो वैद्य सद्य चिकित्सा करते हैं। उन्हें अवश्य ही सफलता मिलती है।

(१) शीतपित्त—यह व्याधि अतिशीघ्र उत्पन्न हो जाता है। त्वचा पर शोथ, कण्डू, दाह उत्पन्न होता है। रोगी को बार-बार उल्टी होगी, ऐसा महसूस होता है। रोगी बेचैन हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में निम्न चिकित्सा दें। इससे रोगी अति शीघ्र अच्छा हो जाता है—

१. शु० सुवर्ण गैरिक १ ग्राम, शु० नवसार २५० मिग्राम, कुटकी चूर्ण ७५० मिग्राम। ऐसी तीन मात्रा दिन में तीन बार शहद के साथ दें।

२. हरिद्रा खण्ड ५ ग्राम दिन में तीन बार उष्णोदक के साथ दें।

३. शीतपित्त भंजन रस, मयूरपिच्छ भस्म २५०-२५० मिग्राम, आरोग्यवर्धनी रस ५०० मिग्राम, मंजिष्ठादि चूर्ण १ ग्राम। ऐसी एक मात्रा प्रति तीन घण्टे पर उष्णोदक के साथ दें।

४. सरसों के तेल को गरम करके उसमें यथावश्यक हरिद्रा चूर्ण तथा सोडा बाई कार्ब अर्थात् खाने का सोडा मिलाकर सम्पूर्ण शरीर पर अभ्यङ्ग करना चाहिए।

५. रोगी को पथ्य आहार के रूप में चावल एवं दूध देना चाहिए। उपरोक्त उपचार से शीतपित्त अति शीघ्र अच्छा हो जाता है। यह योग हमारा अनुभूत है। इससे मैंने सैंकड़ों रोगियों को ठीक किया है।

(२) शिरःशूल—शिरोरोग का शिरःशूल एक लक्षण है। शिरःशूल अनेक रोगों में देखने को मिलता है। शिरःशूल का एकाएक आगमन होता है। इसके शमन के लिए आधुनिक चिकित्सा विज्ञान पीड़ाशामक औषधियों की एक लम्बी लाइन है जिसे लेते ही शिरःशूल गायब हो जाता है। आयुर्वेद में भी शिरःशूल की सद्य चिकित्सा है जिसे लेते ही शिरःशूल पूंछ उठाकर भागता है। फिर कभी पीछे देखने की हिम्मत भी नहीं करता। मैंने निम्न योग से हजारों शिरःशूल के रोगियों को अच्छा किया है।

१. अपामार्ग क्षार ५०० मिग्राम, गोदन्ती भस्म १ ग्राम।

ऐसी एक मात्रा शर्करा मिश्रित जल के साथ देने से शिरःशूल में तात्कालिक लाभ होता है। यह योग गुजरात के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री शोभन वसाणी का है। वर्षों पूर्व उनके द्वारा यह औषध व्यवस्था गुजरात के वैद्यों के सामने आई गुजरात में इसका प्रचार-प्रसार भी हुआ। गुजरात के आयुर्वेद जगत ने इसे अपनाया है। इसके लिए शोभन भाई वसाणी धन्यवाद के पात्र हैं।

शिरःशूल की सद्य चिकित्सा हम निम्न प्रयोग से भी करते हैं जिससे सन्तोषकारक परिणाम मिलता है—

२. अपामार्ग क्षार ५०० मिग्राम, गोदन्ती भस्म १ ग्राम, मृगश्रृङ्ग भस्म, लक्ष्मीविलास रस, सुवर्ण माक्षिक भस्म तीनों २५०-२५० मि:ग्रा.।

ऐसी २ मात्रा दिन में ३ बार शहद के साथ दें।

३. शिरोरोग हर वटी २-२ गोली, शिरःशूलादि वटी २-२ गोली तीन बार पानी के साथ दें।

४. कपाल प्रदेश पर शुण्ठी को पानी में मिलाकर गरम करके प्रलेप करें।

५. शुक्ति भस्म तथा नवसार समान मात्रा में लेकर थोड़ा पानी मिलाकर तुरन्त रोगी को सूंघने के लिए दें। यह पंडित भावप्रकाश मिश्र जी का योग है जो आशुफलप्रद है।

६. शिरःशूल में बंधन, सेक, नस्य कर्म भी आशुफलप्रद है। यह औषध व्यवस्था से शिरःशूल तुरन्त ही मिट जाता है।

(३) चर्मकील—इसकी गणना क्षुद्र रोगों में की गई है। यह तीक्ष्ण कंटक जैसा सूक्ष्म अंकुर होता है। इसका वर्ण रक्त होता है। इसमें वेदना, दाह भी होता है। इस रोग का आगमन एकाएक होता है। इसकी त्वरित चिकित्सा निम्न है—

१. आरोग्यवर्धनी रस ५०० मिग्राम, गन्धक रसायन २५० मिग्राम, मन्जिष्ठादि चूर्ण १ ग्राम, त्रिफला चूर्ण

—शेषांश पृष्ठ ८१ पर देखें।

आशुकारी चिकित्सार्थ उपयोगी कतिपय आयुर्वेदीय विधियां

डा० शिवनारायण गुप्ता एम. डी. (आयु०), व्याख्याता, जो० शं० आयु० महाविद्यालय, नडीयाद (गुज०)

※०—०※

जन्म–कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा सं. २०११ को जिला राजगढ़ (म.प्र.) लखनवास में हुआ। सन् १९७२ में बी. ऐस-सी. उत्तीर्ण कर आयुर्वेद महाविद्यालय में प्रविष्ट हुये। इन्दौर विश्वविद्यालय से बी. ए. एम. एस. की परीक्षा १९७७ में सर्वोच्च अङ्कों से एवं रसशास्त्र, काय-चिकित्सा, शालाक्य तन्त्र एवं चरक संहिता विषयों में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण की तथा इस उपलक्ष्य में "स्वर्ण पदक" प्राप्त किया। विद्यार्थी काल में तीन वर्षों तक इन्दौर विश्वविद्यालय के आयुर्वेद-संकाय में बोर्ड्स आफ स्टडीज की सदस्यता। दो वर्ष तक इन्दौर वि०विद्यालय महासभा (सेनेट) की सदस्यता। १९८१ में आयुर्वेद वि०विद्यालय जामनगर से एम. डी. (आयु.) उपाधि संप्राप्त की। प्रति–श्री जो.शं.आयुर्वेद महाविद्यालय नडीयाद में अध्यापन एवं संलग्न चिकित्सालय में निवासीय चिकित्सा अधिकारी का प्रभार। प्रकाशन–यावत्-तिथी लगभग २५ शोध प्रबंध एवं लेख प्रकाशित। —वैद्य गिरिधारीलाल मिश्र।

आत्ययिक चिकित्सा या आशुकारी चिकित्सा लगभग समानार्थी शब्द हैं। 'आत्ययिक' शब्द मूल शब्द अत्यय से बना है। अत्यय शब्द की व्युत्पत्ति 'अति' धातु मे 'इण–अच्' प्रत्यय लगाने से होती है। इस शब्द का अर्थ है अतिक्रम, अभाव, विनाश, कार्यस्य अवश्यम्भावी अभाव। वाचस्पत्यं में अत्यय शब्द का ग्रहण 'विलम्वाक्षम कार्य' के लिये भी किया है। इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है कि अत्यय मे कालातिक्रम असह्य है। संक्षेप मे अत्यय एक ऐसी अवस्था है जिसमे विनाश या मृत्यु संभावित है और जिसके निराकरण के लिए अविलम्ब कार्य करना आवश्यक है। इस संदर्भ मे आत्ययिक अवस्था वह अवस्था होगी जिसमे रोगी के प्राण सङ्कट में हो या तीव्र वेदना आदि लक्षणों के कारण वह मृत्यु समान सङ्कट को भोग रहा हो। ऐसी दशा में तुरन्त संभी प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जो उसे इस सङ्कट से बाहर निकाल सके। इस अवस्था मे जो उपक्रम किया जाएगा उसे आत्ययिक चिकित्सा कहेंगे जोकि निश्चय ही आशुकारी होनी चाहिये।

सामान्यतः एक धारणा बन गई है कि आत्ययिक अवस्था में आयुर्वेद पद्धति से कुछ नहीं किया जा सकता। यह धारणा नितान्त आधारहीन एवं मात्र भ्रम ही है। यद्यपि आत्ययिक अवस्था में किसी चिकित्सा पद्धति के लिये आग्रह नही रखा जा सकता है क्योंकि इस अवस्था में प्रथम सिद्धान्त रोगी के प्राणों की रक्षा है। आयुर्वेदेतर औषधियां यदि आयुर्वेदीय सिद्धान्तों पर खरी उतरती हों तो उन्हे अपनाने में कोई विरोध नही हो सकता क्योंकि आयुर्वेद की दृष्टि बहुत व्यापक है, ससार की सभी चिकित्सा विधियो का इसमें समावेश हो सकता है शर्त यही है कि वे निर्दोष हो और आयुर्वेद सम्मत हों। औषध के सम्बन्ध में आयुर्वेद का प्रधान मापदण्ड यह है कि जो व्याधि का शमन करे परन्तु अन्य व्याधि को उत्पन्न न करें। यदि जो आधुनिक औषधियां इस शर्त को पूरा करती हो उनका उपयोग करने में आयुर्वेद का विरोध नहीं हो सकता। परन्तु आत्ययिक

अवस्था में तो इस सिद्दान्त का उल्लंघन करना भी अपराध नहीं है। अतः आत्ययिक अवस्था में कोई भी आशुकारी औषध या उपक्रम जिसके विषय में चिकित्सक ज्ञान रखता हो, निषिद्ध नहीं है। तथापि आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को आत्ययिक ग्राह्य एवं लोकप्रिय बनाने के लिए आयुर्वेद व्यवसायियों को आत्ययिक अवस्था में भी यथासम्भव आयुर्वेदीय चिकित्सा विधियों का प्रयोग करना चाहिए। उनमें संशोधन परिवर्धन करके विकास की दिशा देना चाहिये।

हमारी अधिकांश औषधियां बहुत विलम्बित परिणाम दिखाती हैं जिसका कारण है कि हमारा औषध सेवन का मुख्य तरीका मौखिक है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे पास आशुकारी औषधों का नितान्त अभाव है। फिर मात्र औषधियां आशुकारी नहीं होती हैं, कई अन्य विधियां भी हमारे यहां वर्णित हैं जो आशुकारी प्रभाव दिखाती हैं। आयुर्वेदीय उपचार विधियों का किंचित् परिवर्तन परिवर्धन के साथ आशुकारी चिकित्सा के रूप में उपयोग किया जा सकता है। यहां उन्हीं उपचार विधियों का विभिन्न आत्ययिक अवस्थाओं में आशुलाभार्थी प्रयोग के लिये वर्णन किया जा रहा है। इन विधियों में पूर्वकर्म सहित शोधन की विधियां मुख्य हैं।

अभ्यङ्ग—अभ्यङ्ग द्वारा विभिन्न प्रकार की तीव्रावस्थाओं में शीघ्र लक्षणोपशम प्राप्त किया जा सकता है।

गन्ध बिरोजा तैल का अभ्यङ्ग, उदरशूल, मांसपेशियों की वेदना में शीघ्र वेदनाशामक प्रभाव दिखाता है। इसकी यह क्रिया काउन्टर इर्रीटेशन कर्म द्वारा सम्पादित होती है। सर्षप तैल भी काउन्टर इर्रीटेशन द्वारा वेदनाशमन करता है परन्तु इसका प्रभाव अल्प है।

तीव्र कण्डू की अवस्था में मरिचादि तैल का अभ्यङ्ग तात्कालिक कण्डू शान्त करता है।

अनिद्रा की अवस्था में शिरोभ्यङ्ग अथवा घृत द्वारा पादाभ्यङ्ग शीघ्र निद्रा लाता है। एतदर्थ पादतल में धीरे धीरे घृत का अभ्यङ्ग करना चाहिये।

हस्तपाद तल दाह की अवस्था में शतधौत घृत का अभ्यंग रोगी को तात्कालिक राहत पहुँचाता है।

स्वेदन—यह बहुत महत्वपूर्ण कर्म है। विभिन्न रोगों में विचारपूर्वक प्रयोग करने पर रोगी को शीघ्र लक्षणोपशम प्रदान करता है।

श्वास के रोगियों में वक्ष पर अभ्यंग करके स्वेदन करने से श्वास की तीव्रता कम होती है। शास्त्र में स्वेदनार्थ नाड़ी, प्रस्तर या शङ्कर स्वेद का विधान है परन्तु हाट वाटर बेग या अन्य इसी प्रकार के उपकरण से भी स्वेदन किया जा सकता है।

हिक्का के रोगियों में वक्षस्थल पर अभ्यग स्वेदन करना चाहिए। इस दौरान रोगी मुख बन्द करके नासा से जोर जोर से श्वास लेता और छोड़ता रहे। इस प्रकार हिक्का शीघ्र शान्त हो जाती है। युरीमिया प्रभृति कारणों से अतिरिक्त हिक्का में इस क्रिया से शीघ्र लाभ होता है।

मूत्रावरोध की अवस्था में जहां कोई रचनात्मक विकृति न हो तो वस्ति प्रदेश पर स्वेदन करने से मूत्र प्रवृत्ति होती है।

स्वेदन का वेदनाशामक प्रभाव तो सर्वविदित है ही। प्रायः सभी प्रकार की वेदनाओं में स्वेदन लाभ करता है। आमवात के रोगियों में सन्धिशोथ एवं वेदना के कारण अत्यन्त कष्ट होता है। ऐसी अवस्था में बालुका की पोटली द्वारा स्वेदन करने से वेदना अल्प होती है और धीरे धीरे शोथ भी कम होता है। दिन में ३-४ बार ऐसा करने पर सामान्यतः अन्य वेदनाशामक औषध लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अर्श गुदविदर (फिशर) एवं भगन्दर के रोगियों में गुदा में असह्य वेदना होती है। इन रोगियों में वेदना शमनार्थ उष्णोदक में अवगाह स्वेदन (विशेषकर गुद प्रदेश में स्वेदन हो ऐसी स्थिति में रखकर) देने से वेदना में तत्काल लाभ होता है। अर्श और भगन्दर में क्षारसूत्र विधि से शल्य कर्मोपरान्त वेदना के प्रशमन के लिए भी उक्त कर्म लाभदायक होता है।

प्लुरिसी एवं प्लुरल एफ्युजन में वक्ष पर हाट वाटर बेग से या उपनाह द्वारा स्वेदन करना चाहिए। इससे वेदना शान्त होती है।

वमन—शास्त्रोक्त शोधनार्थ कर्मों में यह एक प्रमुख कर्म है। यह एक त्वरित प्रक्रिया है अतः इसके द्वारा सम्पादित परिणाम भी त्वरित होता है।

विष पीतावस्था में वमन एक नितान्त आवश्यक कर्म है। कुछ विषों के प्रभाव से वमन स्वतः होने लगता है। परन्तु जिन विषों में वमन नहीं होता है उनमें वमन करवा के आमाशय से विष की यथासम्भव मात्रा का निर्हरण कर देना चाहिये जिससे उसका शोषण न हो सके और विष की तीव्रता कम हो जाये। विषपीत में वमन करवाने में यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि रोगी होश में हो और पूरी तरह सहकार करता हो, अन्यथा बेहोश और असहकारी रोगी में वमन के स्थान पर आमाशय प्रक्षालन करवाना चाहिये। वमन से विष का कुछ शोषित अंश भी निर्हरण हो सकता है।

विदग्धाजीर्ण के कारण कभी-कभी रोगी को बहुत कष्ट होता है। अम्लोद्गार, उरोदाह के कारण वह बहुत व्यथित हो जाता है। ऐसे में वमन करवाने से विदग्ध पित्त एवं आम का निर्हरण होने से उसे तुरन्त शांति मिल जाती है।

आत्ययिक चिकित्सार्थ वमन करवाने के लिए आवश्यक नहीं कि शास्त्रोक्त वमन विधि का पालन किया जाय। सुखोष्ण लवण जल का प्रयोग करके भी वमन कराया जा सकता है। श्वास के रोगी में भी अभ्यङ्ग स्वेदोपरान्त लवण जल द्वारा वमन कराने से राहत मिलती है। वमन की क्रिया के दौरान वमन केन्द्र के साथ श्वसन केन्द्र (मस्तिष्कगत) भी उत्तेजित होते हैं। महाप्राचीरा की क्रिया से फुफ्फुसों का भी किंचित् पीड़न होता है। इन सम्मलित क्रियाओं के संयुक्त प्रयास से फुफ्फुसगत श्लेष्मा का निष्कासन होता है और श्वास नलिका संकोच दूर होकर रोगी को शीघ्र लक्षणोपशम होता है। वमन जरा कष्टदायक प्रक्रिया प्रतीत होती है पर रोगी को आश्वस्त करके कराना चाहिये। इससे कोई हानि संभाव्य नहीं है।

बस्ति—बस्ति कर्म से इस प्रसंग में गुदमार्ग से कुछ औषध द्रव्य शरीर में पहुँचाना ही हमारा तात्पर्य है।

बिना किसी रचनात्मक विकृति के जब उदर में शूल हो और शूल का क्षेत्र पक्वाशय हो तो दशमूल क्वाथ की निरूह बस्ति देने से त्वरित शूलशमन होता है।

विबन्ध की अवस्था में मात्र उष्णोदक की बस्ति देकर तुरन्त पुरीष प्रवृत्ति कराई जा सकती है।

रक्तातिसार के रोगी में क्षीर बस्ति एवं पिच्छा बस्ति के द्वारा लाभ होता है। अल्सरेटिव कोलाइटिस के रोगियों में भी मोचरस, लोध्र, लाक्षादि सिद्ध अजा दुग्ध की बस्ति देने से रक्त प्रवृत्ति बन्द होती है, क्षत रोपण होता है।

गुद विदर (एनल फिशर्स) के रोगियों में असह्य वेदना होती है। इनमें जात्यादि तैल की अल्प मात्रा गुदा में प्रविष्ट करने से वेदना शीघ्र शमन होती है और धीरे-धीरे क्षतों का भी रोपण होता है।

अनिद्रा के रोगी में वातशामक बस्ति देने से उसे निद्रा लाभ होता है।

सेरीब्रल कन्जेशन की अवस्थाओं में रेचक बस्तियों का प्रयोग करना चाहिये जिससे रेचन होकर कन्जेशन कम होता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में एतदर्थ सान्द्र मेगनीशियम सल्फेट का प्रयोग किया जाता है।

गुदपाक की अवस्था में भी क्षार बस्ति का प्रयोग करने से रोगी को तुरन्त शान्ति मिलती है।

उत्तर बस्ति—मूत्र मार्ग में शोथ या क्षत हो जाने पर मूत्र मार्ग में दाह और वेदना होती है जो कभी-कभी बहुत असह्य हो जाती है ऐसी अवस्था में जात्यादि तैल की उत्तर बस्ति देने से रोगी को तुरन्त लक्षणों में शांति मिलती है। एतदर्थ अन्य वातपित्तशामक स्नेहों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

नस्य—नासा मार्ग द्वारा औषध प्रयोग करना एक उत्तम विधि है। नासा में प्रविष्ट औषधियां नाड़ियों पर तुरन्त प्रभाव डालकर कार्य करवाती है। दूसरी तरफ म्यूकस मेम्ब्रेन द्वारा शोषित होकर लिम्फाटिक सिस्टम द्वारा सीधे मस्तिष्क तक भी पहुंचकर प्रभाव करती है। नासागत श्लेष्मकला (म्यूकस मेम्ब्रेन) औषधियों के लिए श्रेष्ठ ग्राहक है अतः यहां प्रविष्ट औष-

धियां शीघ्र शोषित होकर अपना प्रभाव दिखाती हैं। मस्तिष्क के लिये हानिप्रद द्रव्यों का प्रयोग नासा में नहीं करना चाहिए अन्यथा मस्तिष्क को हानि पहुँचने की संभावना होती है।

मूर्च्छा, संन्यास, अपस्मार, योषापस्मार आदि में संज्ञानाश होता है। संज्ञानाश की अवस्था में तीक्ष्ण नस्यों का प्रयोग करने पर तुरन्त संज्ञा लाभ होता है।

प्रतिश्याय के रोगियों में कभी-२ अत्यधिक कन्जेशन के कारण बहुत कष्ट होता है शिर भारी हो जाता है और श्वास लेने में भी कष्ट होता है। इस अवस्था में श्वास कुठार रस का अल्प मात्रा में नस्य तुरन्त लाभ पहुंचाता है। यह नस्य श्वास के रोगियों में भी तुरन्त लाभ पहुँचाता है प्रतिश्याय की उक्त अवस्था में कट्फल चूर्ण का नस्य भी दिया जा सकता है।

नासागत रक्तस्राव में दूर्वा स्वरस या अजा दुग्ध का नस्य देने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

शिरःशूल अर्धावभेदक में भी नस्य से तुरन्त लाभ मिलता है। अर्धावभेदक में यष्टिमधु और मधु का या मनःशिला और मधु का अवपीडन नस्य प्रयोग करना चाहिए।

रक्तमोक्षण—रक्त मोक्षण द्वारा रक्तगत दोष निवृत्ति तुरन्त होती है और इस प्रकार रोगी को तत्काल लाभ भी मिलता है।

वाम वेंट्रीकुलर फेल्यौर में हृदय का वाम निलय रक्त को शरीर में प्रक्षिप्त करने में अक्षम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप रक्त का दाब वाम आलिन्द एवं फुफ्फुसों में बढ़ जाता है फलतः फुफ्फुसों में कन्जेशन बढ़ जाता है जिससे रोगी तीव्र श्वास कष्ट से पीड़ित होता है। इसमे कभी-२ रक्तष्ठीवन भी होने लगता है। इस अवस्था में सिरा द्वारा १००-५०० मि. लि. रक्त निकाल देने से कन्जेशन कम हो जाता है और रोगी को तुरन्त आराम मिलता है। एतदर्थ ५० सी.सी. वाली सीरिंज का उपयोग करना ठीक रहता है।

उच्च रक्तदाब जन्य (हाइपरटेन्सीव) एनसेफेलोपेथी में भी शीघ्र रक्त मोक्षण करने से मस्तिष्क गत रक्ताधिक्य और रक्तभार कम होता है और रोगी को लाभ भी होता है।

नवीन शोथ में स्थानिक रक्त मोक्षण कराने से शोथ में पाक नहीं होता, वेदना शांत होती है और शोथ भी कम होता जाता है।

सर्पादि विषैले प्राणियों के दंश में त्वरित रक्तमोक्षण कर देना चाहिये। जिससे विष सर्व शरीर में प्रसृत होने से रुक जाय और रक्त द्वारा विष की मात्रा निकल जाने से विष की तीव्रता भी कम हो जाय।

गृध्रसी और विश्वाची के रोगियों में भी तीव्र वेदना की अवस्था में सिरावेध करने पर वेदना शांत होती है।

उपरोक्त विधियां आयुर्वेदीय चिकित्सा में बहुत प्रचलित विधियां हैं परन्तु आत्ययिक अवस्था में इनका प्रयोग बहुत कम किया जाता है। वमन जैसी प्रक्रिया के सम्बन्ध में तो ऐसी मान्यता बन गई है कि यह एक कठिन प्रक्रिया है और आत्ययिक अवस्थाओं में इसे कराना कठिन है। परन्तु ऐसा नहीं है—रोगी का बलाबल देखकर विवेकपूर्वक उपरोक्त किसी भी प्रक्रिया को सम्पादित करने पर रोगी को तुरन्त लाभ पहुंचाया जा सकता है और दूसरी ओर अन्य सङ्कटकालीन चिकित्सा के कारण जो अनिश्चित दुष्परिणाम सम्भाव्य होते हैं उनसे बचा जा सकता है।

वैसे तो आशुकारी चिकित्सार्थ कई विधियां और औषधियां शास्त्रों में वर्णित हैं, लोक में भी प्रचलित हैं परन्तु यहां संक्षेपतः मात्र शोधन की बहुत प्रचलित प्रक्रिया द्वयों, जो आयुर्वेद जगत में 'पंचकर्म' के रूढ़ नाम से सुख्यात है, का ही आशुकारी चिकित्सा के रूप में प्रयोग बताया गया है।

आयुर्वेदीय तात्कालिक चिकित्सा

कविराज अमरनाथ गुलाठी स्नातक, ४०८ सिविल रोड, रोहतक (हरियाणा)

आयुर्वेदीय तात्कालिक चिकित्सा पर प्रकाश डालने से पूर्व यह आवश्यक है कि जन-जन को आयुर्वेद के सत्य-स्वरूप से संक्षेप में अवगत करा दिया जाये। आयुर्वेद मनीषी जन-जन को निरोग रखने, प्राकृतिक स्वास्थ्य से आनन्दित जीवन यात्रा चलाने, अकालमृत्यु से रक्षा करने तथा धर्म- अधर्म एवं काम को मर्य्यादित रूप में भोगते हुए अन्त में मोक्ष प्राप्ति के लिये आयुर्वेद की व्याख्या करते गये। वह संसारिक विषयों में अनासक्त थे। अतः वह आजकल की चिकित्सा-मनीषियों की भांति कोई व्यापारी न थे। फलतः उन्होंने जो भी नियम निश्चित किये वह केवल प्राणीमात्र के स्वास्थ्य रक्षा के लिये ही थे।

यस्मिन देशस्य योः जन्तु।
तज्जन तस्य औषधि हितम् ॥

चिकित्सा विज्ञान का यह अनुपम (Unique) सिद्धांत स्वर्णिम्-अक्षरों में अङ्कित करने योग्य है। इसका संक्षेप में अर्थ यह है कि जो प्राणी जिस देश (पर्वतीय जांगल मरू, पाताल आदि देश जलवायु की भिन्नता के आधार पर निश्चित हैं) में जन्मा है, ईश्वर ने उसकी स्वास्थ्य रक्षा के लिये उसी देश में औषधि रूप में वनस्पतियां आदि उपलब्ध करने की कृपा की है तथा यथासम्भव उन्हीं से चिकित्सा होनी चाहिए, तभी रोग समूल नाश होगा एवं प्राकृतिक स्वास्थ्य सुरक्षित रहेगा। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इस स्वर्णिम् नियम को उल्लंघन कर रहा है, फलतः मानव औषधाभ्यासी एवं सदा रोगी बना जा रहा है। विस्तृत ज्ञान के लिये हमारे लेख आयुर्वेद का सत्य स्वरूप' (हिन्दी) तथा True picture of Ayurved (English) पढ़ें।

निःसन्देह ऐसी-ऐसी वनस्पतियां आदि प्रत्येक देश में उपलब्ध हैं जो वहां जन्मे प्राणियों को तत्काल पीड़ा से रहित करने में समक्ष हैं। अब हम कुछ अपने मौलिक विषय पर लिखते हैं और बताते हैं कि आयुर्वेद में तत्कालिक चिकित्सा कितनी उच्च एवं श्रेष्ठ है तथा अन्य पैथियों से शीघ्र पीड़ारहित करने में सक्रिय है।

(१) सर्पगन्धा—उच्चरक्तचाप को तत्काल सामान्य बनाती है।

(२) समीरगजकेशरी—पीडाशमन में किसी भी पैथी की किसी भी श्रेष्ठतम औषधि से तत्काल पीड़ा शांत करने में उत्तम है। ऐसा हमारा गत ३५ वर्ष से अधिक समय का अनुभव एवं आयुर्वेद शास्त्रों के तथा एलोपैथिक पुस्तकों के गहन अध्ययन का सार है।

(३) कर्पूर रस—विशूचिका एवं अतिसार में तत्काल लाभ प्रदान करता है।

(४) इच्छाभेदी रस—(विरेचन) दस्त में बेजोड है।

(५) मयूर पंख का चन्द्र—नरसन्तान उत्पन्न करने में कभी व्यर्थ नहीं गया, ऐसा हमारा सहस्रों रोगियों पर सफल अनुभव है।

(६) वृहत् वातचिन्तामणि रस—आयुर्वेद का वह रसायन है जो गैस एवं उच्च रक्तचाप की बेजोड औषधि रसायन है।

(७) इसी प्रकार 'मल्ल चंद्रोदय'—नपुंसकता नाश करने में सर्वोपरि है। जहां हार्मोन्स के सुचीवेध असफल होते हैं, वहां यह औषधि सफलता देती है।

(८) हेमनाथ रस—मधुमेह एवं बहुमूत्र को तत्काल शांत करता है।

(९) कुमारकल्याण रस—सूखे बच्चों को नवजीवन प्रदान करता है।

हम जन-जन के इस भ्रम को दूर करते हैं कि आयुर्वेद में तात्कालिक चिकित्सा नहीं है।

वैद्य मोहर सिंह आर्य आयु० वृह०

आत्ययिक चिकित्सा का उल्लेख संहिता ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर उपलब्ध है।

(१) तीव्र ज्वर-पित्त ज्वर से सन्तप्त रोगी का शीतल उपचार करना चाहिये। एतदर्थ—

१. उत्तानसुप्तस्य गम्भीर ताम्र
कांस्यादि पात्रं प्रणिधाय नाभौ।
तत्राम्बुधारा बहुला पतन्ती-
निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीता॥

यह चक्रदत्त का वचन है। रोगी को उत्तान सुला नाभी के ऊपर ताम्र या कांसी के गहरे पात्र को रख उसमें शीतल जल की धार अधिक देर तक छोड़ने से शीघ्र दाह जलन की शांति होती है।

२. शीतकांजिकवस्त्रावगुण्ठनं दाह नाशनम्।

यह चक्रदत्त का कथन है।

वस्त्र की चार तह करके कांजी में भिगोकर शरीर पर लपेटने से दाह-जलन शांत होती है।

अनुभव—१. गोघृत शतधौत या सहस्त्रधौत शिर तथा मस्तिष्क पर रखना वा मलना।

२. ज्वर तापमान अधिक होने पर शिर पर हिमपूर्ण पुटक रखना।

३. शृंगीक्षीरेण चरणौ सुखं संमर्दयेद् बुधः।
दाहश्चैवोपशाम्येत निद्रां तंजनयेत्पराम्॥

अजादुग्ध की पैरों में मालिश-मर्दन करने से दाह शांत होकर निद्रा आ जाती है।

४. बकरी के दूध में वस्त्र भिगो चार तह-परत करके रोगी के मस्तक पर रखें। वस्त्र को थोड़ी-२ देर के बाद बदलते रहें। हाथ की हथेली तथा पांव के तलुओं में मर्दन करें।

भारत के ग्रामों में हिम-बर्फ सभी स्थानों में मिलना दुर्लभ है। अतः ग्रामीण वैद्य शीतल जल आदि से काम लेते हैं। शीतल जल अति ज्वर की परम भेषज है, सर्व सुलभ है। इससे रुग्ण को यथावश्यक शीतल जल परिषेक कराया जाता है। इन उपायों से ताप कम होता है, दाह, जलन शांत होती है।

५. मुस्तपर्पटकोशीर चन्दनोदीच्य नागरैः।
शृतशीतं जलं देयं पिपासा ज्वर शान्तये॥

नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, लाल चन्दन, सुगन्धवाला, सोंठ सब मिलाकर १२ ग्राम तथा जल ३ लीटर डाल जल सिद्ध करें। इसे मृत्तिका पात्र में भर कर रखें। इस जल को रोगी की प्यास दूर करने के लिए थोड़ा पिलावें। इससे प्यास तथा ज्वर दोनों धीरे-२ दूर हो जाते हैं।

(२) तीव्र असहिष्णुता—यह विश्व विख्यात बात है कि पेनिसिलीन (Penicilin) का सूचीवेध भयङ्कर विषैले विकार उत्पन्न करता है। यह दुधारू तलवार ब्रह्मास्त्र होते हुए प्राण लेवा भी है। प्रतिकारार्थ आधुनिक चिकित्सक रुग्ण को शय्या पर लिटाकर तुरन्त एड्रीनेलीन हाइड्रोक्लोराइड (Adrenaline Hydrochloride) की सूई त्वचा में लगाते हैं अथवा डेकाड्रोन (Dicadron) की सूई लगाते हैं। अथवा कैल्शियम ग्लूकोनेट १० प्रतिशत एवं विटामिन सी. ५०० मि.ग्राम मिश्रित शिरान्तर्गत देते हैं। इन सूचीवेधों के अभाव में क्या करें? एतदर्थ—यावनरत्नेश्वर (भै. र.) को सदैव स्मरण रखें। इसे १२५ मि. ग्रा. की मात्रा में पान स्वरस में घोट १५-१५ मिनट के अन्तर से देते रहें। यदि पान स्वरस उपलब्ध न हो सके तो उष्ण जल के साथ दें। यह तत्काल हृदय में बल पहुँचाता है। अथवा संजीवनी वटी को सिद्ध मकरध्वज के साथ समभाग में पीस पान स्वरस के साथ

१०-१० मिनट के अन्तर से दें। यह ब्रह्मास्त्र आक्रान्ता के प्राणों की रक्षा करता है।

(३) व्रणोपचार—इदमिद वाउ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम्।
येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ॥

अर्थात्—यह जल निश्चय ही औषधि है। यह दुःख नाशक परमात्मा की दी हुई औषधि है जिससे एक साथ सिर में बहुत नोकों वाले-तीक्ष्ण अनेक धारों वाले बाण को निकाल देता है।-व्रण को भर देता है—घाव को नष्ट कर देता है।

यह अथर्ववेद (का. ६ सू. ५७) का वचन है। इस मन्त्र में सद्योव्रण का उपचार जल द्वारा बताया है। शस्त्र लगने पर रक्तस्राव को बन्द करने के लिए तुरन्त शीतल जल धारा डालें, शस्त्र से कटने-चोट लगने-छिन्न भिन्न, विद्ध पिच्चित तथा घृष्ट ये आघातित घाव हैं। इन घाव से हो रहे रक्त प्रवाह को तुरन्त रोकने के लिए शीतल जल की धारा प्रवाह से छिड़काव-तरडे देना, उस अङ्ग को जलमग्न करना और मोटे वस्त्र को शीतल जल में भिगो कर घाव पर रखना हितकर है।

जालाषेणाभिषिञ्चत जालाषेणोपसिञ्चत।
जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥

जल से पूर्ण स्नान प्रक्षालन करो, जल से रुग्ण अङ्ग का मार्जन करो, जल तीव्र औषधि है, उससे हमें जीने के लिए सुखी कर।

इस मन्त्र में जल से पूर्ण स्नान, आक्रान्त अवयवों का स्नान, मर्दन, मार्जन, तरडा तथा टकोर करना बताया है।

(४) एकतस्तु क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः।
रक्तं हि वेदनामूलं तच्चेन्नास्तिनचापि रुक् ॥

एक ओर तो सब क्रिया है और रक्तमोक्षण एक ओर है, कारण कि रुधिर ही वेदना का हेतु है, यदि रुधिर न रहे तो पीड़ा भी नहीं रहती।

अनुभव—यदि अंगुली, नख आदि पर चोट लग जाए और वह फूटे नहीं, रक्त निकले नहीं ऐसी स्थिति में रुका हुआ नीले व कृष्ण वर्ण का रक्त निकालना आवश्यक है। यदि शिराओं से छूटा हुआ रक्त निकाल दिया जाता है तो वेदना शमन हो जाती है, एतदर्थ—

विवर्णे कठिने श्यावे व्रणे चात्यन्त वेदने।
सविषे च विशेषेण जलौकाभि पदैरपि ॥

जिस व्रण का वर्ण विवर्ण हो गया हो, कठिन हो, काला हो, जिसमें अत्यन्त पीड़ा होती हो, और उसमें कुछ विष का अंश हो उसको प्राय जोंक लगा के या रक्तमोक्षण कर रक्त निकाल दें।

अनुभव—किसी अवयव में चोट लग जाने-पिस जाने, दब जाने, घाव पड़ जाने से उस स्थान का रक्त नीला या काला पड़ जाता है। इस रक्त को निकालने के लिए जोंक लगाना वा शल्य कर्म किया जाता है। यथा पांव पर चोट आजाने से वह नीला होजाता है। ऐसी अवस्था में जब तक रक्त न निकाला जायेगा वेदना शांत नहीं होगी। अतः नाखून में शल्यकर्म द्वारा छिद्र कर विकृत रक्त निकाल देने से वेदना दूर हो जाती है। इसी प्रकार जोंक लगा कर विषैले रक्त को निकाल दें।

शोफयोरुपनाहं तु दद्यादामविदग्धयोः।
प्रशमं यात्यविदग्धस्तु विदग्धः पाकमेति च ॥

अपक्व तथा विदग्ध शोथ मे स्वेदन कर्म करे जिससे अविदग्ध शमन हो और विदग्ध पक जावे।

अन्तः शयेष्वबक्त्रेषु तथैवोत्संगवत्स्वपि।
गतिमत्सु च रोगेषु भेदनं संप्रयुज्यते ॥

जिन व्रणों के भीतर पूय है, मुख खुला नहीं है और फैलने वाले एवं नाड़ी व्रण आदि में चीरा दें।

रोगेष्वघनसाध्ये तु यथादेश प्रमाणतः।
शस्त्रं विधाय दोषास्तु स्रावयेत्कथितं यथा ॥

जो रोग चीरा देने योग्य हैं उनको यथादेश के अनुसार शस्त्र से चीरा देकर उसके दोष निकाल दें।

(५) मूत्रनिरोध (Retention of urine)—मूत्र सङ्ग में वृक्कों में मूत्र तो सामान्य रूप से बनता रहता है और वह गवीनियों द्वारा मूत्राशय में आता भी रहता है तथा संचित होता रहता है परन्तु मूत्राशय से बाहर नहीं आ सकता ऐसी स्थिति में अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त २ में वर्णित चिकित्सा करें।

यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद् वस्तावधि संश्रुतम्।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥६॥

शेषांश पृष्ठ ८८ पर

आकस्मिक रोग और चिकित्सा सिद्धान्त

आयुर्वेद चक्रवर्ती गिरिधारी लाल मिश्र

आकस्मिक रोग दुर्घटनाओं के रूप में आये दिन आते रहते हैं। प्रत्येक बड़े परिवार में कोई दिन ऐसा जाता हो जबकि किसी न किसी को चोट न लग जाती हो। बाथरूम में फिसलकर गिरजाना, पैर कुचल जाना, कहीं से त्वचा छिल जाना, आंख में कुछ गिर जाना व रात को अचानक दांत का दर्द बढ़ जाना आदि कुछ न कुछ जितनी भी दुर्घटनाएं हुआ करती हैं उनमें से अधिकतर तो घरेलू ही हुआ करती हैं अतः यदि घरेलू कार्यों में थोड़ी सी सावधानी बरती जाय तो दुर्घटनाओं से बहुत हद तक बचा जा सकता है।

घरेलू दुर्घटनाओं से बचने के लिए सावधानियां—

(१) घर की सभी वस्तुएं अपने निश्चित स्थान पर रखनी चाहिएं।

(२) तेज धार वाले चाकू-छुरी आदि सामान बच्चों से दूर ऊंचे और उचित स्थान पर रखना चाहिए ताकि बच्चों के हाथ न लगे। अक्सर बालक हाथ आदि काट लेते हैं।

(३) रसोई घर में कार्य करते समय अत्यन्त सावधानी बरतनी चाहिए। गृहस्थों की जरा सी असावधानी से आग लग जाने का डर रहता है। कड़कते तेल में सब्जी छौंकते समय आग पकड़ लेती है तथा कपड़े यदि नाईलोन आदि के हों तो तुरन्त आग लग जाती है अतः रसोई में कार्य करते समय सूती कपड़े पहनने चाहिए। स्टोव में अधिक हवा भर देने से वस्ट होकर आग लगने की दुर्घटनाओं ने अनेक गृहों को गृहस्थी से शून्य कर दिया है अतः इन सब साधारण सी बातों का ध्यान रखना जरूरी है।

(४) बिजली चले जाने पर व अन्धेरे में कोई भी वस्तु टटोलने व खतरनाक कार्य करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

(५) जहरीली वस्तुओं और दवाओं को बालकों को दूर, लेबिल लगाकर रखना चाहिए। खटमल मारने की दवा (टिक. २०), फिलट आदि विषैली वस्तुओं को खाद्य पदार्थों से दूर रखना चाहिए तथा खाद्य पदार्थों के बर्तनों में विषैली वस्तुओं को नहीं रखना चाहिए।

ट्रक दुर्घटना—मोटर कार, ट्रक, ट्रेन आदि दुर्घटनाएं भी आजकल आम हो रही हैं। रेडियो की किसी भी दिन की न्यूज सुनिए व किसी भी दिन का अखबार पढ़िये अक्सर कहीं न कहीं कार, ट्रक आदि की दुर्घटनाओं के समाचार पढ़ने को मिल जायेंगे। अधिकांश दुर्घटनाएं प्रायः ड्राइवर की असावधानी के कारण होती हैं। जो ड्राइवर रात भर ट्रक चलाते हैं वे अक्सर शराब पीते हैं व भांग, गांजा, अफीम आदि मादक पदार्थों का सेवन कर नशे में गाड़ी चलाते हैं और दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं। सड़कों की टूट-फूट, आंख की रोशनी की कमी तथा कान की खराबी भी कारण है। पूरी सावधानी से कर्तव्यनिष्ठ होकर नशारहित सचेत तथा बात-बात में सावधानी रखने से इन दुर्घटनाओं से बहुत हद तक बचा जा सकता है।

ऐसी दुर्घटनाओं के समय बहुत से लोग तो बस खड़े-खड़े तमाशा देखते रहते हैं तथा रोगी की कोई सहायता नहीं पहुँचा पाते परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को तात्कालिक चिकित्सा के सामान्य उपचारों का ज्ञान रखना चाहिए ताकि आपातकाल में रोगी की प्राण रक्षा कर सके।

इसके लिए चिकित्सा विशेषज्ञ होना आवश्यक है। बल्कि प्रत्युत्पन्नमतित्व हो तो साधारण ज्ञान वाला व्यक्ति भी ठीक सहायता कर सकता है।

सङ्कटकालीन चिकित्सा सूत्र—

रोगी के जब प्राण सङ्कट में हो तो सर्वप्रथम उसके प्राणों को बचाने का तत्काल प्रयास करना चाहिए। एतद्विषयक विस्तृत जानकारी आपको अन्य लेखकों के लेखों में आर्ष खण्ड में उपलब्ध है अतः सूत्र रूप में यही स्मरणीय है कि शास्त्र के सिद्धान्तों का उल्लंघन करके भी प्राण रक्षा के निमित्त कोई भी उपचार हो तो सर्व प्रथम रोगी को प्राण रक्षा का ही प्रयास करना चाहिए तथा प्राण रक्षा हो जाने पर सिद्धान्तानुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

(१) कुछ भी चिकित्सा कार्य हो उसे तत्काल तथा सावधानीपूर्वक करना चाहिए। चिकित्सक को रुग्ण के चारों तरफ दृष्टि दौड़ानी चाहिए तथा चारों तरफ जो भी वस्तु हो सके उसका सदुपयोग करने का प्रयास करना चाहिए।

(२) सर्व प्रथम रोगी श्वास ले रहा है या नहीं इस पर ध्यान देना चाहिए तथा यदि रोगी श्वास न ले रहा हो तो कृत्रिम श्वसन देना प्रारम्भ कर श्वसन क्रिया को सामान्य बनाना चाहिए।

(३) श्वसन क्रिया स्वाभाविक हो जाने पर यदि रोगी को कहीं से रक्तस्राव हो रहा हो तो रक्तस्राव को रोकने के लिए तत्काल व्यवस्था करनी चाहिए।

(४) जब श्वसन क्रिया स्वाभाविक हो तथा रक्तस्राव भी बन्द हो जाय तब रोगी की स्तब्धता को दूर करना तथा तापमान को स्वाभाविक बनाने का प्रयास करना चाहिए। एतदर्थ शरीर पर कसे-वस्त्र जैसे कोट, पैंट, कमीज़ के गले के बटन आदि तत्काल ढीले कर देने चाहिए तथा कंबल अथवा इस प्रकार की किसी भी चीज जैसे बोरा, दरी, चादर आदि जो उपलब्ध हो उससे रोगी को लपेट देना चाहिए। इससे तापमान स्थायी रहेगा तथा स्तब्धता शीघ्र दूर हो जायेगी। रोगी को गर्म एवं शान्त रखें।

(५) जब तक रोगी बेहोश हो उसे कोई भी खाने की व पीने की वस्तु नहीं देनी चाहिए तथा बेहोशी दूर करने के लिये नस्य का प्रयोग कर होश में लाना चाहिए।

(६) यदि रोगी उल्टी (वमन) कर रहा हो तो उसकी गर्दन एक तरफ घुमाकर रखें ताकि उल्टी का पदार्थ बाहर निकलता रहे अन्यथा उक्त पदार्थ श्वास-नलिका में घुसकर श्वासावरोध उत्पन्न कर मृत्यु का कारण हो सकता है। मुंह का प्रक्षालन करते रहें तथा मुंह में कृत्रिम दांत हों तो मुंह से निकाल देने चाहिए।

(७) यदि अस्थि भंग हो गई हो तो रोगी को बिना स्पिलिण्ट बांधे हिलने-डुलने की व खड़े होने, चलने की अनुमति नहीं देनी चाहिए तथा जब तक उपयुक्त साधन उपलब्ध न हो रोगी स्थानान्तरित नहीं करना चाहिये बल्कि हास्पीटल से एम्बूलेंस मंगवाकर विशेषज्ञ चिकित्सक के पास पहुंचाना चाहिये।

(८) रोगी की त्वचा के वर्ण पर भी ध्यान देना चाहिये अर्थात् रोगी की त्वचा गरम है या ठण्डी, शुष्क या आर्द्र, लाल है या कृष्णवर्ण इत्यादि लक्षणानुसार निदान कर रोगी के दुखों के निवारण का शीघ्र प्रयास करना चाहिये।

(९) सङ्कटकालीन अवस्था में जब तक विधिवत् चिकित्सा व्यवस्था न हो सके तो प्राथमिक उपचारों से रोगी के प्राणों की रक्षा करनी चाहिये।

(१०) चिकित्सक रोगी को आपाद मस्तक सूक्ष्म दृष्टि से देखकर, परिस्थिति के अनुसार प्रत्युत्पन्नमतित्व से तुरन्त निर्णय कर प्राण रक्षा के लिए जो कुछ भी उपचार करना हो उसे शीघ्र कर रोगी के प्राणों को बचाने का सर्वप्रथम प्रयास करना चाहिए। सङ्कटकाल में प्राण सङ्कट को बचाना संकटकालीन चिकित्सा का प्रथम सूत्र है।

प्रत्यक्ष चोट के अभाव में निदान

यदि रोगी बेहोश हो और रोगी में किसी भी प्रकार का प्रत्यक्ष कोई आघात दृष्टिगोचर न होता हो तो रोगी की स्थिति को गम्भीर समझना चाहिए। इस स्थिति में रोगी का चेहरा ध्यान से देखना चाहिए।

चेहरे का वर्ण—

लालवर्ण—लालवर्ण का चेहरा रुग्ण के उच्च रक्त-चाप व लू से आक्रान्त होने का सूचक है। कभी-२ मद्यपान तथा मधुमेहजन्य मूर्छित व्यक्ति का चेहरा भी लाल दिखाई देता है।

श्वेतवर्ण—सांघातिक चोट के परिणामस्वरूप मूर्छित हुआ है।

नीलवर्ण—श्वास नलिका में किसी बाह्य पदार्थ के रुक जाने से श्वासावरोध अथवा पानी में डूबने के कारण श्वासावरोध अथवा तीव्र हृदयाघात के कारण व जह-रीली गैस सायनाइड व कार्बन मोनोक्साइड गैस के सेवन से श्वासावरोध होने से चेहरा नीला पड़ जाता है। मद्यपी के चेहरे पर चारों वर्ण दृष्टिगोचर हो सकते हैं पर उसके मुख से एल्कोहल की बदबू आती है।

श्वास की गति—स्तब्धता (Shock) की स्थिति में श्वास की गति बढ़ जाती है परन्तु मस्तिष्क के आघात, मूत्रविषमयता अथवा मधुमेहजन्य कोमा में श्वास की गति अनियमित हो जाती है।

नाड़ी की गति—भय एवं रक्तस्राव की स्थिति में नाड़ी की गति तीव्र रहती है परन्तु मस्तिष्क आघात में यह गति अनियमित हो जाती है। कभी-२ हाथ की नाड़ी न मिलने पर घबराना नहीं चाहिए। उस समय कनपटी नाड़ी (Temporal Pulse) अथवा जांघ की नाड़ी देखनी चाहिए।

पक्षाघात—शरीर के किसी एक भाग का पक्षाघात हो जाना सांघातिक अवस्था है पर इससे रोग निदान में बहुत सहायता मिलती है।

कर्ण से रक्तस्राव—कान से रक्तस्राव होना इस बात का संकेत हो सकता है कि कपालास्थि के आधार (Base of the skull) का अस्थिभंग हुआ है।

वमन—सामान्य चोट लगने से उत्पन्न स्तब्धता से रोगी को वमन होने लगता है तथा अनेक सांघातिक अवस्थाओं में भी वमन हुआ करती है।

वमन पदार्थ का रङ्ग लाल हो तो आमाशय अथवा भोजन नलिका से रक्तस्राव तथा वमन पदार्थ का वर्ण काफी के समान हो तो दीर्घकालीन आमाशय आंत्रिक रक्तस्राव समझना चाहिए। खांसी के साथ रक्त फुफ्फुसा-घात का सूचक है।

आक्षेप—प्रायः चोट लग जाने व चोट लगजाने के भय से लोगों में आक्षेप होने लगता है पर इन अवस्थाओं का आक्षेप खतरनाक नहीं होता। उच्चताप या मिर्गी के अन्दर आक्षेप हो तो उसमें विशेष सावधानी की आवश्य-कता है। मिर्गी के रोगी के आक्षेप में मुंह व हाथ की मुट्ठियां बन्द रहती हैं। यदि रोगी का मुंह खुला हो तो गर्म कोई मुलायम पदार्थ अथवा रुमाल ही मुंह में रख देना चाहिये।

आत्ययिक चिकित्सा → पृष्ठ ८५ का शेषांश

प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥७॥
विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥८॥
यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥९॥

(आन्त्रेषु) आंतों में और (गवीन्यो) दोनों मूत्र-प्रणालियों में तथा (वस्ति) मूत्राशय के भीतर (अधि-सम्-तन) झरझर का एकत्र हुआ-आया हुआ (यत्) जो मूत्र है। (वेशन्त्याः) रुके हुए झील-जलाशय में जल (वर्जन इव) बहने से रोकने वाले बांध की भांति (ते मेह-नम्) तेरे मूत्र द्वार को (प्रभिनद्मि) खोलता हूं और (ते) तेरा (वस्तिबिलम्) मूत्र मार्ग (विषितम्) खोल दिया गया है (इव) जैसे (उदधेः) जल से भरे (समुद्रस्य) समुद्र का मार्ग एवं (यथा) जैसे (अधि धन्वनः) खींचे हुए धनुष से (अवसृष्ट) छूटा हुआ (इषुका) बाण (परापतत्) अति वेग से दूर गिरता है। (एवम्) (ते) तेरे (मूत्रम्) वह मूत्र (सर्वकम) सर्व (बालित) वेग से (बहिः) बाहर (मुच्यताम्) निकाल दिया जावे।

इन चारों मन्त्रों में रुके हुए मूत्र को निकालने के लिये कई प्रकार कहे हैं। प्रथम मन्त्र में मूत्र का संचित होना बतलाया है। दूसरे मन्त्र में कहा है—तेरे मूत्र द्वार को मैं खोल देता हूं। जैसे झील का पानी बांध को, वैसे ही तेरे मूत्र वेग को बाहर निकाल दिया जावे।

आयुर्वेदीय व्रण चिकित्सा

डा० वेदप्रकाश शर्मा त्रिवेदी (आयुर्वेदाचार्य), ए. एम. बी-एस. एच. पी.ए.
कार्यवाहक अनुसन्धान अधिकारी (आयु०), अध्यक्ष—मानसिक व्याधि अनुसन्धान विभाग,
शल्यानुसन्धान विभाग, भारतीय काय चिकित्सा संस्थान, पटियाला

—※—
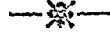
व्रण दो प्रकार के होते हैं (१) शारीर (२) आगन्तुज सुश्रुत मतानुसार जिसके रूढ़ होने पर भी देह धारण तक व्रण वस्तु का नाश नहीं होता है वह व्रण ही है।

शारीर व्रण की सम्प्राप्ति—दोषों की अंशांशकल्पना के आधार पर शारीर व्रण का विस्तृत विवेचन सुश्रुत में है। वात, पित्त, कफ विषम अवस्था को प्राप्त होकर निम्न दशाओं में व्याधि की उत्पत्ति करते हैं यथा (१) संचय (२) प्रकोप (३) प्रसर (४) स्थान संश्रय (५) व्यक्ति (६) भेद।

शारीर व्रणों का रूप निरूपण—

लक्षण

स्थानिक	सामान्य
(१) रक्तिमा (२) तापवृद्धि	(१) सन्ताप (२) दौर्बल्य
(३) शोथ (४) स्पर्शासहत्व	(३) अग्निमान्द्य
(५) क्रिया हानि	(४) विबन्ध (५) अन्य

आगन्तुज व्रण के भेद (सद्यः व्रण)—

(१) छिन्न (२) भिन्न (३) विद्ध (४) क्षत (५) पिच्चित (६) घृष्ट।

शारीर व्रण के भेद—दोषांश कल्पना भेद से बीस प्रकार के होते हैं।

व्रण के अधिष्ठान—निम्न स्थानों पर व्रण हो सकते हैं-(१) त्वचा (२) मांस (३) सिरा (४) स्नायु (५) अस्थि (६) सन्धि (७) कोष्ठ (८) मर्म।

व्रण के परीक्षणीय भाव—

व्रण शोथ, आमव्रण शोथ, पच्यमान व्रणशोथ, पक्व व्रणशोथ, शुद्ध व्रण, दुष्ट व्रण, रुह्यमान व्रण, सम्यग्रूढ़ व्रण, कृच्छ्र साध्य व्रण, आगन्तुज (साध्य-असाध्य) व्रण, मर्मातिरिक्त व्रण, मर्माश्रित व्रण, मर्मातिरिक्त असाध्यव्रण, सद्यव्रण, सशल्य व्रण, कोष्ठगत व्रण, असाध्य शल्य, मांसगत व्रण शिरागतव्रण, अस्थिगत व्रण, संधिगत व्रण, मर्मगत व्रण, व्रणवेदना, व्रण-गन्ध, व्रण दोष, व्रण स्राव, व्रणाकृति, व्रण शब्द।

व्रण चिकित्सा के भेद—आयुर्वेद में ६० प्रकार की व्रण चिकित्सा अङ्कित है।

व्रण बन्धन विधि—आयुर्वेद में व्रणबन्धन के १५ प्रकार अङ्कित हैं।

सावधि मुख्य वेदनाध्ययन—व्रणातुर में निम्न वेदना सम्भव हैं यथा शूल, दाह, कण्डू, स्राव, शोथ, स्पर्शासह्यता, त्वकर्मगुण हानि अनिद्रा चित्तउद्वेग।

व्रणोत्पत्ति में कारण—शारीरिक दोष, आघात, उपसर्ग, विष, रसायनिक पदार्थ, दंष्ट्रा, नख, दंश, अन्य।

व्रणित परीक्षा—पांडुता, नाड़ीगति, श्वासगति, रक्त भार, तापक, सक्रियता, मानसिक स्थिति परीक्षणीय भाव हैं।

व्रणावस्था में—आयुर्वेदोक्त २० अवस्था में से किसी भी दशा का व्रण हो सकता है यथा कृत्य, अकृत्य, दुष्ट, अदुष्ट मर्माश्रित संवृत्त, विवृत्त, दारुण, मृदु स्रावी, अस्रावी विषयुक्त, विषरहित विषम, सम, उत्सङ्गी, अनुत्सङ्गी, उत्सन्न, अनुत्सन्न।

व्रण के उपद्रव—व्रण की उपेक्षा करने पर विसर्प, पक्षाघात, सिरास्तम्भ, अपतानक, मोह उन्माद, व्रण वेदना ज्वर पिपासा, हनुग्रह, कास, वमन, अतिसार, हिक्का, श्वास, कंप नामक उपद्रव सम्भव हैं।

शुद्ध व्रणाकृतियां—आयत, वृत्त, चतुरस्र, त्रिपुटक नामक आकृतियां शुद्ध व्रण में पाई जाती हैं।

अशुद्ध व्रणाकृतियां—अर्द्धचन्द्राकार, स्वस्तिकाकार,
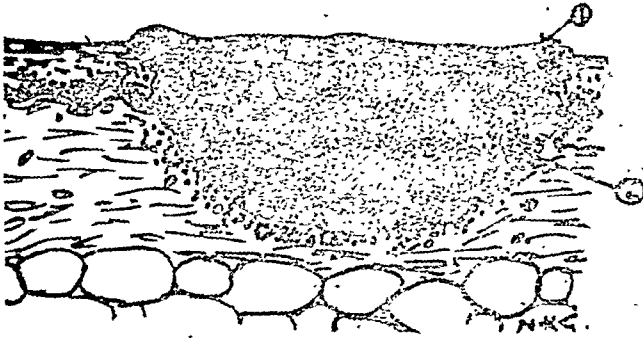
१—टूटी त्वचा रक्त; तथा फाइब्रिन के थक्के से भर जाती है।

२—उसके नीचे तीव्र शोथ उत्पन्न हो जाता है।
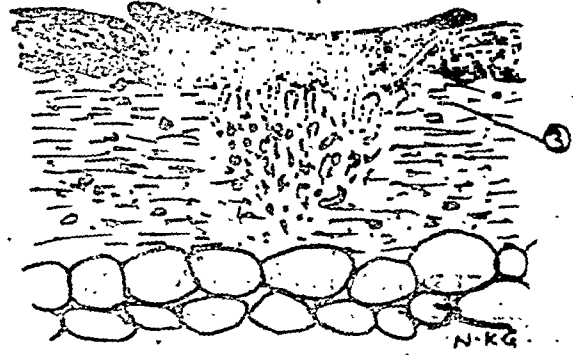
३—नई-नई रक्तकेशिकायें बन जाती हैं जोकि वहां पर श्वेत एवं लाल रक्तकणों को ले आती हैं।
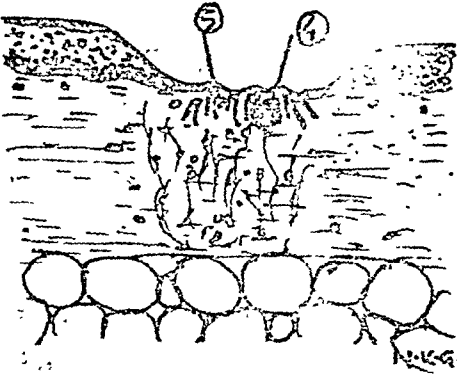
४—दानेदार तन्तुओं के नीचे संयोजक [Connective] तन्तु बन जाता है।

५—यही सूक्ष्म केशिकायें दानेदार तंतु [Granulation tissue] के रूप में दिखाई देने लगती हैं।
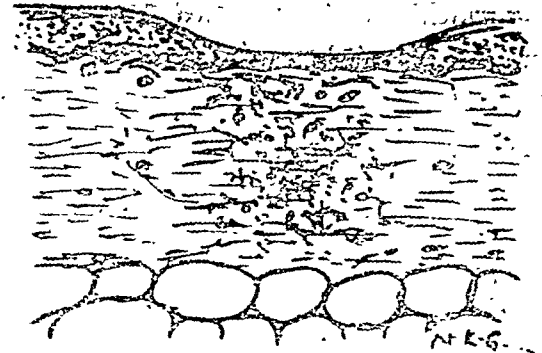
२ सप्ताह या उसके पश्चात् की स्थिति
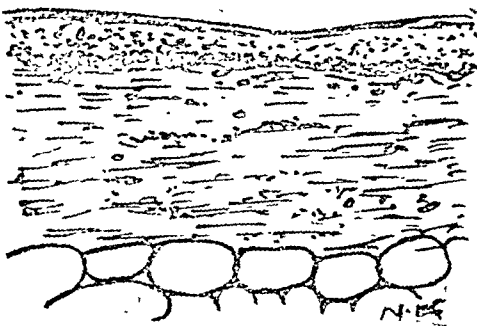
महीनों या साल भर बाद की स्थिति

व्रण के किनारों की ४ आकृतियां

१—भारोपण होते हुए व्रण के ढलवां किनारे।

२—कोटरयुक्त किनारों वाला व्रण क्षतज व्रण होता है।

३—पुनः पुनः भरने वाले जीर्ण व्रण के किनारे उठे हुए होते हैं।

४—स्वकीय अर्बुद वाला व्रण इस प्रकार के किनारे वाला होता है।

मालाकार, अण्डाकार अनियमिताकार, अन्याकार नामक आकृतियाँ अशुद्ध व्रण की परिपाचक हैं।

व्रणरोहण में प्रतिपन्थी कारण—व्रण में विजातीय तत्व, मृततन्तु, तलतन्तु, सौत्रिक घन तन्तु, क्षोभक संक्रमित स्राव, अपर्याप्त निर्हरण, विश्रामाभाव, संक्रमण का प्रकार रोहण में बाधक होते हैं।

प्रयोगशालीय परीक्षण—मल, मूत्र, रक्त परीक्षा, उपवासीय रक्त परीक्षा।

चिकित्सानुसन्धानीय अवेक्षण

(१) बाह्य प्रयोगार्थ—जात्यादि तैल-सभी वर्गों के लिये प्रयुक्त।

(२) आभ्यन्तर प्रयोगार्थ—

प्रथम वर्ग—आरोग्यवर्धिनी वटी ३ गोली ३ बार जल से
द्वितीय वर्ग—गन्धक कल्प ३ ,, ,, ,, ,,
तृतीय वर्ग—रसाञ्जनादि वटी ३ ,, ,, ,, ,,
चतुर्थ वर्ग—चन्द्रप्रभा वटी ३ ,, ,, ,, ,,

विशिष्ट—(१) आस्य व्रणों में विशिष्ट पञ्चम वर्ग रखा गया।

बाह्य प्रयोगार्थ—टंकण+मधु

आभ्यन्तर प्रयोगार्थ-रसाञ्जनादि वटी ३ गोली तीन बार।

विशिष्ट—(२) सशोथव्रण में वर्ग चतुर्थ प्रभावकारी पाया गया है।

विशिष्ट—(३) किसी भी वर्ग के किसी भी आतुर को किसी भी औषधि का उपद्रव लक्षित नहीं हुआ।

वर्ग	आतुर संख्या	परिणाम	विशेष अवेक्षण
प्रथम	८८	८० प्रतिशत-लाभान्वित	उपद्रव नहीं
		८ मध्याविधि गमन	,,
द्वितीय	१	१ प्रतिशत	,,
तृतीय	१६	१६ ,,	,,
चतुर्थ	८	८ ,,	शोथप्रशमन, उपद्रव नहीं
पंचम	३	३ ,,	उपद्रव नहीं, आशु लाभ

★ पृष्ठ ७८ का शेषांश ★

१ ग्राम। ऐसी ३ मात्रा दिन भर में पानी के साथ दें।

२. किशोर गुग्गुलु २-२ गोली तीन बार पानी के साथ दें।

३. कुमारी स्वरस, दशांग लेप तथा बृहत् कासीसादि तैल यथावश्यक मात्रा में मिलाकर अभ्यङ्ग करने से शोथ, दाह, वेदना में तुरन्त लाभ देखने को मिलता है। यह प्रयोग हमें हमारी वंश परम्परा से प्राप्त हुआ है जिसे मैं लोक कल्याणार्थ हेतु प्रकाशित करते हुए आनन्द का अनुभव करता हूं।

(४) रक्तस्रावी अर्श—वर्तमान समय में रक्तस्रावी अर्श के रोगी बहुत मिलते हैं। रक्तस्राव को यदि शीघ्र से न बन्द किया जाय तो रोगी मृत्यु के मुख में चले जाने की संभावना रहती है। ऐसी हालत में निम्न चिकित्सा देनी चाहिए—

१. हरीतकी चूर्ण, इन्द्रयव चूर्ण, नागकेशर चूर्ण तीनों ५००-५०० मिग्राम। दिन में तीन बार तक्र के अनुपान के साथ दें।

२. शोणितार्गल रस २-२ गोली तीन बार पानी के साथ दें।

३. शुभ्रा भस्म ५०० मिग्राम, प्रवाल पिष्टी, सुवर्ण माक्षिक भस्म २५०-२५० मिग्राम, लोध्र चूर्ण १ ग्राम।

दिन में तीन बार शहद के साथ दें। उपरोक्त योग देने से रक्तस्रावी अर्श में अतिशीघ्र लाभ होता है। यह प्रयोग वैद्य श्री जी. के. दवे साहब का है। इससे उन्होंने तथा मैंने हजारों रक्तस्रावी अर्श के रोगियों को अच्छा किया है।

अन्त में वैद्य श्री भानुप्रताप आर. मिश्र जी का हार्दिक आभार मानता हूं। जिन्होंने यह लेख लिखने की प्रेरणा दी तथा इस लेख में योग्य सुधार करके धन्वन्तरि के 'तात्कालीन चिकित्सा' में प्रकाशित कराने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

★ डा० वेदप्रकाश शर्मा त्रिवेदी ए. एम. बी-एस., एच. पी. ए. ★

सांघातिक आघात (Major Injuries)—

बम विस्फोट, भूकम्प, मकान गिर जाने, ट्रक दुर्घटना के फलस्वरूप जब व्यक्ति मलवे में दब जाता है तो उसका अङ्ग बुरी तरह कुचल जाता है। इसमें बाहरी आघात के रूप में आघातज व्रण व आभ्यन्तर आघात के रूप में अस्थि भग्न तथा अस्थिसंधिच्युति की अत्यधिक सम्भावना रहती है। यह प्राणघातक अवस्था है जिसमें तत्काल चिकित्सा की आवश्यकता है।

चिकित्सा—इस प्रकार के आघात में तीव्रस्वरूप की स्तब्धता हुआ करती है। अतः सर्वप्रथम स्तब्धता को दूर करने की व्यवस्था करनी चाहिये अन्यथा प्राणों की रक्षा नहीं हो पाती। अतः सर्वप्रथम रोगी को होश में लाने का प्रयास करना चाहिये तथा होश में आ जाने पर रोगी को आराम से रखे, यथासम्भव कम से कम हिलने-डुलने दे तथा पर्याप्त मात्रा में जल पिलावे। अस्थिभग्न के स्थान पर स्पिलिन्ट अवश्य लगाना चाहिए।

आयुर्वेदीय चिकित्सा—

(१) विन्मिम लखलखा—नौशादर १ तोला, चूना-कली १ तोला, केशर और कपूर २-२ माशा सबको पृथक-पृथक पीसकर एवं शीशी में डालकर १ तोला पानी मिलाकर कार्क बन्दकर अच्छी तरह हिलावें। यह किसी भी प्रकार की बेहोशी को दूर करने में उपयोगी है। शीशी का कार्क खोलकर मूर्छित व्यक्ति के नाक के पास लगावें, इससे स्तब्धता दूर हो जायेगी। सन्निपात, हिस्टीरिया और सर्पदंशजनित मूर्च्छा में भी यह नस्य उपयोगी है।

(२) हेमगर्भ पोट्टली रस—१-२ रत्ती मधु से चटावे या रोगी की जीभ पर लगा देने से भी मूर्च्छा दूर हो जाती है तथा नाड़ी संस्थान को शक्ति मिलती है।

(३) मकरध्वज + कस्तूरी १-१ रत्ती मधु से देने से मूर्च्छा दूर हो जाती है।

(४) आयुर्वेदीय हृदयामृत, मृगनाभि, कर्डिमा, इन्जेक्शन का प्रयोग भी तत्काल फलप्रद है।

(५) ग्लूकोज सेलाइन ५०० मिली. में ५ मिली. सिप्सिन व रिडाक्शन (विटामिन सी) के एम्पुल को मिलाकर बूंद-बूंद शिरान्तर्गत सूचीवेध लगावें।

स्तब्धता दूर होने पर प्राथमिक उपचार पूरा कर साधन सम्पन्न हास्पीटल में स्थान्तरित कर दें।

धमाके से आघात (Blast Injury)—यह आघात बारूद, टाइम बम्ब, गैस स्टोव आदि से होता है जो कुचले हुए आघात का ही भेद है। इसमें शरीर के आभ्यन्तरिक अवयवों में अत्यधिक रक्तस्राव होता है। उक्त रूप से फेफड़े तथा मस्तिष्क एवं दूसरे आवश्यक अवयव बुरी तरह आक्रान्त रहते हैं।

चिकित्सा—उपरोक्त चिकित्सा ही विधेय है। सर्वप्रथम स्तब्धता को दूर करने का प्रयास करना चाहिये फिर हृदयोत्तेजक औषधियां मकरध्वज, हेमगर्भ पोटली रस आदि का प्रयोग करना चाहिये। उत्तेजक पेय पदार्थ जैसे—चाय, काफी पर्याप्त मात्रा में देने चाहिये। स्पिरिट, एमोनिया एरोमेटीकस की कुछ बूंदें पिलावें। रोगी को कम्बल ओढ़ाकर गर्म रखें।

आघातज-व्रण (WOUNDS)

किसी भी वस्तु से आघात लगकर त्वचा या श्लैष्मिक कला के साथ पेशी और मृदु तन्तु का अशांश टूट-फूटकर नष्ट हो जाता है जिसे आघातज व्रण कहते हैं।

आचार्य चरक ने इसे आगन्तुक व्रण कहा है—

वध वन्धप्रपतनाद्‌ दंष्ट्रा दन्तनखक्षतात्‌ ।
आगन्तवो व्रणास्तद्वद्विष स्पर्शाग्निशस्त्रजो ॥

—च. चि. २५

अर्थात्‌—वध, बन्धन, प्रपतन, दंश (काटखाने), दांत और नाखून के क्षत से, विष स्पर्श से, आग से तथा तीव्र धार वाले तलवार, तीर, भाला, बर्छी, चाकू, छूरी इत्यादि हथियार के आघात से जो घाव बनता है उसे आगन्तुक व्रण कहते हैं। आचार्य वाग्भट ने इसको 'सद्यः व्रण' संज्ञा दी है—

'सद्योव्रण ये सहसा सम्भवन्त्यभिघाततः' अर्थात्‌ जो सहसा अभिघात (एक्सीडेन्ट) के कारण उत्पन्न होते हैं, वे सद्यःव्रण कहलाते हैं।

आघातज व्रण के प्रकार—स्वरूप और आकार की दृष्टि से इनके ६ भेद हैं—

(१) छिन्न-भिन्न क्षत (Lacerated wound)
(२) क्षतज—कटा हुआ क्षत (Incised Wound)
(३) विद्ध व्रण (Punctured Wound)
(४) गहरा घाव (Penetrating Wound)
(५) कुचल जाने से नीलाभ व्रण (Contusion)
(६) छिलने के घाव (Exceriating Wound)

आचार्य वाग्भट ने भी ६ प्रकार के ही आगन्तुक व्रण बताये हैं जिनके लक्षणों का विवेचन उपरोक्त लक्षणानुसार ही है—

छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च ।
घृष्टं आहुस्तथाषष्ठं तेषांवक्ष्यामि लक्षणम्‌ ॥

(१) छिन्न व्रण—अधिकतर बिना धार वाले ठोस औजारों जैसे ईंट, पत्थर, हथौड़ा, लाठी इत्यादि से चोट लगकर या गिरकर चोट लग जाने व मशीनों से कट जाने व जानवरों के काटे जाने से भी उत्पन्न व्रण को छिन्न व्रण कहते हैं।

लक्षण—व्रण का आकार टेढ़ा मेढ़ा, त्वचा कहीं से फटी हुई और घाव की गहराई थोड़े से लेकर काफी अधिक भी हो सकती है। व्रण के अन्दर जमा हुआ रक्त दिखाई देना व मांसपेशियां दृष्टिगोचर होती हैं। वेदना और रक्तस्राव होता है।

चिकित्सा—घाव में रक्तस्राव को पहले बन्द करने का प्रयास करें। दूर्वा स्वरस, अपामार्ग स्वरस का पिचु बांध देने से भी तत्काल रक्तस्राव बन्द हो जाता है। फिर डिटोल से घाव को साफ करना चाहिए। यदि घाव में वाह्य पदार्थ धूल, कंकड़, मिट्टी के अंश व लकड़ी का टुकड़ा, यहां तक कि कोई हड्डी का टुकड़ा भी हो तो उसे निकाल देना चाहिए। घाव पर हाइड्रोजन पर-ओक्साइड डालने से झाग होकर अन्दर की गंदगी बाहर निकल आती है। त्रिफला क्वाथ व नीम पत्र क्वाथ से धोने पर भी व्रण अन्दर से शुद्ध हो जाता है। फिर विसंक्रमित गॉज से जलीयांश को सुखाकर, यदि व्रण छोटे आकार का हो तो उसके छिन्न-भिन्न अंश को ठीक स्थान पर बैठाकर कटे ओष्ठों (त्वचा के किनारों) को परस्पर मिलाकर 'स्थापयित्वा यथा स्थितम्‌ तान्‌ सीव्येद्' १-२ टांके लगाकर सी देवे किन्तु यदि व्रण सांघातिक रूप धारण किये हुए हो तो साधन सम्पन्न अस्पताल में विशेषज्ञ के पास रोगी को तत्काल पहुँचा देना चाहिए।

(२) क्षतज व्रण—किसी भी तेज धार वाले तीक्ष्ण औजार जैसे तलवार, गण्डासा, फरसा, चाकू, छूरी, ब्लेड, उस्तरा तथा फूटे हुए ग्लास से कट जाने पर यह व्रण बनता है।

लक्षण—कटी त्वचा के दोनों किनारे या तो काफी पास-पास रहते हैं जिससे दोनों किनारे जुड़े हुए से मालूम देते हैं अथवा बहुत दूर रहते हैं। रक्तवाहिनियों के कट जाने से अत्यधिक रक्तस्राव होता है। नाड़ियों के कट जाने से स्तब्धता हो जाती है। कभी-कभी ऊपरी त्वचा के जुड़ जाने से व्रण के अन्दर पूयजन्य संक्रमण रह जाता है।

चिकित्सा—रक्तस्राव पूर्वोक्त विधि से बन्द करें 'नीवासल्फ पाउडर' को स्प्रे कर जात्यादि तैल का पिचु रखकर पट्टी कर देनी चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो विधिवत्‌ 'सीव्येत्‌ विधिनोक्तेन' अर्थात्‌ विधिपूर्वक टांके लगाकर 'बध्नीयाद गाढमेव च' पट्टी बांध देवे।

जीभ कट जाने पर—रक्तस्राव रोकने के लिए बर्फ चुसायें।

हास्पीटल पंजीयन संख्या—५११८७, दिनांक २५-६-८४, नाम—हवलदार लालचन्द यादव की जिह्वा में दांत से क्षत होने से रक्तस्राव हो रहा था। शुद्ध स्फटिक चूर्ण जिह्वा पर क्षत स्थान पर लगा दिया तथा सिद्धामृत+प्रवाल+कहरवा पिष्टी २-२ रत्ती की पुड़िया खाने को दीं। तत्काल रक्तस्राव बन्द हो गया और रोपण भी हो गया।

औषधि प्रयोग में—प्रतापलंकेश्वर रस, विषमुष्टी वटी १-१ गोली दिन में तीन बार दें। व्रणान्तक रस व व्रणान्तक गुग्गुलु भी देते हैं।

(३) विद्ध या छिद्रयुक्त—आलपिन, सुई, भाला, तलवार, बन्दूक का कुन्दा आदि तीक्ष्ण शस्त्र से बींधकर व्रण हो जाता है तो उसे विद्ध व्रण कहते हैं।

लक्षण—बन्दूक की गोली से बना घाव भी इसी के अन्तर्गत आता है। छिद्रयुक्त यद्यपि बाहर से देखने में विद्ध व्रण कोई खतरनाक मालूम नहीं पड़ता है तथापि स्थान तथा गहराई के अनुसार यह खतरनाक होता है। यह जितना ही गहरा तथा आभ्यंतरिक स्राव, बाह्य पदार्थ कील, कांटा में जङ्ग (मोर्चा) लगा होने से धनुष टंकार (Tetanus) रोग होने की अधिक आशंका रहती है तथा यह रोग हो जाने पर यदि तुरन्त नियन्त्रण न हो सके तो रोगी का बचना बड़ा ही मुश्किल रहता है। कारण धनुष्टंकार रोग अक्सर मारक स्वरूप लेलेता है।

चिकित्सा—यदि कील व कांटे की नोक टूटकर अन्दर ही रह गई हो तो आक का दूध टपकाकर लगावें व गुड़+बोरिक पाउडर को गर्मकर बांध दें। दूसरे दिन कील व कांटे की नोंक आसानी से बाहर आ जायेगी। ऐसे व्रण में यदि रक्तस्राव हो रहा हो तो उसे तुरन्त बन्द नहीं करना चाहिये जिससे 'टिटनस' होनेकी सम्भावना कम हो जाती है तथा इस प्रकार के व्रण पर मलहम का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे व्रण का मुंह बाहर से बन्द हो जाता है और अन्दर ही अन्दर उपसर्ग फैलता है। यदि शोथ, लाली, छूने से वेदना हो तो विशेषज्ञ चिकित्सक से परामर्श लें। 'टिटनस' की आशंका होने पर AT.S की सुई देदें। व्रणान्तक रस, व्रणरोपण गुग्गुल, प्रताप लंकेश्वर रस का प्रयोग करावें।

४. कुचल जाने से नीलाभव्रण जब कठोर व ठोस पदार्थ की चोट से रक्तवाहिनियां (Blood vessels) टूटती है और कोमल तन्तुओं एवं कोशिकाओं पर आघात लगता है तो त्वचा के अन्दर रक्तस्राव हो आक्रान्त स्थान में रक्त जम कर नीलाभ (Contusion) हो जाता है। किसी अङ्ग के कुचल जाने से ही ऐसा होता है।

लक्षण—आक्रान्त स्थान नीला दीख पड़ता है तथा स्तब्धता के कारण बेहोशी, भयङ्कर पीड़ा और दूसरे उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा—आक्रान्त स्थान पर पानी से भिगोये हुए कपड़े की पट्टी व बर्फ का शीत प्रसेक (Cold Compress) करें जिससे रक्तस्राव भी रुक जायेगा।

नाखून की कालिमा—प्रायः अंगुलियों पर चोट लगने के कारण होती है। पैर के अंगुष्ठ पर भारी वस्तु गिरजाने से व जोर से ठोकर लग जाने से व दरवाजे इत्यादि में दब जाने से होती है। रक्तवाहियों से रक्तस्राव होकर अन्दर ही रह जाता है जिससे नाखून का रङ्ग काला पड़ जाता है तथा तीव्र वेदना होती है। यदि उक्त स्थान का रक्त निकाल दिया जाय तो तत्काल वेदना
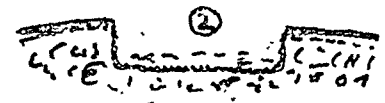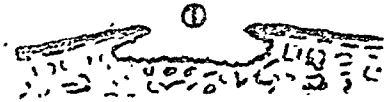
व्रण की आकृति का चित्रकीय वर्गीकरण
१—क्षयज व्रण, २—उपदंशज व्रण,
३—कार्सीनोमा

शमन हो जाती है। बर्फ बांधने से भी कालिमा दूर होती है तथा दर्द दूर होजाता है। यदि आराम न हो तो फिर नाखून पर छिद्र कर रक्त को निकाल देना चाहिये।

औषधि प्रयोग—जात्यादि तेल व जात्यादि घृत की पिचु रखकर पट्टी करदें। प्रताप लंकेश्वर रस+विषमुष्टी वटी खाने को दें।

५. विषाक्त व्रण—क्षय, धनुपटंकार आदि रोगों के जीवाणु कीटाणु द्वारा अन्तःप्रविष्ट होने पर व विष से बुझे हुए यन्त्रों से उत्पन्न घाव को विषाक्त व्रण कहते हैं। ग्रामीण व जंगली जनजातियां, नागा, भील आदि लोग लोहे के नुकीले भाग को अग्नि में तपा-तपा कर सर्प विष में बुझाते हैं। इस प्रकार जब वह विषाक्त हो जाता है तो तीर भाला आदि में लगा लेते हैं। इसके प्रहार से शरीर में अस्त्र के चुभते ही विषाक्त क्रिया प्रारम्भ होती है और रोगी मृत्यु का ग्रास बन जाता है।

चिकित्सा—क्षय का सन्देह होने पर B.C.G. तथा धनुष टंकार होने की आशंका होने पर A.T.S. का सूचीवेध दें। रोगी की अवस्था सांघातिक होने पर उसे तत्काल साधन सम्पन्न अस्पताल में पहुंचा देना चाहिए।

प्राचीन अर्वाचीन व्रणोपचार—

त्रिकालज्ञ आयुर्वेद मनीषियों ने जब आधुनिक सर्जरी का विकास नहीं हुआ था उस काल में व्रणोपचार के जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे वे अत्यन्त ही वैज्ञानिक तथा महत्वपूर्ण थे तथा सद्यफलप्रद थे तथा सद्यःव्रण व आघातज व्रण में इतने कारगर थे कि युद्ध में योधाओं के शरीर में धंसे शस्त्रों को निकाल कर क्षतों को कुछ घण्टों में रोपण एवं पीड़ारहित कर दूसरे दिन उन्हें पुनःस्फूर्ति एवं उत्साह के साथ युद्ध में लड़ने योग्य बना देते थे।

प्राचीन काल में वैसलीन या लेवोलीन के स्थान पर घृत, मधु, व तेल द्वारा मलहम का निर्माण होता था जो व्रण का विशोधन एवं रोपण दोनों कार्य करते थे। मधु और घृत का मिश्रण विषहर रक्षोघ्न, जंतुघ्न एवं कृमिघ्न है। किसी स्थान पर शस्त्र लग जाने पर यदि व्रण हुआ है तो उस पर तुरन्त घृत, मुलेठी का लेप कर देने से व मुलेठी से सिद्ध घृत व बला तैल के सिंचन से तीव्र व्यथा तत्काल कम होती है—

सद्यः सद्योव्रणं सिंचेदथ यष्ट्याह्वसर्पिषा।
तीव्र व्यथं कवोष्णेन बला तैलेन वा पुनः॥

साधारण एवं सर्व सुलभ उपचार साधनों व विधियों का आम जनता में प्रचार था जैसे खेत, जंगल आदि में अन्य कोई साधन व वस्तु उपलब्ध न हो तो दूर्वास्वरस व दूर्वा भी न उपलब्ध हो तो स्वमूत्र से सिंचन व लेप कर लेने से यह टिंचर आयोडीन जैसा काम कर रक्तस्राव को बन्द कर देता है।

टंकणाम्ल (सुहागा की खील) व पुष्पाञ्जन (यशद व सफेदा कासगरी) का व्रणरोपणार्थ मलहम के रूप में प्राचीन काल से प्रयोग होता आ रहा है तथा आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित बोरिक एसिड और जिंक पाउडर आदि आधुनिक युग के आविष्कार हैं और प्राचीन विधियों में थोड़ा परिवर्तन कर घृत के स्थान में वेसलीन और टंकणाम्ल के स्थान पर 'बोरिक एसिड' आयुर्वेदीय प्रयोग ही हैं। इसी तरह गन्धक चूर्ण का अवधूलन (स्प्रे) तथा 'नीवासल्प' पाउडर का प्रयोग है। लिखने का उद्देश्य है कि आधुनिक युग की नवीनतम उपादेय विधि का भी स्मरण रखना चाहिए।

व्रणों में वेदना—

(१) स्नेहपानं हितं तत्र (स्नेहपान कराना चाहिए) (२) तत् सेको विहितस्तथा (वेशवार, खिचड़ी आदि से सुहाता गरम-२ सेक करना चाहिए) (३) सुस्निग्धश्चोपनाहनम् (चिकनाई युक्त पुल्टिस बांधनी चाहिये) (४) धान्य स्वेदांश्चकुर्वीत (उड़द आदि उबालकर उनसे स्वेदन करे। (५) स्नेहवस्तिर्विधीयते (सिद्ध तेलों की वस्ति दें)।

घाव की जलन पर—

क्षतोष्माणो निग्रहार्थं तत्कालं विसृतस्य च।
कषाय शीत मधुर स्निग्ध लेपादयोहिताः॥

क्षतोष्मा के निग्रह के लिये तत्काल निकाले गये शीत मधुर स्वरसों का लेप करना हितकारी है।

रक्तस्रावनाशक—"अतिनिःसृतरक्तस्तु भिन्न कोष्ठः पिबेदसृक्" रक्तशोधन का तत्काल प्रयास करें पर अत्यधिक रक्त निकल गया हो तो रोगी को रक्त पिलावे या (अर्थात्) उसकी सिरा द्वारा ठीक-२ रक्त का मिलान कर रक्ताधान करें।

अन्तर्लोहित (Internal Bleeding)-शरीर के अन्दर ही अन्दर रक्त वह रहा हो तो आमाशय में हो तो वमन करावे, पक्वाशय में हो तो विरेचन तथा आस्थापन वस्ति का विधान है।

अगर आतें निकल आवें तो—अभिन्नमन्त्रं निष्क्रांतं प्रवेश्य नान्यथा भवेत्। निकाली हुई आंतों को पुनः स्थापित करें। सुश्रुत संहिता में आंतों का निकल आना वृषण का अपने कोप से बाहर आ जाना, खोपड़ी की हड्डी के टूट जाने पर मस्तुलंग का बाहर आजाना आदि की चिकित्सा का विधान है तथा सुश्रुतोक्त व्रणोपचार से व्रण
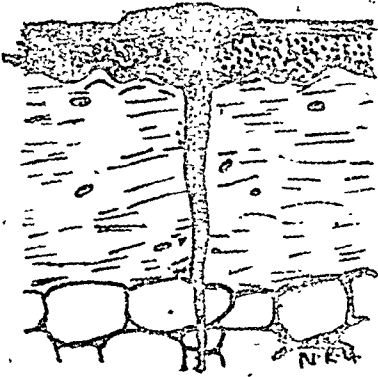
१. तुरन्त ही रक्त का थक्का बनकर चोट की दरार में भर जाता है।
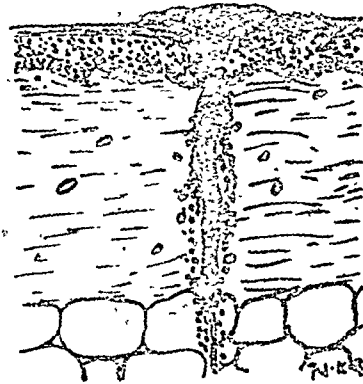
२. २-३ घण्टे में शोथ उत्पन्न होकर टूटी हुई त्वचा के दोनों सिरे पास आ जाते हैं, हल्की सी रक्तामयता तथा कुछ श्वेत रक्तकण वहां पहुँच लेते हैं।
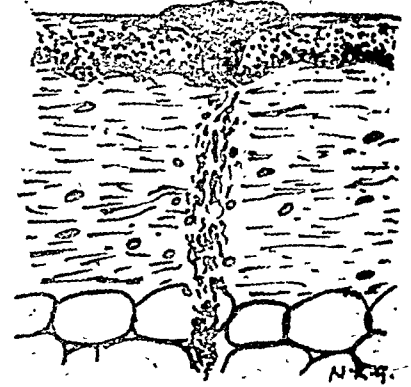
३. २-३ दिन में रक्त के जमाव को शरीर की प्रक्रिया शक्ति (Macrophage activity) द्वारा हटा लिया जाता है।
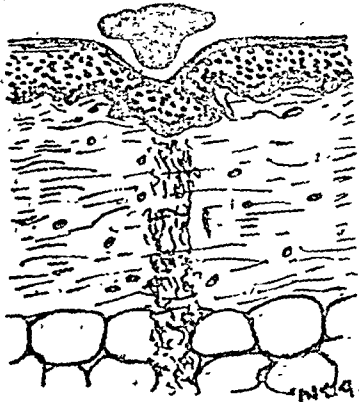
४. १० से १४ दिन में रक्त का थक्का पूरी तरह प्रक्रिया शक्ति द्वारा हटा लिता जाता है तथा ऊपर का भाग ढीला होकर छूट जाता है।
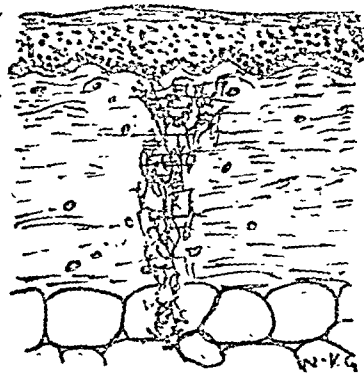
५—इसके पश्चात् व्रण वस्तु तन्तु (scar tissue) बन जाता है जिसमें कि रक्तामयता (Hyperaemia) रहती है, त्वचा पूरी तरह जुड़ जाती है हालांकि पूरी शक्ति के साथ नहीं जुड़ती।
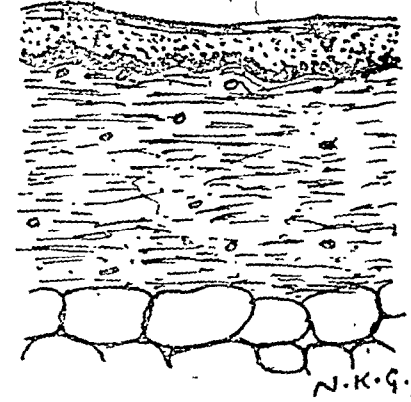
६. महीनों या साल भर बाद—व्रण वस्तु ऊपर त्वचा पर दिखाई देता है लेकिन पूरी त्वचा पूरी शक्ति के साथ जुड़ गई है।

के निशान तक नहीं रहते थे। चरकोक्त ३६ व्रणोपचारों का गहराई से अध्ययन करें तो आधुनिक शल्यविदों को भी कुछ सीखने को मिलेगा तथा आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी भी उपकृत होगी। व्रणोपचार में त्वचा सवर्णीकरण तथा लोम संजनन तक के प्रयोगों का वर्णन द्रष्टव्य है। अतः सद्यः व्रण चिकित्सा में प्राचीन-अर्वाचीन विधियों का मेल मणिकांचनयोगवत् ग्राह्य है।

चिकित्सा-सूत्र - दो भागों में विभक्त है (१) पूर्वकर्म (२) पश्चात् कर्म।

पूर्व कर्म—शरीर के जिस भाग में चोट लगी हो वहां से सर्व प्रथम रक्त बन्द करने का तत्काल उपाय करना चाहिये। व्रण में धूल व कंकड़ आदि को उक्त कीटाणु नाशक घोल से साफ कर देना चाहिए। विसंक्रमित करके विसंक्रमित गाज, रूई रखकर पट्टी बांधनी चाहिये, सीधे घाव पर पट्टी नहीं बांधनी चाहिए। रक्तस्राव को बन्द करने के लिए जीवाणुनाशक विलयन भी उपयोगी हैं।

जीवाणुनाशक विलयन के रूप में—डेटाल १:२०, कार्बोलिक एसिड १:२०-१०० घोल, परक्लोराइड आफ मर्करी १:२०००, एक्रिफ्लेविन १:१०००, आयोडीन २% आदि का प्रयोग करते हैं। सद्यः व्रण के रक्तस्राव को रोकने के लिए डिटोल व टि. आयोडीन का पिचु व्रण स्थान पर लगाकर रखें। इससे तत्काल रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

दूर्वा स्वरस व अपामार्ग स्वरस भी तत्काल रक्तस्राव पर नियन्त्रण करते हैं पर शुद्ध स्फटिका (फिटकरी के फूला) की महिमा अद्वितीय है। जहां आधुनिक योग भी रक्तस्राव को तत्काल बन्द करने में असफल हो जाते हैं वहां शुद्ध स्फटिका अमोघ ब्रह्मास्त्र है। व्रण पर इसका चूरण कर रूई से दबाकर रख लें तो रक्तस्राव तुरन्त बन्द हो जायेगा।

पश्चात् कर्म—

सद्यः व्रण के रक्तस्राव को बन्द करने के बाद व्रणोपचार (Dressing) करनी चाहिए। रक्तस्राव बन्द हो जाने पर व्रण को खोल कर देखें। यदि-त्वचा का कोई अंश कट, टूट, छिटक गया हो तो उसको समीप लाकर सिलाई करनी चाहिए। छिन्न-भिन्न व्रण में कटे फटे और लटकते पेशी तन्तु व त्वचा को काटकर अलग करदें। फिर सीवन कर्म रीफगांठ व सर्जनगांठ (Surgeon Knot) विधि से करें। शल्य कर्म एवं पट्टी बन्धन के पश्चात् यदि व्रण संक्रमित होकर ज्वर तथा व्रण स्थान पर वेदना प्रदाह, शोथ हो जाय तो ऐसी स्थिति में टांके काटकर पूय निकालकर विसंक्रमण तथा जीवाणुनाशक (Antibiotic) औषधियों का प्रयोग करें।

यदि सीवन कर्म की आवश्यकता न हो तो व्रण को स्वच्छ कर 'नीवा सल्फ' पाउडर या 'स्प्रे' कर जात्यादि तैल का पिचु रखकर व्रण बन्धन कर दें तथा प्रतिदिन या एकान्तर दिन पर बराबर करना चाहिए, वही पर्याप्त रहती है। फिर जब तक व्रण पूर्णरूप से ठीक न हो जाए तब तक बन्धन करना चाहिए। यदि जंग (मोर्चा) लगी हुई सुई, आलपिन, कील से गन्दी जगह या खुले आम रास्ते पर चोट लग कर यदि कट जाय तो उस व्रण का विसंक्रमण (Hydrogen Peroxide) हाइड्रोजन पैरोक्साईड से करना चाहिए तथा आघात लगने के २४ घण्टे के अन्दर बच्चों को ७५० तथा बड़ों को १५०० (I.U) का AT.S की सुई दे देवें। व्रण स्थान पर गैस गैंग्रीन के होने की सम्भावना हो तो उसके लिए तत्काल गैस गैंग्रीन सीरम लगाते हैं।

व्रणोपचार करते समय—मलहम लगाने से कपड़ा व रूई चिपकती नहीं पर मलहम व लोशन लगाने से रूई या पट्टी का वस्त्र चिपक जाय तो उसे "हाईड्रोजन पेरॉक्साइड से छुड़ाना चाहिये।

मलहम के रूप में—बोरिक एसिड, पेनसिलीन, फुरासिन, टैरामाइसीन अथवा अन्य सल्फा या एन्टीबायोटिक्स ग्रुप के मलहम प्रयोग किये जाते हैं।

मौखिक रूप से सेवन करने के लिए—सल्फाग्रुप, वा पेनिसिलीन-स्ट्रेप्टोमाइसिन ग्रुप की औषधियां तथा इन्जेक्शन प्रयोग किये जाते हैं। डाइक्रिस्टीसिन तथा प्रोकेन पैन्सलीन सूचीवेध का प्रयोग बहुतायत से किया जाता है तथा ६ इन्जेक्शन का कोर्स पर्याप्त रहता है।

व्रणोपचार पर स्वानुभूत पञ्चब्रह्मास्त्र—

व्रण चिकित्सा में सफल प्रयोग जोकि शास्त्रीय प्रयोग

है पाठकों की सेवा में प्रस्तुत हैं जिनसे आधुनिक एण्टी बायोटिक्स का सहारा लिये बिना सफलता से चिकित्सा कर सकते हैं—

(१) व्रणरोपण रस (र. यो. सा.)—शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध अफीम तीनों समभाग लेवें। पहले पारद-गंधक की कज्जली करके उसमें अफीम मिलाकर ३ दिन तक नीम्बू के रस में मर्दन करें पश्चात् घीक्वार-स्वरस, बकरे का मूत्र, चित्रकमूल क्वाथ, सैन्धवलवण जल और काले नमक का जल (१:१६)—इन सबके साथ ७-७ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा—१-१ गोली दिन में २-३ बार शहद अथवा जल के साथ दें। उपयोग—यह रस सद्योजात व्रण, विद्ध व्रण, क्षतजव्रण आदि पर तत्काल फलप्रद है। यह अफीम का योग है अतः आघातज व्रण की वेदना का इससे तत्काल शमन होता है। वेदनाहरणार्थ आधुनिक चिकित्सक भी मार्फिया का इन्जेक्शन देते हैं। पथ्य—चावल, मूंग, गेहूं घी देवें। नमक दही और खट्टे पदार्थ न देवें।

(२) व्रणान्तक रस (र. यो.सा.)—शुद्ध सफेद संखिया १० ग्राम, शुद्ध शिगरफ २० ग्राम, सफेद कत्था ३० ग्राम लें। अदरख रस की ३ दिन भावना देकर १ १ रत्ती की गोलियां बना लें। १-१ गोली दिन में दो बार घी के साथ व दूध से देवें। गुण—इस रस से व्रण शीघ्र भर जाते हैं। व्रण अधिपक्व हो या रक्तविकार जन्य, नाड़ी व्रण या उपदंशज यह रस तत्काल फलप्रद है।

(३) जात्यादि तैल—चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, पटोल पत्र, करंज पत्र, मधु मक्खी के छत्ते का मोंम, यष्टिमधु, कूठ, हल्दी, दारु हल्दी, कुटकी, मजीठ, पद्माख लोध्र, हरड़, नीलोफर, नीलाथोथा, सारिवा, करंजबीज गिरी सबको समभाग लेकर पानी में पीसकर कल्क बनावें। कल्क को चौगुने तैल में तैल से चौगुना पानी डाल कर मन्दाग्नि पर तैल पाक विधि से पाक करें।

नोट—चमेली आदि जिनके पत्र लिखे हैं ताजा ही लेना विशेष हितकर है।

उपयोग—आयुर्वेद का यह देदीप्यमान योग है जो आधुनिक युग के एक्रीफ्लेविन मरक्यूरोक्रोम, यलोवास (Yellow vass) आदि योगों का मुकुटमणि है। हमारे चिकित्सालय में प्रतिदिन दर्जनों रोगियों पर जिन को शल्यादि से क्षत व सभी प्रकार के क्षत व व्रणों पर पट्टी बांधने के लिए प्रयुक्त होता है। नाड़ी व्रणों में इन्जेक्शन की मोटी नीडल से इसका पूरण करके व हाथ में वर्ति लगा कर पट्टी बांध देते हैं।

(४) प्रतापलंकेश्वर रस—यह शास्त्रीय योग आयुर्वेद का AT.S. है। जहां-जहां भी AT.S. की जरूरत पड़ती है इसका प्रयोग विगत १५ वर्षों में सहस्रों रोगियों पर कर चुके हैं और कभी भी असफलता नहीं मिली। पूय नाशक गुण भी इसमें अद्वितीय है।

विशेष मिश्रण—प्रतापलंकेश्वर रस १ गोली विषमुष्टी वटी १ गोली, शुद्ध गन्धक, बङ्ग भस्म २-२ रत्ती, यष्टिमधु चूर्ण १ माशा यह एक मात्रा है दिन में २ बार गर्म पानी से दें। व्रण आघातज होने पर तथा व्रण से यदि पूय स्राव हो रहा हो यहां तक कि कर्णमूल ग्रंथि ज्वर में यह मिश्रण अत्यन्त लाभदायक है। पूय स्राव की सभी घातक अवस्थाओं में यह हमारा चमत्कारिक सहस्रानुभूत प्रयोग है।

(५) व्रणोपहारि वटी (किंचित परिवर्तित स्वानुभूत)—शुद्ध पारद १० ग्राम, शुद्ध गन्धक २० ग्राम, शुद्ध मनःशिला २० ग्राम, रसमाणिक्य २० ग्राम, त्रिफला चूर्ण महामंजिष्ठा चूर्ण, शुद्ध गुग्गुल ५०-५० ग्राम।

विधि—महामंजिष्ठाद्यरिष्ट की तीन दिन भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें। व्रणों की सभी अवस्थाओं में अनुभूत है।

सहस्रानुभूत-व्यवस्थापत्र—हम सर्व प्रथम आघातज व्रण के रोगी के व्रण को डिटोल से साफ कर उस पर नोवासल्फ पाउडर छिड़क कर जात्यादि तैल का गांज रख कर रुई लगाकर पट्टी करवा देते हैं तथा प्रतापलंकेश्वर रस की १-१ गोली सुबह शाम तथा विषमुष्टी वटी की १-१ गोली भोजन के बाद पानी से दिलाते हैं। ९०% इस प्रयोग से अच्छे हो जाते हैं बाकी १०% के लिये उपरोक्त अन्य दवाएं भी प्रयोग करनी पड़ी हैं। १ दिन छोड़कर ३ पट्टी से ५ पट्टी पर्याप्त हैं स्वानुभूत है। ✻

शिरोभिघात (HEAD INJURIES)

आयु० चक्रवर्ती डा० गिरिधारीलाल मिश्र, अधीक्षक—केदारमल आयुर्वेदिक हास्पीटल, तेजपुर (असम)

सिर पर डण्डे से चोट लगने पर जैसाकि अधिक गांवों में झगड़ा में होता है या सीढ़ियों से सिर के बल गिर जाने व फिसलकर सिर के बल गिर जाने पर चोट आ जाती है जिसे शिरोभिघात कहा जाता है। सिर पर चोट हल्की लगी हो तो रोगी हक्का-बक्का हुआ सा दीखता है। चोट भारी लगी हो तो रोगी मूर्छित हो जाता है तथा मूर्च्छा गहरी हो जाती है और मृत्यु हो जाती है।

चोट लगने पर मस्तिष्क गोलार्ध आगे-पीछे की दिशा में स्थान भ्रष्ट हो जाता है जिससे एक गोलार्ध से संबंध विछिन्न हो जाता है जिसका दुष्प्रभाव Brain stem पर पड़ता है जिसके फलस्वरूप शिरोभ्रम, तापमान श्वास-मन्दता, वमन होने के लक्षण होकर मूर्च्छा आ जाती है। ब्रेन स्टेम में जितनी अधिक विकृति हो, जितनी अधिक उस पर खींच पड़े उतना ही शिरोभिघात अधिक भयंकर हो जाता है। चोट अधिक हो तो लघु मस्तिष्क (Medulla) न्यूनाधिक आहत हो जाता है जिससे मूर्च्छा का लक्षण होता है। चोट लगने के समय यदि रोगी पीठ के भार जमीन पर बिल्कुल अचेत पड़ा हो, मुख मण्डल पाण्डुर, शीतल और स्वेद से आर्द्र हो, तापमान गिरा हुआ हो तो रोगी को Cerebral shock की अवस्था में समझना चाहिये। इस अवस्था में पलकें बन्द होती हैं, आंख के अन्दर अंगुली लगाने से भी झपकती नहीं, पुतलियां दोनों ओर एक-सी नहीं होती, प्रकाश डालने से संकुचित होती हैं, रक्त भार गिरा हुआ, नाड़ी निर्बल तथा श्वास-प्रश्वास की गति मन्द होती है।

मस्तिष्क के विक्षुब्ध रहने से रोगी को प्रकाश और शोरगुल सहन नहीं होता, रोगी क्रोधी हो जाता है और सिकुड़कर बिस्तर में पड़ा रहता है। इस अवस्था में ज्वर यदि १०४ डिग्री से ऊपर हो जाय, नाड़ी अनियमित और निर्बल होती जाय, एक ओर की शाखाओं में शिथिलता बढ़ती जाय तो अन्दर अन्तः रक्तस्राव का अनुमान करके इसे घातक समझना चाहिये।

शिरोभिघात जब प्रबल रूप में होता है जिससे मस्तिष्क पर कुछ रगड़ भी लग गई हो तो मस्तिष्क में शोथ हो जाती है जिससे मस्तिष्कान्तर्भार बढ़ जाता है। इसका प्रधान लक्षण गहरी मूर्च्छा का होना है। श्वास घुर्राटेदार, मन्द तथा गहरा होता है, रक्तभार बढ़ा हुआ होता है, मांसपेशियों में आक्षेप और पक्षाघात होने की सम्भावना रहती है। सिर पर चोट लगने से मस्तिष्क व, उसके आवरणों को कुछ क्षति पहुँचे तो रोगी देर तक भी मूर्छित रह सकता है। चोट के बाद स्मृतिनाश १-२ मिनट का हो तो थोड़ी चोट ही लगी है समझना चाहिए,
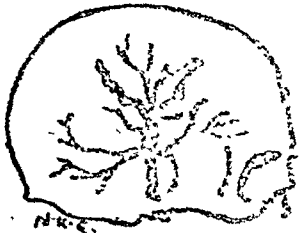
शिरोभिघात से अस्थिभग्न हो उस जगह की धमनियां टूट जाती हैं।

अस्थि से निकला स्राव धीरे-धीरे मस्तिष्कावरण झिल्ली (dura) को भर देता है।

एक बड़ा रक्त-स्कन्द बन जाती है।

पर १-२ घण्टे स्मृतिनाश रहे तो चोट कुछ अधिक लगी है का संकेत है।

शिरोभिघात के उपद्रव और अनुगम
(Complication & Sequelae)

शिरोभिघात के उपद्रव और अनुगमों का बोध उनकी चिकित्सा के प्रश्न की जटिलता को समझने के लिए आवश्यक है। कितने ही रोगी ऐसे आघातों से आरोग्य लाभ के पश्चात् किसी उपद्रव के ग्रास बने हैं या किसी अनुगम के कारण सदा के लिये अशक्त हो गये हैं। उपद्रव—

रक्तस्राव—रक्तस्राव केवल बिन्दुरूप या विसृत, तात्कालिक या विलम्बित हो सकता है। रक्तस्राव जो

चाकू द्वारा सिर के व्रण की त्वचा को काटकर निकाल देने की विधि

मस्तिष्कावरणीय मध्यकला के रक्तस्राव में जिस ओर रक्तस्राव होता है उस ओर की आंख का तारा संकुचित हो जाता है।

१. सबसे ऊपर—आघात के तुरन्त पश्चात्

२. बीच में—कुछ समय पश्चात् आघातित-नाड़ी के पक्षाघात के कारण तारा विस्फारित हो जाता है लेकिन प्रतिक्रियास्वरूप दूसरी ओर का तारा संकुचित हो जाता है।

३. सबसे नीचे—दोनों ओर के तारे विस्फारित हो जाते हैं लेकिन प्रकाश के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं करते।

शिर के आघातों में होते हैं वास्तव में मस्तिष्क के विदरण के परिणाम होते हैं। लक्षण और चिह्न आघात के विस्तार तथा शोफ और अन्त कपाली दाब की उपस्थिति पर निर्भर करते हैं।

प्रमस्तिष्क मेरुनासास्राव—साधारण तथा चालनीवत् पट्टिका (Cribriform plate) या ललाट वायवीय विवरों की क्षति व उनके ह्रास हुए अस्थिभंगों में नासिका से प्रमस्तिष्क मेरु तरल का स्राव होता है जिसके संक्रमण से मस्तिष्क वारणी शोथ होने का भय रहता है।

कपाल वायुपुटी (Cranial Pneumalocele)—इस दिशा में शिर के किसी ऊतक में वायु एकत्र हो जाती है, यह बाह्य कपाल व परिकपाल के नीचे एकत्र हो सकती है। वायु प्रायः परानासा-वायु विवरों से आती है, करोटि के साधारण X-Ray से वायु की स्थिति दीख सकती है।

अनुगम—

स्मृति लोप—शिरो आघात के पश्चात् स्मृति लोप दो प्रकार का होता है—

(क) अभिघातोत्तर स्मृति लोप—इसमें रोगी को आघात के पश्चात् हुई घटनाओं की स्मृति नहीं रहती। कभी-कभी बीच में अल्पकाल के लिए रोगी को स्मरण हो जाता है।

(ख) प्रतिगामी स्मृति लोप—आघात के पूर्व हुई घटनाओं की स्मृति का लोप होता है। यह दशा कुछ सेकण्ड से दीर्घकाल तक रह सकती है।

आकर्ष (Convulsion)—तीव्र मस्तिष्क आघातों के पश्चात् जिनमें मस्तिष्क का नील लांछन और विदरण होता है आकर्ष होते हैं।

अभिघातोत्तर संलक्षण (Post traumatic Syndrome)—शिर के आघात के रोगियों में से तृतीयांश से कुछ अधिक रोगी एक लक्षण पुंज से ग्रस्त होते हैं जिसके लक्षण शिरोवेदना, शिर घूमना [घुमेड (Dizziness)], अधीरता (Nervousness), दृष्टि विकार, श्रवण सम्बन्धी लक्षण, एकाग्रचित्त होने की असमर्थता, अनिद्रा, चिड़चिड़ापन, बेचैनी, अतिस्वेदास्यता, अवसाद या अन्य व्यक्तिगत परिवर्तन होते हैं। संलक्षण की तीव्रता में बहुधा भिन्नता पाई जाती है। लक्षण आघात के कुछ दिनों से लेकर कई मास पश्चात् प्रकट हो सकते हैं और भिन्न-भिन्न समय रह सकते हैं। ये प्रायः भावुक, अस्थिर चित्त वाले व्यक्तियों में होते हैं।

शिरोभिघात की चिकित्सा—

(१) रोगी को अंधेरे में शान्त स्थान पर लिटाकर रखें, उसे हिलाना-डुलाना या कोई उत्तेजक औषधि देना ठीक नहीं है। कारण उत्तेजक औषधियों के प्रभाव से मस्तिष्कगत तनाव बढ़ता है जिससे बेहोशी बढ़ जाती है तथा श्वसन क्रिया मन्द पड़ जाती है। ए० टी० एस० का इन्जेक्शन दें।

(२) शिर पर बर्फ की थैली रखना, शीतल शरीर के आसपास गर्म बोतलों को रखना उचित है। यदि श्वास में अवरोध होता हो तो रोगी को एक करवट पर लिटायें, सिर कुछ नीचे रहे। जीभ आगे की तरफ रहे।

(३) मस्तिष्क को रक्त कम मिल रहा होता है एतदर्थ श्वासमार्ग को साफ रखना जरूरी है। मुख में जमा हुई थूक व वमन द्रव को कपड़े से साफ कर देना चाहिये जिससे श्वासमार्ग की तरफ थूक आदि न जा सके अर्थात् श्वासमार्ग को रुकने न दें। यदि मूर्च्छित व्यक्ति थूक नहीं सकता हो तो श्वास प्रणाली छेदन (Tracheotomy) का शल्यकर्म आवश्यक हो जाता है।

(४) कोई निद्राजनक औषधि न दें क्योंकि उससे श्वास केन्द्र और भी मन्द हो जाता है जिससे श्वासगति मन्द होजाती है।

(५) रोगी बेहोश हो और उसकी नेत्र की पुतली फैली हुई हो तो उधर की तीसरी मस्तिष्क नाड़ी दब गई है ऐसा अनुमान किया जाता है।

(६) नाड़ी की गति का कम होना तथा रक्तभार का कम होना हृदयाघात का सूचक है तापमान तथा श्वास की गति का भी रिकार्ड रखना चाहिये।

(७) रोगी होश में हो, भारी सिर दर्द हो तो वेदनाहर औषधि दें तथा सेलाइन का मुख द्वारा प्रयोग करें।

(८) रोगी को पहले-पहले ३-४ दिन मल नहीं आता एतदर्थ वस्ति देनी चाहिये।

(९) रोगी को आहार नासिका द्वारा—राइल्स ट्यूब द्वारा पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए।

(१०) शिरोभिघात में वृक्क ठीक काम नहीं करते अर्थात् मूत्र का आपेक्षिक भार (Sp. gravity) घट जाता है ऐसी अवस्था में जल और प्रोटीन का देना ठीक नहीं, इस अवस्था में ग्लूकोज सेलाइन सिरा द्वारा देना चाहिये।

रोगी को मूत्राघात भी होता है अतः कैथीटर द्वारा मूत्र निकाल देना चाहिये। एतदर्थ आधुनिक चिकित्सक Lasix देते हैं। श्वेत पर्पटी का प्रयोग हितावह है।

आयुर्वेदीय औषधि व्यवस्था—

(१) लक्ष्मीविलास रस १ गोली, प्रताप लंकेश्वर रस १ गोली, प्रवालपिष्टी २ रत्ती, गोदन्ती भस्म ४ रत्ती, यष्ठीमधु ८ रत्ती, १ माशा। दिन में ३ बार दूधसे

(२) लाक्षादि गुग्गुलु विषमुष्टी वटी १-१ गोली, अश्वगन्धा चूर्ण १ माशा, दिन में १ बार ० बजे दें।

(३) नाक में षड्बिन्दु तैल का नस्य देना उचित है।

(४) शिरोभिघात के स्थान पर रक्तस्राव हो रहा हो तो यष्ठीमधु चूर्ण से व्रण स्थान को पूरित कर पट्टी बांधें।

(५) शिरोभिघात के रोगी को पौष्टिक आहार, बादाम का हलवा व देशी घी का हलवा, फिटकरी के हलवे के विशेष प्रयोग लाभदायक हैं। चबाकर खाने का भोजन न देकर निगलने योग्य पदार्थ देना उत्तम है।

—::*::—

अस्थिभग्न—किसी भी गम्भीर आघात से शरीरगत हड्डियों के टूट जाने को अस्थिभंग कहते हैं अतः अस्थि की निरन्तरता का भङ्ग साधारणतया किसी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आघात के कारण ही होता है।

अस्थिभग्न के कारण—१. प्रधान कारण, २. गौण कारण।

(१) प्रत्यक्ष आघात—प्रत्यक्ष अभिघात के कारण हुए अस्थिभङ्गों में अभिघात लगने के स्थान पर ही अस्थि टूटती है। जैसे—डण्डे, लाठी आदि की चोट से हाथ-पैर की हड्डी टूट जाना व जंघा पर से गाड़ी का पहिया निकल जाने से वहां की हड्डी के दो टुकड़े हो जाना, प्रत्यक्ष आघात कहलाता है।

(२) अप्रत्यक्ष आघात—शरीर पर किसी एक स्थान पर आघात लगता है परन्तु अन्य स्थान की हड्डी टूट जाती है तो उसे अप्रत्यक्ष आघात कहते हैं जैसे पैर पर किसी भारी चीज के गिरने से उर्वस्थि का व हाथ पर आघात लगने से हंसली व प्रगण्डास्थि का भग्न होना इत्यादि अस्थिभंग सदा जहां (रचनानुसार) दुर्बल होती हैं वहीं होता है।

(३) पेशी का तनाव—पेशी के अकस्मात संकोच से जान्विकास्थि (patella) का या कूर्पर प्रवर्धन (Olecranon Process) का अस्थिभंग हो सकता है। वृद्ध व्यक्तियों में अति तीव्र खांसी या छींक से पर्शुका का भंग हो सकता है।

गौण कारण—उपरोक्त आघातजन्य कारणों के अतिरिक्त कुछ गौण कारण भी हुआ करते हैं—

(१) वृद्धावस्था—वृद्ध पुरुषों में आयु की वृद्धि के साथ अस्थियों में चूने की कमी होती जाती है तथा अङ्गों की शिथिलता तथा आन्तरिक स्रावों में परिवर्तन हो जाते हैं इसलिए थोड़े से आघात से ही अस्थिभंग हो जाती है।

(२) पैतृक भग्न प्रवृत्ति नामक दशा में अस्थियों में भग्न होने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। इसका कारण पैतृक है। जन्म से ही अस्थियां अत्यधिक कमजोर होने के कारण अल्प आघात से ही टूट जाती हैं।

(३) अस्थि मृदुता—स्त्रियों में अधिक प्रसव के उपरांत शरीर में चूने, फासफोरस एवं विटामिन डी की कमी होने से अस्थियां अपेक्षाकृत अधिक मुलायम हो जाती हैं जिससे अस्थि भङ्ग की प्रवृत्ति आ जाती है।

(४) अस्थि रोग—जैसे अस्थि शोथ, अस्थिक्षय तथा अस्थिवक्रता इत्यादि भग्न की प्रवृत्ति उत्पन्न कर देते हैं।

इनके अतिरिक्त आयु, रोग तथा व्यवसाय इत्यादि भी गौण कारण कहलाते हैं। बाल्यावस्था में अस्थियां केवल मुड़ जाती हैं टूटती नहीं। ३० से ४० वर्ष के बीच सबसे अधिक भग्न होते हैं क्योंकि इस अवस्था में व्यक्ति अत्यन्त उद्यमशील होते हैं तथा जीवनोपार्जन तथा मनोरंजन के लिए प्रायः आपत्तिजनक कार्यों को भी करते रहते हैं, स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा कम भग्न होते हैं।

आचार्य सुश्रुत ने भी इन्हीं अधिकांश कारणों को भग्न का कारण माना है—

पतन पीडनप्रहाराक्षेपणव्याल मृगदशन प्रवृत्तिभिघातविशेषैरनेक विधमस्थनां भङ्गमुपदिशन्ति।

—सुश्रुत निदान अध्याय १५।३

अस्थि भग्न के प्रकार—

अस्थिभग्न को निम्न तीन भागों में विभक्त किया गया है—

(१) साधारण व अव्रण अस्थिभग्न

(२) संयुक्त या सव्रण अस्थिभग्न

(३) अन्तर्घट्टित अस्थिभग्न

(१) साधारण या अव्रण अस्थिभग्न—इसमें अस्थि टूटकर दो टुकड़ों में विभक्त हो जाती है किन्तु उसके समीपवर्ती अवयव धमनी, शिरा, मांसपेशी आदि को कोई आघात नहीं पहुँचता और त्वचा एवं तन्तु नहीं टूटने-फूटने से बाहर से टूटी हुई अस्थि दिखलाई नहीं पड़ती। साधारण अस्थि भग्न २ प्रकार की होती है—

(१) सम्पूर्ण, (२) अपूर्ण।
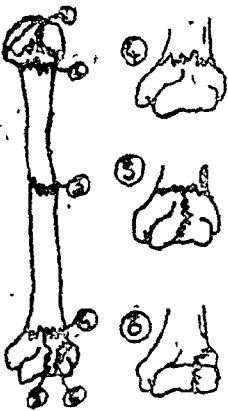
प्रगण्डास्थि (Humerus) के विभिन्न प्रकार के भग्न
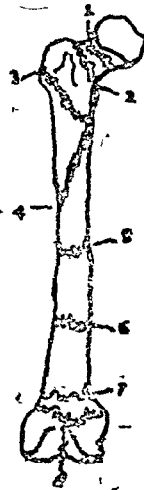
उर्वस्थि के विभिन्न प्रकार के भग्न

(क) सम्पूर्ण भग्न— हड्डी टूटकर दो अलग-२ टुकड़े हो जाते हैं। यह टूटना अनुप्रस्थ (Transverse), तिरछा (Oblique), अनुलम्ब (Longitudinal), कई टुकड़ों में खण्डित (Comminuted), कई स्थानों से सम्पूर्ण टूटा (Multiple) और टेढ़े-मेढ़े रूप में (Spiral) भग्न रूप में हो सकती है।

(ख) अपूर्ण अस्थिभग्न में अस्थि टूट तो जाती है किन्तु उसके अलग-२ टुकड़े नहीं बनकर निम्नांकित कई रूप हो जाते हैं—

१. अपूर्ण विशाखाभग्न (Green stick fracture)—इसमें अस्थि के दो टुकड़े न होकर वह हरी टहनी की तरह मुड़ जाती है। विशेषतः १२ वर्ष से कम आयु के बच्चों में हड्डी के दो टुकड़े न होकर वह कच्चे बांस को तोड़ते समय जिस प्रकार निचला आधा भाग लगा रहता है और ऊपर का भाग मुड़कर दोनों तरफ नुकीला बन जाता है क्योंकि कम उम्र वाले बच्चों की अस्थि में कड़ापन नहीं होता इसलिए ऐसा होता है।

२. दबा हुआ अस्थिभग्न—भारी आघात से विशेषकर चौड़ी हड्डियां दबकर यह स्थिति उत्पन्न कर देती है। करोटि, श्रोणि अंसफलक आदि चपटी अस्थियों में ऐसी स्थिति होती है।

३. दरारयुक्त अस्थिभग्न—इसमें अस्थियों के टूटने की जगह पर दरार पड़ जाती हैं जो अधिकतर सिर, स्कन्ध तथा कमर की अस्थियों में हुआ करती हैं।

(२) सव्रण व संयुक्त अस्थिभग्न—हड्डी के टूटने के साथ ही निकटवर्ती अङ्गों को जब आघात पहुँचता है तथा हड्डी के टुकड़े मांसपेशी, त्वचा आदि मृदु अङ्गों को बींधते हुए बाहर निकल आते हैं जिससे अत्यधिक रक्तस्राव होता है। इससे विदीर्ण स्थान से धूलकण, तृण, दूषित वायु प्रविष्ट होकर शोथ एवं पूयोत्पादन करते हैं।

(३) अन्तर्घट्टित अस्थिभग्न (Impacted Fracture)—आघात के बल के कारण अस्थि का एक भाग दूसरे भाग में धंस जाता है। कभी-२ वृद्धों के अस्थिभग्न में अस्थि के टूटे दोनों टुकड़े एक दूसरे के अन्दर धंसकर घुस जाते हैं जिन्हें निकालना बड़ा कठिन होता है।

आचार्य सुश्रुत ने इसे 'मज्जानुगत अस्थिभग्न' कहा है। आचार्य सुश्रुत ने जो १२ भेद बताये हैं उनमें उपरोक्त सभी भेदो का समावेश हो जाता है यथा—कर्कटम् अश्वकर्णम्, चूर्णितम्, पिच्चितम्, अस्थिच्छल्लितम्, काण्डभग्नम्, मज्जानुगतम्, अतिपातितम्, वक्रम्, छिन्नम्, पाटितम्, स्फुटितमिति द्वादशविधम्। सु. नि. अ. १५।७

अस्थि भग्न के लक्षण और चिन्ह—

निदान—दुर्घटना आकस्मिक, असम्यक् एवं अनपेक्षित होती है अतः रोगी व उसको लाने वालों से अस्थि-

भग्न की प्रकृति, कारण, दिन, समय, स्थान आदि की जानकारी करले तो इससे भविष्य में बड़ी सहायता मिलती है।

अस्थि भग्न के तुरन्त बाद
[१] अस्थ्यावरण कला [२] कार्टेक्स [३] अस्थिमज्जा [४] भग्न अस्थि के दोनों सिरे [५] मृदु तन्तुओं की टूटन तथा रक्तस्राव का जमाव
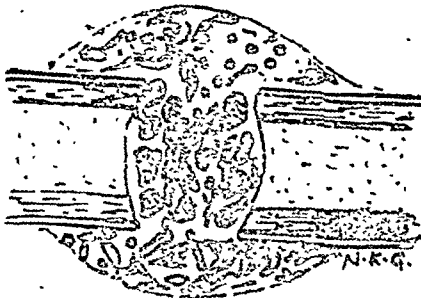
अस्थि भग्न के ४-५ दिन बाद—गलन तथा जमाव के कारण वहां शरीर की प्रतिक्रियात्मक शक्ति कार्य करती है। नई केशिकायें आदि बन जाती हैं।
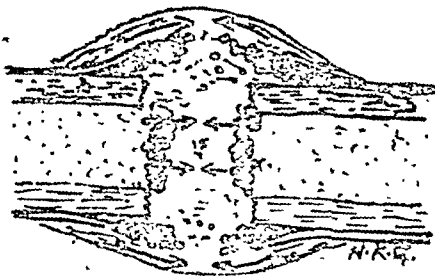
भग्न अस्थि के टूटे सिरों पर अस्थितन्तु १ सप्ताह बाद उत्पन्न होजाते हैं।

नैदानिक चिन्ह—

(१) स्थानिक वेदना—अस्थिभग्न के स्थान पर तीव्र वेदना होती है और अङ्ग को हिलाने डुलाने से और भी बढ़ जाती है तथा अङ्ग को स्थिर करने से कम होती है।

(२) स्थानिक स्पर्शासहता—बहुमूल्य चिन्ह है यद्यपि पीड़ा भग्न स्थान के आसपास भी होती है पर भग्न स्थान पर तो असह्य पीड़ा होती है जिससे रोगी उक्त स्थान को स्पर्श तक नहीं करने देता।

(३) शोथ – भग्न के कारण तन्तुओं के भिन्न-भिन्न होने एवं रक्तस्राव होने से ३-४ घण्टे बाद स्थानिक शोथ हो जाता है।

(४) अकर्मण्यता—अस्थि भंग होने पर अङ्ग कार्य नहीं कर सकता। फलस्वरूप उस स्थान में कोई गति नहीं होती और यदि बलपूर्वक गति कराई जाती है तो असह्य वेदना होती है तथा अङ्ग का अकर्मण्य हो जाताहै।

(५) अङ्ग विकृति—अस्थिभंग के कारण वहां का स्थान एवं आकार विकृत हो जाता है। स्वाभाविक आकृति में अन्तर एवं कुरूपता दिखाई देती है।

(६) अपसामान्य गति—जिस स्थान पर हड्डी टूट गई होती है उसके अङ्ग को हिलाने से टूटे हुए स्थान पर अस्वाभाविक गति होती है।

(७) अस्थि ध्वनि (Crepitus)—अंग को हिलाने से अस्थि के दोनों टुकड़े आपस में रगड़ खाते हैं जिससे कड़कड़ाहट व घर्षण ध्वनि सुनाई देती है जो उपस्थित होने पर निश्चयात्मक होता है किन्तु इसको प्रतीत करने के उद्योग से लाभ की अपेक्षा हानि हो सकती है, वेदना होती है और खण्ड विस्थापित हो सकते हैं।

निश्चयात्मक निदान—उपरोक्त लक्षणों से अस्थिभंग की शंका स्पष्ट हो जाती है पर उसका निश्चयात्मक निदान एक्स-रे द्वारा चित्र खींच लेने से ही होता है। भग्न स्थान के सामने और पार्श्व से दो चित्र लेने चाहिए। भग्न स्थान के चित्र में अस्थि के दोनों टुकड़ों के बीच अन्तराल दिखाई देता है। जब अस्थि जुड़ने लगती है, तब सन्धान वस्तु में होकर एक्स-रे किरणें निकल जाती हैं और इस कारण इसकी कोई छाया नहीं बनती।

आजकल एक्स-रे का प्रयोग बहुतायत से हो रहा

३ सप्ताह बाद कैलस बन गया है।

बाद में कैलस ठोस होता एवं ठोस आकृति में ढाला जाता है।

अन्त में अस्थि में एकरूपता आ गई है।

है। ये किरणें मांस से होकर निकल जाती हैं किन्तु अस्थि को पार नहीं कर सकतीं। इस कारण अस्थि की स्पष्ट छाया दिखाई देती है। अतः अस्थि भग्न का निदान एक्स-रे करवा कर ही पूर्ण निश्चय करना चाहिए।

आचार्य सुश्रुत द्वारा निर्दिष्ट काण्ड भग्न के लक्षणों में उपर्युक्त लक्षणों का समावेश पाते हैं यथा—

श्वयथु बाहुल्यं स्पंदननिवर्तनस्पर्शासहिष्णुत्वमुपीड्यमाने शब्दः स्रस्तांगता विविधवेदनाप्रादुर्भावः सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभ इति समासेन काण्डभग्नलक्षणमुक्तम्।

— सुश्रुत निदान अ. १५।८

अस्थि-संयोजन—अस्थिभग्न के कुछ समय के पश्चात टूटे हुए भागों में फिर रोहण हो जाता है और वहां पर नवीन धातु जिसको सन्धान वस्तु (Callus) कहते हैं, बनने लगती है, जो भग्न भागों के बीच पूर्ण अस्थि बन जाती है अतः यदि भग्न आदि का ठीक से स्थितीकरण कर दिया जाय और तब अस्थिसंधान हो तो अस्थि का आकार पूर्ववत् हो जाता है किन्तु सन्धान ठीक न होने से अस्थि की आकृति बिगड़ जाती है।

कुसंयोजन (Malunion)—जब अस्थि के भग्न भागों का सन्धान ठीक नहीं होता, तो दोनों भागों के बीच में अन्तर रह जाता है अथवा एक भाग दूसरे के ऊपर चढ़ जाता है ऐसी अवस्था में उचित संयोजन न होने के कारण अङ्ग विकृत होजाता है। आचार्य सुश्रुत लिखते हैं—

आदितो यच्च दुर्जातमस्थि सन्धिरथापि वा।
सम्यग्यमितकालस्थि दुर्न्यासाद दुर्निबन्धनात्॥
संक्षोभाद्वाऽपि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत्।

—सु. नि. अ. १५/१२-१३

ऐसी दशा में सन्धितभग्न अथवा सन्धान वस्तु को तोड़कर फिर से भग्न भागों का सन्धान करना पड़ता है। वृद्धावस्था में सन्धान वस्तु के बन जाने के बाद उसको तोड़ना नहीं चाहिए। कारण इस आयु में अस्थि का जुड़ना कठिन होता है।

अस्थि का न जुड़ना—सन्धान करने के पश्चात् अस्थि के न जुड़ने के प्रायः निम्न कारण हैं—

१. उचित सन्धान न होना २. अस्थि भागों के बीच पेशियों का आजाना ३. सन्धान के बाद अङ्ग को विश्राम न मिलना ४. अस्थि रोग ५. रोगी की शारीरिक दशा का क्षीण होना।

भग्नास्थि के तीक्ष्ण सिरों के कारण अस्थि संधान में अवरोध उत्पन्न होता है।
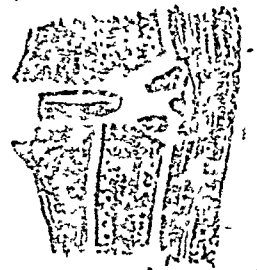
अस्थिभग्न के दो सिरों के बीच बाह्य वस्तु पहुँच गई है जिससे अस्थि संधान में अवरोध उत्पन्न होता है।

संयोजन न होने पर अस्थियों को हिलाने से दोनों भग्न स्वतन्त्र दिशाओं में हिलते हैं, भग्न ध्वनि भी होती है, अङ्ग की विकृति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यदि अस्थि के भागों की स्थिति उत्तम न हो तथा अङ्ग में विकृति आ गयी हो तो उसको शल्य कर्म द्वारा ठीक करने का प्रयत्न करना चाहिए जो शल्य चिकित्सक द्वारा ही सम्भव है। इस कर्म में कोमल भागों का छेदन करके तथा आवश्यक हो तो अस्थि के आकार ठीक करके जोड़ दें। इसमें अस्थि का कुछ भाग काटना भी आवश्यक हो सकता है किन्तु उससे अङ्ग की उपयोगिता में कोई हानि नहीं होती, फिर चांदी के तार व प्लेट इत्यादि से जोड़ा जा सकता है।

शल्यकर्म की आवश्यकता—निम्न अवस्थाओं में शल्यकर्म प्रायः आवश्यक होता है—

१. सन्धि के भीतर और उसके समीपवर्ती भग्न २. जब भग्न भागों का स्थान-भ्रंश अन्य उपायों से ठीक न किया जा सके ३. जब भग्न के साथ नाड़ी, पेशी तथा रक्त नलिकाएं इत्यादि भी कट गई हों ४. जान्वस्थि, अन्तःप्रकोष्ठास्थि के तथा उर्वस्थि के कूट भग्न में अस्थि के टूटे हुए भाग पेशियों से इतने दूर खिंच जाते हैं कि अन्य उपाय कारगर नहीं होते, शल्यकर्म ही करना पड़ता है।

शल्यकर्म द्वारा सन्धान में प्रयुक्त वस्तुएं—

१. चांदी का तार—यह जान्वस्थि और कूर्पर कूट के भग्नों में प्रयुक्त होता है।

२. लेन की प्लेट—जो धातु की बनी होती है तथा अस्थि पर पेंच कस कर अस्थि को स्थिर कर देती है।

३. धातु, अस्थि, हाथी दांत की कीलें पेंच भी प्रयोग किये जाते हैं, लोहे की छड़ का प्रयोग भी अस्थि को स्थिर रखने के लिए किया जाता है।

अस्थि भग्न के उपद्रव—

१. स्तब्धता—इसकी गम्भीरता रोगी की आयु, आघात की प्रकृति एवं उसके द्वारा उत्पन्न क्षत एवं स्थान पर निर्भर करती है। यदि आघात किसी मर्म स्थान पर होता है तो उससे गाढ़ी स्तब्धता उत्पन्न होती है। विकृत और उपद्रवयुक्त अस्थिभंगों में तथा जहां मृदु ऊतक क्षत होता है वहां स्तब्धता अधिक तीव्र होती है।

२. भग्न ज्वर—भग्न के दूसरे, तीसरे व चौथे दिन ज्वर हो जाता है जो १०० फा० या इससे कुछ अधिक तक जाता है तथा २-३ दिन रहकर स्वतः चला जाता है।

३. वसा अन्तःशल्यता (Fat Embolism)—भग्न के कारण अस्थि-मज्जा से वसा के कण पृथक होकर रक्त द्वारा फुफ्फुस और मस्तिष्क में पहुँच जाते हैं, फुफ्फुस में अधिक वसा एकत्र होने से श्वासावरोध होकर मृत्यु हो जाती है। मस्तिष्क में वसा पहुँचकर मूर्च्छा उत्पन्न कर सकती है, यह विरल उपद्रव हैं जिनका निदान बहुधा मृत्यूत्तर ही होता है।

४. सकम्प उन्माद (Delirium Tremens) मद्यपान के अभ्यस्त व्यक्तियों को इस प्रकार के उन्माद की अधिक सम्भावना रहती है। निद्रानाश तथा उन्माद की दशा के अतिरिक्त सारे शरीर में कम्पन होता है। रात्री को भयानक स्वप्न दिखाई देते हैं जिससे डर कर रोगी शय्या से कूद पड़ता है। आगे चलकर रोगी मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है और अन्त में रोगी का प्राणांत हो जाता है।

इस दशा में रोगी को पुष्टिकारक भोजन और निद्राजु औषधियों का प्रयोग कराते हुए उन्माद की चिकित्सा का भी ध्यान रखना चाहिए।

५. रक्तस्राव—कभी-२ भग्न के कारण अत्यधिक रूप से रक्तस्राव भी होता है।

६. धमनियों के क्षत—संयुक्त भग्नों में धमनियां क्षत हो जाती हैं जिससे उस स्थान में रक्त एकत्र हो जाता है इससे निर्जीवाङ्गत्व उत्पन्न हो सकता है।

७. नाड़ी धमनी तथा सिराओं के टूट जाने से विविध प्रकार के उपद्रव होते हैं जैसे नाड़ी के टूट जाने से अङ्गघात होने की सम्भावना रहती है।

८. सन्धि में सूजन, घुमाने में अड़चन आदि भी हो जाते हैं।

९. दबाव से व्रण बन जाते हैं जिसे दबावव्रण कहते हैं।

१०. कभी-२ विकृत स्थान सड़ने-गलने से शोथ हो जाता है।
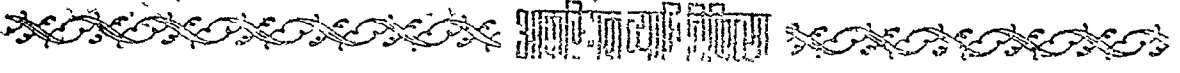
अस्थिभग्न का प्राथमिक उपचार—

रक्तस्राव को तत्काल रोकने की उचित व्यवस्था करनी चाहिए तथा तत्क्षण किसी स्वच्छ वस्त्र से उक्त स्थान को बांध देना चाहिए। बिना जोर लगाये पीड़ित अङ्ग को यथासम्भव ठीक स्थिति में लाकर सीधा करदें तथा जब तक मरहम पट्टी न करा लें रोगी को न हिलावें-डुलावें।

टूटी हुई अस्थि के दोनों ओर हड्डी को यथासम्भव स्वाभाविक स्थिति में लाकर खपच्चियां या पटरियां बांध दें। यदि ये न मिलें तो समयानुसार प्राप्त वस्तुओं जैसे छड़ी, छाता, ब्रुश, मोटर का हैण्डिल, बन्दूक, फट्टा आदि जो वस्तु उपलब्ध हो उसको स्पिलिण्ट की तरह काम में लेकर रोगी को आराम पहुँचावें। यदि ये भी न मिले तो हाथ को धड़ के साथ तथा एक पैर को दूसरे पैर के साथ कस कर बांध दें। जब तक अस्थिभग्न की वास्तविक स्थिति का ज्ञान न हो जाय रोगी को हिलावें-डुलावें नहीं तथा नहीं उठकर चलने दें। यदि घायल व्यक्ति की रीढ़ व जांघ की हड्डी को टूटने की सम्भावना हो तो उसी हालत में एम्बुलेन्स द्वारा अस्पताल पहुँचावें तथा एक्स-रे कराकर निश्चित निदान कर भग्न अस्थि की वास्तविक स्थिति को जानकर उचित चिकित्सा-व्यवस्था करें।

अस्थिभग्न की चिकित्सा— सामान्य प्राथमिक उपचार के पश्चात् अस्थिभग्न को चिकित्सा-व्यवस्था करनी चाहिए। सर्वप्रथम अस्थि सन्धान एवं स्थिरीकरण और उसके बाद सक्रिय अस्थि संचालन, मालिश, मन्दक्रिय अस्थिसंचालन तथा विद्युत-चिकित्साआदि करनी चाहिये।

अस्थिसन्धान—सर्व प्रथम X ray करके अस्थिभग्न की ठीक स्थिति का ज्ञान कर लेना चाहिए। तब टूटी हुई हड्डी को यथासम्भव ठीक आमने-सामने निम्नलिखित विधि से लाना चाहिए—

(क) हाथ से—यदि टूटी हुई अस्थि हाथ, पैर की अंगुलियों की हो तो हाथ से खींच कर दोनों सिरों को आमने-सामने बैठा दें।

(ख) संज्ञाहर औषधियों का प्रयोग करके सन्धानकर्म करें जिससे रोगी को कष्ट न हो।

(ग) धातु की पैलियों व अन्य उपायों से खिंचाव (extention) देकर अस्थिसन्धान करें।

(घ) अस्थि के कई टुकड़े हो गये हों, भग्न पुराना और शोथ युक्त हो तो शल्यकर्म करके सन्धान करें।

स्थिरीकरण—अस्थिभग्न का सन्धान करने के बाद हड्डी फिर अपने स्थान से हट न जाय व सन्धिच्युति न हो जाय अतः इसको भलीभांति बांधकर प्लास्टर लगा दिया जाता है तथा लगभग ३ सप्ताह या उससे अधिक समय तक रखा जाता है। प्लास्टर लगाना आवश्यक लाभ नहीं होने पर स्प्लिण्ट लगावें। प्लास्टर व स्प्लिण्ट लगाने के पहले आक्रान्त स्थान को विसंक्रमित करलें।

प्लास्टर विधि—प्लास्टर २ प्रकार के आते हैं (१) चूर्ण रूप में और (२) कपड़े की पट्टी के रूप में। बने बनाये प्लास्टर को जिप्सोना प्लास्टर (Gypsona Plaster) कहते हैं जिसका आकार २" ३" तथा ४-६ इंच का होता है। चूर्ण को वस्त्र की पट्टी में लगाकर तब काम में लाते हैं। बने बनाये प्लास्टर की पट्टी को चार-पांच स्तर करके छोटे-२ और लम्बे-२ टुकड़ों में काट लिया जाता है। इस पट्टी को थोड़े गर्म पानी में छोड़कर उठा लिया जाता है और जहां बांधना है उस स्थान पर रख कर हाथ में जल लगाकर उस पर रगड़ कर चिकना कर लिया जाता है।

स्प्लिण्ट विधि—यह लकड़ी, धातु चमड़े तथा प्लास्टिक के बने होते हैं। आचार्य सुश्रुत ने वृक्षों की छालों की कुशाओं का उल्लेख किया है—

> मधुकोदुम्बराश्वस्थ कदम्ब निचुलत्वचः।
> वंशसर्जार्जुनानाञ्च कुशार्थमुपसंहरेत् ॥
>
> —सुश्रुत चि० अ० ३/६

आजकल अन्य वस्तुओं की अपेक्षा काष्ठ और लोहे के कुशा (Splints) काम में लाये जाते हैं जो अङ्गों की आकृति के अनुसार बनाये जाते हैं—जैसे थोमस पैर का स्प्लिण्ट, नाकिन स्ट्रिाचर स्प्लिण्ट, गूल स्प्लिण्ट (Gooel's Splint) आदि स्प्लिण्ट या प्लास्टर लगाने से पहले उस स्थान को जीवाणुनाशक घोल से शुद्ध करलें फिर बोरिक एसिड का अच्छी तरह कम्प्रेस कर लें तब सम्पूर्ण आक्रांत स्थान पर पतली रुई रखकर स्प्लिण्ट का प्लास्टर लगाना

चाहिए। लकड़ी के स्प्लिण्ट (खपञ्चियां) आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं और इसका प्रयोग सभी लोग आसानी से कर सकते हैं। यदि समय पर खपञ्चियां भी न मिले तो दैनिक पत्र अखबार, पत्रिका को रोल (Roll) करके स्प्लिण्ट के रूप में प्रयोग कर सकते हैं।

स्ट्रेपिंग विधि (Straping)—अधिक स्ट्रेपिंग का प्रयोग पसली की हड्डी (Ribs) के टूट जाने पर किया जाता है। स्ट्रेपिंग का प्रयोग भी स्प्लिण्ट के समान ही किया जाता है। प्राथमिक उपचार में इसका प्रयोग किया जाता है बाद में इसको हटाकर स्प्लिण्ट व प्लास्टर बांधें।

स्लिङ्ग [Sling]—कभी-कभी हाथ को सहारा देने के लिये हाथ के थोड़ा-सा ऊपर कोहुनी पर बांधा जाताहै। ६० सेमी चौड़े और ६० सेमी लम्बे कपड़े के वर्गाकार टुकड़े को कोण से आधा करने पर जो बनता है उसे स्लिङ्ग कहते हैं। (चित्र में नं० १)

उपरोक्त विधि के अनुसार अस्थिसन्धान एवं अस्थिरोपण कार्य होजाने के कुछ दिन व ११ दिन बाद निम्नलिखित चिकित्सा की जाती है—

१. सक्रिय सन्धि संचालन [Active Movements]—प्लास्टर काटने व स्प्लिण्ट हटाने के बाद रोगी को निर्देश दें कि वह स्वयं अस्थि सन्धियों को धीरे-२ घुमावे जिससे अस्थियों को शक्ति मिले।

२. मालिश [Massage]—महानारायण तैल व महामाष तैल या सरसों का तैल की मालिश करावें जिससे सूजन और अवसन्नता दूर होगी।

३. मन्दक्रियसन्धि संचालन [Passive Movements]—स्वयं अथवा परिचारक से सन्धियों को थोड़ा-२ हिलवाना चाहिए।

४. विद्युत चिकित्सा—पेशियों एवं रक्तवाहिनियों में अधिकाधिक शक्ति संचार लाने के लिए 'इलेक्ट्रो मेडिको मशीन' के २ पोल में १ पोल को रोगी के एक हाथ में देकर दूसरे पोल से आक्रान्त स्थान पर स्पर्श कराना चाहिए।

खुला (सव्रण) अस्थिभग्न—इस प्रकार के भग्नों में अस्थिभग्न के साथ भग्न के अङ्ग पर व्रण बन जाता है वायु का अस्थि तक प्रवेश हो जाता है और पेशी, त्वचा इत्यादि भी फट जाते हैं। ऐसे भग्न अत्यन्त चिन्ताजनक होते हैं कारण इन भग्नों में जीवाणुओं के क्षत में प्रविष्ट होकर पूयोत्पादन करने का बड़ा भय रहता है जिससे अस्थिशोथ, अस्थि मज्जाशोथ अथवा अस्थि गलन आदि उपद्रव उत्पन्न होकर अस्थि संयोजन में बाधक होकर मारक का रूप ले लेते हैं।
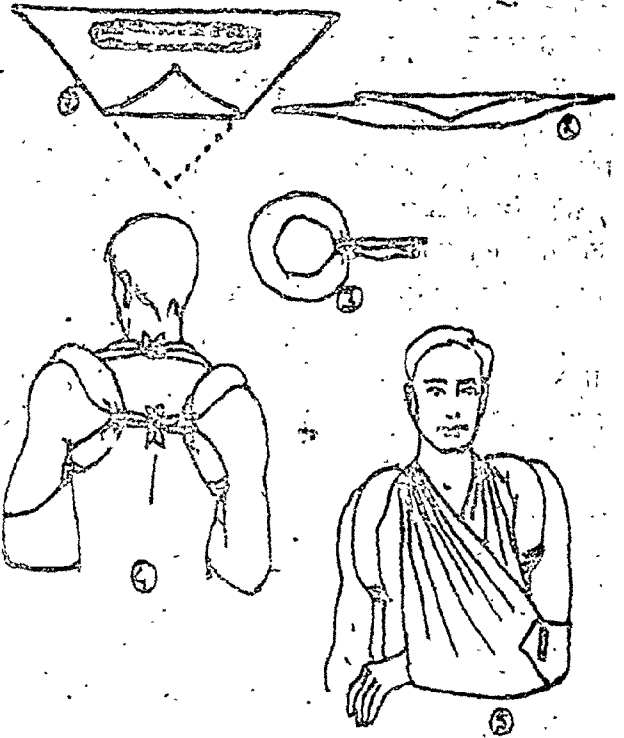
अक्षकास्थि के भग्न में स्लिग की तीन विधियां

चिकित्सा—साधारण अस्थि भग्न की तरह ही करे पर विशेष रूप से संक्रमण न होने देने के लिए सबसे पहले क्षत को पूर्णतया शुद्ध करे। विसंक्रमित विलयनों से शुद्ध करके व्रण को पूर्णतया शुद्ध करें। फिर शुद्ध अलकोहल से धोकर उसमें विस्मथ-आयडोफार्म का कल्क भर कर व्रण को सीया जाता है। उपसर्ग से बचाने के लिये मुख द्वारा

भी जीवाणुनाशक औषधियों का प्रयोग किया जाता है भग्न के स्थान पर क्षत की चिकित्सा भी जीवाणु नाशक घोल, मलहम पट्टी द्वारा की जाती है।

अङ्ग छेदन—संयुक्त भग्नों में अनेक बार आक्रांत अङ्ग का अंगच्छेदन करना पड़ता है। अंग की रक्षा यदि न की जा सकती हो या अंग बच भी गया तो भविष्य में कोई उपयोगी न होगा। संक्रमण अंग में आगे तक फैलता जा रहा हो तो अंगच्छेदन करने में विलम्ब करना उचित नहीं अन्यथा प्राणघातक हो सकता है।

अस्थि भंग की अनुभूत आयुर्वेद चिकित्सा—

एक पुरानी घटना (दि. २-१२-८४) ताजी हो गई। आज सुबह मुझे श्रीमती श्री ब्रिगेडियर एण्डले द्वारा आमन्त्रण मिला। उन्होंने बताया कि ले० रणजीत सिंह दयाल सायंकाल आ रहे हैं तथा उन्होंने आप से मिलने की बड़ी इच्छा प्रकट की है। सायंकाल मैं उनसे मिला तो पार्टी में आये सेना के उच्चाधिकारियों को मेरा परिचय कराते हुए उन्होंने बड़े ही गौरवपूर्ण ढंग में कहा कि आयुर्वेद चक्रवर्ती डा० गिरिधारीलाल मिश्र ने हमारी पसलियों की टूटी हुई हड्डियों को ५ दिन में ही जोड़कर हमें ड्यूटी पर भेज दिया और आज तक दर्द नहीं हुआ। सन् १९८१ की बात है जब लेफ्टिनेण्ट जनरल रंजीतसिंह दयाल पूर्वाञ्चल भारत के सेनाध्यक्ष थे। अभी वे western Command सम्भाले हुए हैं और पंजाब की स्थिति को नियन्त्रित करने का श्रेय उन्हीं का है।

हॉस्पिटल पंजीयन संख्या ७४०६६ दि. १२।११।८१
नाम—ले० जनरल रजीतसिंह दयाल,
निदान—पर्शुकास्थिभंग

औषधि व्यवस्था—

१. अस्थिसन्धानक चूर्ण १० ग्राम, १० ग्राम चूर्ण में ४० ग्राम आटा मिलाकर हलवा बनाकर प्रातःकाल नाश्ते के रूप में खाना व ऊपर से दूध पीना।

२. अस्थिसंधान कैपसुल १-१ कैपसूल दिन में दो बार

३. अस्थि संधान लेप का वाह्योपचार—

फल—५ दिन की चिकित्सा बाद पुनः X Ray कराया गया और हड्डी पूर्णतः जुड़ गयी, ७वें दिन ड्यूटी पर गये तथा १० दिन के कोर्स से लाभ प्राप्त किया।

अस्थिसन्धान पर स्वानुभूत पंचब्रह्मास्त्र—

१. अस्थि सन्धानक कैपसूल—यह प्रयोग हमने पहले भी प्रकाशित कराया है लाक्षादि गुग्गुल, मंजिष्ठ, मधुयिष्ठ हड़जोड़, हरिद्रा, शुद्ध कुचला, प्रवाल भस्म, कुक्कुटाण्ड-त्वक् भस्म, पीपल लाख, अश्वगन्धा ये १० चीजें प्रत्येक १०-१० ग्राम के चूर्ण को खरल में घोटकर १०० बड़े साइज के कैप्शूल भरलें या हड़जोड़ स्वरस की भावना देकर गोली बनालें। सुबह शाम दूध से दें। ४० दिन का पूरा कोर्स है। १० दिन में ही अस्थिसंधान हो जाता है। ऐसे अनेक रोगियों पर भी प्रयोग किया गया जिनको १ महिना से प्लास्टर है पर अस्थि सन्धान नहीं हो रहा मात्र १० कैप्शूल के ही प्रयोग से अस्थिसंधान होने के ऐसे दर्जनों उदाहरण हैं। अनुभूत सफल प्रयोग है।

२. अस्थि सन्धानक चूर्ण—हड़जोड़, अश्वगंधा, अर्जुन, नागबला, मेदालकड़ी समभाग ये ५ चीज हैं जिनका सूक्ष्म चूर्ण खरल में घोटकर रख लें। १०-१० ग्राम की १० पुड़िया बना दें। १० ग्राम चूर्ण में ४० ग्राम या आवश्यकतानुसार कम-वेशी आटा मिलाकर देशी घी में हलवा बनाकर सुबह नाश्ते में खिलायें ऊपर से दूध पिलावें।

३. अस्थिसन्धान लेप—हड़जोड़, एलुवा, लाख, मालकांगनी बीज ५-५ ग्राम हल्दी, आंबा हल्दी फिटकरी, १०-१० ग्राम सबको चूर्ण बनाकर मिलाकर रख लें। गर्म पानी में पकाकर भग्न स्थान पर लेप कर पट्टी बांध दें, सन्धान होगा, वेदना हरण होगा।

४. अस्थिदोषहर सेक—गेहूं की मैदा, मैदालकड़ी, हल्दी १००-१०० ग्राम, सज्जीक्षार २० ग्राम, तिल का तैल २०० ग्राम तैल को गर्म कर उसमें सबको भूनकर थोड़ा पानी डालकर हलवा बना कर कपड़े की पोटली में बांध अस्थि पर सेक करें। शोथ, शूल का तत्काल शमन होगा।

५. दूधिया तेल—१ लिटर गर्म पानी में साबुन (बारसोप) के टुकड़े १५० ग्राम घोलकर तारपीन तैल ५०० मि. लि. मिला लें, अच्छी तरह घोल कर शीशी में रख लें। रुई की फुरेरी से चोट-मोच वेदना स्थान पर धीरे-धीरे लगावें। इससे वेदना का तत्काल शमन होता है। तीव्र वेदनाहरण के लिये इसका तात्कालिक प्रयोग तत्काल फलदर्शी है।

अस्थि-सन्धिच्युति

सन्धियों के भीतर बन्धनों द्वारा अस्थियों के सिरे एक-दूसरे के समीप रहते हैं। सन्धियों के अपने जगह से च्युति या अलग हो जाने को सन्धिच्युति कहते हैं अर्थात् जब कभी भारी बोझा उठाने या अभिघात व झटके से किसी सन्धि (जोड़) की हड्डी अपने जोड़ से हट जाती है तो उसे जोड़ उतरना व अस्थिसन्धिच्युति कहते हैं। कुछ जोड़ गेंद और कटोरी के समान, कुछ कब्जेदार (Hinge) और कुछ अलग जोड़ होते हैं। सन्धिच्युति प्रायः सन्धि के पास की अस्थि के ऐंठन के परिणामस्वरूप होती है और जब ऐंठन के साथ-साथ खिंचाव भी होता है तब मोच पड़ जाती है। बहुधा कन्धा, कुहनी या कूल्हे की सन्धि की सन्धिच्युति हो जाया करती है जिसका प्रमुख कारण चोट व झटका लगना ही होता है पर कभी कभी यक्ष्मा व पोलियो रोग के कारण भी सन्धिच्युति हो जाती है।

लक्षण—

१. सन्धि में तीव्र स्थानिक वेदना होती है जो गति से और बढ़ जाती है।

२. दूसरी ओर की सन्धि से तुलना करने पर अस्थियों के प्रमुख जगह अपनी स्वाभाविक स्थिति से हटे हुए दीखते हैं। जिस जगह पर पहले अस्थि थी वहां पर गढा और दूसरी जगह में उभार दिखाई देने लगता है अतः आकार में परिवर्तन और जोड़ में सूजन हो जाती है जिसकी पुष्टि स्वस्थ सन्धि से विकृति की तुलना करने से होती है।

३. आक्रान्त सन्धि अत्यधिक कड़ी हो जाती है और उसे किसी भी स्थिति में हिलाया-डुलाया नहीं जा सकता तथा आघातित अंग अकर्मण्य हो जाता है।

आचार्य सुश्रुत के शब्दों में—

तत्र प्रसारणाकुञ्चनविवर्तनाक्षेपणाशक्ति उग्ररुजत्वं स्पर्शासहत्वं चेति सामान्यं सन्धिमुक्तलक्षणमुक्तम्।

—सुश्रुत निदान अ. १५, सू. ६

अर्थात् प्रसारण (फैलाने में), आकुञ्चन (संकोच), विवर्तन (विपरीत घुमाने), आक्षेपण (अतिशय पालन अथवा आकर्षण) से अशक्ति, तीव्र वेदना तथा स्पर्श की असहिष्णुता में सन्धिमुक्त (सन्धिच्युति) के सामान्य लक्षण हैं।

उपद्रव—(१) सन्धिच्युति के साथ-साथ कभी-कभी समीपस्थ अस्थि का भी भग्न हो जाता है जिसे अस्थिभग्न-सन्धिच्युति कहा जाता है।

(२) सन्धि के समीप की रक्तवाहिनी, नाड़ी तथा अन्य अवयव विदीर्ण हो जाते हैं।

निश्चयात्मक निदान—रोग के उपरोक्त लक्षणों के आधार पर सन्धिच्युति का निदान हो जाता है परन्तु कभी-कभी इसकी पुष्टि के लिए एक्स-रे द्वारा निश्चय आवश्यक है जिसके द्वारा अन्य अस्थिक्षतियों का व्यक्तिकरण भी किया जा सकता है।

सन्धिच्युति के प्रकार—

आचार्य सुश्रुत ने सन्धिच्युति के ६ भेद माने हैं—

तत्र सन्धिमुक्तम्—उत्पिष्टम् विश्लिष्टम्, विवर्तितम् अवक्षिप्तम्, अतिक्षिप्तम्, तिर्यक्-क्षिप्तमिति षड्विधम्।

—सुश्रुत नि. अ. १५ सू. ४

१. उत्पिष्टम्—जिसमें हड्डी का चूर्ण या पेषण हो जाता है। इसको (फ्रेक्चर डिस्लोकेशन) कहते हैं।

२. विश्लिष्ट—जिसमें जरा सा विश्लेष हो जाता है। इसको सबलक्सेशन या अपूर्ण सन्धिच्युति कहते हैं।

३. विवर्तित—वाम या दक्षिण भाग में अस्थि सरक जाती है।

४. अवक्षिप्त—जिसमें हड्डी नीचे की ओर सरक जाती है। इसको निम्नच्युति कहते हैं।

५. अतिक्षिप्त—जिसमें मांस, सिरा, धमनी इत्यादि अंग विदीर्ण हो जाते हैं। इसको सोपद्रव अस्थिभग्न कहते हैं।

६. तिर्यक्क्षिप्त—जिसमें सन्धि टेढ़ा हो गया है। पूर्ण च्युति कहते हैं।

प्राथमिक उपचार—आघातित अंग को विश्राम की अवस्था में सहारा देकर रखे तथा उस अंग पर कसे हुए कपड़ों को उतार देवें। चोट खाई हुई जगह पर बर्फ व ठण्डा पानी की पट्टी रखें तथा उस जगह को हिलने-

डुलने न देवें। यदि ठण्डक से आराम न मिले तो गर्मी पहुँचानी चाहिए इससे दर्द कम होता है। वेदनाहर औषधियों का प्रयोग करावें।

चिकित्सा—

सन्धिच्युति हो जाने पर दो विधियों से उसे ठीक किया जाता है—

१—सन्धिच्युति को बैठाना

२—तनाव का प्रयोग

सन्धिविश्लेष के पश्चात् जितना भी शीघ्र हो सके, सन्धान कर देना चाहिए। जिस मार्ग से अस्थि सन्धि से बाहर निकली थी उसी के द्वारा फिर सन्धि के भीतर पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए। अतएव सन्धि की रचना को ध्यान में रखते हुए हस्त कौशल से अस्थि को उसकी पूर्व जगह में बैठाया जा सकता है। अस्थि को बैठाने के लिये शारीरिक बल की अपेक्षा हस्त कौशल की अधिक आवश्यकता है। सन्धियों पर जोड़ बैठाने के लिये अंग को खींचें, सहारा देवें व तनाव के प्रयोग द्वारा उसे ठीक करें। सन्धियों को विशेषकर शोथ और पेशियों में आकर्षण हो तो अंग को तनाव देकर सन्धिच्युति बैठाया जाता है। जोड़ में अस्थि भग्न भी हो तो रोगी को ईथर सुंघाकर बेहोश कर जोड़ को बैठाया जाता है। २ सप्ताह तक पूर्ण विश्रामावस्था में रखें जिससे अंग की सारी रचनायें स्वाभाविक स्थिति में आ जायें। बाद में जोड़ पर धीरे-धीरे मालिश करावें या जब सारे कष्ट दूर हो जांय तो अंग में गति का अभ्यास करावे। जोड़ बैठाने की विधि भिन्न-२ सन्धियों के लिये भिन्न-२ तथा यह कार्य विशेषज्ञ द्वारा सम्पादित होने पर एक बार सन्धान कर चुकने पर पुनः विकृति होने की प्रवृत्ति नहीं होती। सन्धि में उपस्थित रक्त, सीरम आदि का शोषण हो जाता है, टूटे हुए बन्ध भी फिर जुड़ जाते हैं। यह कार्य विशेषज्ञ द्वारा विधिवत् सम्पन्न होना चाहिए।

कुछ प्रमुख अस्थि सन्धि च्युतियां—

हन्वस्थि की सन्धिच्युति—हन्वस्थि (जबड़े) की सन्धिच्युति प्रायः मुंह फाड़कर ऊंघने से होती है अथवा दांत उखाड़ते समय जबडे को अधिक खोलने अथवा भोजन

अधोहनुसन्धिच्युति
बिंदुदार रेखा स्वस्थावस्था की वास्तविक स्थिति प्रदर्शित करती है।

करते समय भोजन का बहुत बड़ा ग्रास मुख में ग्रहण करने से अथवा मुख खोलने के पश्चात् एकाएक बन्द करने से ऊपर और नीचे के जबड़े की सन्धिच्युति हो जाती है।

लक्षण—जबड़े की सन्धिच्युति में मुख हमेशा खुला रहता है तथा बन्द नहीं होता। यदि मुख बन्द करने की कोशिश भी की जाय तो अत्यधिक वेदना होती है।

उपचार—चिकित्सक को अपने दोनों हाथों को विसंक्रमित कर व अंगुठे पर स्वच्छ रुमाल लपेट लें फिर अंगुठे को निचले जबड़े के अन्तिम दांतों पर रखें तथा हाथ की अंगुलियों को ठोडी के नीचे रखकर अंगूठे को नीचे की दिशा में दबावें। जब जबड़े का पिछला भाग नीचे और पीछे की तरफ खिसकता मालूम पड़े तब ठोड़ी को ऊपर की ओर उठावें। इस तरह जब जबड़ा अपनी स्वाभाविक स्थिति में आता दीख पड़े तब अंगूठे को जबड़े के सहारे बाहर को खींचे। ज्यों ही जबड़ा अपने प्राकृतिक स्थान पर आ जाय त्यों ही तत्काल उस पर क्रेवेटी पट्टी

(Cravat Bandage) बांधकर स्थिर रखें। अन्यथा गम्भीर होने पर अस्पताल पहुँचायें।

आयुर्वेद औषधि—अस्थिसन्धानक लेप (अस्थिभग्नाधिकार में वर्णित) का लेप करें तथा लाक्षादि गुग्गुल + विषमुष्टी १-१ गोली दिन में ३ बार खावें।

कूर्पर सन्धिच्युति—

केहुनी के बल गिरने या अग्रबाहु को ऐंठ देने के कारण या तीव्र चोट लगने के कारण कुहनी का जोड़ उखड़ जाता है।

लक्षण—कूर्परसन्धि उखड़ जाने से कुहनी के समीप वाली अस्थियों के तीनों उभार के अनुपात में विभिन्नता आ जाती है तथा प्रदाह, शोथ और वेदना होती है।

प्राथमिक उपचार—उखड़े जोड़ों को खूब अच्छी तरह मिलाकर सम्पूर्ण हाथ में बांस की या अन्य खपच्चियां बांध कर कुहनी को स्थिर करें। उखड़ी जगह पर गीला वस्त्र लपेट दें, रोगी को आराम पहुँचायें। कूर्पर सन्धि को बैठाना थोड़ा कठिन कार्य है अतः एक विशेषज्ञ द्वारा ही इस क्रिया का किया जाना उत्तम है। अन्यथा अस्पताल पहुँचा देवें। आयुर्वेदीय औषधियों में अस्थि सन्धानक चूर्ण खावें तथा सन्धान लेप का प्रयोग करें।

कलाई की सन्धिच्युति—

हथेली के बल गिरने से कलाई की सन्धिच्युति उत्पन्न होती है।

लक्षण—कलाई (मणिबन्ध) में वेदना और सूजन होती है गतियों का ह्रास तथा अंगुलियों को आकुंचन होता है एवं स्पर्शासह्यता होती है।

चिकित्सा—इसका उपचार जरा कठिन है अतः तत्काल Splint लगाकर हास्पिटल ले जाना चाहिए। सामान्य संवेदनाहरण करके मुंडक को बहिःप्रकोष्ठिका से दूर हटाने के लिए अक्षकर्षण किया जाता है और बहिःप्रकोष्ठ + मणिबन्ध सन्धि को आगे करके रखा जाता है।

स्कन्ध की सन्धिच्युति—

स्कन्ध की सन्धिच्युति कन्धे के बल गिरने, सीधे आघात लगने अथवा कोहुनी या हाथ पर अचानक झटका लगने से कन्धे पर प्रभाव पड़ने से उत्पन्न होती है। यदि प्रत्यक्ष आघात से सन्धिच्युति होती है जैसे पीछे से स्कन्ध पर मुक्का या चोट मारना या आगे से धक्का लगाना, तो सन्धिच्युति के साथ प्रायः गर्त (खात) का या प्रगंडास्थि के ऊर्ध्व प्रान्त का अस्थिभग्न भी हो सकता है। रचनात्मक विशेषताओं के कारण स्कन्ध सन्धि की सबसे अधिक सन्धिच्युति होती है।

लक्षण—सामान्य सन्धिच्युति के समान ही लक्षण होते हैं। विशेष आवश्यकता पड़ने पर—X-ray और 'स्क्रीनिंग' द्वारा निदान करावें।

उपद्रव—आक्रांत स्थान की नाड़ियों, रक्तवाहिनियों एवं अन्य कोमल अवयवों के भिन्न-२ हो जाने से नाना प्रकार की घातक अवस्थाएं उत्पन्न हो जाती हैं जो अत्यन्त कष्टदायक होती हैं।

उपचार—रोगी को स्थिर कर सहारे से कोहुनी को रोगी के बगल में ले आते हैं और तब कोहुनी को स्थिर कर अग्रबाहु को बाहर की दिशा में इस प्रकार ले जाय कि वह शरीर से ९०° का कोण बनावे। इसी स्थिति में अग्रबाहु को रख कोहुनी को ऊपर की दिशा में इस प्रकार उठावें कि वह शरीर से ६०° का कोण बनावे। इसके बाद कोहुनी को उसी उठी हुई स्थिति में रखकर अग्रबाहु को थोड़ा घुमाकर शरीर के सामने ले आवें। ऐसा करते ही एक विशिष्ट ध्वनि द्वारा कंधे की हड्डी अपने स्थान पर पहुँच कर सुनियोजित हो जाती है। पश्चात् बाहु को त्रिकोणी पट्टी द्वारा सहारा देवें।

यह कर्म अस्थि विशेषज्ञ द्वारा ही सम्पन्न होना ठीक रहता है। पहलवान लोग जोड़ बैठाने के कार्य में निपुण होते हैं पर उनको भी शरीर रचना का ज्ञान ठीक से न होने पर अंदाजी कार्य से उलटा झटका लगने का डर रहता है अतः झटके से बचकर चिकित्सा लें।

कूल्हे की सन्धिच्युति—

कुल्हे की अस्थिच्युति तीव्र आघात के कारण ही होती है। कूल्हे की अस्थि गोल कटोरी जैसे गढ्ढे से निकलकर पीछे की ओर खिसक जाती है। इससे जांघ सिमटी हुई अन्दर की मुड़ी हुई और दूसरे स्वस्थ जंघा पर चढ़ी हुई होती है।

उपचार—रोगी को तख्ता अथवा पृथ्वी पर चित

—शेषांश पृष्ठ ११५ पर देखें।

जान्वस्थि-च्युति तथा उसकी पुनर्स्थापना

वैद्य अम्बालाल जोशी आयु० केशरी, पुंगलपाड़ा, मकराना मोहल्ला, जोधपुर ।

)•—•(

अस्थि चिकित्सा करने वाले चिकित्सकों को शरीर रचना का सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है। यदि उन्हें यह ज्ञान नहीं है तो वे अस्थि सन्धान के कार्य में सफल नहीं हो सकते। यही कारण है कि आज के अस्थि संधाता देशी चिकित्सक (पहलवान) अपनी प्रतिष्ठा रखते हुए भी इस कार्य में कई बार असफल रह जाते हैं। देखा यह गया है कि अस्थि यथास्थान स्थापित होती ही नहीं और पट्टी बंधती रहती है और रोगी पीड़ा से कराहता रहता है। अतः शारीर ज्ञान अस्थिचिकित्सकों (पहलवान) जिनके हाथों में आज आयुर्वेद का यह ज्ञान सिमट चुका है, के लिए आवश्यक है।

जान्वास्थि या पाटला को जानने के पूर्व ऊर्वस्थि का ज्ञान करना होगा। बाहु की तरह जांघ में भी एक ही अस्थि है जो घुटनो तक पहुँचती है। यह शरीर की सबसे लम्बी अस्थि है। यह ऊपर की ओर वक्षणोलूखल में रहती है तथा नीचे की ओर पाष्णी मे अवस्थित है। नीचे जान्वस्थि स्थालक है वहां यह अस्थि समाप्त होती है। यह अस्थि ऊपर से जान्वस्थि स्थालक से ढकी रहती है। इसी प्रकार नीचे पिंडलियों की लम्बी अस्थि भी इसी स्थालक के नीचे समाप्त हो जाती है। दोनों ही लम्बी अस्थियों के किनारे पर उभार होते हैं। यह जोड़ ऊपर से जान्वास्थि से आवृत याने ढका हुई रहती है।

जानु के सामने एक त्रिकोणास्थि रहती है। यह अस्थि जानू को ढके रहती है। इसे हिलाया भी जा सकता है। यह अस्थि ऊर्वस्थि के नीचे के सिरे के सामने रहती है। जब टाग सीधी की जाती है तब यह कृशकाय व्यक्ति के पैरों में स्पष्ट दीखती है। जब टांग ऊपर कर दी जाती है तब यह अस्थि ऊपर टोपी की तरह आ जाती है। यह अस्थियां कमजोर भी होती हैं क्योंकि नीचे का स्थान खाली रहता है।

ऊपर के प्रहार से या आघात से गिरने पर यहां चोट लगने से अथवा झटके से यह अस्थि कभी कभी अपनी जगह छोड़कर नीचे की ओर चली जाती है। कभी कभी इसके टुकड़े भी हो जाते हैं। ये टुकड़े दो या इससे अधिक भी हो जाते हैं। हमारा विषय अस्थिच्युति ही होने से हम यह बताना चाहेंगे कि यह अस्थि घुटने के ऊपर की ओर से नीचे गह्वर में चली जाती हैं और ऊपर का भाग गढ़ा सा दीखने लगता है।

रोगी को इस अवस्था में देखकर चिकित्सक को अपने सहायक को साथ में रखकर रोगी का पैर लम्बा रखवाकर नीचे से इस अस्थि को स्पर्श कर फिर मजबूत पकड़कर ऊपर की ओर लाने की कोशिश करनी चाहिए। सहायक को रोगी का पैर मजबूती से पकड़ रखने को कहे। फिर थोड़ा सा जोर देकर अस्थि को ऊपर की ओर धकेले। अपने आप ही इस इसारे से अस्थि यथा जगह को लगेगी और एक आवाज सा आवेगी। बस कार्य तो पूर्ण हो गया परन्तु इस कार्य को स्थायित्व देने के लिए ऊपर कोई भी औषधि नाम मात्र को घृत, तैल, वेसलीन या बाम आदि लगाकर ऊपर गहरी रुई रखकर इलास्टिक वेण्डेज बांध दे। वेण्डेज इस प्रकार से बांधे कि वह जगह पर न तो ढोली रहे न सख्त, न वहां से स्थानान्तरित होकर खुल हो। यह पट्टी २४ घण्टे बंधी रहने दें, फिर खोलकर रोगी को अपने दैनिक कार्यों मे संलग्न होने का अनुमति दे दे। यह जरूर हिदायत कर दें कि पुनः इस जगह पर आघात या झटका न लगे।

ध्यान के लिए रोगी को गुड़ का हलवा दें तथा पीड़ा शमन के लिए यदि आवश्यक हो तो अंग्रेजी गोलियां दे दें। हम तो इस कार्य के लिए आयुर्वेद का समीरगज केशरी वटी दुगनी मात्रा में याने ४ गोली या वेदनान्तक ४ गोली दूध के साथ देते हैं।

आशा है कि चिकित्सक यह प्रयोग कर यश के भागी बनेंगे।

मोच आना

आयु० चक्रवर्ती गिरिधारीलाल मिश्र

मोच एक ऐसी चोट है जो जोड़ के अचानक मुड़ जाने से आती है अतः सन्धि स्थानों का अधिक खिच जाना, या उनके सूत्र का टूट जाना मोच या लचक कहलाता है। दौड़ने, कूदने या ऊंचा-नीचा पांव पड़ने से प्रायः ऐसा सम्भव है। प्रायः कलाई और टखने के जोड़ों में मोच आजाती है।

लक्षण—

मोच आ जाने के कारण आघात के स्थान पर तीव्र वेदना होती है स्थानिक शोथ हो जाता है तथा आघात स्थान को हिलाने डुलाने में कठिनाई होती है। ये लक्षण स्थानिक अस्थिभंग की शङ्का उत्पन्न करते हैं जिसका ऐक्स-रे द्वारा ज्ञान कर लेना चाहिए।

प्रायमिक चिकित्सा—

सर्व प्रथम पीड़ित स्थान को पूर्ण आराम देने की कोशिश करनी चाहिए। मोच के भाग को ऊंचा रखना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति के पैर में मोच आगई हो तो उसके बूट इत्यादि को उतारने की अपेक्षा उक्त स्थान पर मजबूत पट्टी बांध देनी चाहिए और बीच-बीच में उस पट्टी को भिगोते रहना चाहिए ताकि वह पट्टी और मजबूती से जोड़ को पकड़ ले। मोच आये हुए भाग को आधे घण्टे तक ठण्डे पानी में डुबाये रखिये। यदि पास में नदी या नाला बहता हो तो उसमें आघातित अंग को डुबाये रखना चाहिए। पहले ठण्डे पानी से फिर गर्म पानी से भिगोने पर दर्द और सूजन नहीं बढ़ने पाती।

विशिष्ट चिकित्सा—

मोच में अधिक सूजन होने पर हमेशा उस स्थान का 'एक्सरे' लेना चाहिए जिससे जोड़ों के बन्धन की स्थिति तथा सन्धियों एवं उक्त स्थान की अस्थियों की स्थिति का पता चल जाता है। शोथयुक्त सन्धि को आराम देने के लिए पट्टी बांध कर रखनी चाहिए या गोलार्ड -लोशन (Goulard's lotion) लगाना चाहिए। सूजन को कम करने के लिये ए.बी.सी. लिनीमेन्ट या स्लोन्स लिनीमेन्ट या इलिमेन्स एम्ब्रोकेशन को सरसों तेल में मिलाकर मालिश करनी चाहिए। गर्म सेंक से भी आराम पहुँचता है। इस चिकित्सा के अतिरिक्त इन्फ्रा-रेड तथा डायथर्मी का भी प्रयोग करने से पर्याप्त लाभ पहुँचता है।

औषधि—

सन्धानलेप—हल्दी और चूना का लेप, व हड़जोड़, हल्दी आमाहल्दी लाख, एलुवा समभाग को गर्म पानी में पकाकर लेप करना चाहिए। इससे शोथ और वेदना का तत्काल शमन होता है। लाक्षादि गुग्गुल २-२ गोली तथा विषमुष्टीवटी १-१ गोली दिन में २-३ बार देनी चाहिए। इससे वेदना का तत्काल शमन होता है। वेदना नाश के लिये आधुनिक वेदनानाशक औषधियों नोवाल्जिन, कोडोपायरिन, सैरिडान या अन्य वेदनाहर औषधियों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

दूधिया तेल या महानारायण तेल व पञ्चगुण तेल की मालिश कर पट्टी बांध देनी चाहिये।

शोथहर गुटिका—छोटी हरड़ तथा आमला का चूर्ण १-१ किलो, कलमीशोरा २०० ग्राम, नीलाथोथा १०० ग्राम। हरड़, आमला और कलमीशोरा को मिलाकर नीलाथोथा का जल मिलाकर गोला बनाकर १ दिन रहने देवें फिर शिखराकार गोलो व वर्तियां बनालें।

उपयोग—वर्ति को पानी में पीसकर लेप करें। दिन में ३-४ बार लेप लगाया जाता है। आगन्तुक शोथ, चोट लगने, मुड़न, मोच पड़ने, दंश स्थान, कर्ण मूल ग्रन्थि शोथ, सन्धि शोथ तथा सभी शोथों पर सहस्रानुभूत है।

प्रमुख मोच और उनका विशिष्ट उपचार—

१. कलाई की मोच—इसमें ? इन्च वाली चिपकने वाली पट्टी (Adhesive Tape) को कलाई के आधार से चिपकाते हुए पूरी कलाई की सन्धि तक उसको चिपका दें। प्रत्येक चिपकने वाली पट्टी के टुकड़े का आधा इन्च भाग दूसरे टुकड़े से ढका रहे। इस प्रकार ६ टुकड़ों में सम्पूर्ण कलाई को बांध देवें। यह चिपकना इस प्रकार होना चाहिए कि कलाई का जोड़ पूर्ण रूप से स्थिर हो जाय परन्तु यह पट्टी इतनी न कस जाय कि हाथ के रक्तसंचार में बाधा उत्पन्न हो जाय अन्यथा

वेदना बढ़ सकती है और घातक उपद्रव उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

२. घुटने की मोच—इसमें भी १ इन्च वाली चिपकने वाली पट्टी को घुटने के १५ से.मी. ऊपर से चिपकाना प्रारम्भ करते हैं तथा धीरे-२ घुटने की नीचे तक चिपकाते जाते हैं। तब पैर के दूसरी ओर भी टेप चिपका देते हैं तथा इस प्रकार तीसरा और चौथा लपेट देते हैं। घुटने को पर्याप्त रूप से लचीली पट्टी (Elastic Bandage) से भी स्थिर किया जा सकता है। इसके लिए ३ इन्च चौड़ी पट्टी घुटने के कई इन्च नीचे से बांधते हुए ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं। इस पट्टी से जोड़ में संचित जलीयांश का भी यथाशीघ्र शोषण हो जाता है।

३. एड़ी की मोच—यह एक [illegible] मोच की अवस्था है जो सड़क या घर पर चलते-फिरते कभी भी किसी चीज में पैर के फंस जाने के कारण या फिसलकर गिर जाने के कारण होजाया करती है। एड़ी के बाहर की दिशा में मुड़ जाने से या एड़ी के भीतर की दिशा में मुड़ जाने से उसके अन्दर के बांधने वाले तन्तुओं (Tendons) के टूट जाने से एड़ी में मोच आजाती है तथा प्रायः एड़ी की हड्डी का भी कभी-२ भग्न हो जाता है।

उपचार—मोच आये पैर को ऊपर उठा देना चाहिए ताकि पैर पूर्ण विश्राम की अवस्था में आ जाये। इसके उपरांत बर्फ के पानी तथा ताजे पानी से भीगी पट्टी को १२-१६ घंटे तक compress करते हैं। तीव्रशोथ और वेदना हरण के बाद लचीली (Elastic) पट्टी बांध दें।

नारियल तैल का प्रयोग—

एक रोगी का अनुभव—श्री धर्मसिंह गौड "शुचि" मासिक पत्र में लिखते हैं कि उनकी एड़ी पर मोच आकर एड़ी के तन्तु के नष्ट हो जाने से एड़ी में दर्द रहता था जिससे चलने-फिरने में बड़ी कठिनाई होती थी। शल्य चिकित्सा द्वारा एड़ी के मृत तन्तु काटकर निकाल दिये गये। शल्य के घाव तो भर गये पर एड़ी का दर्द दूर नहीं हुआ। इस पर नारियल तैल का प्रयोग निम्न विधि से किया गया और आशातीत लाभ हुआ—

रात्रि के समय सोने के पूर्व एड़ी के उस विकृत भाग को १० मिनट सहने लायक गर्म पानी में डुबाये रखकर तत्पश्चात् सूखे तौलिये से पोंछकर तत्काल ही १० मिनट तक नारियल तेल की हल्की मालिश कर पैर को ढककर सो गया। ३ दिन इस प्रकार करने पर चौथे दिन पैर की एड़ी का जो पपड़ीयुक्त काला पड़ा हुआ भाग था, के रङ्ग में कुछ रक्त जैसी लालिमा दृष्टिगोचर हुई। अतः अब एड़ी के मृत तन्तुओं में रक्तसंचार प्रारम्भ होकर जीवन संचार हो रहा था। धीरे-२ पीड़ा कम होती गई और १० दिन में एड़ी के समस्त मृत तन्तु पुनः जीवित होकर सक्रिय हो जाने से पैर पूर्णतया रोगमुक्त हो गया और रोगी सामान्य गति से चलने लगा तथा किसी प्रकार की वेदना नहीं रही। रुग्ण के सर्जन मित्र जिन्होंने एड़ी की शल्य क्रिया की थी रुग्ण को सामान्य गति से चलते देखकर आश्चर्यचकित रह गये।

पृष्ठ११२का शेषांश

लिटाकर उसकी टांग को पेट पर मोड़े। ऐसा करने से कूल्हे का उखड़ा हुआ सिरा गोल कटोरी सदृश गढ्ढे के सामने पहुंच जायगा। अब टांग को सीधा करदें। यदि अस्थि अन्दर की ओर खिसकी हुई हो तो जांघ को बाहर की ओर तथा यदि अस्थि बाहर की ओर खिसकी हुई हो तो जांघ को अन्दर की ओर घुमा कर सीधा करें। सन्धि बैठ जाने पर बांस की खपंचियां बांधकर आक्रांत स्थान को स्थिर रखें।

आयुर्वेद चिकित्सा—अस्थि सन्धान चूर्ण १-१ चम्मच सुबह शाम खावें तथा सन्धान लेप का लेप करें। अस्थि संहारी तेल की मालिश करें।

अस्थिसंहारी तैल—अस्थिसंहारी (हड़जोड़) का स्वरस एक पाव को २ पाव तैल में डाल पाक विधि अनुसार तैल सिद्ध करें। इसकी मालिश अस्थिभग्न, अस्थिसन्धिच्युति में लाभदायक है वेदनाहर है। अस्थिभग्न प्रकरण में पहले वर्णन किये हुए प्रयोगों का प्रयोग करें।

व्रण-बन्धन

श्री सत्यनारायण पाण्डेय एम० ए०, आयुर्वेदाचार्य, वैद्याचार्य
आयु० भूषण, आयु० वाचस्पति, आयु० बृह०, गिरारी (शहडोल) म०प्र०

आकस्मिक घटनाओं द्वारा चोट लगने से यदि शरीर का कोई अङ्ग कट जावे, घिस जावे, टूट जावे अथवा सन्धि से पृथक हो जावे, शिराछिन्न, स्नायुछिन्न हो जावे तो ऐसी अवस्था में व्रण बन्धन से पूर्ण लाभ प्राप्त होता है। व्रण शीघ्र ही भर जाते हैं। रोगी सुखपूर्वक उठ बैठ सकता है, चल फिर सकता है तथा व्रण स्वस्थ होजाते हैं।

व्रण बन्धन योग्य द्रव्य—

रुई, पट्ट, रेशम, ऊन, पत्ते, भोजपत्र, वृक्षों के भीतर की छाल, चमड़ा, तुम्बी या उसके टुकड़े, बेल, बांस की खपच्चियां, लता, अलसी, भेड़ की ऊन का बना कपड़ा, रस्सी, तूल, सोना, चांदी, तांबा, लोहा आदि द्रव्य रोग एवं काल का विचार करके प्रयोग करने चाहिए।

व्रण बन्धन के नाम एवं उनके स्थान—

सुश्रुत के अनुसार व्रणों के बन्धन चौदह माने गये हैं—

१. कोष बन्ध—कोष नामक बन्धन अंगुष्ठ और अंगुली के पर्वो पर बांधा जाता है।

२. दाम बन्धन—यह बन्धन शरीर की तंग जगहों पर बांधा जाता है।

३. स्वस्तिक बन्धन—स्वस्तिक बन्धन का प्रयोग सन्धि, कूर्चक, भ्रू, स्तनों के मध्य भाग, हस्ततल, पादतल एवं कर्णों पर किया जाता है।

४. अनुवेल्लित बन्धन—यह बन्धन शाखाओं में बांधा जाता है।

५. प्रतोली बन्धन—प्रतोली बन्धन ग्रीवा एवं लिंग पर बांधा जाता है।

६. मण्डल बन्धन—इस बन्धन को शरीर के गोल अङ्गों पर बांधा जाता है।

७. स्थगिका बन्धन—इसे अंगूठा, अंगुली तथा लिंग के अग्र भाग पर प्रयुक्त किया जाता है।

८. यमक बन्धन—दो व्रण एक साथ होने या दोनों पार्श्व भागों में व्रण होने पर यमक बंधन बांधना चाहिये।

९. खट्वा बन्धन—इस बन्धन को ठोढ़ी, कनपटी एवं कपोल पर बांधा जाता है।

१०. चीन बन्धन—यह अपाङ्ग देश में बांधने के लिये प्रयुक्त होता है।

११. विबन्ध बन्धन—इस बन्धन को पीठ, उदर एवं वक्षस्थल पर बांधा जाता है।

१२. वितान बन्धन—वितान बन्धन सिर में बांधने के लिए प्रयुक्त होता है।

१३. गोफण बन्धन—इसे नासिका, ठोड़ी की नोंक, होठ, स्कन्ध प्रदेश में बांधा जाता है।

१४. पंचांगी बन्धन—इसे जत्रु के ऊपर बांधते हैं।

बन्धन के भेद—

बन्धन ३ प्रकार का होता है—

१. गाढ़—जिस बन्धन को दबाने से पीड़ा न करे उसे गाढ़ कहते हैं। इनमें से गाढ़ बन्धन नितंब, कांख, वंक्षण, सन्धि, उरु एवं सिर पर बांधा जाता है।

२. शिथिल—जो बन्धन सांस लेने के लिए हिलता रहे उसको शिथिल कहते हैं। शिथिल बन्धन नेत्र एवं सन्धि भागों पर बांधा जाता है।

३. सम—जो बन्धन न तो गाढ़ हो एवं न शिथिल हो उसे सम बन्धन कहते हैं। सम बन्धन हाथ, पैर, मुख, नाक, कण्ठ, लिंग, अण्डकोष, पीठ, पार्श्व, उदर एवं छाती पर बांधा जाता है।

पैत्तिक जगह पर गाढ़ बन्धन की जगह पर सम बन्धन बांधना चाहिये। सम बन्धन वाली जगहों पर शिथिल बन्धन बांधे एवं शिथिल बन्धन योग्य पैत्तिक जगह को खुला छोड़ देना चाहिए। रक्त दूषित जगहों पर बन्धन बांधने के लिए भी यही विधान प्रयुक्त है। कफज जगहों में शिथिल की जगहों पर सम बन्धन, सम की जगह पर गाढ़ बन्धन एवं गाढ़ की जगह पर गाढ़तर बन्धन बांधना चाहिए।

कालानुसार व्रण बन्धन—

पैत्तिक व्रण को शरद एवं ग्रीष्म ऋतु में दिन में दो बार प्रातः सायं बांधना चाहिये। यही प्रक्रिया रक्त दुष्ट फोड़ा में भी करनी चाहिये। कफदुष्ट फोड़ा में हेमन्त और बसन्त ऋतु में तीसरे पट्टी खोलनी चाहिये। वातज दुष्ट फोड़ा में भी यही नियम अपनाया जाता है।

मूर्च्छा की आत्ययिक चिकित्सा

श्री पी० एस० अंशुमान, एच० पी० ए०

मूर्च्छा के लिये निसंज्ञता, विसंज्ञता, तमः प्रवेश जैसे शब्दों से शास्त्रकारों ने स्पष्ट किया है कि इसमें सहसा एवं अस्थायी संज्ञानाश (या निसंज्ञता) हो जाता है। अतः गतिशीलता का अभाव हो जाता है। इसके लिये आज कल Syncope, Fainting, swooning जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। मूर्च्छा वस्तुतः स्वल्प समय के लिये मस्तिष्क में उत्पन्न प्राणवायु अल्पता (Hyoxia) अथवा रक्ताल्पता (Ischaemia) है जो रक्त परिभ्रमण के फेल हो जाने या धमनीगत रक्त दबाव के कम हो जाने या हृदय गति के कम या रुक जाने से होता है। इस में अन्य अनेक कारणों के साथ गरमी, अंगसंकोच, एवं खड़े रहने जैसे कारण भी कारण बनते हैं। मूर्च्छा को हृदय जन्य मूर्च्छा परिसरिय अथवा केशिका जन्य (Vasomotor syncope) के रूप में रख कर अध्ययन करने की परिपाटी है। वस्तुतः यह मस्तिष्काघात, विष प्रभाव, विषमयता, अम्लोत्कर्ष, तीव्रसंताप, संज्ञाहर या विष द्रव्य प्रभाव, एवं अपस्मार आदि रोग से सम्बधित मानी जाती है।

प्रकार—

आयुर्वेद के साहित्य में मूर्च्छा की ओर अधिक विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया प्रतीत होता है। तदनुसार चरक ने वातज, पित्तज, कफज एवं सन्निपातज (यही प्रकार वाग्भट ने भी कहे हैं) तथा सुश्रुत ने इन चार के साथ ही रक्तज, कफज, मद्यज, विष आदि तीन अतिरिक्त भेद मानकर कुल ७ प्रकार की मूर्च्छा कही है। बाद में संग्रह ग्रन्थ योगरत्नाकर में अधिक स्पष्ट वर्गीकरण देखने को मिलता है तदनुसार आगन्तुक (जिसमें रक्तज, विषज एवं मद्यज को पढ़ा है) तथा निज जिसको सहज कहकर वातज, पित्तज, कफज तीन प्रकार की कही है। यद्यपि कई जगह द्वन्दज मूर्च्छा का भी वर्णन मिलता है। इस प्रकार का विस्तृत वर्गीकरण उपलब्ध है।

कारण—

मूर्च्छा के निदान में कोई सूची नहीं दी गई है तथापि निम्नलिखित कारण प्रमुख रूप से देखने को मिलते हैं—

१. क्षीणता—देह, धातु एवं बल की क्षीणता।

२. दुर्बल मन—दीन, अवर, कमजोर मन का होना।

३. बहुदोष—अतिशय दोष कोप या वृद्धि की अवस्था

४. मलीन एवं विरुद्ध आहार।

५. वेग रोध, अतिघर्म सेवन, सतत खड़े रहना आदि

६. मद-मूर्च्छा का आहार, औषधि, मद्य, विषादि संज्ञाहर द्रव्यादि। मूर्च्छा कर रसायन औषधादि।

७. अभिघात—१. मानसिक आघात २. शारीरिक अभिघात-या तीव्र रक्तस्राव, दग्ध आदि।

८. अपस्मारादि रोग।

९. विविध अवयवों की विकृत अवस्थायें यथा—हृत्वेपथु, हृत्मन्दस्पन्दनता, सायन या सिरामालिन्द रोध, हृद्द्रवता, हृत्स्पन्दनाधिक्यता, महाधमनीसंकीर्णता, पिक्कलीमिक्सोमा तथा प्राथमिक फुफ्फुसीय अतिरक्तदबाव, हृ-अन्तः शल्यता, सरक्तहृदयावरण, सहजहृद्रोग, हृत्स्तब्धता रोधादि अनेक विकृतियां हैं।

विकृति—

जैसाकि स्पष्ट है विविध निदान सेवन से दुर्बल मन वाले लोगों में उनके बुद्धि, इन्द्रिय, मन, अहंकार आदि करणायतन स्थानों में प्रवृद्ध दोष प्रवेश कर मनुष्य को मूर्च्छित कर देते हैं।

चरक के कथनानुसार विविध निदान सेवन से कुपित दोष १-१ या मिलकर रज, एवं मोह से आच्छादित आत्म वाले पुरुषों में रसवाही, रक्तवाही, संज्ञावाही स्रोतों में अवरोध उत्पन्न कर मूर्च्छा आदि को करते हैं।

मूर्च्छा में, जिसमें कि पित्त एवं तम ही प्रधान दोष होते हैं, दोषों द्वारा संज्ञावह स्रोत के अवरुद्ध होने के कारण, अचानक-सहसा तम सामने आ जाता है (तमदर्शन

वा प्रवेश) और सुख, दुख का नाश हो जाता है (या अनुभूति समाप्त हो जाती है) तथा मनुष्य लकड़ी के समान निश्चेष्ट होकर पड़ जाता है। इसी मोह युक्त अवस्था को मूर्च्छा कहा जाता है।

लक्षण—

हृत्पीड़ा, जृम्भा, ग्लानि, बलक्षय एवं संज्ञानाश आदि इसके पूर्वरूप कहे गये हैं। इसके लक्षण निम्नानुसार हैं—

मूर्च्छाप्रकार	मूर्च्छापूर्व	मूर्च्छासमय	मूर्च्छापश्चात
१. वातज	नील-कृष्ण अरुण आकाश दर्शनपूर्वक तमः प्रवेश	शीघ्र प्रतिबोधन (१-२ मिनट) काष्ठवत	वेपथु (कम्प) अङ्गमर्द हृत्पीड़ा श्यावारुण छाया, कार्श्य (शरीर काला पड़ना)
२. पित्तज	रक्तहरित पीत दर्शन पूर्वक तम-प्रवेश	(२-३ मि०) (काष्ठवत)	स्वेद प्रवृत्ति तृषा, संताप रक्तपीताक्षी व्याकुलाक्षी भिन्नवर्च (द्रवमल) शरीर पीला पड़ना, मल नील-पीतद्रव
३. कफज	मेघाच्छन्न आकाशदर्शीन घनान्धकार दर्शनपूर्वक तम प्रवेश	चिरात प्रतिबोधन (२ से ५ मिनट) काष्ठवत	अङ्गगौरव आद्रचर्मावृत्त-प्रसेक हृल्लास
४. सन्निपातज	मिश्र लक्षण	बिभत्स्यचेष्टा	अपस्मारवत
५. रक्तज	रक्तदर्शनपूर्वक [रक्त के रूप, गंध के पृथ्वी एवं जल प्रधान होने से]	स्तब्ध अङ्ग एवं स्तब्ध दृष्टि, श्वास अस्पष्ट	(पित्तवत ?)
६. मद्यज	मद्यपानपूर्वक	प्रलाप, प्रपतन, आक्षेप मननाश विक्षिप्तता मद्यपाक तक वेग रहता है।	—
७. विषज	विष सेवन पूर्वक	विषलक्षण कम्प; तृषा निद्रा जड़ता	—

उपरोक्त लक्षणों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चरक का वर्गीकरण ही उचित है। क्योंकि रक्तज, मद्यज, एवं विषज मूर्च्छा में मूर्च्छा होने पर भी भिन्न प्रकार की विकृतियुक्त अवस्थायें हैं। उनकी चिकित्सा भी भिन्न एवं विशिष्ट हैं।

मूर्च्छा चिकित्सा—

मूर्च्छा की चिकित्सा तीन चरणों में विभाजित है—

१. अवरोधनार्थ [संज्ञा वापस लाने के लिये]

२. पुनः मूर्च्छा न आने देने के लिये सत्वावजय रूपा

३. प्रकृति स्थापनार्थ एवं अनागत बाधा प्रतिषेधार्थ

इनमें से आत्ययिक दृष्टि से प्रथम दो कर्म ही प्रमुख है। शास्त्र में कहे अनुसार मूर्च्छा की चिकित्सा निम्नानुसार है—

अवबोधनार्थ—

संज्ञा अवबोधनार्थ निम्नलिखित उपक्रम प्रयुक्त किये गये हैं—

१—शीत परिषेक एवं अवगाहन—शीत जल के छींटे देना या सिर पर डालना या ठंडे जल में रोगी को अव-

रोहित करना हितकर बताया गया है।

२–नासावक्त्रावरोध—उस उपक्रम का उल्लेख सुश्रुत ने किया है।

३–रोगी के सिर के भाग को नीचा रखकर सुलाने से भी लाभ होता है। सामान्यतया मूर्च्छा स्वतः या उपरोक्त सादे उपचारों से ही दूर हो जाती है परन्तु यदि इनसे लाभ न हो तो संन्यास में कही संज्ञाप्रबोधन क्रियायें प्रयोग में ली जा सकती हैं यथा—

१. अञ्जन–तीक्ष्णाञ्जन या अपस्मारोक्त पित्तांजनादि

२. नस्य—तीक्ष्ण अवपीडन (रसोनादि) प्रधमन (त्रिकटु आदि)

३. पीडन–पीड़ाकर उपचार यथा—शस्त्र पीड़न, केशलुंचन, दन्तदंशन, आत्मगुप्ता अवघर्षण, नखान्तर में सूचीतोदन अग्निकर्म आदि

४. तीक्ष्णधूम/धूपन—अपस्मारोक्त

४–इन या इसी प्रकार के अन्य उपचारों द्वारा अवरोधन होने पर मानसिक चिकित्सा के रूप में की गई निम्न चिकित्सा उपयोगी है—

१. विस्मापन (विस्मयकारक द्रव्य दर्शन श्रवणादि)

२. प्रिय श्रुतिस्मरण (प्रिय कथा स्मरण)

३. चित्रविचित्र दर्शन (अद्भुद दर्शनादि)

४. गीतवादन आदि द्वारा मनोरंजन एवं सत्संगादि

५. शास्त्र अध्ययन—आधुनिक दृष्टि से रोगी को कसी जुरावें पहनाना, पेट एवं जंघा पर पट्टी बांधना, भी उपयोगी माना जाता है। रोगी को सहसा खड़ा न होने देने की सूचना उपयोगी है।

दोष शमनार्थ—

रोगी के होश में आ जाने एवं चित्त के प्रकृतिस्थ हो जाने के बाद दोष शोधन शमनार्थ चिकित्सा करनी चाहिए इसके लिए—

क. संशोधन—पंचकर्म का प्रयोग स्नेहन-स्वेदन पूर्वक कर देहगत दोषों की शुद्धि करें। चरक ने रक्तावसेचन भी कहा है।

ख. शमन—तदनन्तर अवशिष्ट दोषों के शमन के लिए निम्न कल्प प्रयुक्त किये जा सकते हैं—

(१) घृतकल्प—कौम्भघृत, कल्याणघृत, तिक्तघृतादि

(२) क्षीर कल्प—काकोल्यादि गण के द्रव्यों से सिद्ध या शतावरी सिद्ध क्षीर, त्रिफला पायस

(३) रस/स्वरस—इक्षुरस, द्राक्षारस, खर्जूर या गम्भीर रस आदि

(४) कल्क चूर्ण–त्रिफला चूर्ण, केशरादि चूर्ण, पीपर चूर्ण

(५) श्रीपर्णि क्वाथ में द्राक्षा, सिता, अनारदाना, लाजवन्ती अथवा नीलोफरादि का प्रक्षेप डाले पान करायें। अथवा पित्तज्वर या ज्वरघ्न अन्य कहे क्वाथों का भी प्रयोग किया जा सकता है यथा सुदर्शनादि (आधुनिक चिकित्सक तीव्रावस्था में लवण की बड़ी मात्रा लेना भी लाभप्रद मानते हैं)।

(६) भोजन के रूप में यव, शाली, जांगल मांस रस निहित है। त्रिफला पायस, नारीकेल जल में सत्तू एवं शर्करा मिलाकर दिये जा सकते हैं। भोजन के बाद अश्वगन्धारिष्ट दिया जा सकता है।

(७) रस कल्पों में सुधानिधि रस, मूर्च्छान्तक रस, बृहद वातचिन्तामणि रस, हेमगर्भ पोटली रस आदि

ग. इतने पर भी यदि वेग आये तो रसायन उपचार करे। इसके लिए त्रिफला रसायन, शिलाजीत, पिप्पली, चित्रकादि कहे जा सकते हैं। आधुनिक दृष्टि से कुछ चिकित्सक डेक्साड्रीन ५ मि.ग्राम या इफेड्रीन २५ मि.ग्राम ×२ या एट्रोपीन १/२००–१/१०० ग्रेन.×४ लेने की भी सलाह देते हैं।

घ. पथ्यापथ्य की दृष्टि से निम्नानुसार आहार-विहार का वर्णन मिलता है—

(१) पथ्य–उपक्रम–धूम, अंजन, नस्य, शिरावेध, क्षार, अग्नि, रोमशातन, पीडन, दमनादि उपक्रम।

कर्म—स्नेहन स्वेदनपूर्वक वमन विरेचनादि पंचकर्म तथा रक्तमोक्षण

उपक्रम—लंघन

मानसिक भाव—क्रोध दिलाना, भय, कथा-वार्ता, गीत-वादन, अद्भुतदर्शन, पूर्वस्मरण, इष्ट चिन्तन, धैर्य, आत्मज्ञान आदि। आसनादि–सुखकर शैया, शीतलछाया, शीतल जल, शीतल रेती आदि।

—शेषांश पृष्ठ १२१ पर देखें।

मनोस्नायु विकृति-चिन्ता

कवि डा० अयोध्याप्रसाद अचल एम० ए०, पी एच० डी०, आयु० बृह०

कविराज डा० अयोध्याप्रसाद जी 'अचल' मनोविज्ञान पर अच्छा अधिकार रखते हैं तथा मनोयौन चिकित्सक के रूप में आपकी अच्छी ख्याति है। आपके दार्शनिक विचारों से ओतप्रोत लेख आयुर्वेद पत्रकारिता में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। चिन्ता को मनोस्नायु विकृति मानते हुए उसके कारणों का सुन्दर दिग्दर्शन कराया है। लेख पठनीय एवं मननीय है। —गिरिधारी मिश्र

लक्षण—

शारीरिक—थकावट, अनिद्रा, अरुचि, अपच, पेट फूलना, पेट में गैस, पेट में दर्द, सर दर्द, सर का अकड़ा हुआ सा मालूम होना, हृदय की धड़कन का बढ़ जाना, हृदय-प्रदेश में दर्द मालूम होना, हृदय डूबता सा लगना, सांस लेने में कठिनाई, सांस का अस्वाभाविक रूप में चलना, रक्त संचालन में बाधा, रक्तचाप में विकृति, बार-बार पेशाब लगना, मुंह सूखना, आंख की पुतलियों का फैल जाना, हाथ-पैर कांपना, आलस्य, कमजोरी आदि।

मानसिक लक्षण—अज्ञात भय, आशंका, निराशा, हीनताभाव, संवेगात्मक अस्थिरता, अनिर्णय, असहनशीलता, चित्त को किसी भी विषय पर एकाग्र न कर पाना, विचार-संभ्रम, असुरक्षा का भाव, भविष्य का नितान्त अन्धकार मय प्रतीत होना, मृत्यु का भय, आत्मघाती प्रेरणायें तथा चिड़चिड़ापन आदि। रात में अनिद्रा के कारण ये लक्षण और भी उग्र रूप धारण कर लेते हैं।

बालकों में चिन्ता के कारण—बच्चों में अविवेकपूर्ण चिन्ता के दौरों के प्रति अधिक संवेदनशीलता पाई जाती है। उनकी हठवादिता, शरारतें, अभिभावकों का कठोर व्यवहार, अभिभावकों के प्यार से वंचित हो जाने का भय, असुरक्षा की भावना, अथवा स्कूल में घटी कोई प्रतिकूल घटना जिससे उसके आत्म सम्मान को चोट पहुँची हो या भय उत्पन्न हो गया हो उनकी चिन्ता का कारण हो सकता है। उनकी यह चिन्ता प्रायः शैयामूत्र, डरावने सपने, पेट में दर्द, वमन, अतिसार आदि के रूप में व्यक्त होती है।

चिन्ता के दौरों की बारम्बारता—

चिन्ता मनोस्नायु विकृति से पीड़ित सभी रोगी प्रायः आलस्य, किसी भी काम में जी न लगना, किसी भी काम अथवा विचार पर अपने मन को केन्द्रित कर सकने की क्षमता के अभाव की शिकायत करते रहते हैं। फिर भी उनमें चिन्ता की मात्रा सदा एक समान नहीं बनी रहती। वह घटती-बढ़ती रहती है। बीच-बीच में गम्भीर चिन्ता के दौरे जैसे आते रहते हैं जो कुछ सैकिण्डों से लेकर कुछ घण्टों तक बने रह सकते हैं। कुछ को इस प्रकार के दौरे प्रायः रोज आते हैं, कुछ को कभी-कभी। दौरों के बीच में बहुत से रोगी सामान्य जैसे दीखते हैं। इस बीच उनके लक्षण अव्यक्त रूप धारण कर लेते हैं।

चिन्ता की सम्प्राप्ति—

जैसाकि पहले ही संकेत किया जा चुका है चिन्ता व्यक्ति का सामान्य मनोविकार है। सामान्य मनोविकार के रूप में इसके निम्न कारण हो सकते हैं—अभाव, असमर्थता एवं असुरक्षा की अनुभूतियां, असंगत अभियोजन, मानसिक द्वन्द, विफलता तथा संवेगों के बीच संघर्ष आदि।

व्याधिकीय चिन्ता का मूल कारण प्राणी के अचेतन मन में विद्यमान कोई दमित भावना-ग्रंथि होती है जिसकी जड़ में प्रायः बाल्यावस्था की ही कोई अत्यधिक गम्भीर एवं कष्टकर अनुभूति होती है। इस भावना-ग्रन्थि का सम्बन्ध लैंगिक वासना, आक्रामकता, आत्म-स्थापन, अथवा लोक, धर्म, अध्यात्म आदि किसी से भी हो सकता है। रोगी का हीनता-भाव एवं अपराध-भावना इसीकी उपज होते हैं। जब तक यह अचेतन-मन में बनी रहेगी

रोगी को चैन नहीं लेने देगी।

इस सन्दर्भ में महाभारत के उद्योगपर्व का एक प्रसंग बड़े ही महत्व का है। कौरवों ने पाण्डवों का सर्वस्व हरण कर लिया है। कृष्ण किसी प्रकार भी मामले को न्यायपूर्ण ढंग से सुलझाने में प्रयत्नशील हैं। संजय युधिष्ठिर का संदेश लेकर धृतराष्ट्र के पास जाते हैं। कुछ कहते हैं, कुछ दूसरे दिन के लिए छोड़ देते हैं। धृतराष्ट्र को मारे चिन्ता के नींद नहीं आती। वे रात को विदुर को बुला भेजते हैं। विदुर के आने पर उनसे कहते है—"आज मैं उस कुरुवीर युधिष्ठिर की बात न जान सका। यही मेरे अंगों को जला रहा है। तात मैं चिन्ता से जलता हुआ अभी तक जाग रहा हूं। मेरे लिए जो भी कल्याण की बात समझिये, कहिये। इस पर विदुर बोले—जिसका बलवान के साथ विरोध हो गया हो, उस साधनहीन दुर्बल मनुष्य को जिसका सब कुछ हर लिया गया है उसको कामी और चोर को रात में जागने का रोग लग जाता है। नरेन्द्र! कहीं आपका भी इस महानदोष से सम्पर्क तो नहीं हो गया है। कही पराये धन के लोभ में आप कष्ट तो नही पा रहे हैं। और सच्चाई भी यहीं थी। धृतराष्ट्र के मन में दबी उनकी अपराध-भावना ही उन्हें चैन नहीं लेने दे रही थी।

चिन्ता के रोगी को डाक्टर या वैद्य से कहीं अधिक आवश्यकता मनोचिकित्सक की होती है। अगर कोई चिकित्सक होने के साथ-साथ मनोरोगविद् भी है तो सर्वोत्तम। गम्भीर चिन्ता की अवस्था में रोगी का शारीरिक परीक्षण कर उसे यह विश्वास दिला देना जरूरी है कि उसे चिन्ता दौरा पड़ा है न कि हृदयाघात का।

तात्कालिक रूप से रोगी के रोग की उग्रता के अनुरूप शामक औषधियां देकर लक्षणों की शांति आवश्यक होती है। उसके बाद मेध्य औषधियां देकर उनकी मेधाशक्ति को बढ़ाना चाहिये। इसके लिये आयुर्वेद में अनेक शास्त्रीय एवं पेटेण्ट योग हैं—यथा सर्पगन्धा चूर्ण, सर्पगन्धा घन वटी; सारस्वत चूर्ण, सारस्वतारिष्ट, ब्राह्मी जटामांसी एवं शंखपुष्पी के योग, स्मृतिसागर रस, सिलेडिन (अलार्सिन), म्रेन्टो (झण्डु), अमीविटा फोर्ट, सीरप शंखपुष्पी (ऊंझा), ब्रेनटेब (वैद्यनाथ) मेधा कैपसूल (निर्मल) ब्राह्मी सूचीवेध (सिद्धि) स्मृतिदा (प्रताप फार्मा) आदि इन सबके अतिरिक्त जितने भी वात शामक या मनोरोगहर योग हैं उनका भी लक्षणानुसार प्रयोग कर लाभ उठाया जा सकता है।

अगर रोगी की चिन्ता का कारण उसका कोई गम्भीर शारीरिक रोग है तो प्रधान रूप से पहले उसकी चिकित्सा होनी चाहिए। जैसे-२ उसका रोग शांत होगा उसकी चिन्ता की मात्रा में स्वतः कमी होती जायेगी।

लेकिन जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है जब तक रोगी के अचेतन-मन में भावना ग्रन्थि का अस्तित्व बना रहेगा उसको स्थायी रूप से स्वस्थ नहीं किया जा सकता। आप एक शारीरिक लक्षण दूर कीजिएगा, दूसरे प्रकट हो जायेंगे। आप एक मामले में समझा-बुझाकर उसकी आशंका दूर कर दीजियेगा वह अपनी चिन्ता का कोई दूसरा कारण ढूंढ लेगा। इसलिए शारीरिक लक्षणों के उपचार के साथ-२ उसकी मनश्चिकित्सा भी आवश्यक है। और यह काम कोई कुशल मनश्चिकित्सक ही कर सकता है। वह उपयुक्त मानसोपचार विधियों द्वारा उसके अचेतन मन में दबी भावना-ग्रन्थि को जो उसकी चिन्ता की वास्तविक जड है, चेतन में लाकर निकाल देगा। जड़ निकल जाने से चिन्ता रूपी पेड़ स्वतः सूखने लगेगा।

—कवि डा० अयोध्याप्रसाद अचल एम. ए.,
पी एच. डी. आयु० वृह०
रमना (गया) विहार

पृष्ठ ११९ का शेषांश

आहार में—लघु, तिक्त, मृदु, उष्णाहार, शाली, मुद्ग, मटर, राग, दाडिम, गोदुग्ध, मिश्री, पेठा. पटोल, त्रिफला, नारियल तथा जांगल मांस रसादि पथ्य कहे हैं।

(२) अपथ्य—पान, दातौन, धूप, सरसों का शाक विरुद्धान्न, कटुरस, तक्रपान, स्त्रीसंग, स्वेदन, तृषादिरोध अपथ्य कहे हैं। इसके अतिरिक्त ग्रीवा को मोड़ना-झुकाना तथा क्षारकर्म आदि भी त्याज्य माने जाते हैं। मूर्च्छा उत्पादक निदान का परिवर्जन करना चाहिए।

—श्री पी. एस. अंशुमान एच. पी. ए
रीडर—कायचिकित्सा विभाग
सेठ. जी. प्र. सरकारी आयुर्वेद कालेज, भावनगर

अचैतन्यता (मूर्च्छा)

डा० वी०एन० गिरि ए. एम. बी. एस., एस. सी. डी. ग्राम पो. डंगरा, जिला गया

मूर्च्छा के भेद—

(१) आयुर्वेदिक सिद्धान्त के अनुसार मूर्च्छा के छः भेद किये गये हैं जैसा कि आचार्य सुश्रुत ने वात, पित्त, कफ, रक्त, मद्य एवं विष से उत्पन्न होने के कारण मूर्च्छा के छः भेद किये हैं—

वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च।
षट् स्वरूपये सासुपित्तं हि प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥

—सु. उ. त.

वातादि तीनों दोषों से १-१, रक्त, मद्य, एवं विष से १-१ इस प्रकार छः प्रकार की मूर्च्छा को मानते हैं तथा सभी प्रकार की मूर्च्छा में पित्त की प्रधानता स्वीकार करते हैं। वृद्ध वाग्भट, अष्टाङ्ग हृदयकार त्रिदोषज मूर्च्छा को स्वीकार करते हुये ७ प्रकार के भेद मानते हैं। इसके विपरीत आचार्य चरक ने रक्त जन्य, मद्य जन्य एवं विष जन्य को लक्षणों के अनुसार वातादि दोष के ही अन्तर्गत मानते हैं जैसे वातज, पित्तज, कफज एवं सन्निपात से उत्पन्न मूर्च्छा स्वीकार की हैं।

(२) मूर्च्छा, सन्यास और भ्रम में निम्न भेद पाये जाते हैं—

मूर्च्छा का रोगी दोषों के वेग शांत होने पर कुछ समय बाद बिना औषधि के भी होश में आ जाता है परन्तु संन्यास का रोगी बिना औषधि प्रयोग किये होश में नहीं आता है। लिखा है—

दोषेषु मद मूर्च्छायाः गति वेगेषु देहिनाम।
स्वयमेवो प्रशाम्यंति सन्यासो नौषधैर्विना ॥ च. सू.

मूर्च्छा पित्त एवं तमोगुण की प्रबलता से उत्पन्न होता है। भ्रम रजोगुण पित्त एवं वायु के संयोग से
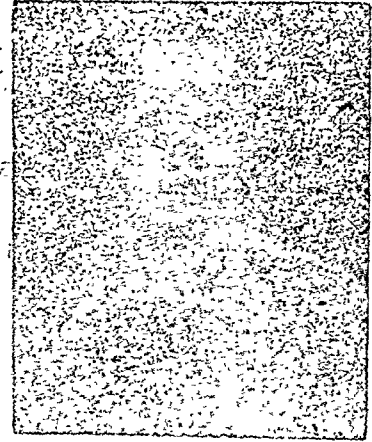
उत्पन्न होता है। मूर्च्छा होने पर सुख दुःख आदि का बात का ज्ञान नहीं रहता और सूखे काष्ठ की भांति गिर पड़ता है, परन्तु भ्रम होने पर मनुष्य अपने शरीर और सामने की सभी वस्तुओं को घूमता हुआ अनुभव करता है। लिखा है—

मूर्च्छा पित्ततमः प्राया रजः पित्तनिलाद् भ्रमः।
तमो वात कफा तन्द्रा निद्रा श्लेष्म तमो भवा ॥

अतएव प्रत्येक प्रकार की मूर्च्छा में पित्त एवं तमोगुण की प्रधानता अवश्य रहती है। स्पष्ट समझने के लिये इस प्रकार क्रमानुसार देखें—

१. मूर्च्छा में—पित्त एवं तमोगुण प्रधान है।
२. भ्रम में—पित्त, वायु एवं रजोगुण प्रधान है।
३. तन्द्रा में—वायु कफ एवं तमोगुण प्रधान है।
४. निद्रा में—कफ एवं तमोगुण प्रधान है।

(६) तन्द्रा एवं निद्रा में भेद निम्न प्रकार से हैं—तन्द्रा वाले रोगी में घोर आलस्य रहता एवं जम्भाइयां आती हैं। आंखों के पलक आधे खुले रहते हैं। पुकारने पर भी उसकी इन्द्रियां चैतन्य नहीं हों तो अत्यधिक जोर से आवाज देने पर भी तन्द्रा वाला रोगी आंखें तो खोल देता है, परन्तु शीघ्र ही फिर बेहोश होकर पूर्व की स्थिति में हो जाता है। साथ ही उसकी कर्मेन्द्रियां एवं ज्ञानेन्द्रियां निष्क्रिय ही रहती हैं। परन्तु निद्रावाले को पुकारने पर पूर्णतः होश में आजाता अर्थात् चैतन्यता प्राप्त हो जाता है और उसकी ज्ञानेन्द्रियां एवं कर्मेन्द्रियां स्वतः कार्य करने लग जाती हैं। इस प्रकार के भेद पाये जाते हैं जो प्रत्येक चिकित्सक को जान लेना अति आवश्यक है।

लक्षण—मूर्छा वाले रोगी को सर्व प्रथम कुछ बेचैनी अनुभव होती है एवं चक्कर आने लगता है तथा पसीना आता है, पश्चात् हीन रक्तचाप हो जाता और रोगी बेहोश हो जाता है। त्वचा का रङ्ग विवर्ण हो जाता और पसीना अधिक आने लगता है। नाड़ी की गति क्षीण एवं तीव्र हो जाती है तमोगुण की अधिकता के कारण रोगी को सुख दुःख का ज्ञान नहीं रह जाता, परिणामस्वरूप काष्ठ की भांति गिर कर बेहोश पड़ा रहता है। पूर्व में किये गये वर्णन के अनुसार वातादि ७ प्रकार के मूर्च्छा एवं संन्यास के लक्षण पृथक-पृथक क्रमानुसार निम्न प्रकार से हैं—

(१) वात जन्य—इस दोष से पीड़ित मूर्च्छा के रोगी आकाश को नील वर्ण, काला अथवा अरुण वर्ण का देखते हुए अन्धकार जैसा अनुभव करता है और अचेत (बेहोश) हो जाता है।

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथवाऽरुणम्।
पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रति बुद्ध्यते ॥
वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीड़ा हृदयस्य च।
कार्श्यं श्यावारुणच्छाया मूर्च्छाये वात सम्भवे ॥च.सू.

परन्तु कुछ शीघ्र ही होश में आजाता है अर्थात् चैतन्यता प्राप्त कर लेता है। वात जन्य मूर्च्छा से पीड़ित रोगी को शरीर में कम्प-कम्पी, अङ्गों में तोड़ने जैसी पीड़ा हृदय प्रदेश में थोड़ी वेदना भी होती है और शरीर दुर्बल हो जाना तथा उसका वर्ण स्याही माइल ईंट के समान लाल हो जाता है।

(२) पित्तजन्य—पित्त दोष से पीड़ित रोगी मूर्च्छित होते समय आकाश को रक्त लाल, हरीत, पीला देखते बेहोश होकर गिर पड़ता है। चरक संहिताकार एवं माधवकार लिखते हैं—

रक्तं हरीतं वर्णं वियत्पीतमथापि वा।
पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदश्च प्रबुध्यते ॥
सपिपासः ससन्तापो रक्तपीता कुलेक्षणः।
सम्भिन्न वर्चाः पीताभो मूर्च्छा ये पित्तसम्भवे ॥च.सू.

पसीने आकर चैतन्य (होश में) हो जाता है। प्यास लगनी एवं शरीर में दाह उत्पन्न होता तथा सन्ताप होता है। आंखें लाल, पीली और पित्त से व्याकुल हो जाता है। पतले दस्त होने लगता तथा शरीर का वर्ण पीलापन हो जाता है।

(३) कफ जन्य मूर्च्छा—कफदोष से ग्रस्त मूर्च्छा के रोगी को ऐसा अनुभव होता है कि आकाश सफेद बादलों से आच्छादित है अथवा घोर अन्धकार से घिरा हुआ है एवं आंखों के सामने अन्धेरा छा जाता और अचेत होकर अथवा बेहोश हो जाता है। "तमो घनैरिति तमोभिर्घनैश्च" चक्रपाणी। चरक संहिताकार लिखते हैं—

मेघ संकाशमाकाशमावृतं वा तमोघनैः।
पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥
गुरुभिः प्रावृतैरङ्गैर्यथैव आर्द्रेण चर्मणा।
सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छाये कफ सम्भवे ॥ च.सू.

कफ से ग्रस्त मूर्च्छा में चैतन्यता अधिक विलम्ब से होती है। शरीर गीले चमड़े से ढका (आच्छादित) हुआ के समान प्रतीत होता एवं भारी अनुभव होता है। मुंह में लार अथवा पानी भर आता एवं उबकाई आती है।

(४) संनिपातजन्य—इस मूर्च्छा में तीनों दोषों के मूर्च्छा के लक्षण वर्तमान रहते हैं। सन्निपातजन्य मूर्च्छा का दौरा अपस्मार के दौरा के समान बीभत्स चेष्टाओं के बिना ही मनुष्य को बेहोश कर देता है। संहिताकार लिखते हैं।

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवागतः।
सजन्तुं पातयत्याशु विनाबिभत्स चेष्टितैः ॥ च.सू.

जिस प्रकार अपस्मार में रोगी एकाएक अचानक

गिर पड़ता है और उसे चोट आदि लग जाता है, उसी प्रकार सन्निपातजन्य मूर्च्छा का रोगी गिरकर बेहोश हो जाता है। परन्तु अपस्मार व्याधि में रोगी के मुख से झाग निकलना, जिह्वा का कटना, दांतों का भिचना आदि बीभत्स लक्षण होते हैं। ये सभी बीभत्स लक्षण सन्निपात जन्य मूर्च्छा में नहीं होता है और न कभी देखा गया है।

(५) रक्तजन्य मूर्च्छा—आचार्य सुश्रुत ने रक्तजन्य मूर्च्छा के वर्णन एवं कारण के सम्बन्ध में लिखा है—

पृथिव्यापस्थमोरूपं रक्त गन्धस्त दन्वय:।
तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छंति भुविमानवा:॥
द्रव्य स्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ॥सु. उ. त.

पृथ्वी और जल ये दोनों तमोगुण विशेष हैं "तमो बहुलापृथ्वी सत्व तमो बहुला आप: इति" रक्त के गन्ध भी पृथ्वी और जल से उत्पन्न हैं, इसलिये रक्त की गन्ध भी तमोगुण विशेष हैं। यही कारण है, कि तामसी पुरुष रक्त की गन्ध एवं रक्त दर्शन से मूर्च्छित हो जाते हैं। परन्तु राजसी एवं सात्विक मनुष्य मूर्च्छित नहीं होते हैं, जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि दुर्बल मन एवं कमजोर हृदय वाला व्यक्ति जब शल्य कर्म के समय और मारकाट के समय रक्तपात होते हुये देखता है तो मूर्च्छित हो जाता है। इसे ही रक्तजन्य मूर्च्छा कहते हैं। इसके लक्षण इस प्रकार होते हैं—

'स्तब्धांग दृष्टि स्त्वसृजामुढोच्छ्वासाश्च मूर्च्छित:'—

इस प्रकार से मूर्च्छित रोगी का नेत्र निश्चल अर्थात आंखों की टकटकी बन्ध जाती और रोगी गहरा श्वास प्रश्वास लेता है तथा अङ्ग जकड़ जाता है।

(६) विषजन्य मूर्च्छा—विष से उत्पन्न मूर्च्छा में कम्पन, तृष्णा (प्यास) और आंखों के सामने अंधेरा छा जाना आसुरासाद का गिरना आदि लक्षण होते हैं।

वेपथुस्वप्न तृष्णा: स्युस्तमश्च विष मूर्च्छिते।
वेदितव्यं तीव्र तरं यथास्वं विष लक्षणै: ॥ मा.नि.

अत्यधिक सोता और विष वृक्ष के मूल, फल, पत्र, इनके भेद से जो लक्षण होते हैं, वे सभी लक्षण उप-... साथ ही विष के अनुरूप विशेष प्रकार ... तीव्रतर होते हैं। मद्य की मूर्च्छा की अपेक्षा विष की मूर्च्छा तेज और गम्भीर होती है।

(७) मद्यजन्य मूर्च्छा—मद्य (शराब) से उत्पन्न मूर्च्छा में मनुष्य की स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है अर्थात स्मृति का नाश हो जाता है। इसमें अत्यधिक बोलते-बोलते सो जाता है।

मद्येन विलपञ्छेते नष्ट विभ्रान्त मानस:।
गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरां जरां यावन्नं यातितत् ॥

संज्ञा लुप्त हो जाती और भ्रम युक्त लक्षण होते हैं यहां तक कि रस्सी को भी सर्प समझने लगता है। जब तक पिया हुआ मद्य पच नहीं जाता तब तक वह अपने अंगों को अथवा हाथ पैरों को जमीन पर पटकता और विलाप करता है, क्योंकि इस मूर्च्छा वाले रोगी का अन्तःकरण नष्ट हो जाता अथवा विभ्रान्त हो जाता है।

(८) संन्यास के लक्षण:—अत्यधिक बलवान तीनों दोष जब प्राणायतन, हृदय आदि में आश्रित हुये वाणी शरीर, मन की चेष्टा को नष्ट कर दुर्बल व्यक्ति को मूर्च्छा उत्पन्न कर देता है उसे सन्यास रोग कहते हैं। इसमें मनुष्य काष्ठ की भांति क्रियारहित तथा मृतवत् अर्थात मुर्दे के समान दिखाई पड़ता है। आचार्य चरक लिखते हैं—

वाग्देह मनसां चेष्टामाक्षिप्याति बलामला:।
संन्यस्यन्त्य बलं जन्तु प्राणायतन संश्रिता:॥
सना संन्यास संन्यस्त: काष्ठी भूतोमृतोपम:।
प्राणैर्वियुज्यते शीघ्रं मुक्तवा सद्य:फलांक्रियाम् ॥च.सू.

प्राणों से रहित काष्ठ के समान मुर्दा जैसा हो जाता है। इसलिए सन्यास में शीघ्र फलदायक चिकित्सा तत्काल नहीं किया जाय तो रोगी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसमें तीनों दोष विकृत हो जाते एवं तमोगुण की प्रधानता विशेष रूप में रहती है। इसमें प्राणायतन शब्द का जो ग्रहण किया गया है वह प्राणायतन शब्द से हृदय, रक्त एवं मस्तिष्क का बोध होता है अर्थात ग्रहण किया जाता है। मस्तिष्क में संज्ञा वह तथा चेष्टावह नाड़ियों के केन्द्र हैं। इन केन्द्रिय नाड़ियों का जैसे रस, रक्त वहा एवं संज्ञावह स्रोतों को तीनों दोषों द्वारा आक्रान्त होने पर मूर्च्छा एवं सन्यास Coma आदि की उत्पत्ति होती है।

प्रत्यक्ष परीक्षा—मूर्च्छा के रोगी की जांच करने पर कान्तिहीन चेहरा और स्वेदयुक्त प्रतीत होता है। हृदय की गति एवं नाड़ी की गति मन्द एवं सुस्त जान पड़ती है। रक्तभार गिरा हुआ मालूम होता एवं आंखों की पुतलियां फैली हुई रहती हैं। निर्बल व्यक्तियों तथा बालकों और वृद्धों में मूर्च्छा-रोग मृत्यु की ओर शीघ्रता से अग्रसर होता चला जाता है। कुछ मूर्च्छा तत्कालिक होता है जो एक बार होकर शीघ्र ठीक हो जाता है, परन्तु कुछ मूर्च्छा का वेग बारम्बार होता है। इनमें कोई दिन रात में कई बार और अधिक समय तक रहता है। अचेतन्यताओं (मूर्च्छा) का समय एवं वेग मन की दुर्बलता एवं दोषों की अधिकता पर निर्भर रहता है। सभी प्रकार की मूर्च्छा में बेहोशी के समय हृदय एवं नाड़ी दुर्बल रहती है, यहां तक कि किसी-२ में हृदय एवं नाड़ी की गति अति कठिनाई से मालूम पड़ती है।

सन्यास Coma—इसमें मस्तिष्कगत एवं सार्वदैहिक कारणों से लक्षणों में भिन्नता दिखलाई पड़ती है। मस्तिष्कगत कारणों में शरीर के एक पार्श्व में लक्षणों की प्रधानता रहती है। इसलिये एक पार्श्व के हाथ पैर अत्यधिक शिथिल रहते हैं। आंख की पुतलियों का बराबर न रहना, चेहरे का दोनों पार्श्वों के नीचे के भागों का असमानता, सिर तथा नेत्रों का एक दशा में झुकना आदि लक्षण वर्तमान रहते हैं।

सार्वदैहिक कारणों में शरीर के दोनों पार्श्वों में समान लक्षण पाये जाते हैं। दोनों पार्श्वों की पुतलियां बराबर रहती एवं हाथ-पैरों में समान रूप से शिथिलता बनी रहती है। साथ ही चेहरे के दोनों पार्श्व सामान्य रहते हैं।

विभेदक निदान—निदान की दृष्टि से विभिन्न रोगों की मूर्च्छा के लक्षणों में परस्पर अन्तर पाया जाता है जो निम्न तालिका से स्पष्ट है—

१	२	३	४	५	६	७
रोग का नाम	लू लगना (अंशुघात)	योषापस्मार हिस्टेरिया	पक्षाघात	मद्यपान	अपस्मार	मधुमेह
(१) मूर्च्छा का आक्रमण	अत्यधिक तेज धूप में अधिक चलने अथवा मेहनत करने से धीरे-२ मूर्च्छा आती है।	स्रोतों में अत्यधिक उत्तेजना की अवस्था में मूर्च्छा होती है।	अकस्मात कठिन बेहोशी के साथ पक्षाघात होता है।	मद्य का असर जैसे-२ होता है धीरे-२ मूर्च्छा आती है।	मूर्च्छा का आक्रमण दिन अथवा रात के निश्चित घण्टे में होता है एवं दौरा रूपमें होता है।	निद्रा जैसी अवस्था रहती और मूर्च्छा क्रमशः आती है।
(२) नाड़ी की गति	नाड़ी तेज और निर्बल रहती है।	नाड़ी भरी हुई सुस्त गति वाली एवं वाताधिक्य रहती है।	नाड़ी भरी हुई सुस्त गति वाली रहती	नाड़ी भरी हुई सुस्त गति वाली रहती है।	नाड़ी तेज अनियमित—दुर्बल रहती	नाड़ी तेज एवं दुर्बल रहती है।
(३) तापमान	तापमान अधिक रहता है।	तापमान सामान्य रहता है।	तापमान अधिक रहता है।	तापमान न्यून रहता है।	तापमान विशेष रहता है।	तापमान सामान्य रहता है।
(४) श्वासगति	कुछ खर्राटेदार श्वास रहता है।	इसमें खर्राटेदार श्वास नहीं रहता है।	श्वास मन्द खर्राटेदार रहता है	श्वास लेते समय खर्राटे रहते हैं।	श्वास में घर्घराहट होता है।	श्वासगति तीव्र रहती है।
(५) मूत्र गंध	मूत्र में जलन अथवा दाह रहता है।	मूत्र रुका रहता है।	मूत्र रुका रहता है।	मूत्र में मद्य की गन्ध आती है।	मूत्र गंध सामान्य रहता है।	मूत्र में शर्करा पाया जाता है।

१	२	३	४	५	६	७
रोग का नाम	लू लगना	योषापस्मार	पक्षाघात	मद्यपान	अपस्मार	मधुमेह
(६) मल मूत्र का स्राव	बिना इच्छा के भी स्वतः मल मूत्र निकल जाता है।	मल मूत्र स्वतः नहीं निकलता है।	मल मूत्र का अवरोध रहता अर्थात रुका रहता है।	मल मूत्र वीर्य नहीं निकलता है।	अनैच्छिक मल मूत्र निकल जाता है।	बिना इच्छा के मूत्र स्राव होता है।
(७) मुख में झाग का आना	झाग नहीं निकलता है।	झाग नहीं निकलते परन्तु कभी कभी किसी-२ को निकलता है।	झाग नहीं निकला करता।	झाग नहीं निकलता है।	रक्त मिश्रित अथवा सामान्य झाग निकला करता हैं।	इसमें मुख से झाग नहीं निकलते हैं।
(८) आंख की पुतलियां	पुतलियां सिकुड़ जाती हैं।	आक्षेप आते हैं।	पुतलियां असामान्य	आंखें चढ़ी हुई एवं जलयुक्त शोथ	तनाव आते हैं।	पुतलियां असामान्य रहती हैं।
(९) मूर्च्छा काल की अवधि	अधिक समय तक मूर्च्छा नहीं रहती और चिकित्सा एवं ठंडे प्रयोग से बेहोशी दूर हो जाती है।	मूर्च्छा का समय प्रायः लम्बा १० से ३० मिनट अथवा इससे भी अधिक समय तक रहता है।	मूर्च्छा शीघ्र समाप्त नहीं होती एवं मूर्च्छा के अन्त में पक्षाघात हुआ रहता है।	अधिक समय तक होश में नहीं आता। मद्य के नशे में रोगी मूर्छित पड़ा रहता एवं मद्य पचने पर होश में आजाता है।	मूर्च्छा का आक्रमण कुछ समय अथवा कुछ मिनट के लिए होता है।	निद्रा जैसी बेहोशी अधिक समय तक बनी रहती है।

चिकित्सा—

मूर्च्छा वाले रोगी के शरीर पर कसे हुए सभी वस्त्र ढीले कर देने चाहिये और हवादार खिड़की वाले कमरे में तथा गद्देदार बिस्तर पर आराम से लिटा देना चाहिये। साथ ही रोगी के शय्या का पैताना ऊंचा कर देना अति आवश्यक है। पश्चात ठण्डे जल अथवा गुलाब जल का छींटा मुख पर देना चाहिये और ताड़वृक्ष के पंखा अथवा जो भी समय पर उपलब्ध हो उससे हवा करनी चाहिये एवं पैर से हृदय की दिशा में मालिश करनी चाहिए। इस प्रकार सभी मूर्छाओं में पर्याप्त लाभ मिलता है। साधारण मूर्छा तो शीघ्र दूर हो जाती है। दोषों के वेग शांत होने पर साधारण मूर्छा स्वयं शान्त होकर रोगी शीघ्र होश में आ जाता है। यदि दांत बैठ गये हों तो चम्मच के सहारे धीरे-२ मुंह खोलना चाहिये।

वातज, पित्तज, कफज एवं त्रिदोषज मूर्छा में दोषों के अनुसार शीतल औषधियों का प्रयोग करना चाहिये। रक्तजन्य मूर्छा में भी शीतल जल के छींटे मुंह पर मारें एवं शीतल औषधियों का ही प्रयोग करना चाहिये। मद्य-जन्य एवं खाये हुए विष से उत्पन्न मूर्छा में रोगी को वमन करावें। हो सके तो ट्यूब के द्वारा वमन कराकर उदर की शुद्धि करें जिससे उदर में स्थित सम्पूर्ण मद्य एवं विष का निष्कासन हो जाय। अथवा आमाशय को नलिका द्वारा धो देना चाहिये और ५०० मि. लि. जल में १५ ग्रेन अथवा ८०० मि.ग्रा. पोटाश परमैंगनेट घोलकर हूस देना चाहिये पश्चात औषधि प्रयोग किया जाना चाहिये। मूर्छा रोग में फलों का स्वरस देना लाभदायक होता है। विष जन्य मूर्छा में विष के अनुसार विषघ्न चिकित्सा करनी चाहिये। सभी प्रकार की मूर्छा में हृदय को शक्ति प्रदान करने वाली औषधियां एवं आहार देते रहना चाहिये।

(१) साधारण मूर्छा में एक साथ नाक, मुंह बन्द करने से भी रोगी होश में आजाता है।

(२) यदि रोगी अतिरिक्त चाप के कारण मूर्छित हुआ है तो शिरा से आवश्यकतानुसार रक्त निकाल देना चाहिये और यदि किसी गम्भीर आघात के कारण मस्तिष्क से अत्यधिक रक्तस्राव होकर मूर्छा हुई है तो ऐसी स्थिति में शीघ्र ही निकट के अस्पताल में रोगी को शल्य

क्रिया करायें : अथवा लगे घाव पर टाँका देकर बन्धन बाँध दें और रक्त स्राव रोकने की चिकित्सा के साथ रक्त चढ़ाने की व्यवस्था करनी चाहिये।

(३) खाने वाला कली का चूना ६ ग्राम, नवसार ६ ग्राम मिलाकर एक शीशी में रखें। उसमें आवश्यकतानुसार जल मिला दें और शीशी का मुँह कार्क लगाकर ठीक तरह बन्द करदें जिससे कि उत्पन्न गैस नहीं निकले। मूर्छा वाले रोगी के नाक के नजदीक लेजाकर कार्क खोल दें। इस गैस से प्रायः सभी प्रकार के मूर्छा ठीक हो जाते हैं और रोगी शीघ्र होश में आ जाता है। अभाव में एमोनियां से भी यहीं लाभ मिलता है। अपस्मार योषापस्मार एवं सभी मूर्छाओं में शीघ्र लाभ होता है।

(४) सिरस के बीज, पीपर, कालीमिर्च, सेन्धा नमक लहसुन, मैनसिल प्रत्येक समान भाग लेकर गोमूत्र में पीसकर अंजन के समान बनालें। इस अंजन को मूर्छित रोगी की आंखों में आंजने से सभी प्रकार के मूर्छा दूर हो जाते हैं। रोगी शीघ्र ही होश में आजाता है। परीक्षित

(५) छोटी कटेरी, सोंठ, गिलोय, पीपरामूल, प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बनालें। इसमें से १२ ग्राम चूर्ण का काढ़ा बनायें। इसी काढ़े में २ ग्राम पीपल चूर्ण मिलाकर दिन में तीन-चार बार पिलायें। इससे दारुण मूर्छा भी नष्ट हो जाती है। परीक्षित।

(६) वृहद् कस्तूरी भैरव रस १२५ मि.ग्राम, मुक्ता पिष्टी १०० मि.ग्राम, मकरध्वज ५० मि.ग्राम, एक मात्रा हुआ। इस प्रकार आवश्यकतानुसार दिन में ३-४ बार तक मधु अथवा अनार रस के साथ अथवा गुलाब जल के साथ देने से सभी प्रकार की मूर्छा में तत्काल लाभ होता है। कई बार का परीक्षित प्रयोग है।

(७) योगेन्द्र रस १२५ मि.ग्राम, मुक्तापिष्टी १२५ मि.ग्राम, मूर्छान्तक रस १२५ मि.ग्रा., यह एक मात्रा हुई। इस प्रकार आवश्यकतानुसार दिन में ३-४ बार तक मधु के साथ देने से सभी-प्रकार के मूर्छा रोग ठीक होजाते हैं और रोगी शीघ्र ही होश में आजाता है। परीक्षित।

(८) मूर्छान्तक रस १२५ मि.ग्राम, रससिंदूर १०० मि.ग्राम, वृहद् कस्तूरी भैरव रस १२५ मि.ग्राम, एक मात्रा हुई। इस प्रकार दिन में ३-४ बार तक मधु के साथ दें। इससे सभी प्रकार के मूर्छा रोग ठीक होते हैं।

(९) वातकुलान्तक रस १२५ मि.ग्रा. मूर्छान्तिक रस १२५ मि.ग्राम, योगेन्द्र रस १०० मि.ग्राम, ये सभी एक मात्रा। दिन में ३-४ बार मधु के साथ दें।

(१०) महानारायण तैल की सिर पर मालिश एवं शरीर में मालिश करने से पर्याप्त लाभ मिलता है। अथवा सतावरी तैल मिलाकर लगायें।

(११) सभी प्रकार के मूर्छा में श्वासकुठार रस एवं कालीमिर्च का महीन चूर्ण का नस्य देने से मूर्छा शीघ्र दूर होती है और रोगी शीघ्र होश में आजाता है।

(१२) ८ से १० वर्ष का पुराना घृत सिर पर मालिश करने से पर्याप्त लाभ मिलता है।

(१३) ब्राह्मी, खश, जटामांसी, आंवला, द्राक्षा, गुलाब पुष्प, चन्दन केवड़ा, पुष्प, शङ्ख पुष्पी प्रत्येक समान भाग लेकर रात में भिगो दें और प्रातः अर्क निकाल लें। इसे सभी प्रकार की मूर्छा में उपर्युक्त अंकित औषधियों के साथ अनुपान रूप में अथवा स्वतन्त्र रूप में २० से ३० मि.लि. की मात्रा में देने से विशेष लाभ होता है।

(१४) भोजनोपरान्त २० से ३० मि. लि. तक बराबर जल मिलाकर दिन में दो बार तक अश्वगंधारिष्ट कुछ दिनों तक अवश्य सेवन करना चाहिये।

(१५) रक्तजन्य मूर्छा में शुद्ध शिलाजीत २५ ग्राम, पीपल की लाख १०० ग्राम को खरल में डाल कर कूट पीस लें। और १ ग्राम की मात्रा में गोदुग्ध के साथ अथवा उपर्युक्त अर्क के साथ दें।

(१६) लौंग, काली मिर्च, मैनसिल, सैंधा नमक, पिप्पली, वच को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर अंजन के समान बनालें और आंख में लगायें। इससे सभी प्रकार की मूर्छा नष्ट होते हैं।

(१७) हृदयामृत सूचीवेध (मार्तण्ड एवं प्रताप द्वारा निर्मित) इससे बारम्बार मूर्छित होना, हृदय और नाड़ी का मन्द गति से चलना, हार्टफेल शीतांग, गम्भीर मानसिक व्याधि एवं बेहोशी को अत्यन्त लाभप्रद एवं प्रशंसनीय प्रसिद्ध सूचीवेध है। यह हृदय, वात संस्थान एवं मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करता है। किन्हीं भी कारणों से हुई मूर्छा रोगी के कारण या आघातजन्य, विषजन्य आदि

से हो सभी में शीघ्र लाभकारी है। मांसान्तर्गत प्रति घन्टे पर अथवा ३ से ४ घण्टे के अन्तर से दें।

(१८) कस्तूरी (सिद्धि, जी. ए. मिश्रा)—यह आयुर्वेद की बहुमूल्य प्रसिद्ध औषधि है, मुख द्वारा हजारों वर्ष से प्रयोग होता आ रहा है। यह सभी प्रकार की मूर्छा, हिस्टेरिया, अपस्मार, हृदय की दुर्बलता, आक्षेप आदि में अत्यन्त ही लाभप्रद है। यह पित्त को शमन करता है। यही कारण है कि विशूचिका में जब पित्त विकृत होता है तो इससे पर्याप्त लाभ होता है। मांसान्तर्गत आवश्यकतानुसार

(१९) मृगनाभि, कार्डिमा (प्रताप द्वारा निर्मित) गुण एवं प्रयोग उपर्युक्त विधि से अर्थात इसका गुण हृदयामृत एवं कस्तूरी के समान ही है।

आधुनिक चिकित्सा के अनुसार विभिन्न प्रकार की मूर्छाओं में निम्न औषधियों का प्रयोग किया जाता है—

(२०) कार्डियानोल ड्राप्स, टेबलेट एवं इन्जेक्शन, इसका प्रयोग हृदयावसाद, विषजन्य मूर्छा एव किसी भी निद्रा लाने वाली औषधियों के अतिशय प्रयोग से उत्पन्न मूर्छा एवं उत्पन्न विषाक्तता को दूर करने के लिए होता है। आवश्यकतानुसार मांसान्तर्गत एवं मुख द्वारा प्रयोग।

(२१) एड्रिनलीन इसका प्रयोग शल्य कर्म से उत्पन्न अवसाद, हृदय की अनियमितता एवं शिथिलता आदि में किया जाता है।

(२२) कैम्फर का प्रयोग—विभिन्न प्रकार की मूर्छाओं में किया जाता है।

(२३) कार्निजेन ड्राप्स, टेबलेट, इन्जेक्शन के रूप में प्राप्त है। इसका प्रयोग शल्य कर्म से उत्पन्न हृदय निपात, आकस्मिक निम्न रक्त निपीड एवं मूर्छा Syncope हृदय धमनियों की अपूर्णता आदि में किया जाता है।

(२४) कोरामिन एवं निकथामाइड ड्राप्स टेबलेट एवं इन्जेक्शन मेडीकल स्टोरों में उपलब्ध होते हैं। इसका सबसे और अति महत्वपूर्ण गुण यह है कि शरीर के तीन प्रधान आधार हृदय, मस्तिष्क और फेफड़ों को एक समान एवं एक साथ शक्तिशाली बनाता है और उत्तेजित करता है। निद्राकारक विषों को जादू की तरह नष्ट करता है क्योंकि यह स्वयं विष गुण से रहित है। मस्तिष्क एवं हृदय को उत्तेजित करता एवं बल को बढ़ाता है। जल में डूबने, प्रसव के समय बच्चा के श्वासावरोध की अवस्था में गला घुटने के कारण, श्वास रुकने में भी इसका प्रयोग प्रशंसनीय है। अत्यधिक मानसिक एवं शारीरिक परिश्रम करने के पश्चात, हरारत एवं मूर्छा सन्यास Coma हाथ-पैरों की अकड़न आदि को दूर करता है। दिन में कई बार मांसान्तर्गत, शिरान्तर्गत एवं मुख द्वारा भी साथ-२ प्रयोग किया जाता है।

(२५) डेक्सोना—यह हाइड्रोकोर्टिसोन ग्रुप की महत्वशाली औषधि है। टेबलेट, ड्राप्स, इन्जेक्शन में उपलब्ध है। इस का प्रयोग औषधियों के प्रयोग से उत्पन्न मूर्छा, विषाक्तता एवं सांघातिक मूर्छाओं एवं सन्यास में सफलतापूर्वक किया जाता है। मुखमार्ग मांसान्तर्गत एवं शिरान्तर्गत विधि से आवश्यकतानुसार देना चाहिये।

पृष्ठ १३४ का शेषांश

में लाने के लिये सद्यःफलप्रद चिकित्सा है पर इन उपायों से शीघ्र लाभ होता है इसीलिये 'प्रबुद्धसंज्ञं मतिमाननुबन्धमुपक्रमेत्' स्थायी लाभ के लिये वातादि दोष दूष्य आदि का विचार कर चिकित्सा करनी चाहिये। यह मानसिक रोग है अतः मन को बलवान रखना चाहिए।

औषध चिकित्सा में १ रत्ती बसन्त मालती अथवा रस सिंदूर को ४ रत्ती पीपर चूर्ण के साथ दिन में तीन बार शहद से चाटें। रस सिंदूर-पीपरी का योग मूर्छा में अत्यन्त लाभकारी है। कहा भी है 'कणा मधुयुतं सूतं मूर्छायामनुशीलयेत्' इसी प्रकार ताम्रभस्म + खस + नागकेशर प्रत्येक से आधी-आधी रत्ती चूर्ण को शहद से दें। इनके अतिरिक्त मूर्छान्तक रस, अश्वगन्धारिष्ट, कौसुमज्जादि योग, कणादि क्वाथ, ह्रीवेरादि क्वाथ, योगेन्द्र रस आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है।

पथ्य—पुराना जौ, गेहूँ, मूंग, मटर, जांगल मांस रस, गोदुग्ध, चौलाई, केला अनार, नारिकेलोदक, विचित्र आश्चर्य, लघु भोजन, शतधौत घृत, कुम्भसर्पि आदि।

अपथ्य—पान, विरुद्ध भोजन, गरिष्ट भोजन, मैथुन, वेगावरोध आदि अपथ्य हैं।

वैद्य गोपीनाथ पारीक "गोपेश" भिषगाचार्य साहित्यायुर्वेद रत्न
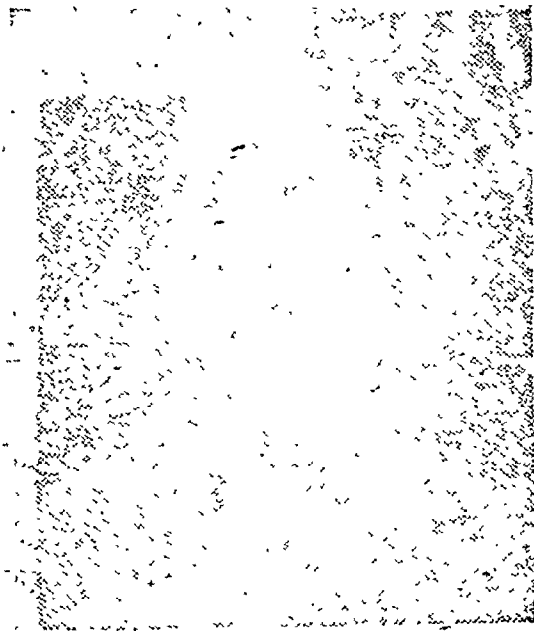
'धन्वन्तरि' के 'बाल व्याधि चिकित्साङ्क' के यशस्वी सम्पादक श्रीयुत गोपीनाथ जी 'गोपेश' आयुर्वेद के उद्भट विद्वान तथा आयुर्वेद के ख्यातनामा लेखक तथा साहित्य कवि और निष्ठावान आयुर्वेदज्ञ हैं जिनकी प्रस्तुत कृति 'विषाद रोग' में रोग के कारण और निवारण पर विस्तृत विवेचन दिया गया है। लेख पठनीय तथा मननीय है। —वैद्य गिरिधारीलाल मिश्र।

—:※:—

आजकल विषाद, चिन्ता, आतुरता, उदासी, दीनता, संत्रास, हीनता, एकाकीपन, उद्विग्नता एवं खिन्नता आदि मानस रोगों की व्यापकता को देखकर कहना पड़ता है कि 'मानव इतिहास में सत्रहवीं शताब्दी ज्ञानयुग, अट्ठारहवीं शताब्दी तर्कयुग, उन्नीसवीं शताब्दी प्रगतियुग और बीसवीं शताब्दी खिन्नता का युग है।' किसी देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ तुलना करने पर मानसिक रोगियों की संख्या जनसंख्या की वृद्धि के अनुपात में सर्वत्र अधिक पाई जाती है। यूरोपीय देशों में पुरुषों की अपेक्षा महिलायें मानसिक रोगों से अधिक पीड़ित हैं किन्तु भारत में महिलाओं की अपेक्षा पुरुष मानसिक रोगों से अधिक पीड़ित हैं।

भगवान चरक ने 'सत्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत्त्रिदण्डवत्' कहकर सत्व को प्राथमिकता देकर यह प्रदर्शित किया है कि आशा, उत्साह, विश्वास एवं प्रसन्नता आदि भाव जीवन के लिये अधिक उपादेय हैं। किन्तु आजकल अत्यधिक अशान्ति, असुरक्षा, आतुरता इस भांति व्याप्त होती जा रही है कि जीवन एक आनन्द न होकर घुटन,

भार बिना समस्या हो गया है। यह सब हो रहा है स्वकीय संस्कृति को त्यागकर पश्चिम के अन्धानुकरण के कारण। प्रबुद्ध साहित्यकार श्री अज्ञेय ने कहा है— 'संस्कृति एक कब्र नहीं है, यह तो एक जमीन है, जिस पर पैर टेके बिना प्रगति हो ही नहीं सकती। बल्कि जो अगर नहीं है तो उस पर खड़ा होने वाला जन हो नहीं है, केवल एक छाया है।'

अस्तु विषाद एक ऐसी मानसिक दशा है जिसमें मनुष्य आनन्द और उत्साह से रहित होकर अत्यन्त शिथिल, दुःखी किंवा निराशावादी बन जाता है। ऐसी स्थिति में कई रोगों की मिथ्या अनुभूति होने लगती है तथा अन्य रोगोपस्थिति में सर्वविध चिकित्सा व्यर्थ हो जाती है। एतावता भगवान चरक ने 'विषादो रोगवर्धनानाम्' 'आयासः सर्वपथ्यानाम्' कहकर इस पर विशेष बल दिया है।

मन के कर्म तीन प्रकार के कहे गये हैं-ज्ञान प्रधान, भावना प्रधान एवं चेष्टा प्रधान। ज्ञान प्रधान व चेष्टा प्रधान में मन बाह्य विषयों के सम्पर्क में आता है किन्तु भावना प्रधान मन की आन्तरिक घटना मात्र है। इसके सुखात्मक तथा दुःखात्मक दो भेद होते हैं। पुनश्च ये सामान्य तथा गुंफित भेद से द्विविध हैं। सामान्य भावों का तन मन पर नगण्य सा प्रभाव होता है किन्तु गुंफित भाव सम्पूर्ण समनस्क शरीर को झकझोरते हैं। साहित्य में विषाद को संचारी (क्षणिक) भाव कहा है किन्तु जब यह आवेग के रूप में उत्पन्न होता है तो स्थायी हो जाता है सुतरां विषाद एक गुंफित (Emotional) भाव है।

प्रवृद्ध दोषों द्वारा मनोवह स्रोतों में विकृति हो जाने से विषाद रोग उत्पन्न होता है। यद्यपि मनोवह स्रोत का अधिष्ठान सम्पूर्ण शरीर ही है फिर भी मुख्यतया हृदय होने से विषाद का हृदय पर विशेष प्रभाव पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप हृच्छूलादि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

विकृत वायु के कर्मों में कश्यप ऋषि ने विषाद को गिना है। भगवान चरक ने भी अशीति वात रोगों के अन्तर्गत विषाद का उल्लेख किया है। नाड़ियों में प्राणवायु के साथ-साथ चित्तवृत्तियां भी संचार करती हैं अतएव आचार्य वायोर्विद ने मन का नियन्ता प्रणेता प्राणवायु को कहा है। हृदयस्थ साधक पित्त की न्यूनता में भी विषाद की सृष्टि होती है। कफ की वृद्धि से भी अवसाद उत्पन्न हो जाता है।

सांख्यकारिकाकार ने सत्व रज तम में मुख्य लक्षणों में 'प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः' कहा है। अतः विषाद में तम की अधिकता होती है। कार्य में ही प्रवर्तक होने से रज की भी कार्मुकता रहती है। अतः विषाद में शारीरिक तथा मानसिक दोषों की स्थिति सिद्ध एवंविध होती है—१. वायु (प्राणवायु हीनता), २. कफ (तर्पक कफ वृद्धि), ३. पित्त (साधक पित्तहीनता)। १. तम (प्रवृद्ध) २. रज (वृद्ध)।

विषाद रोग को अंग्रेजी में डिप्रेशन तथा हिन्दी में अवसाद कहा जाता है। यह एक अनुभूति सम्बन्धी रोग है। इसमें ध्यान, रुचि, निद्रा का अभाव होकर मनुष्य घुटन, अन्तर्द्वन्द्व से अभिभूत हो जाता है। चिंता, एकाकीपन, असुरक्षा, बुद्धिविभ्रम, उदासी, आशङ्का आदि मानसिक लक्षण तथा ज्वर, अजीर्ण, शोकातिसार, अपतन्त्रक, परिणामशूल, ओजःक्षय, शिरःशूल, मूर्च्छा, विबन्ध, उन्माद आदि शारीरिक रोग-लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। एड्रीनलीन या पिच्युटरी ग्रन्थि से स्रवित एस. टी. एच. नामक हार्मोन का स्राव अधिक होने लगता है। इसके दो भेद हैं—

१. मनोविक्षोभी विषाद (न्यूरोटिक डिप्रेशन)

२. मनोविक्षेपी विषाद (साइकोटिक डिप्रेशन)

गुरुवर्य श्री रत्नप्रकाश जी स्वामी महाभाग ने मनोविक्षोभी विषाद को उत्साहहीन विषाद तथा मनोविक्षेपी को अन्तर्मुखी विषाद नाम दिया है।

मनोविक्षोभी विषाद	मनोविक्षेपी विषाद
१. तर्कसंगत दबाव की स्थिति से उत्पन्न होता है।	१. अकारण ही उत्पन्न हो जाता है।
२. चिन्ता की अधिकता रहती है।	[illegible] भ्रम के लक्षण स्थायी होते हैं।

मनोविक्षोभी विषाद	मनोविक्षेपी विषाद
३. चिकित्सालय में प्रविष्ट कराने की आवश्यकता नहीं पड़ सकती।	३. मानसिक चिकित्सालय में प्रविष्ट कराने की आवश्यकता हो सकती है।
४. व्यक्ति का सम्पर्क यथार्थ से पूर्णतः बना रहता है।	४. यथार्थ से टूट जाता है।
५. वंशज व्याधि का इतिहास नहीं मिलता है।	५. वंशज व्याधि का इतिहास मिलता है।
६. नींद शीघ्र ही नहीं आती है।	६. नींद शीघ्र ही टूट जाती है।
७. अपराध भावना नहीं होती।	७. अपराध भावना बलवती होती है।
८. आंगिक गति में कोई परिवर्तन नहीं होता।	८. आङ्गिक गतियां धीमी हो जाती हैं जो निष्क्रियता की स्थिति तक भी पहुँच जाती है।
९. पूर्व में मानसिक विकार का इतिहास नहीं मिलता है।	९. उन्माद, अपस्मार आदि का इतिहास मिलता है।
१०. रोगी किसी बात से शीघ्र ही प्रभावित हो जाता है।	१०. कभी विषादी और कभी उत्साही मालूम होता है।
११. अवस्था से इसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता।	११. यह प्रायः वृद्धावस्था में पाया जाता है।
१२. सभी लिंगों में समान रूप से पाया जाता है।	१२. यह स्त्रियों में अधिक पाया जाता है।
१३. दुःखप्रद अनुभूतियों का कोई विशेष प्रभाव नहीं होता।	१३. दुःखप्रद अनुभूतियां व्याधि को तीव्र बना देती है।
१४. उत्साह बना रहता है।	१४. हीन भावना होती है।
१५. यह सामान्य विकार है जो कई व्याधियों में गौण व्याधि के रूप में प्रकट होकर व्याधि को अधिक बढ़ाता रहता है।	१५. यह एक जटिल मानस विकार है जो स्वतन्त्र रूप में प्रकट होता है।

विषाद को उत्पन्न न होने देने किंवा नष्ट करने हेतु निरोधात्मक तथा उपचारात्मक द्विविध उपाय हैं।

निरोधात्मक उपायों में समुचित शिक्षा का विशेष महत्व है जिससे मस्तिष्क पर चिन्ताओं का तनाव न पड़ सके। शारीरिक श्रम तथा नियमित दिनचर्या मनुष्य को आदि व्याधि से सदैव दूर रखती है। प्रख्यात पाश्चात्य विचारक कारलाईल ने कितना उपयुक्त कहा है—'उस मनुष्य का जीवन धन्य है, जिसने अपना कार्य पा लिया, उसे किसी अन्य सुख के पाने की आवश्यकता नहीं। परिश्रम जीवन है, परिश्रमी के अन्तस्तल से उसके परमेश्वर जाग्रत होते हैं, कार्य के सुप्रारम्भ होते ही शक्ति उसके सम्मुख ज्ञान का प्रकाश विस्तृत कर देता है।'

हिताहार-मनुष्य को स्वस्थ बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाता है। कविराज श्री जयदेव जी शास्त्री ने इन उपायों का वर्णन कर सचेत रहने का सत् परामर्श दिया है—

शुचिः सत्यवाक् सात्त्ववांश्च प्रयत्नो
निवृत्तामिषो वीतमद्यो जितात्मा।
हितं योऽश्नुते ह्यमन्नं च मेध्यं
स ना युज्यते नैव मस्तिष्करोगैः॥

उपचारात्मक उपायों में सत्त्वावजय औषध का विषाद में विशेष महत्व है। धर्म, नीति तथा गुण के अनुसार अपने कर्त्तव्यों का परिपालन, ध्यान एवं सन्तोषपूर्ण जीवन से जो अभीष्ट प्राप्त होता है वह अन्य उपायों से नहीं होता। उपचार तभी उपादेय होता है जब आतुर स्वयमेव अपनी समस्याओं के समाधान के लिये क्रियाशील दिखाई दे। यदि परिवशजन्य परिस्थितियों के कारण विषाद का आक्रमण हुआ हो तो परिस्थितियों में सुधार का प्रयास अनिवार्य है।

दैवव्यपाश्रय औषध में श्रीमद्भगवद् गीता का अध्ययन-मनन भगवान भूतभाव शङ्कर की आराधना एवं विमलमति साधुओं का सग हितावह है। गायत्री पुरश्चरण अति लाभप्रद है।
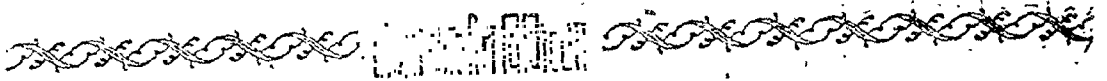
युक्ति व्यपाश्रय में स्नेहन-स्वेदन पूर्वक वमन कराने के पश्चात् धूम्रपान, अञ्जन, अवपीडन, अभ्यंग, प्रदाह, परिषेक आदि किये जाते हैं। रोगी को आत्महत्या के प्रयास से बचाने का पूर्णतया ध्यान की आवश्यकता है।

निम्नांकित औषधियों का प्रयोग भी फलदायक है—

(१) रजत विद्रुम योग—प्रवाल पिष्टी २ भाग, चांदी के वर्क १ भाग लेकर गुलाब जल से घोंटकर श्लक्ष्ण चूर्ण बनालें। १-२ रत्ती आंवले के मुरब्बे से या सिता नवनीत के साथ देवें।

(२) रत्नेश्वर रस—हीरा भस्म, वैक्रान्त भस्म, अभ्रक भस्म, रससिंदूर, स्वर्णमाक्षिक भस्म, रजत भस्म, मुक्ता भस्म, स्वर्ण भस्म इन्हें समान भाग लेकर ईख, शतावरी, विदारी कन्द के रस की भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। त्रिफला क्वाथ से सेवन करें।

(३) बादाम गिरी ७ दाने, छुहारा १, छोटी इलायची ४ दाने, शङ्खपुष्पी ३ ग्राम। बादाम गिरी और छुहारा को किसी मिट्टी के बर्तन में रात को भिगो दें। सवेरे बादाम की गिरी के छिलके व छुहारा की गुठली हटा दें तथा इलायची, ब्राह्मी, शङ्खपुष्पी पीसकर तथा मिश्री पीसकर मिला दें। इन्हें नवनीत में मिलाकर मात्रा युक्त सेवन करने से लाभ होता है।

(४) एक तोला ब्राह्मी स्वरस में ३ माशा कुलञ्जन अथवा अकरकरा का चूर्ण तथा ३ माशा मधु से दें।

(५) ब्राह्मी पत्र के दस तोला चूर्ण में समभाग बादाम रोगन मिलावें, फिर उसमें खीरा, खरबूजा, तरबूजा तथा ककड़ी के बीजों की गिरी २॥-२॥ तोला, छोटी इलायची के बीज ५ तोला तथा कालीमिर्च १ तोला इनका चूर्ण मिला सुरक्षित रक्खें। मात्रा—१-३ माशे तक नित्य गोदुग्ध के साथ सेवन करने से थोड़े ही दिनों में हृदय और मस्तिष्क की शक्ति बढ़ जाती है। बल-वीर्य की वृद्धि होती है। —कल्प चिकित्सांक

(६) ब्राह्म रसायन कल्प—पूर्व में कोष्ठ शुद्धि कर रोगी अग्निबल के अनुसार प्रातःकाल ब्राह्म रसायन इतनी मात्रा में सेवन करें कि जिससे भोजन के समय तक अच्छी तरह भूख लग जाय। इसे सेवन कर साठी चावल का भात तथा दूध पथ्य में लेना चाहिये। सायंकाल के समय सात्विक हल्का भोजन करें। इस रसायन का सेवन कम से कम छः महीने तक अवश्य करें। यदि १ वर्ष पथ्यापथ्य पालन कर सेवन कर लिया जाय, तब तो कहना ही क्या है?—श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी

(७) चन्दनावलेह—श्वेत चन्दन, वंशलोचन, धनियां, सारिवा, कंकोल, खस, केशर, शतावर का चूर्ण तथा गिलोय सत एक-एक तोला खूब खरल कर रखें। फिर बिजौरा नीबू रस १ सेर तथा अनार रस, नारियल का पानी तथा मिश्री आधा-आधा सेर लेकर एकत्र पकावें, जब अवलेह जैसा हो जाय तब ठण्डा होने पर उसमें उक्त चूर्णों को मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर सुरक्षित रक्खें। मात्रा १ से १॥ तोला, अनुपान दुग्ध।

ब्राह्मी, स्मृतिसागर रस, योगेन्द्र रस, अमर सुन्दरी वटी, वृ. वात चिन्तामणि, वातकुलान्तक, हृदयेश्वर रस, मुक्ता पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, अकीक पिष्टी, माणिक्य पिष्टी, रजत भस्म, अभ्रक भस्म, गिलोय सत्व, हिंग्वाष्टक चूर्ण, त्रिफला चूर्ण, अग्निवल्लभ चूर्ण, ब्राह्म रसायन, चन्द्रावलेह, च्यवनप्राश, सारस्वतारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट, अर्जुनारिष्ट, पंचगव्यघृत, कल्याण घृत, चैतसघृत, ब्राह्मी घृत, पैशाचिक घृत, भल्लू घृत, गुलकन्द, एरण्ड स्नेह आदि योगों में से यथोचित योग प्रयुक्त करें।

जटामांसी, शङ्खपुष्पी, ब्राह्मी, सर्पगन्धा, अश्वगन्धा, अहिफेन, वचा, श्योनाक, विडङ्ग, ज्योतिष्मती, पर्पट, भृङ्गराज, शतपुष्पा, धान्यक, शतावरी, गिलोय, कूठ, हरीतकी, आमलकी, एला आदि औषधियों के अतिरिक्त दुग्ध, घृत, मधु, सिता, अमरूद, नीबू, पपीता, द्राक्षा, अखरोट, काजू, पिस्ता, बादाम, गाजर, टमाटर, अद्रक आदि द्रव्य भी पथ्य रूप में प्रयुक्त करने चाहिये।

आधुनिक चिकित्सक स्वतन्त्रतया विषाद रोग की चिकित्सा में विषाद विरोधी (एण्टी डिप्रेशेण्ट) औषधियां देते हैं। इनमें ट्राइसाइक्लिन अथवा मोनो अमीन आक्सिडेज इन्हिबीटर ग्रुप की औषधियां प्रधान हैं।

जब विषाद बहुत गम्भीर हो तो विद्युत आघात (ई. सी टी.) उसकी श्रेष्ठ चिकित्सा है। अन्य चिकित्साओं की असफलता पर मस्तिष्क आपरेशन (प्रीफ्रन्टल लोबोटोमी) आवश्यक हो जाता है।

मूर्च्छा संन्यास-कारण एवं उपचार

डा० अशोक मिश्र, धावा बालाजी (जयपुर) राजस्थान।
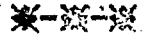
जब व्यक्ति संज्ञाहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है, तब वह मूर्छित हो गया ऐसा कहा जाता है। क्षीण मनुष्य के वातादि बढ़े हुये दोष वाले के तथा विरुद्धान्न सेवन करने वाले के, वेगावरोध से, आघातादि से इन्द्रियों में बाह्याभ्यन्तर जब दोष स्थित होते हैं तब मूर्छा उत्पन्न होती है।

वातादि दोष कुपित होकर संज्ञावह नाड़ियों के कार्य में अवरोध उत्पन्न कर देते हैं जिससे उनमें तमोगुण पैदा हो जाता है, परिणामतः सुख-दुख अथवा चैतन्य शक्ति का लोप हो जाता है जिससे मनुष्य लकड़ी के समान पृथ्वी पर गिर पड़ता है। इसे मोह अथवा मूर्छा कहते हैं।

मूर्छा प्रकार—

आचार्यों ने इस मूर्छा को छः प्रकार का बताया है—

... ... षड्विधा सा प्रकीर्तिता।
वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च॥

१. वातज, २. पित्तज, ३. कफज, ४. रक्तज, ५. मद्यज तथा ६. विषज।

पूर्वरूप—१. हृदय में पीड़ा, २. जम्भाई आना ३. चैतन्यता में कमी, ४. ग्लानि (ये मूर्छा के पूर्वरूप हैं कहा भी है)।

हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव च।

लक्षण—

वातज—वेपथुश्चांगमर्दश्च प्रपीड़ा हृदयस्य च।
कार्श्यं श्यावारुणाच्छाया मूर्च्छाये वातसंभवे॥
पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुध्यते।

पित्तज—सपिपासा ससंतापो रक्तपित्ताकुलेक्षणः।
जात मात्रे च पतति शीघ्रं च प्रति बुध्यते॥
पश्यस्तमः प्रविशति सस्वेदः प्रतिबुध्यते।
सभिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छाये पित्त संभवे॥

कफज—गुरुभिः प्रावृतैरंगैर्यथा चाऽऽर्द्रेण चर्मणा।
सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छाये कफ संभवे॥
पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते।

रक्तज—तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः।
द्रव्य स्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति॥

मद्यज—मद्येन विलपन् शेते नष्ट विभ्रान्तमानसः।
गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरां यावन्न याति तत्॥

विषज—वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युस्तमश्च विषमूर्च्छिते।
वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः॥

भावार्थ—वातज—१. कंपकंपी, २. अकड़ाई, ३. हृदय में पीड़ा, ४. कृशता, ५. सांवली तथा लाल आभा लिये चेहरा तथा ६. रोगी का थोड़ी देर संज्ञाहीन होने के बाद संज्ञायुक्त हो जाना।

पित्तज—तृष्णा, सन्ताप, नेत्र लाल-पीले, शीघ्र होश में आना, जब होश में आये तब रोगी को पसीना आना, मल पतला तथा पीला एवं मुख पर पीली छाया।

कफज—गीले चमड़े के समान अंगों का आभास होना, लालास्राव, हृल्लास, देर से होश में आना।

रक्तज—खून की गन्ध से यह मूर्छा होती है। कतिपय आचार्य इसे द्रव्यगत स्वभाव मानते हैं क्योंकि खून देखते ही यह मूर्छा होती है। इसमें अंग जकड़ जाते हैं, दृष्टि स्थिर हो जाती है, बाह्य श्वास गूढ़ होता है।

मद्यज—विलाप, मन भ्रष्ट तथा भ्रान्त, पड़े हुये अंगों को इधर-उधर पटकना।

विषज—कंपकपाहट, स्वप्न देखना, तृष्णा, चहुँ ओर अन्धकार भासना। तीव्र-तीव्रतर विषों के अनुसार लक्षण भी तीव्र और तीव्रतर होते हैं।

संन्यास—मूर्छा स्वयं शान्त हो जाती है, किन्तु संन्यास बिना औषध चिकित्सा के शान्त नहीं होता। वातादि दोष बलवान होकर वाणी, मन तथा देह की चेष्टाओं को रोककर प्राणायतन (मन या हृदय) में आश्रित हो जाते हैं तब रोगी निसंज्ञ होकर काष्ठ के समान धरती पर गिर पड़ता है उसे संन्यास कहते हैं।

आधुनिक मतानुसार यह अवस्था मस्तिष्क में रक्ताल्पता के कारण होती है। इसका कारण प्रायः रक्तवाहिनियों की अथवा हृदय की विकृति होती है। रक्तवाहिनियों की विकृति में रक्तचाप का अत्यधिक न्यून हो जाना तथा हृदय की विकृति के कारण मस्तिष्क में रक्तानुधावन यथेष्ट नहीं रहता।

(१) रक्तवाहिनी विकृतिजन्य मूर्छा (Syncope)—

क—इसमें जब रोगी अचानक खड़ा होता है, तब बेहोश होता है। इसका आक्रमण प्रायः भोजनोपरान्त होता है। इस अवस्था में औदर्य रक्तवाहिनियों में रक्त का संचार अधिक हो जाता है और वह किसी कारणवश हृदय की ओर नहीं लौटता है। परिणामतः मस्तिष्क में रक्त की कमी हो जाती है। प्रौढ़ावस्था में अधिक होती है।

ख—यह अत्यधिक समय तक किसी भयङ्कर रोग से ग्रसित रहने पर तथा अत्यधिक थकावट के बाद रक्तवाहिनी तथा प्राणदा नाड़ी की विकृति के कारण भी होती है। अत्यधिक पीड़ावश अथवा शोकाघात आदि से नाड़ियों में अनावश्यक उत्तेजना से दुर्बल एवं भयग्रसित व्यक्ति तथा हृदय विकार से युक्त पुरुष को भी होती है। इस रोग के पूर्वरूप विचित्र होते हैं। रोगी को अनुभव होता है कि वह डूब रहा है, मिचली आती है तथा मल त्याग की इच्छा होती है। शिर में चक्कर तथा आंखों के सामने अन्धेरा छा जाता है और वह संज्ञाहीन हो जाता है। त्वचा का वर्ण पीला तथा पसीना आता है। इसका वेग दो से दस मिनट तक रहता है परन्तु अरति तथा अवसाद घण्टों तक बना रहता है।

(२) हृदय विकृतिजन्य मूर्छा—यह मूर्छा आंशिक हृदयावरोध जब पूर्ण होने लगता है तब होती है और जब नाभिन्द की उत्तेजना निलयों तक नहीं पहुँच पाती तब निलयों के कार्य का स्थगन होकर मूर्छा हो जाती है। अत्यधिक हृदय स्पन्दन से भी मूर्छा होती है।

संन्यास को आधुनिकाचार्यों ने Apoplexy कहा है तथा इसके तीन प्रधान कारण माने हैं। (१) थ्रोम्बोसिस (२) हैमरेज तथा (३) एम्बोलिज्म। इनमें प्रथम दो धमनी की दीवारों के अपचय के कारण होती है। रक्तस्राव प्रायः किसी कारण से होता है यानि किसी रोग विशेष में रक्तस्राव बढ़ जाता है तब हुआ करता है। शल्य किसी आन्तरिक अवरोध के कारण होता है। रक्तस्राव निम्न कारणों से भी होता है—

१. फिरंग, २. धमनी की दीवार का भेदस अपचय या ग्रन्थि, ३. रक्त चापाधिक्य के कारण धमनी प्रतिक्षय, ४. व्रणशोथजन्य परिवर्तन, ५. मस्तिष्क अर्बुद या अवघात, ६. चिरकारी न्यून रक्तचाप, ७. रक्तविकार आदि।

चिकित्सा—

जैसाकि ऊपर कहा गया है कि वेग शान्त होने पर मूर्छा स्वयं शान्त हो जाती है परन्तु सन्यास बगैर चिकित्सा से शान्त नहीं होता। यह अङ्क संकटावस्था में चिकित्सा हेतु प्रकाशित है और आजकल यह भ्रान्त धारणा है कि आयुर्वेद में सद्यःफलप्रद चिकित्सा नहीं है। मूर्छा सन्यास प्रकरण में आचार्यों ने निर्देश किया है कि—

> प्राणैर्वियुज्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यः फलाः क्रियाः।
> दुर्गेऽम्भसि यथा मज्जद्भाजनं त्वरया बुधः।
> गृह्णीयात्तद्वत् प्राप्तं तथा संन्यास पीडितम्॥

सद्यःफलप्रद चिकित्सा के लिये तीक्ष्ण अञ्जन, अवपीड, धूम, प्रधमन, सुई द्वारा शरीर में पीड़ा करना, दाह, नख में सुई चुभाना, केश और बालों को नोचना, दांतों से काटना, कौंच की फली को शरीर पर रगड़ना इन सब क्रियाओं से रोगी शीघ्र होश में आ जाता है। आचार्य वाग्भट आशुक्रिया हेतु बिच्छू से कटवाने का निर्देश करते हैं यथा—

> आशु प्रयोज्यं संन्यासे सुतीक्ष्णं नस्यमञ्जनम्।
> धूमः प्रधमनं तोदः सूचिभिश्च नखान्तरे॥
> केशानां लुञ्चनं दाहो दंशो दशनवृश्चिकैः॥

अनेक प्रकार के तीक्ष्ण मद्यों को एक जगह मिलाकर कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर रोगी के मुख में थोड़ा थोड़ा बार-बार डालते रहना चाहिए। आश्चर्य उत्पन्न करने से, किसी मनोनुकूल विषय को स्मरण दिलाने से, प्रिय शब्दों के सुनने से, तीक्ष्ण विरेचन, तीक्ष्ण वमन, तीक्ष्ण धूम का सेवन, तीक्ष्णाञ्जन, कवलग्रह, रक्तमोक्षण, व्यायाम, ये सभी उपाय मूर्छित व्यक्तियों को शीघ्र होश

—शेषांश पृष्ठ १२८ पर देखें।

विषाद रोग पर गीता का आध्यात्मिक उपचार

श्री लक्ष्मण किशन राव हुलगुण्डे बी० एस-सी०, बी० एड०, आयुर्वेद रत्न, विद्यारत्न, उपचारक
गणित अध्यापक, मु० सारड गांव, ता० अम्बाजोगाई, जिला बीड (महा०)

आजकल विषाद रोग (Depression) का बाहुल्य हो रहा है। लोगों में बढ़ते हुए मानसिक तनाव को देखकर हमारी दृष्टि गीता पर पड़ी जिसका पहला अध्याय ही "अर्जुनविषाद रोग (योग)" नाम से वर्णित है। अतः हमने विषाद रोग पर गीता की आध्यात्मिक चिकित्सा को उपयुक्त समझकर विषय सूची में इसे समाविष्ट किया।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने 'कर्म योग' से कर्म को तथा 'ज्ञान योग' से अनासक्ति को लेकर कर्म में अनासक्ति अर्थात् "निष्काम कर्म" इस नवीन विचार को जन्म दिया जिससे व्यक्ति ईश्वरार्पित बुद्धि से कर्मरत रहने पर कर्मफल में आसक्ति न होने पर सुख-दुख के बन्धन से रहित चिरशांति प्राप्त करता है। नाव समुद्र पर चले तो समुद्र पार हो जाता है पर नाव में समुद्र आ जाय तो नाव को डूबना होता है। मनुष्य दुनियां में रहे पर स्वयं में दुनियां आ जाय तो 'अर्जुन विषाद' है जिसका उत्तर ही गीता है।

श्री लक्ष्मण किशन राव हुलगुण्डे ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। आप विद्यार्थियों का जीवन उज्ज्वल करने की भावना से अध्यापक वृत्ति करते हैं।

—विशेष सम्पादक।
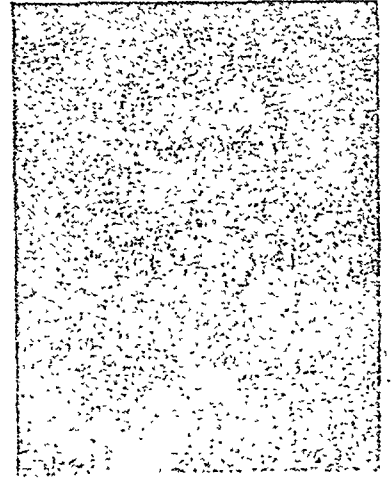
जब अर्जुन का रथ सेना के मध्य लाया गया उस समय उसने अपने भाई, मातुल, सगे, गुरु आदि देखे। उन्हें देखते ही उसके मन में अचानक विचार परिवर्तन हुआ। उसमें युद्ध करने का जो जोश था, उमङ्ग थी, विजय की कामना थी, शत्रु को पराजित करने का विचार था, उस पर मानो विचार परिवर्तन ने पानी फेर दिया। अर्जुन का शरीर बलवान था, युद्धविद्या में निष्णात था, धनुर्धर था लेकिन इस समय वह इतना हताश क्यों हुआ? विचार करने पर समझता है कि अर्जुन बीमार था, मानसिक दौर्बल्य तथा आत्मबल की कमी के कारण। वह मनोदुर्बलता से कहने लगा—

न कांक्षे विजयं कृष्ण, न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जिवितेन वा॥

अ. १, १।३२

हे कृष्ण मुझे इन लोगों को मार के राज्य नहीं चाहिए, विजय नहीं चाहिए, ऐसे राज्य से तो मरना ही अच्छा है। अर्जुन में मानसिक बीमारी थी। उसके कारण वह गलित गात्र हुआ। उसकी शक्ति मानो नष्ट हो गई तथा कहने लगा—

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परि शुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥ अ. १–२६

मेरे गात्र कांप रहे हैं, मुख शुष्क हुआ है, शरीर का बल नष्ट सा हो गया है। ये लक्षण तो किसी शारीरिक रोग ने पैदा नहीं किये, ये तो मानसिक बीमारी का परिणाम था। इसलिए कहा जाता है कि यदि मानसिक आरोग्य ठीक नहीं तो शारीरिक आरोग्य अच्छा नहीं रह सकता, ये परस्परावलंबी हैं। इसलिए मानसिक चिकित्सा भी आवश्यक है। मन में यदि चिन्ता हो तो मनुष्य जिंदा ही जलता रहता है।

चिता चिन्ता समप्रोक्ता बिन्दुमात्रं विशेषतः।
सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता॥

इसी कारण मन की चिकित्सा के लिए सोचना

अनिवार्य है तथा वह चिकित्सा है अध्यात्मिक चिकित्सा।

मन में होने वाले काम क्रोधादि षड् रिपु हैं। इनकी चपेट में यदि मन आया तो फिर मन का आरोग्य बिगड़ जाता तथा उससे शारीरारोग्य भी नहीं रहता।

अर्जुन को पहले तो लड़ाई के लिए कौरवों पर क्रोध था, युद्ध की कामना थी लेकिन ऐन वक्त पर उस पर सम्बन्धियों के मोह ने प्रभाव डाला तथा हतबल कर दिया। उसके सामने सौभाग्यवश श्रीकृष्ण जैसा कुशल चिकित्सक था। उसने अर्जुन का चिकित्सा की दृष्टि से अभ्यास किया तो उसे मालूम हुआ कि अर्जुन मोहग्रस्त होने से मनोदुर्बलता आयी है, मानसिक आरोग्य बिगड़ा है। तब उसने चिकित्सा आरम्भ की जिसे हम अध्यात्मिक चिकित्सा कह सकते हैं। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से गीता में सबके लिए अध्यात्मिक चिकित्सा भलीभांति बताई है।

यह बात अवश्य ध्यान में रहे कि 'जैसा अन्न वैसा मन'। संस्कृत में सुभाषित है---

आहार शुद्धौ सत्वशुद्धि, सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृति।

यदि आहार शुद्ध है तो बुद्धि शुद्ध है, स्मरण शक्ति बढ़ती है। इससे मालूम होता है कि शारीरिक तथा मानसिक आरोग्य अन्न के प्रकार पर आधारित है। आहार शुद्ध हो तो शरीर के अन्दर सत्वगुण पैदा होता है, बढ़ता है। आहार भी समित होना चाहिए क्योंकि 'अति सर्वत्र वर्जयेत।' इसलिए गीता में कहा है---

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुख हा॥

---६-१७

शारीरिक स्वास्थ्य के लिए सत्वगुणयुक्त प्रकृति होना आवश्यक है इसलिए सात्विक आहार की जरूरत होती है। लेकिन स्वास्थ्य के लिए सात्विक कर्म की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी सात्विक आहार की।

जब मनुष्य कर्म करता है तब फल की अपेक्षा रख कर करता है। यदि अपेक्षापूर्ति नहीं होती तो उसे दुख होता है तथा उसके कारण मानसिक संतुलन बिगड़ता है इसलिए गीता का निष्काम कर्मयोग को आवश्यक है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

यह उपदेश ध्यान से रखते हुए कर्म करना चाहिए। कर्म पूरे पुरुषार्थ से करना चाहिए इसमें कोई शक नहीं, लेकिन जो भी फल मिले उसमें संतुष्ट रहनाच हिये।

कर्म निरिच्छा के साथ करे तो कर्म का दोष याने फल की आकांक्षा का दुख नहीं होता।

कर्म करते समय कोई स्तुति करे या निन्दा, विद्वान को अपने अच्छे कर्म से नहीं हटना चाहिए। निन्दा स्तुति को समान देखते हुये बुद्धि विचलित नहीं होनी देनी चाहिये। कर्म शारीरिक, वाचिक, मानसिक होते हैं। इन तीनों प्रकार के अच्छे कर्मों को गीता ने तप कहा है।

(१) शारीरिक तप---देव, गुरु, विद्वानों का आदर, स्वच्छता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा अपनाना शारीरिक तप हैं।

(२) वाचिक तप---उद्वेग उत्पन्न करने वाला न बोले, सत्य बोले। यह वाचिक तप है।

(३) मानसिक तप---प्रसन्नवृत्ति, आत्मचिंतन, संयम, शुद्ध भावना को मानसिक तप कहते हैं।

इन तीनों तपों को आचरण में लाते हुये कर्म करे तो सात्विक कर्म होते हैं। इनके विपरीत कर्म से तामसिक या राजसिक प्रवृति बढ़ती है जो दुख का कारण बनती है। इसलिये गीता में सात्विक आहार युक्त मात्रा में सेवन करने को कहा है। शरीर को व्यायाम की जरूरत 'युक्त चेष्टस्य कर्मसु' कह कर बताई है। सात्विक कर्म का निर्देश देकर उसके लिये त्रिविध तप की आवश्यकता बताई है। इसका परिणाम बुद्धि सात्विक होती है, निर्णयात्मक होती है, असत् सत् का विचार कर सकती है, विहित और निषिद्ध कर्म का निर्णय करके विहित कर्म में प्रवृत्ति करती है। इन सबका परिणाम मनुष्य दैवी सम्पदा का उत्तराधिकारी बनता है जिसके कारण सात्विक सुख प्राप्ति होती है। यह करते समय श्रम तो कठिनाई मालूम पड़ती है लेकिन इसका परिणामसात्विक सुख है। इसके प्राप्ति के लिये चाहे जितने कष्ट सहने पड़े उन्हें धीरता से सहने चाहिये क्योंकि इस सुख से मन प्रसन्न तथा आत्म शान्ति की प्राप्ति होती है तथा मनु का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त का मार्ग आसान होता है।

अध्यात्म का चिकित्सा में महत्व

— डा० सु० ब० काले एम. एस-सी., पीएच.डी., परली-वैजनाथ, जिला बिड (महाराष्ट्र)

शरीर स्वस्थ नहीं तो मन, बुद्धि, आत्मा दुःखी होते हैं, बेचैन होते हैं। शरीर स्वस्थ है पर मन बेचैन है, दुःखी है तो शरीर असंतुलित हो जाता है। बुद्धि और आत्मा दुःखी होते हैं। वैसा ही बुद्धि का है। बुद्धि बिगड़ गयी तो मन, शरीर को बिगाड़ देती और सभी दुःखी बनते हैं। आत्मा अगर अस्वस्थ अप्रसन्न रहा तो मन बुद्धि शरीर सभी दुःखी रोगी होते हैं।

त्रिविध दुःखों की निवृत्ति के लिए आध्यात्मिक ज्ञान आवश्यक है। इतना ही नहीं शारीरिक रोगों के निवारण के लिए भी आध्यात्मिक ज्ञान आवश्यक है। क्योंकि सूक्ष्म कारण मन, बुद्धि आत्मा है और यह सूक्ष्म कारण स्वस्थ रहे तो शारीरिक दुःख सहन भी कर सकते हैं नहीं तो बीमारी ज्यादा बढ़ती है। अनेक योगी शारीरिक कष्ट सहन करते हैं। आत्मा प्रसन्न रहा, आनन्द रहा तो ये शारीरिक दुख कुछ भी नहीं करता।

आध्यात्मिक ज्ञान में सर्वप्रथम यह दिया है कि—

१. इस सृष्टि का उत्पत्तिकर्ता, संहारकर्ता ईश्वर है।

२. सृष्टि नियमों के आधार पर चलती है।

३. नियम बदलने या बनाने का अधिकार नहीं।

४. जैसा कार्य वैसा फल मिलता है।

५. प्रकृति जड़ है और उससे यह दृश्य जग बना है।

६. वह पंच महाभूतों से बनी है।

७. शरीर भी जड़ है, स्थूल है और प्रथमतः यह भी पंच महाभूतों से बनता है। इसका सृष्टि से सम्बन्ध है।

८. आत्मा पंचभूतों में नहीं है, एक चेतन तत्व है जो शरीर के साथ जुड़ा हुआ है। वह अदृश्य है।

९. आत्मा का शरीर के साथ जुड़ना, अलग होना इसके हाथ में नहीं, यह परमात्मा के हाथ में है। इसलिए जन्म-मृत्यु मानव के हाथ में नहीं।

१०. आत्मा-परमात्मा प्रकृति अनादि हैं।

११. आत्मा के मन, बुद्धि सूक्ष्म साधन हैं।
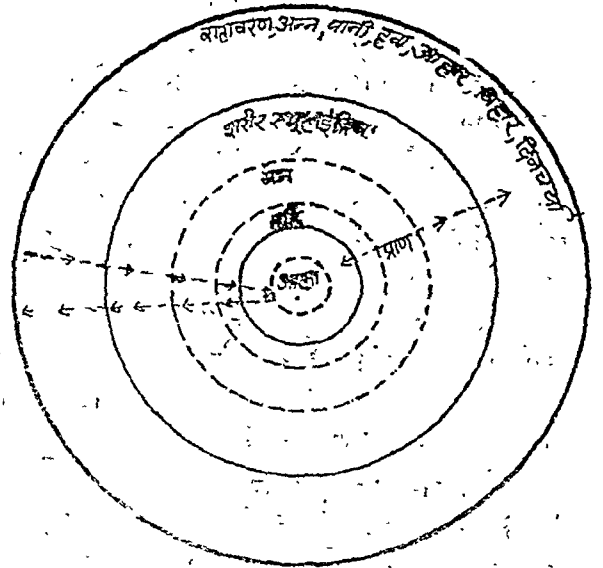
वातावरण, अन्न, पानी, शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा का सम्बन्ध।

१२. मन चंचल है। इन्द्रियों पर उसका अधिकार है। सहज गति बाहर है, बुराई की तरफ है। उसको सुसंस्कारित करने से उपयोगी सिद्ध होता है।

१३. बुद्धि सूक्ष्म है, साधन है। किसी चीज का निर्णय करने का काम करती है और उसी निर्णय पर आगे का कर्म, कर्म से फल निर्भर होता है। अतः इसका भी ज्यादा महत्व है।

१४. आत्मा कभी नष्ट नहीं होती। वह तो केवल शरीर रूपी देह के माध्यम को बदलता रहता है।

१५. पुनर्जन्म है। पिछले जन्म का कर्म हमें भोगना पड़ता है। अतः अगले जन्म में सुखी होना है तो अपने इस जन्म के कर्म को सुधारो।

१६. कर्मफल भोगे बिना छूटता नहीं और दुखी होना तो कर्म सुधारो। कर्म को ठीक करना है तो बुद्धि

ठीक करो। बुद्धि को ठीक करना है तो आहार विहार पर संयम रखो। इन्द्रिय पर कन्ट्रोल करो।

१७ मानव को सुख, शान्ति, आनन्द होना चाहिए।

१८. संयम से भौतिक वस्तुओं का सदुपयोग करने में सुख है। सदुपयोग करने को सात्विक वृत्ति होना। ज्ञान होना। खान-पान दिनचर्या पर निर्भर है।

१९. मन शांत होना। मन शान्त सत्य धारण करने से सत्याचरण होगा। असत्य से मन अशांत, चंचल, बेचैन होगा।

२०. आनन्द आत्मा को होना। जो साधक, कर्ता, शरीर का मालिक है उसको होना। यह आनन्द केवल परमात्मा के सानिध्य में ही मिलता है क्योंकि परमात्मा सतचित् आनन्द है।

२१. सत्वगुण प्रधान लोगों को शारीरिक बीमारियां कम होती हैं और उनकी सहन शक्ति ज्यादा होती है।

२२. रजोगुण प्रधान और तमोगुण प्रधान लोग ही दुनिया में ज्यादा रोगी होते हैं।

२३. काम, क्रोध, अज्ञान, मद, मत्सर, लोभ आदि आन्तरिक मानव के शत्रु हैं उनके चंगुल में मानव फंस गया कि दुखों में फंस जाता है।

२४. इनके ऊपर अगर विजय पाना है तो केवल आध्यात्मिक इलाज ही काम करता है। औषध कुछ भी काम नहीं करती।

२५. दुनियां की सारी दवायें केवल शरीर को ठीक कर सकेंगी पर षड रिपु अथवा आन्तरिक विकार को दूर नहीं कर सकेगी।

२६. आन्तरिक विकार अज्ञान से आते हैं। इसलिए उसके निवारण के लिए सत्य ज्ञान, अच्छे विचार और संयम इलाज है। जो अध्यात्म के बजाय कोई नहीं दे सकता।

२७. दुनियां में जो आपके लिए अच्छा है वह ही दूसरों के लिए है। जिसमें तुम्हारा भला, उसमें औरों का भला है। आप लोगों का बुरा करके स्वयं का भला नहीं कर सकते। दूसरों को दुखी करके स्वयंसुखी नहीं बन सकता। दूसरों को अशान्त बनाकर स्वयं शान्त नहीं रह सकते। इसलिए अगर सुख शांत आनन्द होना है तो सभी का हित करो, परोपकार करो तो आपको मिलेगा। औरों की भलाई का सोचो तो ही तुम्हारा भला होगा। यह नियम बहुत ही अजब हैं। यह मालूम नहीं होने के कारण इन्सान फंसता जा रहा है।

२८. दुनियां से जाते वक्त यहां से कुछ भी नहीं ले जा सकते। आये अकेले, जाते अकेले। यह तत्व पता चलने पर इन्सान मोह, लोभ आदि में फंसता नहीं।

मन की शांति के लिए आत्मा का आनन्द भौतिक वस्तुओं पर निर्भर नहीं है और यह नहीं मिली तो बाकी दुनियां भी मिली तो सुखी नहीं होता। कितना भी स्वस्थ शरीर हो, वह दुखी ही है। अतः शरीर के स्वास्थ्य के साथ मन, बुद्धि आत्मा का भी विचार होना आवश्यक है।

मन, बुद्धि, आत्मा के रोग अलग हैं। काम, क्रोध, मद, मत्सर, मोह, अहं ये षड रिपु हैं। आजकल विज्ञान इसका विचार नहीं करता और उसको कम करने का तरीका उसके पास है ही नहीं। आज के लोग स्वेच्छाचारी होने की वजह से यह बढ़ता जा रहा है। आध्यात्मिक अभ्यास में इन सबको कम करने का प्रयत्न है। अन्तःकरण पवित्र करने के लिए आध्यात्म कहता है कि जब तक ये षड रिपु रहेंगे तब तक जन्मजन्मान्तर में मानव को अनेक दुःख भोगने पड़ेंगे। शारीरिक दुखों से आन्तरिक दुःख भयानक होते हैं। इसलिए तो आज जिधर देखें उधर अन्याय, जुल्म, आत्महत्या आदि दिखाई देती हैं। विकसित राष्ट्रों में तो इनका प्रमाण बहुत है। इसलिए आध्यात्म में यह षड रिपु कम करके उसकी जगह पर मानवी मूल्यों का सृजन बताया है। इतना ही नहीं तो शरीर के बारे में भी आज सत्यज्ञान नहीं।

आध्यात्म ज्ञान वैसे तो वेद से ही है. पर समय-२ पर उपनिषद, दर्शन, स्मृति, गीता आदि में इसका ज्ञान ओतप्रोत पड़ा है। इसको छोड़कर लोगों ने अध्यात्म का विडम्बन किया, इसलिए आज का मानव दुखी है। योग दर्शन में तीनों दुखों से छुटकारा पाने के लिए एक ही पर्याय बताया है—मुक्ति (मोक्ष)। मुक्ति में तो आत्मा जन्म-मृत्यु के चक्कर से परे कुछ काल के लिए बनता है। पर साधारण मानव अगर पातञ्जल के अनुसार योगा-

—शेषांश पृष्ठ १५१ पर देखें।

चिकित्सक और कानून—

चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धित न्यायालयीय विषयों का विवरण जिस शास्त्र में होता है उसको न्याय वैद्यक (Medical Jurisprudence) कहते हैं जिसका ज्ञान चिकित्सक को होना आवश्यक है। कारण चिकित्सक के सामने कोई रोगी अकस्मात् मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो व्यक्ति की मृत्यु का कारण रोग है न कि आत्महत्या या परहत्या है। इसका निर्णय चिकित्सक ही कर सकता है और इस प्रकार न्यायालय में उचित न्याय प्रदान करने में मदद कर सकता है। प्राचीनकाल में भी तत्कालीन राजसत्ता तथा चिकित्सक का सम्बन्ध अत्यन्त निकट का होना माना जाता था, प्राचीन विष विज्ञान या अगदतन्त्र का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि विषयुक्त आहार, विष पीड़ित व विषमृत व्यक्ति का निर्णय चिकित्सक की सहायता से ही होता था जिससे यह स्पष्ट होता है कि उचित न्याय प्रदान करने में चिकित्सक की सहायता लेने की प्रवृत्ति तत्कालीन न्याय संस्थाओं में भी थी।

परहत्या—यदि चिकित्सक को यह निश्चय हो जाय कि रोगी की हत्या करने के लिये उसको विष दिया गया है तो उसको इसकी सूचना तत्काल पुलिस को देनी चाहिये। भारतीय दण्ड विधान की क्रिमिनल प्रोसिजर धारा ४४ के अनुसार पुलिस को खबर देना चिकित्सक का कर्त्तव्य है। ऐसा न करने पर भारतीय दण्ड विधान की धारा १७६ के अनुसार चिकित्सक स्वयं दण्ड का भागी होता है।

आत्महत्या या आकस्मिक दुर्घटना—यदि विष का प्रयोग हत्या के लिये किया गया है या आकस्मिक दुर्घटना से हुआ है और यदि इन बातों का चिकित्सक को पूरा विश्वास है तो इन अवस्थाओं में पुलिस को सूचना देना कानून के अनुसार आवश्यक नहीं है, पर इन बातों के बारे में पुलिस जांच में चिकित्सक को पूछा जाय तो इन बातों को विस्तार से कहने के लिये चिकित्सक बाध्य है। संक्षेप में न्याय संस्था की मदद करना चिकित्सक का कर्त्तव्य हो जाता है। कारण चिकित्सक और न्यायाधीश जीवन के लिये महत्वपूर्ण हैं। चिकित्सक की भूल से व्यक्ति जमीन से ३ गज नीचे (क़ब्र में) और न्यायाधीश की भूल से व्यक्ति जमीन से ३ गज ऊपर (फांसी पर) पहुँच जाता है।

विशिष्ट रोगी में दुर्घटना से व आत्महत्या के लिये विष प्रयोग हुआ है या किसी ने उसकी हत्या करने के लिये (Homocide) विष प्रयोग किया है इसका निर्णयात्मक अनुमान करने का कार्य न्याय संस्था का है। इसलिये विषयुक्त रोगी के विषय में पुलिस को सूचना देना चिकित्सक की दृष्टि से हितावह होता है। आत्महत्या के प्रयत्न में, परहत्या के प्रयत्न में या दुर्घटना में यदि रोगी मरणोन्मुख हो या चिकित्सा होने पर भी उसके जीवित रहने की आशा कम हो तो या चिकित्सक के सामने ही उसकी मृत्यु हो जाय तो इन अवसरों पर पुलिस को खबर देना चिकित्सक का कर्त्तव्य है। यदि चिकित्सक हास्पीटल में काम कर रहा है तो प्रत्येक

विषाक्त रोगी की पुलिस को सूचना देना कानून द्वारा उसका कर्त्तव्य समझा जाता है। ऐसे अवसरों पर चिकित्सक को मृत्यु का प्रमाणपत्र पुलिस की जांच होने के पूर्व नहीं देना चाहिए।

चिकित्सक के प्रमाण पत्र—

चिकित्सक के किसी व्यक्ति की बीमारी, मस्तिष्क-जन्य विकार, आयु, बलात्कार, मृत्यु, कुष्ठ आदि के सम्बन्ध में लिखित प्रमाण पत्र को चिकित्सक प्रमाणपत्र कहते हैं। रजिस्टर्ड चिकित्सक के अतिरिक्त अन्य चिकित्सकों द्वारा लिखित प्रमाण पत्र सरकार द्वारा न्यायालय में मान्य नहीं है। किसी व्यक्ति का रोग व मृत्यु चिकित्सक के प्रमाण पत्र द्वारा ही प्रमाणित होती है। अतः चिकित्सक को बहुत संभाल कर, सतर्कता एवं सावधानी के साथ लिखना चाहिए।

चिकित्सक द्वारा लिखित विवरण—

यह सरकार द्वारा नियुक्त चिकित्सक को लिखना पड़ता है। जब कोई आकस्मिक दुर्घटना से क्षतयुक्त या खून, बलात्कार इत्यादि की संदिग्ध अवस्था में पुलिस के हाथ में जीवित या मृत व्यक्ति आता है तब पुलिस उस व्यक्ति की परीक्षा के लिए उपर्युक्त चिकित्सक के पास भेज देती है। चिकित्सक के लिखित विवरण में स्पष्टतया दो भाग होते हैं। १. प्रथम भाग में प्रत्यक्ष शारीरिक परीक्षा का सम्पूर्ण विवरण और २. दूसरे भाग में अपने व्यावसायिक ज्ञान के आधार पर और प्रत्यक्ष परीक्षा के आधार पर विचार करते हुए मृत्यु का कारण या जीवित अवस्था में क्षत या क्षतों के उपकरण, क्षतों का काम इत्यादि बातों के विषय में अनुमान लिखना चाहिए।

चिकित्सक की साक्ष्य—चिकित्सक की साक्षी दो प्रकार की होती है। (१) मौखिक और लिखित। दीवानी न्यायालय में व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी गवाह अर्थात् चिकित्सक आज्ञापत्र (summons) लेने से पूर्व अपनी फीस मांग सकता है अथवा आज्ञापत्र लेकर न्यायालय में पहुंचकर साक्षी देने से पूर्व शपथ खाते समय अपनी फीस मांग सकता है और न्यायाधीश उसे दिलाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की फी[s] कण्डक्ट मनी कहलाती है। चिकित्सक अपनी फी[s] का प्रश्न उठाकर किसी प्रकार की बाधा नहीं डा[ल] सकता। यदि न्यायालय उतने धन की आज्ञा न [दे] जितनी कि वह फीस मांगता है तो चिकित्सक को [इ]नकार नहीं करना चाहिए अन्यथा उस पर न्यायालय की अ[व]मानता का मुकद्दमा चलाया जा सकता है।

मृत्यु का प्रमाण पत्र—यदि किसी रोगी की मृ[त्यु] हो जाय तो सम्बन्धित चिकित्सक को सरकारी नियम[ानु]सार मृत्यु के कारण के सम्बन्ध में प्रमाण पत्र दे[ना] पड़ता है। इस प्रकार के प्रमाण पत्रों में चिकित्सक [को] अपने अधिकाधिक ज्ञान एवं विश्वास के आधार पर मृ[त्यु] का कारण लिखना चाहिए और प्रमाण पत्र लिखने [में] किंचित् भी विलम्ब नहीं करना चाहिए चाहे उसे रो[गी] के जीवन काल की फीस न भी मिली हो।

यदि रोगी की मृत्यु चिकित्सक के सम्मुख न हुई अथवा चिकित्सक को उस रोगी की मृत्यु पर संदेह [हो] तो वह प्रमाण पत्र देने से इन्कार भी कर सकता है [कि]न्तु इस अवस्था में शव की अन्तिम क्रिया किए जाने से [पूर्व] ही उसे पुलिस को सूचित कर देना चाहिए। जब [तक] रोगी की पूर्णतया मृत्यु न हो जाय तब तक प्रमाण[पत्र] पर हस्ताक्षर नहीं करना चाहिए। प्रमाण पत्रों में सब[ंधित] तिथि, समय और स्थान का उल्लेख होना चाहिए।

विष भक्षण

विष—सामान्यतया जो कोई भी पदार्थ शरीर [के] बाह्य सम्पर्क में आने पर या शरीर में किसी प्रक[ार] शोषित होने पर शरीर पर हानिकारक प्रभाव डाल[कर] प्राणों को सङ्कट में डाल दें व मृत्युकारक हो उन्हें [विष] कहा जाता है। विष का प्रभाव एवं क्रियाशीलता [वि]ष की मात्रा स्वरूप, प्रयोग विधि, संचयकाल रोगी की [आयु] स्वास्थ्य प्रकृति, निद्राकाल आदि प्रमुख बातों पर निर्भर करता है।

विष के प्रयोग मार्ग—मुख के द्वारा आहार, पेय पदार्थ, पान आदि चीजों से गुदा, योनि, कान आदि शरीर

छिद्रों से, श्वास क्रिया के साथ नस्य, इतर आदि द्वारा त्वचा पर लेप, क्रीम, उबटन द्वारा, घाव, आघातज क्षत द्वारा तथा त्वचा, मांस, सिरा में इन्जेक्शन द्वारा प्रायः प्रयुक्त किया जाता है।

विष भक्षण—विष का भक्षण स्वयं रोगी द्वारा आत्म हत्या के लिये किया गया हो व पर हत्या के लिये खिलाया गया हो व खाद्य पदार्थों की मिलावट के कारण विषाक्त आहार द्वारा प्रयुक्त हुआ हो। विषाक्तता के लक्षणों की आकस्मिक उत्पत्ति हो जाती है। आजकल खाद्य सामग्री में अत्यधिक मिलावट होने लगी है। देश के नागरिकों का नैतिक पतन इतने निम्न स्तर पर पहुँच गया है कि आये दिन अखबारों में समाचार पढ़ने को मिलते हैं कि अमुक तेल में मिलावट होने से इतने व्यक्ति अंधे होगये व उनको पक्षाघात हो गया। घी चर्बी की मिलावट व अन्य खाद्य पदार्थों में जो विषाक्त पदार्थ मिलावट के लिए काम में लाये जाते हैं उनकी लिस्ट उतनी ही लम्बी है जितनी चारित्रिक पतन की। ऐसी स्थिति में विषाक्त आहार, अन्य दुर्घटनाएं व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से भी सुनने को मिलती हैं जिसकी तत्काल चिकित्सा व्यवस्था न होने पर कितने ही निरीह, निर्दोष व्यक्ति काल के गाल में समा जाते हैं।

विषाक्तता का निदान—चिकित्सक को रोगी के पास पहुँचते ही रोगी या उसके रिश्तेदारों से रोगोत्पत्ति का इतिहास पूछना चाहिए तथा रोगी के चारों ओर की चीजों पर दृष्टि डालनी चाहिए। रोगी के पास रखा गिलास या अन्य पात्र पुड़िया, औषधि, शीशी को अपने नियन्त्रण में ले लेना चाहिए। रोगी के मुख पर नाक लगाकर सूंघने से विष की गन्ध का व शरीर पर प्रकट चिन्हों द्वारा रोगी किस विष से पीड़ित है रोगी की अवस्थानुसार अनुमान लगाया जा सकता है।

विष का अनुमान—

१. तत्काल मृत्यु—पोटेसियम सायनाइड, हाइड्रोसियानिक, अमोनिया, आक्जेसिक एसिड आदि—

२. मूर्छा-अवसाद-संन्यास—अफीम मार्फिया, क्लोरोफार्म, कपूर, क्लोरल हाइड्रेट आदि।

३. प्रलाप—भांग, धतूरा, खुरासानी अजवायन, बेलाडोना, कपूर, शराब आदि।

४. वमन—संखिया, वत्सनाभ, अमोनिया, डिजीटेलिस, फास्फोरस आदि।

५. मुख सफेद होना—कार्बोलिक एसिड, रस कपूर, दाहक अम्ल और क्षार आदि।

६. मुख का नीला होना—ऐनिलीन और ऐन्टी फेब्रिन आदि से नीला मुख हो जाता है।

७. पुतलियों का सिकुड़ना—अफीम, क्लोरल हाइड्रेट, कार्बोलिक एसिड, फाईसोस्टिगमीन आदि।

८. पुतलियों का फैलना—धतूरा बेलाडोना (प्रथमावस्था) अफीम, वत्सनाभ (अन्तिमावस्था) मद्य आदि।

९. त्वचा शुष्क—धतूरा, बेलाडोना, खुरासानी अजवायन, आदि।

१०. त्वचा आर्द्र—अफीम, वत्सनाभ, मद्य, नीलांजन, तमाल पत्र आदि।

११. पक्षाघात—वत्सनाभ, संखिया, नाग (सीसा), कोनियम आदि।

१२. धनुर्वात की तरह आक्षेप—कुचला, संखिया, फेनिलांजन, स्ट्रिक्नीन आदि।

१३. हृदयावसाद—तीव्र, अम्ल, क्षार, वत्सनाभ, संखिया तथा बहुत से विषों की अन्तिमावस्था।

विष चिकित्सा के सिद्धान्त—

विषाक्त पुरुष के विष को नष्ट करना ही विष चिकित्सा का उद्देश्य होता है एतदर्थ निम्नलिखित सिद्धान्तानुसार विष निर्हरण कर विषाक्त रोगी की चिकित्सा की जाती है—

(१) अशोषित विष को शरीर से बाहर निकालना (२) शरीर के संस्थानों में शोषित हुए विष को बाहर निकालना (३) प्रतिविषों का प्रयोग एवं (४) लाक्षणिक चिकित्सा।

अशोषित विष को बाहर निकालना—

निम्न विधियां प्रयुक्त होती हैं—(१) आमाशय प्रक्षालन (२) वमन कराना (३) अन्य क्रियायें।

१. आमाशय प्रक्षालन—

यदि रोगी ने विष सेवन मुख के द्वारा किया है इस

बात का पता लगाने पर शीघ्र ही आमाशय प्रक्षालन करना चाहिये। यन्त्र प्रक्षालन नलिका (Stomach Tube), मुख विषकारक यन्त्र (Mouth gag) लीये।

प्रयोग विधि—आमाशय प्रक्षालन नलिका का व्यास आध इन्च और लम्बाई ५ फीट होनी चाहिये तथा इसके एक सिरे से २० इन्च की दूरी पर एक निशान लगा देना चाहिये। २० इन्च तक लगभग जाने पर वह आमाशय में पहुँच जाती है। चित्र में दिखाई विधि के अनुसार स्थिति में रोगी को लम्बे टेबुल पर अधोमुख लिटाकर उसका मुंह चित्रानुसार बाहर निकाल कर रोगी के मुंह में यदि नकली दांत हों तो उन्हें निकाल कर मुख में विस्फारक यन्त्र (Mouth gag) इस प्रकार लगावें कि मुख खुला रहे। अब आमाशय नलिका के सिरे पर स्निग्ध पदार्थ जैसे ग्लीसरीन, नवनीत, घृत तैल व लिक्विड पैराफीन आदि चुपड़कर मुख के द्वारा अंगुलियों के सहारे आमाशय में प्रविष्ट करना चाहिये और ऐसा करते समय जिह्वा को बाहर की ओर कुछ खींच लेना

विष रोगी में आमाशय प्रक्षालन की सही विधि

चाहिए। तब २० के निशान तक नलिका का भाग अन्दर प्रविष्ट हो जाये। नलिका के दूसरे सिरे को सिर से कुछ ऊंचा उठाकर उस पर एक कीप (Funnel) लगा कर सर्व प्रथम उष्ण जल व पोटाशियम परमेगनेट का घोल फनेल में डालना चाहिए। लगभग १० औंस तक पानी डाला जा सकता है या जब फनेल ऊपर तक भर जाय अर्थात उसमें और अधिक द्रव न भरा जासके तब उस फनेल को खोल दें और नलिका को नीचे रखी एनामेल बालटी व टब में रख दें तो साइफन के सिद्धान्तानुसार जल स्वयं आमाशय से बाहर निकल आवेगा। इसी तरह १०-१० औंस जल २-३ बार डालकर निकालें। जब साफ जल आने लगे तो आमाशय का प्रक्षालन हुआ समझें।

आमाशय प्रक्षालन निषेध—निम्न अवस्थाओं में आमाशय प्रक्षालन नहीं करना चाहिए—

१. तीव्र अम्ल एवं क्षार—विषों के भक्षण किये जाने पर आमाशय का प्रक्षालन कदापि न करना चाहिये क्योंकि इसमें आमाशय अत्यन्त मृदु होजाने के कारण उसमें छिद्र हो जाने का भय रहता है।

२. यदि रोगी ने विष सेवन से पूर्व आहार किया हो और होश में हो तो पहले वमन कराना चाहिए। फिर आमाशय प्रक्षालन करना चाहिए।

विशेष—यदि समय पर Stomach Pump न मिल सके तो एक रबर की नली (Gauge ३०) को गले में डालकर रोगी को उसे निगलने के लिए कहें धीरे-२ २० इंच तक आमाशय में पहुँचा दें फिर मुंह नीचे करें तो आमाशय का द्रव बाहर आजायेगा। ऐसा करने के पहले उष्ण जल पिला दें तथा कोई भी साधन उपलब्ध न होता हुआ दिखाई दे तो फिर अधिक देर नहीं करें बल्कि साधन सम्पन्न अस्पताल में रोगी को तुरन्त भिजवा दें।

३. वमनकारक उपाय—यदि रोगी होश में हो और तीव्र दाहक विष की आशंका न हो तो अशोषित विष को बाहर निकालने के लिए रोगी को तुरन्त वमन करावें।

उपचार—वमन कराने के लिये गले में अंगुली डाल कर गुदगुदावें, या घरेलू मक्खी निगलवा दें। इससे तुरन्त वमन हो जायेगी व नमक २ चम्मच १ गिलास गर्म पानी में घोलकर पिलावें। वमन होजायेगी और यदि वमन होने में देर हो रही हो तो अंगुली से गुदगुदायें व अंगूठे को
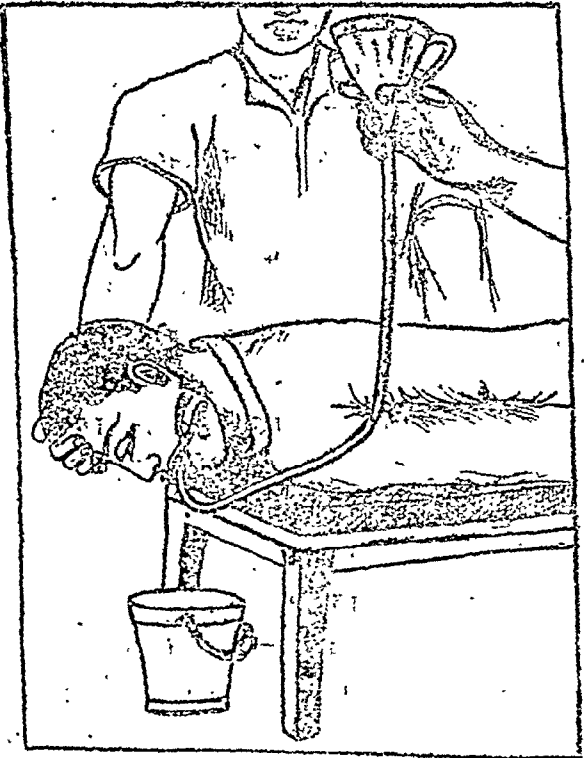
मुंह में डालकर कागलियां पर स्पर्श करावें तुरन्त वमन हो जाएगी।

वामक औषधियां—सैंधव लवण, राई, जिंक सल्फेट मैनफल १ से २ चम्मच तक १-१ गिलास उष्ण जल में घोल कर पिला दें। तुत्थ ३-५ रत्ती, इपिकाकुन्हाना का चूर्ण २०० ग्रेन खिलावें। वच्य मूल के स्वरस में काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पिलाने से व रीठा का घोल पिलाने से भी तत्काल वमन हो जाती है। इसके अतिरिक्त कड़वी तुम्बी, इन्द्रायण, देवदाली, त्रिकटु अर्कमूल का प्रयोग भी वमन कारक है। इनसे भी वमन न हो तो एपोमार्फिन का सूचीवेध दें।

विरेचन—संखिया खाया गया हो तो वमन के बाद १-२ औंस एरण्ड तैल पिलावें। इससे शेष दोष भी दस्त द्वारा निकल जावेगा। मैगनेशियम सल्फेट जल में घोल कर पिलावें। पञ्चसकार चूर्ण दें व तीव्र विरेचन कराना अभीष्ट हो तो नाराच रस, इच्छाभेदी रस का प्रयोग करना चाहिए।

प्रति विष का प्रयोग—

ये मुख्यत: ३ प्रकार के होते हैं—

(१) यान्त्रिक विष—शीशा, कांच लोहा आदि का महीन चूर्ण कर हत्या के उद्देश्य से शत्रुता में दूध या पेय जल व खाद्य पदार्थ खिला दिया जाता है तो अन्ननलिका, आमाशय आदि की श्लैष्मिक कला को बुरी तरह काट देता है जिससे उसमें से रक्तस्राव होता है, दर्द होता है। इस दशा में वसा, तैल, घी, अण्डे की सफेदी आदि स्निग्ध पदार्थ का मुख द्वारा तत्काल प्रयोग करें तो ये वहां की श्लैष्मिक कला पर आवरण की तरह चढ़ जाते हैं तथा उसके क्षत होने से रक्षा करते हैं जिससे कांच, शीशा आदि की यान्त्रिक विष क्रिया नहीं हो पाती। वानस्पतिक व खनिज विषों को आमाशय में निष्क्रिय करने के लिए सूक्ष्म कोयले का चूर्ण खिलाया जाता है।

(२) रासायनिक प्रतिविष—यदि अम्लीय पदार्थों का विष के रूप में प्रयोग हुआ है तो क्षारीय पदार्थ और क्षारीय पदार्थों का विष के रूप में प्रयोग हुआ है तो उसके लिये अम्लीय पदार्थ देने से विष का विपाक्त प्रभाव दूर हो जाता है। खनिज अम्लों के लिए मैगनेशिया और कार्बोनेट्स, आक्जैलिकाम्ल के लिए चूना, रस कर्पूर के एलब्यूमिन देना चाहिए। दाहक विषों के लिये नीम्बू का रस अथवा सिरका का प्रयोग किया जाता है।

(३) क्रिया विरुद्ध प्रतिविष—एट्रोपीन विष में मार्फिया, स्ट्रिकनीन के ब्रोमाइड्स, डिजिटेलिस के लिए वात्सनाभ, क्लोरोफार्म के लिए एमाइल नाइट्राइट (सूंघने के द्वारा) प्रतिविष के रूप में देने से पूर्व विष का विपाक्त प्रभाव समाप्त हो जाता है।

(४) दो-तीन विष मिले के भक्षण का प्रतिविष—पिसा हुआ लकड़ी का कोयला १०० ग्राम और मैगनेशियम आक्साइड ५० ग्राम इन्हें एकत्र मिला कर इनका ३-४ माशा लेकर एक पाव जल में पिलावें। जरूरत पड़ने पर पुनः दूसरी मात्रा दें, इससे विषों का नाश होगा।

विरशामक औषधियां—ईसबगोल की भूसी, जैतून तैल, घी, जिलैटिन, मिल्क आफ मैगनेशिया आदि।

लाक्षणिक चिकित्सा—विष निर्हरण के साथ रोगी को लाक्षणिक चिकित्सा भी देनी चाहिये जैसे पीड़ा कम करने के लिये वेदनाहर योग व मार्फिया सूचीवेध, हृदयावसाद में रोगी के ताप को बनाये रखना तथा श्वासावरोध में कृत्रिम श्वसन देना वा आक्सीजन देना चाहिए। शिरा के द्वारा लवणोदक व क्षीणता में ग्लूकोज सलाइन का प्रयोग भी अवस्थानुसार करना चाहिए। चिकित्सक को अपनी प्रत्युत्पन्नमति से रोगी के प्राणों की रक्षा करने का समुचित प्रयास करना चाहिये।

मेथिलेटेड स्पिरिट पीने से दुर्घटना—

कुमतिवश इङ्गलैण्ड और अमेरिका की देखादेखी भारत में भी मेथिलेटेड स्पिरिट पीने का रिवाज बढ़ रहा है। इसे घटिया किस्म की दारू व ठर्रा के साथ मिलाकर भी नशा के लिए पीया जाता है। आत्महत्या के लिए तथा अकस्मात स्पिरिट पीने की अनेक दुर्घटनाएं सुनने में आती हैं तथा ऐसी स्थिति में तत्काल उपचार की आवश्यकता होती है।

लक्षण—मृदु रूप में पीने से यह शराब के समान हल्का नशा करता है पर अधिक मात्रा में पीने पर उग्र रूप में उदर शूल, वमन, प्रलाप, कोमा तथा अन्धापन के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। स्पिरिट पीने के १ घण्टे

के अन्दर ही हृदय की गति मन्द और शिथिल हो जाती है, उबाक व वमन होती है। पसीना अधिक आना, सिर दर्द, चक्कर, सन्निपात जैसा प्रलाप आदि लक्षण होकर रोगी बेहोश हो जाता है।

स्पिरिट में विद्यमान मेथानोल वाला भाग अधिक विषैला होता है जो आक्सीकरण हो जाने के कारण फोर्मिक एसिड बनता है और यह विषाक्त लक्षण उत्पन्न करता है। रोगी की मूत्र परीक्षा करने से फोर्मिक एसिड का स्राव होता है। यदि यथाशीघ्र उपयुक्त चिकित्सा न की जाय तो रोगी का प्राणान्त हो जाता है।

मिथिलेटेड स्पिरिट जन्य अन्धता—स्पिरिट पीने से अन्धे हो जाने के समाचार कई बार अखबारों में पढ़ने को मिलते हैं। घटिया प्रकार की शराब बनाने वाले शराब में इसका मिश्रण करने लगे हैं। पहले मेथिलेटेड स्पिरिट साफ पानी जैसे स्वच्छ बाजार में बिका करती थी किन्तु आजकल हरे व नीले रङ्ग की आती है जो विषैली है ताकि मृत्यु भय से इसे न पीया जावे। स्पिरिट पीने के १ घण्टे के बाद दृष्टि बन्द होने लगती है और कनीनिका फैल जाती है तथा प्रकाश से भी आकुंचित नहीं होती नेत्र गोलक पर दबाने पर या चलाने पर गहराई में पीड़ा होती है। कुछ समय बाद बहुत कम मात्रा में दृष्टि में सुधार लगता है किंतु धीरे-धीरे दृष्टि कम होने लगती है और १-२ सप्ताह में जीवन भर के लिए अन्धता आ जाती है। उक्त सब चिन्ह नेत्र गोलक के पिछले भाग में रही हुई दर्शन नाड़ी के जल जाने के कारण उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा—अक्सर स्पिरिट पीने वाले रोगी चिकित्सा में आने पर भी सही कारण नहीं बताते अतः यदि सही कारण शीघ्र ही ज्ञात हो जाय तो तत्काल वामक औषधियां देकर व आमाशय नलिका द्वारा आमाशय प्रक्षालन कर के स्पिरिट निकाल देनी चाहिए। फिर स्वेदन विरेचन और मूत्रल औषधियां देनी चाहिए जिससे रोगी का शरीर शोधन हो जाता है। संजीवनी वटी और श्वेतपर्पटी का प्रयोग उत्तम है। रोगी को पूर्ण विश्राम दें।

मिट्टी का तैल व पेट्रोल पीने से दुर्घटना—

मिट्टी का तैल पीने की दुर्घटना प्रायः बच्चों में अधिक दिखाई देती है कई स्त्रियां भी आत्महत्या के उद्देश्य से इसे पी लेती हैं। आत्म हत्या और परहत्या के लिए भी अनेक बार मिट्टी का तैल या पेट्रोल पीने की दुर्घटनाओं के सम्वाद मिलते हैं।

लक्षण—मिट्टी का तैल व पेट्रोल पीने से मुंह, गला तथा आमाशय में तीव्र दाह युक्त वेदना होती है। प्रश्वास में तैल व पेट्रोल की गन्ध आती है प्यास अधिक लगती शिरोभ्रम (Giddiness) तथा शिरोगौरव उत्पन्न हो जाता है। मुख का वर्ण पीत तथा नील वर्ण का हो जाता है। वमन में तैल व पेट्रोल की गन्ध आती है। पीने के बाद आन्त्र से शोषित विष का प्रभाव विशेष नाड़ी संस्थान पर भी होता है। पीते समय, वमन करते समय या चिकित्सा द्वारा आमाशय प्रक्षालन करते समय मिट्टी के तैल का कुछ अंश श्वास नलिकाओं में जाकर क्षोभ तथा शोथ उत्पन्न कर देता है जिससे श्वास नलिकाओं के अन्तिम भागों की दीवाल फटकर विदीर्ण हो जाती है जिससे तैल का प्रभाव फुफ्फुसों पर भी होने लगता है। विशेषतः बच्चों में फुफ्फुसावरण शोथ, हृदयावरण शोथ, ब्रांकोन्यूमोनिया इत्यादि उपद्रव तथा युवकों में तैल पीने से वाष्प द्वारा शिरःशूल, हृल्लास, चक्कर आना, चित्त विभ्रम, थकावट तन्द्रा मूर्च्छा इत्यादि उपद्रव होते हैं।

रोगी को तन्द्रा मालूम होती है तथा मूर्छा उत्पन्न हो जाती है और अन्त में हृदयावसाद या श्वासावरोध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है। घातक मात्रा १०० से २०० मिलि. तथा घातक काल ७ से १० घण्टे का है।

चिकित्सा—सर्व प्रथम वमन कारक औषधियों द्वारा वमन करानी चाहिए।

वमन कारक औषधियां-सैन्धव लवण १० ग्राम में उष्णोदक २५० मिलि. या राई चूर्ण, मैनफल चूर्ण को उष्णोदक से देने से वमन हो जाती है। फिर उष्णोदक से आमाशय प्रक्षालन करना चाहिये।

पेट्रोल पीने से उत्पन्न विष में आमाशय प्रक्षालन करना हो तो पानी में थोड़ा सोडा बाई कार्ब डालकर प्रक्षालन कराना चाहिए। फिर जैतून का तैल आमाशय में छोड़ना चाहिए।

—शेषांश पृष्ठ १५१ पर देखें।

सोमल विष के लक्षण एवं तात्कालिक चिकित्सा

डा० चारुचन्द्र पाठक जी.ए.एम.एस., एच.पी.ए., (जामनगर)
आयुर्वेद महाविद्यालय (संस्कृत विश्वविद्यालय), वाराणसी (उ०प्र०)

—:o:—

संखिया—

संस्कृत–गौरी पाषाण, हिन्दी–संखिया, अंग्रेजी–**Arsenic.**

यह प्रकृति में प्रायः धातु के रूप में पाया जाता है किन्तु यह शुद्ध एवं स्वतंत्र धातु के रूप में बहुत कम ही प्राप्त होता है। यह अधिकतर यौगिक के रूप में प्राप्त होता है। यह जल में अविलेय है।

इसे ६३३°c तापमान पर गर्म करने से द्रव के रूप में हुये बिना सीधे वाष्प के रूप में परिणत हो जाता है। इसका धूम वायु मण्डल की आक्सीजन के साथ संयुक्त होकर आर्सेनिक ट्राई आक्साइड बनाता है। आर्सेनिक के आक्साइड दो प्रकार के होते हैं आर्सेनिक ट्राइ आक्साइड और आर्सेनिक पेन्टा आक्साइड। आर्सेनिक ट्राई आक्साइड आर्सेनियस अम्ल बनता है जिसे आर्सेनाइट कहते हैं। आर्सेनिक पेन्टोआक्साइड से आर्सेनिक अम्ल बनता है, जिसके लवण आर्सेनेट कहलाते हैं।

बाजार में आर्सेनिक (संखिया) जो श्वेत डली के रूप में प्राप्त होता है यह आर्सेनिक आक्साइड है। यह श्वेत स्फटकीय के रूप में होता है आर्सेनियस आक्साइड रंगरहित पारदर्शक और कांच के सदृश चमकदार होते हैं। वायु के सम्पर्क में अपारदर्शक व श्वेत हो जाता है।

आर्सेनिक का रासायनिक प्रयोगशाला एवं विभिन्न उद्योगों में प्रयोग होताहै। इससे विभिन्न प्रकार के धातुओं की विशोधन की क्रिया तथा रसायनिक अन्य द्रव्यों के रूप में प्रयोग किया जाता है। औषधि के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है। विसंक्रमण पदार्थ भी इससे बनाये जाते हैं। चूहा नाशक और अन्य हानिकारक जीवों को मारने के लिये इससे विभिन्न प्रकार के योग बनाये जाते हैं। उद्योग में रङ्ग को पक्का करने के लिए, चमड़ा के उद्योग में तथा फोटोग्राफी के कामों में इसका उपयोग किया जाता है।

अपराधी इसका प्रयोग परहत्या के लिए करते हैं। भारतवर्ष में परहत्या तथा आत्महत्या दोनों के लिये अन्य विषों की अपेक्षा इसका प्रयोग अधिक होता है। यदि इसके कारणों पर विचार करें तो निम्नलिखित कारण प्रमुख हैं—

१. यह सुगमता से शुद्ध रूप में या विभिन्न योगों के रूप में प्राप्त हो जाता है।

२. इसमें कोई विशिष्ट स्वाद या गन्ध नहीं होता, अतः अपराधी को खाद्य या पेय वस्तुओं में मिलाकर प्रयोग करने में अत्यन्त सुविधा होती है।

३. यह अति उग्र विष है इसलिये अल्प मात्रा में ही प्रयोग करने पर उद्देश्यपूर्ति होती है।

४. निश्चित परिणाम–इसका उपयोग होने पर मृत्यु का परिणाम प्रायः निश्चित ही होता है।

यह तीव्र क्षोभक विष है, यह आमाशय को अत्यधिक संक्षुब्ध करता है जिसके परिणामस्वरूप अतिसार तथा वमन के लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसलिये इसके लक्षण की सादृश्यता विशूचिका से है किन्तु ध्यान देने पर विशूचिका से भिन्न भी है।

संखिया के परिणामतः लक्षण व विशूचिका लक्षणों में अन्तर—

संखिया	विशूचिका
१. इसमें मिश्रित (संखिया सहित) खाद्य या पेय वस्तु के ग्रहण करने वाले ही इससे (वमन व अतिसार) प्रभावित होते हैं।	१. इसमें एक साथ ग्राम, नगर, मोहल्ले में कई व्यक्ति प्रभावित होते हैं।

संखिया	विसूचिका
२. रोगी को प्रथम वमन होता है, बाद में अतिसार उत्पन्न होता है।	२. इसमें प्रथम रोगी को अतिसार उत्पन्न होता है बाद में वमन उत्पन्न होता है।
३. इसमें रोगी को वमन रक्तमिश्रित होता है।	३. इसमें रोगी को वमन एकदम मांड की तरह श्लेष्मा व पित्त के युक्त होता है, किन्तु इसमें रक्त नहीं होता।
४. इसमें रोगी को पीड़ा होती है और आवाज विकृत होने लगती है।	४. इसमें गले में कोई विशेष पीड़ा नहीं होती है। प्रायः वमन के बाद ही पीड़ा होती है।
५. इसमें रोगी के वमन और अतिसार दोनों के साथ रक्त की प्रवृत्ति होती है।	५. इसमें प्रायः रक्त की प्रवृत्ति वमन व अतिसार के साथ नहीं होती।
६. रासायनिक विश्लेषण करने पर इसके वमन और मल में आर्सेनिक कण मिलते हैं।	६. इसमें विश्लेषण करने पर आर्सेनिक कण नहीं मिलेंगे किन्तु विसूचिका के जीवाणु मिलेंगे।

विष प्रभाव—

इसके (संखिया) विष प्रभाव के होते हैं। तीव्र एवं मन्द। उपर्युक्त जो विभेदक लक्षण दिये गये हैं वे तीव्र हैं। तीव्र लक्षण उन्हीं लोगों में उत्पन्न होता है जो खाद्य या पेय वस्तु के साथ अधिक मात्रा में इस विष का भक्षण कर लिये हैं। तीव्र लक्षणों की चिकित्सा तत्काल समुचित रूप में न होने पर मृत्यु हो जाती है।

तीव्र लक्षण—

एक सामान्य युवा व्यक्ति में ५ से १० ग्राम की मात्रा में इस विष का सेवन होने पर इसके तत्काल तीव्र लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। १२ से २४ घंटे के अन्तर्गत यदि इनकी समुचित चिकित्सा नहीं हुई तो रोगी की मृत्यु हो जाती है। विष खाने के बाद ही रोगी को कंठ और मुँह में जलन महसूस होने लगती है। इसके बाद वमन के वेग आते हैं। गल एवं आमाशय में तीव्र दाह एवं जलन होती है। बड़े वेग के साथ वमन होता है। वमन हरा नीला एवं श्लेष्मायुक्त होता है। एक दो वेग के बाद वमित द्रव्य में रक्त भी आने लगता है और रक्त की मात्रा क्रमशः बढ़ती जाती है। रोगी दाह तृष्णा से पीड़ित रहता है। इसके साथ ही अतिसार भी तीव्र वेग से उत्पन्न होता है। मल के साथ भी रक्त की प्रवृत्ति होती है, मल त्याग के समय तीव्र शूल एवं कुन्थन भी होता है। मल अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त भूरे एवं काले रङ्ग का होता है। रक्त प्रवृत्ति के कारण मल रक्त वर्ण होता है। रोगी अत्यन्त बेचैन रहता है। भ्रम मूर्च्छा तृष्णा इन लक्षणों से वह पीड़ित रहता है आंखें धस जाती हैं तथा मुख पीला या नीलिमा युक्त हो जाता है। प्रारम्भ में हृदय की गति बढ़ जाती है। अधिक मल त्याग एवं वमन होने के कारण शरीर में द्रव हीनता (डिहाइड्रेशन) की स्थिति हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप हृदय गति मन्द एवं न्यून हो जाती है। और अन्त में हृदयवसाद के कारण मृत्यु होती है।

मन्द लक्षण—प्रायः उन्हीं लोगों में उत्पन्न होता है जो लोग विज्ञान के प्रयोगशाला या ऐसे उद्योग जहां आर्सेनिक का काम होता है उनमें काम करने वाले को यह विष शरीर में क्रमशः संचित होता रहता है और कालान्तर में इसके मन्द लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसके प्रमुख लक्षण पाचन की विकृति, रक्तविकृति तथा स्नायु एवं तंत्रिका सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं। शिरःशूल, मिचली वमन तथा मूत्र में रक्तप्रवृत्ति तृष्णाधिक्य आंत्र-शोथ ये विशिष्ट लक्षण इसके होते हैं।

चिकित्सा—

तीव्र लक्षण से युक्त रोगी की तात्कालिक चिकित्सा अत्यन्त आवश्यक है। समय पर समुचित चिकित्सा न होने पर रोगी की मृत्यु हो जाती है। विष चिकित्सा के चार सिद्धान्त हैं—

(क) अवशोषित विष को निकालना

(ख) शोषित विष को निकालना

(ग) प्रतिविष का प्रयोग।

(घ) लाक्षणिक चिकित्सा

अवशोषित विष अर्थात जो रोगी तत्क्षण आहार या

पेय द्रव्य के साथ विष का सेवन किया है वह पदार्थ आमाशय में ही है शरीर में उसका शोषण नहीं हुआ है तो ऐसी स्थिति में तत्क्षण वमन कराना चाहिये।

वमन के लिये मदन फल, राई, फिटकिरी ५-५ ग्राम, इनमें से जो भी द्रव्य उपलब्ध हो, किसी एक का जलीय घोल पिलाना चाहिये और वमन कराने की चेष्टा करानी चाहिये, लवण का जलीय घोल पिलाने से भी वमन होता है। ध्यान रहे कि इस विष के प्रभाव से भी अत्यधिक वमन होता है। यदि वमन के वेग रोगी को आ चुके हैं और वमित द्रव्य में रक्त की प्रवृत्ति भी हुई है तो ऐसी स्थिति में अधिक वमन कराना उचित है। अतः रोगी को पोटेशियम परमैंगनेट का घोल अल्प मात्रा में पिलाकर एक दो बार वमन करा देना चाहिये। यदि रोगी को वमन नहीं हुआ है और रोगी वमन करने में असमर्थ है, तो ऐसी स्थिति में पोटेशियम परमैंगनेट घोल से आमाशय को चार पांच बार प्रक्षालन कराना चाहिये।

(ख) शोषित विष को निकालना, रोगी की स्थिति जब सुधर जाय और रोगी स्वयं ही विरेचन एवं वमन क्रिया करने में समर्थवान हो तब उसे मूत्रल, विरेचन एव वामक-औषधियों का प्रयोग क्रमशः स्थिति को देखते हुये करें।

(ग) प्रतिविष का प्रयोग—इसका मुख्य उद्देश्य विष को निष्क्रिय करना है। इसके लिये फेरिक आक्साइड आधा औंस की मात्रा में लेकर २० या ३० औंस जल में घोलकर पिलाना चाहिए। यदि यह उपलब्ध न हो तो सोडियम थायोसल्फेट ७॥ ग्रेन की मात्रा में अन्तः शिरा सूचीवेध करने पर यह विष निष्क्रिय हो जाता है। इसका प्रमुख प्रतिविष बी. ए. एल. (ब्रिटिश एण्टी लिवोसाइट) है। इसका आधा ग्रेन से १ ग्रेन की मात्रा में शिरामार्ग द्वारा सूचीवेध करने पर यह विष को निष्क्रिय कर देता है। यदि उपर्युक्त औषधि न मिले तो रोगी को दूध पानी मिलाकर आमाशय प्रक्षालन करायें और तत्पश्चात लकड़ी के कोयले का चूर्ण (कोलोसाइड मैग्नेशिया) को मधु के साथ चटावें और ऊपर से दुग्ध या दधि का जलीय घोल पिलावें। अण्डे की सफेदी भी कोयले के चूर्ण के साथ देना लाभदायक है। घृत का प्रयोग भी अल्प मात्रा में स्थिति के अनुसार करना आवश्यक है।

(घ) लाक्षणिक चिकित्सा—यह भी अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि उत्पन्न लक्षणों के शमन केलिये तत्काल उपाय न हो तो ऐसी स्थिति में रोगी की जान चली जाती है। इसमें सर्व प्रथम लक्षण वमन अतिसार को क्रमशः रोकने का उपाय करना चाहिये। किन्तु यह ध्यान रहे कि यदि रोगी को प्रारम्भ में ही ये वेग उत्पन्न हुये हों तो इसको रोकना नहीं चाहिये, क्योंकि इससे विष शरीर से बाहर निकलता है। किन्तु यदि वमन अतिसार के कारण रोगी की स्थिति अति गम्भीर हो गयी हो तो तत्काल इसे रोकने की चिकित्सा करनी चाहिए। रोगी में द्रव हीनता की स्थिति होती है अतः इसके लिए नारमल सैलाइन आवश्यकतानुसार शिरा द्वारा अन्तः क्षेप करें, रोगी दाह तृष्णा से पीड़ित रहता है। इसके लिये ग्लूकोज को जल में घोल कर अल्पमात्रा में देते रहें। रोगी को तीव्र वेदना, अनिद्रा होती है। इसके लिये मार्फिया का इन्जेक्शन देना चाहिए। किन्तु मार्फिया देने से पहले स्थिति पर विचार भी करना आवश्यक है। यदि रोगी हृद्दौर्बल्य से पीड़ित है तो ऐसी स्थिति में मार्फिया का उपयोग विवेक पूर्ण करना चाहिए। हृदय गति को बढ़ाने के लिये कोरामीन का अन्तःशिरा द्वारा प्रयोग करना चाहिय। इसके साथ ही रोगी को पूर्ण विश्राम दें। शरीर ढका रहना चाहिये। यदि शीतांग हाथ-पांव में रहे तो गरम पानी की बोतलों से सेंक करना चाहिये। शक्तिवर्धन के लिये द्रव के रूप में ही कोई पेय दुग्ध ग्लूकोज का जलीय घोल दें।

चिकित्सक को यह ध्यान देना चाहिये कि कभी-२ रोगी का अभिभावक या सम्बन्धी धोखा देने का चेष्टा करता है। विष पीड़ित रोगी को वह विसूचिका का रोगी बताने की चेष्टा करते हैं। ऐसी स्थिति में लक्षणों को देखते हुए वास्तविकता को जानने की कोशिश करना चाहिये। यदि विष पीड़ित रोगी है, तो प्राथमिक उपचार करने के बाद उसे राजकीय अस्पताल में भेज देना चाहिये तथा उसकी सूचना पुलिस को भी दे देनी चाहिये। यह चिकित्सक का संवैधानिक कर्तव्य है। ऐसा नहीं करने पर यदि रोगी मृत्यु हो जाती है चिकित्सक भी अपराधी समझा जाता है।

सर्प

सर्प मनुष्य का अदृश्य शत्रु है। इसके काटने से प्रति वर्ष हजारों व्यक्ति मरते हैं। सर्प अचानक ही सोते, जागते, चलते-फिरते, घर और जङ्गल में मनुष्य को काट खाता है। सर्पों की अनेक जातियां होती हैं जिनको कोल्यूब्राइन (Colubrine) और वाइपराइन (Viperine) कहते हैं।

विषैले साँप के काटने के लक्षण—

(क) कोल्यूब्राइन जाति के सर्प विष के लक्षण—इस वर्ग में कोब्रा, करैत (Krait) आदि सर्प सम्मिलित हैं। कोब्रा सांप के काटने पर कुछ ही मिनटों में स्थानीय लक्षण प्रारम्भ हो जाते हैं। दंश स्थान पर जलन या झुनझुनाहट, वेदना, शोथ, लालिमा, सूजन और स्पर्शासहता होती है। दंश स्थान पर दो दांतों के चुभने के निशान प्रायः स्पष्ट होते हैं। लगभग १५ से २५ मिनट में सार्वदैहिक सन्निका लक्षण प्रारम्भ हो जाते हैं। रोगी शिरोघूर्णन, सुस्ती, निद्रा और मादकता का अनुभव करता है। पेशियां कार्य करने में असमर्थ होने लगती हैं और रोगी की चलने या खड़े रहने की सामर्थ्य नष्ट होने लगती है। एक घण्टे की अवधि के अन्दर उसको अत्यधिक लालास्राव होता है तथा मिचली और वमन होते हैं। पेशियों की असमर्थता बढ़ती जाती है और अङ्गघात होता है। पहले निचले अङ्ग प्रभावित होते हैं फिर यह प्रभाव ऊपर को बढ़ता जाता है। सिर लटक जाता है। धीरे-धीरे ओठ, जीभ और गले की पेशियां प्रभावित होती हैं जिसके परिणामस्वरूप रोगी के लिये निगलना, बोलना कठिन हो जाता है। लगभग दो घण्टे में सारे शरीर की पेशियों का अङ्गघात हो जाता है। श्वसन संस्थान की पेशियों में अङ्गघात के कारण श्वसन धीमा और कष्टमय हो जाता है परन्तु हृदय की गति अधिक तीव्र हो जाती है। अन्त में श्वास रुककर रोगी की मृत्यु हो जाती है। श्वास रुकने के कुछ मिनट पश्चात् तक हृदय की गति बनी रहती है और अन्त में हृदय भी रुक जाता है। यद्यपि मृत्यु के समय चेतना बनी रहती है, तो भी रोगी बोल नहीं पाता। यदि रोगी अच्छा हो जाता है तो दंश स्थान पर कौशिक ऊतकों का परिगलन होता है। कुछ समय बाद स्लफ पृथक होकर गहरा व्रण बनता है।

करैत सांप के काटने पर इन लक्षणों के अतिरिक्त तीव्र उदरशूल एवं आक्षेप होते हैं।

(ख) वाइपराइन जाति के सर्प विष के लक्षण—इस वर्ग में फुरसा (Echis), रसेल्स वाइपर आदि सर्प सम्मिलित हैं। इनके काटने के पश्चात् तुरन्त ही या पन्द्रह मिनट के भीतर काटे हुए स्थान पर और उसके चारों ओर शोथ उत्पन्न हो जाता है, तीव्र पीड़ा होती है तथा रक्तमिश्रित स्राव निकलता है। दंशित स्थानों के चारों ओर की त्वचा में रक्तस्राव होने के कारण त्वचा काली हो जाती है। लगभग १५ मिनट बाद सार्वदैहिक लक्षण प्रारम्भ हो जाते हैं। मिचली और वमन होता है। इसके बाद निपात के लक्षण प्रारम्भ होते हैं। रोगी को अत्यधिक बेचैनी होती है, रक्त भार कम हो जाता है। चर्म पर शीतल स्वेद आने लगता है। नाड़ी दुर्बल एवं मन्द हो जाती है, उसको प्रतीत करना कठिन होता है। पुतलियां विस्फारित और प्रकाश के प्रति असंवेदी हो जाती हैं। १ घण्टे के अन्दर रोगी अचेत हो जाता है।

यदि रोगी की अवस्था सुधरती है तो मलाशय की श्लैष्मिककला से रक्तस्राव तथा अन्य शारीरिक छिद्रों से रक्तस्राव होता है। स्थानिक लक्षण अधिक तीव्र हो जाते

हैं। दंशित स्थान पर पूयता, मृतोतकता, कोथ, घातक शोफ या टिटेनस हो जाते है। सेप्टिसीमिया होकर मृत्यु हो सकती है।

चिकित्सा—

सर्प विष की चिकित्सा को चार भागों में बांटा जा सकता है—(क) प्राथमिक चिकित्सा (ख) स्थानिक चिकित्सा (ग) प्रतिसर्पविष चिकित्सा (घ) सहायक चिकित्सा।

(क) प्राथमिक चिकित्सा—यदि सांप ने हाथों या पैरों में काटा हो तो दंश स्थान से कुछ ऊपर रबर ट्यूब, पट्टी या रूमाल से एक बन्धन कसकर बाँध दीजिये। यह बन्धन इतना कसा होना चाहिये कि ऊपर की ओर रक्त का परिसंचरण रुक जाये। यह बन्धन आधे घण्टे से अधिक नहीं रहना चाहिये और प्रत्येक १० मिनट बाद कुछ सेकण्डों के लिये बन्धन को ढीला कर देना चाहिये। शरीर के जिस भाग पर सर्प दंश हुआ है उसे हिलाना नहीं चाहिये।

(ख) स्थानिक चिकित्सा—बन्धन बांध चुकने के बाद दंश स्थान तथा उसके चारों ओर की त्वचा जल से भलीभांति धो पोंछ दें। फिर दंश स्थान पर एक तेज चाकू अथवा ब्लेड से १/२ इन्च लम्बे और १/४ इन्च गहरे एक दूसरे को काटते हुये कई चीरा लगावे और विषैले रक्त को बाहर निकलने दे। यदि इससे रक्त नही निकले तो उस स्थान पर ब्रेस्ट पम्प या मुँह से चूसकर कुछ रक्त निकाल दें। इसके पश्चात् दंश स्थान पर विष को उदासीन करने के लिये उसे पोटाशियम परमैंगनेट के सतीव घोल से धोयें। यदि सम्भव हो तो १५ ग्रेन गोल्ड क्लोराइड को न्यूनतम जल की मात्रा में घोलकर दंश स्थान पर इन्जेक्ट किया जा सकता है।

(ग) प्रतिसर्प विष चिकित्सा—उपरोक्त प्राथमिक उपायों के साथ ही सांप के काटने पर यथासंभव शीघ्र ही बहुसंयोजक (Polyvalent) प्रतिसर्पविष को नार्मल सेलाइन में १:१० के अनुपात मे घोलकर २० मि.लि. मात्रा में धीमे-धीमे अन्तःशिरा इन्जेक्शन द्वारा देते हैं। इस मात्रा को दो घण्टे बाद दोहराना चाहिये। निपात के लक्षण प्रकट होने पर इस मात्रा को पहले भी दोहराया जा सकता है। इसके बाद उग्र अवस्थाओं में प्रति ६ घण्टे बाद इतनी ही मात्रा तब तक देते रहना चाहिये, जब तक कि विष लक्षण पूर्णतया समाप्त न हो जायें। वाइपर सांपों के काटने पर स्थानिक स्वजन और कोथ को रोकने के लिये दंश स्थान के चारों ओर प्रतिसर्पविष अन्तःस्यन्दित करना चाहिये। प्रतिसर्प विष का अन्तःशिरा इन्जेक्शन ही अधिक प्रभावशाली होता है परन्तु प्रशिक्षित चिकित्सक के उपलब्ध न होने पर इसको ४० से ६० मिली. की मात्रा में अन्तस्त्वक् या अन्त.पेशी भी इन्जेक्ट किया जा सकता है। यदि बहुसंयोजक प्रतिसर्पविष न मिल सके तो एण्टिवेनिन ५० से १०० मिली. रोगी की शिरा में दें। वह एण्टिवेनिन जिस प्रकार के सर्प ने काटा हो, उसी के अनुसार (सर्प पहिचान कर) ही प्रयुक्त करना चाहिये। जैसे कोबा सांप के काटे को 'कोब्रा एण्टिवेनिन' ही प्रयुक्त करना चाहिए।

(घ) सहायक चिकित्सा—सर्प काटे व्यक्ति के शरीर में अनेक उपद्रव भी हो जाया करते हैं। अतः उपरोक्त विशिष्ट चिकित्सा के साथ रोगी को आराम पहुँचाने के लिये विशेष लक्षणों के उपशमन का भी प्रबन्ध करना चाहिये। रसैल्स वाइपर और फुरसा सांपों के काटने पर अत्यधिक बेचैनी होती है और दंश स्थान पर तीव्र पीड़ा होती है। इसको दूर करने के लिये ऐस्पिरीन या मार्फीन देना चाहिये। निपात होने पर उद्दीपक औषध-ऐड्रिनलीन क्लोराइड या कोरामीन आदि देना चाहिये। तीव्र विषाक्तता में बड़ी मात्राओं में नार्मल सेलाइन अकेला या नार एड्रिनलीन के साथ अन्तःशिरा इन्जेक्शन देना चाहिए या रुधिर या प्लाज्मा का आधान करना चाहिए। कोल्यूब्राइन प्रकार के सर्पदंश में श्वसन क्रिया बन्द होती प्रतीत होने पर आक्सीजन दें तथा कृत्रिम श्वसन देने की क्रिया करनी चाहिये। रक्त भार कम हो गया हो तो मेफेन्टीन (Mephentine) का इन्जेक्शन दें। रक्तस्राव का उपद्रव हो तो विटामिन 'के' दें। सर्प विष के कारण उत्पन्न ऐलर्जी के प्रतिकार के लिये स्टेरायड्स दें। रोगी के शरीर की उष्णता की रक्षा करें। गरम पानी की बोतलों द्वारा ताप पहुँचाना चाहिये। रोगी को गरम काफी या चाय दें। टिटनस से बचाव के लिये ए. टी.

एस. १५०० यूनिट का अन्तःपेशी इन्जेक्शन दें। द्वितीयक जीवाणुओं के संक्रमण के प्रतिबन्ध के लिए पेनिसिलीन का इन्जेक्शन देना चाहिए।

श्वान दंश (पागल कुत्ते का काटना)—

पागल कुत्ते के काटने के लक्षण—पागल कुत्ते के काटने के बाद मनुष्यों में दुर्लक्षण २ सप्ताह बाद से २ वर्ष के भीतर कभी भी उत्पन्न हो सकते हैं। सामान्यतया दो सप्ताह पश्चात् दुर्लक्षण प्रारम्भ हो जाते हैं। पागल कुत्ते के काटने से, उत्पन्न लक्षणों की तीन अवस्थाएं होती हैं—

(१) आक्रमणावस्था—दंश स्थान पर लालिमा, जलन, वेदना एवं पीड़नाक्षमता होती है। इन स्थानीय लक्षणों के अतिरिक्त मध्यम स्वरूप का ज्वर, निगलने में कठिनाई, प्रकाश और तेज आवाज का सहन न होना, निद्रानाश, शिरःशूल, बेचैनी, क्षुधानाश, चित्त में उदासीनता, नाड़ी गति की तीव्रता इत्यादि लक्षण दिखाई पड़ते हैं। मस्तिष्क की परम सूक्ष्म वेदनता के कारण अल्पतम उत्तेजना से रोगी अत्यधिक उत्तेजित हो जाते हैं। यह अवस्था २-३ दिन तक रहती है।

(२) उत्तेजना की अवस्था—यह अवस्था २-३ दिनों के बाद आती है। मस्तिष्क की सूक्ष्म वेदनता, बेचैनी एवं ज्वर इस अवस्था में बढ़ जाता है। ज्ञानेन्द्रियों को थोड़ा भी उत्तेजना के कारण का अनुभव होने पर मुख ग्रसनिका एवं स्वरयन्त्र की पेशियों में पीड़ा और उद्वेष्टन का प्रारम्भ होता है। रोगी गले की पीड़ा एवं ऐंठन के कारण मुंह में उत्पन्न लार को भी निगल नहीं सकता, बार-बार थूकता रहता है। शनैः-शनैः ग्रीवा की पेशियों की सूक्ष्म वेदनता अधिक बढ़ जाती है जिससे रोगी के जल को देखने, नाम सुनने या स्मरण मात्र से गले की मांसपेशियों में आक्षेप उत्पन्न होने लगते हैं और रोगी जल से, आक्षेपों की उत्पत्ति के कारण डरने लगता है। इस अवस्था को जलसंत्रास कहते हैं। जल के अतिरिक्त वायु का झोंका, प्रकाश, शब्द आदि किसी की उत्तेजना से इसी प्रकार गले में आक्षेप उत्पन्न होने लगते हैं। कुछ समय बाद गले की पेशियों के अतिरिक्त श्वसन की पेशियों और अन्त में सारे शरीर की पेशियों में आक्षेप होने लगते हैं। प्रारम्भ में तो ये आक्षेप थोड़े समय (१-२ मिनट के लिए) के लिए होते हैं किन्तु बाद में २०-३० मिनट तक बराबर बने रहते हैं। सारे शरीर में आक्षेप होने पर धनुर्वात के समान पेशियों में स्तब्धता, उद्वेष्टन और बाह्यायाम (Opisthotonoz) आदि लक्षण होते हैं। आक्षेपों के कारण रोगी कोई खाने पीने की वस्तु नहीं ले सकता, फलस्वरूप कमजोरी आने लगती है। ग्रीवा की पेशियों में आक्षेपमूलक विकृति होने के कारण कुत्ते के समान भौंकने की ध्वनि रोगी के मुंह से निकलती रहती है। यह अवस्था भी २-३ दिन रहती है।

(३) अंगघात की अवस्था—इस अवस्था में आक्षेप बन्द हो जाते हैं और अंगघात पैदा हो जाता है। सर्वप्रथम अधोहनु की पेशियों का घात होता है। बाद में क्रमशः शाखाओं, श्वसनाङ्गों आदि की पेशियों का अङ्गघात होता है और रोगी की मृत्यु हो जाती है। क्वचित् हृदय का काम रुक जाने से भी मृत्यु हो सकती है।

चिकित्सा—पागल कुत्ते के काटने के बाद आधा घण्टे के अन्दर रोगी चिकित्सा के लिये आ जाने पर कुत्ते के काटने के स्थान को पोटेशियम परमैंगनेट के घोल से धो देना चाहिये। इसके बाद घाव को शुद्ध कार्बोलिक एसिड या नाइट्रिक एसिड से जला देना चाहिये। इस घाव को सी कर बन्द न करें, तीन दिन के बाद सी सकते हैं एवं रोपण करने के उपाय कर सकते हैं, पहले नहीं। स्थानिक चिकित्सा करने के पश्चात् रोगी को एण्टि-रैबिक वैक्सीन २ सी.सी. की मात्रा में लगातार चौदह इन्जेक्शन उदर की पेशियों में किसी अस्पताल में लगवा दें।

जल संत्रास उत्पन्न हो जाने के बाद रोगी के प्राणों को बचाने में कोई चिकित्सा सफल नहीं हो पाती। केवल लाक्षणिक उपचार ही रोगी के कष्ट को कम करने के लिये यथाशक्य किया जाता है। ग्रीवा की मांसपेशियों का आक्षेप, स्तब्धता आदि के शमन के लिये पैरेल्डिहाइड, लार्जेक्टिल आदि औषधियों का व्यवहार आवश्यकतानुसार किया जा सकता है।

वृश्चिक दंश—

शरीरगत विष लक्षण—बिच्छू के डंक चुभाने पर
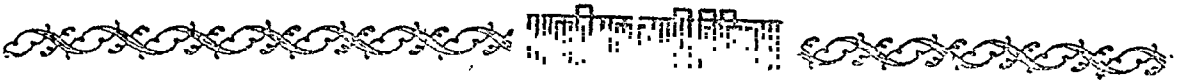
सामान्यतः स्थानिक लक्षण उत्पन्न होते हैं। दंश स्थान पर तुरन्त ही एक लाल घेरा बन जाता है और अति तीव्र दाहक वेदना होती है। किन्तु कुछ बिच्छुओं में विष की मात्रा तीव्र होती है, उनके द्वारा डंक के चुभोने से दंश स्थान से वेदना ऊपर की ओर जाती प्रतीत होती है और स्थानिक लक्षणों के अतिरिक्त चक्कर, पेशियों में निर्बलता, वमन, अतिसार, आक्षेप, मानसिक विक्षोभ आदि सार्वदैहिक लक्षण भी उत्पन्न हो सकते हैं।

वृश्चिक दंश से प्रायः मृत्यु नहीं होती किन्तु विष के अति तीव्र होने पर तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चों में तीव्र फुफ्फुस शोथ होकर मृत्यु हो सकती है।

चिकित्सा--बिच्छू के काटने के तुरन्त बाद दंश स्थान से ऊपर बंधन बांधकर विष की गति को ऊपर की ओर बढ़ने से रोक देना चाहिए। दर्द को तत्काल दूर करने के लिए नोवोकेन दो प्रतिशत की दो सी.सी. की मात्रा इन्जेक्शन द्वारा दंशित स्थान के चारों ओर प्रविष्ट कर दें। सार्वदैहिक लक्षण उत्पन्न होने पर हाइड्रोकार्टिसोन के साथ ग्लूकोज सेलाइन अन्तःशिरा दें। एट्रोपीन इन्जेक्शन लगा दें ताकि फुफ्फुस शोथ न हो पाये।

मधु-मक्खी, बर्र-ततैया आदि का काटना—

लक्षण—इन कीटों के काटने से दंश स्थान पर क्षोभ, वेदना और सूजन हो जाती है। सामान्यतः एक कीट के एक बार काटने से स्थानिक लक्षण ही उत्पन्न होते हैं किन्तु अनेक मधु-मक्खियों या ततैयों के एक साथ डंक चुभो देने पर स्थानिक लक्षणों के साथ एलर्जी के कारण अनेक सार्वदैहिक लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं। चक्कर, वक्ष में संकीर्णन का अनुभव, हृद्क्षिप्रता, पित्ती, अचेतनता, चेहरे का नीला पड़ना और श्वास का अवरोध प्रभृति लक्षण, स्तब्धता से मृत्यु तक हो सकती है।

चिकित्सा—ये कीट डंक चुभो देने के बाद अपना डंक दंश स्थान पर ही छोड़ देते हैं अतः तुरन्त साफ सुई या नाखून द्वारा डंक को बाहर निकाल देना चाहिए। फिर शीघ्र ही किसी एण्टि हिस्टामीन क्रीम को दंश स्थान पर मल दें अथवा दंश स्थान पर स्प्रिट, मिट्टी का तेल, पेट्रोल, चूने का पानी, लाइकर अमोनिया फोर्ट इनमें से जो भी पदार्थ उपलब्ध हो तुरंत लगा दें। सूजन और वेदना को कम करने को दंश स्थान पर सेंक करायें। एलर्जी के सार्वदैहिक लक्षण उत्पन्न हों तो एण्टि हिस्टामीन औषध जैसे साइनोपेन का दो सी.सी. इन्जेक्शन अंत:पेशी लगा दें या साइनोपेन, एवटीडिल, फेनरगान में से कोई भी औषध मुख द्वारा दें। उग्र अवस्थाओं में नार्मल सेलाइन में १०० मिलीग्राम हाइड्रोकार्टिसोन अंतःशिरा इन्जेक्शन विन्दुशः विधि से देना चाहिए अथवा कैल्शियम ग्लूकोनेट का अंत:शिरा इन्जेक्शन देना चाहिए।

—डा० प्रेमप्रकाश अवस्थी
ल० ह० रा० आयु० कालेज, पीलीभीत

☆ पृष्ठ १३८ का शेषांश ☆

भ्यास करे तो शारीरिक, बौद्धिक, धार्मिक स्वास्थ्य मिल सकता है। उनके अनुसार आध्यात्म ८ अंग का है—

१. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. ध्यान, ७. धारणा, ८. समाधि।

इन नियम का पालन करना अति आवश्यक है। सभी मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक रोगों का इलाज केवल आध्यात्म है। यम-नियमों का पालन है।

आसन—इनसे शरीर की निरोगता, संयम, सहनशीलता बढ़ती तथा विवेक बढ़ता है। योगाभ्यास में आखरीसमाधि के लिए कोई एक आसन करना पड़ता है।

प्राणायाम—प्राण के कारण सब शरीर के व्यापार चलते हैं। प्राण नहीं तो मृत्यु होती है। उसका व्यायाम प्राणायाम है। दीर्घ श्वास से आयु बढती है। बुद्धि बढ़ती, इन्द्रियों के दोष नष्ट होते हैं। विवेक बढ़ता है।

☆ पृष्ठ १४४ का शेषांश ☆

पेट्रोल की वाष्प सूंघने से उत्पन्न विष प्रभाव में व्यक्तियों को खुली हवा में रखना चाहिए और आक्सीजन सुंघाना चाहिए व कृत्रिम श्वास देनी चाहिए। श्वास मार्ग में तैल पहुंचने के उपद्रवों में जो विशेषतया बच्चों में होती है, उनको देखते हुए बच्चों में आमाशय प्रक्षालन जहां तक हो सके नहीं करना चाहिये। कृत्रिम श्वास देना और आक्सीजन का प्रयोग करना अति उत्तम है। उत्तेजक एवं बल्य औषधियों का प्रयोग करना चाहिए जिससे रोगी शीघ्र आरोग्यता प्राप्त कर लेता है।

सर्प विष कम होता है ।

काटे हुये जगह से विष निकालना—सर्प काटी हुई जगह को तीक्ष्ण छूरी से काटना, रक्त को बहने देना। उसके साथ विष चला जाता है ।

२. काटे हुये स्थान से मुंह से खून चूसना । पर मुंह में जखम नहीं होना चाहिए ।

३. मुर्गी की गुदा सर्पदंश पर लगाने से मुर्गी विष खींच लेती है और मर जाती है । जिन्दी रहे तब तक लगाना चाहिये ।

४. मयूर की गुदा काटे हुये स्थान पर लगाने से विष खींच लेता है ।

५. नेवले का मुंह काटे जगह पर लगाने से विष खींच लेता है ।

विष को हृदय की ओर नहीं जाने देना—इसके लिये बंधन का उपयोग करना चाहिए ।

इसी प्रकार बिना कोई खतरा उठाये सर्पदंश की चिकित्सा देहाती लोग रोगी का ईलाज देहाती दवा से कर सकते है । और सर्पदंश की चिकित्सा तत्काल शुरू होनी चाहिए नहीं तो रोगी मर जाता है । इसीलिये आयुर्वेद चिकित्सा ही उपयुक्त है ।

सरकार इधर ध्यान दे और देहाती में की जाने वाली विद्या चिकित्सा की उपेक्षा करने के बजाय हर देहात में कम से कम सर्पदंश चिकित्सक रखने की व्यवस्था करे और जो परोपकारार्थ करते है उनको मान्यता दे ।

इतना ही नहीं पुराने लोगों को सन्मानित करके नये लोगों को सिखाने को प्रोत्साहित करे । तब ही लोगों का कल्याण होगा ।

क्या सर्पविष:वमन, विरेचन, मूत्र, कान, त्वचा, नाक, मुंह आदि मार्ग से नहीं निकाला जा सकता ?

सर्पदंश से सर्प विष सीधा रक्त में मिलता है । सर्प दंश से हजारों लोग हर साल मरते है । ऐलोपैथी के ज्ञान से सर्प विष कम करने के लिये रक्त मे ही सीरम देते है । यह अन्टी स्नेक वाइट सीरम बहुत मुश्किल से और कष्ट से तैयार की जाती है । यह केवल बड़े-२ अस्पताल में ही उपलब्ध है । ऐलोपैथी के मतानुसार सर्प विष केवल अन्टी सीरम रक्त में देने से ही कम होता है । उसके साथ अगर बन्धन लगाया है तो सर्प दंश का स्थान चीरकर रक्त बहाने से विष कम करते हैं ।

आयुर्वेद में विष कम करने की अनेक विधियां बतलायी गयी हैं जो रक्त में औषधि, दवा मिलाये बिना हैं । इसी लिये ऐलोपैथियों को इसके बारे में शक है । यह उन्हें मान्य नहीं हैं । सर्पविष कम करने के लिए आयुर्वेद में रक्त बहाने के अलावा स्थावर विष का प्रयोग किया जाता है । विष को रक्त में से खींचने वाली वनस्पतियों का प्रयोग किया जाता है । मिट्टी का प्रयोग किया जाता है । इन सभी में स्थावर विष देकर वमन विरेचन पेशाब कराने का अधिक महत्व है और इसका ही प्रयोग आयुर्वेद के लोग ज्यादा करते हैं । इससे रोगी ठीक हो जाते हैं । ऐलोपैथी वाले फिर भी नहीं मानते । उनका इस पर भरोसा नहीं है उनका कहना है कि—

(१) सर्पविष तो रक्त में होता है फिर वो आमाशय में से वमन द्वारा कैसे निकाल सकता है ? अतः यह झूठ है और जो रोगी बच गये ऐसा बताते हैं उनको विषारी सांप ने नही काटा होगा । यही सवाल विरेचन, मूत्र-विरेचन के बारे मे है ।

(२) यही सवाल मिट्टी के प्रयोग के बारे में है कि—रक्त में विष है तो त्वचा पर मिट्टी लगाने से क्या फायदा ?

(३) यही सवाल पीपल के पत्ते के प्रयोग कान में डालकर सर्प विष खींच लेने के बारे में हैं ।

(४) यही सवाल नस्य के बारे में तथा अञ्जन के बारे में है ।

(५) यही सवाल धूम्रपान या गंडूष के बारे में है ।

यह ऐलोपैथी का बहुत बड़ा अज्ञान है । आयुर्वेद को वह विज्ञान नहीं मानते पर आयुर्वेद ही सही विज्ञान है ।

और आज इतनी मानव शरीर की यह अनाटामी, फिजिओलोजी सब जानते हुए भी अज्ञानी हैं । इसका मतलब यह स्पष्ट है कि आयुर्वेद का ज्ञान श्रेष्ठ और सूक्ष्म हैं और पदार्थ विज्ञान का ज्ञान भी सूक्ष्म तथा श्रेष्ठ है ।

आयुर्वेद में सर्पविष कम करने के लिए सूक्ष्म बुद्धि का उपयोग किया है । वैसे तो वेद में ही इसका वर्णन

है। परमात्मा सर्वज्ञ होने से उनका ज्ञान भी सूक्ष्म और सत्य ही रहेगा। अथर्ववेद में वमन विरेचन के द्वारा विष कम करने के लिए स्थावर विष के प्रयोग करने का विधान है। उसकी सत्यता हम आज के विज्ञान के आधार पर समझायेंगे।

१—पदार्थ विज्ञान की दृष्टि से अनेक पदार्थ एक दूसरे को मारक होते हैं। वैसा ही निसर्ग में एक का अन्न दूसरे का विष और दूसरे का विष तीसरे का अन्न है। घर में रहने वाली छिपकली मनुष्य के लिये विषारी है। मनुष्य तो मरता है मगर छिपकली को बिल्ली खाती है। इसका मतलब यह है कि विष भी या तो पचाया जा सकता है अथवा दूसरे पदार्थ की मदद से निष्क्रिय किया जासकता है।

२—इतना ही नहीं पदार्थों में आकर्षण विकर्षण भी होता है। एक विष दूसरे विष को [क्यों कि वह भी तो पदार्थ ही हैं।] आकर्षित करके उसको निष्क्रिय कर सकता है।

इसका आधार लेकर ही आयुर्वेद की सर्पदंश चिकित्सा है। इसलिए विष खींचने वाले, निष्काम करने वाले और परिवर्तित करने वाले शरीर के बाहर निकाल कर फेंकने वाले स्थावर और जंगम औषधि का प्रयोग बताया है। यह पदार्थ रक्त में न मिलते हुए भी रक्त में से विष खींच लेते हैं। यहां हम अनाटामी फिजिआलाजी के आधार पर बतायेंगे—

१, मानव शरीर की रचना अजब है। इसमें शरीर का पोषण, सफाई आदि की व्यवस्था है। शरीर त्वचा से ढका हुआ है। त्वचा वातावरण से सम्बन्ध रखती है। त्वचा में रंध्र होते हैं। त्वचा के साथ और रंध्र को रक्त सूक्ष्मतंतु (Capallaries) से दिया जाता है। वापस लिया जाता है। त्वचा में द्वार हैं, द्वार मुंह, गुदा, कान मूत्राशय—यह द्वार अन्दर की पतली त्वचा से सम्बन्ध रखते हैं। शरीर को जिस तरह बाहर से त्वचा है वैसी ही किन्तु पतली, सूक्ष्म और मृदु त्वचा, फुफ्फुस, आंतडियां, मूत्राशय आदि में हैं और इनमें आंतरिक अवकाश है। इनको भी रक्त दिया जाता है और वापिस लिया जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि इनको भी सूक्ष्म केशिकाओं से रक्त दिया और लिया जाता है।
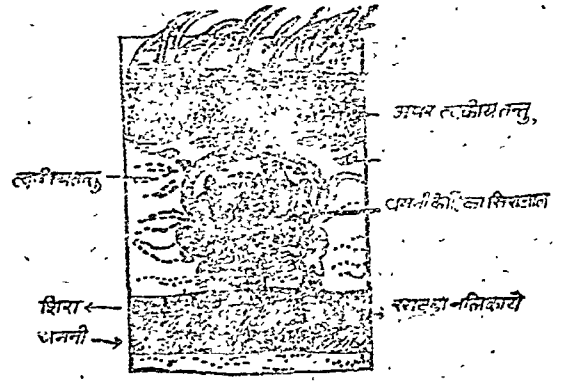
त्वचा का पोषण

त्वचा में बाहर से कुछ प्रवेश भी कर सकता है और त्वचा से कुछ बाहर भी आता है। वैसे ही पेट में फुफ्फुस के अन्दर जो अवकाश है उसमें और अन्दर की त्वचा में लेन देन दोनों ही होता है। यह लेन देन शरीर स्वस्थ होने के बाद भी चलता है। खाया हुआ अन्न अन्नरस होकर केशिकाओं के माध्यम से रक्त में प्रविष्ट होता है। और यह अन्नरस रक्त के द्वारा पूरे शरीर में भ्रमण करता है। शरीर की एक एक पेशी को मिलता है। और काम करने की वजह से या अन्य वजह से जो विजातीय द्रव्य निर्माण होते हैं। यह अनावश्यक उत्पादन (मल) रक्त के माध्यम से वायु, द्रव्य, घन या स्निग्ध पदार्थ के रूप में बाहर निकाले जाते हैं तो रक्त लेन देन करने वाला माध्यम ही होता है। इसलिये तो रक्त में विष मिल

शरीर द्रव्य का अभिसरण, उत्सर्जन कैसे संभाला जाता है।

* सर्प दंश में केवल आयुर्वेद चिकित्सा ही उपयुक्त है *

गया तो भी विष एक-२ धातुओं को विषाक्त बनाता है। और सब धातुओं की दुष्टि के कारण मनुष्य तत्काल मर जाता है। इन धातुओं में रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य है। विष से इन सबकी दूषी होती है इसलिये विष के भी सात वेग हैं। हर वेग के लक्षण अलग होते हैं।

मनुष्य की त्वचा में रक्त की केशिकायें होने की वजह से त्वचा से स्वेद निकलता है। यही केशिकायें बाहर की वस्तुओं को खींचते हैं याने कि शोषण करते हैं। जब गर्भ की वृद्धि होने लगती है तो अपरा (Placenta) की त्वचा और गर्भाशय, गर्भ की त्वचा अलग-२ होती हैं। फिर भी उस बालक की पोषण व्यवस्था रक्त केशिकाओं से होती है वैसे ही उस गर्भ के उत्पन्न मल द्रव्य केशिकाओं के द्वारा शोषित होकर बाहर निकलते हैं।
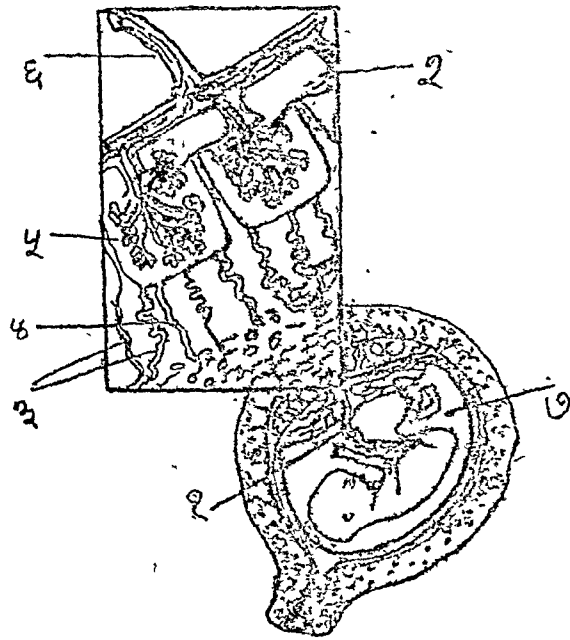
गर्भाशय में स्थित गर्भ (ऊपर चतुर्भुज में अपरा को विस्तृत रूप में दर्शाया गया है)
१—गर्भ नाभि नाल २—रक्ताशय ३—माता की धमनियां ४—माता की शिरायें ५—अपरा केशिकायें ६—गर्भ नाभि नाल

याने कि रक्त में खींचने की और अनावश्यक को बाहर निकालने की अद्भुत क्रिया है।

इसलिये आयुर्वेद में मिट्टी से विष निकालने की प्रक्रिया बतलायी हैं। बाहर की त्वचा का संपर्क जब मिट्टी से आता है तब मिट्टी भी शोषण करती है और रक्त मल पदार्थों को बाहर निकालने वाला होता है और विष निकाला जाता है।

कान में का जो मृदु सूक्ष्म परदा है वहाँ की केशिकाओं से सम्बन्ध जोड़कर पीपल के पत्तों का देठ डालकर, वसु पुनर्नवा, मूली डालकर विष खींचते हैं। अगर विष नहीं खींचा जाता तो दर्द नहीं होना चाहिए। कान में का मैल भी तो रक्त से ही बाहर आता है।

वमन से और विरेचन से भी विष कम किया जाता है वैसे ही मूत्र विरेचन से भी विष कम किया जाता है। (गुडमारी के पत्ते या नागरमोथा देने से पेशाब होता है विष खत्म होता है।)

विष के जो सात वेग होते हैं वो निम्न प्रकार हैं। उसको ही की कलारा कहते हैं।

प्रथम वेग में विष—रक्त विषाक्त बनता है। रक्त काला पड़ जाता है।

दूसरे वेग में विष—मांस को दूषित करता है। कृष्णता सूजन आती है।

तीसरे वेग में विष—मेद को दूषित करता है। दंश स्थान सड़ता है। आंखों से न दीखना, भारीपन होता है।

चौथे वेग में विष—"कोष्ठ में पहुँचकर कफ प्रधान दोषों को दूषित करता है। इससे तन्द्रा, मुंह से कफ का गिरना होता है।

पांचवे वेग में विष—अस्थि को दूषित करता है।

छटवे वेग में विष—मज्जा को दूषित करता है। हृदय में पीड़ा होती है।

सातवे वेग में विष—शुक्र में या वीर्य में पहुँच कर उसे दूषित करता है। व्यान वायु को अतिशय कुपित करता और कफ को सूक्ष्म स्रोतों से निकाल कर सब चेष्टायें बन्द करता श्वासोच्छ्वास बन्द कर देता है।

देखिये चौथे वेग में कोष्ठ में पहुँचता है और कफ और रस को दूषित करता है। अतः यह विष आयुर्वेद-

दवा से खींच कर वमन, विरेचन मूत्र विरेचन द्वारा बाहर फेंका जाता है। अतः वमन विरेचन, मूत्र विरेचन सच है।

पाचन संस्थान को भी शुद्ध रक्त दिया और अशुद्ध रक्त लिया जाता है। पचा हुआ रस का शोषण वो ही करता है और कभी आवश्यकता पड़ी तो रक्त से लेता है। जब विरेचन एरण्ड तेल का लेते हैं तब मैला तो निकलता है पर शरीर के अनेक स्थान पर के सूक्ष्म दोष रक्त में से खींचकर आंतडियों में लाया जाता है और गुदा से बाहर फेंका जाता है। इसमें ज्यादा पानी और विजातीय द्रव्य रक्त से बाहर आते हैं। वही हालत जब टट्टी लगती है तब Dehydration की है। अगर *dehydration* में रक्त में का पानी टट्टी में जा रहा है। इसका अर्थ ही यह है कि रक्त लेता भी है और देता भी है।

इसलिये आयुर्वेद की सर्प विष कर्म करने की सब विधियां सत्य हैं। अगर यह सच नहीं होता तो निम्न बातें नहीं होतीं–

१. त्वचा शरीर में की, रक्त में की गंदगी बाहर नहीं देती।

२. कान में मैला (Wax) नहीं बनता।

३. फुफ्फुस में से श्वासोच्छवास द्वारा रक्त में का कार्बन डाइ ऑक्साइड आदि वायु नहीं निकलते और वाष्प रूप में द्रव पदार्थ बाहर नहीं आते।

४. रक्त में से ही पेशाब वृक्क में नहीं बनता। और नहीं पेशाब के द्वारा रोग जाते। (पर पेशाब से रक्त में का शरीर का दोष मालुम होता है।)

५. मैल भी तो शरीर की स्वस्थता और अस्वस्थता बताता है। इसका मतलब मैल में भी ऐसे गुण रक्त में से शरीर में नहीं आते थे।

गर्भाशय में गर्भ का संवर्धन और उसमें के प्रयुक्त पदार्थों का निष्कासन नाभिनाल एवं अपरा के माध्यम से मां के खून से नहीं होता।

६. टट्टी ज्यादा लगने पर डिहाइड्रेशन नहीं होता और रोगी के मरने की नौबत नहीं आती (अगर रक्त का और पाचन संस्थान का सम्बन्ध न होता)।

७. वैसे ही अति वमन से भी रोगी व्याकुल नहीं होता

८. खाया हुआ अन्न अन्नरस बनकर रक्त में नहीं जाता।

९. खायी हुयी दवा पेट से रक्त को नहीं मिलती।

१०. त्वचा पर लगाये हुये मलहम अथवा दवा से त्वचा रोग या अन्य ठीक नहीं होते।

११. पेट में बढ़े हुए दोष रक्त में नहीं जाते।

१२. अगर रक्त और त्वचा का सम्बन्ध नहीं होता तो रक्त से ही स्वेद के रूप में पानी और विजातीय पदार्थ बाहर नहीं दिये जाते।

१३. पेट में का पानी रक्त में मिलता है पर अगर रक्त देता कुछ भी नहीं तो मूत्र नहीं बनता।

१४. अगर रक्त से विषैले पदार्थ बाहर निकलते ही न थे तो मूत्र मार्ग से रोग कम नहीं किया जा सकता था। इन सभी क्रियाओं से क्या पता चलता है? इससे यह सिद्ध होता है कि शरीर में का रक्त पूरे शरीर के साथ सम्बन्ध रखता है। परिस्थिति के अनुरूप उसका कार्य चालू रहता है और अलग-अलग जगह पर द्रव बाहर देता है।

आयुर्वेद में इस तत्व को जानकर और पदार्थों का आकर्षण विकर्षण और मारक तत्व को ध्यान में लेते हुवे ही सभी प्रयोग बताये गये हैं। सभी प्रयोग सच हैं और वमन का तो ठीक ही है। क्योंकि पेट में स्थावर विष तो सर्प विष को खींचता है और वमन कराकर बाहर फेंकता है। इससे सभी धातुओं का विष रक्त द्वारा निकाला जाता है। यह सब केशिकाओं के कारण हो सकता है।

अतः वमन, विरेचन, मूत्र द्वारा मिट्टी, पानी, नस्य, धूम्रपान, अंजन आदि द्वारा सर्प विष खींचकर बाहर निकाला जाता है यह सिद्ध हुआ।

अथर्ववेद में औषधि को रक्त से विष खींचने वाली और वमन विरेचन द्वारा बाहर फेंकने वाली ही बताया है। औषधि का गुणधर्म विष खींचने का और बाहर फेंकने का हुआ।

वेद में वमन, विरेचन द्वारा विष निकालने का विधान—

१—तस्तुवं न तस्तुवं वेत् त्वमसि तस्तुवम्।
तस्तुवेनारसं विषम्॥ —अथर्व ५-१३-११

—शेषांश पृष्ठ १६० पर देखें।

★ सर्पदंश में आयुर्वेद चिकित्सा ही उपयुक्त है ★

सर्प विष चिकित्सा

वैद्य मोहर सिंह आर्य वैद्य वाचस्पति

यह स्मरण रहे—अधिक विष वाले साँपों में—१. अति वृद्ध, २. अतिबाल, ३. रुग्ण, ४. केंचुली छोड़ते हुए, ५. भयभीत हुए, ६. नेवले के पछाड़े हुए और ७. जल से ताड़े हुये सर्प अल्पविष वाले होते हैं, ऐसा सुश्रुत ने कल्पस्थान में कहा है।

सब सांपों के सामान्य दष्ट लक्षण—दर्वीकर (फनिधर cobra) विष से त्वचा, नख, नेत्र, दन्त, मुख, मूत्र, मल तथा दंशस्थान काले पड़ जाते हैं।
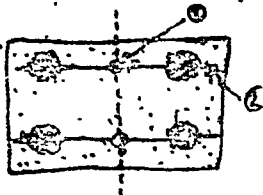
१—सर्पदंश

२—इस रेखा पर चीरा लगायें

दंशित स्थान के दोनों ओर (कुल ४) वह स्थान दर्शाये हैं जहां कि सर्पविष संचित हो जाता है और धीरे-धीरे रक्त में घुलता रहता है। इस कारण से चीरा इस प्रकार लगायें कि इन स्थानों से संचित विष निकल जाये।

रूक्षता, सिर में भारीपन, सन्धियों में वेदना, कटि-पीठ-ग्रीवा में दुर्बलता, जम्भाई आना, कम्पन, स्वर का बैठना, गले में घर्घराहट, जड़ता, सूखे उद्गार कास-श्वास हिक्का, वायु का ऊपर को जाना, शूल, ऐंठन, प्यास, लालास्राव, झाग का आना, स्रोतों का बन्द होना तथा वातजन्य नाना प्रकार की वेदनाएं होना।

२. मण्डलि (viper) विष से त्वचा, नख, मल-मूत्र आदि पीले हो जाते हैं।

शीत की इच्छा, सर्वांग सन्ताप, दाह, प्यास, मद, मूर्च्छा, ज्वर, ऊर्ध्वमार्ग तथा अधोमार्ग से रक्त आना, मांस का विदीर्ण होना, शोथ, दंश का सड़ना, पीले रूपों का देखना, विष का शीघ्र कुपित होना तथा पित्तज नाना प्रकार की वेदनायें (ओष, चोष आदि) होना।

३. राजिमान सर्प से त्वचा, नख श्वेत हो जाते हैं।

शीतपूर्वक ज्वर, रोमहर्ष, अंगों में जड़ता, दंश के चारों ओर शोथ, घट्ट कफ का मुख से गिरना, बार-बार वमन, नेत्रों में कण्डू, गले में शोथ, घर्घराहट, श्वास का रुकना, अन्धेरी आना तथा कफजन्य नाना प्रकार की वेदनायें होती हैं।

विशेष—१. पुरुष-सांप से काटा रोगी ऊपर देखता है।

२. स्त्री-सांप से काटा रोगी नीचे देखता है, माथे में शिरायें उभर आती हैं।

३. नपुन्सक सांप से काटा रोगी तिरछा देखता है।

४. गर्भवती से काटे हुए मनुष्य का मुख पाण्डु वर्ण एवं शोथयुक्त होता है।

५. सूतिका सर्पिणी से काटे हुए मनुष्य को उदरशूल होता है, रक्तयुक्त मूत्र आता है।

६. वृद्ध सांप से काटे हुये व्यक्ति पर विष वेग मन्द होता है। विष देर में चढ़ता है।

७. निर्विष सांप के काटने पर विष लक्षण नहीं होते।

८. अन्धे सांप के काटने पर अन्धा हो जाता है।

९. बालक सांप से काटने पर विष जल्दी चढ़ता है, पर मन्द रहता है।

चिकित्सा—

(१) आश्वासन चिकित्सा—

ददिर्हिमह्यं वरुणो दिवः कविर्व-
चोभिरुग्रैर्निरिणामि ते विषम् ।
खातमखातमुत सक्तमग्रभमिरेव
धन्वन्नि जजास ते विषम् ॥
—अथर्ववेद ५/१३/१

(वरुणः) सबसे श्रेष्ठ वरण योग्य (दिवः कविः) वेदवाणी के कवि परमात्मा ने (मह्यम्) मुझ में (हि) निश्चय (ददिः) ऐसा भारी तेज दिया है कि (उग्रैः वचोभिः) उग्र वचनों से (ते) तेरे (विषम्) विष को (निरिणामि) मैं निकालता हूं। (खातम्) सर्प दांतों के गहरे घाव को (अखातम्) कम गहरे व्रण को (उत्) तथा (सक्तम्) सांप के छूने मात्र को (अग्रभम्) मैंने अपने वश लिया है। (ते) तेरा (विषम्) विष (इरा-इव-धन्वन्) मरुस्थल में पड़े जल की भांति (निजजास) नष्ट अब करता हूं।

इस मन्त्र में तीन प्रकार के सर्पदष्ट के घावों का वर्णन किया है। यथा—

१. खात—सर्प दष्ट के गहरे घाव, जिसको सुश्रुत ने सर्पित कहा है।

२. अखात—सर्प दांतों के चिन्ह मात्र, जिसे सुश्रुत ने रदित कहा है।

३. सक्त—सर्प से स्पर्श प्रभाव मात्र; सुश्रुत ने सर्पाङ्गाभिहत कहा है।

इस मन्त्र में आश्वासन चिकित्सा का वर्णन किया है। आश्वासन चिकित्सा को ही मन्त्र विद्या संवशीकरण (Hypnotism) कहते हैं। आश्वासन से रोगी को लाभ पहुँचता है। सभी सर्प विषधारी नहीं होते, उनमें अल्प विष वाले भी होते हैं, निर्विष भी पाये जाते हैं। विष से सर्प का भय भारी होता है। भय को दूर करने के लिये ही आश्वासन उपचार की जरूरत है।

सदाचारी, ब्रह्मचारी, अहिंसक तथा साधु जीवन व्यतीत करने वाला मन्त्र चिकित्सक मानसिक सद्भाव तथा हितवचनों से आश्वासन देता है कि रोगी नहीं मरेगा।

(२) बन्धन चिकित्सा—

यत् ते अपोदकं विषं तत् त एतास्वग्रभम् ।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रस-
मुतावमं भियसा नेशदादु ते ॥

(ते) तेरा (यत्) जो (अपोदकं विषं) शरीर के जल रूप रक्त में जहां तक न मिला हुआ विष है (ते तत्) तेरे उस विष को (एतासु) इन ग्रहणियों में (अग्रभम्) बांधता हूं। (ते) तेरे (उत्तमम्) उत्तम (मध्यमम्) मध्यम (उत्) और (अवमम्) निचले (रसं) विष को (गृह्णामि) स्ववश करता हूं। (आत्) अनन्तर (उ) ही (ते) तेरे (भियसा) भय से (नेशत्) सम्भव है नष्ट हो जाए।

इसमें निम्न बातें कही हैं—

१. एतास्वग्रभं—सर्प के काटने पर बन्धनियों से बांधना।

२. अपोदकं—सर्पदष्ट से कुछ पृथक बन्धन बांधना अर्थात् सर्प विष जहां तक रक्त में फैल गया है उससे ऊपर बन्धन बांधना।

सुश्रुत में सर्पदष्ट (काटे स्थान) से ४ अंगुल ऊपर बांधने का विधान है।

३. आत उ—यथासम्भव शीघ्र बन्धन बांधना चाहिए

४. उत्तमं, मध्यमं, अवमं—बन्धन ३ बांधने चाहिये

१—अवम निचले सक्त (सर्वाङ्गाभिहत)

२—मध्यम अखात (रदित)

३—उत्तम खात (सर्पित)

बन्धन बांधने का लाभ—सर्प काटे पर यदि बन्धन न बांधा जाए तो रोगी भय से मर जाए। सर्प विष से रोगी थोड़े मरते हैं किन्तु भय से अधिक मरते हैं। सर्प की फुंकार से ही भय हृदय में बैठ जाता है। वही भय मार देता है। इसलिए—

१. सर्प काटते ही तुरन्त बन्धन बांध दें। २. बन्धन काटे हुए स्थान से ४ अंगुल ऊपर बांधें। ३. दूसरा बंधन पहले बन्धन से ४ अंगुल ऊपर बांधें। ४. इसी प्रकार तीसरा बन्धन दूसरे बन्धन से ४ अंगुल ऊपर बांधें।

३. वाद्य चिकित्सा—

वृषा मे रवो नभसा न तन्य-

तुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते ।
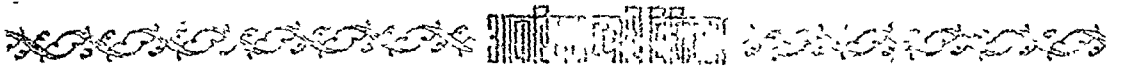
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस

इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥ (अथर्ववेद)

(मे) मेरा (रवः) शब्द करने का साधन दुन्दुभि आदि बाजा (वृषा) अमृत का बरसाने वाला (नभसा तन्यतुः न) आकाश के साथ वर्तमान कड़कने वाली बिजली की भांति है । उसकी (उग्रेन वचसा) उग्र ध्वनि से (ते) तेरे विष को (तं आत उ) तुझे काटने के अनन्तर ही (बाधे) बाधित करता हूं । (अहं) मैं (तस्य) उसके (रसमे) विष को (नृभिः) चुरचने के साधन से (अग्रभम्) ग्रहण करता हूं । सर्पदष्ट रोगी (तमसः) अन्धेरे से (सूर्यो ज्योतिः इव) सूर्य ज्योति की भांति (उदेतु) उदय को प्राप्त हो ।

सांप का काटा सोए, बिच्छू का काटा रोए । सर्प दष्ट रोगी को सोने नहीं देना चाहिए । इस मन्त्र में नगारा आदि का बजाना बताया है, साथ ही साथ सर्प घाव को स्वच्छ करना कहा है । वाद्य चिकित्सा के साथ छेदन उपचार कहा है । वाद्य यन्त्र के तीव्र शब्द-ध्वनि से रोगी का ध्यान बट जाता है । ध्यान बटने से मन में सर्प काटे का भय दूर हो जाता है । आचार्य सुश्रुत ने भी कहा है—'वाद्यस्य शब्देन न हि यान्ति नाशं विषाणि घोराण्यपि यानि सन्ति ।' वाद्य यन्त्र के शब्द से घोर विष भी नष्ट हो जाता है । दष्ट व्यक्ति को सोने न दें ।

४ छेदन चूषणोपचार—

सर्पदष्ट व्रण का छेदन करके उसका विष निकाल दें । सर्पदष्ट घाव को थोड़ा काटकर, दबाकर चूपकर विष को बाहर निकाल दें ।

आचूषण—सर्पविष को मुख से चूषकर निकालते हैं। इसमें सावधानी की आवश्यकता है ।

१. चूषन वाले के मुख में व्रण-क्षत न हो । २. अपचूषण करने वाला प्रथम मुख में घृत लगा ले । ३. [illegible] लगाकर आचूषण करना उचित है ।

५. आघुर्दंशनोपचार—

चक्षुषा चक्षुर्हन्मि [illegible] हन्मिते विषम् ।

अहेम्रियस्व मा जीवी प्रत्यगभ्यतुत्वा विषम् ॥

१. इस मन्त्र में सर्पदष्ट के विष को दूर करने के लिये निम्न बातें कहीं हैं—

१—सर्पदष्ट घाव को अग्नि से दग्ध करना ।

२—सर्प काटे घाव में स्थावर विष का प्रक्षेप करना

३—काटने वाले सर्प को मार देना ।

४—उसी सर्प के प्रति विष को लौटाना ।

(२) 'अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि' काट जाने वाले सर्प को मार दे ।

अथर्व वेद के इस मन्त्र का समर्थन सुश्रुत तथा वाग्भट भी करते हैं । ऐन्द्रिजालिक कामरत्न में भी कहा है—जिस सर्प ने काटा हो, वह तुरन्त उसी सर्प को काट ले । देखो जिस व्यक्ति को सांप काट ले वह वीर साहस करके उस सर्प को काटले तो वह बच जाता है । इसके दो कारण हैं—१. काटने वाले सांप को काटने से दष्ट व्यक्ति में वीरता उत्साह की बिजली दौड़ जाती है । सर्पभय का ध्यान नहीं रहता ।

आचार्य सुश्रुत कहते हैं—यदि वह सांप न मिल सके तो मिट्टी के ढेलों को ही दांतों से काटो ।

आचार्य चरक कहते हैं—दष्ट व्यक्ति तत्काल उसी सर्प को काट ले, यदि ऐसा सम्भव न हो, तो मिट्टी का ढेला ही काट ले ।

१ आश्वासन चिकित्सा—सर्पदष्ट से व्यक्ति नहीं मरता अपितु सर्प का भय मार देता है । 'भियसानशेत्' इस भय को भगाने के लिये ही आश्वासन चिकित्सा की आवश्यकता है । चिकित्सक कहता है—मैं अपने प्रबल प्रभावकारी वचनों से तेरे विष को दूर कर रहा हूँ, ऐसा तेज सर्वश्रेष्ठ कविवर परमात्मा ने मुझे दिया है ।

२ बन्धन चिकित्सा—आश्वासन चिकित्सा भी करते रहें परन्तु सर्प के काटते ही तुरन्त बन्धन बांधना न भूलें । जहां तक विष प्रभाव हो गया हो, उससे ४ अंगुल ऊपर बन्धन बांध दें । बन्धन रोगी को बचाता है।

३. वाद्य चिकित्सा—सर्प काटे व्यक्ति को नींद बहुत आती है । अतः नींद को दूर करने के लिये वाद्य-बाजा आदि बजावें । सुश्रुत कहते हैं—बाजे के शब्द से घोर विष भी दूर हो जाता है । उपर्युक्त तीनों उपचार साथ-साथ करते रहें ।

४. छेदन चूषण चिकित्सा—सर्पदष्ट स्थान का छेदन करें। बन्धन के समीपस्थ स्थान का छेदन कर आचूषण करें। सर्पदष्ट व्रण को छेदन करने से विष बाहर निकल जाता है। चूषण क्रिया से विष बाहर निकल जाता है।

५. भेषज चिकित्सा—

ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम्।
ताबुवेनारसं विषम्॥ (अथर्व वेद)

इस मन्त्र में बतलाया है कि जब शरीर में सर्पविष फैल जाये तब कटुतुम्बी का रस पिलाने से विष निर्बल या प्रभावहीन हो जाता है।

आयुर्वेदिक निघण्टुओं में कटुतुम्बी को हिमा, हृद्य, वामक, घबराहट में हितकारक, विषनाशक कहा है। जब शरीर में सर्पविष फैलने लगता है तो उस समय भीतर गरमी बढ़ती है, हृदय पर आघात पहुँचता है, मन घबराता है, इन सब लक्षणों के ताबुव (कटुतुम्बी) शमन करती है। एतदर्थ—कटुतुम्बी की सूक्ष्म मूल को गोमूत्र में पीसकर गुटिका बना छाया में सुखा रखना। आवश्यकता पड़ने पर मूत्र के संग घिसकर घाव पर लेप करें और कटुतुम्बी (स्वरस ५० मिली. रुग्ण को पिला दें)। इससे वमन होकर विष बाहर निकल जाता है।

अरिष्टं न अरिष्टं न घेत् त्वमसि अरिष्टम्।
अरिष्टेनारसं विषम्॥

(अरिष्टं) रीठे (न अरिष्टं न) प्राण हरने वाले विष को वमन द्वारा निकालने वाला नहीं, ऐसा नहीं (घ-इत्) अवश्य ही (त्वम्) तू (अरिष्टं) प्राणनाशक विष को वमन द्वारा निकालने वाला (असि) है। क्योंकि (अरिष्टेन्) रीठे से (विषं) विष (अरसं) सारहीन हो जाता है।

रीठा के ४ फल ले, गुठली निकाल कर ताजा पानी के साथ घोट लें। इसको छानकर पिला दें। इससे वमन विरेचन होकर विष निकल जाता है। १५-२० मिनट के पश्चात् पुनः उक्त मात्रा में इसी विधि से पिलावें। इसी प्रकार उस समय तक पिलावें जब तक कि साफ जल वमन तथा विरेचन द्वारा न आ जाए।

एक पन्थ दो काज—

१. यदि औषधि कड़वी मालूम न हो तो समझ लो सांप ने ही काटा है।

२. विष नष्ट होने के पश्चात् रोगी को औषधि का स्वाद कड़वा मालूम होने लगेगा।

३. औषधि कड़वी मालूम हो, तब दवा देना बन्द कर दें। दूध और घी खूब पिलावें।

४. यदि सर्पदष्ट मूर्च्छित पड़ा है, तो नलकी द्वारा औषधि को आमाशय में पहुँचा दें। *

पृष्ठ १५६ का शेषांश

कड़वी तोरई प्राणक्षयकारी विष को वमन द्वारा निकालने वाली नहीं ऐसा नहीं। अवश्य ही तू प्राणक्षयकारी विष को वमन द्वारा निकालने वाली है। कड़वी तोरई से विष सारहीन, बलहीन, शक्तिहीन हो जाता है।

२—अब श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम्॥
—अथर्व १०-४-

हे सफेद आक तू तीव्र विष को नष्ट कराती है।

अरंघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत्।
उदप्लुमिव॥ —अथर्व १०-४-

खानपान में उपयुक्त उदर में पर्याप्त बोध आर्भ श... करने वाला या सर्पविष प्रभाव को अहं अर्थात् स... समाप्त कर देने वाला श्वेत आक उदर में पहुँच जाने प... नीचे दस्तों की ओर जाकर और ऊपर वमन की ओ... आकर कहता है कि सर्पविष निर्बल बन गया।

आक को सर्प विष शोषण करने वाली भी कहा है

वेद में प्राणी द्वारा रक्त से विष खींचने का विधान—

त्रिः सप्त विष्णुलिङ्गका विषस्य पुष्पभक्षन्।
ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वय॥—अथर्व २३-३७-१...

तीन गुणित सात अर्थात् इक्कीस, गुदा पुछ भाग से चंचलता करती हुई चलने वाली छोटी चिड़िया मृत्यु रूप विष को खा लेती है, चूस लेती है।

कुपुम्भकस्तदब्रवीद गिरेः प्रवर्तमानकः।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम्॥
—अथर्व २३-३७-१६

नेवला प्राणी सभी काटने वाले विषधारी सर्प आदि के विष को दूर करने वाला है। इसका मुखस्राव (लार) रक्त, मूत्र, विष्ठा और रोग विष को नष्ट करने वाले हैं।

अथर्ववेदीय सर्प दंश चिकित्सा

वैद्य आण्णाराव सायबण्णा पाटिल औराद, ता-उमरगा जि. धाराशिव मराठवाड़ा महाराष्ट्र

—※※※—

वैद्य आण्णाराव सायबण्णा पाटिल अपने क्षेत्र के सुप्रसिद्ध सर्प दंश चिकित्सक हैं जिन्होंने अथर्ववेदीय सर्प दंश चिकित्सा के आधार पर औषधि का प्रयोग कर आज तक ७० सर्प दंश रोगियों को जीवनदान दिया है। जहां आधुनिक चिकित्सक असफल रहे वहां उन्होंने सफलतापूर्वक चिकित्सा की है। निर्व्यसनी, सदाचारी, सादा जीवन यापन करने वाले अध्यात्मिक प्रकृति के सहृदय व्यक्ति हैं आशा है। पाठक आपके लेख से निश्चय ही ज्ञानार्जन कर सफलता प्राप्त करेंगे। कुशलता के साथ— वैद्य गिरिधारीलाल मिश्र

निदान—
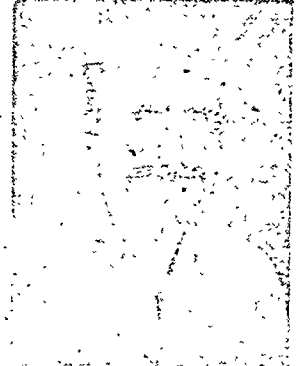
नाड़ी परीक्षा—नाड़ी से भी सांप कौनसी जाति का होगा यह पता चलता है। दर्वीकर-वातप्रकोपक हैं। मंडली-पित्तप्रकोप हैं। राजीमिलः कफ प्रकोपक हैं।

परीक्षा—(१) रोगी को कडुवे नीम के पत्ते, मिर्च खाने को देते हैं। विष शरीर में फैला है तो वह क्रमशः कड़वी और तेज नहीं लगती। पर वह पूर्णतः सही है नहीं होता।

(२) पीपल के पत्ते का डेठ कान में डालकर देखा जाता है—विष है तो तकलीफ होती है। पीपल के पत्ते विष खींच लेते हैं।

(३) मुर्गी की गुदा काटे हुये जगह पर कुशलता से लगाकर देखने से भी सांप विषारी है या नहीं पता चलता है। सांप विषारी है तो मुर्गी मर जाती है।

चिकित्सा—

सांप का जहर हमेशा रक्त में मिलकर हृदय की ओर और हृदय की ओर से सारे शरीर में फैलता है। विष के सात वेग होते हैं। चिकित्सा भी उन्हीं वेगों को देखकर की जाती है।

चिकित्सा में प्रथमोपचार—

(१) बन्धन है। जहां भी सांप काटता है। काटने के स्थान के ऊपर रस्सी या कपड़े की पट्टी से बन्धन लगाना चाहिये। जिससे जहर मिला हुआ रक्त ऊपर हृदय की ओर न जा सके।

(२) सांप काटी हुई जगह पर छुरी से या तीक्ष्ण हथियार से छेदन करे। ताकि रक्त बाहर निकल जाये और विष निकल जाये।

यह दो महत्व की प्राथमिक चिकित्सा रोगी स्वयं को या अन्य को तत्काल करनी चाहिये।

वैद्यों में चिकित्सा—

१. सर्व प्रथम वमन यानि उलटी कराना—राम मिर्च, दांत फरडोला, श्वेत आकमूल, जंगली प्याज सोमलता मूल, रीठा ये सभी थोड़ा-२ घिसकर सभी मिलाकर पिलाना या अलग-२ किसी एक का प्रयोग करते हैं। उलटी होने के लिए ५-१० मिनट तो लगते ही हैं। उलटी नहीं हुयी तो सभी यही चीजें उलटी होने तक देना। उल्टी होने के लिये गोमूत्र और मधु चूल भी लेते हैं। यह सभी वनस्पतियों में स्थावर विष है।

२. पीपल के पत्ते का डेठ कान में डालकर कान से विष निकालते हैं। यह प्रयोग सावधानी से करना पड़ता है रोगी को ४-६ व्यक्तियों से पकड़वाना चाहिये। कान का परदा फटने का डर होता है।

३. मुर्गी की गुदा कुशलता से सांप काटे हुए जगह पर लगाना। मुर्गी मर जावेगी। मुर्गी गुदा से विष

—शेषांश पृष्ठ १६४ पर देखें।
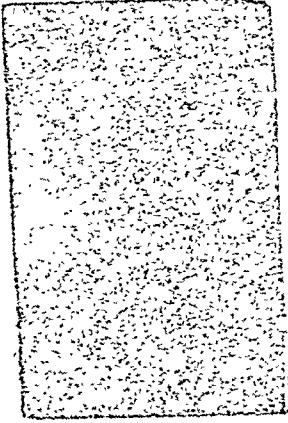
वृश्चिक विष के लक्षण—बिच्छू के डंक मारने पर आरम्भ में उसका विष अग्नि के समान दाह करता है और शीघ्र ही ऊपर के शरीर स्थान को तोड़ता हुआ सा चलता हुआ मालूम होता है और अन्त में केवल काटी हुई जगह में ही रहता है। दाह इतना होता है कि रोगी रोने तक लगता है।

असाध्य वृश्चिक दंश के लक्षण—असाध्य विष वाले बिच्छू के काटने से हृदय, नाक, जीभ इनका कार्य बन्द हो जाता है तथा मांस शरीर में से टूट-टूट कर गिरने लगता है और घोर पीड़ा से युक्त होकर प्राणी प्राणों को त्याग देता है।

एक रोगिणी की चिकित्सा का हाल लिखा जाता है जिसको बिच्छू ने डङ्क मारा और जिसको चिकित्सा द्वारा मैंने लगभग १५ मिनट में ठीक किया—

रोगिणी का नाम—किशोरी धोबी की पत्नी निवास स्थान व पोस्ट फतेहगढ़ जिला फर्रुखाबाद (उ० प्र०), आयु २५ साल। उसको ता० १६-६-७५ की रात को लगभग १२ बजे बिच्छू ने डङ्क मारा। बिच्छू का विष इतना उग्र था कि डङ्क मारते ही पीड़ा के मारे रोने पीटने लगी किसी भी प्रकार आराम नहीं मिला। जिसने जो बताया उसने वह किया लेकिन विष कम नहीं हुआ। दवायें लगाईं, झाड़ फूंक हुई, तिरया आदि दिये गये लेकिन पीड़ा में कोई कमी नहीं हुई। तब दूसरे दिन दोपहर १२ बजे हमारे पास चिकित्सार्थ आई। रोगिणी उस समय भी पीड़ा के कारण बड़े जोर से रो रही थी। बताया गया कि जब से बिच्छू ने डङ्क मारा है तब से इसी प्रकार बिलख रही है। मैंने सर्व प्रथम बिच्छुओं से निर्मित स्प्रिट (योग नं० १ जो आगे दिया है) रुई से दंश स्थान पर लगवाई। उसके बाद मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स बड़ौत का बना हुआ शूलान्तक इन्जेक्शन त्वचागत लगाया तथा नोवल्जीन टेबलेट खाने को दी। नमक पानी में घोलकर विपरीत कान में डलवाया। दंश स्थान पर शक्कर खाना पानी में मिलाकर गाढ़ा गाढ़ा लेप कराया। नीम की हरी पत्ती वाली टहनी से झाड़ा दिया। नौसादर पिसा हुआ और भीगा हुआ चूना शीशी में भरकर सुंघाया। इतना उपचार करने से रोगिणी १५ मिनट में विषमुक्त हो गई। रोना चिल्लाना बन्द हो गया और रोगिणी अपने घर चली गई।

वृश्चिक दंश पर अनुभूत योग—

१. बिच्छू ने जिस अंग में डङ्क मारा हो उसके दूसरे भाग में अर्थात् दाहिनी ओर के अङ्ग में डङ्क मारा हो तो बांये कान में और यदि बांई ओर के अङ्ग में डङ्क मारा हो तो दाहिने कान में नमक का शुद्ध पानी (खाने वाला नमक शुद्ध साफ पानी में मिलाकर छान लें, यही नमक का शुद्ध पानी है) २-४ बूंदें डाल दें। विष फौरन उतर जायेगा। यदि इतने पर भी शान्त न हो तो उसी नमक के पानी को रोगी की आंख में भी उसी दाहिने बांये के हिसाब से २-४ बूंद डाल दीजिए। इससे विष तुरन्त उतर जायेगा।

२. सफेद फूल की कवेर की जड़ को घिसकर दंश स्थान पर लेप करने से आराम होगा।

३. थोड़ी सी खांड़ (बूरा) ले, थोड़े पानी में मिला गाढ़ा गाढ़ा लेप कर दें। साधारण बिच्छू का विष ५-७ मिनट में ही नष्ट हो जायेगा। इसी प्रकार नमक बारीक पीस पानी में मिला गाढ़ा लेप बना दंश स्थान पर लेप करने से विष नष्ट हो जायेगा।

४. एक चौड़े मुंह की बोतल में स्प्रिट डाल लो और जो भी बिच्छू मिले उस पर लगी हुई मिट्टी आदि साफ करके जिन्दा ही उस बोतल में डालकर बोतल बंद कर दीजिये। बिच्छू फौरन मरते जायेंगे। बिच्छू के काटने पर इस स्प्रिट को दंश स्थान पर लगा देने से तत्क्षण लाभ होता है, चाहे कैसे भी बिच्छू ने डङ्क मारा हो। एक औरत ने आकर कहा कि मुझे बिच्छू ने डङ्क मारा है और दर्द हो रहा है, मैंने इसको रुई से लगवाया लगाते ही दर्द छू-मन्तर हो गया।

५. नीम की हरी पत्ती वाली टहनी लेकर झाड़ा देने से भी बिच्छू का विष उतर जायेगा। इसके साथ कोई लगाने की भी दवा लगानी चाहिये।

६. मोर के पङ्खों का हरा भाग (पङ्ख के सिर पर जो चंदुआ होता है उसके बीच के सुनहरे भाग के चारों ओर जो हरा हरा भाग है) थोड़ा सा चिलम में रखकर तम्बाकू की तरह पिलाने से अवश्य लाभ होता है।

७. मूली के पत्तों का रस दंश स्थान पर बार बार लगाने से लाभ होता है या काशीफल के डंठल को पानी में घिसकर लगाये या जमालघोटा की गिरी पानी में घिसकर लेप करे।

८. बिना बुझा हुआ चूना व नौसादर समान भाग लेकर शीशी में डालकर थोड़ा पानी डाल दें और कड़ा कार्क लगाकर उसको भली प्रकार हिलाकर मिला दें। इससे उसमें तीव्र अमोनिया गैस पैदा हो जायेगी। इस गैस को कार्क खोलकर बिच्छू काटे हुए को सुंघायें तथा चूना नौसादर मिले हुए द्रव्य को दंश स्थान पर लेप कर दें। इसकी गन्ध मस्तक में पहुंचते ही बिच्छू का विष उतर जायेगा। रोता रोगी हंसने लगेगा।

९. टिंचर आयोडीन लगाने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। कार्बोलिक एसिड लगाने से भी आराम होता है

१०. अपामार्ग की जड़ पेड़ व पत्ते सहित उखाड़ लाए और यदि बिच्छू का विष डङ्क मारे हुए स्थान से ऊपर को चढ़ गया हो तो इसकी जड़ से रगड़ रगड़ कर विष को डंक स्थान पर आ जावे तब अपामार्ग की जड़ पेड़ पत्ते सहित पानी में बारीक पीस डंक मारे स्थान पर लेप कर दे और कंडे की आग से सेंककर सुखा दे। इससे बिच्छू का विष डंक मारे स्थान से भी उतर जायेगा। अपामार्ग की जड़ के प्रयोग के समय यह ध्यान रहे कि जहां तक विष चढ़ गया है वहीं पर जड़ रख कर नीचे को रगड़े, उसके ऊपर के अंग पर जड़ न रखे वरना ऊपर तक विष चढ़ जाएगा। अपामार्ग की जड़ हाथ में रखने से भी लाभ होता है।

११. थोड़ी सी चीनी (शक्कर, खांड़) को या फिटकरी को पानी में घोलकर २-४ बूंदें विपरीत भाग के कान में डालें और कुछ देर बाद निकाल दें। फिर डालें और निकाल दें। ऐसा ३-४ बार करने से विष नष्ट हो जाएगा।

१२. बिच्छू के डंक मारे हुए स्थान पर चाकू से थोड़ा सा घाव करके पुटेशियम परमेंगनेट (कुओं में डालने की लाल दवा) भर देने से विष दूर होता है।

१३. शूलान्तक इन्जेक्शन मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स बड़ौत का स्वचागत लगाने से फौरन विष दूर होता है।

१४. नोवल्जीन टेबलेट या सैरीडोन या कोडोपाइरीन आदि शूलनाशक दवायें पानी या चाय से देने से दर्द दूर करती है।

१५. धन्वन्तरि पत्र के सफल सिद्ध प्रयोगांक के पृष्ठ ३७ पर आयुर्वेदाचार्य प० ब्रह्मानन्द दीक्षित आयुर्वेदालंकार भिषगरत्न, गायत्री चिकित्सालय, राजा मण्डी आगरा का बिच्छू काटने का एक अमोघ चमत्कारी योग प्रकाशित हुआ जिसको अभी प्रयोग नहीं कर सका। विद्वजन प्रयोग कर फलाफल सूचित करने का कष्ट करें। उसका विधान निम्न प्रकार है—

१५ सफेद छोटी इलायची मुख में रखकर खूब चबायें चबाते समय मुख बन्द रखें। वायु मुख की बाहर न निकले फिर दो मिनट बाद बिच्छू के डंक मारे रोगी के कान में फूंक मारे। कान में फूंक मारते ही आधा मिनट के अन्दर रोना, चिल्लाना, तड़पना सब बन्द हो जायेगा। १ मिनट बाद फिर फूंक मारे और फिर २ मिनट बाद फूंक मारे। इससे बिलकुल ठीक हो जायेगा। फूंक मारने वाला भगवान का नाम लेता हुआ अगर फूंक मारे तो और भी अच्छा है। शरीर के जिस भाग में बिच्छू ने काटा हो उसी पार्श्व के कान में फूंक मारना चाहिए। यदि बीच में काटा हो तो दोनों कानों में फूंकना उचित होता है।

१६. बिच्छू के काटने पर, काटे से ऊपर के भाग में मजबूत बंध देना हितकर है। बांधने से विष के ऊपर के रक्त में संचारित न हो सकेगा।

१७. पुराने आक (जिस पर फूल व फल-डोडी आई हुई हो) की मोटी जड़ और लाल पत्ती के अपामार्ग (चिरचिटे) की जड़ दोनों को हाथ में रखवाकर बलपूर्वक मुट्ठी बंधवा दो। बस ५ मिनट में बिच्छू विष उतर जाएगा।

१८: थोड़े से नौसादर को पिसकर काटे पर लेप करने से आराम हो जायेगा।

१९. पलास (ढाक) के बीज को आक के दूध में घिसकर लगाने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

२०. आक के पत्तों का नस्य देने से खूब छींकें आयेंगी तथा रोता हुआ रोगी हंसता जाएगा।

२१. नौसादर, हरताल समभाग लेकर पानी में पीस काटे पर लेप करने से विष नष्ट हो जाता है।

—०—

★ पृष्ठ १६१ का शेषांश ★

खींच लेती है।

४. नेवला का मुंह सांप काटे जगह पर लगाये तो सांप का विष खींच लिया जाता है पर नेवला मरता नहीं

५. मयूर की गुदा भी अगर सांप ने काटी हुए जगह लगायी गयी तो वह भी सर्प विष खींच लेती है।

६. वसु मूल या पुनर्नवा मूल कान में पकड़ने से विष खींच लेते हैं।

(३) नस्य देना—यह अचेत अवस्था नहीं आना इसलिये हैं। और विष भी कम करती है। (लेकिन मंडली सांप काटने पर नहीं) नौसादर और चूना मिलाकर नस्य देना। आक का दूध और कपूर मिलाकर नस्य देना।

(४) अगर दो बार यवागू देने पर उल्टी न हो तो तमाखू और मयूर पंख का धूम्रपान कराना। उल्टी हो जायेगी। उल्टी होने के बाद नाड़ी देखना। उससे विष का प्रभाव कितना है यह देखकर आगे का इलाज करना।

विष कम होने के बाद—घी + सुहागा (टंकणखार लाही भस्म) पेट में खाने को देना। उल्टी होने पर यह प्रक्षालन भी करेगी।

(५) मिट्टी का लेप या कीचड़ में ही रोगी को बिठाना। जहर कम होता है। मैंने यह प्रयोग अनेक बार किया है। विष कम होने पर रोगी को उसकी हालत देखकर ५० ग्राम गोघृत पिलाना। उशीरासव, द्राक्षासव, द्राक्षा, ग्लूकोज, मनूके, शरबत दर्वीकर काटे रोगी को देना चाहिये। मंडली प्रकार के सांप काटने पर आम्ल रस वाले नहीं चलते। राजीमल प्रकार के सांप काटे हुए रोगी को मधुर और अम्ल पदार्थ नहीं चलते।

कुछ-कुछ रोगियों को संडास होकर भी विष कम होता है अतः उल्टी और संडास दोनों ही आवश्यक हैं। संडास के लिए दंतीमूल का प्रयोग कर सकते हैं।

नोट—मैंने यह सभी अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र स्वा. ब्रह्ममुनि पारीव्राज के पुस्तक में से सर्वविष चिकित्सा का अध्ययन किया और उसमें इसको बढ़ाया। आज ८० रोगी की चिकित्सा की और सभी को बिसारी सांप ने काटा था। अथर्ववेद में काण्ड ५ सूक्त १३ द्वारा बताया गया है। वहां, बन्धन, बाह्य चिकित्सा, मंत्र चिकित्सा, छेदन चूषण चिकित्सा, सांप के प्रकार और फिर औषधि बताया है। प्राणी, चिड़िया, मयूर, नेवला जलौका द्वारा विष हरण भी बताया हैं।

देखिये अथर्ववेद काण्ड ५ सूक्त १३

श्री आर. एस. वर्मा

विष प्रविष्ट होने के तुरन्त बाद प्राणी को असह्य वेदना का अनुभव होता है। इसका विष तीक्ष्ण होता है। प्रारम्भ में अग्नि से जलने की भांति तीव्र जलन होती है। दंश स्थान से विष सम्पूर्ण शरीर में चढ़ना आरम्भ कर देता है। दंश स्थान श्याम वर्ण हो जाता है तथा स्थान सूजता एवं फटता सा प्रतीत होता है। कभी-कभी तो पीड़ित व्यक्ति बेहोश भी हो जाता है।

चिकित्सा क्रम में बंधन, स्वेद, धूम्र, लेप, पेयादि हैं।

वृश्चिक दंश पर आयुर्वेदीय चिकित्सा—दंशित व्यक्ति को बिल्वादि बूटी गर्म जल से देते हैं तथा गर्म जल से दंशित स्थान को धोकर विष मरिच्यादि तैल लगाकर अग्नि से सेंकते हैं।

वृश्चिक दंश एवं अपामार्ग—अपामार्ग जिसे आधा-झारा, लटजीरा, लुपटेवा, ओंगा, चिरचिटा, अज्झा-झारी आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता है का प्रयोग वृश्चिक दंश पर निम्न प्रकार प्रयोग करें—

१. अपामार्ग की जड़ को पीसकर दंश स्थान पर लेप करें तथा पानी में पीसकर पीड़ित व्यक्ति को पिला दें। यह योग ऐलोपैथी के 'सायनोपेन' की सूचीवेध की तरह शीघ्र गुणकारी है।

२. २५० ग्राम फिटकरी का चूर्ण कड़ाही में अग्नि पर चढ़ायें। पश्चात इसमें अपामार्ग स्वरस ५०० ग्राम डालकर पकायें। जब औषधि निर्जल हो जाय तब चूर्ण को निकाल कर, पीस कर डाट लगाकर शीशी में रखलें। दंशित व्यक्ति को अपामार्ग के ताजा स्वरस के साथ (२ तोला) पिलायें। आवश्यकतानुसार २-३ मात्रायें पिलाई जा सकती है इसकी प्रथम मात्रा ही वृश्चिक विष को निर्मूल कर देती है। पूर्ण निरापद एवं शीघ्र असर दायक औषधि है।

३. अपामार्ग पंचांग सहित लेकर इसका स्वरस निकाल कर बराबर भाग रेक्टीफाईड स्प्रिट मिलाकर कार्क वाली शीशी में दवा रखें।

दंशित व्यक्ति के दंश स्थान पर रुई के फाहा में दवा लगा कर रखदें तथा ५-६ बूंद दवा आधा कप पानी में मिलाकर पिलावें। आशातीत लाभ होगा।

वृश्चिक दंश पर अन्य योग—निम्न योग भी वृश्चिक दंश पर लाभ कारी सिद्ध हुए हैं।

१. अजा (बकरी) की मेंगनी एक नग बंगला पान में लपेट कर रोगी को खिला दें। जैसे-२ दवा पेट में जायगी आपका मरीज स्वस्थ होता जायगा।

२. पुरानी गली सुपाड़ी के चूर्ण को तम्बाकू की चिलम में रख कर उसमें अग्नि रखकर पीने से वृश्चिक विष निर्मूल होता है।

३. गिलसरीन में थोड़ा (पुटास लाल दवा जो कुओं में डाली जाती है) मिलाकर, सुई की नोंक जिसमें जंग न लगी हो उससे कुरेद कर दंशित स्थान पर लगाने से मरीज को तुरन्त आराम मिलता है।

वृश्चिक दंश एवं यूनानी औषधियां—

१. 'इलाजुल्गुर्बा' में लिखा है कि दंश स्थान पर सूखी नमक में मिलाकर रखने से दंशित व्यक्ति को आराम हो जाता है

२. 'मोजिज' में लिखा है कि आठ माशे इन्द्रायण का हरा फल खाने से वृश्चिक दंश निर्मूल हो जाता है।

३. 'खैरुल तिजरब' के अनुसार वृश्चिक दंशित व्यक्ति २० तक के अङ्क उल्टे गिनकर १ अङ्क पर पूर्ण करे, वृश्चिक विष का प्रभाव नष्ट हो जायगा।

वैद्य चन्द्रशेखर व्यास आयु० विशारद

सर्पादि विष जनित उपद्रव शान्त करने के शीघ्रकारी उपचार आयुर्वेद के ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में भरे हुए हैं। विद्वान लेखक ने नाना ग्रन्थों से संकलन करके यह लेख "संकट कालीन चिकित्सा" के लिये प्रस्तुत किया है। सर्प दंश, वृश्चिक-दंश, लूता दंश, भिड़, मधु मक्खी-मूषक, शृगाल, पागल कुत्ते के विष आदि की शीघ्र चिकित्सा ही लाभप्रद है। विलम्ब करने पर प्राण जाने का भय रहता है। लोगों के भ्रम हैं कि आयुर्वेद में आशुफलप्रद चिकित्सा का नितान्त अभाव है। बहुतों को कहते सुना गया है कि वैद्यक में लम्बे समय का ही चिकित्सा विधान है। यह कहने वालों का ज्ञान ही सीमित है। जिस विषय को देखा तक नहीं वे भला आलोचना किस आधार पर कर सकते हैं? मैं जहां तक समझता हूं आपने इस पर पूर्ण रूप से प्रयोग प्रतिपादित किये हैं। सभी प्रयोग शास्त्रोक्त हैं। प्रत्येक प्रयोग के साथ शास्त्र का नाम देने की चेष्टा की है। आशा है यह लेख 'संकट कालीन चिकित्सा' की शोभा एवं कीर्ति बढ़ावेगा। वैद्य बन्धु एवं जन साधारण इससे लाभान्वित होंगे। अगदों की मात्रा लिखी नहीं गई है कारण मूल पाठ में नहीं है। परन्तु आजकल के बल वर्णानुसार अगद की मात्रा आधे ग्राम की होनी चाहिए। मधु इसमें २ ग्राम मिलाना चाहिये। चिकित्सक बन्धु रोगी के बलाबल को देख कर मात्रा खुद कल्पित करें। लेख बहुत बड़ा होगया था इस कारण विद्वान लेखक ने मूल लेख में प्रयोगों का ग्रंथों में से संस्कृत का जो मूल पाठ भी दिया था जिसे हमने स्थानाभाव के कारण छोड़ दिया है। आशा है कि विद्वान लेखक एवं पाठक इस हेतु हमें क्षमा करेंगे। —दाऊदयाल गर्ग।

सर्प दंश विष हर योग
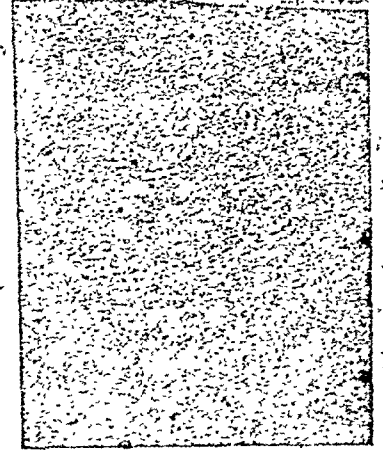
कुलिशादि वटिका (भै० र० विष)—कुलिश (कण्टकारी) सलोना और कूठ १-१ तोला, देवदारु १ माशा सबको आक के रस में घोटकर सरसों के बराबर गोली बनावें। इन्हें दूध के साथ देने से सांप के काटने से आसन्न मृत्यु और हत स्वर हुआ मनुष्य भी स्वस्थ हो जाता है। यह वटी सब प्रकार के विष तथा विषम ज्वरों का नाश करती हैं। मात्रा २-२ रत्ती।

कालवज्राशनी रस (बृ. नि. र. विष)—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध सुहागा और हल्दी बराबर लेकर एक दिन देवदाली के रस में घोटकर सुखा कर रखें। यह रस समस्त प्रकार के विषों का नाश करता है। इसे मनुष्य के मूत्र के साथ खिलाने से काले सर्प के काटे हुये को भी आराम होता है।

गरुडी मूल योग (गद निग्रह-सर्प चिकित्सा)—गिलोय की जड़ को पुष्य नक्षत्र में उखाड़ कर पीसकर पीने से ६ मास तक सर्प दंश का भय नहीं रहता। फिर बिच्छू आदि तो हैं ही किस गणना में। यदि सर्प काटने के पश्चात शरीर श्याम वर्ण हो गया हो तो गिलोय की जड़ घिसकर नस्य लेने, अंजन लगाने, लेप करने से विष नष्ट होता है।

गोरोचन चूर्ण (रस र.त. सार)—गोरोचन को मनुष्य मूत्र में पीसकर मधु में मिलाकर प्रयुक्त करने से गीदड़, बिल्ली, मेंढ़क और सांप का विष नष्ट होता है।

चन्द्रोदयोगद (वं. से. विष)—सफेद चन्दन, मैनसिल, कूठ दारचीनी, तेजपत्त, इलायची नागरमोथा, सरसों, बालछड़, पद्माख, इन्द्रजौ, केशर, गोरोचन, स्पृक्क, हींग, सुगन्ध बाला, खस, सोया, फूल प्रियंगु समान भाग लेकर पीस लें। यह चन्द्रोदयागद समस्त विषों का नाश करता है।

जैपालाञ्जनम् (वै. र.)—एक कागजी नींबू में छिद्र करके उसके भीतर जमालगोटे की सात गिरी भर दीजिये और सातवें दिन निकालकर धूप में सुखा लीजिए। फिर उन्हें दूसरे नीबू में भर कर रख दीजिए और सातवें दिन निकालकर सुखा लीजिए। यही क्रिया सात बार करके जमालगोटे को सुखाकर सुरक्षित रखिए। इसे मनुष्य के थूक में घिसकर आंखों में आंजने से सांप के काटने से उत्पन्न हुई मूर्छा नष्ट होती है। यह प्रयोग एक योगी से प्राप्त हुआ है और सत्य है।

तण्डुलीयक मूल प्रयोग (यो० र० विष)— चौलाई की जड़ को तण्डुल जल (चावलों के पानी) के साथ पीस कर पीने से सर्प विष नष्ट होता है।

तार्क्ष्योगद । सु. सं. क० ५, वं० से० भा० वै० वि० अ० ८२—पुण्डरिया, देवदारु, नागरमोथा, कृष्णसारिवा, कुटकी, कनेर, गन्धतृण, कमलपुष्प, नाग केशर, तालीसपत्र, सज्जी, केवटीमोथा, इलायची, संभालू छरछरीला, कूठ, तगर, फूल प्रियंगु, लोध, खसवाला, सोनागेरू, गन्धक, चन्दन और सेंधा नमक समान भाग लेकर महीन चूर्ण करें। शहद में मिलाकर गाय के सींग में भरकर रख दीजिए। यह तार्क्ष्यागद सर्प विष को नष्ट करता है। यदि तक्षक सर्प का विष हो तो भी नष्ट करता है।

त्रिवृताद्यगद (च० द०)—निसोत, इन्द्रायण, मुलहठी, हल्दी, दारुहल्दी, मंजिष्ठादिगण, त्रिकुटा और सेंधा नमक का चूर्ण समान लेकर सबको शहद में मिला कर गाय के सींग में भर कर रख दीजिए। इसे पीने से अथवा मलने से या नस्य लेने से अञ्जन लगाने से विष नष्ट होता है।

नीलिनी मूल कल्क । ग० नि० (सर्प विष)—नीलिनी (नील वृक्ष) या लज्जालु की जड़ को चावलों के पानी के साथ पीने से मण्डलीक सर्प का विष तुरन्त नष्ट होता है।

द्राक्षाद्यगद: वं० से० (विषा०)—दाख (मुनक्का) असगन्ध, सल्लकी, वृक्ष का गोंद, दूधिवच, तुलसी के पत्ते, कैथ के पत्ते, बेल के पत्ते और अनार के पत्ते समान भाग लेकर चूर्ण करे। इसे शहद के साथ खिलाने से समस्त प्रकार के विष विशेषतः मण्डली सर्प का विष नष्ट होता है।

पुनर्नवायोग । रा० मा० (विष)—पुष्य नक्षत्र में सफेद पुनर्नवा की जड़ को उखाड़ कर पानी में घिसकर पीने से एक वर्ष तक सांप और बिच्छू पास तक नहीं फटकते। यह सर्प एवं बिच्छू का टीका है।

पिण्डी तगर मूल योग । द०ग०(विष)—पुष्य नक्षत्र में पिण्डी तगर की जड को उखाड़ लें। इसे पीसकर सर्प दंश स्थान पर लगाने से मृत प्राय. रोगी भी सचेत हो जाता है।

पिण्डी तगराञ्जन । वं० से०, भा० प्र० । (विष)—पुष्य नक्षत्र में पिण्डी तगर को उखाड़ लें। यदि कोई रोगी सर्प दंश से मृतक समान भी हो गया हो तो उसकी आंखों में इसका अञ्जन लगाने से वह सचेत हो जाता है।

बिल्वादि योग (वा० भ० उ. अ. ३६)—बेल की जड़ की छाल, तुलसी की मंजरी, करंज के फल, तगर, देवदारु, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आंवला, हल्दी और दारुहल्दी का अत्यन्त महीन चूर्ण समान भाग लेकर सबको बकरे के मूत्र में अच्छी तरह घोटकर छाया में सुखाकर रक्खें।

इसका अञ्जन लगाने, इसकी नस्य लेने और इसे पीने से, सांप, मकड़ी, चूहे और बिच्छू आदि का विष तथा विषूचिका, अजीर्ण और ज्वर, भूत विकार नष्ट होते हैं।

भीमरुद्रो रस: (भै० र० विष)— शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरताल, कालीमिर्च, शुद्ध संखिया, शुद्ध हिंगुल, अपामार्ग की जड़, धत्तूरे की जड़ और सिरस की जड़ का चूर्ण समान भाग लेकर सबको एकत्र घोटकर उसे रुद्राक्ष और

कोयल के रस की १०८-१०० भावना देकर मूंग के बराबर गोलियां बनावें।

सांप काटे हुए मनुष्य को और जिसने विष पी लिया है उसे यदि बेहोशी हो गई हो और इन्द्रियां अपना काम न करती हों तो ये गोलियां खिलाने से विष नष्ट होता और पुनः चेतना आ जाती है। मात्रा—१-१ गोली घृत के साथ।

मरिचादि चूर्णम् (वं० से० विष)—कालीमिर्चों के ५ तोले चूर्ण को चूके के रस और घी में मिलाकर पिलावे तथा लेप करने से उग्र सर्प विष भी नष्ट हो जाता है।

वटशुङ्गादि योगः (वं० से० विष)—बड़ के अंकुर, मजीठ, जीवक, ऋषभक, मिश्री और खम्भारी समान भाग लेकर एकत्र पीस लें। इसे पानी के साथ पिलाने से मण्डल सर्प का विष नष्ट होता है।

विषहरि वर्ति (रसे० चि० मं० अ० ८)—जमालगोटे की गिरी को नीबू के रस की २१ भावना देकर वत्तियां बना लें। इसे मनुष्य के थूक में घिस कर आंख में लगाने से सांप का विष उतर जाता है।

वन्ध्याकर्कोटकी मूल योगः (गदनिग्रह-भो. २, यो. र. अ. ७८)—बांझ ककोड़े की जड़ को बकरी के मूत्र की भावना कर सुरक्षित करके रक्खें। सर्प विष से मूर्छित पुरुष की आंखों में पीसकर इसकी नस्य देने से होश आ जाता है।

लाङ्गल्यादि नस्यम् (वृ० नि० र०. विषरोगा)—जल में कलिहारी की जड़ को पीस कर उसकी नस्य देने से सर्प विष नष्ट होता है।

सुहागे का वाक की जड़ को पानी में पीसकर पिलाने से भी सर्प विष नष्ट होता है।

महागन्ध हस्ती नामागदः (चरक चि० २३)—हेमपत्ता, अगर, नागरमोथा, इलायची, पञ्च निर्यास (राल, गुगल, सिल्हक, लोहबान और अफीम) चन्दन, स्पृक्का (असवरग) दालचीनी, जटामांसी, कमल, सुगन्धबाला, रेणुका, नख, पत्री नामक गन्ध द्रव्य, देव दारु, धतूरा, केशर, गन्धतृण, कूठ, फूल प्रियंगु, तगर, सिरस का पंचाङ्ग (छाल, फूल, पत्र, बीज जड़) सोंठ, मिर्च, पीपल, हरताल, मनसिल, जीरा, अपराजिता (सफेद फूल की कोयल) कटभी (मालकांगनी) करञ्ज, सफेद सरसों, सम्भालू, हल्दी, तुलसी, रसौत, सोनागेरु, मजीठ, नीम के पत्तों का रस, बांस की छाल, अजगन्ध, हींग, केथ, अम्लवेत, लाख, मुलहठी, महुवे का फूल, बावची, वच, बड़ा (बूढ़ी) गोरोचन और तगर, पुष्य नक्षत्र में यह सब औषधियां समान भाग लेकर महीन चूर्ण बनावें और इसे गोपित्त में घोटकर गोलियां बना लें। इसे पान, अञ्जन और प्रलेप द्वारा प्रयुक्त करना चाहिये।

इसे हित मित पथ्य भोजन करते हुए आंखों में लगाने से पिल्ल, आंख की खुजली, तिमिर, रतौंध, कांच, अर्बुद और पटलादि नेत्र रोग नष्ट होते हैं।

यह अगद विषम ज्वर, अजीर्ण, दाद, खाज, विसूचिका, चूहे का विष, मकड़ी का विष, समस्त प्रकार के सर्पों का विष, मूल विष, कन्द विष, इत्यादि को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

इस अगद का शरीर पर लेप करके सर्प को पकड़ लिया जाय तो भी प्राण हानि नहीं हो सकती।

यदि विष के प्रभाव से मृतप्राय: व्यक्ति पर भी इसे प्रयुक्त किया जाय तो वह स्वस्थ हो जाता है।

आध्मान रोग में गुदा पर और मूढगर्भा में योनि पर इसका लेप करना चाहिये। मूर्छा और सिर पीड़ा में सिर पर इसका लेप करना अत्यन्त लाभदायक है।

भेरी, मृदङ्ग और ढोल आदि बाजों पर इसका लेप करके उन्हें सर्प विषग्रस्त मनुष्य के सामने बजाने और छत्र तथा पताका पर लेप करके उसे दिखाने से विष नष्ट हो जाता है। जिस स्थान में यह अगद रहता है वहां बाल ग्रह, कार्मण (कामण) बेताल और विरोधियों द्वारा प्रयुक्त अथर्व वेदोक्त मन्त्र किसी प्रकार की हानि नहीं करते।

इसको विद्यमानता में वन्दित पुरुष राजा और चोरादि की हानि नहीं पहुँचा सकते। जिसके पास यह औषधि होगी उससे सभी लोग अपने स्वार्थवश या उसकी महत्ता के विचार से मित्र भाव रखेंगे और उसे राजा तथा चोरादि की हानि न पहुँचाएंगे, न उस पर कोई शस्त्र प्रहार करेगा और न अग्नि जलायेगा।

जिसके पास यह अगद होगा उसे धन की भी कमी
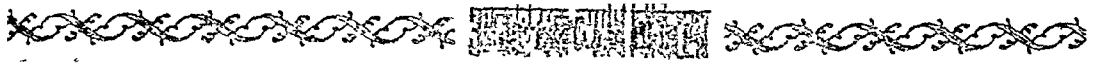
न रहेगी। इसे तैयार करते समय 'मम माता जया नाम स्वाहा'—मन्त्र का जाप करते रहना चाहिये।

मन्त्र जाप को विश्वावाद न समझना चाहिये मन्त्र हिप्नोटिज्म का एक प्रधान अङ्ग है। इसी को "सजेशन" कहते हैं। यदि सजेशन या मन्त्र का प्रयोग सन्देह रहित विश्वास के साथ विधिवत किया जाय तो अवश्य फल दायक होता है। मैंने रंगून (बर्मा) मे एक बौद्ध भिक्षु (पुंगी) को देखा था। वह १ चूर्ण अपने हाथ पर लगाता था और तेज धार वाले दाव की चोट मारने को कहता था, उसके उससे कुछ भी नहीं होता था—आज यह अगद देख कर विश्वास होता है। औषधि एवं मन्त्र सत्य हैं—जैसा विधान लिखा है उसी विधान द्वारा निर्माण करने पर ही लाभ होगा। जैसा कि पुष्यानुग चूर्ण बनाते हैं उसी तरह इसे बनाया जाय तो पूरा लाभ नहीं होगा। पुष्य नक्षत्र में ही निर्माण होना जरूरी है।

यह शास्त्र विधि मु सृज्य वर्जते.....गीता—

शास्त्र विधि का परित्याग ही अश्रद्धा का मूल कारण है।

महोऽगदः (च. चि., वृ. मा. विषा., भ. नि. सर्प विष आ. वे. वि. चि. स. अ५)—त्रिफला, त्रिकुटा, कुटकी, हल्दी, दारु हल्दी, मजीठ, सेंधा नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल का चूर्ण सबको सम्पूर्ण मिलाकर सींग में भरकर रख दें। यह अगद सर्पादि के भयङ्कर विष को भी नष्ट कर देता है। अत्यन्त प्रभावशाली है। इसे पान, अंजन, नस्य और नस्य द्वारा प्रयुक्त करना चाहिये।

महामृत्युञ्जया गुटिका (र. सं. क. उल्लास ५)—त्रिफला, वायविडङ्ग, दारुहल्दी; शुद्ध पिपरामूल, पीपल मूल और सोंठ का चूर्ण १-१ भाग सफेद जन का चूर्ण ८ भाग तथा शुद्ध विष का चूर्ण १ भाग सबको सरीं भांति पानी में घोलकर गोलियाँ बना लें। ये गोलियाँ सर्प विष, त्रिदोषज) विसूचिका और अजीर्ण को नष्ट कर देती हैं। इनके प्रभाव से मूलशाप रोगी भी बच सकता है।

श्वेत पुनर्नवा मूल योगः (ग्र. नि. विषा)—जो व्यक्ति पुष्य नक्षत्र में उखेड़ पुनर्नवा की जड़ को पानी में पीस कर पीता है उसे एक वर्ष तक सर्प और बिच्छू के काटने का भय नहीं रहता।

शिरीषादि योगः (यो. र., वं. से. विषा)—शिरस के फूलों के स्वरस में सफेद मिर्च भिगो दें और एक सप्ताह तक भीगे रहने दें एवं तदनन्तर छाया में सुखाकर पीस लें। इसे पिलावे, इसकी नस्य देने और इसका अंजन लगाने से सर्प विष नष्ट होता है।

संज्ञा प्रबोधन रस (र. स. क. उल्लास ५)—फिटकरी, शिवालोधा, जमालगोटा, कालीमिर्च, नीम के बीज और पुत्र जीवक (जीयापोता की मज्जा) समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर ताम्रपात्र में डालकर नीबू के रस की सात भावना दें और १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। इसे (पानी में घिसकर) अञ्जन लगावे से सन्निपात, अपस्मार और सर्प विष नष्ट होता है।

सर्प विष हराञ्जनम् (शा. सं. खं. ३ अ. १३)—जमालगोटे की गिरी को नीबू के रस की २१ भावना देकर बत्तियां बना लें। इसे मनुष्य के थूक में घिसकर आंखों में आंजने से सर्प विष नष्ट होता है।

सञ्जीवनी वटी (यो.र., त. २४, वृ. यो. त., त. ७१, भै. र. अग्निमान्द्य, शा. सं., खं. २ अ. ७ यो. र., अजीर्ण., को. चि. म., श ३)—वायविडङ्ग, सोंठ, पीपल, हर्र, आमला, बहेड़ा. वच, गिलोय, भिलावा और शुद्ध विष इनका चूर्ण समान भाग लेकर सबको गोमूत्र के साथ एकत्र घरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लें।

इनमे से अजीर्ण और गुल्म में १ गोली, विसूचिका में २ गोली, सर्प दंश में ३ गोली और सन्निपात में ४ गोली देनी चाहिए।

अनुपान—अदरक का रस—ये गोलियां उक्त रोगों में मृत प्रायः रोगी को भी जिला देती हैं।

सूचना—भिलावा मिलाने को गोमूत्र में धोकर कण रहित कर लेना चाहिये और फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिलानी चाहिये।

संजीवनी वटी वास्तव में संजीवनी ही है। इस वटी के निर्माण कर्ता का शाप नष्ट कर सकता है। इससे दंश दोषी और अजीर्ण नष्ट हो सकती है। वैद्य के पास यदि शास्त्रीय विधान से निर्मित संजीवनी वटी हो तो वह संजीवन करने में समर्थ होगा। इसमें सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है। मौसिमी ज्वर एवं सन्निपातिक

ज्वर में भी बहुत लाभप्रद है। सर्प विष में तो शुद्ध गौ के घी के साथ दी जाय तो ज्यादा उत्तम है।

अर्क मूलादि योग (रा. मा.।विष २८)—आक की जड़ के चूर्ण को शीतल जल के साथ पीने से धत्तूर, कनेर तथा गोनास (सर्प विशेष) का विष नष्ट होता है।

वृश्चिक दंश चिकित्सा

घृत सैंधव योग (रा. मा.।विष २८)—गरम घृत में सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर पीने से श्वास-कम्पा (कपकपी), पसीना, दाह, पीड़ा तथा बिच्छू के काटे को तुरन्त आराम होता है।

जीरकादि लेप (वं. से.। विष)—जीरा तथा सेंधानमक का समान भाग चूर्ण घृत और शहद में मिलाकर मन्दोष्ण लेप करने से वृश्चिकदंश की पीड़ा शांत होती है।

जंपाल लेप (वृ.नि.र.। विष)—जमाल गोटे की गिरी को पानी में पीसकर लेप करने से बिच्छू के डंक की पीड़ा तुरन्त शान्त हो जाती है।

तालनिम्बादि योग (वं. से.। विष)—हरताल, नीम के पत्ते बाल और सेंधानमक को अथवा केवल चिरचिटे के पत्तों को घी में मिलाकर धूप देने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

नवसादरादि लेप (वृ. नि. र.। विष रोग)—नवसादर, हरताल समान भाग लेकर पानी में पीसकर लेप करने से बिच्छू का विष तुरन्त उतर जाता है।

पलाश बीजादि लेप (वं. से.। विष रोग)—ढाक (पलाश) के बीजों को आक के दूध में पीसकर या पीपल तथा सिरस के बीजों को पानी के साथ पीस कर लेप करने से बिच्छू के दंश की पीड़ा नष्ट हो जाती है।

नागार्जुनी गुटिका (ग. नि.। नेत्र)—हल्दी, नीम के पत्ते, पीपल, कालीमिर्च, नागरमोथा, विडङ्ग तथा सोंठ का समान भाग चूर्ण लेकर सबको बकरी के मूत्र में घोटकर बेर की गुठली के बराबर गोलियां बनाकर छाया में सुखावें।

इन्हें पानी के साथ घिसकर आंख में आंजने से तिमिर, शहद से पटल, भांगरे के रस से रतौंधी, स्त्री के दूध से फूला, गोमूत्र से पिटिका, कांजी से कामला तथा

जल के क्वाथ के साथ घिसकर लगाने से बिच्छू का विष नष्ट होता है।

पारावत पुरीषादि योग—(वं. से.। विष रोग)—कबूतर की बीठ, हर्र, तगर और सोंठ। सबके समान भाग चूर्ण को बिजौरे नीबू के रस में मिलालें। यह बिच्छू के लिये अत्युत्तम अगद है।

मनःशिलादिवर्ति (वं. से.। विषरोग)—मनसिला, सेंधानमक, हींग, जाविजी तथा सोंठ का चूर्ण समान भाग लेकर गाय के गोबर के रस में घोटकर गोलियां बनालें।

इसे गाय के गोबर के रस में पीसकर लगाने से बिच्छू का विष दूर होता है।

वृश्चिक दंश हरो लेपः (यो. त.। त. ७८)—पीपल और सिरस के बीजों को बकरी के दूध में पीसकर लेप करने से बिच्छू का विष नष्ट होता है।

कार्पास पत्र लेप (यो. त.। त. ७८)—कपास के पत्तों को पीसकर घी में मिलाकर लेप करने से या वच्छनाग को पानी के साथ पीसकर लेप करने से बिच्छू का विष नष्ट हो जाता है।

स्थावर जंगम विष चिकित्सा

अजित अगद (सु. सं.-क. अ. ६)—विडङ्ग, पाठा त्रिफला, अजमोद, हींग, तगर, त्रिकुटा पांचों नमक, चित्रक इन सबका महीन चूर्ण करके शहद में मिलाकर उसे गाय के सींग में भर दें और उस सींग को १५ दिन तक सींगों के ढेर में दबा रहने दें। फिर निकाल काम में लावें। यह अगद स्थावर जंगम विषों का नाश करता है।

अजेय घृत (सु. सं.)—मुलहठी, तगर, कूठ, देवदारु, रेणुका, नागकेशर, इलायची, एलवा, नीलोफर, मिश्री, विडङ्ग, चन्दन, तेजपत्ता, फूलप्रियंगु, कतृण, हल्दी, दारुहल्दी, कंटाई, दोनों सारिवा, शालपर्णी, इनके कल्क से सिद्ध किया हुआ घी शीघ्र ही सब प्रकार के विष का नाश करता है।

गरविषहर घृतम् (अमृत घृत) ग. नि.। गर विष—अपामार्ग के और सिरस के बीज, दोनों प्रकार की मकोय और कोयले को गोमूत्र में पिष्ट कल्क तथा चतुर्गुण जल के साथ सिद्ध घृत अत्यन्त विष नाशक है। यह विष से
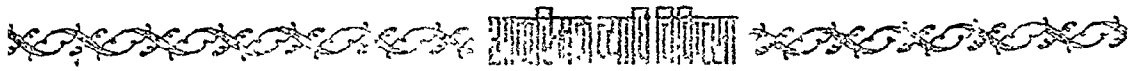
मृत्यु तुल्य दशा को प्राप्त प्राणी को जीवनदान देने के लिये अमृत के समान है। घी १ किलो, जल ४ किलो तथा कल्क द्रव्य समान भाग मिश्रित २५० ग्राम।

गरनाशक रस (र.च., यो.र., विष)—शुद्ध पारद, स्वर्ण भस्म तथा शुद्ध सोनामक्खी १-१भाग, शुद्ध गन्धक ३ भाग लेकर सबको घी कुमार के रस में खरल करें, जब घोटते घोटते सूख जाय तो रस तैयार समझिये।

इसमें से १ माशा औषधि मिश्री और शहद में मिला चित्रक के सिद्ध दूध के साथ खाने से गरविष (कृत्रिम विष अथवा उपविष) का नाश होता है।

नोट—चित्रक १ भाग दूध ८ भाग पानी ३२ भाग दूध शेष रहने पर उतार कर छान लें।

चन्दनादि प्रयोग (च. मं.। चि अ. २३)—लाल चन्दन, अगर, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, दालचीनी, मैनसिल, तमालपत्र (तेजपत्ता) केशर को रस और सिंह का नख बराबर-बराबर लेकर चावलों के पानी में पीसकर प्रयोग करने से सब प्रकार के विष नष्ट होते हैं।

चूर्णागद (ग. नि.। विष.)—खस, नीम की छाल, तगर, कूठ, नागरमोथा, स्वर्णमाक्षिक भस्म, इन्द्र जौ, नोद और सप्तपर्ण (सतौने) की छाल बराबर-२ लेकर चूर्ण कर लीजिये। इस चूर्णगद को कृष्ण ..., सोने या चांदी के पात्र में शहद मिलाकर पिलाने से स्थावर जंगम और कृत्रिम विष नष्ट हो जाते हैं।

जलवेतसादि योग (बं. से.।विष)—जलवेतस वृक्ष की जड़ और कूठ को पानी में पकाकर छानकर ठण्डा करके पीने से विष का नाश होता है।

तण्डुलीयकं घृतम् (र.र., बं.से., भै.र., धन्व.,[विष]—चौलाई की जड़ और घर के धुवें के कल्क तथा दूध के साथ पका हुआ घृत पीने से समस्त विष विकार नष्ट होते हैं।

ताम्र सुवर्ण योग (वै.म.र.।पटल १९)—ताम्र भस्म तथा स्वर्ण भस्म समान भाग लेकर एकत्र खरल करके मिश्री तथा मधु में मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के स्थावर जंगम विष उसी प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से अन्धकार दूर होता है।

दशाङ्ग धूप (बं.से., धन्वन्तरि, विषाधिकार)—बेल के फूल तथा छाल, बालछड़, फूल प्रियंगु, नागकेशर, सिरस की छाल, तगर, कूठ, हरताल और मैनसिल सबका समान भाग चूर्ण लेकर पानी के साथ पीस लें। इसे शरीर पर लगाने से सर्प विष अथवा विष भक्षण का असर नहीं होता।

इससे शरीर की कांति बढ़ती है। स्वयम्वर में जाने वाला इसका लेप करके जाय तो सुन्दर प्रतीत होगा। युद्ध में लेप करके जाय तो देवता के समान राज द्वार में भी विजय प्राप्त करता है, यह बृहस्पति द्वारा कहा गया ब्रह्मा जी ने स्वयं निर्मित किया। यह धूप जिस घर में होता है उस घर में अग्नि का भय नहीं रहता, राक्षस भी दूर भाग जाते हैं। बालकों के पूतना आदि व्याधि नहीं होती, जहां दशाङ्ग धूप रहता हो।

पिप्पल्याद्योऽगद (व.से.।विष)—विष दूषी रोगी को स्निग्ध करके पश्चात् वमन विरेचन कराके यह अगद शहद के साथ सेवन कराने से अन्नपानादि के दोष से उत्पन्न हुआ विष नष्ट होता है।

पीपल, खस, जटामांसी, लोध इलायची संचर नमक, सुगंध बाला, केवटी मोथा तथा सोनागेरू समान भाग मिलाकर चूर्ण बनावें।

पुत्र जीवमज्जा योग—बृ.नि.र.।विष—जियापोते की मज्जा (मिगी) ५ माशे लेकर उसे गाय के दूध में पीसकर पिलाने से अत्यन्त उग्र दूषी विष नष्ट होता है।

पञ्च शिरीष लेप—च.सं.।चि.अ. २५—सिरस के फल जड़, छाल, पुष्प तथा पत्र समान भाग लेकर पीसकर सबको घृत में मिला लेप करने से विष नष्ट होता है।

पिण्डी तगराञ्जनम्—बं. से., भा. प्र.। विष—पुष्य नक्षत्र में पिण्डी तगर को उखाड़ ले। यदि कोई रोगी सर्पदंश से मृतक समान हो गया हो तो उसकी आंखों में इसका अञ्जन लगाने से वह सचेत हो जाता है।

पञ्चशिरीषाऽगद—च.सं.।चि.अ.।२३ विष, ग.नि.—

सिरस के पुष्प, पत्र, छाल, फल और मूल समान भाग लेकर कूट लें। यह चर (सर्पादि) तथा अचर (संखिया, बछनाग आदि) विष को नष्ट करने के लिये

सर्वोत्तम अगद है। इसे घी में मिलाकर पिलाना चाहिए।

मुस्ता योग—रा. मा। अ. ३८—नागरमोथे की जड़ को पीसकर थोड़े से घी में मिलाकर चावलों के पानी के साथ पीने से अति दारुण कृत्रिम विष नष्ट हो जाता है।

मंजिष्ठाद्योऽगद—वं.से.। विषरोग—मजीठ, इलायची, हल्दी, मुनक्का, जटामांसी, मुलहठी और रेणुका समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। इसे शहद में मिलाकर खिलाने से विष नष्ट होता है।

लवणादि योग—वं.से.। विष रोग—पांचों लवण, निशोत, दन्तीमूल, इन्द्रायण की जड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, हल्दी, मजीठ, मुलहठी, अगर (अभाव में काकड़ासिंगी) समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। यह अगद हर प्रकार के विष को नष्ट करता है। इसे पान, लेप, नस्य आदि द्वारा प्रयुक्त करना चाहिये।

वचाद्यञ्जनम्—वं.से.। विषरोग—वच, कालीमिर्च मैनसिल, देवदारु, करञ्ज बीज, हल्दी, दारुहल्दी, रसौत, सिरस के बीज तथा पीपल इनका चूर्ण समान भाग लेकर सबको एकत्र घोटकर बारीक करें। इसे आंख में लगाने से गर विष नष्ट होता है।

विष वज्रपातो रस—र.का.धे.। विषा., बृ.यो.त.। त. १४५—पारद भस्म (पाठांतर के अनुसार वङ्ग भस्म), हल्दी का चूर्ण, शु. टंकण, कालीमिर्च का चूर्ण तथा तूतिया समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर देवदाली (बिन्दाल) के रस में खरल करके सुखाकर सुरक्षित रखें। मात्रा २॥ माशे, अनुपान—मनुष्य का मूत्र।

इसे पिलाने से स्थावर-जङ्गम भयंकर से भयंकर विष भी नष्ट हो जाता है। तूतिया शुद्ध लेना चाहिए।

शिखरी घृतम्—भै.र.। विषादि—धमासे की छाल, कूठ, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, काकड़ासिंगी, सिरस की छाल, त्रिप, वच (कुदालिका-कुदलिया) फरहर की छाल, सफेद चन्दन, तगर और मुरामांसी समान भाग मिश्रित २०० ग्राम।

२ सेर घी में ८ सेर अपामार्ग का क्वाथ और यह कल्क मिलाकर मन्द-मन्द अग्नि से यह घृत सिद्ध करें। यह घृत समस्त विषजन्य रोगों को नष्ट करता है तथा सन्निपात और विषम ज्वर में भी उपयोगी है।

शिरीषादि लेप—भै. र.। विष—सिरस की छाल तथा जड़, पत्र, पुष्प और बीजों को गोमूत्र में पीसकर लेप करने से विष नष्ट होता है।

सैंधवादि योग—ग. नि.। विष—सेंधानमक और कालीमिर्च का चूर्ण १-१ भाग तथा नीम के बीज (निम्बोली) २ भाग लेकर चूर्ण बनावें।

इसे घृत तथा शहद में मिलाकर खिलाने से स्थावर-जङ्गम विष नष्ट होता है।

शर्करादि लेह—बृ.नि.र.। विष—खांड, स्वर्णमाक्षिक भस्म तथा स्वर्ण भस्म समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर सेवन करने से उग्र कृत्रिम विष नष्ट होता है।

सूचिकाभरण रस—(र.चि.म.। अ.९, शा.सं.। खं. २ अ. १२, भै.र., बृ. यो.त.। त. ६, यो.चि.म.। अ. ७, बृ.नि.र., र.का.धे., र.रा.सु.)—शु. वत्सनाभ ५ तोला, शु. पारद २॥ माशे लें, दोनों को एकत्र मिलाकर खरल करें। तदनन्तर दो ऐसे शराव (मृत्पात्र) लें, जिनके भीतर कांच लगाया हुआ हो। उसमें उपरोक्त औषध बन्द करके ३-४ कपड़मिट्टी कर दें और उसे सुखाकर चूल्हे पर चढ़ाकर उसके नीचे दोपहर तक मन्दाग्नि जलावें। तदनन्तर उसके स्वांग शीतल होने पर शरावों को आहिस्ते से खोलकर ऊपर के प्याले में लगे हुये रस को सावधानी से छुड़ाकर ऐसी शीशी में रखना चाहिए कि औषधों को हवा न लगे।

जब रोगी सन्निपात या सर्पविष से मूर्छित हो तो उसके सिर पर (तालु पर) छुरे से त्वचा को जरा खुरच दें तथा सुई की नोंक से शीशी में से औषध निकाल कर उस स्थान पर मल दें। सुई की नोंक पर जितनी औषध लग जाए उतनी ही पर्याप्त होती है।

रक्त के साथ औषध का सम्पर्क होते ही मूर्छित रोगी भी सचेत हो जाता है। इसके प्रभाव से सर्पदष्ट मृत प्रायः रोगी भी जीवित हो जाता है। यदि औषध अधिक गरमी करे तो मधुर पदार्थ खिलाना चाहिए।

स्वर्ण योग—भा.भै.र.। पंचमो भाग, पृष्ठ ४२१—कच्चे स्वर्ण को पानी के साथ पत्थर पर घिसकर शहद मिलाकर पीने से अथवा सोने के वर्कों को शहद में घोलकर खाने से विषादि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।
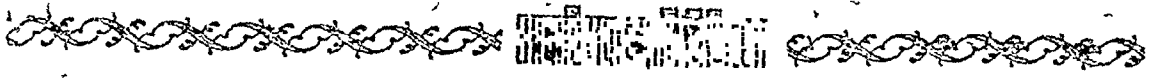
मात्रा—शुद्ध सोने के वर्क २, मधु ५ ग्राम ।

क्षारागद—सुश्रुत सं. । कल्प अ. ७—धव, अश्वकर्ण, तिनिश, पलाश, नीम, पाढल, फरहद, आम, गूलर, अकरकरा, अर्जुन, ककुभ (अर्जुन), सर्ज (राल), सिरस, लसोड़ा, अंकोर, आमला, अमलतास छोटा, छुड़ा, शमी (आबी), कैथ, पाषाण भेद, आक, करञ्ज, थूहर, भिलावा, मरुवा, मुलहठी, सहजना, शाक वृक्ष, गावजवां, मूर्वा, बांद, काकमाचाना (गोपघोंटा), दुर्गन्धित खैर, इनके काष्ठों की भस्म समान लेकर सबको ६ गुना गोमूत्र में मिलाकर क्षार विधि अध्याय की विधि से क्षार बनालें तथा इसमें पीपलामूल, चौलाई, दारुचीनी लवङ्ग, मजीठ करंज, गजपीपल, कालीमिर्च, नीलोफर, सारिवा, विडंग, घर का धुआं, सोमलता, निसोथ, केसर, शालपर्णी, जंगली आम, सफेद सरसों, वरणा, सेंधानमक, पिलखन की छाल, जलवेत, अरण्ड मूल, अशोक, कृष्णदन्ति, सर, कलवालुक, नागदन्ती, अतीस, दूर्वा, देवदारु, कूठ, हल्दी तथा वच, इनका चूर्ण तथा लोह भस्म समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर उपरोक्त क्षार में मिलावें एवं शुष्क हो जाने पर उसे उतार कर लोह पात्र में भरकर रख लें । दुन्दुभि, पताका, तोरण आदि पर इस क्षार का लेप करना चाहिए । इस क्षार से लिप्त बाजों का शब्द सुनने और पताका तोरण आदि को देखने से तथा स्पर्श करने आदि से विष का प्रभाव नष्ट होता है । यह अगद शर्करा, अश्मरी, वातगुल्म, कास, शूल, उदर रोग, अजीर्ण, ग्रहणीदोष, अरुचि, शोथ, श्वास तथा सर्पविष आदि नष्ट करता है ।

अमृत घृतम्—ग. निग्रह, वं. से. (धन्व.)—अपामार्ग (चिरचिटे) के बीज, सिरस के बीज, मेदा, महामेदा तथा मकोय ४-४ तोले लेकर सबको गोमूत्र के साथ पीस लें । २ सेर घी में उपरोक्त कल्क तथा ८ सेर पानी मिलाकर पकावें । जब पानी जल जाय तो घी को छान लें ।

यह घृत अत्यन्त विष नाशक है । मृत प्राय रोगी भी बच जाता है ।

कृष्णादि क्वाथ (रा. मा, विष २८)—पीपल तथा अंकोल का क्वाथ या चूर्ण पीने से १ दिन में दारुण कृत्रिम विष भी अवश्य नष्ट हो जाता है ।

लूता विष चिकित्सा

गिरि कर्ण्यादि लेप (बृ. नि. र., वि. चि.)—दोनों प्रकार की कोयल, रीठा, पाढल, दोनों प्रकार की पुनर्नवा, कैथ और सिरस की छाल का लेप करने से मकड़ी का विष नष्ट होता है ।

चन्दनादि प्रलेप (वं. से., विष)—लाल चन्दन, पद्माख, कूठ, तगर, खस, पाढल की छाल, संभालु, सारिवा तथा रीठा की छाल समान भाग लेकर पानी या घी तथा सिरस की छाल के रस में पीसकर लेप करने से मकड़ी का विष नष्ट होता है ।

रजन्यादि लेप (बृ. नि. र., वं. से., विषा)—हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, पतङ्ग तथा नागकेशर, समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनावें । इसे ठण्डे पानी में पीसकर लेप करने से मकड़ी का विष शीघ्र नष्ट होता है ।

लाङ्गल्यादि लेप (शा. सं., खं. ३, अ. ११, वं. से., विषा)—कलिहारी, अतीस, कड़वी तुम्बी के बीज, कड़वी तोरी के बीज तथा मूली के बीज समान भाग लेकर सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करें ।

इसे कांजी में पीसकर लेप करने से विषैले कीटों के काटने से उत्पन्न हुए विस्फोटक नष्ट होते हैं ।

लूता विषहरो लेप (यो. त., त. ७८)—कोयल, अर्जुन की छाल, लिहसोड़े की छाल तथा पीपल की छाल इनमें से किसी एक का क्वाथ बनाकर पीने और उससे धोने से अथवा कल्क या चूर्ण बनाकर खाने और लेप करने से विषैले कीड़े, मकड़ी के व्रण को आराम होता है।

मरिचादि लेप (बृ.नि.र., विष., धन्वन्तरि—विष)—

कालीमिर्च, सोंठ सेंधानमक और सञ्चर नमक के समान भाग मिश्रित चूर्ण को पान के रस में घोटकर लेप करने से वर्रा (भिर्र-भिड़-ततैया) का विष नष्ट होता है

मरिचादि लेप (ग.नि., विषरो.)—कालीमिर्च, तगर, सोंठ केशर काबला इन्हें समान भाग लेकर महीन चूर्ण करें । धतूर के रस में पीसकर लेप करें अथवा सोंठ सेंधानमक का चूर्ण घी में मिलाकर लेप करने से मधु मक्खी के डंक में तुरन्त आराम होता है ।

लेप द्वेलाम्बुज (रा. मा./विषा)—कनखजूरे

(कांस लावा) के काटे हुए स्थान पर दीपक के तैल की मालिश की जाय तो विष नहीं चढ़ता।

नाग दन्त्याद्यं घृतम् (वं. से./विषा) धन्वन्तरि—नागदन्ती निशोत तथा दन्ती ५-५ तोला, थूहर का दूध १० तोला गोमूत्र ८ सेर और घी २ सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर गोमूत्र जलने तक पकावें। तत्पश्चात् छान कर रक्खें। यह घी कीटविष मूलविष और गर विषादि हर प्रकार के विषों को नष्ट करता है।

गुग्गुलु धूपनम् (रा.मा./विषा)—रक्त कीट (लाल वर्र-ततैया) के दंश स्थान को गूगल की धूप देकर पसीना निकल जाने के बाद आक के पत्तों की घृतयुक्त पिण्डी बांध दी जाय तो पीड़ा शान्त हो जाती है।

दशाङ्गागद (भा.वे.वि./चि.ख अ. ८२, वंगसेन)—वच हींग विडङ्ग सेंधानमक गजपीपल पाठा अतीस, सौंठ मिर्च पीपल सब समान भाग लेकर चूर्ण करें। इस दशाङ्ग अगद को पीने से हर प्रकार का कीट विष नष्ट होता है।

अङ्कोल पत्र धूप (रा.मा./विष १८)—अङ्कोल के पत्तों की धूप देने से मछली का विष नष्ट हो जाता है।

कटु तैलादि धूप (रा.मा./विषा २८)—मछली काट खाय तो मनुष्य के बाल और जौ का सत्तू कडवे तैल में मिलाकर दंश स्थान पर उसकी धूप देनी चाहिए।

मूषक विष चिकित्सा

गवाक्षी चूर्णम् (वं.से./विष)—इन्द्रायण बेल (बेलगिरी) काकोली तिल की जड़ और खांड़ के चूर्ण को शहद और घी में मिलाकर पीने से मूसक (चूहे) का विष नष्ट होता है। मात्रा—१॥-१॥ ग्राम।

जिम्बादि चूर्णम् (भा.भै.र./द्वि. भाग)—५ तोला इमली और २॥ तोला गृह धूम (घर का धुंआ) एकत्र मिला कर पुराने घी के साथ ७ दिन तक सेवन करने से चूहे का विष नष्ट होता है।

चित्रक मूल तैलम् (बृ.नि.र./विष)—चीते की जड़ के चूर्ण से सिद्ध तैल को शिर में ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर नश्तर से त्वचा को छील मलने से चूहे का विष नष्ट होता है।

बिल्व प्रयोग (वं.से./विष)—बेल और काकोली की जड़, कोयल की जड़ और तिल की जड़ समान भाग लेकर चूर्ण बनालें। इसे शहद और घी के साथ सेवन करने से चूहे का विष नष्ट होता है।

मृत्युपाशच्छेदि घृतम् (भै.र./वं.से., भा. प्र., यो. र./विष)—हर्र, गोलोचन (वङ्गसेन में गोरोचन के स्थान पर लोध लिखा है) कूठ आक के पत्ते (पाठान्तर में वच चूर्ण लिखा है) कमल की जड़ नल की जड़ बेंत की जड़ शुद्ध विष तुलसी इन्द्र जौ अखरोट अनन्तमूल तगर सिंघाड़ा लज्जालु और कमल केशर प्रत्येक ५-५ तोला लेकर सबको एकत्र पीस लें। ८ सेर घी में ३२ सेर दूध और उपरोक्त कल्क मिलाकर पकावें। जब दूध जल जाय तो घी को छानकर और ठण्डा करके उसमें घी के बराबर शहद मिलाकर सुरक्षित रक्खें।

यह घृत विष, सयोगज विष विषजन्य तमक कण्डू अचेतना मांससाद इत्यादि को नष्ट करता है। इसे अंजन अभ्यङ्ग पान और वस्ति द्वारा प्रयुक्त करना चाहिये। यह घृत सर्प कीटमूषक और मकड़ी आदि सभी विषैले जन्तुओं के विष को नष्ट करता है।

रसादि लेप—र. चं./विष. वृ. नि. र.. (विष)—पारा गन्धक कपूर घर का धुआं और सिरस के बीज समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर सबको आक के दूध में घोटें। इसका लेप करने से विशेषत: चूहे का विष और साधारण अन्य विष भी नष्ट होते हैं।

रस योग (आखु विषान्तक)/यो.र.—शुद्ध पारद शुद्ध गन्धक शुद्ध विष सोंठ मिर्च पीपल शुद्ध सुहागा और कुटकी समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर सबको पुनर्नवा (सांठ) की जड़ के रस में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। इन्हें गोमूत्र के साथ सेवन करने से चूहे का विष तथा अन्य दंष्ट्र विष नष्ट होता है।

शिरीषादि लेप (वं.से./विष)—सिरस की जड़ को चावलों के पानी में पीसकर शहद में मिलाकर लेप करने
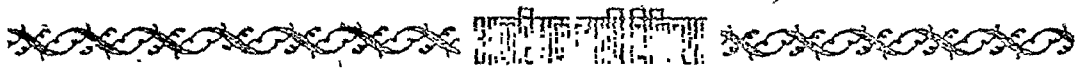
से अथवा अङ्कोट की जड़ को बकरे के मूत्र में पीसकर लेप करने से एवं इन्हीं दोनों योगों को पिलाने से हर प्रकार का आखु विष (चूहे का विष) नष्ट होता है।

शिलादि पानकम्–वृ. नि. र./विष शुद्ध मैनशिल शुद्ध हरताल और कूठ समान भाग लेकर निर्गुण्डी के रस में पीसकर पीने से चूहे का विष नष्ट होता है।

मात्रा—१ रत्ती से ३ रत्ती।

सुरसादि योग–रा. मा./विषा २८—तुलसी के रस की अनेक भावना दी हुई हरताल, कमल पुष्प और शुद्ध मैनसिल समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करें।

इसे सेवन करने से घोर मूषक विष भी अवश्य नष्ट हो जाता है।

कुष्ठादि योग–यो.र./कृमिस विषा—कूठ मेन-फल और तुरई (कड़वी तोरी) का फल समान भाग लेकर चूर्ण बनावें।

इसे गोमूत्र के साथ पीने से चूहे का विष नष्ट होता है अथवा तोरी के फल का क्वाथ पीने से भी चूहे का विष नष्ट होता है।

कुसुम्भयोग (वं.से./विषा)—कुसुम्भा के फूल गोदंती हरताल स्वर्णक्षीरी कबूतर की बीठ दन्तीमूल निसोत सेंधानमक इलायची और अपामार्ग की जड़ इनका चूर्ण समान भाग लेकर सबको राब में मिलाकर दूध के साथ पिलाने से चूहे का विष नष्ट होता है। तिलक मंजरी (मरवे की मंजरी) पीने से चूहे का विष नष्ट होता है।

श्वान विषनाशक प्रयोग

धत्तूर योग (रा.मा./विष)—धत्तूरे का स्वरस दूध घी और गुड़ २-२ पल (१०-१० तोला) लेकर सबको एकत्र मिलाकर पिलाने से कुत्ते का विष नष्ट होता है।

मात्रा—१ ग्राम

भीमरुद्रो रस (रसे. सा.. रस चं., भै. र.)—शुद्ध पारद शुद्ध गन्धक अभ्रक भस्म और कांतलोह भस्म समान भाग लेकर सबकी कज्जली बनाकर उसे १-१ दिन इन्द्रायण मूल दमभण्ट (कंटाई) ब्राह्मी कमल अनार अपामार्ग और कौंच के रस में घोटकर १-१ रत्ती की वटी बनालें। इनमें से नित्य प्रति १-१ गोली ठण्डे जल से सेवन करें। इससे पागल कुत्ते का (हिड़काये कुत्ता का) तथा गीदड़ का विष नष्ट होता है।

मातुफल योग (रा. मा./विष रो.)—धत्तूरे के एक फल को असन वृक्ष की छाल के स्वरस या क्वाथ में पीस पीने से पागल कुत्ता के काटे का विष नष्ट होता है।

श्वासविष हरो लेप (यो चि.म./अ.१)—गुड़ तैल और आक के दूध को एकत्र मिलाकर लेप करने से श्वान का विष नष्ट होता है।

अंकोटमूल योग (वं. से./विष)—अंकोट की जड़ की छाल के १० तोला क्वाथ में ५ तोला घी मिलाकर पीने से श्वान का विष नष्ट होता है।

अलर्क विषहर गुटिका (र.सं.क./उ. ५)—कायफल सुगन्धवाला बिजौरे नीबू की जड़ की छाल पीपल शुद्ध हिंगुल बोल शुद्ध सुहागा १-१ भाग तथा गुड़ सबके बराबर लेकर सबके चूर्ण को गुड़ में मिलाकर ४-४ माशे की वटी बनालें।

पागल कुत्ता के काटने से नवें दिन से ये गोलियां उष्ण जल से देने से विष नष्ट होता है।

शुद्ध विष भाङ्गरा और काली मिर्च समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। इसे घी के साथ प्रयोग करने से भी पागल कुत्ता का विष नष्ट हो जाता है।

साधारण प्रयोग—

यदि किसी को कुत्ता काट खावे तो काटे हुये स्थान पर मनुष्य के शिर के बाल तिल का तैल और कालमिर्च सोते समय बांध दें। यह बहुत उत्तम दवा है। तुलसी की जड़ का चूर्ण १॥-१॥ ग्राम जल से देने से पागल कुत्ता के काटने का विष नष्ट होता है। यह प्रयोग मेरे पू० श्री गुरुवर श्री कन्हैयालाल जी।

उण्डा किया करते थे। इससे पागल कुत्ता का विष नहीं चढ़ता। यह चूर्ण ३१ दिन तक लेना चाहिए।

—वैद्य चन्द्र शेखर व्यास आयुर्वेद "विशारद"
चूरू (राज०)

स्वतन्त्र रूप से किसी भी विष को दूषी विष की संज्ञा नहीं दी जा सकती। दूषी विष सभी प्रकार के विषों का जीर्ण स्वरूप है। प्रायः इस प्रकार के विष को जीर्ण विष (Chronic Poisoning) या मन्द विष (Slow poison) कहा जा सकता है।

> दूषितं देशकालान्न दिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः।
> यस्मात् दूषयते धातून् तस्माद् दूषीविषं स्मृतम् ॥
> (सं० क० २/३३)

अर्थात् कोई भी विष देश काल अन्न दिवास्वप्न प्रभृति कारणों से जब बार-बार धातुओं को दूषित करता है तो उसे दूषी विष कह सकते हैं।

दूषी विष के स्वरूप का वर्णन करते हुए आचार्यों ने यह स्पष्ट किया है कि कोई भी स्थावर जंगम या कृत्रिम विष जोकि पूर्णरूप से शरीर से बाहर नहीं निकल पाता, किन्तु पचकर, विषघ्न औषधियों से नष्ट होकर या दावानल वायु एवं धूप से सूख जाने के कारण वीर्य में मन्द हो जाता है या कुछ विष स्वभाव से ही दूषी विष की श्रेणी में आ सकते हैं या अपथ्यानुवर्त के क्रम से संचित होकर विष दूषी विष की संज्ञा प्राप्त करता है—

> यत् स्थावरं जङ्गमं कृत्रिमं वा देहादशेषं यद निर्गतं तत्।
> जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा।
> स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषी विषतामुपैति
> वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत् कफावृतं वर्षगणानुबन्धि ॥
> (सु० क० २/२५ २६)

व्याधि स्वरूप दूषी विष—

प्रस्तुत सन्दर्भ से यह स्पष्ट है कि दूषी कुछ व्याधियों का लक्षण समूह (Syndrome) है जो विभिन्न विषों की अन्तर्लीनावस्था में देशकाल आदि के अनुसार उत्पन्न होते हैं अर्थात् इस व्याधि का हेतु विष द्रव्य होता है लेकिन पूर्वरूप रूप आदि में दूषी विष व्याधि ही प्रधान है न कि दोषोत्पादक विष द्रव्य। इस प्रकार दूषी विष का निदान करते समय विष निदान के अपेक्षा व्याधि का निदान ही महत्वपूर्ण होता है।

दूषी विष शीत वायु तथा मेघाच्छन्न आकाश के होने पर कुपित होता है। यह जल से उत्पन्न होने के कारण वर्षा ऋतु में घुन के समान क्लिन्नता को प्राप्त होता है। एवं देह में विसर्पित करता है बादलों के हट जाने पर अगस्त्य नक्षत्र उसे नष्ट करता है। अतः शरद ऋतु में विष का वीर्य मन्द पड़ जाता है।

समान्यतया वर्षा में अग्निमांद्य एवं वात प्रकोप के कारण व्याधियां प्रकुपित हो जाया करती हैं जिसमें पाचन संस्थान के रोग यथा अग्निमांद्य अतिसार प्रभृति, त्वचा के रोग यथा कण्डू पामा, विसर्प आदि आमवात एवं उरस सम्बन्धी रोग हिक्का श्वासादि व्याधियां प्रमुख हैं। दूषी विष व्याधि के लक्षणों में इन्हीं लक्षणों का प्रमुखता से वर्णन किया गया है।

> स्थितं रसादिष्वथवा यथोक्तान् करोति धातु प्रभवान् विकारान्। कोपं च शीतानिलदुर्दिनेषु—(सु.क. २/२९)

दूषी विष व्याधि के पूर्वरूप—

निद्रा, भारीपन जृम्भा संधिशैथिल्य, रोमाञ्च एवं अङ्गमर्द आगन्तु विष एक आगन्तुज व्याधि होने से एक भिन्न स्वरूप की व्याधि है ऐसा अनुमान होता है।

> निद्रागुरुत्वं च विजृम्भणं च विश्लेषहर्षावथवाङ्गमर्दः।
> (सु० क० २/३०)

> तद्वर्षाः स्वम्बुयोनित्वात् संक्लेदं गुडवद्गतम्
> सर्पत्यम्बुधरापाये तदगस्त्यो निहन्ति च।
> प्रयाति मन्दवीर्यत्वं विषं तस्माद्घनात्यये।
> (च० चि० २३/६-७)

दूषी विष के लक्षण—

ज्वर सम्बन्धी—अन्न के कारण मद (नशा) होना तृष्णा अविपाक अरुचि, वमन अतिसार एवं उदर में जल-वृद्धि (Ascites) त्वचा सम्बन्धी चकत्ते एवं कोठों की उत्पत्ति विवर्णता-सामान्य-विषमज्वर, धातुक्षय, हाथ पैर एवं मुख में शोथ (General Anasarca) एवं मूर्छा।

विषों के विशिष्ट लक्षण—उन्माद, आनाह, शुक्रनाश स्वरविकृति एवं कुष्ठ।

ततःकरोत्यन्नमदाविपाका, न्रोचकं मण्डल कोठमोहान् ॥
धातुक्षयं पादकराक्षिशोफं दकोदरं छर्दिमथातिसारम् ।
वैवर्ण्यं मूर्छा विषमज्वरान् वाकुर्यात्
प्रवृद्धां प्रबलां तृषां वा ॥
उन्मादमन्यज्जनयेत्तथाऽन्यदानाह
मन्यत् क्षपयेच्च शुक्रम् ।
गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्
विकारांश्च बहु प्रकारान् ॥
(सु० क० २/३०-३२)

चरक के मतानुसार दूषीविष रक्त को दूषित कर कुष्ठियाँ (किटिभ, कोठ) उत्पन्न करता है इस प्रकार १-२ दोष को दूषित करके या सभी दोषों को दूषित कर (कालान्तर में) प्राणी का नाश करता है।

दूषी विषं तु शोणितदुष्ट्यरुःकिटिभकोठलिङ्गं च ।
विषमेकैकं दोषं संदूष्य हरत्यसूनेवम् ॥
(च० चि० २३/३०)

दूषी विष व्याधि के दोषानुसार लक्षण—

सुश्रुत के मतानुसार आमाशयस्थ दूषी विष में कफ-वात के एवं पक्वाशयस्थ दूषी विष में वातपित्त के लक्षण होते हैं। रोगी के सिर के बाल एवं शरीर के रोम झड़ जाते हैं व कटे हुए पर वाले पक्षी की भाँति रूक्ष दिखाई देता है।

चरक संहिता में दूषी विष को विशेष प्रकोपक के अनुसार दोषों का प्रकोप होता है वातिक पुरुष के वात-स्थान में विष में वातप्रधान लक्षण यथा तृष्णा मूर्छा अरति मोह, गलग्रह, वमन, फेन आदि, पैत्तिक पुरुष के पित्ताशयस्थ विष में कफनाश के लक्षण उत्पन्न होते हैं। यथा—तृष्णा कास ज्वर, वमन, क्लम दाह तमःप्रवेश अति-सार आदि लक्षण एवं इसके अनुसार कफाधिक पुरुष में कफ-स्थान गत विष से श्वास, गलग्रह, कण्डू लालास्राव आदि कफ प्रधान एवं वातपित्त की अल्पता के लक्षण दृष्टि-गोचर होते हैं।

आमाशयस्थे कफवातरोगी, पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ।
भवेन्नरो ध्वस्त शिरोरुहाङ्गो, विलूनपक्षस्तु यथा विहङ्गः ॥
(सु० क० २/३४)

दोषस्थान प्रकृतीः प्राप्यान्यतमं हृदुदीरयति ।
स्थानं वातिकस्य वातस्थं कफपित्तलिङ्गमीषत् ॥
तृण्मूर्छारतिमोही गलग्रहच्छर्दिफेनादि ।
पित्ताशयस्थितं पैत्तिकस्य कफ वातयोरीषत् तद्वत् ॥
तृट् कास ज्वरवमथुक्लमदाहतमोऽतिसारादि ।
कफोदिस्थितं कफाधिकस्य वात पित्तयोश्च दर्शयति ॥
लिङ्गं श्वास कास गलग्रह कण्डू लालावमथ्वादि ।
(च. चि. २३/२६-२९)

दूषी विष उपद्रव—

ज्वर, दाह, हिक्का, आनाह, शुक्रक्षय, शोथ, अतिसार मूर्छा हृदरोग, उन्माद कम्पन एवं अन्य व्याधियाँ—

ज्वरे दाहे च हिक्कायामानाहे शुक्रसंक्षये ।
शोफेऽतिसारे मूर्छायां हृद्रोगे जठरेऽपि च ।
उन्मादे वेपथौ चैव ये चान्ये स्युरुपद्रवाः ॥
(सु० क० २/५३-५४)

दूषी विष व्याधि निदान—

विषों के निदान के लिये विष सेवन या विष युक्त पदार्थों (संयोग का इतिहास लेना आवश्यक है) धातुओं, रसायनों व अन्य प्रकार के कारखानों में काम करने वाले व्यक्तियों में दष्टव्य विष दूषी विष की श्रेणी में रखे जा सकते हैं व इनके निदान में विशेष कठिनाई नहीं होती।

अधिकतर अवस्थाओं में दूषी विष का निदान विष सेवन के इतिहास के आधार पर नहीं हो पाता। ऐसे रोगियों में निम्न प्रकार से निदान करना चाहिये—

१—अनेक प्रकार के त्वक् रोग जो किसी काल (वर्षा-ऋतु) देश (आनूप देश) या आहार विहार विशेष

(Allergy) से प्रभावित होते हैं। ऐसी व्याधियाँ विष व्याधियों की श्रेणी में आ सकती हैं। यदि उक्त रोगों की उत्पत्ति से पूर्व किसी प्रकार के कीट दंश या अन्य विष संयोग की सम्भावना ज्ञात हो सके।

२—मुख से सेवन किये जाने वाले विषैले खाद्य एवं औषधि द्रव्य अग्नि नष्ट कर विभिन्न उदर रोग करते हैं। दूष्योदर यकृत्प्लीहावृद्धि सर्वाङ्गशोथ के रोगियों में कभी व्याधि के कारण का पता नहीं लग पाता है। ऐसी व्याधियों में दूषी विषारि चिकित्सा करनी चाहिये एवं विष सेवन की सम्भावनाओं का पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिये।

३—कभी-कभी दूषी विषाक्रान्त रोगी मानसिक उद्विग्नता, चिन्ता शोक, भय आदि से अकारण ही ग्रस्त रहते हैं। इनकी कार्य करने की प्रवृत्ति अल्प रहती है। एवं इनमें मन्दाग्नि सम्बन्धी विकार अरुचि अविपाक लालास्रावक, वमन अतिसार आदि पाये जाते हैं। ऐसे रोगियों के खान पान एवं रहन सहन का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहिये।

४—किसी रोगी के जीवन काल में किसी समय उग्र विष से ग्रस्त होने पर देशकाल आहार विहार के बलाबल के अनुसार विषाक्त लक्षण मन्द या तीक्ष्ण रूप से प्रकट होते रहते हैं। ऐसे रोग दूषी विष की श्रेणी में आते हैं।

५—दूषी विष निदान के समय रोगी के स्वभाव एवं आदतों का सूक्ष्मतः निरीक्षण अत्यन्त आवश्यक है। धूम्रपान तम्बाकू, मद्य, नशीली गोलियां एवं अन्य नशीले पदार्थों का नियमित सेवन जो अधिकतर विषों की श्रेणी में आते हैं। दूषी विष- निदान के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

दूषी विष साध्यासाध्यता—

सद्यः उत्पन्न हुई दूषी विष व्याधि साध्य है। १ वर्ष पुराना रोग याप्य है व क्षीण पुरुषों एवं अहित सेवी पुरुषों में दूषी विष व्याधि असाध्य होती है।

> साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोत्थितम्।
> दूषी विषमसाध्यं तु क्षीणस्याहित सेविनः॥
> (सु० क० २/५५)

दूषी विष चिकित्सा—

दूषी विष के रोगी को भली प्रकार स्वेदन करके वमन से शोधन करायें एवं निम्न दूषी विषारि अगद का नित्य सेवन करायें—

पिप्पली ध्यामक जटामांसी शतावर, लोध केवटी मोथा सुवर्चिका (हुलहुल) छोटी इलायची स्वर्ण गैरिक इनको मधु में मिलाकर सेवन करायें।

विष जिस दोष के स्थान पर हो उस दोष को पहले जीतना चाहिये अर्थात वातस्थानगत दोष में वात की चिकित्सा प्रधानता से करनी चाहिये। वातस्थानगत विष अवस्था में स्वेदन कराना चाहिये एवं तगर तथा कुष्ठ को दधि के साथ पिलाना चाहिए। पित्तस्थानगत विष होने पर घृत मधु जल इनका पीने के लिये प्रयोग करना चाहिये। इस अवस्था में शीतल अवगाहन एवं परिषेक हितकर होते हैं। कफस्थानगत विष में क्षारगद का प्रयोग करना चाहिए। इसमें स्वेदन तथा शिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण हितकारी होता है। इसी प्रकार दूषी विष को रक्त में स्थित जानकर वमन विरेचनादि पंचकर्म कराना चाहिये।

> दूषी विषति............चान्यत्रापि वार्यते॥
> (सु० क० २)
> दोषस्थ विष............कर्म पश्चा विषम॥
> (च. चि. २३/६१-६३)

—डा० बी० डी० अग्रवाल
विभागाध्यक्ष—अगदतन्त्र एवं व्यवहारायुर्वेद विभाग,
राजकीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय, बरेली (उ०प्र०)

—★★—

डा० सु० ब० काले एवं
डा० व्ही० एस० काले

'एलर्जी और आयुर्वेद' लेख डा० सु० ब० काले और डा० व्ही० एस० काले की युगल रचना है जिसमें आयुर्वेदीय सिद्धान्तों के परिवेश में एलर्जी का संक्षिप्त वर्णन प्रतिपादित किया गया है। सरल भाषा में दुरूह विषय को स्पष्ट करना आपकी लेखन शैली की विशेषता है। प्रस्तुत लेख निश्चय ही पाठकों को ज्ञानप्रद एवं रुचिकर लगेगा। आपने अन्य लेखकों को भी लेखनार्थ प्रेरित कर सहयोग दिया है। भविष्य में भी आपके सहयोग की कामना करते हैं।

—गिरिधारी लाल मिश्र आयु० चक्र०

आज के युग में एलर्जी की अनेक घटनायें नजर आती हैं। इसका प्रमुख कारण जैसे प्रोटीन, धूल, परागकण, कवककण, वांग इत्यादि। अर्थात् हवा के कण भी एलर्जी के साथ कुछ सम्बन्ध प्रदर्शित करते हैं। मनुष्य अथवा प्राणी के शरीर द्वारा धूल, प्रोटीन, परागकण, कवककण आदि वस्तुओं के बारे में जो प्रतिक्रिया दिखलाता है उसे एलर्जी कहते हैं।

वस्तुओं को एलर्जी का केवल कारण बताने के बारे में काफी खोज का काम चल रहा है। वस्तुयें प्राकृतिक हैं, उनके कुछ रासायनिक गुणधर्म और कार्य होते हैं एवं उनके कुछ लक्षण भी हैं जैसे ये और बहुत से प्रकृति में विद्यमान हैं और वे उनके कार्य प्रकृति के प्रारम्भ से ही विशेष कुछ न बदलते हुए भी अपने कार्य करते आ रहे हैं। वे सभी लोगों पर एलर्जी का असर नहीं होने देते लेकिन कुछ लोगों पर ही उसका असर होता है। इससे यह साफ पता चलता है कि एलर्जी मनुष्य शरीर, उसके समतोलन और उनके फिजियालजी इन तीनों तत्वों पर निर्भर रहता है, न कि वस्तुओं पर। यदि शरीर समतोल हो तो उस पर एलर्जी का कोई असर नहीं होता। आयुर्वेद के अनुसार शरीर का समतोलन तीन दोषों के समतोलन पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में कहना हो तो वात, पित्त, कफ समतोल होना चाहिए। यदि शरीर में ये तीनों समतोल हों तो शरीर एलर्जी का मुकाबला कर सकता है।

१. शरीर समतोल में बदल—

त्रिदोष में बदल होने के कारण—जब शरीर में वात पित्त कफ के निश्चित प्रमाण में बदल हो जाय तो शरीर का समतोल बिगड़ जाता है। जब कोई भी त्रिदोष के प्रमाण का बदल हो जाय तो शरीर वही दोष प्रधान होता है जैसे वात प्रधान वात के ज्यादा होने से, पित्त प्रधान पित्त के ज्यादा होने से, कफ प्रधान कफ के ज्यादा होने से। अर्थात् पित्त प्रधान में पित्त, वात प्रधान में वात और कफ प्रधान में कफ शरीर पर अपना अत्यधिक वर्चस्व दिखलाता है। प्रत्येक दोष अपने अत्यधिक में अपने गुणधर्म शरीर में बताता है। ऐसे शरीर में एक ही दोष प्रकोप दिखाई देता है। परन्तु शरीर में एक दोष के अत्यधिक के साथ दूसरे दोष का भी उस समय आधिक्य बताया जाता है। ऐसे समय में वात का आधिक्य पित्त के आधिक्य के साथ होता है। तब उस शरीर की वात-पित्तजा प्रकृति कहलाती है। वैसे ही पित्त-वातजा, वात-कफजा और कफ-वातजा, कफ-पित्तजा।

रोगस्तु दोष वैषम्यं दोष साम्यम् अरोगता।
तत्प्रकोपस्यतु प्रोक्तं विविधऽहि सेवनम्॥
हिदोषाएव सर्वेषां रोगाणामेकं कारणम्।
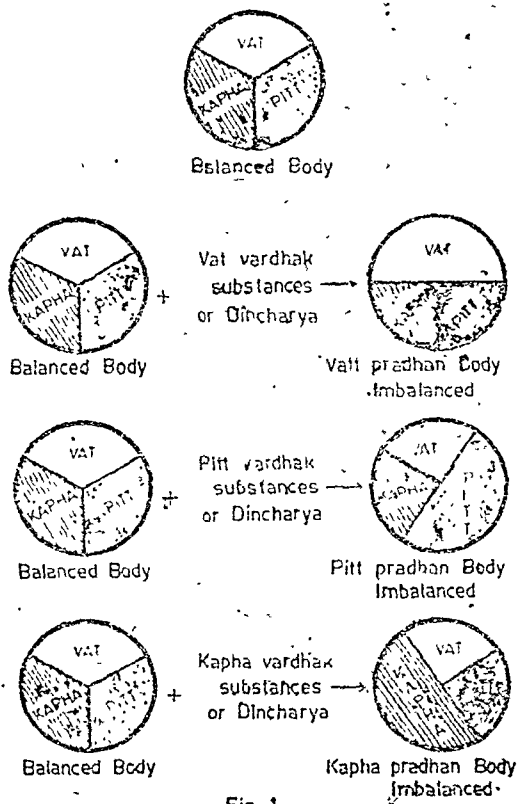
Fig. 1

२. त्रिदोष में बदल के कारण—

पदार्थों के कारण—प्रकृति के पदार्थों में भी त्रिदोष के गुणधर्म सम्मिलित हैं। इसीलिए सभी वस्तुयें या तो वात, पित्त, कफ को बढ़ाती हैं अथवा कम करती हैं अथवा समाप्त कर देते हैं। इसीलिये कुछ वातवर्धक होते हुए भी पित्तनाशक हो सकता है, दूसरा पित्तवर्धक लेकिन कफ और वातनाशक हो सकता है। अगर मनुष्य रोजाना वातवर्धक पदार्थों का सेवन वातनाशक पदार्थों से भी ज्यादा मात्रा में करता हो तो शरीर का सन्तुलन वातप्रधानता की ओर ही बढ़ता है। ऐसे ही दूसरे पदार्थों के साथ होता है। ऐसे असन्तुलित शरीर अपने सीमित प्रमाण से ज्यादा वस्तुओं को ग्रहण नहीं कर सकते जो प्रधान दोष को बढ़ाता एवं प्रतिक्रिया दिखलाता है। वातज शरीर वात को बढ़ावा देने वाले पदार्थों को ग्रहण नहीं कर सकता वैसे ही पित्तज शरीर पित्त बढ़ाने वाले पदार्थ, कफज शरीर कफ बढ़ाने वाले पदार्थों को ग्रहण नहीं कर सकता। हमें यह भी बतलाना है कि जो कुछ भी हम खाते हैं, वो भी वात, पित्त, कफ के सम्बन्ध में समतोल होना चाहिए और शरीर के गुणधर्म के ऊपर भी निर्धारित होना चाहिए। भारतीय पारम्परिक आयुर्वेद के इन्हीं तत्वों के ऊपर निर्भर है।

३. शरीर के मल त्यागने में दोष होने से—मनुष्य शरीर मशीन के समान है और इसमें ग्रहण करने का एवं विसर्जन करने का प्रमाण है। शरीर के ग्रहण करने एवं विसर्जन करने के ऊपर ही समतोल निर्भर होता है। तन्दुरुस्त शरीर निरुपयोगी वस्तुओं का कुछ निश्चित प्रमाण में निश्चित समय पर विसर्जित करना चाहिए। ऐसी निरुपयोगी वस्तुओं को बाहर निकालने में कुछ ज्यादा समय लगे अथवा कुछ गड़बड़ी हो जाय तो शरीर के ऊपर प्रतिकूल प्रभाव होता है और यह त्रिदोषों को या किसी एक दोष को बढ़ाता है। आयुर्वेद के अनुसार मलबद्धता सभी बीमारियों का मूलभूत कारण है। इसीलिए मल त्याग ही अच्छे एवं तन्दुरुस्त शरीर के लिए जरूरी है। अगर यह कार्य बराबर न हो तो शरीर का समतोल बिगड़ने का एकमेव कारण हो सकता है जो सहनशीलता के बाहर पदार्थों की प्रतिक्रिया को देता है।

'सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।'

४. मन भी शरीर सन्तुलन को बदल सकता है—मन सभी इन्द्रियों को वश में रखता है और त्रिदोषों को भी। यह तीन प्रकार के गुणधर्म जैसे सत्व, तम और रज। प्रत्येक में अपने स्वयं के कुछ गुणधर्म हैं जो शरीर समतोल को बिगाड़ देता है। ये खुजली पैदा करने का कारण हो सकता है इसीलिए शरीर बहुत से पदार्थों को स्वीकार नहीं करता। मन त्रिदोषों को भी बदल सकता है। चिन्तित मन नींद खराब करके पित्त को बढ़ाता है। इसीलिए मन भी शरीर का समतोल बदलने का एक कारण हो सकता है। ऐसे असीमित, असमतोल शरीर एलर्जी की प्रतिक्रिया देते हैं।

५. स्वाद रस भी शरीर का समतोल बदल सकते हैं—कुल छः प्रकार के रस हैं जो त्रिदोष को उत्तेजित करते हैं और कम करते हैं—

मक्षिका दंश

दंश के तत्काल पश्चात् उत्पन्न शोथ

एण्टीजन की उत्पत्ति

मक्षिका दंश के कारण एण्टीजन्स की उत्पत्ति होती है तथा उससे एलर्जी होती है।

खुद परिणामकारक नहीं होते अपितु शरीर का समतोल और त्रिदोष समतोल बिगड़ने से एलर्जी हो जाती है। ये प्रतिक्रियायें अनेक रूप में प्रदर्शित की जाती हैं।

एलर्जी नियन्त्रित करना और रोकना—

यदि एलर्जी का इलाज करना है तो सर्वप्रथम हमें एलर्जन्स को रोकने के बजाय शरीर शुद्धि करनी चाहिए।

१—प्रकृति के नियमों का पालन करना।

२—शरीर को सन्तुलित रखे रहना।

३—शरीर असमतोल हो जाय तो पित्तज, कफज या वातज मालूम करना चाहिए।

४—ऐसे आहार को लेना चाहिए जिससे दोष बढ़ने के बजाय कम हो जाय।

५—औषधियों का उपयोग कम करना।

६—दोष को उत्तेजित करने वाले पदार्थों को त्यागना।

७—रासायनिक खाद, फंगीसाइडस, कीटाणुनाशक दवाओं को छोड़ना।

८—हितकारक वस्तुओं को ग्रहण करना और अहितकारक को त्यागना।

९—मल त्याग को नियमित रखना।

१०—रोज व्यायाम करना।

११—अपने मन को स्वस्थ रखें और आध्यात्मिक अभ्यास करते रहें।

१२—समय-समय पर अपने शरीर की शुद्धि पञ्चकर्म विधि द्वारा किया करें।

नियमित रूप से समतोल आहार एलर्जी रोकने में बहुत सहायता देते हैं। आयुर्वेद में इसे परहेज कहते हैं जो बहुत जरूरी है। दूसरी उपचार पद्धतियां जैसे एलोपैथी, होमियोपैथी पद्धति में परहेज का कोई जिक्र नहीं। प्राकृतिक चिकित्सा शुद्ध आयुर्वेद है।

आयुर्वेद के आचार्यों ने पहले ही कुछ बातों को कहा है जो इस प्रकार है—

दोषाएवहि सर्वेषां रोगाणामेकं कारणम्।
सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपितामलाः॥ —चरक
रोगस्तु दोष वैषम्यं दोषसाम्यम् अरोगता।
तत्प्रकोपस्यतु प्रोक्तं विविधाऽहित सेवनम्॥
हिताचारं मूलं जीवितम् अहिताचार मूलस्य मृत्युः।
मः पुनर्वसु आत्रेय॥
पथ्याशी व्यायामी स्त्रीषु जीवात्म
नरो न रोगी स्यात।
प्रज्ञाऽपराधा मुक्तं सर्वरोगानाम्॥ —चरक
युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु॥ गीता

एलर्जी ही नहीं अपितु अनेक रोग आज लोगों को केवल दिनचर्या बिगड़ने और खानपान बिगड़ने से हैं।

—डा० सु० व० काले
एवं डा० (सौ०) व्ही० एस. काले
वैद्यनाथ कालेज,
परली-वैजनाथ जि० बिड़

—x—

अनूर्जता कारण एवं निवारण

डा० राजेन्द्र प्रकाश भटनागर पी एच० डी०

परिचय—वस्तुतः 'अनूर्जता' या एलर्जी (Allergy) कोई स्वतन्त्र व्याधि नहीं है। यह मनुष्य के शरीर में बाहरी पदार्थों के प्रति पायी जाने वाली 'असहनशीलता' या 'अतिसंवेदनशीलता' का ही एक प्रकार है। हर व्यक्ति में बाहरी पदार्थ का प्रवेश होने पर उसके प्रति एक प्रतिक्रिया होती है, परन्तु किसी किसी व्यक्ति मे यह प्रतिक्रिया सीमातीत होती है तब इसे 'असहनशीलता' या 'अतिसंवेदनशीलता' कहते हैं। यह प्रतिक्रिया मुख्य रूप से विजातीय प्रोटीन के आभ्यतर सेवन के कारण पैदा होती है। इसके कारण प्रायः पाचन संस्थान, श्वसन संस्थान और रक्तवह संस्थान सम्बन्धी लक्षण पैदा होते हैं।

असहनशीलता को आयुर्वेद में 'असात्म्यता' के रूप में समझ सकते हैं।

यह असहनशीलता मुख्य रूप से दो प्रकार की है—

(१) जन्मोत्तर या उपार्जित—इसके पुनः दो भेद हैं—(क) एलर्जी (ख) अनवधानता।

(२) प्राकृतिक—यह जन्म से मनुष्य के शरीर में विद्यमान रहती है। इसके भी दो भेद हैं—(क) सीरम रोग। (ख) इडियोसिंनक्रेसी इनमें से—Antiallergic औषधियां जैसे Benadryl, Antistin आदि का प्रयोग करें। एड्रिनेलिन, इफेड्रीन, एट्रोपीन देने से भी लाभ होता है।

१. अनवधानता (Anaphylaxis Greek 'and'–up, Phylaxis–protection) यह विजातीय प्रोटीन के प्रति शरीर की अतिसंवेदनशीलता की एक अवस्था है जिसके कारण एक बार इन्जेक्शन लगाने के बाद उसी पदार्थ का दस दिन बाद दूसरी बार इन्जेक्शन लगाने से भयंकर प्रतिक्रिया होती है जो कभी घातक भी हो सकती है। साधारण दशा में इसके कारण श्वासकृच्छ्रता, हृदय का कार्य न करना, नख-नेत्र का पीला व नीला हो जाना पसीना आना आदि लक्षण होते हैं। इस प्रकार की प्रतिक्रिया हार्स सीरम वैक्सीन, दुग्ध प्रोटीन, जीवाणु विष, जानवरों का विष, लीवर एक्ट्रेक्ट आदि के दूसरी बार इन्जेक्शन के कारण होती है। यह विशिष्ट प्रतिक्रिया है जो प्रथम इन्जेक्शन के १० दिन बाद दुबारा इन्जेक्शन देने से होती है। इस अवस्था में प्रथम बार के इन्जेक्शन से मनुष्य के शरीर में ऐण्टीबॉडी बनती है। उसको 'अनेफिलेक्टीन' कहते हैं। दूसरा इन्जेक्शन लगने पर 'एण्टीजेन' (Antigen) और एण्टीबाडी के मिलने से प्रतिक्रियास्वरूप कोई विष बनता है, इसी विष के कारण उपर्युक्त लक्षण पैदा होते हैं। इस विष को कुछ विद्वान हिस्टामीन मानते हैं।

चिकित्सा—एन्टीहिस्टामिनिक या एन्टी-एलर्जिक।

२. सीरम रोग—सीरम का इन्जेक्शन लगाने के १०-१२ दिन बाद शोथ, शीतपित्त, दाने चकत्ते, ज्वर, मूत्र में एल्ब्युमीन आना, सन्धियों मे दर्द, लसीका ग्रंथियों की वृद्धि आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—एनाफिलेक्सिस की चिकित्सा की तरह करें।

३. इडियोसिनक्रेसी—(G. Idios=own Synkrasis=Mingling together) किसी किसी व्यक्ति में शारीरिक या मानसिक स्वभाव की स्थिति विशिष्ट पाई जाती है। इन व्यक्तियों में कुछ दवाइयों प्रोटीनों आदि के प्रति प्रतिक्रिया पाई जाती है, चाहे वह इन्जेक्शन मार्ग से, मुख मार्ग से, सूंघने से या संपर्क (Contact) से शरीर में जाती है। कुछ बच्चे दूध को सहन

नहीं कर सकते। यह प्राकृतिक असहनशीलता है। इसके कारण व्यक्ति में एक्जीमा, दमा, शीतपित्त, हे फीवर आदि लक्षण या रोग हो जाते हैं।

४. एलर्जी (Allergy)-(G.AllosOthos,Ergon=Work) प्रारम्भ में जीवाणुजन्य विष के शरीर में शोषित होने पर जब लक्षण उत्पन्न होते हैं, तब उसे एलर्जी कहा जाता था। जैसे यक्ष्मा के जीवाणु का विष शरीर में शोषित होने से एलर्जी उत्पन्न होती है। इसी से ज्वर, फुफ्फुस का सकना आदि लक्षण पैदा होते हैं। इसी प्रकार टाइफाइड के जीवाणुजन्य विष से प्रलाप संताप आदि उत्पन्न होते हैं। यह विष शरीर में रोग विकृति के स्थान पहुंचने से वे ही लक्षण पैदा होते हैं। अतः इसके लिए यह आवश्यक है कि रोगी में यह रोग पहले हो चुका हो या उसी अवस्था में विद्यमान हो। तब उस रोग का विष उस व्यक्ति में इन्जेक्शन के माध्यम से पहुंचाने पर उस रोग के लक्षण पैदा हो जाते हैं।

परंतु आजकल एलर्जी शब्द कुछ व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। विजातीय बाहरी पदार्थों और भौतिक भावों के प्रति कुछ व्यक्तियों में परिवर्तित रूप में या अत्यधिक रूप में एक संवेदनशीलता पायी जाती है, उसे 'एलर्जी' कहते हैं। संक्षेप में यह 'प्रत्यावर्तित प्रतिक्रिया' है। यह अवस्था एन्टीजन-एन्टीबोडी की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती। हे फीवर, दमा, शीतपित्त शैशवीय एक्जीमा ये एलर्जिक दशाएं हैं। इनकी आनुवंशिकता भी पायी जाती है।

चिकित्सा—

एन्टीहिस्टामिनिक और एन्टी-एलर्जिक दवाएं दी जाती हैं।

आयुर्वेदीय मत—

आधुनिक सम्मत असहनशीलता और 'एलर्जी' इन दोनों का सम्बन्ध रक्त से है। एन्टीजन एन्टीबॉडी का निर्माण भी रक्तरस में होता है। रक्त ही पित्त का आश्रय है। 'पित्तं तु स्वेद रक्तयोः (अ. हृ. सू. अ. ११)। अतः असूर्जता को एक यौगिक मदोत्थ रोग माना जा सकता है। लक्षणोत्पत्ति में रक्त-पित्त के साथ वात का सहकार है। मेरे मत में एलर्जीजन्य शीतपित्त को 'रक्तावृत वात' मान सकते हैं—

> रक्तावृते सदाहार्तिस्त्वङ्मांसाश्रयजो भृशम्।
> भवेत् सरागः श्वयथुर्जायन्ते मण्डलानि च॥
>
> (च. चि. अ. २८)

एलर्जी से रक्त में इओसिनोफिल्स बढ़े मिलते हैं। एक्जीमा और दमा का भी ऐसा ही समाधान ढूंढा जा सकता है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा—

एलर्जी में 'एन्टीहिस्टामिनिक' और 'एन्टीएलर्जिक' क्रिया करने वाले कतिपय योग मेरे अनुभव में आये हैं, वे निम्न हैं—

१. गिलोय—का स्वरस, क्वाथ या घन सत्व।
२. हरिद्रा—का चूर्ण, क्वाथ।
३. अपामार्ग का—स्वरस, क्वाथ, चूर्ण।
४. शुद्ध स्फटिका—का बाह्य और आभ्यन्तर प्रयोग।
५. शुद्ध स्वर्णगैरिक—का बाह्य और आभ्यंतर सेवन।

निम्न सिद्ध योग लाभप्रद पाये गये हैं—

(१) निम्बादि योग—नीमके पत्ते १ तोला, अडूसे के पत्ते १ तोला, निर्गुण्डी के पत्ते १ तोला तीनों को कूट कर एक पाव पानी में उबालें, चौथाई रहने पर छानकर शहद १ तोला मिलाकर पिलावें। दिन में २ बार देवें।

(२) पञ्चनिम्ब चूर्ण (भाव प्रकाश)
(३) गन्धक रसायन (योग रत्नाकर)
(४) बृहद मंजिष्ठादि क्वाथ
(५) मंजिष्ठादि चूर्ण (सिद्ध योग संग्रह—यादवजी)
(६) मल्लस्फटिक योग (विषम ज्वराधिकार)।
(७) कैशोर गुग्गुल (चक्रदत्त)।
(८) हरिद्राखण्ड

चिकित्सा में इन सिद्ध प्रयोगों के कारण एलर्जी के रोगियों में आशातीत लाभकारी परिणाम देखने में आया है।

—डा० राजेन्द्र प्रकाश भटनागर पीएच० डी०
प्रोफेसर म० मो० मा० राजकीय आयुर्वेद
महाविद्यालय, उदयपुर (राज०)

एलर्जी-कारण और निवारण

विद्या रत्न डा० प्रकाश चन्द्र गंगराड़े B. Sc. D., H. B., D Pharma
आयुर्वेद वारिधि, ६०२-एन २, हुवीबगंज
भोपाल-२४ म० प्र०

—•—
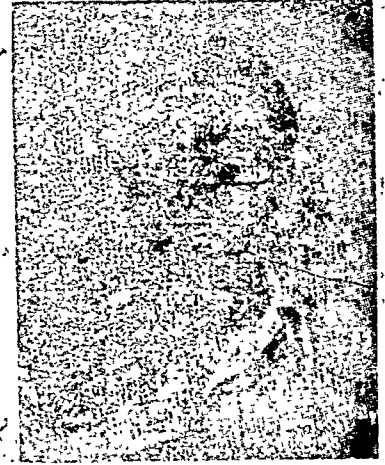
किसी वस्तु से एलर्जी होने पर शरीर के कोषों में एक तीव्र प्रतिक्रिया होती है, जिससे वह वस्तु विष के समान हानिप्रद प्रभाव दर्शाती है। इसे दूसरी शक्ति कह कर भी पुकारा जा सकता है, जो मनुष्य में असहिष्णुता या चिढ़ उत्पन्न करती है। असहिष्णुता या एलर्जी को अरुचि (चिढ़), अतिग्राहिता के नाम से भी जाना जाता है।

एलर्जी मुख्यतः नौ प्रकार की देखने को मिलती है—औषधि से, कीटाणु से, मानसिकता से, रोग से, पैतृक स्थिति से, हार्मोन ग्रन्थियों से, शारीरिक रूप से, गुप्त रूप से, तात्कालिक रूप से। इनका विस्तृत उल्लेख आधुनिक चिकित्सा विज्ञान एलोपैथी में ही अधिक मिलता है।

एलर्जी पैदा करने वाले पदार्थ अंग्रेजी में 'एलर्जेन' कहलाते हैं। यदि यह कहा जाये कि दुनिया के अधिकांश पदार्थ किसी न किसी के लिए 'एलर्जन' साबित हो सकते हैं, तो अतिशयोक्ति न होगी।

हमारे शरीर में जब कोई बाहरी प्रतिकूल वस्तु प्रवेश करती है तब हमारी सुरक्षा प्रणाली उसका विरोध करती है और उसका यह विरोध ही शरीर को हानि पहुँचाता है। यह एलर्जी के लक्षणों के रूप में प्रकट होता है।

कुछ प्रमुख 'एलर्जेन' निम्नानुसार हैं—

खाने पीने की चीजें—अण्डा, केला, दूध, मांस, मछली, ठण्डे पेय।

मेकअप की चीजें—लिपस्टिक, टेल्कम पावडर, क्रीम।

पहनने के कपड़े—नायलोन, टेरीलीन, पोलीस्टर।

औषधियां—सल्फा ड्रग्स, पेनिसीलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, टीके आदि।

उपर्युक्त 'एलर्जन' खाने या सम्पर्क में आने अथवा इंजेक्शन रूप में शरीर में प्रवेश होने पर असहिष्णुता या एलर्जी के लक्षण करते हैं। यदि व्यक्ति उनसे असहिष्णु है तो अन्यथा सामान्यतया इनका प्रचुर बाह्य और आंतरिक प्रयोग बहुतायत में हो रहा है फिर भी सभी को ऐसे लक्षण नहीं होते। सामान्यतया दस प्रतिशत लोग ही एलर्जी के चक्कर में पड़ते हैं।

एलर्जी के सामान्य लक्षणों में खुजली, सूजन, दाने, जलन, चकत्ते, दस्त, बुखार, उल्टियां होना, मुख्यतः देखने में आते हैं। एलर्जी का गम्भीर रूप दमा (अस्थमा) है। इसके अतिरिक्त एलर्जी से खाज, एक्जिमा, पामा, शीतपित्त, लाल-लाल दाने शरीर पर निकलना विकृति के रूप में प्रकट होते हैं।

एलर्जी के कारणों में मुख्यतः हिस्टामिन शरीर में मुक्त होता है, जिसकी वजह से ही सूजन, लाल-चकत्ते जलन दाने, दस्त आदि लक्षण देखने में आते हैं।

एलर्जी का पता त्वचा के नीचे सुई लगाकर किया जाता है। अतः डाक्टर मरीज़ों को सीरम युक्त इंजेक्शनों को लगाने का आदेश देते समय निर्देश में AST (आफ्टर सेन्सिटिव टेस्ट) लिखा जाता है, ताकि टेस्ट करने पर

उत्पन्न सूजन, लालिमा, खुजली आदि लक्षण देखकर एलर्जी की गम्भीरता का पता लगाया जा सके।

हमारे शरीर में रक्त की सफेद रक्त कोशिकाएं विजातीय पदार्थों के विरुद्ध बचाव हेतु एण्टबाडी बनाती हैं। जब कभी भी कोई विपरीत प्रकृति का पदार्थ हमारे रक्त, या शरीर में प्रवेश करता है वहीं ये इकट्ठी होकर उसका प्रतिरोध करती हैं। साथ ही शरीर की पूरी रक्षा करने की कोशिश करती हैं।

एलर्जी का इलाज—

सबसे पहले कारण का पता लगाना चाहिए फिर उसे दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। जहां तक संभव हो उस वस्तु के सम्पर्क में कम से कम आयें, ऐसी व्यवस्था कर लेना ही उचित होगा। जिस चीज के खाने से एलर्जी की स्थिति पैदा होती है, उसे कभी न खायें।

गोलियां, दवायें, इन्जेक्शन एलर्जी के लक्षण को अस्थाई रूप से कम या दूर कर पाते हैं लेकिन भविष्य में जब-जब आप 'एलर्जन' के सम्पर्क में आयेंगे आपको पुनः एलर्जी की तकलीफ पैदा हो जायगी। अतः जहां तक हो सके एलर्जी पैदा करने वाले तथ्यों को पहिचान कर उनसे दूर रहना ही उचित होगा।

कोई भी क्रीम या नया लोशन पहले-पहल इस्तेमाल में लाने से पूर्व शरीर के निचले हिस्से में थोड़ी सी त्वचा पर लगाकर दस पंद्रह मिनट तक प्रतिक्रिया देखें। यदि खुजली, जलन, सूजन आदि लक्षण देखने, महसूस करने में न आयें तो फिर उसका प्रयोग शरीर के अन्य हिस्सों के लिए बेखटके कर सकते हैं।

नीचे एलोपैथिक चिकित्सामतानुसार महत्वपूर्ण टेब्लेट, पेय, इन्जेक्शन व बाह्य उपचारार्थ एलर्जी की औषधियों का संकेत मात्र दिया जा रहा है—

टेब्लेट्स—

एविल (हेक्स्ट), बेनाड्रिल (पार्कडेविस), एन्टीस्टिन (सीबा), टेड्राल (वार्नर हिन्दुस्तान), फारिस्टाल (सीबा), इन्सीडाल (बायर), हिस्टाफेड (वाईथ), मेग्रिल (ए० के० एण्ड एफ०), पेरिएक्टिन (एम० एस० डी०)।

पेडिएट्रिक पेय—

एविल (हेक्स्ट), फेनारगान (मे एंड बेकर), बेनाड्रिल (पार्क-डेविस), फेनरगान (मे एंड बेकर), डायलोसिन (एलन बरीज), हिस्टाडायल (लिली कम्पनी), पेरिएक्टिन (एम० एस० डी०), [illegible] (सेण्डोज)।

इन्जेक्शन—

कोवेन्टाल (नॉल), सिनिस्टाडिन (सुहृद-गायगी) एविल (हेक्स्ट), एन्डान्टाल (जर्मन रेमेडिज)।

बाह्य प्रयोगार्थ—

केलाड्रिल लोशन (पार्क डेविस), हिस्टाडिल (लिली कम्पनी), बेटनोवेट (ग्लैक्सो), एन्टीस्टीन प्रिवीन (सीबा-गायगी)।

— पृष्ठ १८३ का शेषांश —

७. रोगी को हवा-रोधक स्थान पर ठण्डे जल में आकण्ठ डुबा दें, सिर पर गीला कपड़ा रखें। १ से २ घण्टों बाद निकालें। ठण्ड लगने पर कम्बल उढ़ाकर लिटा दें। गर्म पेय दें।

८. रोगी को शीतल कमरे में विश्राम करने दें। वातानुकूलित हो तो उत्तम है। यदि रोगी वातानुकूलित कमरे का आदी है तो लाभ कम होगा।

उपर्युक्त उपचार के अतिरिक्त ऐसे कई अन्य प्रयोग हो सकते हैं किन्तु सभी का उद्देश्य एक ही होगा। रोगी के शरीर का तापक्रम कम करना। इसके पश्चात् अन्य लक्षणों के अनुसार अन्य उप-रोगों का उपचार करना चाहिए।

हाथ की हथेली और पैर के तलुओं से अधिक शीघ्रता से सर्दी और गरमी प्रविष्ट होती है अतः कपूर मिश्रित नारियल के तेल में आधा पानी मिलाकर इन भागों में मालिश करें। ध्यान रहे कि रोम-छिद्र व स्वेद-छिद्र का आपस में कोई संबंध नहीं होता। शरीर में सबसे अधिक स्वेद-छिद्र माथे में, आंखों के आसपास तथा हथेली व पैरों के तलुवों में होते हैं जबकि इन भागों में रोम नहीं होते (केवल माथे को छोड़कर)।

—डा० राजेश्वर कुमार शर्मा बी.ए., आयु.र.
गुप्ता मेन्शन, बेतुरकर पाडा
काला—तालाब, कल्याण ४२१३०

अलर्जी-कारण और निवारण (आधुनिक विवरण)

डा० जगदीश कुमार अरोरा डी०एस्सी० (आयु०), एफ०आर०ए०एस०, ए०एफ०आर०एस० हैल्थ (लन्दन)
पटेल नगर, हापुड़–२४५१०१ (उ०प्र०)

एलर्जी (कारण)—

सामान्यतः कोई भी आहार-द्रव्य, कोई भी औषधि-द्रव्य, जलवायु (देश) आदि, अपना सम्पर्क होने पर किसी पुरुष-विशेष में विकृति-लक्षण उत्पन्न करे तो उन्हें एलर्जी से उत्पादित कहा जायेगा।

एलर्जी शब्द दो ग्रीक शब्दों के संयोग से बना है। इनका मिश्रित अर्थ है—'भिन्न-अन्य-क्रिया' होता है। इसका अर्थ यह है कि जिस पदार्थ का सेवन करने से अधिकांश पुरुषों में कोई अस्वाभाविक एवं अनिष्ट लक्षण उत्पन्न न हो, परन्तु किसी ही व्यक्ति में ऐसे लक्षणों का आविर्भाव हो तो उसका कारण उस व्यक्ति में उस पदार्थ की एलर्जी होना माना जाता है। जिस वस्तु से एलर्जी के लक्षण उत्पन्न हों उसे एलर्जन कहते हैं। यह भी सम्भव है कि वास्तविक एलर्जन बाह्य असात्म्य औषधि आदि के शरीरान्तर्गत प्रोटीन के साथ संयोग का नाम है।

एलर्जी एक परिवर्तित प्रतिक्रिया है या कुछ द्रव्यों के लिए संवेदनशीलता में वृद्धि हो जाती है। जो कि इन द्रव्यों के लिये सूक्ष्मग्राही हैं तथा जब इन द्रव्यों के सम्पर्क में आते हैं उनमें रोग के लक्षण पैदा हो जाते हैं।

जिन व्यक्तियों में इन द्रव्यों के लिए सूक्ष्म ग्राहकता नहीं होती उनके लिये यह द्रव्य हानिकारक नहीं होते और न ही उनको इससे एलर्जी उत्पन्न होती है, जिसका मुख्य कारण यह है कि जिन व्यक्तियों को जिन द्रव्यों के लिये एलर्जी होती है उन व्यक्तियों में विशेष प्रकार की एन्टीबॉडी उत्पन्न होती हैं जिसे हम इम्यूनोग्लोबिन 'ई' या Ig. E कहते हैं जो इन द्रव्यों या वातावरण द्रव्यों के साथ हानिकारक क्रिया करती है जिसके परिणामस्वरूप एलर्जी उत्पन्न होती है तथा इन द्रव्यों या वातावरण द्रव्यों को हम एलर्जन कहते हैं।

एलर्जन और एन्टीबॉडी Ig. E की प्रतिक्रिया में कुछ द्रव्य मुक्त होते हैं—जैसे हिस्टामिन, ब्रेडीकाइनन, एस. आर.ऐस.ए., ऐस्टाइल कोलिन आदि-आदि, जो हमारे शरीर के लिये हानिकारक हैं तथा जिसके परिणामस्वरूप त्वचा, नाक, आँख, वक्ष आदि में एलर्जी के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

कोई भी एण्टीजन शरीर पर प्रभाव डालकर लाभप्रद या हानिप्रद प्रभाव डाल सकता है। लाभप्रद प्रभाव उसके सात्म्य होने का और हानिप्रद प्रभाव असात्म्य होने का प्रमाण है और इसी दुष्प्रभाव को एलर्जी के नाम से पुकारा जाता है जबकि सुप्रभाव इम्यूनिटी कहलाता है। जब कोई अपद्रव्य शरीर में प्रवेश करके जब अवशिष्ट या क्षोभात्मक प्रक्रियायें उत्पन्न करता है यहाँ तक कि वह अपद्रव्य एक प्रक्षोभक का रूप ले लेता है तो वह एलर्जी या अधिक सूक्ष्म ग्राही या हाइपर सेंसिटिविटी पैदा करने वाला कहा जाता है तथा जैसे ही कोई अपद्रव्य (बाह्य या फोरेन द्रव्य) शरीर में घुसा कि प्रतिक्रिया चालू हो गई। एण्टीजन (प्रतिजन) के साथ स्पर्श होते ही इस रक्षक फोर्स को चौकन्ना कर देता है। इस रक्षक फोर्स के अन्तर्गत मैक्रोफेजेज या भक्षक कोशिकाएं, लिम्फोसाइट्स या लसी कोशिकायें, प्लाज्मा सैल्स या प्ररस कोशिकायें आती हैं जो कि अस्थिमज्जा के Stem Cell में तैयार होते हैं। थाइमस, लसीपर्व प्लीहा ग्रन्थियों एवं टोनोइड्स पेयर के सिद्म तथा उण्डुकपुच्छ, इन सबसे निकलने वाली कोशिकायें भी रक्षक फोर्स की सहायता करती हैं। इस प्रकार यह अतिग्राहिता (Hyper-sensitivity) एक प्राकृतिक रक्षात्मक उपाय है। इम्यून प्रतिकारी जहाँ रोग उत्पन्न करती है वहाँ एलर्जी मानी जाती है। जहाँ वह रोग से रक्षा करती है वह इम्यूनिटी कही जाती है। दोनों ही प्रतिरक्षा के अङ्ग हैं।

सामान्य प्रतिकारी प्रतिचार—

प्रतिरक्षा के कार्य २ प्रकार के होते हैं—

अलर्जी-(निवारण)—

हिस्टामिन निरोधी तथा अनुर्जता निरोधी औषधियाँ।

उपरोक्त प्रकार की औषधियां हिस्टामीन के प्रभाव को समाप्त करती हैं अतः अलर्जीजन्य रोगों में लाभदायी हैं। यह औषधियां हिस्टामिन की उत्पत्ति तो नहीं रोक सकतीं, परन्तु इसके प्रभाव को नष्ट कर देती हैं। साधारण मात्रा में यह औषधियां अनैच्छिक पेशियों की एठन रोकती हैं—इस कारण से यह श्वास रोगों में उपयोगी हैं। केन्द्रीय वातनाड़ी संस्थान का अवसाद करती हैं। सीरम जन्य प्रतिक्रिया को बचाती हैं। हिस्टामिन के कारण जो रक्तवाहिनियों का अवसाद होता है—वह उपरोक्त प्रकार की औषधियों द्वारा समाप्त हो जाता है।

विषाक्तता—

अत्यधिक मात्रा में इनका प्रयोग करने से केन्द्रीय वात नाड़ी संस्थान उत्तेजित होता है। इसकी विषाक्तता के कारण तन्द्रा (Drowsiness), जी मिचलाना, कमजोरी वमन, दिखाई देने की कमी, मानसिक अस्थिरता, चक्कर आना, कंपकंपी तथा मुख शुष्कता आदि लक्षण होते हैं।

दमा, एक्जिमा, उदर्द, जुकाम, सर में दर्द, तीव्र वृक्क शोथ, परिक्लिन के रोग रक्तवाहिनी वात नाड़ी जन्य सूजन, खुजली किरण जन्य विकार, हृदय में पीड़ा, सीरम पेन्सिलिन, कुनैन तथा ब्रोमाइड आदि के कारण त्वचा पर दाने होने पर कुष्ठ प्रतिक्रिया, मासिक में पीड़ा, स्पंदन शील कान में आवाज आदि रोगों में प्रयोग की जाती है।

श्वास प्रणालीय आक्षेप, मिचली गर्भावस्था का वमन, खुजली आदि में लाभ पहुँचाते हैं। इस प्रकार की आधुनिक औषधियों के निम्न योग प्रायः प्रयोग किये जाते हैं—

(१) एण्टीस्टिन—यह औषधि सीबा कम्पनी द्वारा बनाई गई है। इसके इन्जेक्शन तथा टेबलेट आती है जो बाजार में आसानी से मिल जाती है। इस औषधि में एण्टाजोलीन होता है। इन्जेक्शन २ मि.लि. का आता है तथा इस इन्जेक्शन में एण्टाजोलीन हाइड्रोक्लोराइड की १०० मि० ग्राम होती है। तथा प्रत्येक टेबलेट में भी इसकी मात्रा १०० मि० ग्रा० ही है।

(२) फेनर्जन—यह औषधि मे एण्ड बेकर कम्पनी द्वारा बनाई गई है। इसके टेबलेट, शर्बत, इन्जेक्शन तथा क्रीम आती है। इस औषधि में प्रोमेथाजीन हाइड्रोक्लोराइड होता है। टेबलेट १० मि ग्रा० तथा २५ मि. ग्रा. की आती हैं। मांसगत इन्जेक्शन के २ मि. लि. में यह २.५% होता है। क्रीम तथा शर्बत में इसकी मात्रा ५ मि. लि. में ५ मि०ग्रा० होती है।

(३) बैनाड्रिल—यह औषधि पार्क डेविस द्वारा बनाई गई है। इस औषधि में डॉ-फीन-हाइड्रोक्लोराइड होता है। इसके कैपसूल, क्रीम तथा शर्बत आते हैं। कैपसूल में इसकी मात्रा २५ मि० ग्रा० होती है तथा क्रीम में २% होती है तथा शर्बत के ५ मि.ली. में १२.५ मि. ग्रा. होती है।

(४) साइनोस्टेमिन—यह औषधि सुहृद-गायगी द्वारा बनाई जाती है। इस औषधि में हैलोपायरमीन हाइड्रोक्लोराइड होता है। इसके टेबलेट, इन्जेक्शन तथा क्रीम आते हैं। टेबलेट में इसकी मात्रा २५ मि. ग्रा. तथा २ मि लि. इन्जेक्शन में १० मि. ग्रा. तथा क्रीम में १% होती है।

(५) एविल—यह औषधि हेक्स्ट कम्पनी बम्बई द्वारा बनाई गई है। इस औषधि में फेनोरमिन मैलियेट होती है। इसके टेबलेट शर्बत तथा इन्जेक्शन आते हैं। इन्जेक्शन के २ मि. लि. में इसकी मात्रा २२.५ मि. ग्रा. होती है। शर्बत के ५ मि. लि. में १५ मि. ग्रा. तथा टेबलेट-२५ में २२.५ मिग्रा. तथा में ४५ मिग्रा. होती है।

(६) सोवेन्टोल यह औषधि बोहिरंगर-नोल द्वारा बनाई गई है। इसके टेबलेट, शर्बत तथा इन्जेक्शन आते हैं। इस औषधि में एन-फिनायल-एन बेन्जाइल-एमीनो-इथायल पायरीडीन हाइड्रोक्लोराइड होती है जिसकी टेबलेट में २५ मि.ग्रा. तथा ५० मि. ग्रा. होती है तथा इन्जेक्शन के १ मि. लि. में ५० मि. ग्रा. होती है।

(७) जोर—यह औषधि अलेम्बिक कम्पनी द्वारा बनाई गई है। इसकी टेबलेट, शर्बत, इत्यादि आते हैं। इस औषधि में क्लोरफेनीरेमिन मेलियेट होती है।

इसी प्रकार डाइलोसिन (बी. डी. एच.) कम्पनी तथा हिस्टेस्टिन आदि अनेकों औषधि बाजार में उपलब्ध हैं जिनका प्रयोग करके अलर्जी से निवारण पाया जा सकता है। ★

शीतपित्त की आत्ययिक चिकित्सा

वैद्य भानुप्रताप रा. मिश्र एवं वैद्य शोभन वसाणी

शीत ऋतु में जुरपित्ती (शीतपित्त) के रोगियों की वृद्धि होने की बहुत संभावना रहती है क्योंकि इसका मुख्य कारण शीतमारुत संस्पर्श है। हेमन्त, शिशिर और वर्षा में रात्रि या प्रातःकालीन ठंडी में इतना अधिक जुरपित्ती (शीतपित्त) उत्पन्न होजाती है कि रात निकालना मुश्किल हो जाता है। जुरपित्ती को आयुर्वेदीय शास्त्रीय भाषा में शीतपित्त कहते हैं। क्योंकि उसमें वायु शीत गुण से और पित्त तीक्ष्ण गुण से प्रकुपित होता है। अत्यधिक खुजली आने के कारण इसमें कफ भी दूषित होता है।

कम्बल ओढ़ना, गोबर को सुखाकर जलाई हुई राख गरम-२ ही शरीर पर लगाना, इन्द्रायण (इन्द्रवारुणी) में रखा गया कालीमिर्च का दाना सूंघना या निगल जाना अथवा इन्द्रायण (इन्द्रवारुणी) को पीसकर पी जाना, गुड़ और अजवायन (यवानी) खाना हल्दी (हरिद्रा) और अजवायन (यवानी) खाना, स्नान बन्द करना धूप या पवन शरीर में न लगने देना, नमक और खट्टे पदार्थ बन्द करना आदि बहुत से उपचार किये जाते हैं और ये कम अधिक प्रमाण में आशुकारी राहत भी देते हैं।

शीतपित्त अधिक प्रमाण में हो और बारम्बार उत्पन्न होते हों तो सामान्य औषधि से यह काबू में नहीं आता है। ऐसे गंभीर अवस्था के ज्वरपित्ती (शीतपित्त) में आशुकारी लाभ हेतु संशोधन चिकित्सा अर्थात् पंचकर्म चिकित्सा करने की शीघ्र आवश्यकता रहती है। वमन, रक्तमोक्षण, विरेचन कर्म इसमें विशेष रूप से करने चाहिये। जहां पंचकर्म कराने की आवश्यकता अथवा उसे कराने की सुविधा न हो तब निम्न उपचार में से जो सम्भव हो उसे करना चाहिये—

(१) सरसों तैल में यवक्षार मिलाकर मालिश (अभ्यङ्ग) करानी चाहिए। इसके अभाव में मरिच्यादि तैल, निम्ब तैल अथवा करंज तैल का भी उपयोग किया जा सकता है।

(२) मंजिष्ठादि क्वाथ दिन में दो बार पिलावें।

(३) आरोग्यवर्धिनी रस आधा ग्राम, गंधक रसायन आधा ग्राम तथा सूतशेखर रस चौथाई ग्राम दूध के अनुपान में दिन में दो बार देना चाहिए।

(४) इसमें विरेचन की आवश्यकता होने के कारण त्रिफला चूर्ण ६ से ८ ग्राम प्रातःकाल उष्णोदक में लेना चाहिए। यदि इससे विरेचन न हो तो अश्वकंचुकी रस, इच्छाभेदी रस, अभयादि मोदक, हरीतकी चूर्ण स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण आदि दें।

(५) पंचतिक्त घृत अथवा हरिद्राखण्ड योग्य मात्रा में देने से अतिशीघ्र लाभ होता है।

शीतपित्त के रोगी को दही, नमक, टमाटर, मूंगफली, अचार, तली हुई चीजें तथा खुजली लाने वाले, रक्त को विकृत करने वाले आहार बन्द कराने चाहिए।

आम्र हरिद्रा, करेला, परवल, मूंग जैसे हितकारी आहार जुरपित्ती (शीतपित्त) के रोगी को देना हितकर है। दिन की निद्रा तथा अति गरमी, अति ठंडी शीतपित्त के रोगी के लिए अहितकर हैं।

अन्त में इस लेख के अनुवादक वैद्य श्री भानु प्रताप आर. मिश्र, विवेकानन्द श्री बालाहनुमान आयुर्वेद महाविद्यालय लोदरा, तालुका विजापुर जि. महेसाना ने शीतपित्त के रोगी को पानी में स्वर्जिका क्षार (खाने का सोडा) मिलाकर शरीर पर मालिश कराने तथा अजवायन (यवानी) ५ ग्राम, गुड़ ५ ग्राम अच्छी तरह चबा-२ कर दिन में तीन बार खिलाने से आशुकारी लाभ होता है। इसके सहायक औषधि के रूप में हरिद्रा चूर्ण एवं दूध चिकित्सक को युक्तिपूर्वक देना चाहिये। —सद्य चिकित्सा से साभार
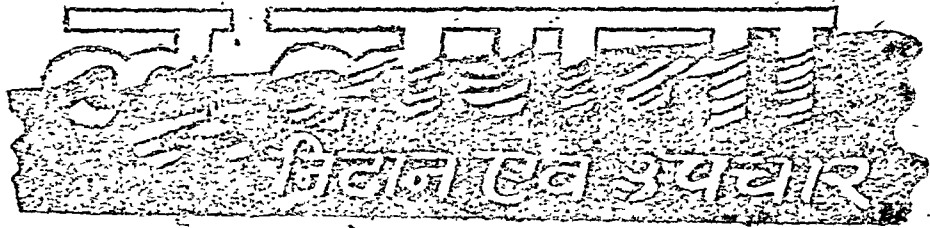
डॉ० राजेश्वर कुमार शर्मा

हमारे शरीर में ऐसी व्यवस्था है कि जब शरीर का तापमान औसत तापमान (९८.४°) से अधिक बढ़ने लगता है तो उसे ठण्डा रखने के लिये अन्तः चर्म में स्थित स्वेद ग्रन्थियाँ अपना कार्य बढ़ा देती हैं और स्वेद छोटी–२ बूंदों के रूप में शरीर के ऊपरी भाग की चमड़ी पर इकट्ठा हो जाता है तथा बाहरी हवा के ताप को ग्रहण करके वाष्प बनकर उड़ने लगता है तब शरीर का ताप कम होने लगता है। लू लगने पर यह व्यवस्था असफल हो जाती है क्योंकि गरम हवा व गरम वातावरण के प्रभाव से चमड़ी अत्यधिक फैल जाती है तथा इस प्रसार से स्वेद आने के छिद्र भी फैल जाते हैं। अधिक मात्रा में स्वेद निकल कर फिर बढ़े हुए तापमान को घटाने में एकाएक समर्थ नहीं हो पाते। स्वेद सतह पर आने व बूंदों के रूप में जमने के पहिले ही वाष्प बनने लगता है तथा शरीर का तापमान बढ़ता ही जाता है। खून में पानी का प्रतिशत कम हो जाता है व रोगी की मृत्यु जल-हीनता (de-hydration) से हृदय गति पर प्रभाव तथा अन्त में हृदयावरोध से हो जाती है। कहीं-२ दशाओं में यदि अधिक प्रभाव न हुआ तो उन्माद जैसी अवस्था आ सकती है।

लक्षण—लू लगने पर सर्व-प्रथम त्वचा, अक्षिगोलक कान के भीतरी भागों में जलन होती है। शरीर का तापमान बढ़ते-बढ़ते १०४ या १०५ तक पहुँच जाता है यदि न रोका गया तो रोगी की मृत्यु निश्चित रहती है। आंखों में लाली आ जाती है। पैर के तलवे व हाथ की हथेली आग की तरह जलती है, गला सूखता है, माथा गरम, थोड़ा व पहला कमजोर हो जाता है। पसीना बिलकुल नहीं आता है, कभी-कभी गुर्दे अतिग्रस्त हो जाते हैं। बार-बार मोहांध होता है। रोगी कभी-कभी सन्निपात ग्रस्त की तरह व्यवहार करता है। अर्ध-विक्षिप्त व कभी-कभी तो विक्षिप्त भी हो सकता है। यदि शीघ्र उपचार न हो तो मृत्यु हो जाती है। लक्षणों की तीव्रता के अनुसार रोगी २-४ मिनटों से लेकर कुछ घंटों तक ही में मर जाता है। उपचार शीघ्र होना चाहिए।

सावधानियां—उपर्युक्त लक्षणों के अनुसार यह निश्चित ही है कि यदि लू का आक्रमण तीव्र है तो उसका उपचार होने के पहिले ही हानि हो चुकी होती है अतः सर्व प्रथम तो यह ध्यान रखा जाय कि लू लग ही न पाये। उसके लिए निम्न उपाय अत्यन्त सफल हैं—

१—बाहर जाते समय प्याज का एक टुकड़ा अपनी ऊपरी जेब में रखें।

२—सिर पर तेज धूप न पड़ने दें तथा सिर व कान पर कोई पतला कपड़ा लपेट लें।

३—तेज धूप से आकर तुरन्त ही ठण्डा पानी व बर्फ आदि का प्रयोग खाने पीने में न करें। साधारण गरम पानी में आधा नींबू व नमक डालकर प्रयोग करें।

४—होम्योपैथिक दवा Acon. Nap. 6x की एक शीशी पास रखें। घर से चलने के पहिले तथा लू लगने की सम्भावना पर ४ गोलियां से लें। गोलियों को हाथ से न छुएँ। जीभ पर रखकर ऐसे ही घुल जाने दें।

उपचार—

लू लगने में मुख्य समस्या शरीर का ताप कम करने की समस्या ही है अतः जिस प्रकार शरीर ताप कम हो तथा स्वेद ग्रन्थियां कार्य आरम्भ कर दें, वही उपचार करें। पश्चात् ही अन्य गुत्थियां सुलझायें। मेरे अनुभव से इसके उपचार में निम्न प्रयोग खरे उतरे हैं—

१. होम्योपैथिक दवा एकोनाइट नेप 1x की ३-३ बूंदें हर १५ मिनटों के बाद पानी के साथ दें। साथ ही
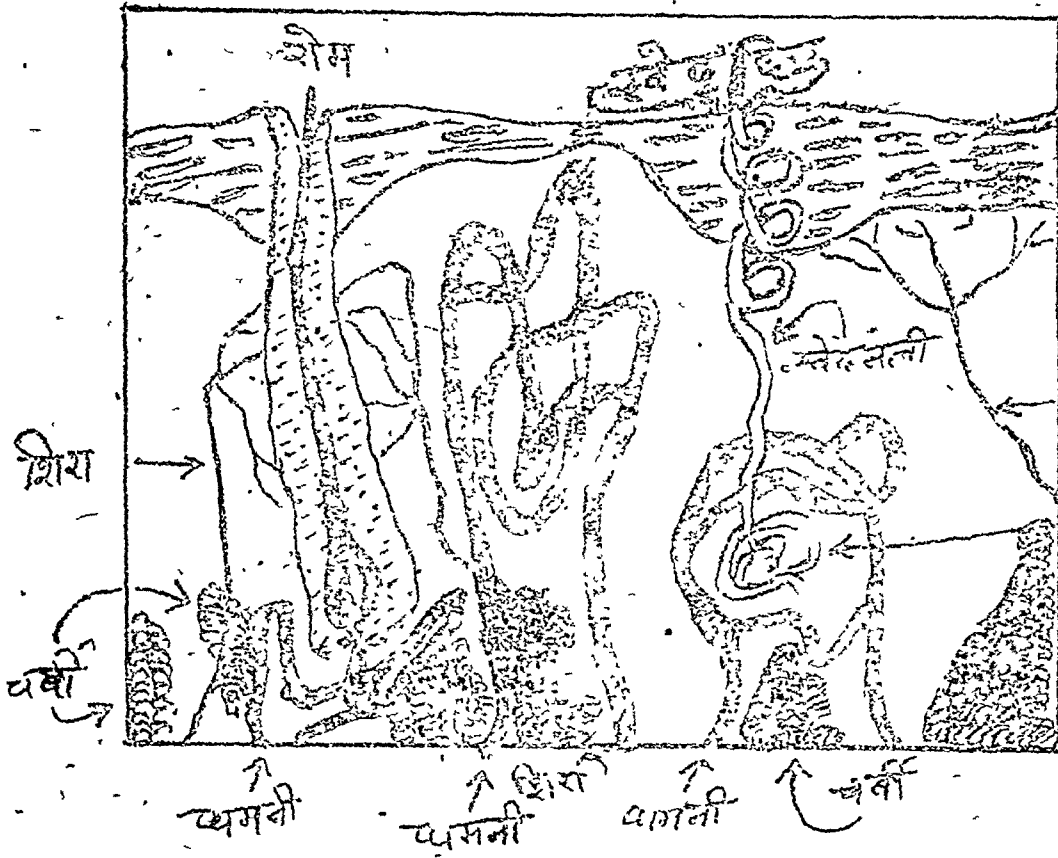
(स्वेद- प्रणाली)

एमाइल नाइट्रेट Q को रुई पर डालकर सुंघायें।

२. सूखा वत्सनाभ ४ से ६ रत्ती आधा लिटर पानी में उबाल कर अष्टम भाग काढ़ा बनायें। इसे छानकर रखें। इसे एकोनाइट नेप की तरह दे सकते हैं।

३. निम्न औषधियों को कूट छानकर रख लें—

टेसू के फूल, चने के वृक्ष की जड़ छोड़कर शेष भाग तथा तुलसी के पत्ते सभी समभाग। लू लगने की दशा में २ चम्मच पाउडर को घड़े के १ लिटर पानी में १५ मिनट या इससे अधिक समय तक पड़ा रहने दें। पश्चात् पानी को छानकर इसमें कोई मोटा कपड़ा भिगोकर रोगी का सम्पूर्ण शरीर, कई बार पोंछें। शीघ्र ही लाभ होगा। सिर पर गीला कपड़ा रख दें।

४. बिजली की मशीन, बिजली से चालू करें। १-१ प्लग रोगी के हाथ में दें तथा जितना करंट सहन हो उतना विद्युत प्रवाह दें। थोड़ी देर में पसीना आने लगेगा। रोगी को पहिले १ प्रतिशत नमक की चाय दें।

१% नमक की चाय—

पानी १ लिटर, नमक १ छोटा चम्मच, तुलसी के सूखे पत्तों का चूर्ण १ चम्मच (बड़ा), पिप्पली चूर्ण आधा चम्मच। सबको मिलाकर पानी को खौलने दें। ५ मिनट बाद उतार लें व १ कप की मात्रा में गर्म-गर्म पिलाये।

लाभ—लू तथा तेज बुखार में पसीना लाता है। अधिक पसीना निकलने की दशा में द्रवहीनता की पूर्ति करता है।

५. साधारण चाय में दूध न डालें व उपर्युक्त मात्रा में नमक डाल दें, शक्कर न दें तो भी लाभ होता है।

६. वेदना निग्रह रस, स्फटिका भस्म अथवा मूत्रल प .र (वंधनाग) का यथायोग्य प्रयोग करें।

—शेषांश पृष्ठ १८६ पर देखें।
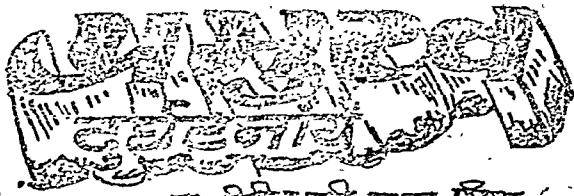
आयु० चक्र० डा० गिरिधारी लाल मिश्र

डूबना—

वर्षा ऋतु में नदियों में बाढ़ आजाने से तथा तालाब, कुआ आदि में डूब जाने की दुर्घटना प्राणघातक होते हुए भी जन सामान्य हैं। प्रति वर्ष सहस्रों व्यक्ति डूब कर मृत्यु के मुख में समा जाते है अतः प्राणरक्षा हेतु तत्काल उपचार की आवश्यकता है।

डूबते को सहारा—कहावत है डूबते को 'तिनके का सहारा' अर्थात् डूबते हुए को थोड़ा-सा भी सहारा मिल जाय तो वह बच जाता है अतः यदि कोई व्यक्ति डूब रहा है तो नाव, रस्सी, हवा भरा हुआ ट्यूब द्वारा उसे बचाना चाहिए। पानी में रस्सी फेंके व हवा भरा हुआ ट्यूब हवा भरे हुए तिरपाल के "एयरटाइर" तकिये को रस्सी से बांधकर फेंकना चाहिए जिससे डूबता हुआ व्यक्ति उनको पकड़ कर पानी की ऊपरी सतह पर आ सके और फिर रस्सी को खींचकर उसे किनारे पर ले आना चाहिए। यदि तैरना अच्छी तरह आता हो तथा शरीर में इतनी शक्ति हो कि एक और 'प्राणी को जबरदस्ती' पकड़ कर ला सकते हैं तो तत्काल डूबते हुए को बचाने के लिए पानी कूद जाना चाहिए तथा उसके सिर के बाल व बदन के कपड़े को मजबूती से पकड़कर किनारे ले आना चाहिए। डूबता हुआ व्यक्ति अपने बचाव के लिये आने वाले को ही अपनी सुरक्षा के लिए जोर से पकड़ लेता या वह इतना घबड़ाया हुआ रहता है कि बचाने वाले से चिपट जाता है और इस तरह बचाने वाला भी डूबने वाले की चपेट में आ जाता है अतः बचाने वाले को इससे सतर्क रहना चाहिए। इतना समीप न जावे कि खुद ही फस जावे।

प्राथमिक चिकित्सा—जैसे ही डूबते हुए व्यक्ति को पानी से निकाला जाय उस के शरीर को पोंछकर कृत्रिम श्वास देना प्रारम्भ कर देना चाहिये। मुख से मुख मिला कर कृत्रिम श्वास देना उत्तम है। डूबने से आमाशय और फेफड़ों में जल भर जाता है अतः उलटा लिटाकर गर्दन को एक तरह मोड़ कर पानी को बाहर निकाल दें यदि हृदय तथा नाड़ी का स्पन्दन न मालुम हो तो तत्काल हृदय की मालिश प्रारम्भ कर देनी चाहिए।

विशेष चिकित्सा—होस्पिटल में रोगी को प्रवेश देकर आक्सीजन सिलेण्डर मगवा कर श्वसन मार्ग द्वारा आक्सीजन देने से शीघ्र ही श्वसन क्रिया में गति आजाती है और रोगी के प्राण बच जाते हैं नाड़ी की गति मन्द होने पर तथा हृदय का स्पन्दन स्पष्ट न होने पर मार्तण्ड व प्रताप फार्मा का "हृदयामृत" व 'कारोमीन' इन्जेक्शन मांसपेशी में देना चाहिये।

जवाहरमोहरा, मुक्तापिष्टि, सिद्ध मकरध्वज की १-१ रत्ती की मात्रा तुलसी स्वरस + मधु से ३-३ घण्टे पर चटावें। शीघ्र ही रुग्ण को स्वास्थ्य लाभ होने लगेगा।

विशिष्ट प्रयोग—जल में डूबा हुआ व्यक्ति मूर्छित अवस्था में हो तथा दूर देहात का ऐसा क्षेत्र हो जहां तत्काल चिकित्सा सेवा उपलब्ध न हो ऐसी स्थिति में रोगी को उलटा लिटाकर उसका पानी निकाल कर फिर उस पर २ सेर या जितने में उसका शरीर ढक जाय पीसा हुआ नमक डाल दें तथा आधे से एक घण्टे तक इस अवस्था में रहने दें इससे रुग्ण का श्वास चलने लगेगा तथा शरीर में गर्मी मालूम होने लगेगी, शरीर के जलीय का नमक शोषण करता है जिससे कुछ नमक तो गिर जाता है शेष अच्छा रहता है और फिर काम में लाया जा सकता है। आंख और नाक को नमक से बचा कर रखना चाहिए। अनुभव सिद्ध सत्य प्रयोग है जिससे आवश्यकता पड़ने पर आजमाकर देखना चाहिए।

दम घुटना—

'दम घुटना' उस स्थिति को कहते हैं जब गले पर बाहर से कोई दबाव डाले बिना अन्य किसी कारण से श्वास-क्रिया में रुकावट उत्पन्न हो जैसे किसी बाह्य पदार्थ के आने से श्वास नलिका में रुकावट हो व वक्ष को जोर से दबाकर रखने से जब श्वास नहीं आती तो दम घुटने लग जाता है।

प्रमुख कारण—(१) कार्बन मोनोक्साइड, कार्बनडाई आक्साइड हाइड्रोजन सल्फाइड गैस अथवा अत्यधिक धूआं के फेफड़ों में पहुँचने पर श्वासावरोध होने लगता है और दम घुटने लग जाता है।

(२) कभी-कभी कमरे के दरवाजे, खिड़की बन्द करके अधिक व्यक्तियों के एक कमरे में सोने से तथा दुर्बल रोगी को जब बहुत मनुष्य घेर लेते हैं तो दम घुटने लगता है

(३) शीत प्रदेशों में बन्द कमरे में आग (सिगड़ी) लेकर सोने से आक्सीजन की कमी हो जाती है जिससे दम घुटने लग जाता है। सिनेमाहाल व भीड़ वाले स्थानों में भी दम घुटने की सम्भावना रहती है।

चिकित्सा—भोजन के अंश व अन्य बाह्य पदार्थ (Foreign Body) श्वास नलिका में अटक जाय तो रोगी को सिर लिये झुकाकर मुख पूरा खोल कर खासना चाहिये जिससे श्वास के झटके के साथ श्वास खींचने से भी पदार्थ का निस्काशन हो जाता है। यदि बच्चे के गले में सिक्का आदि अटक जाय तो उसका पैर पकड़ कर उलटा करके पीठ पर दोनों कन्धों के मध्य में मुक्के मरने से फेफड़ों पर जोर पड़कर अवरोधक पदार्थ का निष्कासन हो जाता है। तथा कृत्रिम श्वास देना प्रारम्भ कर देना चाहिये।

गला घुटना—

किसी व्यक्ति द्वारा गला दबा देने पर या किसी बाह्य वस्तु द्वारा गले पर बाहर से दबाव पड़ने से श्वास क्रिया में रुकावट होने को श्वासावरोध कहते हैं। नवजात शिशु में भी कभी-कभी इस प्रकार का श्वासावरोध उत्पन्न हो जाता है।

लक्षण—गला घुटने से एकाएक श्वास कष्ट हो जाने, श्वसन क्रिया में कठिनाई, आंखें बाहर की ओर निकल आना या मुख मण्डल नीला होना तथा हृदय की गति एकदम मन्द हो जाना आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—दम घुटना व श्वासावरोध की प्रमुख तात्कालिक चिकित्सा कृत्रिम श्वसन देना है फिर हृदय पर मालिश करनी चाहिए। सुविधा हो तो तत्काल आक्सीजन सुंघाना चाहिए।

हृदयामृत इन्जेक्शन देने से भी श्वसन क्रिया में लाभ होता है। एलोपैथिक का माईकोरल सूचीवेध तथा ड्रापस का प्रयोग किया जाता है। यूनानी औषधि दवाउलमिस्क मोतदिल जवाहर वाली स्वरस को मोती पिष्टी के साथ दूध से दें तो तत्काल लाभ होता है तथा कुछ दिनों तक लगातार प्रयोग करने से हृदय दौर्बल्य आदि भी दूर हो जाता है। "खमीरा गाजवान अम्बरी जवाहर वाला स्वरस" के अकेले व मुफ्तामुफरा के साथ देना भी लाभ दायक है। रोगी को खुले वातावरण में रखना चाहिये। कृत्रिम श्वसन विधि का प्रयोग इसी लेख में अन्यत्र किया जा रहा है।

बिजली का झटका—

जिन नगरों में बिजली होती है और जिन स्थानों के ऊपर से बिजली के तार गुजरते हैं वहां कभी-कभी लोगों को विद्युत प्रवाहित तार के सम्पर्क में आजाने से बिजली के झटके लग जाते हैं। बिजली की धारायें (Carrent) दो प्रकार की होती है (१) ए. सी और (२) डी. सी. इसमें डी. सी. की अपेक्षा ए. सी. अधिक खतरनाक है कारण कि ए. सी. का करेण्ट लगने से मनुष्य बिजली के तारों से अपने आपको अलग नहीं कर पाता है और यदि सावधानी से न छुड़ाया जाय तो छुड़ाने वालों में भी करण्ट प्रवाहित हो जाता है। इस प्रकार ए. सी. करेण्ट से शरीर जल जाता है और प्राणान्त हो जाता है जबकि डी. सी. करेण्ट से मनुष्य अपने को अलग कर सकते हैं बिजली का कम वोल्टेज शरीर के तन्तुओं में कम्पन (Fibrillation) करा कर अधिक वोल्टेज श्वासक्रिया बन्द कर मारक बन जाता है।

लक्षण—बिजली का करेण्ट लगने से मनुष्य स्तब्ध (Shocked) हो जाता है यदि कोई व्यक्ति विद्युत-प्रवाहित तार से लगा हुआ पृथ्वी या फर्श पर स्तब्ध पड़ा तो वहां धूंये और आग के चिन्ह दिखाई दे सकते हैं पर यदि ऐसे चिन्ह दिखाई न भी दें तो भी यह निश्चित जानना चाहिए कि तार से विद्युत धारा प्रवाहित हो रही है जिससे व्यक्ति स्तब्ध पड़ा है। स्तब्ध व्यक्ति की नाड़ी और श्वास का लोप हो जाता है। श्वासवरोध हो

श्वास की गति प्रारम्भ में तीव्र होकर बाद में लुप्त हो जाती है जिससे रोगी की त्वचा तथा नाखून नीले दिखाई देते हैं। रक्तचाप (बी. पी.) गिर जाता है पर हृदय की गति काफी देर तक चलती रहती है। रोगी का शरीर मरे हुए की तरह अकड़ जाता है पर यह नहीं समझना चाहिए कि मर गया है कारण बिजली के प्रभाव के कारण रोगी में ऐसी अकड़न हो जाती है। यदि यथा शीघ्र करेण्ट से छुड़ा दिया गया हो तो सिर दर्द, घबराहट आदि लक्षण होते हैं तथा बिजली लगे स्थान पर जले हुये के संस्थान काले-२ धब्बे दिखाई देते हैं।

चिकित्सा—(१) बिजली का झटका खाये हुए व्यक्ति को बिजली के तार से अलग करना पहला कार्य है पर इस कार्य में बड़ी सावधानी की जरूरत है अन्यथा बचाने वाला भी झटके के चपेट में आ जाता है अतः पहले ऐसा उपाय कर लेना चाहिए जिससे छुड़ाने वाले पर कोई प्रभाव बिजली का न पड़े एतदर्थ रबड़ के दस्ताने और सूखे कपड़े लपेट कर बिल्कुल सूखी लकड़ी रबड़ व सूखी छड़ी की सहायता से छुड़ाना चाहिए। तुरन्त बिजली का [illegible] स्विच या उक्त तार से सम्पर्क में आये तार को बन्द कर देना चाहिए।

(२) रोगी के कपड़े ढीले कर दीजिये और उसे पर्याप्त मात्रा में स्वच्छ हवा उपलब्ध करायें कृत्रिम श्वसन विधि तथा हृदय पर मालिश का प्रयोग तब तक जारी रखना चाहिए जब तक श्वसन क्रिया एवं हृदयगति स्वाभाविक न हो जाय।

(३) जब रोगी श्वास लेने लगे तब उसे कम्बल से लपेट कर गर्म रखना चाहिए तथा आक्सीजन देकर उसकी स्थिति को सुधारते रहना चाहिए। हृदयामृत व कोरामिन इन्जेक्शन देना चाहिये। सिद्ध मकरध्वज + [illegible] मधु से चटानी चाहिए।

बचने का उपाय—बिजली के लटके हुये तार को छुइये, बिजली का उपकरण किसी विश्वस्त दुकान से चेक कराकर ही खरीदिये तथा बिजली का कोई भी [illegible] उपकरण प्रयुक्त न कीजिये जिसके तारों का आवरण [illegible]-फूटा न हो एवं बिजली के किसी उपकरण को प्रयोग में लाने के लिये ठीक-ठाक करने के पहले सारे स्विच बन्द कर दीजिये।

बिजली गिरना (Lightning)—

वर्षा ऋतु में आकाश से जो बिजली गिरती है उससे भी वैसे ही लक्षण होते हैं जैसे बिजली के करेण्ट लगने से होता है बिजली प्रायः ऊँचे मकानों में पानी, बिजली और तूफानों के दिनों में गिरती है। इसके गिरने पर तत्काल चिकित्सा व्यवस्था करने से कुछ लोग बच जाते हैं अन्यथा तत्काल मृत्यु हो जाती है।

लक्षण—बिजली गिरने से व्यक्ति की त्वचा जलकर झुलस जाती है व काली हो जाती है रोगी बेहोश हो जाता है हृदय की ध्वनि सुनाई नहीं देती व मन्द-मन्द सुनाई देती है।

बचने का उपाय—वर्षा के मौसम में कमरे की खिड़कियाँ बन्द रखें तथा अग्नि, बिजली के मेन स्विच एवं रेडियो इत्यादि के तारों को दूर रखें। मकान के बाहर रहने का मौका मिले तो किसी पेड़ के नीचे तालाब या नदी के किनारे खड़ा होना खतरनाक है बिजली के खम्भे के पास कदापि खड़ा नहीं होना चाहिये कारण उसके पास बिजली गिरने का बड़ा खतरा रहता है। भीगे कपड़े से जल्दी करण्ट मारता है अतः इसका भी ध्यान रखें।

चिकित्सा—बिजली मारे व्यक्ति को तत्काल सुरक्षित स्थान पर लेजाकर कृत्रिम श्वास देना शुरू करदें तथा जब तक पूर्ण होश में न आवे कृत्रिम श्वास देते रहना चाहिये। हृदय उत्तेजना के लिये शरीर को गर्म करने का उपाय करें। बिजली के झटके लगने से जो चिकित्सा की जाती है वही इसमें भी देनी चाहिये।

पाला मारना (Frost Bite)—

वायु मण्डल के तापक्रम के जीरो डिग्री से नीचे चले जाने के कारण शीत लहर चल कर बर्फ गिरने लगती है पर्वतीय शीत प्रदेशों में पाला गिरने के दिनों में व्यक्ति इससे आक्रान्त हो जाते हैं उसमें कान, नाक, हाथ इत्यादि अवयव विशेषतः आक्रान्त होते हैं और शीत से ठिठुर कर सुन्न हो जाते हैं। वह स्थान बर्फ के समान

अत्यन्त ठण्डा हो जाता है। अत्यन्त कम ताप क्रम पर रक्तगत हीमोग्लोबिन से आक्सीजन अलग नहीं होता जिससे शरीर के होस्य तथा संचालक केन्द्रों को प्राणवायु न मिलने से व्यक्ति को पाला मारता है।

लक्षण—अत्यन्त शीत लगने पर त्वचा के नीचे-जगह-२ रक्त जमने से नीले रङ्ग के धब्बे दिखाई देते हैं अंगुलियां, कर्ण, नासाग्र इत्यादि स्थानों की रक्त वाहिनियां अकस्मात संकुचित हो जाने से कृष्ण वर्ण की हो जाती है त्वचा पर कभी-२ सफेद रङ्ग के फफोले पड़ जाते हैं। उक्त स्थान की कोशिकायें कड़ी हो जाती तथा रोगी में तन्द्रा (Stupor) उत्पन्न हो जाने से वह मूर्च्छित हो जाता है एवं आक्षेपों के बाद उसकी मृत्यु होजाती है।

शरीर पर शीत का प्रभाव बाल्यावस्था एवं वृद्धावस्था में अधिक होता है। अत्यधिक शारीरिक परिश्रम चिरकालीन रोग दौर्बल्य चिरकालीन अस्वस्थता मेदाधय और चिरकालीन अनशन की अवस्थाओं में शीत का प्रभाव शरीर पर अधिक पड़ता है। स्थूल शरीर पर शीत का प्रभाव कम पड़ता है।

चिकित्सा—रोगी को कम्बल से ढक देना चाहिए और चारों तरफ गर्म पानी की बोतल रखकर शरीर की धीरे-२ ऊष्मा बढ़ानी चाहिए। शरीर पर गर्म तेल की मालिश और सेक भी उपयोगी है। चाय, काफी, उष्ण दूध तथा थोड़ी मृत संजीवनी सुरा आदि उत्तेजक पदार्थ देना चाहिए पर सिगरेट तम्बाकू आदि का सेवन नहीं कराना चाहिए इससे रक्त वाहिनियां संकुचित होकर रक्त संचार में बाधा उत्पन्न कर सकती है। जिस भाग में पाला मारा हो उस पर दबाव नहीं पड़ना चाहिये बल्कि फलालेन के कपड़े से ढंक कर रखना चाहिए।

आयुर्वेदीय औषधियों में—सिद्धमकरध्वज, कस्तूरी भैरव रस, योगेन्द्र रस का प्रयोग करना चाहिए। वाष्पीकर मृगनाभि (प्रताप फार्मा) इन्जेक्शन का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है। दशमूलारिष्ट, द्राक्षारिष्ट मृत संजीवनी सुरा का प्रयोग करना चाहिए। आक्सीजन देना बड़ा लाभदायक है।

बचने का उपाय—शीत लहर चलने के समय घर के अन्दर रहना चाहिये तथा कमरा में Room Heater या अंगीठी रखकर वातावरण उष्ण रखें एवं शरीर पर पर्याप्त ऊनी कपड़े पहने रखें। दस्ताने, मोजे, कंटोप तथा जूते पहने रहें जहां तक हो सके ठण्डे पानी से दूर रहें।

उपवास या अनशन—

शरीर को नियमित भोजन की आवश्यकता पड़ती है पर यदि अनशन द्वारा आवश्यक भोजन एकाएक और पूर्ण रूप से बन्द कर दिया जाय तो उत्कट कालीन स्थिति उत्पन्न होजाती है। उपवास व चिरकाल अनशन में धीरे-धीरे भोजन कम कर दिया जाता है जिससे भी शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता है पर आकस्मिक पूर्ण अनशन से स्थिति ज्यादा खतरनाक हो जाती है।

लक्षण—अनशन करने से प्रायः २० से ४८ घण्टे में तीव्र क्षुधा लगती है और पेट में हल्का दर्द होता है जो दबाने से दूर हो जाता है। ४५ दिन के बाद शरीर की वसा का क्षय एवं शोषण प्रारम्भ हो जाता है। आँखें चमकदार और अन्दर को धंसी हुई रहती हैं, पुतलियां प्रसारित होजाती हैं ओष्ठ और जिह्वा शुष्क फटी हुई सी रहती है, प्रश्वास दुर्गन्धयुक्त तथा स्वर धीमा और स्पष्ट सुनाई देता है। रोगी की त्वचा शुष्क, झुर्रीदार और दुर्गन्धयुक्त रहती है। तापक्रम कम, नाड़ी गति दुर्बल और तीव्र होती है। मूत्र में एसिटोन आना जिससे मूत्र गहरे रङ्ग का होता है शारीरिक भार घटने लगता है तथा स्वाभाविक भार से १/५ भाग कम हो जाय तो रोगी की मृत्यु होजाती है।

चिकित्सा—रोगी को क्रमशः धीरे धीरे उसका अनशन तोड़ने का प्रबन्ध करना चाहिये। अधिक समय तक अनशन रहने के बाद रोगी को पहले नींबू का रस, सन्तरे का रस, ग्लूकोज तथा थोड़ी-२ मात्रा में दूध देना चाहिए। फिर धीरे-२ भोजन की मात्रा बढ़ाते रहें रोगी को पूर्ण विश्राम दें, शीत से बचाकर रखें। शिराओं द्वारा ग्लूकोज देना उत्तम है। अनशन किये हुए रोगी को एकाएक अधिक भोजन नहीं देना चाहिए तथा गरिष्ठ और मसालेदार सब्जी नहीं देनी चाहिए। जैसे-२ भोजन हजम होता रहे और रुचि बढ़ती रहे उसी अनुसार

भोजन की मात्रा बढ़ानी चाहिए। आजकल 'मोटापा' से बचने के लिए "डाइटिंग" का प्रचलन चल रहा है खासतौर पर स्त्रियां अपने 'मोटापे' को दूर करने के लिए "डाईटिंग" का सहारा लेती हैं पर जिनका रक्तचाप हीन हो उनका 'मोटापा' तो नहीं घटता पर वे दुर्बल खूब होजाती हैं। थोड़ा सा चलने पर ही उनका श्वास फूल जाता है ऐसी। स्थिति में अन्न का प्रयोग धीरे-२ कम करके एक या दो बार फलाहार व रसाहार लेना चाहिए।

ताप द्वारा ऐंठन (Heat cramps)—

जो लोग अत्यधिक ताप के स्थानों; बड़ी-बड़ी फैक्टरियों, रेल का इञ्जन चलाना व कड़ी धूप में खेती का कार्यआदि ऐसे कार्यों में रत रहते हों जिससे उनको अधिक पसीने आते रहते हों और जो अधिक रूप से निकले हुए पसीने की पूर्ति के लिए अत्यधिक जल पीते हैं उनको खासकर गर्मी के दिनों में अधिक काम करने के फलस्वरूप थकावट उत्पन्न हो जाती है तथा पैर की पिंडलियों तथा उदर में ऐंठन होती है तथा रोगी थकावट व चक्कर महसूस करता है व कभी कभी मूर्छित भी हो जाता है।

उपचार—प्रारम्भिक अवस्था में नमक से युक्त जलीय पदार्थ नीबू की शिकंजी व शीतपेय पी लेना चाहिए परन्तु गम्भीर अवस्था में शिरा द्वारा नार्मल सलाइन चढ़ानी चाहिये। आयुर्वेद के लवण भास्कर चूर्ण सामुद्रादि चूर्ण, यवक्षारादि चूर्ण, इस तरह भी जलीयांश की पूर्ति करने के लिये उत्तम उपादान है जिन लोगों को ग्रीष्म ऋतु में अत्यधिक पसीने आते हैं उन्हें नमक का कुछ अधिक सेवन करना चाहिए।

गर्मी से थकान (Heat exhaustion)—

अत्यधिक गर्मी से युक्त वातावरण का प्रभाव मानव शरीर पर पड़ता है। खासकर पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक प्रभावित होती हैं। प्रारम्भ में शरीर में थकावट बेहोशी तथा ठण्डे पसीने निकलते हैं। नाड़ी तथा श्वास की गति भी मन्द हो जाती है। त्वचा के नीचे रक्त संचय हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप रक्त संचार में रक्त की कमी होने से मस्तिष्क तथा हृदय में बहुत कम रक्त पहुँचता है जिससे रोगी मूर्छित हो जाता है।

चिकित्सा—१. रोगी के शरीर में नमक के अंश की काफी कमी हो जाती है जिसकी पूर्ति के लिए नमक के पानी के घोल व संतरा व नीबू का रस नमक मिलाकर पिलाना चाहिये। गम्भीर अवस्था में नार्मल सलाइन चढ़ानी चाहिये। यदि रोगी बेहोश रहता हो तो एनिमा द्वारा नमक का घोल शरीर में चढ़ाते हैं, पीने के लिये काफी देनी चाहिये।

२. यथा सम्भव ठण्डे आरामदेह स्थान पर रोगी को रखना चाहिये। शरीर के वस्त्रों को ढीला कर देना चाहिये तथा पंखे इत्यादि द्वारा शरीर पर हवा करनी चाहिये एवं हाथ पैर सिर पर कपड़े की भिगी हुई पट्टी रखनी चाहिये।

३. स्प्रिट एमोनिया एरोमेट १०-२० बूंद पानी में मिलाकर पिलाते रहना चाहिये तथा सूंघते भी रहना चाहिए। अमृतधारा भी ५-१० बूंद पानी में मिलाकर पिलाया जा सकता है तथा इसे सूंघना भी चाहिये, इससे मूर्छा दूर हो जायेगी।

४. ठण्डे पानी में ग्लूकोज डालकर पिलाना अत्युत्तम है। चन्दन का शर्बत, शर्बत रूह अफजा व शर्बते-ए-आजम से तत्काल तृषा की शान्ति होकर शरीर में स्फूर्ति का संचार होता है तथा थकावट दूर होती है। शीत उपचार करना लाभदायक है।

—✱—

युद्धकालीन एवं रोजाना की विशेष दुर्घटनायें
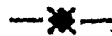
डा० गिरिधारी लाल मिश्र आयु० चक्रवर्ती

बम विस्फोट—

बम विस्फोट से जो विषाक्त गैस का निष्कासन होता है उससे वायु मंडल काफी ऊंचाई तक दूषित होजाता है और तत्पश्चात उस स्थान की वायु, जल, पृथ्वी आक्रांत होती है जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी पर की चल-अचल सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तथा जन-जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। बम विस्फोट से करीब १ लाख डिग्री सेण्टीग्रेट (१,८००,०३१ डिग्री फारेनहाइट) ताप की उष्णता निकलती है जिससे अत्यधिक संख्या में दूर दूर तक जीव-जन्तुओं के जलने तथा मकानों में आग लगने की सम्भावना रहती है। बम विस्फोट की तेज लौ के प्रभाव से नेत्र पटल विदीर्ण होकर अन्धता तक हो जाती है।

दग्धता—बम विस्फोट से व्यापक रूप से शरीर का बहुभाग अधिकतर जल जाता है जो पूर्णतया खुला रहता है, जैसे हाथ, पैर तथा सिर, गर्दन। ऐसे अवसर पर हल्के रङ्ग का सूती वस्त्र शरीर की रक्षा में रङ्गीन कपड़ों की अपेक्षा अधिक सहायक होता है क्योंकि रङ्गीन वस्त्र कुछ विशेष किरणों को सोख लेता है जबकि श्वेत वस्त्र नहीं सोखता।

उपचार—बम के द्वारा दग्ध स्थान पर इमरजेंसी ड्रेसिंग जो विशेष औषधि से युक्त कपड़े के बड़े बड़े टुकड़े के रूप में मिलती है उसको तत्काल दग्ध स्थान पर रखकर हल्की पट्टी कर देनी चाहिये। अन्य भी बहुत से दाहनाशक प्रयोग पाठकों को अन्यत्र लेखों में प्राप्त होंगे पर लाल मलहम दग्धावस्था में तत्काल दाहशमन के लिए प्रशस्त है। जल का अधिक सेवन कराना चाहिए।

नाभिकीय किरण (न्युक्लियर एन्विएशन) से आघात—

बम के विस्फोट से इन किरणों से आक्रांत व्यक्ति में वमन विरेचन, मुख तथा गले में सांय-सांय तथा उच्चताप आदि लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। आक्रांत व्यक्ति को तत्काल ऐसे स्थान पर ले जाना चाहिए जहां शरीर का तत्काल शुद्धिकरण हो सके। आक्रान्त व्यक्ति को साबुन से स्नान कराना उत्तम माना जाता है। इन किरणों से यदि रक्ताल्पता की स्थिति उत्पन्न हो जाय तो रक्त चढ़ाने की व्यवस्था करनी चाहिए।

बारूद के धमाके से आघात—

धमाके के प्रभाव से शरीर के विशिष्ट अङ्ग, फेफड़े, आमाशय, आंखें तथा रक्त आक्रान्त होते हैं। यह धमाका ३५ पाउण्ड प्रति वर्ग इन्च के दबाव का होता है जो सबसे मामूली एटम बम में १००० फुट की लम्बाई तथा २००० फुट की ऊंचाई तक अपना प्रभाव रखता है। धमाके से उत्पन्न शरीरगत प्रभावों से शरीर की हड्डियां टूट जाती है, शरीर में रक्तस्राव होने लगता है तथा सम्पूर्ण शरीर विदीर्ण हो जाता है।

उपचार—एमर्जेन्सी का ध्यान रखते हुए रोगी की प्राण रक्षा के लिए समुचित चिकित्सीय साधनों का प्रयोग करना चाहिए।

साधारण बारूद (आतिशबाजी)—

दिवाली आदि त्योहारों पर पटाके तथा आतिशबाजी चलाने का सारे देश में रिवाज है। बच्चे पटाके छुड़ाने में बड़ा आनन्द लेते हैं। घर का वातावरण हर्ष उल्लास-मय रहता है, पर जरा सी असावधानी से पटाके का विस्फोट घातक दाह उत्पन्न कर देते हैं तथा बहुत सावधानी बरतने पर भी घर के एकाध सदस्य का पटाके से हाथ जल जाना साधारण सी घटना है। धमाके की तीव्र आवाज से अनेकों के कान के पर्दे तक फटकर बहरे हो जाते हैं तथा पटाके का विस्फोट आंख में लग जाय तो अंधता आ जाती है अतः सावधानी बरतनी चाहिये तथा अग्नि से दग्ध होने पर दाहशमन चिकित्सा तत्काल देनी चाहिए। दाह चिकित्सा में लाल मलहम का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है।

प्रताप लंकेश्वर रस १-१ गोली सुबह-शाम देने से

सेप्टिक होने का भय नहीं रहता तथा विषमुष्टि १-१ गोली देने से वेदना तत्काल शान्त हो जाती है।

गैस—

रासायनिक गैस—आक्रमणकाल में कभी-२ ऐसी कुछ विशेष गैसों का प्रयोग किया जाता है जो बम विस्फोट से कम घातक नहीं होतीं।

अश्रु गैस—पुलिस के कर्मचारी व कानून के अधिकारी इस गैस का प्रयोग आन्दोलनकारियों, हड़तालकारियों की अत्यधिक संख्या में इकट्ठी भीड़ को तितर-बितर करने के लिये करते हैं। इस गैस के छोड़ने से धुआं होता है और यह धुआं आंखों के सामने से आंखों में उग्र रूप से जलन, चपचपाहट होकर अत्यधिक अश्रु-स्राव उत्पन्न हो जाता है जिससे आक्रान्त व्यक्ति आंखों की जलन और आंसुओं को सहन नहीं कर पाता और बचाव के लिये इधर-उधर सुरक्षित स्थान में पहुँचता है और इस प्रकार भीड़ तितर-बितर हो जाती है। सामान्यतया यह गैस अधिक हानिकारक नहीं होती, सामान्य चिकित्सा से ठीक हो जाता है।

छींक उत्पन्न करने वाली गैस—इस गैस का प्रभाव नाक की आन्तरिक श्लैष्मिकला पर पड़ता है जिससे व्यक्ति को एकाएक तेज छींक आने लगती हैं और वमन तथा शिरःशूल भी हो जाता है।

उपचार—अश्रुगैस और छींक उत्पन्न करने वाली गैसों से बचाव के लिये गैस मास्क का प्रयोग करना चाहिए। आक्रान्त व्यक्ति को तत्काल खुले हवादार स्थान पर लेजाकर नाक और गले को २ प्रतिशत सोडाबाई कार्ब के घोल से धोना चाहिए। त्वचा को भलीप्रकार धोकर स्नान कराना चाहिये तथा वमन और शिरःशूल की उपयुक्त चिकित्सा करनी चाहिये।

श्वास क्रिया को आक्रान्त करने वाली गैस—इसमें क्लोरीन गैस का सबसे अधिक उपयोग होता है। इससे व्यक्ति को अश्रुस्राव, दमघुटना एवं पीड़ा और घबराहट के लक्षण होते हैं परन्तु बाद में भयंकर श्वासनलिका तथा फेफड़ों में शोथ होकर श्वासावरोध की स्थिति उत्पन्न होकर मृत्यु का कारण बन जाती है।

उपचार—आक्रान्त व्यक्ति को तत्काल विश्राम देकर आक्सीजन देना चाहिये।

नाड़ियों पर प्रभाव करने वाली गैस—इस गैस के प्रभाव से व्यक्ति बेहोश हो जाता है रक्तचाप गिर जाता है तथा मांसपेशियों में तनाव होकर मृत्यु हो जाती है।

उपचार—यथाशीघ्र उपचार करना चाहिए अन्यथा मृत्यु होने की अधिक सम्भावना रहती है।

त्वचा पर फफोले उत्पन्न करने वाली गैस—एक विशिष्ट प्रकार की गैस होती है जिसमें लहसुन जैसी गन्ध आती है इसके प्रभाव से त्वचा पर फफोले पड़ जाते हैं।

उपचार—त्वचा पर तत्काल मिट्टी का तेल अथवा एल्कोहल का लेप करना चाहिये और यदि आंखों में यह गैस चली गयी हो तो सोडाबाईकार्ब के घोल से धोवें।

हवाई हमले से बचाव—

आक्रमण काल में बम विस्फोट आदि के हवाई हमले से बचने के लिए निम्न उपाय करने चाहिये—

(१) अंग्रेजी के Z के आकार की खाईयां ८ फुट लम्बी ३ फुट चौड़ी और ४ फुट गहरी खोद लेनी चाहिए। ताकि खतरे के समय उनकी शरण ली जासके।

(२) मकान की सबसे नीचे की मंजिल के एक भीतर का कमरा सुरक्षा की दृष्टि से चुनना चाहिए तथा उसके दरवाजे और खिड़कियों की रेत के बोरों से हिफाजत करनी चाहिए। भोजन, पानी, मोमबत्ती, मरहम पट्टी का सामान आदि पहले से ही पास में रखना चाहिए।

(३) हवाई हमले के समय कोई व्यक्ति खुले मैदान में हो तो उसे जमीन पर औंधे लेट कर, कानों में रुई व अपनी अंगुली डाल लेनी चाहिए। यदि बचाव का समय न हो तो भाग दौड़ न करें।

(४) यदि व्यक्ति किसी इमारत के निकट है तो उसे इमारत में घुस जाना चाहिये और दीवार के कोने में हो जाना चाहिये। दरवाजा तथा खिड़कियों की सीध में न रहें। यदि गाड़ी में हो तो सवारी छोड़कर जमीन पर लेट जाना चाहिए।

विशेष दुर्घटनायें

डा० गिरिधारी लाल मिश्र आयु० चक्रवर्ती

सूचीवेध के खतरे—

आज सूचीवेध द्वारा शरीर में औषधि पहुंचाने की विधि का प्रयोग चिकित्सकों द्वारा व्यापक रूप से हो रहा है। रोगी को तत्काल लाभ देने के लिये यह विधि उपयुक्त भी है। कारण सूचीवेध विधि द्वारा शरीर में पहुँचायी हुई दवा तत्काल रक्त में मिलकर अपना फल प्रदर्शित करती है, एतदर्थ चिकित्सा लाभ की दृष्टि से आशुफलकारिता हेतु इस विधि का स्थान सर्वोपरि है, पर आज इस विधि का आम प्रचलन हो रहा है तथा नवसिखुवे चिकित्सकों द्वारा बिना पूर्ण ज्ञान के अन्धाधुन्ध प्रयोग से कई प्रकार के खतरे उत्पन्न हो जाते हैं जिससे चिकित्सक भी बदनाम होता है तथा रोगी की जिन्दगी के साथ भी खिलवाड़ होता है अतः सूचीवेध का अच्छी तरह अभ्यास न हो व जिस प्रकार के सूचीवेध प्रयोग का ज्ञान न हो वैसा सूचीवेध न करना ही अच्छा है।

सूचीवेध में रुकावट—

सूचीवेध के यन्त्रों में दोष रहने या सुई जंग लगी हुई व कार्य योग्य न होने पर तथा पेन्सिलीन आदि पाउडर रूप में आने वाली दवाओं का घोल अच्छी तरह से न बनने के कारण दवा सूचीवेध में फंसकर रुकावट पैदा कर देती है। ऐसी स्थिति में पिस्टन को पीछे खींचकर फिर औषधि प्रविष्ट करनी चाहिए पर ऐसा करने पर भी यदि दवा न जावे तो सूची को त्वचा की त्वचा से मांसपेशी से निकाल लेना चाहिए तथा मूल कारण को दूर करना चाहिए।

(क) यदि दवा का घोल अधिक गाढ़ा है तो उसमें आवश्यकतानुसार आधा व एक शीशी परिश्रुत जल और मिला लेना चाहिए और घोल को अच्छी तरह बना लेना चाहिए।

(ख) यदि घोल के अनुसार सुई बहुत पतली हो तो मोटे बोर (Bore) की सुई लेनी चाहिए।

(ग) सूचीवेध में प्रयुक्त होने वाले सभी उपकरणों की कार्यक्षमता की परीक्षा कर लेनी चाहिए तथा खराब वस्तुओं को हटाकर उसके स्थान में नवीन वस्तुओं का ही इस्तेमाल करना चाहिए।

(घ) सूचीवेध में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों का अच्छी तरह शुद्धिकरण होना चाहिये।

सूचीवेधकाल के सुई का टूटना —

गलत विधि से सूचीवेध करने से सुई रोगी के शरीर में टूट जाती है। सुई कमजोर होने से व उसमें मोर्चा लगा होने से भी सुई टूट जाती है पर ऐसी स्थिति में चिकित्सक की बड़ी अपमानजनक स्थिति होती है। गांवों में, दूर देहातों में जो कई छद्म चिकित्सक एक झोले में ही सारा दवाखाना लिये घर-घर रोग को सूंघते हुये रोगी की तलाश में रहते हैं वे कितने ही रोगियों का अपने अज्ञान से प्राणान्त कर देते हैं। एक देहाती ने अपने गांव के एक चिकित्सक का हाल सुनाते हुए बताया कि उस हाथ से सुई आरपार निकल गई तथा दवा सारी कांख (कुक्षि) में बाहर आ गयी। रोगी ने जब चिकित्सक को कहा कि सुई से दी हुई दवा तो सब बाहर आ गयी तब चिकित्सक ने उत्तर दिया तुम्हारे शरीर को जितनी दवा की जरूरत थी वह शरीर में रह गयी और बाकी बाहर आ गयी। इस तरह के कार्यों से चिकित्सक कलंकित होता है तथा ऐसे चिकित्सक से जनता भी डरती है। निम्न सावधानियां बरतनी चाहिये—

(१) रोगी को सूचीवेध स्थान को हिलाने डुलाने से मना करें।

(२) सुई के टूटे हुए सिरे को महीन चीमटी से पकड़कर निकालने की चेष्टा करें।

(३) सुई का टूटा हुआ सिरा न दिखाई दे तो सूचीवेध के स्थान के ऊपर रस्सी या रुमाल बांध दें।

तथा एक छोटा सा चीरा लगाकर चीमटी से टूटे हुए स्थान को निकाले पर सुई का टूटा हुआ सिरा यदि नहीं दृष्टिगोचर हो तो एक्स-रे की सहायता से टुकड़े का पता लगाकर उसके अनुसार शल्यकर्म की उचित व्यवस्था कर टुकड़े को निकालना चाहिए।

(४) हमेशा तेज-धार वाली स्टेनलेस स्टील से बनी हुई विश्वस्त कम्पनी की ही सूची का प्रयोग करना चाहिए तथा जैसी औषधि जिस स्थान पर जितनी मात्रा में देनी हो उसी के अनुसार वाले बोर की सूचिका का प्रयोग करना चाहिए।

(५) सुई का केवल ३/४ भाग अन्दर जाय, बाकी १/४ भाग बाहर ही रहना चाहिए जिससे सुई टूटने पर उसके उसके टुकड़े को आसानी से बाहर खींचकर निकाला जा सके।

शिरा के बाहर सूचीवेध—

जो औषधियां केवल शिरा में ही सूचीवेध द्वारा पहुँचायी जाती है उनके प्रयोग में सावधानी की आवश्यकता है। यदि किसी भी प्रकार से शिरा के बाहर अधः त्वचा के तन्तुओं में औषधि पहुंच गयी तो अत्यन्त उग्र प्रकार का क्षोभ (irritation) उत्पन्न कर देनी जैसे N. A. B. urosetecor-तथा घुलनशील सल्फा औषधियां आदि। यदि किसी प्रकार से शिरा के बाहर पहुँच गये तो क्षोभ पैदा कर देंगे। खासकर जिन रोगियों की शिरा महीन या अन्दर हो, जैसे बच्चे में शिरा महीन होती हैं तो मोटे व्यक्तियों की शिरा अन्दर दबी हुई होती है। ऐसी अवस्था में पहले शिरा को फुलाने का प्रयत्न करना चाहिये। हाथ की शिरा को फुलाने के लिये टूर्नीकेट से बांधना, या तौलिये से बांधना चाहिए। गरम पानी की बोतल शिरा पर रखना आदि विधियों से शिरा फूल जाती है। शिरा ठीक से ऊपर उठ आय तभी उसमें सूचीवेध करना चाहिये।

यदि औषधि शिरा से बाहर पहुंचकर क्षोभ उत्पन्न कर रही हो तो तत्काल वहीं सूचीवेध निकाल लेना चाहिये तथा त्वचा के तन्तुओं में नार्मल सलाइन प्रविष्ट करनी चाहिये और यदि अधिक औषधि लीक हुई हो तो दूसरी सिरिंज से उसको खींचकर निकाल लेना चाहिए। सूचीवेध के स्थान को हिलाना-डुलाना नहीं चाहिए तथा उस स्थान पर बर्फ रखने से क्षोभ दूर हो जाता है।

शिरा के स्थान पर धमनी में सूचीवेध—

शिरा के स्थान पर धमनी में वेध हो जाना बड़ा भयंकर उपद्रव है। इससे भयंकर रक्तस्राव होने लगता है तथा स्थानीय शोथ, क्षोभ, आक्षेप, थ्रोम्बोसिस, गैंग्रीन एवं पक्षाघात जैसे भयंकर उपद्रव हो जाते हैं जिनकी तात्कालिक चिकित्सा आवश्यक है।

उपचार—प्रोकेन २% ५ सी.सी. तत्काल देना चाहिये। यदि इससे लाभ न हो तो दूसरे हाथ की मांसपेशी में मार्फिया १/४ ग्रेन की मात्रा में सूचीवेध करते हैं। तथा उस धमनी में ८० मिग्राम पैपावरीन का ५ सी.सी. नार्मल सैलाइन के साथ घोल बनाकर प्रविष्ट कराते हैं। यदि इन उपचारों से लाभ हो तो शल्यकर्म द्वारा उस धमनी को बांधना अन्तिम उपचार है।

अनुपयुक्त स्थान पर सूचीवेध—

नये चिकित्सकों द्वारा भ्रम एवं अज्ञानवश उचित स्थान पर सूचीवेध नहीं हो पाता तथा गलत सूचीवेध से कभी कभी भयंकर घातक उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। कभी कभी औषधि एक ही स्थान में जमा हो जाती है तथा वहां की मांसपेशियों में क्षोभ उत्पन्न कर देती है या वह स्थान फूल (शोथ) जाता है। वहां से स्राव होकर तीव्र वेदना करता है व उक्त स्थान में सेप्टिक तक हो जाता है। ऐसी अवस्था में उक्त स्थान पर चीरा देकर औषधि को निकालना पड़ता है व वहां के दूषित रक्त आदि को निकाल देना पड़ता है। ऐसी स्थिति में चिकित्सक यदि क्रिया कुशल नहीं है तो पहले उसे सूचीवेध का अच्छी तरह योग्य अधिकारी के पास अभ्यास करना चाहिये अन्यथा रोगी एक रोग की चिकित्सा के लिए चिकित्सक के पास आता है और चिकित्सक से नया भयंकर उपद्रव ले लेता है बल्कि कभी कभी तो प्राणों से ही हाथ धो बैठता है। इससे चिकित्सक की प्रतिष्ठा क्षीण होती है। अतः पूर्ण शिक्षा और अभ्यास प्राप्त करके ही सूचीवेध कार्य में संलग्न होना चाहिए।

कृत्रिम श्वसन एवं हृदय की मालिश

डा० गिरिधारी लाल मिश्र आयु० चक्रवर्ती

श्वास के द्वारा आक्सीजन को ग्रहण करना और कार्बनडाई आक्साईड को फेंकना प्राकृतिक क्रिया है। जब हम श्वास लेते हैं तो हमारे फेफड़े आक्सीजन पाकर फैल जाते हैं और जब श्वास छोड़ते हैं तो कार्बनडाई आक्साइड (अशुद्ध वायु) बाहर निकलती है और फेफड़े सिकुड़ जाते हैं। यह कार्य प्रकृतितः अपने आप होता रहता है पर किन्हीं कारणों से इस कार्य में व्यवधान पड़ने से श्वासावरोध होजाता है और तब कृत्रिम विधि से श्वसन क्रिया को बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।

आवश्यकता—कृत्रिम श्वास की आवश्यकता प्रायः उसी अवस्था में पड़ा करती है जब व्यक्ति दुर्घटनावश होकर बेहोश होजाता है तथा श्वसन क्रिया मन्द अनियमित तथा बन्द होजाती है। हृदय क्रिया श्वसन क्रिया के बन्द होने के कुछ मिनट बाद तक चलती है अतः इसी बीच कृत्रिम श्वास की आवश्यकता प्राणरक्षार्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

सामान्य नियम—आवश्यकता पड़ने पर कृत्रिम श्वास क्रिया तत्काल आरम्भ कर देनी चाहिए और तब तक चालू रखनी चाहिये जब तक रोगी स्वय स्वभावतः श्वास लेने न लगे। जब स्वाभाविक श्वसन क्रिया प्रारम्भ होती है रोगी होश में आता है ऐसी स्थिति में एक गिलास ठण्डे पानी में १ चम्मच स्पिरिट एमोनिया एरोमेट मिला कर अथवा चाय व काफी पिलाना चाहिए। श्वसन क्रिया आरम्भ करने से पहले रोगी का मुंह, नाक, रुमाल से पोंछ कर साफ कर देना चाहिए। मुंह में कृत्रिम दांत हों तो निकाल देने चाहिए तथा शरीर पर कसे हुए वस्त्रों को ढीला कर सिर को शरीर की सतह से कुछ नीचा रखना चाहिये।

प्रमुख विधियां—

शेफर और सिल्वेस्टर की विधियां बहुत समय पूर्व से प्रचलित हैं। आजकल एक नई विधि जिसे होल्गर नीलसेन विधि कहते हैं प्रचलित है जो पूर्व प्रचलित विधियों से अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है।

(१) होल्गर नीलसेन विधि—सर्व प्रथम रोगी के वस्त्र को ढीला कर समतल स्थान व जमीन पर लिटावें तथा जमीन ढलवा हो तो रोगी का सिर ढाल की ओर रहे। रोगी को चित्त लिटाकर उसके हाथ सिर के नीचे लगवाकर उसके सिर की ओर मुंह करके इस प्रकार बैठिये कि एक पैर का घुटना उसके सिर के समीप रहे तथा दूसरा पैर उसकी कोहनी के समीप, जिससे उसकी जिह्वा आगे नीचे आजाय, फेफड़े वायु अधिक भरने के लिए प्रारम्भ में दवाब डाले और तत्काल हाथ को बगल के समीप खिसकाकर बाहु को पकड़ कर ऊपर उठाते हैं और तब फिर दबाव डालते हैं। इस प्रकार इस विधि को जब तक रोगी का स्वाभाविक श्वास न चले तब तक चालू रखना चाहिए।

(२) शेफर की विधि (Shaffer's Method)—(१) रोगी का मुंह नीचा करके लिटावें पैर फैले रहे तथा भुजाएं सिर से आगे की ओर रहे तथा मुंह एक ओर को रहे जिससे श्वास लेने में बाधा न पड़े। चिकित्सक रोगी की बगल में घुटनों के बल बैठ जाय।

बहिर्श्वसन—चिकित्सक अपने हाथों को पीठ पर वक्ष के नीचे के भाग पर इस प्रकार रखे कि उनके नीचे के किनारे कमर की अस्थि के ऊपरी किनारों को लगभग छूते रहे, मणिवन्ध और अंगूठे एक दूसरे से बिल्कुल समीप हों तथा अंगुलियां नीचे की ओर स्थित हुये उदर के

ऊपरी भाग पर रहे। तत्पश्चात् कुछ उठकर और रोगी के शरीर पर झुककर अपनी बाहुओं को सीधा रखते हुए ही अपने शरीर का भार बाहों के सहारे ही रोगी के ऊपर डाले। ऐसा करने से ही वक्ष सिकुड़ेगा और अन्दर की हवा बाहर निकलेगी।

अन्तश्वंसन—फिर अपने हाथों को वहीं रखा रहने दें किन्तु धीरे-२ पीछे की ओर झुककर अपने शरीर का भार रोगी पर से हटाते हुए पहले की स्थिति में आजायें तो वक्ष के फैलने से बाहर की हवा अन्दर प्रवेश करेगी।

(३) सिल्वेस्टर विधि (Silvester's Method)—रोगी के वस्त्र ढीले कर कन्धों के नीचे कोई गद्दी रखकर पीठ के आधार पर चित्त लिटा दें तथा एक सहायक रोगी की जिह्वा को सम्भाल कर पकड़ कर बाहर की ओर खींचे रहे क्योंकि जीभ के पीछे गिरने से श्वास मार्ग बन्द हो जायेगा।

बहिश्वंसन—रोगी के सिर के पास झुक जायें और यदि रोगी ऊंची मेज पर हो तो खड़े रहें। रोगी की बाहुओं को कुहनी के पास पकड़कर उसकी छाती पर छाती की अस्थि के दोनों ओर रखकर दबायें। इस प्रकार वक्ष के सिकुड़ने से हवा बाहर निकलेगी।

अन्तश्वंसन—फिर दोनों बाहुओं को उसी प्रकार पकड़े हुए ऊपर बाहर तथा अपनी ओर खींचो। इस प्रकार करने से वक्ष प्रदेश के फैलने से वायु अन्दर प्रवेश करेगी।

शेफर और सिल्वेस्टर विधि को १ मिनट में १२ बार तक दोहरायें अर्थात दबाव ३ सैकेण्ड तथा दबाव हटाना ३ सैकेण्ड हो। जब श्वसन स्वतः आने लगे तब कृत्रिम क्रिया बन्द की जा सकती है।

(४) लबोर्डे की विधि (Lobordes Mathod)—रोगी को पीठ के बल लिटाकर दोनों गालों को दबाकर रखते हैं तथा सूखे कपड़े से जीभ को पकड़ कर खींचना चाहिए और उसे थोड़ा सा ऊपर करके २ सैकेण्ड तक छोड़ देना चाहिये जिससे जीभ भीतर न चली जावे। इस प्रकार १ मिनट में १५ बार क्रिया करनी चाहिए। इस क्रिया से फ्रेनिक नर्व को उत्तेजना मिलती है और इससे महाप्राचीरा पेशी का संकोच होने से स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास की क्रिया के लौट आने की अत्यधिक सम्भावना होती है।

(५) राकिंग या ईव की विधि (Rocking or Eve Method)—रोगी को तख्ता पर लेटा दें तथा तख्त के नीचे ठीक बीच में एक दूसरी गोलाकार लकड़ी रखदें। अब रोगी के दोनों हाथों और पैरों को पट्टी से तख्ते के साथ बांध दें और तराजू के पलड़े की तरह एक बार सिर और दूसरी बार पैर को ऊंचा नीचा किया जाता है। इस क्रिया को Sea-Sauds क्रिया कहते हैं। इस प्रकार रोगी को ४० अंश के कोण तक ऊंचा नीचा करना चाहिए और १ मिनट में १२-१२ बार करना चाहिए। सिर के नीचे की तरफ जाने से उसके पेट के अन्दर की आन्त्र ऊपर की ओर खिसक कर महाप्राचीरा पर दबाव डालेगी। फिर ऊंचा होने पर वह खिसक कर नीचे चला जाता है। इस प्रकार उसकी श्वास-प्रश्वास क्रिया चालू होती है। इस विधि से परिचारक शीघ्र परिश्रान्त नहीं होते। इस यन्त्र को विशेष रूप से बनवा कर रखा जा सकता है। अक्सर स्कूलों व बाल उद्यानों में इस तरह का यन्त्र बना होता है जिसके दोनों सिरों में दो बालक बैठ कर एक दूसरे को ऊपर नीचे करके खेलते हैं।

(६) मुंह से मुंह मिलाकर कृत्रिम श्वसन विधि—इस विधि से किसी भी दशा में बिना किसी उपकरण के रोगी को कृत्रिम श्वास दिया जा सकता है रोगी का श्वसन मार्ग खुला रहे इस हेतु मुंह के अन्दर के कृत्रिम दांत, अन्न कण वमन द्रव्य आदि को खोलकर निकाल देवें। तत्काल दबाव डालकर फेफड़ों में हवा प्रविष्ट होने की स्थिति उत्पन्न करें तथा वक्ष स्वभावतः फूल एवं पिचक रहा है या नहीं देखते रहें और अधिक से अधिक हवा रोगी के फेफड़े से बाहर निकाल देनी चाहिए, नाक और मुंह में हवा का संचार हो रहा है या नहीं इसकी जांच करते रहें तथा रोगी का सिर एक तरफ को मुड़ा रहे तथा जबड़ा नीचे की ओर खिचा रहे। युवा रोगी के मुंह में जोर से और बच्चों में धीरे-२ वायु फूंके तथा वायु नाक व मुंह द्वारा बगल से बाहर न निकल जावे इसका ध्यान रखें।

रोगी को पृष्ठ के बल मुख को ऊपर की ओर रखते हुए लिटावें। रोगी का मुंह खूब खोलकर निचला ओष्ठ नीचे चिकित्सक अपने अंगूठे से खींचले अब चिकित्सक गहरी सांस ले तथा अपना मुंह काफी बड़ा खोलकर रोगी के मुंह में कस कर रखकर अपना गाल नथुनों पर रख देवे तब अपने अन्दर ली गई वायु रोगी के मुंह में छोड़े। जब रोगी की छाती उभरती दीख पड़े तो मुंह हटाकर अन्दर प्रविष्ट हवा रोगी को स्वयं निकालने दें। यह क्रिया ४-५ सैकेण्ड का अन्तर देकर तब तक करते रहें जब तक रोगी स्वतः वहिश्वसन और अन्तश्वसन न लेने लग जावे।

(७) शिशुओं में कृत्रिम श्वसन देने की विधि—शिशु के मुंह को अपनी अंगुली से साफ करके फिर बच्चे को उठा कर उसकी पीठ पर हाथ रखकर दबाते हैं इसके बाद पीठ के बल लिटाकर मुंह ऊपर उठा देते हैं। चिकित्सक शिशु के मुंह तथा नाक के ऊपर अपना मुंह रखकर श्वास देता है और दाहिना हाथ पेट पर रखकर अधिक हवा को आने से रोकता है। शिशु के फुफ्फुस में हवा जाने के बाद श्वसन देने वाला व्यक्ति अपना मुंह हटा लेता है और इस प्रकार शिशु के फुफ्फुस से हवा निकलती जाती है। एक मिनट मे ऐसा कम से कम २० बार करना चाहिये।

२० बार के बाद श्वसन देने वाले चिकित्सक को भी जोर से श्वास लेकर विश्राम करना चाहिये। श्वसन संस्थानगत मुख्य संकटकालीन अवस्थाए वे हैं जिनमें रोगी की श्वसनगति मन्द होती जाती है अथवा श्वसन क्रिया वेदनायुक्त एवं कष्टमय होती है। इसके कारण आक्सीजन के अभाव में रोगी नीला (Cynosed) पड़ जाता है अथवा मुख द्वारा रक्तष्ठीवन (Haemoptysis) होता है। कृत्रिम विधि से तत्काल श्वसन प्रारम्भ करने में तथा रोगी को मृत्यु के मुख से निकालने मे मदद मिलती है। यथासम्भव रोगी को होस्पिटल में स्थानान्तरित करना चाहिए तथा होस्पिटल में आक्सीजन देना चाहिये।

हृदय की मालिश

आवश्यकता—जब रोगी मूर्छित हो गया हो व एकाएक हृदयगति मन्द व बन्द हो गयी हो, ग्रीवा, कलाई तथा हृदय में स्पन्दन न सुनाई दे तथा नेत्र कनीनिका (Pupils) प्रसारित हो गई हों तो ऐसी स्थिति में हृदय की बाह्य मालिश तत्काल फलप्रद है। इससे हृदय दबता है और उससे हृदय का रक्त धमनियों में संचारित होता है जब ऊपर का दवाव कम कर दिया जाता है तब वक्ष प्रसारित होता है और इससे शुद्ध किया हुआ रक्त फेफड़ों से हृदय में आता है जिससे हृदय क्रियाशील हो जाता है।

विधि—रोगी को पृष्ठ के बल चित्त किसी मेज पर लिटाकर चिकित्सक रोगी के वक्ष के सामने खड़े अथवा ६०% का कोण बनाते हुए झुके रहना चाहिए। तब रोगी का सिर पीछे की ओर झुका कर यह भलीभांति जांच करलें कि रोगी का मुंह और श्वासमार्ग पूर्णतः खुला है। अब पहले मुंह से मुंह मिलाकर ३ बार कृत्रिम श्वास रोगी को दें। इसके उपरान्त ही बाह्य हृदय की मालिश करें।

युवा व्यक्तियों में मालिश विधि—चिकित्सक अपनी हथेली रोगी के हृदय पर रख कर दूसरे हाथ को हथेली को भी ठीक पहले हाथ की हथेली पर रखकर जोरदार दवाव (Firm Pressure) नीचे की दिशा में देवें जिससे पर्शुकाए १-२ इन्च नीचे की ओर मेरु दण्ड की दिशा में दब जाय। पश्चात वक्ष पर दवाव हटा लेवें जिससे वक्ष स्वतः फैल जाय। ऐसा १ सैकण्ड में एक बार करे। एक युवक के लिये हृदय पर दवाव ३५-४० किलो के लगभग होना चाहिए। दवाव डालते समय इस बात का ध्यान रखे कि कहीं पसलियों का अस्थिभग न हो जाय हृदय की मालिश के साथ-२ आधे मिनट पर मुंह से मुंह मिलाकर कृत्रिम श्वसन भी देते रहना चाहिए। यथा सम्भव रोगी को तत्काल हास्पिटल पहुँचाने की व्यवस्था करनी चाहिए। पर इस बीच कृत्रिम श्वास द्वारा रोगी को जीवित रखना चाहिये।

बच्चों में हृदय मालिश (External Cardiac

—शेषांश पृष्ठ २२० पर देखें—

शरीर में बाह्य वस्तुयें

डा० (कु०) कृष्णाकुमारी देवी शर्मा बी० ए० एम० एस०

प्रायः शरीर के किसी अङ्ग में जैसे नाक, आंख, कान, गले आदि में कंकड़, अन्न का दाना, कीड़ा पतङ्गा, तिनका आदि कोई बाह्य वस्तु पड़कर एक ऐसी असह्य कष्टकालीन स्थिति को उत्पन्न कर देती है जो उस व्यक्ति (जिसके आंख या कान आदि में पड़ी है) लिये प्राणोपघातक बन सकती है। ऐसी स्थिति में सद्यः चिकित्सा (तात्कालिक चिकित्सा) की आवश्यकता होती है। इसमें थोड़ा सा भी विलम्ब जीवन को संकट में डाल सकता है। कुछ इसी प्रकार की संकटकालीन स्थितियों का विवरण यहां दिया जा रहा है—

नाक में बाह्य वस्तु पड़ जाना या नासा शल्य—

बच्चों में अधिकतर खेलते समय कंकड़, बटन, अन्न के दाने (मटर या चने के दाने आदि), रबर के टुकड़े तथा अन्य दूसरी छोटी चीजें जिनसे बच्चे खेलते हैं या गलती से या किसी प्रकार नाक के अन्दर चली जाती है और नाक के अन्दर जाकर फंस जाती हैं तो उसको साधारण चिमटी से निकाल देना चाहिये परन्तु कभी-२ इसके निकालने में बड़ी ही कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

नाक को फैलाने वाले नासिका प्रेक्षण यन्त्र से नाक के छेद को फैलाकर मुड़ी हुई सलाई नाक में प्रवेश करके उसके मुड़े हुये भाग को फंसी हुई वस्तु के पीछे ले जाकर उस वस्तु को फसा कर धीरे-२ खींच कर बाहर निकाल लेवें। प्रायः छींकें आने से फंसी हुई वस्तु बाहर निकल आती है इसलिये रोगी को नसवार सुंघावें।

खाली नथने को पानी से भरें ताकि यह पानी पीछे की ओर से बन्द नथने में प्रवेश करके अटकी हुई वस्तु को पीछे से धकेल कर निकाल देवें।

निर्देश—

अटकी हुई वस्तु को निकालने से पूर्व रोगी को यह आदेश देना चाहिये कि वह बहुत जोर जोर से नाक को छिनके और साफ करे। कभी-२ छींकने से वह अटकी हुई वस्तु निकल जाती है परन्तु नाक साफ करने में इस बात का ध्यान रखें कि वस्तु और अन्दर न घुसने पावे।

सलाई आदि का प्रवेश करने से पूर्व नाक में फंसी हुई वस्तु को तेज प्रकाश में देख लें और उसके स्थान स्थिति आदि का उचित रूप से अनुमान कर लेवें।

नाक में सलाई या चिमटी का प्रवेश करने से पहले उसको नियोपरेकन या कोकेन साल्युशन से भिगो दें ताकि नथुना सुन्न हो जाने से रोगी को कष्ट न हो।

नेत्र में बाह्य वस्तु पड़ जाना

कभी-कभी आंखों मे धूल-मिट्टी रेत और तिनके आदि पड़ जाते हैं जिससे आंख में पीड़ा, दाह, खुजली, पानी बहना और कई प्रकार के कष्ट उत्पन्न होते हैं जिनसे नेत्रों (आंखों) को हानि पहुँच सकती है। इससे आंखों में संक्रमण होता है, आंख या पुतली से रस निकल सकता है। आंख के ढेले का तरल (Vitreous Humor) निकल सकता है।

कृष्णमण्डल से चिपकी बाह्य वस्तु हटाने वाली शलाका (स्पड)

लोहे के टुकड़े या मोटे कण जो उड़ कर आंख में घुस जाते हैं, पीड़ा, आंसू बहना, देख न सकना, आंख सूज जाना आदि कष्ट होते हैं।

ऐसी स्थिति मे रोगी को लिटाकर और उसके सिर के पास खड़े होकर उसका सिर पिछली ओर झुकाएं और फिर उसकी आंख के पपोटो को उलट कर

डिस्टिल्ड वाटर से आंख को धोवे। यदि कोई वस्तु चक्षु पटल पर चिपकी या फंसी हुई दिखाई देवे तो आंखों को कोकीन के दश प्रतिशत लोशन से सुन्न करके उस चिपकी या फंसी हुई वस्तु को कीटाणु रहित नरम कपड़े या चिमटी से निकाल देवें तब पेनिसिलीन आदि आयन्टमेण्ट आंख में लगाकर पट्टी बांध देवें।
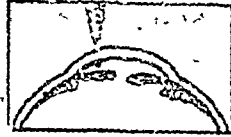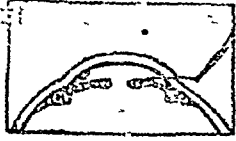
नेत्र के अग्र कोष्ठक में प्रविष्ट चुम्बकीय वस्तु के आकर्षण की विधि
१. कृष्णमण्डल को काटा जाता है। २, ३, ४, चुम्बक की सहायता से चुम्बकीय वस्तु को बाहर निकालना

कृष्णमण्डल पर चिपके लोह कण हटाने वाला चुम्बक—बड़ा साइज
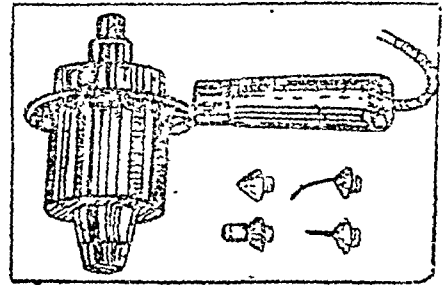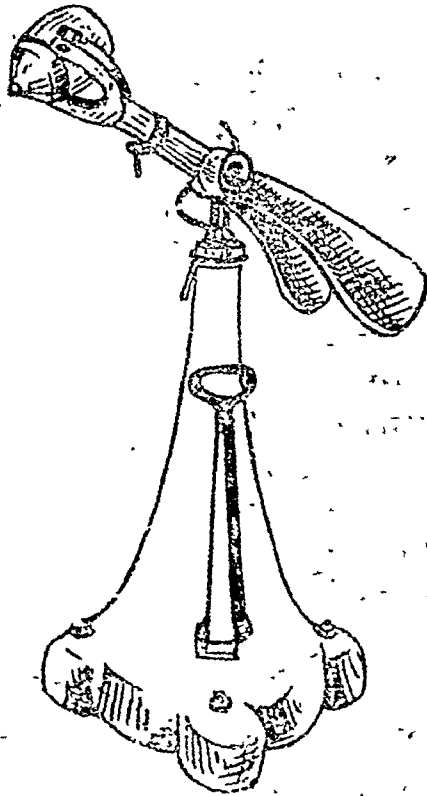
कृष्णमण्डल पर चिपके लोह कण को हटाने वाला चुम्बक (ले जाने योग्य)—चुम्बक के इसमें लगने वाले चार गुटके नीचे दिखाये हैं।

आंख में यदि चूना या तेजाब पड़ गया हो तो आंखों को बार बार ठंडे पानी से को धोवे ताकि उसका प्रभाव पानी में मिल कर बाहर निकल जावे। आंखों को धोने के बाद कैस्टर आयल दो बूंद डाल देवें। आंख को सिरके के हल्के घोल्युशन से धोवे। आंख से वह वस्तु निकल जाने के बाद संक्रमण को रोकने के लिये एण्टी-बायोटिक दवाओं से बने लोशन या मरहम जैसे टेरा-माइसिन, पैनीसिलीन, क्लोरोमाइसटीन की मरहम या लोशन आंख में डालें।

लोहे से बनी वस्तु आंख में चुभ जाने और उसका काफी भाग बाहर होने पर बड़ी सावधानीपूर्वक चिमटी से पकड़ कर बाहर निकाल लेवें। एक शक्तिशाली मिक-नातीस (चुम्बक) आंख के पास रखने से वह वस्तु तुरन्त निकल कर मिकनातीस (चुम्बक) के साथ लगकर बाहर आ जाती है लेकिन आंख में बहुत अन्दर चले जाने और दूर होजाने से लोहे के ऐसे टुकड़े बाहर नहीं निकल सकते। ऐसी स्थिति में आपरेशन करके ही उसको आंख से निकालें (मा: चि.)।

कर्ण-शल्य या कान में बाह्य वस्तु का पड़ जाना

प्राय: कीड़े, पतंगे, मधु मक्खी, गोजर या कान खजूरा कान के छिद्र से भीतर की ओर कर्णस्रोत में प्रविष्ट हो जाते हैं। वहां पर पहुँच कर कीड़ा रेंगने लगता है तो कान में फरफराहट तथा तीव्र पीड़ा होती है और कीड़ा मरने पर चलना बन्द करता है तो वेदना मन्द पड़ जाती है। यह एक ऐसी संकटकालीन स्थिति है जो रोगी को तीव्र वेदना के कारण अशान्त एवं अत्यन्त व्याकुल कर देती है। कई प्रकार की गोमक्षिका, चींटी कनसरैया प्रभृति पहुँच कर ऐसी ही वेदना करते हैं। ऐसी स्थिति में निम्न चिकित्सा-व्यवस्था करें—

१ कृमिघ्न क्रिया प्रारम्भ करना—

१. वार्ताक धूम—बैंगन का धुआं कान में देना चाहिये।
२. भटकटैया के फल का धुआं कान में देना चाहिये।
३. सरसों का तैल कान में भरना चाहिये।
४. गो-मूत्र में हरताल मिलाकर कान का पूरण करे।
५. कान में गुग्गुल का धूपन देवे।

२. प्रक्षालन (कान का धोना)—

१. अगर कृमि मर जावे तो पिचकारी द्वारा पानी से साफ कर कृमि को निकाल देना चाहिये।
२. कान में कड़वे बादाम का तेल डालकर पिचकारी से कान को साफ करना चाहिये।

३. नस्य कर्म—कई बार नकछिकनी का नस्य देने से भी कृमि छींक के कारण बाहर आता है। कटफल के महीन चूर्ण का नस्य भी उत्तम कार्य करता है।

४. अन्य उपाय—

१. यदि मक्खी या कनखजूरा कान में गया हो तो १ बत्ती में मांस का टुकड़ा लगाकर कान में भीतर डालें—मांस की लोलुपतावश उसमें वह चिपक जावेगा और उसके साथ निकल आने में सरलता होगी।

२. कान के स्रोत के अन्दर "क्लोरोफार्म" की पिचकारी से धोकर अथवा चिमटी से पकड़ कर कीट को बाहर करें जैसाकि निम्न श्लोक में दर्शित है—

"कर्णच्छिद्रे वर्तमानं कीटं क्लेदमलादि वा।
शृंगेणापहरेद्धीमानथवापि शलाकया॥" (सु.उ. २१)

३. पशुओं में पाई जाने वाली मक्खी यदि कान में प्रविष्ट हो जावे तो कान में प्याज का रस भरे या मकरा के पत्तों का रस निचोड़ कर कान में भरे।

४. कलिहारी, भृङ्गराज, त्रिकटु को एक में मिलाकर पानी के साथ पीसकर एक कपड़े की पोटली में बांधे और कान में उसी का रस टपका कर भरें। इसके द्वारा कर्ण जलौका, कृमि, कीट, चींटी गोजर तथा अन्य जीव यदि काफी गहराई तक भी पहुंच गये हों अथवा उनका शिरो भाग शेष हो तो भी निश्चित निकल जाते हैं।

अन्य कर्ण-शल्य (कान में अन्य बाह्य वस्तुयें)—इसके अतिरिक्त कान में अन्य बाह्य वस्तुयें भी पड़ सकती हैं अधिकतर ऐसी वस्तुयें बालकों में देखने को मिलती हैं। इस प्रकार के कर्ण शल्य के दो प्रधान भेद हो सकते हैं—१. अवानस्पतिक वस्तुयें और २. वानस्पतिक वस्तुयें। यदि कान के अन्दर अवानस्पतिक वस्तु जैसे कांच का मोती, रबर के टुकड़े, कंकड आदि हो तो उसके लिये सर्वोत्तम उपाय कर्ण-वस्ति है अर्थात एक पिचकारी के द्वारा प्रक्षालन करके बारीक चिमटी से पकड़ कर निकालना है। परन्तु यदि वानस्पतिक पदार्थ हुआ तो उसके निकालने में पिचकारी का प्रयोग ख.रनाक हो सकता है। जैसे मटर के दाने को लीजिये। यह एक आम चीज है जिसको बच्चे कान में डाल लेते हैं यदि पिचकारी का प्रयोग किया जाता है तो वह फूल जावेगा और सम्भव है कर्ण अस्थिमय भाग में जाकर फंस जावे जिससे कान में तीव्र पीड़ा प्रारम्भ हो सकती है और फिर उस वस्तु (शल्य) का निकालना भी अत्यन्त कठिन हो सकता है। ऐसी स्थिति में उसके टुकड़े-टुकड़े करके निकालना होता है।

छोटे-२ बच्चों में यदि वे चंचल हों तो संज्ञाहर द्रव्यों का प्रयोग करके तब निकालना चाहिये क्योंकि चिल्लाते और रगड़ते हुये बच्चों के कान में से शल्य का आहरण उनके कान के अवयवों को सुरक्षित रखते हुये निकालना असम्भव होता है। उपयुक्त यन्त्रों के अभाव में किसी अन्य सुसज्जित चिकित्सालय में भेज देना चाहिये क्योंकि थोड़ी सी असावधानी से जैसे मोटी चिमटी के प्रयोग से या मिथ्या प्रयोग से वह शल्य आगे की ओर बढ़ता चला जावेगा और फिर ऐसी स्थिति में उसका निकलना

अंश्मूट शस्त्र कर्म (Rodical Mastoid operation) के माध्यम से ही सम्भव हो सकेगा (शा. त.) अतः निम्न उपायों में से किसी का प्रयोग करें—

१–यदि वह वस्तु कान के छेद के समीप है तो चिमटी से पकड़ कर निकाली जा सकती है।

२–यदि वह वस्तु कान में फंसी हुई नहीं है तो पतली नोंक वाली पिचकारी में थोड़ा गर्म पानी भर कान के छिद्र के पास किनारे से प्रवेश करें। इससे वह वस्तु बह कर या पानी में घुल कर निकल जावेगी।

३–यदि वह वस्तु कान में फंसी हुई नहीं है तो कान खोलने के यन्त्र द्वारा से उस वस्तु का निरीक्षण करें। अमरी यन्त्र (Amry's ear Scope) या लिस्टर हुक (Lister's Hook) से उसको निकालें। अमरी यन्त्र को कान में प्रवेश करके अटकी हुई वस्तु से बचाते हुये आगे ले जाकर इस वस्तु को फंसा कर यन्त्र को धीरे-२ अपनी ओर खींच लें।

लिस्टर हुक यन्त्र को कान में प्रवेश करके कान के अन्दर फंसी हुई वस्तु के पीछे ले जावे और हुक को वस्तु में फंसा कर अपनी ओर खींच ले। यदि कान को इस प्रकार कुरेदने से कान में खुजली उत्पन्न हो जाये व रक्त निकल आवे तो बोरिक लोशन से कान धो डाले (मा० चि०)।

गले या स्वर यन्त्र में बाह्य वस्तु—

भोजन करते समय कभी-२ आहार का भाग, हड्डी का टुकड़ा-स्वर यन्त्र में चला जाता है जिससे मृत्यु तक हो सकती है। यदि वह टुकड़ा बड़ा है तो सांस में रुकावट उत्पन्न हो जाती है और आंखें बाहर को उभर आतीं हैं, मुख लाल हो जाता है। यदि यह स्थिति देर तक बनी रहे तो मुख का रंग नीले वर्ण का हो जाता है, तीव्र खांसी आने लगती है। प्रायः फंसी हुई वस्तु खांसने से निकल आती है। परन्तु कभी-२ ऐसी भी स्थिति आजाती है जिसमें कोई उपाय सफल नहीं होता और फिर विवशतः स्वरयन्त्र में रास्ता बनाना पड़ता है जिससे सांस नियमित रूप से ठीक से चलने लगे और फंसी हुई वस्तु भी निकाली जा सके।

प्रायः ग्रास, हड्डी का टुकड़ा, दंत पंक्ति गले में फंस जाता है जिसके फल स्वरूप भी उपरोक्त लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इन सभी दशाओं में तुरन्त उंगली डाल कर अटकी हुई वस्तु को बाहर निकालने का प्रयास करें। यदि उंगली के सहारे फंसी हुई वस्तु बाहर न आ सके तो उसको अन्दर धकेल दें जिससे अन्न प्रणाली से होती हुई आमाशय में पहुंच जावे। गर्दन के पिछले भाग पर जोर का मुक्का मारे ऐसा करने से वस्तु बाहर निकल आती है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जब गले में मछली का कांटा, हड्डी आदि कोई वस्तु फंस जाती है तो रोगी को निगलने में बहुत कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति में उस वस्तु को खींच कर निकाल लेना चाहिए। धार रहित लम्बी चिमटी के सहारे भी उसे निकाला जासकता है। ऐसा करते समय सर्व प्रथम जीभ दबाने वाले यन्त्र या चम्मच से जीभ को भली प्रकार दबाये रखना चाहिये। यदि अण्डे को तोड़कर एक ही बार में पी लिया जावे तो प्रायः मछली के बहुत छोटे-२ कांटे और हड्डियों के छोटे-छोटे टुकड़े गले से निकल कर आमाशय में चले जाते हैं। ऐसी स्थिति में मीठा दलिया, खिचड़ी साबूदाना आदि खिलाना चाहिए। रोटी के एक बहुत बड़े टुकड़े को चबा कर निगलने से भी गले में फंसी हुई वस्तु गले से नीचे चली जाती है। कोई भी तरल वस्तु या पानी आदि नहीं देना चाहिये। (मा. चि.)

स्वरयन्त्र के प्रवेश द्वार का किसी बड़े आकार के ग्रास को निगलने के प्रयास से अवरोध होकर तत्काल मृत्यु हो सकती है। कृत्रिम दंत पंक्ति द्वारा अवरोध अपूर्ण होने से श्वास लेने में कठिनाई होती है। अचेतन रोगियों में वान्त पदार्थों से भी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाया करती है।

इसकी तत्काल व्यवस्था होनी चाहिये। यदि स्वर यन्त्र आदि में कोई वस्तु फस जावे और जिसके परिणाम स्वरूप सांस बन्द हो रहा हो तो तुरन्त कृत्रिम श्वसन की क्रिया द्वारा सांस चालू करे।

रोगी के मुख को खुलवा कर अंगुली की सहायता से ग्रसनिका को शल्य रहित करने का प्रयास करे। सफलता न मिलने पर स्वरयन्त्र भेदन (Laryngostomy) या क्लोम नलिका भेदन (Tracheotomy) अनिवार्य रूप से

करना पड़ता है।

स्वर यन्त्र में कभी-२ गहरा श्वास लेते समय तन्त्री-द्वार (Glottis) के पूर्णतया खुल जाने से छोटे सिक्के, बटन आदि प्रविष्ट हो जाते हैं।

ऐसी अवस्था में भी स्वरयन्त्रान्तर्दर्शन (Laryngoscopy) से शल्य को सदंश द्वारा पकड़ कर निकाल लेते हैं। रोगी के सिर को नीचे की ओर कर लिया जाता है जिससे यदि निकालते समय शल्य छूट जावे तो वह क्लोम नलिका में न जाने पावे।

अन्न नलिका में वाह्य वस्तु—

कभी-२ ऐसा होता है कि भोजन करते समय खाने की वस्तु के बड़े-बड़े टुकड़े या अन्य कोई वस्तु जैसे सिक्के हड्डी या मछली का कांटा या नकली दांत गले से गुजर कर गले में फंसने के बजाय वह भोजन या अन्न-नलिका में फंस जाते हैं। ऐसी स्थिति में "एक्सरे" करके तुरन्त निरीक्षण करे जिससे उस स्थान का जहां वह वस्तु फंसी है और उस फंसी हुई वस्तु का ठीक-२ अनुमान किया जा सकता है। यदि फंसी हुई वस्तु अपारदर्शक न हो तो बेरियम पिलाकर 'एक्स-रे' चित्रण करना चाहिए। तत्पश्चात विशेष प्रकार की बनी कण्ठशल्यावलोकनी नाड़ी (Oesophagoscope) अन्ननलिकादर्शक यन्त्र (Oesophageal Speculum) की सहायता से अन्ननलिका में फंसे पदार्थों को निकाला जाता है। अनुभव से यह देखा गया है कि केशोण्डुक (Phobong) और मुद्राग्राह (Coin-Catcher) का इन पदार्थों को निकालने अथवा आमाशय में धकेल देने के लिये प्रयोग उपयुक्त नहीं है। सुश्रुत में कण्ठासक्त जातुष (लाख) शल्य (वाह्य वस्तु) को निकालने के लिये तप्त लोहशलाका के उपयोग का उल्लेख किया है और जब उष्णता के कारण लाख पिघल जावे तो शीतल जल से सिंचन बताया है। यदि शल्य किसी अन्य पदार्थ का हो तो मोम लगाकर निकालें। तिर्यक फंसे हुये अस्थिशल्य को निकालने के लिए सुश्रुत ने जिस उपकरण का उल्लेख किया है वह आजकल Brestle brobang कहलाता है।

यदि वाह्य वस्तु अन्न नलिका के ऊर्ध्व संकुचित भाग से आगे निकल गई हो तो वह आमाशय और अन्त्र में से होकर बाहर निकल जाती है। यदि अन्न नलिका के औरस (Thoracic) भाग में विदारण होकर उप अन्न नलिका (Para-oesophageal) विद्रधि या मध्यावकाश शोथ (Mediastinitis) हो जाये तो विद्रधि भेदन कण्ठ-शल्यावलोकनी नाड़ी के सीधे निरीक्षण में किया जाता है। वक्ष भेदन भी आवश्यक हो सकता है।

यदि शल्य (वाह्य वस्तु) आमाशय तक पहुंच गया है तो उसे मुख द्वारा निकालने के लिये वामक द्रव्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि उसकी गति अन्त्र में कहीं अवरुद्ध हो गई है तो उदर भेदन (Laparotomy) की आवश्यकता हो सकती है।

कण्ठासक्त ग्रास रूपी शल्य को निकालने के लिए जैसा कि भोजन करते समय कई बार हो जाता है, रोगी को स्नेह या मद्य का पान कराना चाहिए। लाभ न होने पर रोगी के बिना जाने ही उसके स्कन्ध पर सहसा आघात (मुष्टि प्रहार) करते हैं। ग्रास शल्ये तु कण्ठासक्ते निःशंक गलवधुद्ध स्कन्धे मुष्टिनाऽभिहन्यात् स्नेहं, मद्य, पानीयंवा पाययेत—सु. सू. २७। (श. स.)।

फंसी हुई वस्तु अन्न नलिका में जब काफी समय तक पड़ी रहती है तो वह स्थान सूज जाता है और घाव बन जाता है जो बाद में विषैले फोड़ा का रूप ले लेता है। ऐसे रोगी को अस्पताल भेज देना चाहिये।

मूत्र मार्ग में वस्तु फंस जाना

कभी-२ ऐसा भी देखने में आता है कि मूत्रमार्ग में मूत्रनाड़ी के खंड, बालकों में स्लेट-पेन्सिल, सुई, पिन या बारीक तार के टुकड़े आदि पाये जाते हैं जिसके कारण अत्यन्त कष्ट होता है। यदि किसी के सामने ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जावे तो बांये हाथ से उस स्थान पर दबाव डालना चाहिये जहां पर उस वस्तु का अन्तिम सिरा मालूम देवे ताकि वह खिसक कर ऊपर की ओर न बढ़ सके। यदि फंसी हुई वस्तु मूत्र प्रणाली के छिद्र के समीप ही होवे तो बहुत बारीक लम्बी नोक वाली चिमटी से पकड़ कर उसको खींच लेवे और यदि चुभी हुई वस्तु अधिक ऊपर चढ़ चुकी हो तो पहले उस स्थान को सुन्न कर लेवें और फिर इन्द्री को मोड़ कर दोहरा कर देवे जिससे पिन आदि की नोक इन्द्री को छेद कर बाहर आ जावे और तब बाहर आने उस पिन के बाहर निकले

हुये सिरे को चिमटी से मजबूती से पकड़ कर खींच लेना चाहिये। यदि यह उपाय भी असफल हो जावे तो मूत्र प्रणाली को चीर कर चुभी हुई या फंसी हुई वस्तु को निकाल देना चाहिये। यदि वह वस्तु मूत्राशय के पास मूत्रप्रणाली के अन्तिम सिरे तक पहुँच गई हो तो उसको मूत्राशय में धकेल देवे और फिर मूत्राशय का आपरेशन करके उसे निकाल लेवें।

यदि स्त्री के मूत्रामार्ग में पिन आदि ऐसी कोई वस्तु प्रवेश कर गई हो और वह खिसक कर स्त्री के मूत्राशय में चली जावे तो ऐसी अवस्था में उसको ईथर सुंघा कर बेहोश करके मूत्रमार्ग को इतना ढीला कर लिया जाता है कि अंगुली का प्रवेश आसानी से किया जा सकता है। मूत्रमार्ग को ढीला करने के लिये लोहे का बना यन्त्र केली (Keily's) प्रयोग किया जाता है। अब मूत्रमार्ग में अंगुली प्रवेश करके पिन को इस प्रकार उलटा पलटा करता है कि जिससे उसका मोटा सिरा अंगुली से अटक जावे। इस प्रकार पिन अंगुली से अटक कर बाहर निकल आता है यदि अंगुली से पिन न निकले तो चिमटी से पकड़ कर खींच लेना चाहिए। स्त्री का मूत्रमार्ग बहुत छोटा होता है इस कारण उसके मूत्रमार्ग से पिन आदि आसानी से निकाला जा सकता है।

यदि स्त्री की योनि में कोई वस्तु चली गई हो तो उसको बेहोश करके योनि को चौड़ा करने वाले यन्त्र से चौड़ा करके उस वस्तु को चिमटी से निकाल लें।

चर्म में धंसी (चुभी) हुई वस्तु—

चर्म (त्वचा) शरीर का एक ऐसा बाहरी पर्दा है जिससे प्रत्येक बाहरी वस्तु चर्म से स्पर्श करती है। इसलिए विभिन्न प्रकार की नोक और चुभने वाली वस्तुयें जैसे लकड़ी और बांस आदि की फांस कांटा सुई पिन और तीर आदि त्वचा में घुस जाते हैं। कभी-२ ये वस्तुयें त्वचा में चुभती हुई मांस में भी घुस जाती हैं।

यदि चुभी हुई वस्तु त्वचा में ही स्थित होवे तो उसे सुई या किसी अन्य नोक वाली वस्तु से कुरेद कर निकाल देना चाहिये और यदि वह नुकीली वस्तु मांस में गहराई तक पहुँच गई हो तो त्वचा को सीधा चीर कर चिमटी से उसे निकाल देवे।

चर्म और मांस में प्रवेश करने वाली विभिन्न न[illegible] दार वस्तुओं से सबसे अधिक कष्टदायक सुई है। [illegible] निकालने में बड़ी कठिनाई होती है क्योंकि यह [illegible] स्थान बदल सकती है इसलिये इसके निकालने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। यदि मांस में घुसी हो तो उसके निकालने के लिये उसके चुभने के मार[illegible] विपरीत दिशा में आपरेशन करके उसे स्पष्ट कर[illegible] चाहिए। दिखाई देने के पश्चात सुई को चिमटी से [illegible] लें और एक ओर से दवा कर उसका सिरा घाव से [illegible] खींच लेना चाहिये और चर्म पर टांके लगा ड्रेसिंग क[illegible]

लेकिन यह हमेशा याद रखें कि जब तक सु[illegible] सही स्थिति का पता न चले तब तक भूल कर भी [illegible] शन न करें। यदि सुई की सही स्थिति का ज्ञान [illegible] सके तो एक्सरे लेना चाहिए। एक्सरे लेने के बाद [illegible] ही आपरेशन कर देना चाहिए क्योंकि विलम्ब हो[illegible] सुई और आगे खिसक कर चली जाती है (मा.चि.)

इन्जेक्शन काल में सुई टूट कर धंस जाना

इन्जेक्शन (सूचीवेध) मे प्रयोग की जाने वाल[illegible] यदि कमजोर होती है या रोगी की अनुचित (Motion) या किसी अस्थि से टकरा जाती है तो सुई रोगी के शरीर में टूट जाती है। इस दुर्घट[illegible] अवसर पर तुरन्त ही सावधानीपूर्वक सुई के हि[illegible] रोगी के शरीर से बाहर निकाल देना चाहिए [illegible] स्थिति में एक विसंक्रमित किये हुए संदंश से सूई [illegible] हुए भाग को पकड़कर निकाल लेवे। यदि सुई [illegible] हुवा अंश अन्दर प्रविष्ट हो गया हो तो उस स्[illegible] छोटा सा एक गड्ढा बना लेना चाहिए जिससे [illegible] चिमटी से पकड़ कर निकाला जा सके। फिर चि[illegible] सुई के टूटे हुए भाग को पकड़ कर खींच लेवे। सुई [illegible] के बाद इन्जेक्शन स्थान पर दबाव नहीं डालना [illegible] अन्यथा वहां दबाव पड़ने से सुई का भाग नुकीला [illegible] कारण शरीर के अन्दर की ओर आगे बढ़ता [illegible] और लापता हो जाता है। ऐसी अवस्था में बिना [illegible] की सहायता के उस स्थान का पता लगाना दुर्गम [illegible] है अतः एक्स-रे लेकर तुरन्त आपरेशन द्वारा [illegible] टुकड़े को निकाल देना चाहिए (मा. चि.)।

★ डा० (कु०) कृष्णाकुमारी देवी शर्मा एम.ए., बी.ए.एम.एस. ★

शरीर में बाह्य वस्तुएँ

आयुर्वेद चक्रवर्ती गिरिधारीलाल मिश्र विशेष सम्पादक, तेजपुर।

—:०:—

नासागत बाह्य वस्तु—

प्रायः अधिकतर बच्चे खेलते-२ नाक में शल्य अर्थात बाह्य पदार्थ घुसा लेते हैं जो बहुधा निम्न प्रकार के होते हैं—

(१) पेन्सिल, माला के दाने, छोटे-छोटे खिलौने के टुकड़े आदि।

(२) छोटे-छोटे कंकर या पत्थर के टुकड़े।

(३) विविध प्रकार के दाने यथा मटर, चना, मकई। इन वस्तुओं को बच्चे खेलते-खेलते अपनी नाक में डाल लेते हैं जो प्रायः नासा के अधो भाग (Inferior meatus) में पाये जाते हैं।

लक्षण—नासा में शल्य घुसते ही बच्चे रोने चिल्लाने लगते हैं। यदि शल्य से वेदना न हों तो भी जिस ओर के नाक में कोई वस्तु प्रविष्ट हुई है उधर का नाक बन्द हो जाता है उस ओर के नासारन्ध्र से स्राव होता है या रक्तयुक्त स्राव से शल्य का निश्चय होजाता है।

अपकर्षण—नासारन्ध्र में टार्च के प्रकाश से अच्छी तरह जांच करनी चाहिए। यदि वस्तु बाहर से दिखाई पड़े तो चिमटी से पकड़ कर उसे निकाल लेना चाहिए किन्तु दूर चले जाने पर नाक को स्पेकुलम (Speculam) से खोलकर साधारण प्रोब (Simple Probe) से जिसका अग्रभाग टेढा किया हुआ हो निकालना चाहिए और इससे भी यदि न निकले तो उस बाह्य पदार्थ को पीछे धक्का देकर उसे मुख मार्ग द्वारा निकाल देना चाहिए। पतली शलाका अथवा हुक द्वारा बड़ी सुविधापूर्वक शल्याकर्षण किया जा सकता है। पर बच्चों के साथ सबसे बड़ी समस्या है एक तो वे वेदना सहन नहीं कर सकते दूसरे चिकित्सक की चिमटी देखकर चिल्लाने लगते हैं तथा बहुत हिलते-डुलते हैं अतः मजबूती से सिर पकड़ लेना चाहिए अन्यथा पेन्टोथल सोडियम का शिरागत सूचीवेध द्वारा स्थानीय संज्ञाहरण सार्वदैहिक संज्ञाहरण का प्रयोग करना पड़ता है।

युवा लोगों में शल्य आमतौर पर Calcium deposits या गाज के टुकड़े जो कि रक्तपित्त को रोकने के लिये प्रयोग किये जाते हैं, पाये जाते हैं। यदि यह शल्य-पदार्थ नासा में अधिक समय तक पड़े रहे तो नासा की श्लैष्मिक कला सिकुड़ (Atrophy) जाती है ऐसी स्थिति में शल्य को बाहर निकालने के बाद इस करके नाक सफा करनी चाहिए और "षड्बिन्दु तैल" डालना चाहिए।

द्रष्टव्य—बाह्य वस्तु का अपकर्षण करते समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि शल्य कहीं गले में न धकेला जाये जिससे कि यह श्वास नली में जाकर श्वासावरोध उत्पन्न न कर दे। इस सम्भावना को रोकने के लिये पिछले भाग में (Nasophayns) पर एक अंगुली दबा कर रख दें तथा दूसरी से शल्य को टटोल कर निकालना चाहिए। अपकर्षण के समय कभी-कभी नाक के छिलजाने से रक्त स्राव हो लगता है तथा स्थानीय वेदना भी होने लगती है अतः रक्तस्राव को रोकने के लिए और वेदना को दूर करने के लिए वस्तु के बाहर निकाल लेने के बाद नाक में षड्बिन्दु-तैल" अवश्य डालें।

कान से बाह्य वस्तु निष्कासन—

कान में मुख्य रूप से निम्न तीन प्रकार के बाह्य पदार्थ प्रविष्ट हो जाते हैं—

(१) अनाज, गेहूं, चना, छोटा दाना, मूंग, मटर, पेन्सिल इत्यादि—

(२) मच्छर, मक्खी, तिलचट्टा कीड़ा-मकोड़ा आदि—

(३) कंकड़, खनिज रेत शीशा इत्यादि।

कान में बाह्य वस्तु का प्रवेश होते ही रोगी उसे निकालने के लिए प्रयास करता है व उसे शीघ्र निकालने के लिये बेचैन रहता है और रगड़-रगड़ कर शोथ पैदा कर लेता है।

चिकित्सा—कर्णदर्शक यन्त्र द्वारा कर्ण का निरीक्षण

करने पर बाह्य वस्तु दिखाई दे जाती है अतः 'कर्ण संदंशनी' द्वारा उसे निकाला जा सकता है।

कान में कीड़ा—

जब कोई कीड़ा कान में घुस जाये तो सर्व प्रथम कान के पास रोशनी करनी चाहिए। टार्च के प्रकाश से कीड़ा बाहर निकल आता है। यदि इस तरह न निकलें तो कान में कार्बोलिक ग्लिसरीन को डालना चाहिए या नारियल व बिल्व तैल डालना चाहिए। इससे कीड़ा नष्ट हो जाता है तब उसे चिमटी (Ear Forceps) से निकाल लें। यदि छोटा कीड़ा मकोड़ा हो तो कान में हाइड्रोजन पर-ऑक्साइड' डालें। इससे कान में झाग होंगे और कीड़ा ऊपर आ जायेगा। हमारे चौकीदार के कान में तिलचट्टा घुस गया। वह रात भर बेचैन रहा सुबह ही हमने उसके कान से जीवित तिलचट्टा निकाला। एक बच्चे ने जो माचिस कांटी से कान खुजलाया करता था माचिस की काटी कान में टूट गयी। कान में हाइड्रोजन ड्रुप डालने से वह ऊपर आ गई और निकाल लिया।

अनाज को निकालना—

कान में अनाज गेहूं, चना व रेत कंकड़ आदि के घुस जाने से तैल थोड़ा सा गरम करके कान की दीवार में टपकायें। अनाज के पास जब तैल पहुँच जाय तो और डाल दें। फिर कान को उलटा करने से अनाज का दाना निकल जायेगा।

कर्ण संदंशनी—यह एक तार के समान, पीछे पिस्तौल जैसा ट्रेगर होता है कान में डालकर कान के दीवार के साथ अनाज के पीछे ले जाते हैं फिर ट्रेगर को खींचते हैं तो उसमें एक कांटा सा टेढ़ा मुख बन जाता है। उसमें अनाज का दाना आ जाता है तब उसे खींच लेवे।

कर्ण में रेत घुस जाने से उष्ण जल में बोरिक एसिड व पोटेशियम परमेगनेट मिलाकर पिचकारी (Ear Syringe) से धोना चाहिए। इससे सूखी वस्तु जो विलीन नहीं होती कान धोने से बाहर निकल जायेगी। वैसे भी कान से कोई भी वस्तु निकाल देने के बाद सुखोष्ण जैस में बोरिक एसिड व पोटाश परमेगनेट का लोशन बनाकर कान धोना चाहिए। इससे कान की सफाई के साथ-२ वेदना हरण भी हो जाता है।

द्रष्टव्य—कभी भी बाह्य वस्तु को निकालने में जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए अन्यथा कान के पर्दे पर आघात लगने या फट जाने का भय रहता है। छोटे बच्चों को संज्ञानाशक औषधि का प्रयोग करके व बच्चा सो जाय तब बाह्य वस्तु को निकालने का प्रयास करना चाहिए। इमरे का स्कूप (Imray's Ear Scoop) या लिस्टर हुक (Liste's Hook) निष्कासन कार्य के लिए उत्तम यन्त्र है।

नेत्र में बाह्य वस्तु—

आंख में धूल कण व गर्दा—

आंख में धूल, गर्दा व रेल में सफर करते समय कोयले की बुकनी व बारी के कीड़े आंख में गिर जाया करते हैं। जब आंख में चिनेकारी व धूल कण पड़ जाय तो आंख को अंगुली से कभी भी मलना नहीं चाहिए और न रूमाल से इसे बाहर निकालने का प्रयास करना चाहिए बल्कि पीड़ित व्यक्ति को लिटा दिया जाय तथा अंगूठे और तर्जनी अंगुली से आंख को खोल कर 'नार्मल सलाइन' से। धो देना चाहिए इससे आंख में जो कुछ पड़ा होगा निकल जायेगा।

यदि उपरोक्त विधि से आंख में पड़ी वस्तु न निकले तो पलक को उलट देना चाहिए। रोगी को नीचे की ओर देखने कहें अब बनौनी दियासलाई जैसी लकड़ी की छोटी तीली पलक के ऊपरी भाग पर रख देवे और अंगुली से पलक को आंख के ठेहो पर से हटाइये। इस प्रकार आंख में जो कुछ भी गिरा होगा दिखाई देगा तब उसे रुई लगी लम्बी तिली से निकाल दें।

चूना, कपड़े धोने का सोडे का कण —घर में सफाई करते समय चूने के पानी के छींटे आंख में पड़ जाते हैं। कपड़े धोने के सोड़े के कण या क्षार मिले पानी की बूंदें आंख में पड़ जाते हैं उसे यदि तुरन्त न निकाला जाय तो व्यक्ति अन्धा हो सकता है। ऐसी स्थिति में तीव्रता से सिर को तुरन्त नीचे करके अधिक साफ पानी आंख में डालें इससे पदार्थ घुल जायेगा और जितना हो सके न

ल आयेगा। यह ध्यान रहे कि यह कार्य अतिशीघ्र ा चाहिए। आंख धोने से पहले अन्य औषधि पूंछने में य नष्ट नहीं करना चाहिए जब आंख सफा हो जाय बोरिक अम्ल के घोल को आंख में टपकावें। यदि ख में किसी प्रकार का अम्ल छिटक कर पड़ जाय तो भी आंख को इसी विधि से धोकर निकला जाता है।

लोहे का बुरादा—फैक्टरी में काम करने वाले मज- को जो लोहे के बुरादा के सम्पर्क में आते हैं बुरादा क कर कृष्ण मण्डल (Cornea) की ऊपरी स्तर पर क जाती है। यह स्थान अत्यधिक संवेदनशील होने के ण अत्यधिक पीड़ा होती है। आंख में २% कोकन एनियेन का घोल डालकर आंख को सुन्न कर लेते हैं बाह्य पदार्थ को निकालने के बाद आंख में लोशन वलं (Liguid Paraffine) ही डाल देना चाहिए। ग मण्डल पर चिपके लोह कण के पाराम्बुम्बक लेजाने लोहकण चुम्बक से चिपक जायेगा और इस प्रकार ानी से निकाला जा सकेगा, कृष्ण मण्डल पर चिपका कण हटाने वाला बड़ा चुम्बक यन्त्र (चित्र पृष्ठ २०७) भी आता है जिससे यह कार्य आसानी से होजाता है। बाह्य वस्तु के निकल जाने के बाद सिग्रबिन्दु व एट्रो- का १ प्रतिशत घोल का बिन्दु आंख में डालते हैं उपसर्ग रोकते हुए जीवाणुनाशक घोल भी डाला सकता है।

न नलिका में बाह्य वस्तु—

भोजन नलिका में विशेषतः मछली का कांटा, गोश्त टुकड़ा एवं हड्डी, व भोजन ठोस पदार्थ तथा कृत्रिम , पैसा व अन्य ठोस पदार्थों के अटकने की सम्भावना ी है। बच्चे पैसा मारबल गोल पेन्सिल टुकड़ा आदि में डाल लेते हैं और भोजन नलिका में फंस जाती जो पदार्थ भोजन के साथ पाचित हो सके और मल ाथ निकल सके उनको नीचे उतार देना चाहिए, कृत्रिम दांत आदि को Coin Catcher से निकाल ा चाहिए।

आमाशयगत शल्य निष्कासन—सन् १९८९ दीपा- के कुछ रोज पूर्व की बात है सफाई आदि कार्य में मजदूर लोग संलग्न थे एक मजदूर जो लोहे की कीलें दांत से दबा रखा था और एक-एक कील निकाल कर ठोक रहा था दुर्भाग्यवश एक कील वह निगल गया। कील छोटी ही थी आमाशय में पहुँच गयी तथा उसके पेट में दर्द भी होने लगा मजदूर बड़ा ही गरीब था शल्यक्रिया की तो बात दूर थी आमाशय में किस ओर किस स्थिति में कील है इसे जानने के लिए एक्स-रे करवाने के लिए भी पैसे नहीं थे। मैंने धन्वन्तरि वनौषधि विशेषांक में आलू का प्रयोग पढ़ा था तथा प्रयोग करने की इच्छा हुई और उसे निर्देश दिया कि सब कुछ खाना बन्द करके केवल आलू जितना भर पेट खा सकते हो खाते रहो। कच्चा-पक्का दोनों ही प्रकार से उसने आलू खाना शुरू किया तथा सीधे करवट पर ही पूर्ण विश्राम के सोये रहता जैसे-२ उसका दर्द खिसकने लगा उसे अनुभव होने लगा कि कील भी खिसक रही है ७ वें दिन कील मल के साथ निकल गयी-रोगी का मल का जलीयांश सुख जाने से मल त्याग में रोगी को बड़ा जोर लगाना पड़ा मल द्वार पर मल रुक गया था उसने अंगुली से जैसे ही मल को निकाला तो कील उसके हाथ में आ गयी, मुझे जब कील लाकर दिखाई तो मैं बड़ा प्रभावित हुआ। शल्य क्रिया के बिना रोगी का जीवन बच गया।

आलू में १० प्रतिशत कार्बोहाइड्रेटस व पिस्टसरच तथा सेल्यूलोज ८०% होता है अतः सेल्यूलोज और कार्बोहाईड्रेटस जल से फूलते हैं और पचते नहीं तथा पाचक रसों की क्रिया भी कम कर देते हैं जिससे आंतों में वैसे ही रहते हैं तथा जैसे-२ आंतों की अन्तस्थवली इनसे भरती जाती है आगे खिसकते जाते हैं तथा इस तरह सरकता हुआ शल्य अन्त में बाहर निकल जाता है।

मछली का कांटा व केश—मछली का कांटा व सिर का बाल कभी-२ निगल जाने से गले में अटकन पर कई बार तो गले में खरखराहट होकर वमन होकर निकल जाता है पर गले से नीचे उतर जाने पर मल के साथ बाहर निकल जाते हैं। 'जामुन का सिरका' ४-४ चम्मच दिन में ३-४ बार देना चाहिए। इससे कांटा व केश गल जाते हैं और मल के साथ निकल जाते हैं जामुन में लोहे तक को गला देने की शक्ति है।

यदि वस्तु काफी बड़ी जैसे किसी के १-२ दांत कृत्रिम बना कर लगाये हुए हों और भोजन करते ही अपने स्थान से हट कर भोजन नलिका में चला जाय या वस्तु इतनी बड़ी हो कि नीचे की ओर खिसकाई जासके और न ऊपर ही निकाली जा सके तो उसको एक्स-रे से उसकी स्थिति को देखकर शल्यकर्म द्वारा ही निकालना अन्तिम उपाय है।

श्वास नलिका में बाह्य वस्तु—

श्वास नलिका में किसी भी बाह्य वस्तु के प्रवेश से तुरन्त प्राण- हानि की आशंका रहती है। अतः रोगी के गले, श्वास नलिका तक उंगली डालकर उस बाह्य पदार्थ को निकाला जा सकता है। यदि १-२ मिनिट में बाह्य वस्तु बाहर निकले तो रोगी को तुरन्त होस्पिटल में भेज देना चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर ट्रेकियोटोमी कर प्राण बचाये जा सकें।

कांटे अथवा साधारण सुइयां—पैर में कांटे, कील व सूई घुस जाने की दुर्घटनायें भी चिकित्सक के पास आती है। यदि कांटा या सूई का थोड़ा सा भी भाग दिखाई दे तो उस स्थान को सूई की नोक से थोड़ा-२ खुरच कर थोड़ा सा भी भाग पकड़ने लायक होने पर चिमटी आदि से पकड़कर निकाल देना चाहिए। कांटे को खींचते समय ध्यान रखना चाहिए कि उसको जिस दिशा में प्रविष्ट हुई है उसी दिशा में बाहर खींचना चाहिए। अन्दर दूर जाने पर कोकेन के इन्जेक्शन से उस स्थान को शून्य कर के चर्म छेदन कर कांटे या सुई को ढूंढकर बाहर निकाल दिया जाता है। प्रायः टूटे हुए सूई व कांटे के स्थान पर अर्क का दुग्ध का पिचु बांध देने से व गुड़ बोरिक एसिड मिलाकर गर्म कर बांध देने से व केवल गर्म किया हुआ गुड़ ही बांध देने से टूटा हुआ कांटा व सूई ऊपर आजाते हैं और चिमटी से पकड़कर निकाले जा सकते हैं।

कांच के टुकड़े यदि चर्म में प्रविष्ट कर गये हों तो चर्म का छेदन करके निकाल देना चाहिए तथा जात्यादि तैल पिचु लगाकर पट्टी बांध देनी चाहिए।

तेजाब छिड़कना—कई बार परहत्या के निमित्त से लोग तेजाब छिड़क दिया करते हैं जिससे त्वचा के जल जाने से अनेक सङ्कटकालीन स्थितियां उत्पन्न होजाती हैं। यदि यह तेजाब तीव्र बल का (Concentrsted) हो तो त्वचा पर दाह और व्रण उत्पन्न होकर त्वचा विदीर्ण हो जाती है। आंख आदि में गिर जाने से नेत्र ज्योति हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है।

सामान्य अग्नि दग्ध की तरह ही चिकित्सा करनी चाहिए परन्तु तेजाब द्वारा जले हुये में विशेष रूप से क्षारीय औषधियों का तत्काल प्रयोग करने से अम्ल Neutralise हो जाता है जिससे रोगी को तत्काल आशातीत लाभ पहुँचता है।

विशेष प्रयोग—बुझा हुआ चूना पानी तथा नारियल जल समान भाग १०-१० मिलि० में १ ग्राम भीमसेनी कपूर १ ग्राम पिपरमेंट मिलाकर खूब हिलावें, दूध की तरह का तैल तैयार हो जायेगा। इसे दग्ध स्थान पर लगावें तो तत्काल जलन शांत पड़ जायेगी तथा व्रण होने का, व्रण पाक होने का भी डर नहीं रहेगा दिन में ३-४ बार इसे लगाना चाहिए। तेजाब से जली हुई त्वचा विदीर्ण होकर वहां पीले चकते व सफेद दाग भी पड़ जाते हैं तथा अङ्ग कुरूप हो जाता है। अतः उपरोक्त उपचार करने पर दाग आदि पड़ने की भी सम्भावना नहीं रहती। दग्धावस्था की गंभीरता को देखते हुए उपसर्गों से बचने के लिए सल्फा औषधियों का प्रयोग करें।

पृष्ठ २१६ का शेषांश

पीसकर काकमाची के स्वरस के साथ एक प्रहर तक खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनालें। एक गोली प्रातः, एक गोली सायं, ४ रत्ती त्रिफला चूर्ण के साथ गोदुग्ध से रोगी को दें।

९. महायोगराज गुग्गुल—१ गोली प्रातः, १ गोली सायं रास्नादि क्वाथ के साथ दें।

५. महामाष तैल—धनुष्टंकार के रोगी को महामाषादि तैल की मालिश कराकर निर्वात स्थान में रखें।

पथ्यापथ्य-तैल की मालिश, धूप का सेवन, नस्य, घी, तैल, उड़द, पुराने गेहूं, साठी चावल, तांबूल, इमली का फल, नींबू का सेवन हितकर है। अपथ्य-रात में जागना, स्नान, चना, मटर का सेवन, क्षत स्थान को खुला रखना तथा कीच, गोबर या धूल के सम्पर्क में रहना।

धनुष-टंकार [TETANUS]

वैद्य व्रजबिहारी मिश्र एम० ए० (द्वय) आयुर्वेदाचार्य
प्रधान चिकित्सक—श्री मन्नूबाबा धर्मार्थ-चिकित्सालय, पो० बिन्दकी (फतेहपुर) उ०प्र०

यह अत्यन्त प्राणघातक रोग है, आयुर्वेद के अनुसार जो कुपित वात मनुष्य को धनुष के समान टेढ़ा कर देता है उसे धनुष स्तम्भ या धनुष टंकार रोग कहते हैं। जब बलवान कुपित वात अंगुलि, गुल्फ, उदर, हृदयवक्ष तथा गले में आश्रित होकर सिरा तथा स्नायुओं के समूह को आक्षेपित करती है उस समय रोगी के नेत्र विष्टब्ध (निश्चल) हो जाते हैं, हनु स्तब्ध हो जाती है, पार्श्व भग्न हो जाता है तथा कफ का वमन करता हुआ रोगी भीतर की ओर धनुष की तरह नम जाता है तब उसे अन्तरायाम धनुषटंकार एवं जब प्रकुपित वायु शरीर के बाह्य स्नायु समूह में स्थित होता है तब शरीर बाहर की ओर झुक जाता है उसे बाह्यायाम धनुषटंकार कहते हैं।

आधुनिक चिकित्सा में इसकी उत्पत्ति बेसीलस टिटेनी जीवाणु से मानी जाती है जो घोड़े की लीद, गोबर तथा भूमि के ऊपर धूलि में रहता है। जीवाणु का रोगी के शरीर में प्रवेश प्रायः क्षत (घाव) या खरोंच आने से होता है। कभी कभी कुनीन या इन्जेक्शन लगाने से भी यह रोग हो जाया करता है। कभी-कभी प्रसव या गर्भपात जन्य क्षत से तथा बालकों के नालच्छेदन क्षत से नवजात अपतानक (Tetanus Neonaterum) तथा कर्णच्छेदन क्षत से और अभिघात से अभिघातज अपतानक होता (Traumatic tetanus) है। बिना आघात के उत्पन्न अपतानक को अनभिघातज कहते हैं।

लक्षण—

इस रोग के प्रारम्भ में कण्ठ में पीड़ा, गर्दन का अकड़ जाना, दाँती लग जाना आदि होता है। रोगी के चेहरे की पेशी कड़ी हो जाती है और उसमें खिंचावट शुरू हो जाती है जिसके कारण रोगी टकटकी लगाकर देखा करता है। इसके बाद सारा शरीर धनुष की तरह टेढ़ा हो जाता है। मस्तक पीछे की ओर मुड़ जाता है। आंख ऊपर की ओर चढ़ जाती हैं तथा शरीर शिथिल एवं निर्जीव सा हो जाता है। सारा शरीर पसीने से तर हो जाता है और कभी-कभी पहले बहुत तेज बुखार भी चढ़ जाता है। कुछ सैकण्डों के बाद दौरा समाप्त हो जाता है। इसका दौरा बड़ा वेदनायुक्त होता है। रोगी की दशा बिगड़ने पर दौरे भी जल्दी-२ पड़ने लगते हैं।

चिकित्सा—

आयुर्वेद में वातव्याधि निवारण हेतु जो भी प्रयोग आये हैं उनका इस रोग में प्रयोग तुरन्त करने से अच्छा लाभ होता है। यथा—दशमूल के क्वाथ में पीपल का चूर्ण डालकर पीने से लाभ होता है।

रास्नादि घृत—राशना, पोहकरमूल, बेलगिरी, चीता, सहिजना, सेंधानमक, गोखरू और पीपल छोटी इनके कल्क के द्वारा घृत सिद्ध करें। यह घृत एक तोला की मात्रा में उष्ण जल से रोगी को दें।

धनुषटंकार की अनुभूत चिकित्सा

हमारे पूज्य पिता स्व० पं० अवधबिहारी मिश्र रसचक्रपाणि धनुषटंकार के रोगियों पर जिस औषधि योग का प्रयोग करते थे और रोगी को जीवनदान देते थे। वह वैद्य महानुभावों की सेवा में निम्न है—

१. रसराज रस—(विशेष संस्कारित पारद से बनाने पर यह रस आशुफलदायी सिद्ध हुआ है)।

घटक—रस सिंदूर ४ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला और स्वर्ण भस्म १/२ लेकर तीनों को खरल में डालकर महीन पीस लें। फिर घृत कुमारी के गूदे के साथ १ प्रहर घोट लेवें। पश्चात् लौह भस्म, रजत भस्म, बंग भस्म, असगंध, लवङ्ग, जावित्री और क्षीर काकोली, प्रत्येक का चूर्ण ३-३ माशे भर लेवें। सबको एकत्र महीन

—शेषांश पृष्ठ २१५ पर देखें।

धनुस्तम्भ—धनुष्टंकार

डा० हरेन्द्रकुमार प्रवीण आर. सी. एम. एस.
प्रवीण चिकि० सेवाश्रम, पो० पचहरवा वाया रीगा (सीतामढ़ी) बिहार
संयोजक+सचिव—'धन्वन्तरि' संयुक्त चिकि० सेवाश्रम, पो० पचहरवा (सीतामढ़ी) बिहार

धनुर्वत् नमेद्यस्तु स धनुस्तम्भ संज्ञितः।

धनुस्तम्भ नाम से ही लक्षणों का सूचन करता है जिस व्याधि में शरीर धनुष के समान निश्चित स्तम्भित हो जाता है, उसे धनुस्तम्भ कहा जाता है। इसे धनुर्वात, धनुष्कम्प, धनुष्टंकार तथा अपतानक एवं टिटेनस नाम से भी जाना जाता है।

यह टिटेनस बेसिलस या क्लास्ट्रीडियम के संक्रमण से होने वाला रोग है। इसमें जबड़े की तथा अन्य पेशियों का संकोच होता है और थोड़े-२ समय पर दौरे आते हैं।

कारण—

शरीर पर लगी हुई किसी चोट या खरोंच के मार्ग से इसका जीवाणु शरीर के अन्दर प्रवेश कर जाता है। प्राकृतिक खाद युक्त खेतों की मिट्टी में या सड़कों की धूल में यह रहता है। शाकाहारी जानवरों विशेषकर घोड़े एवं गधे की लीद में इसके जीवाणु होते हैं। ये जानवर इसके वाहक होते हैं। शरीर में प्रवेश पाने के २ से १४ दिन में ये लक्षण उत्पन्न करते हैं अर्थात् यह इनका संचय काल (Incubation period) है।

शरीर के किसी भी भाग से रक्त का बाहर स्राव होना, गर्भस्राव-गर्भपात, बच्चा पैदा होने के समय दाइयों द्वारा गन्दे या जंग लगे चाकू या छुरी से नाल काटने पर, कान बहना (Otitis media), शल्यकर्मोत्तर (Post-operative), घाव कभी-कभी चिक्लीन, जिलेटीन के सूचीवेध, प्लास्टर के घाव, नकसीर एवं प्रजनन (बच्चा पैदा करने) के बाद भी यह रोग उत्पन्न होते देखे गए हैं।

लक्षण—

इस रोग में सभी लक्षण पेशियों के उद्वेष्ट (spasm) से उत्पन्न होते हैं। सर्वप्रथम जबड़े की पेशियां प्रभावित होती हैं। प्रारम्भ में मुंह खोलने में तनाव प्रतीत होता है। धीरे-धीरे यह तनाव बढ़ता जाता है और मुंह बन्द
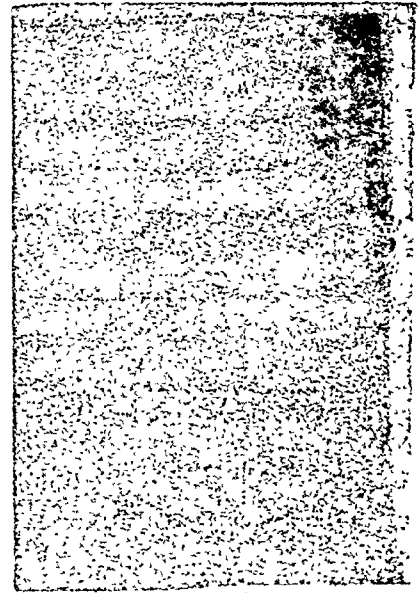
(Lock jaw) हो जाता है। मुंह खोलने का प्रयत्न करने पर पीड़ा होती है परन्तु पीड़ा रहित उद्वेष्ट बराबर बना रहता है। इसके बाद मुंह की अन्य पेशियां प्रभावित होती हैं। मुंह के कोने बाहर की ओर तन जाते हैं, भृकुटी तन जाती है और मुख की आकृति हास्यानुकारी (Risus sardonicus) हो जाती है। गले एवं जबड़े की पेशियां कड़ी हो जाती हैं। तब उद्वेष्ट निगलने की तथा गर्दन की पेशियों में आरम्भ होता है। जिससे [illegible] उद्वेष्ट बढ़कर छाती, पेट और शाखाओं में भी फैल जाता है, यहां तक कि सम्पूर्ण शरीर अकड़ जाता है। प्रति घण्टे, आध घण्टे में शरीर की सभी पेशियों में तीव्र उद्वेष्ट के दौरे आते रहते हैं। दौरे के समय रोगी धनुष के समान टेढ़ा हो जाता है। यह टेढ़ापन पीछे की ओर पृष्ठायाम (Opisthotonus), छाती की ओर अन्तरायाम (Emprosthotonus) या पार्श्व की ओर पार्श्वायाम (Ple-

prosthotonus) हो सकता है अथवा पूरा शरीर कड़ा होकर डण्डे के समान दण्डायाम (Orthotonus) भी हो सकता है। यह स्थिति कुछ सैकण्ड रहती है। इस अवस्था में रोगी को अत्यधिक पीड़ा होती है। धीरे-२ यह कड़ापन कम हो जाता है परन्तु शरीर पूर्ण रूपेण स्वाभाविक मृदुता को प्राप्त नहीं करता वरन कुछ न कुछ कड़ापन बराबर बना रहता है। दौरे के समय दांत बैठ जाते हैं, चेहरा अति विकृत हो जाता है, श्वासावरोध होता है, नाड़ी की गति बढ़ जाती है और इसी समय संधि विश्लेषण (Dislocation of joints), पेशी का विदीर्ण होना अथवा अस्थिभङ्ग आदि उपद्रव हो सकते हैं।

ये दौरे स्वयमेव कुछ समय के अन्तर से आते रहते हैं, परन्तु किसी भी प्रकार के सूक्ष्मतम उद्दीपन (stimulus) से उत्पन्न हो सकते हैं यथा—वायु के झोंके से, तीव्र प्रकाश से, रोगी की परीक्षा करने के समय नाड़ी देखने, शरीर छूने से, औषधि देने अथवा सुई लगाने से आदि। एकबार आक्षेप प्रारम्भ होने पर, चाहे वह कितने ही सूक्ष्म उद्दीपन से क्यों न हुआ हो, पूरे वेग से तथा पूरे समय तक आता है। तीव्र रोग में आक्षेप जल्दी-२ तथा मृदु रोग में देर से आते हैं। आक्षेपों के बीच का समय बढ़ना रोग की कमी का सूचक है परन्तु घटना असाध्यता का लक्षण है।

इस रोग में ज्वर नहीं होता परन्तु अत्यधिक पसीना आता है। अत्यधिक आक्षेप आने पर तथा मृत्यु के पूर्व अतिज्वर (Hyperpyrexia) हो सकता है। रोगी मृत्यु के समय तक पूरे होश में रहता है।

कभी-कभी चोट के स्थान पर पेशियों के कड़ेपन के कारण अङ्ग टेढ़ा हो जाता है। ऐसा जीवाणु के अत्यधिक विष के स्थानीय प्रभाव के कारण हो सकता है और अन्य लक्षणों के दिखाई देने से पहले ही ऐसा हो जाता है। जिन लोगों को रोगक्षमता प्राप्त करा दी जाती है उनमें रोग का इस प्रकार की स्थानीय विकृति तक ही सीमित रहना संभव है। इस प्रकार के स्थानीय धनुर्वात का संचयकाल लम्बा, एक माह या अधिक भी होता है। कापालिक धनुर्वात (cephalic tetanus) भी स्थानीय धनुर्वात है। यह मुख या सिर पर चोट होने से होता है। इसमें जो तन्त्रिका विषाक्त होती है। उसी के अनुसार लक्षण उत्पन्न होते हैं जैसे किसी में निगलने में कठिनाई होती है, दूसरे में श्वास की रुकावट होती है, किसी में मुख की पेशियां अथवा आंख की पेशियों में घात (Paralysis) होता है आदि। छाती अथवा पेट में घाव होने पर औदरिक प्रकार का रोग (splanchnic) होता है। इसमें श्वास लेने की ओर निगलने की पेशियों में आक्षेप होते हैं।

शिशुओं को नाल काटने के समय हुए संक्रमण में यह रोग होता है जो अति तीव्र प्रकार का और प्रायः घातक होता है।

मृत्यु, हृद्घात, जलाभाव, श्वासावरोध, अतिज्वर, क्लान्ति (Exhaustion) अथवा ब्रोंकोन्यूमोनिया आदि अन्य प्रकार के संक्रमणों से होती है।

उपद्रव—

पेशियों का विदीर्ण होना, सन्धिभ्रंश, अस्थिभङ्ग, दांतों से जिह्वा कट जाना, श्वासावरोध, अनिश्वर स्वेदाधिक्य, अल्पमूत्रता या मूत्र बन्द हो जाना तथा अन्य जीवाणुओं का उपसर्ग।

निदान (Diagnosis)

घाव लगने, सुई लगने, आपरेशन, दुर्घटना आदि के कुछ समय बाद चबाने में कठिनाई, जबड़े का न खुलना, निगलने में कठिनाई तथा बाद में आक्षेपों का होना इसके विशेष लक्षण हैं।

कभी-कभी मुखपाक अथवा गले के अन्दर पूयजनक जीवाणुओं का उपसर्ग भी निगलने में कठिनाई एवं हनुग्रह करता है परन्तु मुख एवं गले का ठीक से परिदर्शन करने पर इसका पता चल जाता है। प्रायः ही गले एवं हनु के नीचे की लस ग्रन्थियां बढ़ी हुई होती हैं। कुचला विष सेवन के कारण भी आक्षेप आते हैं। उसमें आक्षेपों के प्रारम्भ होने के पूर्व हनुग्रह नहीं होता वरन साथ-साथ होता है। आक्षेपों के बीच के काल में पेशियां पूर्ण शिथिल हो जाती हैं तथा विष सेवन का इतिहास मिलता है। जल-संत्रास (Hydrophobia) में कुत्ते, सियार, बन्दर आदि जानवरों के काटने का इतिहास मिलता है।

प्रलाप व बेहोशी होती है जबकि धनुष्टंकार में रोगी अन्त समय तक पूरे होश में रहता है; जल-सन्त्रास में जल देखने पर निगलने की पेशियों में आक्षेप होता है, हनुस्तम्भ नहीं होता तथा आवेगों के बीच में शरीर पूर्ण शिथिल हो जाता है। अपतानिका (Tetany) में, शाखाओं में ऐंठन होती है। हनुग्रह तो धनुर्वात का विशेष लक्षण है; नहीं होता।

प्राग्ज्ञान (Prognosis)

टिटेनस हो जाने पर इस रोग की कितनी ही उत्तम चिकित्सा की जाये, अधिकांश रोगी इस असार संसार का परित्याग करने के लिये बाध्य हो जाते हैं। बच्चों एवं बूढ़ों में मृत्यु का प्रतिशत अत्यधिक होता है। जवानों में रोग प्रारम्भ होते ही चिकित्सा प्रारम्भ होने पर जीने की आशा रहती है। अगर दर्दी १० रात्रि व्यतीत कर दे तो जीने की उम्मीद ६०% तक हो जाती है। जिस घाव में उपसर्ग होने से रोग हुआ हो अगर यदि आसानी से साफ किया जा सके तो जीवाणु के प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न कर उसका नाश किया जा सकता है परन्तु सफाई न किये जा सकने योग्य घावों में जीवाणु अपनी वृद्धि तथा विषोत्पादन करता रहता है। परिणाम-स्वरूप चिकित्सा में कम सफलता मिलती है। घाव यदि सिर के निकट रहता है तो मृत्यु अधिक होती है। रोग का संचयकाल कम होना रोग की तीव्रता का परिचायक है। क्षमता प्राप्त रोगियों में मृत्यु कम होती है। दुर्बल रोगी तथा रोग के सम्बन्ध में जिनको पूरा पोषण न दिया जा सके वे मर जाते हैं। प्राग्ज्ञान के सम्बन्ध में यह बात अत्यधिक महत्व की है कि रोग के आक्रमण की कितनी देर बाद चिकित्सा प्रारम्भ की गई। एक बार सम्पूर्ण लक्षण प्रकट हो जाने के बाद बचने की बहुत कम आशा रहती है। चिकित्सा में १ घण्टे की देरी भी मृत्यु को अति निकट बुलाने वाली है। तीव्र रोग होना असाध्यता का लक्षण है।

चिकित्सा-व्यवस्था—

ए.टी.एस. (एण्टी टिटनैस टॉक्सिन)—५० हजार ई. यूनिट अन्त:शिरा द्वारा तथा ५० हजार ई. यूनिट अन्त:पेशी मार्ग से तथा १०-२० हजार ई. यूनिट लम्बर पंक्चर करके अन्त:सुषुम्ना विधि से तथा जब तक रोग अच्छा हो तब तक ५ हजार ई. यूनिट नित्य अन्त:पेशी मार्ग से देना अच्छा रहता है। यह चिकित्सा निर्देश डा. उडुप्पा एवं डा. शुक्ला (बी.एच.यू.) का है। कुछ चिकित्सक ५० हजार ई.यूनिट ए. टी. एस. मांसपेशी द्वारा सुबह शाम ६ दिनों तक बराबर देने का सुझाव देते हैं। ०.१ मिलि. देकर पहले संवेदिता-सुग्राहिता परीक्षा करने के उपरान्त ही इस इन्जेक्शन को पूरी मात्रा में देना चाहिये।

एण्टी टाक्सिन का अभाव शरीर में न हो जाये तब तक उस व्रण को जहां टिटनेस जीवाणुओं ने अपना संक्रमण अड्डा बना रक्खा है, छूना भी नहीं चाहिये। इन्जेक्शन के १-२ घण्टे बाद घाव खोला जा सकता है और चूंकि यह जीवाणु आक्सीजन की कमी में अपनी वृद्धि करता है, घाव को खोलकर उसे खूब हवा देनी चाहिये। हाइड्रोजन पैराक्साइड घाव में भर देना चाहिये। बाद में घाव के साफ होने पर ४० हजार ई.यूनिट ए.टी.एस. घाव में भर भी सकते हैं।

आक्षेप एवं ऐंठन के दौरों के लिये क्लोरप्रोमेजीन (पेटेन्ट नाम लार्गेक्टिल)—ऐम्पुल मांसपेशी में प्रत्येक ६-८ घण्टे पर या कम्पोज या वेलियम-१० जो डायजीपाम के योग हैं—१ ऐम्पुल प्रत्येक ८ घण्टे पर मांसपेशी या शिरामार्ग द्वारा दे सकते हैं या रायल्स ट्यूब नाक द्वारा आमाशय तक पहुँचाकर डायजीपाम टेब. प्रत्येक ३ घण्टे पर २.५ मिग्रा/प्रति कि. ग्राम शारीरिक भारानुसार प्रतिदिन की खुराक के हिसाब से ट्यूब द्वारा दें। आजकल पारालडीहाइड का प्रचलन घटता जा रहा है। ल्यूमिनल सोडियम १० मिलि. की १-२ ऐम्पुल शिरामार्ग द्वारा ग्लूकोज में मिलाकर २-३ बार तक दें। साथ ही ५ या १० प्रतिशत डेक्स्ट्रोज या फ्रक्टोवेक्स बूंदपात विधि से शिरामार्ग द्वारा दें। इससे भी आक्षेप में कमी आती है।

अन्य संक्रमणों से रक्षा एवं बचाव के लिये बेन्जाथीन पेनसिलीन १२ लाख यूनिट।

पेटेंट नाम—पेनिड्यूर एल-१२, मांसपेशी द्वारा प्रयोग करना चाहिये।

घातक रोगों में कार्टीसोन यथा—डेक्सोना, डेकाड्रोन का इन्जेक्शन २ मिली. प्रत्येक ६-८ घण्टे पर मांसपेशी या शिरामार्ग द्वारा देना चाहिये। बच्चों को सभी दवायें वयानुसार देनी चाहिये।

रायल्स ट्यूब द्वारा द्रव भोजन जिससे २६०० कैलोरी ऊर्जा प्राप्त हो सके। प्रतिदिन अधिक प्रोटीनयुक्त द्रव भोजन दें, इससे जलाभाव भी नहीं होने पाता है।

श्यावता (cyanosis) या श्वासकृच्छता आने पर आक्सीजन का उपयोग करना चाहिये।

सांस लेने की स्थिति में श्वास प्रणाल-छेदन (Tracheostomy) भी कराना पड़ता है।

रोगी को अंधेरे कमरे में तथा पूर्ण शान्त वातावरण में रखें क्योंकि शोरगुल, दरवाजों के जोर से बन्द करने की आवाज से एवं प्रकाश से आक्षेप आने लगते हैं या इनमें वृद्धि हो जाती है।

फुफ्फुस सम्बन्धित तथा अन्य प्रकार के रुक-रुक कर होने वाले संक्रमणों में एन्टिबायोटिक्स दवाओं का सेवन करना चाहिये।

रोग निरोध (Prophylaxis)—चोट लगने के तुरन्त बाद १५०० ई. यूनिट ए.टी.एस. (शिशुओं को ७५० ई. यूनिट) संवेदिता परीक्षा के बाद अन्त:पेशी द्वारा दें। सक्रिय क्षमता (Active Immunity) के लिये टेटवैक (Tetvac), टिटनस टाक्साइड (Tetanus toxoid) १ मिलि. की मात्रा में ४-६ सप्ताह के अन्तर से अन्त:पेशी में ३ बार दें।

आयुर्वेदीय चिकित्सा

चूं कि आयुर्वेद के आर्ष ग्रन्थों ने इसे असाध्य माना है तथा उनमें वर्णित इसकी सफल चिकित्सा नहीं कही जा सकती है। नवीन खोजों (एलोपैथी) ने ही इसकी चिकित्सा में थोड़ी बहुत सहायता की है। आयुर्वेदीय उपचार द्वारा इस रोग की चिकित्सा करना एक प्रयोग या सहज उत्तरदायित्व मोल लेना ही समझा जायेगा, इसलिये वैद्य का कलेवर नहीं बढ़े, ऐसा जानकर मैंने आयुर्वेदीय औषधियों का प्रयोग लिखना छोड़ दिया। तथापि नवीन खोजों के परिणामों में सीरम की उपयोगिता में बहुत संदेह उत्पन्न हो गया है। विद्वानों का यह विश्वास हो गया है कि वे निरर्थक वस्तुयें हैं। उनकी सम्मति में टिटनस रोग की चिकित्सा में टिटनस एण्टी सीरम से कोई लाभ नहीं होता है। एण्टीसीरम के प्रयोग से जिन रोगियों को रोगमुक्त समझा जाता है वे वास्तव में रोग के उग्र न होने तथा शारीरिक सहज क्षमता अथवा सहन शक्ति द्वारा आरोग्य लाभ करते हैं। टिटनस के प्रतिरोध के लिये जो सीरम-टाक्साइड का इन्जेक्शन किया जाता है वे उसको उपयोगी मानते हैं।

कृत्रिम श्वसन एवं हृदय की मालिश → पृष्ठ २०५ का शेषांश

Massge in Childern)—बच्चों में हृदय की मालिश का सिद्धांत वही है जो युवकों में है पर बच्चों में दबाव कम तथा हल्के हाथों करना चाहिये। बच्चों के वक्ष पर अंगुलियों से दबाव डालते हैं यह बीचोंबीच में करते हैं। दबाव अत्यन्त हल्के हाथ से करना चाहिये। ८-१० वर्ष के बच्चों में केवल एक हथेली से दबाव डालते हैं। कृत्रिम श्वास के लिये युवा व्यक्तियों के समान ही मुख में मुख मिलाकर वायु प्रविष्ट करानी चाहिये। बीच-२ में बच्चे की नाड़ी भी देखते जाना चाहिए जिससे इस बात की पुष्टि होती रहे कि उपरोक्त विधि ठीक रूप से क्रियान्वित हो रही है।

यह ध्यान रखना चाहिये कि कृत्रिम श्वास देना भी जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है जितनी कि हृदय की बाह्य मालिश। ये एक दूसरे पर पूर्ण रूप से आश्रित हैं। तात्कालिक हृदय विराम (Sudden Cardiac Arrest) में हृदय की मालिश द्वारा पर्याप्त रक्त संचार होता है जिसका हृदय एवं मस्तिष्क के तन्तुओं के जीवित रखने के लिये आवश्यक है। प्रत्येक चिकित्सक थोड़े से अभ्यास द्वारा इन विधियों में क्रियाकुशल हो सकता है और दुर्घटना ग्रस्त रोगियों की प्राण रक्षा में इन विधियों का प्रयोग कर रोगी को लाभान्वित करना चाहिए। आक्सीजन गैस आदि की सुविधाएं बड़े-२ हास्पिटलों में ही सुलभ हैं अतः चिकित्सक कृतकर्मा हो तो रोगी के प्राणों को बचने से बचा सकता है।

अग्नि दग्ध—यह एक अत्यन्त ही संकटकालीन घातक अवस्था है जो प्रायः घर में रसोई कार्य व कारखाने की धधकती अग्नि तप्त धातुओं के टुकड़े व उबलते हुए जल, दूध, तैल, घी तथा अन्य द्रव एवं वाष्प से शरीर के जल जाने से उत्पन्न होती है अतः दाह एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें शरीर की उपरिस्थ व धमनी-२ गम्भीरस्थ धातुओं का ताप आतञ्चन (Heat coagulation) के कारण विनाश हो जाता है।

आयुर्वेद में दग्ध शब्द से-प्रमाद दग्ध शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रमाद दग्ध का अर्थ है प्रमाद करने से दग्ध होना अक्सर देखा जाता है। अग्निकर्म में जरा सा प्रमाद करने से, रसोई घर में जरासी लापरवाही करने से आग लग जाती है और स्टोव की तरह सी लौ जीवन की लौ को समाप्त कर देती है। इसके अतिरिक्त आकस्मिक किन्हीं कारण से जल जाने को इतरथा दग्ध कहते हैं। आयुर्वेद में प्रमाद दग्ध तथा इतरथा दग्ध के ४ भेद बतलाये हैं जो ४ अवस्थायें हैं—

१. प्लुष्ट, २. दुर्दग्ध, ३. सम्यक् दग्ध, ४. अतिदग्ध

(१) प्लुष्ट दग्ध—यह अत्यन्त साधारण अवस्था है जिससे त्वचा झुलस कर विवर्ण हो जाती है।

(२) दुर्दग्ध—फफोले, जलन, अनुपम सदृश वेदना होकर त्वचा का रक्त वर्ण होकर पाक हो जाता है।

(३) सम्यक् दग्ध—जैसा पका ताड़ फल के समान रक्त वर्ण, त्वचा मांस सिरा में अत्यधिक जलन होती है।

(४) अति दग्ध—मांस जल कर नीचे की ओर लटक जाता है, दग्ध अवयव विघटित हो जाता है तथा सिरा स्नायु सन्धि एवं अस्थियों का काफी विनाश हो जाता है तथा अत्यन्त ज्वर दाह प्यास मूर्छा आदि उपद्रव उत्पन्न होजाते हैं, व्रण बहुत दिनों के बाद भरता है तथा व्रण भर जाने पर भी त्वचा का वर्ण सामान्य नहीं होता।

सार्वदैहिक लक्षण—

> अग्निना कोपितं रक्तं भृशं जन्तोः प्रकुप्यति।
> ततस्तेनैव वेगेन पित्तमस्याप्युदीर्यते॥
> तुल्य वीर्ये उभे ह्येते रसतो द्रव्यतस्तथा।
> तेनास्य वेदनास्तीव्रा प्रकृत्या च विदह्यते॥
> स्फोटा शीघ्रं प्रजायन्ते ज्वरस्तृष्णा च बाधते।
>
> —सु. सू. अ. १२

अर्थात् अग्नि से विदग्ध हुआ रक्त कुपित होकर समान गुणधर्मी पित्त को भी प्रकुपित कर देता है जिससे जले हुए मनुष्य को तीव्र वेदना दाह फफोले तथा ज्वर तृष्णा उत्पन्न होती है।

आधुनिक दृष्टि से दग्ध—आजकल दग्ध को दो नाम से पुकारते हैं—रूक्षदग्ध, स्नेहदग्ध।

(१) रूक्ष दग्ध—शुष्क शुष्क ताप, धातु के जलते हुए टुकड़े व अग्निशिखा (Flame) के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने से व्यक्ति जलता है तो उसे रूक्ष दग्ध (Burn) कहते हैं।

(२) स्नेह दग्ध—जब स्निग्ध पदार्थों यथा उबलता हुआ दूध उष्ण जल, तैल, घी भाप आदि से मनुष्य जलता है तो स्नेह दग्ध (Scalds) कहते हैं। अल्ट्रा वायलट किरणें, विद्युत धारा, रेडियम तथा रासायनिक द्रवों के कारण भी दाह उत्पन्न हो सकता है जो स्नेह दग्ध के अन्तर्गत माना जाता है।

दग्ध का वर्गीकरण—दग्ध की गम्भीरता एवं उग्रता के अनुसार तथा चिकित्सा की सुविधा के लिए आधुनिक

वैज्ञानिकों ने दग्ध को ३ श्रेणियों में विभक्त किया है—

१. प्रथम श्रेणी दग्ध—इस अवस्था को केवल झुलसना कहा जा सकता है जिसका सादृश्य आयुर्वेद के प्लुष्ट दग्ध से है जिसमें ताप के कारण त्वचा, स्थानिक रक्त नलिकायें विस्फारित हो जाने से रक्त प्रवाह बढ़ कर त्वचा लाल हो जाती है किन्तु उसके आभ्यन्तरिक धातुओं पर किसी प्रकार की विकृति नहीं होने पाती तथा फफोले भी नहीं पड़ते पर वेदना प्रायः तीव्र होती है। इस का कारण प्रायः उबलता हुआ जल, वाष्प आदि हैं।

चिकित्सा—आचार्य सुश्रुत—दग्ध स्थान को "अग्नि प्रतपन" अर्थात आग से तपाने का निर्देश देते हैं जिससे रक्त का विलयन होकर तथा रक्त संचार की वृद्धि होने से दग्ध स्थान की उष्णता कम होती है। अतः उष्ण उपचार करना चाहिए। यदि उष्ण उपचार के विपरीत शीत उपचार प्लुष्ट दग्ध में किया गया तो पानी ठण्डा होने से इसके प्रयोग से रक्त संचार में कमी होगी और रोग ठीक होने के बजाय बढ़ जायेगा।

दग्ध स्थान पर—लाल मलहम व बरनोल लगाना हितावह है।

(२) द्वितीय श्रेणी दग्ध—इसका सादृश्य आयुर्वेद के 'दुर्दग्ध' से किया जा सकता है जिसमें दग्ध स्थान लालिमा तथा प्रदाह से युक्त हो जाता है तथा वहां फफोले और विस्फोट पड़ जाते हैं। इन फफोलों में पीले रंग का जल सदृश तरल व पूय संचित हो जाता है। त्वचा का आभ्यन्तरिक स्तर तथा कोशिकायें भी आक्रान्त हो जाती हैं जिससे तीव्र वेदना होती है।

चिकित्सा—सुश्रुताचार्य ने दुर्दग्ध की चिकित्सा 'शीतामुष्णां च दुर्दग्धे' अर्थात शीत एवं उष्ण दोनों प्रकार के उपचार का निर्देश दिया है अतः दुर्दग्ध में जो भाग गहरा जला हुआ है उस पर शीतोपचार और जो भाग प्लुष्ट सदृश साधारण जला भाग है उस पर उष्णोपचार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त दाह की न्यूनता में उष्णोपचार तथा दाह की अधिकता में शीतोपचार प्रशस्त माना है। जले हुए स्थान से वस्त्र हटा दें तथा रोगी को अवसाद होने से बचावें। अवसाद व स्तब्धता को दूर करने के लिये शिरामार्ग से 'लवण पानी' तथा आयुर्वेद का हृदयामृत सूचीवेध त्वचा व मांस में देवें। हल्के हाथ से व चिड़िया के विसंक्रमित पंख से जले स्थान की त्वचा पर से चिकनाहट धूलकण आदि साफ कर दें। इसके लिए कीटाणु रहित रुई, गाज से दग्ध-स्थान को सोखना चाहिये पर रगड़ना नहीं चाहिए। कोई भी मलहम लगाने से पहले सोडा-बाई कार्ब दो चम्मच को एक पाव गर्म पानी में घोलकर इस घोल से दग्ध स्थान को साफ करना चाहिए फिर त्वचा को रुई से सुखाकर 'लाल मलहम' लगानी चाहिए।

प्रवाल पंचामृत रस + त्रिफला गुग्गुल वटी—दोनों की १-१ गोली दिन में ३ बार देनी चाहिए। इससे वेदना की शीघ्र कमी होती है तथा पूय भवन होने से पूय का भी शोषण होता है। दाह अधिक हो तो यष्टिमधु चूर्ण १ माशा में शुद्ध गन्धक, प्रवाल, बंग भस्म २-२ रत्ती मिलाकर दिन में ३ बार पानी से दें तथा रोगी को पानी खूब पिलावें। इससे जलन में शीघ्र आशातीत लाभ होता है। सैकड़ों रोगियों पर इसे प्रयोग कर सफल पाया है।

(३) तृतीय श्रेणी दग्ध—इसका सादृश्य आयुर्वेद के "सम्यक् दग्ध" से किया जा सकता है जिसमें त्वचा पूरी तरह से जलकर विदीर्ण हो जाती है जिससे उसके अन्दर की नाड़ियां और रक्त वाहिनियों के सूक्ष्म अंश बाहर निकल आते हैं। फलस्वरूप तीव्र वेदना तथा प्रदाह होता है। यह तृतीय विषमावस्था कहलाती है।

चिकित्सा—आचार्य सुश्रुत तीव्रदाह की अवस्था में सम्यक् दग्ध की चिकित्सा पित्तज विद्रधि के समान बताते हैं। वंशलोचन, अश्वत्थ की छाल, रक्त चन्दन, गेरू, गुरुची इन्हें घी में मिलाकर लेप करने का निर्देश देते हैं।

सर्व प्रथम रोगी की स्तब्धता को दूर करना चाहिए। एतदर्थ रोगी को तत्काल स्वच्छ वस्त्र में लपेट कर लिटा देवें। शिरामार्ग द्वारा नार्मल सलाइन तथा आवश्यकतानुसार कोरामीन व आयुर्वेद का हृदयामृत इन्जेक्शन देने चाहिए। आवश्यकतानुसार मार्फीन सल्फेट या पैथिडीन हाइड्रोक्लोराइड का सूचीवेध मांस में देने से वेदना और स्तब्धता दोनों दूर होते हैं।

उपसर्ग से बचाव के लिए दग्ध व्रण को विसंक्रमित वस्त्र से हल्के हाथ से डिटोल के घोल से धोकर स्वच्छ कर एवं विकृत तन्तुओं को विसंक्रमित कैंची से काटकर हटा

देवें। पश्चात् राल मलहम व वर्नोल लगा देवें पर पट्टी न बांध देवें। उपसर्ग से बचने के लिये पेनिसिलीन व डाई-क्रिस्टिसिन का इन्जेक्शन मांसपेशी में ५ दिन तक प्रतिदिन देवें।

(५) चतुर्थश्रेणी दग्ध—इसका सादृश्य आयुर्वेद के अतिदग्ध से किया जा सकता है जिसमें दग्ध स्थान की त्वचा के पूर्ण नाश के साथ-२ उसके नीचे की धातुयें, रक्तवाहिनियां भी नष्ट होती हैं जिस दग्ध स्थान पर काले धुसर, चेतनाहीन धब्बे से पड़ जाते हैं जिसके चारों ओर शोथ लक्षण भी दिखाई देते हैं तथा कभी-२ पूय भी संचित हो जाता है। आक्रान्त अंङ्ग की आकृति बिगड़ जाती है तथा व्रण का रोहण बहुत धीरे-२ होता है एवं रोहण के बाद भी क्षत चिह्न शेष रह जाता है।

(५) पंचमश्रेणी दग्ध—इसे अतिदग्ध की II Stage समझनी चाहिए। इसमें चर्म के नीचे के पेशीसूत्र भी जल कर नष्ट होते हैं।

(६) षष्टम श्रेणी दग्ध—इसे अतिदग्ध की III Stage समझनी चाहिए। इसमें दग्ध स्थान की सम्पूर्ण रचना यहां तक कि अस्थि भी जलकर नष्ट होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आयुर्वेद में दग्ध की सभी अवस्थाओं का वर्णन तथा सिद्धान्तानुसार चिकित्सा है।

चिकित्सा—

आचार्य सुश्रुत ने "क्रियाञ्च निखिलां कुर्यात् भिषग् पित्त विसर्पवत्" कहकर स्पष्ट किया है कि अतिदग्ध में सम्पूर्ण क्रिया पित्तविद्रधि के समान करनी चाहिये। विकृत मांस को काट कर निकाल देना चाहिए। चित्रकादि घृत लगावें।

चित्रकादि घृत—मोम, महुआ, लोध, राल, मजीठ रक्त चन्दन मूर्वा से घृत पाक कर दग्ध व्रण पर लगाने से जलन मिटकर नए मांसांकुर उत्पन्न होने लग जाते हैं।

अतिदग्ध की अवस्था में रोगी को अस्पताल में भरती कर लेना चाहिए तथा द्वितीय-तृतीय श्रेणी में बताई हुई समुचित चिकित्सा विधि, स्वच्छता तथा उपसर्ग को रोकना एवं व्रण को निस्क्रमित कर पट्टी बांधना आदि सभी उपचारों का प्रयोग करना चाहिए।

दाह चिकित्सा के मूल सिद्धांत—

समस्त चिकित्सकीय संकटकालीन अवस्थाओं में अत्यधिक दग्धावस्था सर्वाधिक जटिल समस्या है जिसमें काफी चिकित्सकीय जानकारी एवं सावधानी की आवश्यकता है, अन्यथा रोगी के प्राण बचाना दुष्कर होता है। निम्न बातों पर ध्यान दें—

१. यदि रोगी के वस्त्र जल रहे हो तो उसे एक कम्बल में लपेट कर कुछ समय तक फर्श पर लुढ़काने से आग की लपटें बुझती हैं। फिर शैय्या पर लिटाकर गरम मधुर पेय देवें।

२. जले हुए स्थान को स्वच्छ करना तथा फफोलों को नष्ट करना आवश्यक है। दग्ध स्थान को हल्के हाथ से साफ करें, त्वचा की चिकनाहट तथा गर्द साफ करें पर त्वचा को रगड़ें नहीं बल्कि जीवाणुरहित रूई व गाज से सोख लेवें।

३. आपत्काल में तात्कालिक प्रयोग के लिए किसी अक्षोभक वाष्पशील ड्रेसिंग (Bland Evaporating dressing) का प्रयोग उत्तम रहता है एतदर्थ खाने का सोडा (Sodo bi carb) को पानी से पेस्ट या लेह जैसा पतला बनाकर दग्ध स्थान पर लेप करदें पट्टी बांध दें जिससे अधिक द्रव हानि न हो।

४. व्यापक दाह पर बोरिक एसिड का मलहम न लगावें कारण घाव द्वारा बोरिक एसिड के शोषण हो जाने से घातक परिणाम हो सकते हैं।

५. टेनिक एसिड का भी कोई लेप दग्ध स्थान पर न लगावें।

६. दग्ध स्थान पर घी या मक्खन नहीं लगाना चाहिए इसको बाद में त्वचा से छुड़ाने में कठिनाई होती है और संक्रमण होने की सम्भावना रहती है।

७. खुले घाव पर रुई नहीं रखनी चाहिए कारण रुई घाव में चिपक जाती है फिर इसको छुड़ाने में कष्ट होता है।

८. यदि वस्त्र का कोई भाग जल जाने के कारण दग्ध स्थान पर चिपक जाय तब उसको छुड़ाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए बल्कि जीवाणुनाशक घोल से धो देना चाहिए।

९. दग्ध स्थल के समीप रोगी अंगूठी, चूड़ी, कंगन, माला आदि पहने हो तो पहले उन्हें हटा देना चाहिये अन्यथा बाद में उसे निकालने में असुविधा होगी।

१०. फफोलों को फोड़ने से उपसर्ग लगने की आशंका बनी रहती है पर यदि सावधानीपूर्वक निसंक्रमित कैंची से फफोलों को काट दिया जाय तो शीघ्र ठीक होने में अत्यधिक सहायता मिलती है। अतः फफोलों को काटकर जीवाणु नाशक घोल में साफकर जेंशियनवायलेट मलहम व नीला सल्फ पावडर छिड़क पट्टी बांध देनी चाहिए। नीला सल्फ पावडर शीघ्र ही जले हुए स्थान के जलीयांश को शोषित कर लेता है तथा व्रण को शीघ्र भर देता है। ऊपर से वेसलीन गाज मलहम लगाकर पट्टी कर सकते हैं।

११. रोगी के अवसाद तथा स्तब्धता को दूर करें अधिकांश रोगी जल जाने पर इसी कारण मर जाते हैं कि स्तब्धता के कारण ही उनकी मृत्यु हो जाती है अतः तात्कालिक चिकित्सा के साथ-साथ स्तब्धता की भी चिकित्सा करें। रोगी को आरामदायक शय्या में लेटा दिखावे तथा गर्म रखें। कम्बल के ऊपर मोटे सूतयुक्त कपड़ा उढ़ावे जिससे कम्बल से रगड़ न लगे। अत्यधिक दग्ध में चतुर्थ श्रेणी के अग्नि दग्ध रोगियों की चिकित्सा अस्पताल के अन्तरङ्ग विभाग में प्रवेश देकर ही करनी चाहिये।

दाह की तात्कालिक चिकित्सा-निम्नरूप से की जाती है—

(१) स्तब्धता निवारण—अग्नि दग्ध का यह प्रमुख उपद्रव है और अधिकांश रोगी इसी स्तब्धता के कारण मरते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में स्तब्धता तंत्रिकाजन्य होती है, किन्तु रक्तस्राव रक्त में से होने वाली द्रव्य हानि के फलस्वरूप स्तब्धता अल्प रक्तजन्य (Oligemic) हो जाती है इस अवस्था में रोगी की नाड़ी मंद होती तथा तीव्र प्यास लगती है।

रोगी को साफ चादर में लपेट कर प्राथमिक उपचार के उपरांत स्तब्धता को दूर करने के लिए मार्फिया या पेथिडीन के मांसपेशी में सूचीवेध करने पर स्तब्धता एवं वेदना का शमन होता है। प्यास बुझाने के लिए सिरामार्ग से नार्मल सलाइन अथवा प्लाज्मा का सूचीवेध आवश्यकतानुसार करें। स्तब्धता दूर करने के लिए आयुर्वेद का हृदयामृत इन्जेक्शन तथा [illegible] भी प्रशस्त है।

(२) द्रव चिकित्सा—दग्ध की अवस्था में द्रव नाश के कारण अत्यधिक प्यास, रक्तचाप का गिरना, मूत्राघात आदि उपद्रव होते हैं जिसके लिए प्रथम २४ घण्टे में रोगी को नार्मल सलाइन और प्लाज्मा को समान मात्रा में मिलाकर दिया जाता है। मात्रा का निर्धारण रोगी के रोगानुसार किया जाता है।

(३) रुधिराधान—१५% से अधिक जलने पर रोगी को रुधिराधान की आवश्यकता पड़ती है। रक्तगुप शीघ्र जांचकर रुधिराधान करना चाहिए।

(४) उपसर्ग प्रतिकार—प्रथम २४ घण्टे में ही A.T.S. १५ सौ यूनिट की मात्रा में दे देना चाहिए। आयुर्वेद का महातालकेश्वर रस भी उपसर्ग रोकने में सक्षम है तथा निम्न प्रयोग उपसर्ग होने पर भी अनेक रोगियों पर सफल पाया गया है तथा अनुभूत है।

महातालकेश्वर १ गोली, विषतुन्दी बटी १ गोली, मदनी विलास रस १ गोली, गन्धक ४ रत्ती, यष्टिमधु चूर्ण ८ रत्ती। १ मात्रा—दिन में ३ बार दशमूलक्वाथ व उष्ण जल से दें इस प्रयोग से उपसर्गों का शमन होता है। ३ से ५ दिन का प्रयोग पर्याप्त रहता है। इससे व्रण रोपण भी शीघ्र होता है। अतः व्रण रोपण तक भी इस प्रयोग को चलाया जा सकता है।

(५) निर्दग्ध स्थान पर त्वचा निरोपण (Skin grafting)—कभी दाहों को यथा शीघ्र जब तक कच्चा (Raw) और कणिकाच्छादित (Granulating) हो तभी उस पर त्वचा निरोपण (Skin Grafting) कर देना चाहिए। कुरूपता दूर करने के लिये योग्य सर्जन इस विधि का आजकल अधिकतम प्रयोग कर रहे हैं।

(६) दग्ध की नवीन तथा उत्तम चिकित्सा आजकल बन्धन रहित विधि मानी जाती है जिसमें संक्रमण का ध्यान रखते हुए व्रण स्थान को स्वच्छ कर सल्फोनिमाईड व नीला सल्फ पावडर छिड़क कर खुला छोड़ देते हैं। इससे व्रण शीघ्र भरता है। आचार्य सुश्रुत ने इस विधि का उल्लेख आज से २ हजार वर्ष पूर्व ही कर दिया था—

'मधुरैश्च क्षारानिल दग्धाः पाकात् प्रकुपिता' अतः दग्ध पर व्रण बन्धन कर देना लगाकर खुला रखने से व्रण का

शोषण शीघ्र होता है। व्रण-बन्धन आवश्यक हो तो हल्का तथा ढीला करना चाहिए तथा व्रण वस्तु के संकोच के कारण आकार-विकृत न हो जाय इस का ध्यान रखना चाहिये। अन्य चिकित्सा के अधिक प्रयोग इस चिकित्सा में प्रकाशित है जिनका प्रयोग करना चाहिए।

दाह की साध्यता असाध्यता—

(१) बालु-बच्चों में दाह की साधारण अवस्था भी गंभीर होती है क्योंकि उनमें रासायनिक सन्तुलन शीघ्र बिगड़ जाता है और रोग असाध्य होकर मारक बनता है।

(२) स्त्री—स्त्रियों में विशेष कर भावुक स्त्रियों में रोग की गम्भीरता अधिक होती है। स्त्रियां आत्महत्या के उद्देश्य से भी स्वतः स्वयं आदि से वस्त्रों में आग लगा लेती हैं तथा सन्त्रास (Shock) होकर मृत्यु हो जाती है।

(३) स्थान—शाखाओं की अपेक्षा अन्य भाग और स्वचा भी अधिक चेतनायें के एवं जिनके के वस्त्र भयङ्कर होते हैं। यदि शरीर पृष्ठ का तृतीयांश से भी अधिक भाग जल गया हो तो रोगी की दशा गम्भीर समझी जाती है।

(४) दग्धक्षेत्र-दग्ध का साध्यता-असाध्यता में सर्वाधिक महत्त्व है शरीर का जितना अधिक भाग जलता है उतना ही अधिक घातक माना जाता है तथा स्थान के अनुसार सम्पूर्ण शरीर को निम्न भागों में विभाजित किया है।

सिर—	९ प्रतिशत
धड़ (सामने से)	१८ प्रतिशत
धड़ (पीछे से)	२० प्रतिशत
दोनों हाथ —	१८ प्रतिशत
दोनों पैर —	३८ प्रतिशत
	१०० प्रतिशत

उपर्युक्त तालिका के अनुसार जलने के भाग की प्रतिशत देख लेते हैं। यदि दग्ध १०-२० प्रतिशत है तो विशेष चिन्ता की बात नहीं होती पर २०-२५ प्रतिशत स्तर के दाहग्रस्त होने पर आधुनिकतम चिकित्सा साधन भी प्रायः सफल नहीं होते और ७५ प्रतिशत स्तर के दग्ध होने पर तो मृत्यु अवश्यम्भावी होती है।

उपद्रव—उपद्रव होने पर भी रोगी की स्थिति गम्भीर होती जाती है। प्रायः निम्न उपद्रव हो सकते हैं—रक्तक्षय, संक्रमण, तीव्र वृक्क विकार, हृत्स्तम्भाघात, श्वासप्रणालीशोथ निमोनिया आदि।

दाह के द्वारा मृत्यु के कारण—मृत्यु निम्नलिखित अवस्थाओं में होती है—रक्तक्षयता, जलाल्पता, वेदना, धनुष टंकार, मस्तिष्कावरण शोथ, पूयमयता निमोनिया, सङ्कता बाल्यावस्था में शरीर की त्वचा के १०% और युवावस्था में २०% से अधिक जल जाने पर मृत्यु की सम्भावना रहती है, वृद्धों की अपेक्षा बच्चों की अधिक मृत्यु होती है। युवावस्था में २०% जल जाने पर रोग गम्भीर माना गया है तो मृत्यु का कारण प्रायः श्वासावरोध होता है। धुआं तथा ताप की अधिकता के कारण दम घुट जाने से भी मृत्यु हो जाती है। बाल्यावस्था में रक्तक्षयता तथा अन्तिम अवस्था में पूयोत्पादक जीवाणुओं द्वारा उपसर्ग हो जाने के कारण एवं कभी कभी आन्तरिक अङ्गों की विकृति के कारण भी मृत्यु होती है।

रासायनिक दाह—

रासायनिक दाह अम्लों अथवा क्षारों के कारण हो सकता है। यह प्रायः शरीर के किसी भाग पर तेजाब तथा तेज क्षारीय पदार्थों के पड़ जाने के परिणामस्वरूप होता है।

(१) कास्टिक सोडा के कारण हुआ हो तो दग्ध स्थान को ५ प्रतिशत अमोनिया क्लोराइड के घोल से धोकर पेनसिलिन मलहम लगावें।

(२) कार्बोलिक एसिड के कारण हुआ हो तो दग्ध स्थान को एल्कोहल मलकर धो देते हैं। यदि आंख में किसी प्रकार से कार्बोलिक एसिड पड़ जाय तो नमक के हल्के घोल से आंख धोने के उपरान्त कोई भी आंख का मलहम या लोशन आंख में डालना चाहिये।

(३) नाइट्रिक अम्ल के दाहों में सिंचन के लिये यूसोल विलियन का प्रयोग किया जाता है।

(४) चूने के कारण दाह हुआ हो तो क्षत स्थल को पानी से अथवा एसेटिक अम्ल के मन्द घोल से धोकर पेनसिलिन मलहम लगावें।

(५) तेजाब से जले भाग में सोडाबाई कार्ब के २०

अतिशय घोल से तथा क्षारीय पदार्थ से जले भाग को सिरके के मन्द घोल से धोना चाहिये।

बिजली से दाह—

बिजली से करेन्ट मारने अथवा शरीर पर बिजली गिरने के परिणामस्वरूप होता है। बिजली से दाह प्रायः फैक्टरी में काम करने वाले लोगों में हुआ करता है। यह दाह मामूली से लेकर भयंकरतम हो सकता है। इसलिये Electric shock की सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये। श्वासगत उपद्रव तथा हृदयावसाद हो तो लक्षणानुसार चिकित्सा करे। 'बिजली का झटका' शीर्षक में लिखी हुई चिकित्सा विधि भी काम में लेनी चाहिये तथा दग्ध स्थान की दग्ध चिकित्सावत् ही चिकित्सा करनी चाहिये।

रेडियम तथा एक्सरेजन्य दाह—

कैंसर रोगों की चिकित्सा के लिये प्रयुक्त विकिरण चिकित्सा द्वारा विकिरणित त्वचा में रक्तिमा व वर्णकता हो जाती है तथा उस स्थान के रोम विलुप्त होने लगते हैं। विकिरण की अधिक मात्रा होने से तो स्थानीय त्वचा लाल होकर व्रण हो जाता है तथा इस प्रकार के व्रण का रोहण अति मन्द होता है। यह व्रण प्रायः वेदनायुक्त होता है। विकिरण व्रणों की चिकित्सा कठिन होती है अतः विकिरणित त्वचा को विकिरण से भली प्रकार सुरक्षित रखना चाहिये। एक्स-रे का बार-बार प्रयोग होने से भी वहां की त्वचा दग्ध होने की सम्भावना बनी रहती है।

विकिरणजन्य व्रणों के विरोहण में अल्ट्रावायलेट किरण चिकित्सा भी सहायक सिद्ध हो सकती है। बाह्य उपचार के लिये जेन्शन पेनसिलिन मलहम का प्रयोग कराया जाता है।

अग्निदग्ध पर स्वानुभूत कल्प सहायक—

१. राल मलहम—नारियल का तैल १ लिटर, राल २५० ग्राम, तुत्थ ३० ग्राम, कपूर १० ग्राम। राल और तुत्थ का चूर्ण कर कपूर मिलाकर, तैल को चूल्हे पर चढ़ाकर गर्म करें तथा तैल में राल आदि का चूर्ण डाल कर एक जीव होने दें, फिर कपड़े से छानकर एक टब में डालकर नल के पास बैठ जावें और थोड़ा-थोड़ा पानी डालकर शतधौत घृत की तरह धोवे और शीतल पानी डालकर मसले रहें। इस प्रकार कई बार तब तक पानी डालें और मथें, जब तक कि मलहम मक्खन की तरह श्वेत और फूल सी हल्की न हो जाय। मलहम तैयार हो जाने पर चीनी मिट्टी के पात्र में डालकर ऊपर से थोड़ा पानी डालकर रख दें। मलहम में पानी डालकर न रखने से खुश्क हो जाती है।

उपयोग—अग्निदग्ध पर यह बहु प्रचलित सर्वोत्तम योग है जो दाह को तो कुछ क्षणों में ही शान्त कर देता है *और व्रण रोपण भी शीघ्रता से करता है।* यदि दग्ध होते ही इसे लगा दिया जाये और अधिक दग्ध न हुआ हो तो इसके लगा देने से फफोले नहीं उठते हैं तथा वेदना और दाह का तत्काल शमन होकर शान्त पड़ जाती है। आधुनिक एलोपैथिक दाहनाशक मलहमों में उत्तम है तथा अग्निदग्ध के बाद जो दग्ध स्थान पर सफेद दाग पड़ जाते हैं वे भी इससे नहीं रहते।

विशेष—साधारण व्रणों व फोड़े-फुन्सी आदि के लिये सामान्य प्रयोगार्थ यदि मलहम बनानी हो तो नारियल तैल के स्थान पर सरसों तैल या तिल तैल भी प्रयोग में लेना चाहिये। हम इसे सरसों तैल में श्वेत मलहम के नाम से भी बनाते हैं तथा यह भी अग्निदग्ध तथा व्रण, गुप्त स्थानों की खुजली व फोड़े-फुन्सी पर बहुप्रयुक्त है।

२. अग्निदग्ध पर लोशन—नारियल तैल १०० मि. लि., चूने का पानी १०० मिलि, भीमसैनी कपूर (अभाव में साधारण कपूर) तथा पिपरमेंट ५-५ ग्राम सबको शीशी में डालकर खूब हिलावें। दूध की तरह का गाढ़ा सफेद लोशन तैयार हो जायेगा।

गुण—दग्ध स्थान पर लगाने से तुरन्त जलन को शान्त करता है। यदि अधिक जल गया हो तो दग्ध स्थान पर पतली रुई की परत व गाज लगाकर १-१ बूंद डालकर रुई को तर कीजिये। १-१ बूंद इसकी तुरन्त शान्ति प्रदान करेगी व गाज लोशन से भिगोकर दग्ध स्थान पर रखिये। कुछ ही क्षणों में दाह शान्त

—शेषांश पृष्ठ २२१ पर देखें।
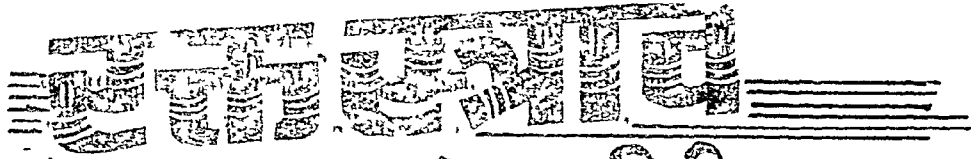
कारण, लक्षण एवं चिकित्सा

डा० अशोक मिश्र

प्राचीनाचार्यों ने रक्तस्राव का वर्णन रक्तपित्त शीर्षक से किया है यथा —

"ऊर्ध्वं नासाक्षि कर्णास्यैर्मेढ्योनिगुदैरधः ।
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते ॥
केचिच्च यकृतः प्लीह्नः प्रवदन्त्यसृजो गतिम् ।

उपरोक्त श्लोक में आचार्यों ने रक्त स्राव के स्थानों का अति सुन्दर वर्णन किया है तथा विचार करने पर लगता है कि उन्होंने एक भी स्थान बाकी नहीं छोड़ा है। कुपित पित्त के कारण नाक, आंख, कान, मुख इन ऊर्ध्व भाग से तथा लिंग, योनि, गुदा इन अधो भाग से रक्तस्राव होता है। सम्पूर्ण शरीर के रोमकूपों से भी रक्तस्राव होता है ऐसा कहते हैं।

निरुक्ति— आचार्य सुश्रुत का कहना है कि "रक्तञ्च रक्तपित्तमिति" इस रोग में रक्त तथा पित्त दोनों बहते हैं इस कारण यह रोग रक्तपित्त कहलाता है। आचार्य आत्रेय कहते हैं कि पित्त लाल रङ्ग का होकर बहता है उसे रक्तपित्त कहते हैं। उपरोक्त दोनों में कोई भेद नहीं है क्योंकि इसमें रक्त का तथा पित्त का संयोग होता है पित्त से रक्त दूषित होता है तथा रक्त एवं पित्त की गंध तथा वर्ण समान ही है इन दोनों कारणों से रंजित हुआ जो पित्त है वह रक्तपित्त कहलाता है।

कारण—

सूर्य के ताप का सेवन, व्यायाम, अधिक श्रम, शोक, क्रोध, भय, शराब, अधिक मार्ग गमन, अधिक स्त्री समागम, खट्टे फल, कांजी, तैल, मछली, बकरे तथा भेड़ का मांस, तीक्ष्ण, लवण, क्षारयुक्त, नमकीन, खट्टे या चरपरे पदार्थों का अत्यधिक सेवन, स्त्रियों का मासिकधर्म रुकना, इन कारणों से पित्त प्रकुपित होता है, फिर रक्त में मिश्रित होकर रक्त को दूषित करता है, तत्पश्चात पित्त मिश्रित रक्त ऊर्ध्वमार्ग या अधःमार्ग अथवा दोनों मार्ग से निकलता है इसे रक्तपित्त कहते हैं।

पूर्व रूप—

सदनं शीतकामित्वं कण्ठ धूमायनं वमिः ।
लोहगन्धिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन् भविष्यति ॥

अङ्गों का टूटना, शीतल वायु, शीतल जल और शीतल गुण वाले भोजन की इच्छा, कण्ठ में से धुआं सा निकलने का आभास, वमन तथा निश्वास में रक्त की गंध आदि लक्षण प्रकट होते हैं। आचार्य आत्रेय भोजन की इच्छा न होना, भोजनोपरान्त कण्ठ में दाह, भोजन के बाद पक्वावस्था में खट्टी शुक्त की तरह गन्ध एवं रस वाला डकार; स्वरभेद, अङ्गों में शिथिलता, कफ, मल, मूत्र, स्वेद, लार, नासामल, मुख एवं कान का मल, नेत्र मल, पिड़काओं का लाल, हरा और पीला होना आदि भी पूर्वरूप माने हैं। इनके अलावा वाग्भटाचार्य ने कास, श्वास, भ्रम और क्लम पूर्वरूप में अधिक लक्षण माने हैं।

भेद—यह रक्तपित्त दो प्रकार का माना है, जो रक्त ऊपर के मार्ग से गिरता है उसे ऊर्ध्व रक्तपित्त तथा जो नीचे के स्थानों से गिरता है उसे अधो रक्तपित्त कहते हैं।

उपद्रव—

दौर्बल्यारोचकाविपाक श्वास कास ज्वातिसार शोफ शोष पाण्डु रोगाः स्वरभेदश्च ॥

बल की कमी, भोजन में अरुचि, खाये हुए अन्न का ठीक न पचना, श्वास, कास, ज्वर अतिसार, शोथ, शोष, पांडुरोग एवं स्वरभेद रक्तपित्त के उपद्रव हैं। आचार्य चरक ने अपने यहां उन्हीं उपद्रवों को लिखा है जो रक्तपित्त होने पर अवश्य होते हैं। कुछ उपद्रव ऐसे हैं जो

कभी किसी के शरीर में होते हैं तथा कभी नहीं भी होते यथा—

"दौर्बल्य श्वास कास ज्वर वमन मदास्तन्द्रिता दाह-मूर्छा, भुक्ते चान्ने, विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्य तुल्या च पीड़ा। तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च दवनं पूति-निष्ठीवनञ्च, द्वेषो भक्तेऽविपाको विरतिरति रते रक्तपित्तोपसर्गाः॥"

दुर्बलता, श्वास, कास, ज्वर, वमन, नशा सा मालूम पड़ना, तन्द्रा, दाह, मूर्च्छा, भोजन के बाद अन्न ठीक न पचना, अधीरता, हृदय में घट बढ़ बार-बार पाप पीड़ा होना, प्यास, पतले मल, सिर में सन्ताप, दुर्गन्धित थूक, भोजन से विक्षेप, अपचन, मैथुन से विरक्त रहना, ये सब रक्तपित्त के उपद्रव हैं।

साध्यासाध्यता—ऊर्ध्वग रक्तपित्त साध्य तथा उभय-मार्गी असाध्य होता है। रोग पूर्वी से यदि रक्त करने लगे तो वह भी असाध्य होता है। जो रोगी खून की वमन लगातार करे तथा जिसकी आँखें लाल हो जायें वह रोगी असाध्य होता है।

आधुनिक मतानुसार

आधुनिक मतानुसार रक्त ७ प्रकार का माना है यथा—

(१) रक्तवमन (Haemotemesis)
(२) नासा रक्तस्राव (Epistaxia)
(३) शीताद (Scurvy)
(४) त्रिदोषज रक्तपित्त (Purpura)
   (क) सौम्य (Purpura Simplex)
   (ख) गम्भीर (Purpura Haemorrhagica)
   (ग) हेनोक का (Henoch's Purpura)
   (घ) आम वातज (Purpura Rheumatica)
(५) वंशागत रक्तस्रावीय स्वभाव
(६) वंशागत रक्तस्रावीय कोशिका प्रसारण
(७) वंशागत रक्तरोधक शक्ति की न्यूनता

इसके अलावा असृग्दर को भी हमने रक्तस्राव के अन्तर्गत माना है। इस लेख में हम रक्त वमन, नासारक्त-स्राव, असृग्दर आदि कुछ रक्तस्रावों का ही वर्णन करेंगे।

१. रक्त वमन—

रक्त की वमन होने पर आहार के साथ जो रक्त गिरता है उसमें आमाशय रस मिश्रित हो जाने से वह काफी सदृश मैले रङ्ग का होता है। यदि आहार के बाद रक्त गिरता है अथवा उसकी मात्रा अधिक हो तो रक्त लाल रंग का होता है। कभी-कभी रक्त कण्ठ, दन्तवेष्ट, जिह्वा फुफ्फुस या आमाशय नलिका में से भी आता है अतः रक्त कहाँ से आता है इस का निर्णय करना आवश्यक होता है।

कारण—

(१) आमाशय के स्थानिक रोग
   (क) आमाशय व्रण
   (ख) अर्बुद
   (ग) चिरकारी आमाशय प्रदाह (क्षतज)
   (घ) आशुकारी आमाशय प्रदाह (विषज)
(२) प्रतिहारिणी सिरा में प्रतिरोधी रक्त संवहनी
   (क) यकृद्दाल्युदर
   (ख) रक्त संग्रहजन्य हृदय पतन
   (ग) अर्बुद का दबाव या प्रतिहारिणी सिरा स्कन्दोत्पत्ति

(३) रक्त निगलना—नासिका, मुखिका, अन्न नलिका और फुफ्फुस में।

(४) रक्त रोग—प्लीहोदर, आशुकारी श्वेताणु वृद्धि सह श्लैष्मिक पांडु की रक्तस्रावीय स्थिति, वंशानुग रक्तरोधक शक्ति का ह्रास।

(५) अभिघात

(६) मारक विष और पचन संस्थान की क्षोभना वस्था—प्रबल अम्ल या क्षार, मद्य, कांच आदि। एस्पिरीन क्वीनीन निगलने से उत्पन्न आमाशयिक क्षोभ में।

(७) सेन्द्रिय विष—विषम ज्वर, शीतला, घातक ज्वर। नानाविध प्रकोप पीत शोथ, सैप्टीसीमिया में

(८) धमनी के अर्बुद का फटना।

(९) मासिक रजःस्राव के बदले रक्त वमन आदि कारण होते हैं।

सामान्यतः आमाशयिक व्रण या यकृद्दाल्युदर के कारण अधिक रक्त स्राव तथा घातक रक्त स्राव प्लीहोदर तथा धमन्यर्बुद के विदारण के कारण होता है।

पूर्वरूप—

यदि रक्तस्राव अधिक परिमाण में होता हो तो वमन

होने के पहिले आमाशय प्रदेश में उष्णता, भारीपन, हृल्लास तथा बेचैनी पैदा होती है। तथा अन्ननलिका से तरल द्रव ऊपर बह रहा हो ऐसा आभास होता है।

लक्षण—

चेहरा निस्तेज, चक्कर, मूर्च्छा, कान में आवाज आना, नेत्रों में से आग की चिनगारियां निकलती हों ऐसा आभास। नाड़ी क्षुद्र और द्रुत तथा शरीर शीतल हो जाना तथा रक्त में यूरिया भी उपस्थित होते हैं।

क्षत या-कैन्सर के कारण आमाशय में रक्त आता हो तो वमन होने से पूर्व हृल्लास तथा चक्कर आते रहते हैं फिर रक्त वमन होती है। उसके बाद कैन्सर के कारण कुछ मलरूप दूषित काला रक्त आता है।

रक्त वमन में रक्त गहरा रक्त झाग रहित और अम्ल होता है।

रोग विनिर्णय—

रक्त का रंग कैसा है ? इसका निर्णय कठिन होता है। रासायनिक परीक्षा तथा अणुवीक्षण परीक्षा से निर्णय होता है।

आमाशय तथा फुफ्फुस के रक्तस्राव का भेद

आमाशयगत रक्त स्राव	फुफ्फुसगत रक्तस्राव
१. आमाशय एवं उदर रोग का इतिहास एवं चिह्न	१. फुफ्फुस एवं हृदय रोग के।
२. रक्त वमन	२. कफ मिश्रित रक्त
३. झाग रहित, अम्ल, सामान्यतः जमा हुआ आहार की उपस्थिति रक्त में मल।	३. झाग बुदबुद तथा रंजित कफ।

२. नासा रक्तस्राव—

इसके कारण दो प्रकार के होते हैं—

१. स्थानिक कारण—आघात, रासायनिक, नासिका में बाह्य वस्तु का प्रवेश नासा कहर में अर्बुद आदि। नासा की श्लैष्मिक कला का सूखकर फट जाना।

२. सार्वदैहिक कारण—(क) किशोरावस्था (कोमल) बालकों की युवावस्था के समय।

(ख) आशुकारी विषम ज्वर, आन्त्रिक, रक्त ज्वर आदि का आक्रमण।

(ग) रक्त दबावगत स्थिति—धमनी काठिन्य, वृक्क प्रदाह, अस्वाभाविक दबाव की वृद्धि, यकृद्दाल्युदर, शिरा में रक्त संग्रह, फुफ्फुसान्तराल में अर्बुद।

(घ) रक्त विकार—रक्त की विकृति और सब प्रकार के गम्भीर पाण्डु में। पहाड़ों पर जाने से।

(ङ) आयु से सम्बन्ध—बाल्यावस्था में आघात, नाक पकना, बाहरी वस्तु का प्रवेश, आशुकारी ज्वर आदि। युवावस्था में स्वाभाविक, वृद्धावस्था में रक्त दबाव वृद्धि तथा अर्बुद से।

जब शरीर के किसी भी भाग में रक्त का परिमाण बढ़ जाता है तब उसमें से कुछ रक्तांश स्रवित होकर बाहर निकलता है। इस नियम से सार्वदैहिक या स्थानिक कारण से नासिका में रक्तस्राव होता है।

इस रक्तस्राव को बन्द करने से पूर्व यह देखना चाहिये कि किस कारण तथा कहां से रक्तस्राव हो रहा है।

असृग्दर (रक्त प्रदर)—

मासिक काल में उसके अतिरिक्त समय में योनि से अत्यधिक मात्रा में अधिक काल तक रक्तस्राव का होना असृग्दर कहलाता है।

कारण—

याऽत्यर्थं सेवते नारी लवणाम्लगुरूणि च।
कटून्यथ विदाहीनि स्निग्धानि पिशितानि च॥
ग्राम्यौदकानि मेद्यानि कृशरां पायसं दधि।
शुक्तमस्तु सुरादीनि भजन्त्याः कुपितोऽनिलः॥
रक्तं प्रमाणमुत्क्रम्य गर्भाशयगताः सिराः।
रजोवहाः समाश्रित्य रक्तमादाय तद्रजः॥
तस्माद्विवर्धयत्याशु रसभावाद्विमानता।
तस्मादसृग्दरं प्राहुस्तन्त्रविशारदाः॥

जो स्त्री लवण अम्ल गुरु कटु विदाही स्निग्ध द्रव्य तथा ग्राम्य प्राणियों के मांस कृशरा, खीर दही, शिरका शुक्त, सुरा का तथा आदि का अत्यधिक सेवन करती है उसका कुपित हुआ वायु रक्त को अपने प्रमाण से बढ़ा देता है और गर्भाशय में स्थित रजोवहा सिराओं का आश्रय करके उस बढ़े हुए रक्त को लेकर रज को शीघ्र बढ़ा देता है अतः अपने मान से उसका मान अधिक हो जाता है। इसे असृग्दर कहते हैं।

सभी प्रदरों में अंगमर्द तथा वेदना सामान्य रूप से पाई जाती है। यह प्रदर चार प्रकार का होता है—

१. वातज २. पित्तज ३. कफज तथा ४. सन्निपातज

आधुनिक मत से इनके निम्न कारण हो सकते हैं—

१. अन्तःस्रावी कारण—तारुण्य प्रारम्भ होने के समय अन्तःस्रावी हार्मोन के कारण होता है। यह स्त्री की यौवनावस्था में बिना कारण के मिल सकता है। रजो निवृति के समय भी यह सम्भव है।

२. प्रजननांगीय कारण—गर्भाशयान्तरावरण प्रदाह, गर्भाशय का पश्चवर्तन गर्भाशय का संकोचवर्तन, बीज वाहिनी बीज ग्रन्थि प्रदाह। गर्भाशय का आन्तरिक प्रत्यावर्तन तथा गर्भाशय का चिरकारी प्रदाह।

३. औपसर्गिक रोग—आन्त्रिक ज्वर, फ्लू, विषम ज्वर आदि में रक्त प्रदर होता है। अन्य रोगों में हृदय-कपाट के रोग, यकृद्दाल्युदर में उच्च रक्तचाप आदि में भी होता है।

४. नाड़ी विकृति जन्य रोगों में—अत्यधिक मैथुन तथा गर्भस्रावकारक कारणों से अत्यार्तव हो सकता है इनके अलावा उष्ण जल से स्नान, नाचना, साईकिल चलाना, अत्यधिक मद्य, तथा तापक्रम में सहसा परिवर्तन इन कारणों से भी अत्यार्तव मिल सकता है।

रक्तस्राव चिकित्सा—

रक्त वमन होने पर रोगी को बर्फ चूसने के लिए देना चाहिये। पूर्ण आराम देवें। बोलना भी बंद करावें। रोगी को शीतल खुली वायु वाले स्थान में रखें। यदि फेफड़ों से अत्यधिक रक्तस्राव हो तो तार्पिन तैल की वाष्प देवें।

१—लाख का चूर्ण ६ माशे घृत और शहद मिलाकर चाटने से प्रबल रक्त वमन को सत्वर रोकता है।

२—फिटकरी के फूले को ३ से ६ रत्ती की मात्रा में मिश्री के साथ देने तथा ऊपर से ताजा धनियां २ तोले को जल के साथ पीस छान कर पिला देने से रक्त वमन-रक्तपित्त आदि के रक्तस्राव को तुरन्त रोक देता है। [हम धनियांघन १ ग्राम मिलाकर देते हैं।]

३—अडूसे के स्वरस को शहद और मिश्री तथा किशमिश, लाल चन्दन, लोध, तथा प्रियंगु का कल्क मिलाकर पिलाने से या चटाने से वेगसह नासिका, मुख, गुदा मूत्रेन्द्रिय से बहता हुआ रक्त सत्वर रुक जाता है। कहा भी है यथा—

नासिका मुखपायुभ्यो योनिमेढ्राच्च वेगिनम्।
रक्तपित्तस्रवे हन्ति सिद्ध एष प्रयोगाद्।"

यत्र शस्त्रक्षते नैव रक्तं तिष्ठति वेगितम्।
तदप्ययेन चूर्णेन तिष्ठत्येवाव चूर्णितम्।
मेढ्रतोऽतिप्रवृत्तेऽस्त्रे बस्तिरुत्तरं इष्यते ॥

अर्थात जहां शस्त्र से कट जाने पर वेग से बह हुआ रक्त रुकता ही न हो वहां इस चूर्ण को लगाने वह रुक जाता है। यदि लिंग में से ज्यादा रक्तस्राव रहा हो तो उत्तर बस्ति देवें।

नासागत रक्तस्राव में आंवलों को घी में भून बारीक पीसकर जल के द्वारा माथे पर लेप करने से बं बांध बांधने से जल प्रवाह रुक जाता है उसी प्रकार र प्रवाह रुक जाता है। कहा भी है—

नासा प्रवृत्त रुधिरे घृत भ्रष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम्।
सेतुरिवरुधिर वेगं रुणद्धि मूर्ध्नि प्रलेपयेत्।

गोबर या घोड़े की लीद का रस सुंघाने से सका नासागत रुधिर स्राव बन्द हो जाता है।

रोगी के नासिका गह्वर में रक्तपित्तरोधी औषधि से भीगा गाज प्रविष्ट किया हुआ है। नीचे कोने के चित्र में गाज प्रविष्ट करने का आरम्भ किस प्रकार किया जाता है वह दिखाया है। इस समय नासिका गह्वर में रबड़ कैथेटर है।)

आधुनिक चिकित्सा में यदि रक्त वमन हो तो Morphin Hydrochloride का सूचीवेध करते हैं। नासागत रक्तस्राव में Adrenaline १००० का सूचीवेध करें तथा इसी में रुई भिगोकर नाक में रखें।

असृग्दर की चिकित्सा में हितकर आहार-विहार से ही रोगिणी स्वस्थ हो जाती है फिर भी निर्देशानुसार निम्न चिकित्सा करनी चाहिए।

१. संक्षेपतः क्रियायोगो निदानं परिवर्जनम्।
२. सर्वेषु पूर्वं वमनं रसेक्षु मुद्गोदक तर्पणैश्च।
३. योनिनां वातलायानां यदुक्तमिह भेषजम्।
४. रक्तातिसारिणाणां यच्च ... ... ! तथा
५. रक्तपित्त विधानेन प्रदरांश्चाप्यु माचरेत्।

मुलेहठी तथा मिश्री को समान मात्रा में लेकर चावलों के धोवन के साथ पीने से रक्त प्रदर नष्ट होता है।

रसौंत तथा चौलाई की जड़ को शहद के साथ पीस कर चाटने तथा ऊपर से चावलों का धोवन पीने से रक्त प्रदर तुरन्त शांत होता है। नागकेसर तथा मिश्री के चूर्ण को ६ ग्राम की मात्रा में दिन में तीन बार लेने से रक्त प्रदर नष्ट होता है।

रक्तस्राव बाधक शास्त्रीय योग—

१. मुक्तापिष्टी—ऊर्ध्वग तथा अधोग रक्तपित्त में समान गुणकारी है।

२. तृणकान्तमणि पिष्टी—रक्त स्राव को तुरन्त बन्द करती है। ऊर्ध्वग अथवा अधोग रक्तपित्त में समान रूप से गुणकारी तथा तुरन्त चमत्कारी है।

३. संगजराहत भस्म—स्त्रियों तथा नाजुक प्रकृति वालों के रक्तस्राव में लाभकारी है।

इसके अतिरिक्त रक्तपित्त, कुलकण्डन रस, रक्त-पित्तान्तक रस, वासा कुष्माण्ड खण्ड, स्वर्णमाक्षिक भस्म, चन्द्रकला रस, अशोकारिष्ट, उशीरासव, दार्व्यादि क्वाथ, ह्रीबेरादि क्वाथ आदि का प्रयोग भी किया जा सकता है।

रक्तस्राव की संकटकालीन चिकित्सा—

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में अति रक्तस्राव होने पर रक्तादान किया जाता है। रक्तदान आदि चिकित्सक के बस की बात नहीं तथा यह बड़े चिकित्सालयों में ही किया जाता है अतः लेख के कलेवर को देखते हुए हम उसका वर्णन नहीं कर रहे हैं। अतः विज्ञ पाठक क्षमा करें। ※

—पृष्ठ २९६ का शेषांश—

होगी। यह इतना आशुफलप्रद योग है कि इसकी तुलना में मुझे अद्यावधि कोई योग उपलब्ध नहीं हुआ तथा बनाने में भी सरल है। होली, दिवाली, शादी-पार्टी आदि में कभी कोई अग्निदग्ध से दुर्घटना घटित हो तो तुरन्त पान की दुकान से चूने का पानी मंगवाकर १०-१५ मिनट में ही आसानी से इसे तैयार कर सकते हैं। दग्ध स्थान पर इसके भी दाग नहीं पड़ते।

३. पीत मलहम—जिन्क आक्साइड २०० ग्राम, वैसलीन ४०० ग्राम, ग्लीसरीन ५० मिलि., एक्रीफ्लेविन २ ग्राम, डिस्टिल वाटर १० मिलि.। सर्वप्रथम जिंक पाउडर, ग्लीसरीन और वैसलीन को मिलाकर मलहम बना लें। अब डिस्टिल वाटर में एक्रीफ्लेविन को घोल-कर मलहम में अच्छी तरह मिला लेवें। यह पीले रङ्ग की बाजार की अग्निदग्ध पर बहुप्रचलित सुप्रसिद्ध औषधि बरनोल की तरह, जिसे आप बर्नोल का प्रतिनिधि नहीं अपितु प्रतिद्वन्दी समझिये, आशुफलप्रद है।

उपयोग—अग्निदग्ध पर फफोले हो जाने पर विसंक्रमित कैंची से फफोले फोड़कर मृत त्वचा उठाकर इस मलहम को लगावें। अग्निदग्ध के घाव इससे शीघ्र भरते हैं तथा अन्य आघातज व्रण छिल जाना, कट जाना व पूययुक्त व्रण पर आशुफलप्रद अनुभूत योग है।

४. प्रतापलंकेश्वर रस १ गोली सुबह शाम, विषमुष्टी वटी १-१ गोली भोजन के बाद दें।

५. यदि अग्निदग्ध का व्रण पाक हो गया हो तथा शोथ और ज्वर भी हो गया हो तो प्रतापलंकेश्वर रस, विषमुष्टी, लक्ष्मीविलास रस १-१ गोली, गन्धक, वंग भस्म २-२ रत्ती, मधुयष्टि चूर्ण १ माशा, ऐसी १ मात्रा दिन में ३ बार दशमूलारिष्ट में दें। सभी उपद्रवों का तत्काल शमन होगा, बहुत परीक्षित है। ✤

☆ डा. अशोक मिश्र ☆

विभिन्न रक्तस्राव एवं सरल चिकित्सा

डा० लक्ष्मीनारायण 'अलौकिक' एन.डी., रतनावत कालोनी, शामगढ़ (मध्य प्रदेश)

—o:—:o—

आज का मनुष्य थोड़ी सी भी कोई बात होती है और डाक्टर, हकीम के पास भागता है या उन्हें बुलाता है। थोड़ी बहुत जानकारी हर आदमी के पास रहे तो न तो डाक्टर को परेशानी हो न उसे ही। किसी भी रोग से मनुष्य उतना नहीं डरता या घबराता जितना शरीर से रक्त बहना शुरू होने पर हो जाता है। होना भी चाहिये। रक्त ही शरीर का जीवन है।

(१) तीखे तेज शस्त्र से कहीं भी अङ्ग छिद गया हो, तेजी से खून बह रहा हो तो तुरन्त ठण्डे पानी में पुराना साफ धुला कपड़ा भिगोकर ४-६ तह रख दें। पट्टी बांधने लायक स्थान हो पट्टी बांध दें और लगातार ठण्डा पानी उस कपड़े पर छोड़ते रहें। छोटा-मोटा कष्ट तो १५-२० मिनट की ठण्डक से ही काबू में आ जाएगा। २४ घण्टे लगातार की जल ठण्डक से घाव सिल जायगा टांके लगवाने की नौबत ही नहीं रहेगी। घाव भिड़ते समय उस स्थिति में खोपरे का तेल छूकर घाव पर लगाते रहना चाहिए।

(२) उल्टी में खून आवे, चाहे थोड़ा या ज्यादा, घबराने की आवश्यकता नहीं। आमाशय की झिल्ली में सूजन आने व झिल्ली फट जाने से खून ५-१० तोला ही निकलता है पर आमाशय में पड़ा भोजन पानी में मिलकर बाहर आने से ढेर सारा लगता है। कभी फेफड़े की झिल्ली फटने से भी खून उल्टी के साथ बाहर आता है। दोनों ही स्थिति में आराम की आवश्यकता है। पेट पर बर्फ या ठण्डे पानी की पट्टी रखें। लगातार १ घण्टा पट्टी को ठण्डे पानी में बदल-बदल कर रखें। पेट ठण्डा होने से रक्त वमन तुरन्त रुक जाएगा। रक्त वमन के रोगी को एक कप गर्म पानी में २० ग्राम घी मिलाकर इसी प्रकार दिन में २-३ बार पिलावें। खाने को और कोई भोजन न दें। पूरा फायदा हो जायेगा।

(३) दस्त के साथ खून बड़ी आंत में कहीं छिल जाने या कृमि द्वारा काट करने से या पित्त का छाला फूट जाने से या अर्श का अंकुर सूखे मल से छिल जाने से आता है। घबराने की नहीं, आराम की आवश्यकता है। २४ घण्टे आराम करें। ईसबगोल की भूसी १५ ग्राम, इतनी ही ग्लूकोज को पानी के साथ दें या ३० से ५० ग्राम शुद्ध घी गर्म दूध के साथ या गर्म पानी के साथ भी दे सकते हैं। या ५० ग्राम घी हल्के हलवे के साथ दें। अगली दस्त से खून नहीं आवेगा। कुछ आगे इसी चिकित्सा का सहारा लें।

(४) औरतों को रक्तप्रदर की व्याधि हो जाए, यदि वे वैद्यराज खुद रखते हुये, नं. ३ से ज्यादा उपचार लाभदायक रहेगा। वैसे एक चमत्कार नुस्खा रक्तप्रदर का हमारे पास है जो इस प्रकार है—

पठानीलोध ५० ग्राम, गेरू ५० ग्राम, छोटी इलायची १० ग्राम। तीनों को महीन चूर्ण के रूप में इकट्ठा करके कपड़े में छान लें। १० ग्राम चूर्ण १० ग्राम ग्लूकोज के साथ ठण्डे पानी से दिन में २-३ बार दें। भयंकर से भी भयंकर रक्तप्रदर को एकदम काबू में किया जा सकता है। ७-८ दिन में जड़मूल से आराम। सैकड़ों पर परीक्षित।

रक्त शरीर के किसी भी अङ्ग से बहे उस व्यक्ति को लाल मिर्च, तेल की चीजें, गरिष्ठ भोजन का परहेज करना चाहिए। आंवले का चूर्ण दस ग्राम पानी के साथ लेने से रक्त की टूटी शिराएं जुड़ जाती हैं व घाव बहुत जल्दी भर जाता है।

विशेष प्रकोपक तथा पित्त विदग्ध करने वाले असात्म्य वीर्य संस्कार विरुद्ध द्रव्यों का उल्लेख किया है—

१. पित्त प्रकोपक—कुलत्थ, क्षार, जामुन पिण्याक पिण्डालु, सूरण, अम्ल बदर, सौवीर, तुषोदक मधुलक, सुराशुक्त।

२. वातपित्त प्रकोपक—उष्ण तीक्ष्ण आहार, को द्रव, कोद्दालक।

३. कफपित्त प्रकोपक—मत्स्य, गोमांस, वाराह मांस, दधिमण्ड, माष, निष्पाव, मेष, महिष।

४. पित्त विदग्धकारी—शिग्रु, मधु शिग्रु, शुष्क शाक, लशुन, करंज, सर्षप।

अन्य भी अनेक द्रव्य—कुठेरक, सुमुख, सुरस, तुलसी पिष्टान्न पित्तशमन के लिये दिया गया दुग्ध भी अम्लपित्त रोग में विदग्ध होकर अम्लदधि के रूप में परिणत होकर अद्रुल उत्पन्न करता है।

नौ छिद्रों के द्वार से निकलने वाले रक्त के कारणों को समझने के लिये इस प्रकार विभाग किये जा सकते हैं—

१. रक्तातिसार २. रक्तवमन ३. नासाप्रवृत्त रक्त स्राव ४. मूत्रातिसार ५. प्रवाहिका ६. रक्तार्श ७. अधोगामी रक्तपित्त ८. रक्तमेह ९. मंजिष्ठ मेह १० रक्तप्रदर ११. त्वग्गत रक्तस्राव १२. विषभक्षण जन्य रोमकूपों द्वारा रक्तस्राव।

(१) रक्तवमन (Heamatemesis)—इस अवस्था में रक्तमिश्रित वमन होता है। कण्ठ में पीड़ा होती है। वमन युक्त पदार्थ से मिला हो सकता है। यह आमाशय में रक्तस्राव के कारण होता है। आमाशय से रक्तस्राव होने के पूर्व हृल्लास तथा मूर्च्छा होती है मल का वर्ण काला होता है। चिरकालीन आमाशयिक शोथ में मद्यपान का इतिहास मिलता है। वमन प्रायः प्रातःकाल होता है। आमाशय में कैंसर होने से भी रक्तवमन हो सकता है। मद्यज यकृत्वृद्धि आमाशयिक व्रण में भी रक्त वमन हो सकता है।

२: रक्तष्ठीवन—कास के साथ रक्तस्राव को रक्त ष्ठीवन कहते हैं। रक्तष्ठीवन के ३ प्रधान कारण हो सकते हैं। १. यक्ष्मा २. द्विपत्र संकोच (Mitral stenosis) तथा श्वसनिका विस्तीर्णता (Bronchiectasis)। श्वसनमार्ग में व्रण, दक्षिण हृदयातिपात (Congestive heart failure), रक्त के रोग, श्वसनक फौफ्फुसीय अन्तःस्राव, फौफ्फुसीय अर्बुद, फुफ्फुस में विद्रधि, कर्दम (Gangrine), उष्ण कटिबन्धीय उषप्रियता (tropical Eosinophilia), महाधमनीगत धमन्यभिस्तीर्णता (Aortic Aneurysm), नीलोहा (Purpura), शोणितप्रियता (Heamophilia), प्रशीताद (Scurvy), श्वेतमयता (Leukaemia), उच्च रक्तनिपीड आदि के कारण रक्तस्राव होता है।

(३) नासा रक्तस्राव—यह नासा के विकार के कारण भी हो सकता है। नासाकृमि रोग में रक्तस्राव होता है पर जब अधिक हो तो रक्तपित्त का सूचक माना जाता है। उच्च रक्त निपीड में नासास्राव हो तो बन्द नहीं करना चाहिए। अप्राकृतिक आर्तव के कारण अति व्यायाम, नासाव्रण, नासार्श फिरङ्ग या घातक अर्बुद के कारण भी रक्तस्राव होता है।

अधोग रक्तपित्त

ऊर्ध्वग रक्तपित्त

(४) गुदामार्ग से रक्तस्राव—रक्तातिसार, प्रवाहिका, रक्तार्श में हो सकता है। मल परीक्षा से निर्णय किया जाता है। प्रवाहिका में मल त्याग के समय प्रवाहण करना पड़ता है। आन्त्रिक ज्वर, पचनीय व्रण (Peptic Ulcer), कालाजार के रोगियों में रक्तातिसार होने की सम्भावना

ती है। आंत्रिक ज्वर में नाभि के पास क्षुद्रान्त्र क्षत हो जाते हैं। उनके विदीर्ण होने पर रक्तातिसार यः तृतीय अवस्था में होता है। तब रोगी असाध्य हो जाता है।

(५)-मूत्रमार्गगत रक्त—वृक्कशोथ, वृक्कीय अर्बुद व जन्तुओं की उपस्थिति, प्रमेह आदि रोग।

रक्तपित्त और शुद्ध रक्त की पहिचान—

रक्त में भात-रोटी मिलाकर कौआ या कुत्ते को देनी चाहिये। कपड़े को रक्त में डुबोकर सुखा लें फिर उष्ण जल में धोवें। यदि रक्त छूट जाय तो शुद्ध रक्त अन्यथा रक्तपित्त का है। आगे सारिणी में विभेद प्रदर्शित किया है—

मासिक रक्त स्रुति	रक्तपित्त
१-वस्त्र में लगा रक्त धोने से छूट जाता है	१-धोने से नहीं छूटता
२-केवल योनि से स्रवित होता है	२-योनि के अतिरिक्त अन्य मार्गों से भी स्रवित होता है
३-गर्भस्राव व गर्भपात का वृत्त मिलता है	३-गर्भस्राव आदि का अभाव होता है

कई व्याधियों की समता रक्तपित्त से मिलती है जो निम्न सारिणियों में अंकित की गई है —

ऊर्ध्व रक्तपित्त	यक्ष्मा
प्रारम्भ से ही रक्त निकलता है।	अन्तिम अवस्था में जब फुफ्फुसों में व्रण बन जाता है तब निकलता है।
रक्त विदग्ध होता है जिसमें कुछ कालिमा भी रहती है।	रक्त विदग्ध न होकर शीघ्र रक्त होता है। उसमें कालिमा न होकर लालिमा रहती है।
रक्त पर मक्खियां नहीं बैठती हैं और न उसे कुत्ते ही खाते	रक्त पर मक्खियां बैठती हैं और उसे कुत्ते खाते हैं।
रक्त आमाशय से आता है।	रक्त फुफ्फुस से आता है
पार्श्व में प्रायः पीड़ा नहीं होती।	पार्श्व में, छाती में पीड़ा होती है।
प्रारम्भ में रोकने से श्वास, हृदय रोग आदि हो जाते हैं।	तुरन्त रोकने से लाभ होता है।
शीतोपचार से लाभ, उष्णोपचार से हानि होती है।	शीतोपचार से कास आदि हानियां होती हैं, पर स्वर्ण मुक्ता आदि युक्त योग शीतवीर्य एवं वात पित्त शामक प्रयोग किये जाते हैं।
रोग साध्य होता है।	फुफ्फुसों में क्षत हो जाने पर रोग कष्ट साध्य या असाध्य हो जाता है।
रक्तवाहिनियों के विस्तार से उत्पन्न सुषिरता के कारण रक्त आता है।	शुष्क कास के आघात से रक्तवाहिनियों के फटने से रक्त आता है।

गुदा से प्रवृत्त रक्तपित्त	रक्तार्श	रक्तातिसार
विदग्ध रक्त निकलता है।	शुद्ध लाल शोध रक्त निकलता है	विदग्ध रक्त निकलता है
अतिसार होता है	विबन्ध होता है	अतिसार होता है
अर्शांकुर का अभाव होता है	अर्श के अंकुर होते हैं	अर्शांकुर का अभाव होता है
याप्य होता है	साध्य होता है	साध्य होता है
वमन से लाभ होता है, रेचन से हानि होती है	रेचन से लाभ, वमन अनावश्यक	रेचन और वमन दोनों अनावश्यक
क्षार का प्रयोग निषिद्ध है	कुछ मृदु क्षार दिया जाता है	क्षार नहीं दिया जाता
शल्य क्रिया नहीं होती	शस्त्र से अर्शांकुर काटे जाते हैं	शल्य क्रिया नहीं होती

पूर्वरूप—

हीन द्रव्य को सम्पूर्णावस्था या स्थान संचय की अवस्था में रक्तस्राव होने के पूर्व कुछ लक्षणों की उत्पत्ति होती है जो निम्नांकित हैं—

१. अनन्नाभिलाष, २. भोजनोत्तर विदाह ३. शुक्ताम्लगन्ध रसोद्गार, ४. बारम्बार छर्दि की इच्छा, ५. वमन द्रव्य में वीभत्सता, विवर्णता, ६. स्वरभेद, ७. ग्लानि, ८. सर्वाङ्ग में दाहानुभूति, ९. आस्य-स्वाद या श्वास में लोह या रक्त या लोहधातु की गणना, १०. मुख से धूम निकलने की प्रतीति, ११ सर्वाङ्ग से रक्तता या हरितता या हरिद्रता का भाव होना, १३-१४ मूत्र में और मल में उक्त विकृति, १५. लोहित, नील-पीत-श्याम रूप का जागरण या स्वप्न में दर्शन, १६. शीतेच्छा।

विशेष लक्षण—

१. कफान्वित रक्तपित्त लक्षण—सस्नेह, पीताभ, सान्द्र एवं पिच्छिल रक्तस्राव होता है।

२. पैत्तिक रक्तपित्त के लक्षण—केवल पित्त प्रकोप जनित अवस्था में चित्र-विचित्र, मज्जल समान, कृष्ण वर्ण वटादि के क्वाथ या गोमूत्र के समान रक्त होता है।

३. वातान्वित रक्तपित्त के लक्षण—रक्त का वर्ण श्याम, अरुण, सफेद तनु और रूक्ष होता है।

४. द्विदोषज रक्तपित्त में दो दोषों के सम्मिलित लक्षण होते हैं।

५. त्रिदोषज रक्तपित्त में तीनों दोषों के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

रक्तपित्त के उपद्रव—

दौर्बल्य (कृशता) श्वास-कास-ज्वर-पाण्डुता-तन्द्रा-दाह अधीरता-खाये हुए भोजन का तीव्र विदाह (शुक्त पाक) अधीरता (असन्तोष) अरोचक अफट्टेप-अविपाक छर्दि-अतिसार-शोथ-शोष-मद (नशा जैसा) उष्ण रक्त निपीड़-हृदय प्रदेश में असाधारण पीड़ा-तृषा-विड्भेद-सर्वाङ्गीण दाह-मूर्च्छा नेत्रवाच्युति, शिर को कोई पीड़ा रहा हो ऐसा प्रतीत होना-शिर के सभी भागों में वेदना-सुख का विनाश रति-सुख की इच्छा न होना-शरीर झुक जाना-मांस के धोवन के समान छर्दि या मल की प्रवृत्ति-बलगम में दुर्गन्धित पित्त का निर्गमन-मुख से पूय की प्रवृत्ति और स्वरभेद आदि होते हैं।

रक्तपित्त के असाध्य लक्षण

	साध्य	याप्य	असाध्य
दोषानुसार	एक दोषज	द्विदोषज	त्रिदोषज
गति के अनुसार	ऊर्ध्वग-	अधोग	उभयमार्गी
मार्गानुसार	एकमार्गी ऊर्ध्वगामी	परिवर्तन-शील मार्ग	कई मार्गों वाला
रोगी की अग्नि	बलवान	×	मन्दाग्नि
रोगी का बल.	बलवान	×	निर्बल कृश
अवस्था	युवा	×	वृद्ध
रक्त का वेग	धीरे-धीरे	×	अतिवेग से
रोग की अवधि	नवीन	शान्त हो हो कर पुनः कुपित	लगातार बहुत दिनों

उपर्युक्त अवस्थाओं के अतिरिक्त, यदि प्रवृत्त रक्त का वर्ण यदि मांस के धोवन के समान हो कीचड़ घुले जल के समान हो मेदस् पूय रक्त के समान हो यकृत के वर्ण वाला हो, पके जामुन के समान वर्ण वाला हो, शव की गन्ध वाला हो तो रक्तपित्त को असाध्य समझें।

चिकित्सा—

औषधि व्यवस्था—

बहुत अधिक रक्त निकलने पर बकरी का कच्चा यकृत खिलाना चाहिए और ताजा रक्त मधु मिलाकर पिलाना चाहिए। मात्रा १ बार में २-४ तोला रोगी की अवस्था शरीर का भार, रोगी का बल, अग्नि-पाचनशक्ति आदि का विचार आगे लिखित औषधि में से निरीक्षण पूर्वक उचित औषधियों को खिलाना चाहिये।

एकौषधि प्रयोग—पर्णबीज, कुकरौंधा, अपामार्ग, दूर्वास्वरस बावची कूटी, वासा स्वरस, शुद्ध स्वर्ण गैरिक, राल चूर्ण, फिटकरी भस्म (कपास में भरकर) लाक्षा चूर्ण, रक्त चन्दन घिसा हुआ, आम की कोंपल का स्वरस, अनार स्वरस इनमें से कोई मिलाकर भी दे सकते हैं।

शास्त्रीय प्रयोग—

क्वाथ—ह्रीबेरादि क्वाथ (भै. र.) वासादि क्वाथ

रक्तपित्त की चिकित्सा

(शा॰ सं॰) पर्पटादि क्वाथ (भै॰ र॰) वटी—एलादि गुटिका

खण्ड—कूष्माण्ड खण्ड

घृत—१. शतावर्यादि घृत,
२. दूर्वादि घृत
३. वासा घृत

आसवारिष्ट—१. उशीरासव,
२. द्राक्षासव ३. सारिवाद्यासव, ४. वासारिष्ट
५. चन्दनासव

रस—

१. चन्द्रकला रस भै॰ र॰, २. कामदुधा रस, भै॰ र॰ ३. रक्तपित्तान्तक रस, ४. रक्तपित्त कुलकण्डन रस, ५. बोल पर्पटी र॰ त॰।

पिष्टी—१. अकीक पिष्टी, २. तृणकान्तमणि पिष्टी ३. मुक्तापिष्टी, ४. प्रवाल पिष्टी, ५. प्रवाल पंचामृत।

अनुभूत योग—

१—अर्जुन की छाल, गूलर की छाल, पद्माख की पत्ती, धमासा, खस, पठानी लोध, नागरमोथा, कमल, बड़-जटा, जवासा, मोचरस, चौराई, लज्जालु, नागकेशर, जामुन की छाल में से कुछ का चूर्ण, शीतकषाय, घृत या पाचित दूध बताशे या मधु मिला पिलाना चाहिए।

२—त्रिवृत्. मुनक्का हर्र मिलाकर २ तो. लें। १६ तो. पानी में पकावें। ४ तो. शेष रहने पर छानकर १ तो. मधु या १ तो. मिश्री या बताशे में मिलाकर २-३ बार सेवन करावें। इससे रेचन होकर ऊर्ध्वग रक्तपित्त शमन हो जाता है। क्वाथ शीतल कर ही दें।

३—आमला स्वरस १-२ तो. पिलावें या आमला चूर्ण ६ माशे, ३ माशे बताशे मिला पय से सेवन करावें।

खस, चन्दन, प्रियंगु १ तो. ४ तोले पानी में भिगो छानकर १) मिश्री मिला पिलावें। इससे दाहशमन होता है।

४—चन्दन का तैल ४-६ बूंद कवच में भरकर १०-२० मिनट पर सेवन करावें या निम्ब तैल ४-५ बूंद कवच में भर कर तुरन्त निगलवा दें।

५—द्राक्षा चूर्ण ६ रत्ती + नवनीत या मलाई ६ माशे बताशे ६ माशे मिलाकर दें। यह एक मात्रा है।

६—बोलबद्ध रस २ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, कामदुधा रस २ रत्ती कुल १ माशा है। कवच में भर कर दें। ऊपर से बताशे मिला दूध पिलावें।

७—स्वर्ण मालिनी वसन्त ३ रत्ती, द्राक्षा चूर्ण २ रत्ती, फिटकरी भस्म १ रत्ती कवच में भरकर दें और प्रति २०-३० मिनट पर १ माशा दें।

८—त्रैलोक्य चिन्तामणि प्रथम या वृ॰ वात चिन्तामणि या कामदुधा रस, कोई भी २-२ तोले उसी में २ रत्ती फिटकरी की भस्म मिलाकर कवच में भर कर दूर्वा स्वरस, आमला स्वरस, अपामार्ग स्वरस १ तो. के अनुपान से दें। अनुपान में चाहे तो ६ मा. बताशे या मधु मिलाकर दें। यह सभी तरह के रक्तपित्त में लाभ पहुँचाता है। कभी-२ असाध्यावस्था भी टल जाती है। मूर्च्छा निवारण करता है। नाड़ीपतन निवारण कर नवजीवन प्रदान करता है।

९—१० तो. अडूसा को यवकुटकर १० तो. जल में भिगो दें। उसी धान की खील, जौ, मूंग की दाल, खस, नागरमोथा और चन्दन के मोटे चूर्ण भिगो दें। प्रातः

छानकर २-३ तोले मधु या २-३ बताशे मिलाकर १-२-३ बार पिला दें। इससे कफ, पित्त और दाहशमन हो जाता है। इसमें पिप्पली की योजना कफ विनाश के लिये की गई है। इससे स्वल्प तर्पण हो जाने से वात भी शमन हो जाता है। यह ऊर्ध्वग और अधोग दोनों रक्तपित्तों को शमन करता है। वासा, गेंदा, चौलाई, दूर्वा, आमला, मुलैठी, मोचरस, कदली और कमल, गूलर, वटांकुर, धनियां, मनक्का लौकी, मौसम्मी इनको सदा स्मरण रखें। ये भी रक्तपित्त शमन करते हैं। शतभ्रूसादि लौह ४ रत्ती, वासा स्वरस, दूर्वास्वरस १ तो. से दें। सिर पर आमला शीतल जल में पीसकर या लौकी का गूदा या शतधौत घृत केश रहित सिर पर लेप करें तो नासा रक्तस्राव निवारण हो जाता है। नासा छिद्रों में दूर्वा स्वरस डालें।

१०—एलादि गुटिका चूसने से रक्तपित्तयुक्त कास-श्वास स्वरभेद में लाभ होता है।

११—तृण पंचमूल, कुश-काश, सरपत, दाभ, ईख की जड़ सब मिलाकर २ तोले लें। इनसे पाचित बकरी का दूध या उसमें ४ मुनक्का डालकर पिलावें तो मल मूत्र की प्रवृत्ति होती है और ऊर्ध्वग रक्तपित्त शमन होता है।

१२—चन्दनादि तैल, मंझालाक्षादि तैल की मालिश से रोम रक्तस्राव और दाह शमन होता है। रक्तपित्त कुलकण्डन रस और चन्द्रकला रस २-२ रत्ती लेकर १ कवच में भर दूर्वा स्वरस २ तोला से निगलवा देना चाहिये। इससे सभी प्रकार के रक्तपित्त शमन हो हृदय को शक्ति प्राप्त होती है। प्रवाल सूचिका बाहु में लगावें।

१३—रक्तपित्तारि कवच—चन्द्रकला रस ४ रत्ती, कामदुधा रस १ रत्ती, फिटकरी भस्म २ रत्ती, कवच में भरकर दें और ऊपरलिखित किसी द्रव्य का स्वरस १ तोला, ६ माशे मधु या बताशे मिला पिलावें। प्रवाल (मौक्तिक) की सूचिका स्वचागत लगावें। यदि अधोग रक्तपित्त हो तो दशमूल की सूचिका भी नितम्ब मांस में लगावें।

१४—रोम रक्तस्राव—बृ. वातचिन्तामणि, कामदुधा रस, प्रवाल पंचामृत, कपर्दिका भस्म प्रत्येक १-१ रत्ती कवच में भरकर दें या ऊपरलिखित किसी द्रव्य के स्वरस १ तो. में घोलकर पिलावें। प्रवाल की सूचिका दोनों बाहु में लगावें और दशमूल की सूचिका नितम्बमांस में प्रक्षेपण करें। बृ. वातचिन्तामणि के अभाव में त्रैलोक्य चिन्तामणि हों या उक्त ३ द्रव्य हीं प्रयोग करें। शतावर और गोखरू और दूर्वा के स्वरस या चूर्ण १ तो. से ४ तो. दूध पाचित कर पिला दें तो सम्पूर्ण रक्तस्राव निवारण हो जाता है। इसीके अनुपान से रक्त पित्तान्तक रस दें। शतावरी, गोखरू, मुनक्का, बला, विदारीकन्द आदि में घृत दुग्ध पान कराने से सभी रक्तस्राव शमन हो जाते हैं। —चरक

अनुभूत योग संकलन—

१. अमलतास के फल का गूदा १ तो., आमला १ तो., ८ तो. पानी में क्वाथ करें। आधा शेष रहने पर मसलकर छान लें। उसमें १ तो. मिश्री या बताशे और ६ माशे मधु मिलाकर रोगी को पिला दें। इससे रेचन होकर ऊर्ध्वग रक्तपित्त शमन हो जायेगा। इसमें आमला न मिले तो मुनक्का लें और बिना मधु के भी पिला सकते हैं। इसके पूर्व ४ रत्ती फिटकरी की खील भी कवच में भरकर दे सकते हैं।

२. ४ रत्ती फिटकरी की खील एक कवच में भरें। दूसरे कवच में ४ रत्ती मिश्री का चूर्ण भरें। दोनों को निगलवा दें। अनुपान केवड़े का शर्बत, सन्तरे का रस, आमला का रस या क्वाथ अनार का रस कोई भी २ तो. लें या केवल अनुपान दें या केवल कवच या दोनों ही दें। रोग की भयंकरता के अनुसार १-२-३ बार प्रयोग करें। या प्रवाल पिष्टी २ रत्ती + तृणकांतमणि पिष्टी २ रत्ती कवच में उक्त किसी अनुपान से प्रयोग करें या बिना अनुपान मात्र शीतल जल से दें या आम की कोंपल के रस १ तो. से दें।

३. बताशा पर ४ बूंद चन्दन का तैल डालकर बताशा खिला दें। रोग के अनुसार ३-४-५ मात्रायें दें।

४. चन्दन को पत्थर पर पानी डाल कर घिसें। ६ माशे यह घिसा ६ माशे बताशे मिला चटा दें। ऊपर से गरम किया शीतल दूध मीठाकर पिला दें।

५. कवच में ४-५ बूंद नीम का तेल डालकर तुरन्त

रोगी को दूध से पिलवा दें।

६. लाख का चूर्ण १-२-३ माशे समभाग बताशे और उतनी ही मलाई या नवनीत मिलाकर खिला दें।

७. कामदुधा रस २ रत्ती, गिलोय सत्व ४ रत्ती, फिटकरी भस्म २ रत्ती, बताशे ६ रत्ती, मलाई १ माशा मिलाकर चटादें और २५० ग्राम गर्म किया हुआ शीतल दूध मिश्री डालकर पिला दें। रोगानुसार कई मात्रायें दें।

८. फुफ्फुसक्षय में रक्त वमन—सितोपलादि चूर्ण ४ रत्ती, स्वर्ण वसंतमालती १/२ रत्ती, फिटकरी भस्म २ रत्ती, वासा चूर्ण २ रत्ती, मलाई ६ माशे, रुदन्तीफल चूर्ण २ रत्ती, बताशे ६ रत्ती इनकी २ मात्रायें बना चटा दें। यदि चाहें तो ५ ग्राम च्यवनप्राश भी खिलावें। ऊपर से दूध पिला दें।

९. चन्दन का चूर्ण १ माशा ५ तो. पानी में भिगो दें और उसी में कमल पुष्प, पद्म, कमल गट्टा, कमल केशर ५ ग्राम डाल दें। उसी में ६ माशे बताशे डाल दें मिले तो खस भी १ माशे डाल दें। कुछ देर बाद मसल कर छानकर पिलावें। मात्रा दूनी या तिगुनी कर २-३ मात्रा बनालें। रोगानुसार १०-२० मिनट पर पिला दें।

१०. लाल चन्दन, गिलोय, धमासा, खस, पाठा, कुटकी, लोध मे से जो मिल जाए १ तोले लें चूर्ण कर ४ तो. जल में भिगो दें। उसी में २ तो बताशे डाल दें। फिर मसलकर छानकर पिला दें। कोई १ द्रव्य न मिले तो उसके स्थान पर नहीं हरी दूब लें। सायङ्काल भिगो दें और प्रातः पिलावें तो अधिक अच्छा हो।

११. धान की खील, चन्दन, खस, खरैंटी, नागरमोथा, मूंग की दाल, इन्द्रजव, पीपल का पत्ता, इनका मिश्रित २ तो. मोटा चूर्ण ले ४ तो. पानी में भिगो दें। फिर छानकर २ तो बताशे मिलाकर पिला दें। ऐसी अन्य मात्रायें बनालें। रोगानुसार ३-४ बार दें।

१२. रक्तपित्त, तृषा, दाह, पित्त वृद्धि—धमासा, पित्तपापड़ा, चिरायता, वासा, कुटकी मिश्रित चूर्ण १ तो. लें। १६ तो. पानी मे क्वाथ करे, ४ तो. शेष रहने पर उतार कर छान लें। १ तो मधु या १ तो बताशे मिला कर पिला दें। साधारण रोग में २ मात्रायें दें, कठिन रोग में १ मात्रा। इसी प्रकार अन्य मात्रायें बनावें। यदि कुटकी न मिले तो मुनक्का डालें।

१३. धमासा या जवासा, मुलैठी, वासा मिलाकर ६ माशे बताशे मिला फांक लें ऊपर से दूध पीवें।

१४. शतावरी, गोखरू मिलाकर १ तोला मिश्री १ तोला बकरी या गाय का दूध १ छटांक लें २ तो. जल डालकर पका लें। जल रहित होने पर उतार कर छानकर पिला दें। यह एक मात्रा है। रोगानुसार अनेक मात्रायें बना लें। इसके प्रयोग से मूत्र मार्ग का भी रक्तस्राव दूर हो जाता है। यदि चाहे तो २ रत्ती फिटकरी की भस्म, २ रत्ती कामदुधा रस, २ रत्ती प्रवाल पिष्टी में से कोई एक या दो मिलाकर दे सकते हैं। शराब, कालीमिर्च, चाय, काफी, क्षार गर्म, कटु द्रव्य, मैथुन आदि, तेल, खटाई, अचार, तमाकू हानिकारी हैं।

१५. मल मार्ग से रक्तस्राव—नागकेशर, मोचरस १ तो. दूध में पीसकर मिश्री या मधु मिला खिलावें।

१६. गुल्वौषधियों के कारण उत्पन्न रक्तस्राव में स्वर्ण माक्षिक भस्म, प्रवाल पिष्टी १-२ रत्ती, चन्दन का शर्बत १ माशा, मधु ३ माशे मिलाकर चटावें।

१७. धनियां और छुहारा मिलाकर १ तो. ले चूर्ण करें। ४ तो. पानी में भिगो और क्वाथ बनावें। छानकर ६ माशे मधु या मिश्री मिलाकर पिलावें।

पथ्य—गेहूं की रोटी, देशी मूंग, मसूर की दाल, परवल, लौकी, बथुआ करेला, पेठा, पपीता, केला, भिंडी हल्दी, धनियां, गाजर का हलुआ, जटामांसी, बीदाना का रस, गाजर का रस, सन्तरा, सेव, मुनक्का, किशमिश, तालमखाना, अखरोट, गुलाब जल, अरारोट, मिश्री, नारियल का जल आदि, चंदन, खस, पठानीलोध, सोंठ १ तो., २ तो. चावल, ८० तो. पानी में पका पतला-२ पिलावें।

अपथ्य—जिन कारणों से रोग उत्पन्न होता है उनका त्याग करें। सेम, उड़द, सुर्खमिर्च, नमक क्षार, सर्षप तैल, मसाला, डालडा की बनी चीजें, पिष्टान्न अचार, सज्जीक्षार, मीठा सोडा, गर्म किया हुआ जल, हमर्दी, चाय, काफी, आलू, उष्ण पदार्थ, धूप, मैथुन आदि।

एसिड ५० ग्राम, कपूर की डली ६० ग्राम।

निर्माण विधि—कार्बोलिक एसिड और कपूर को एक जगह खरल कर लें। दोनों द्रव में परिणित हो जायेंगे। अब एक शीशी में तिल का तैल, तारपीन का तैल डालकर कपूर तथा कार्बोलिक का मिश्रण डाल दें। वातारि तैल तैयार हो गया। कटि शूल, समस्त वात विकारों में इसकी मालिश से दर्द शीघ्र शान्त होता है।

७. शिरःशूल—भारतीय शिरःशूलान्तक बाम—पिपरमेन्ट १ तोला, कपूर ३ माशा, दालचीनी का तैल २ माशा, इलायची का तैल १॥ माशा, लौंग का तैल १॥ माशा।

निर्माण विधि—पहले दोनों सूखी औषधियों को खरल में घोट लें। उसमें २५ तोला वैसलीन मिला दें तथा एक दिल कर लें। फिर सभी दवाओं को मिलाकर घोटकर एक दिल कर लें। तदुपरान्त चौड़े मुँह की शीशी में भर कर रख लें।

शिरःशूल में थोड़ी मात्रा में मालिश करने से दर्द शीघ्रातिशीघ्र अच्छा होता है। इसका प्रयोग अन्य दर्दों पर भी विश्वासपूर्वक किया जा सकता है। यह केवल बाहरी प्रयोग की दवा है।

८. पथरीजन्य शूल—भारतीय मूत्र कृच्छ्रादि चूर्ण—शीतलचीनी, कलमी शोरा, संग जिरोजा, छोटी इलायची, शुद्ध वंशलोचन सभी दवाओं का समभाग चूर्ण तैयार करें। पथरी के कारण पेशाब होते हुए भयंकर दर्द होने पर ४ माशे की मात्रा फांक कर ऊपर से गाय या बकरी का दूध पीयें। शीघ्र दर्द शान्त होगा। पेशाब में जलन होने पर ४ रत्ती कलमीशोरा चूर्ण की एक मात्रा में मिलाने से जलन शीघ्र शान्त होती है।

९. हृदयशूल—भारतीय हृदय शूलान्तक वटी—स्वर्ण माक्षिक भस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, वंशलोचन, शिलाजीत, समभाग लेकर चूर्ण कर लें, तदुपरान्त अर्जुन की छाल के क्वाथ की भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें तथा छाया में सुखा लें। १-१ गोली दिन में ३ बार उष्ण जल या गुनगुने गोदुग्ध के साथ लेने से हृदय का दर्द शीघ्र नष्ट होता है।

१०. हैजा—हैजे का उच्चकोटि का अमृतधारा हम अपने रोगियों के लिये बनाते हैं। विधि निम्न है—

भारतीय अमृत धारा—सत्व अजवायन, कपूर, पिपरमेन्ट २५-२५ ग्राम, इलायची का तैल, दालचीनी का तैल, लौंग का तैल, तारपीन तैल शुद्ध १०-१० ग्राम। इनको १ शीशी में डालकर १५ मिनट हिलाते रहें। यह मिलकर उच्चकोटि की अमृतधारा बन जायगी। यह हैजे की महौषधि है। २ से ४ बूंद बताशे में डालकर रोगी को खिलाना दें। हैजे की उल्टी, दस्त, मरोड़, बेचैनी में शीघ्र आराम होता है। यह दवा सिर दर्द, दांत दर्द, कुकरोग आदि रोगों में अपूर्व गुणकारी है।

११. दाद की दवा—भारतीय दद्रुहर लेप—आंवलासार गन्धक, मैनसिल, हरताल, तुतिया १-१ तोला, कपूर ६ माशा, सिन्दूर १ तोला, सुहागा २ तोला सबका कपड़छन चूर्ण लेकर वैसलीन २० ग्राम में घुटाई कर एक दिल कर लें। यह दादनाशक महौषधि है। दाद के स्थान पर इसको ५ मिनट लगाएं, दाद शीघ्र नष्ट होगी।

१२. अग्निदग्ध—भारतीय अग्निदग्ध हर लेप—गरी का तैल ६ तोला लेकर आग पर गर्म करें, तत्पश्चात् १ तोला मोम, ६ माशा कपूर डाल दें, जब दोनों चीजें गल जाय तो नीचे उतार लें और सफेदा, बोरिक एसिड, राल, मुर्दासंख १-१ तोला का बारीक चूर्ण मिलाकर मलहम बनावें। जले हुये स्थान पर इस दवा का लेप करने से जलन शीघ्र शान्त होती है तथा घाव भी जल्द भरता है।

१३. कुकुर खांसी की दवा—भारतीय कासारि शर्बत—[illegible], छोटी पीपल, काकड़ासिंगी, सफेद इलायची, मुलेठी, मुनक्का, बहेड़ा प्रत्येक ६-६ तोला। पान के बड़े पत्ते १०, सबको २ किलो पानी में पकावें। आधा पानी १ किलो रह जाने पर उतार कर छान लें। इसमें १/२ किलो शक्कर मिला दें और बोतलों में भर दें।

१ से ५ वर्ष तक उम्र के बच्चों को १ से २ चम्मच देवें। ५ से १२ वर्ष उम्र के बच्चों को १ से ३ चम्मच दें। ३-४ खुराक में ही समस्त खांसी के दौरे कम हो जाते हैं।

१४. सभी प्रकार की खांसी के लिए भारतीय कास-

—शेषांश पृष्ठ २४९ पर देखें।

शूलहर प्रयोग

वैद्यरत्न द्वारका मिश्र आयुर्वेदाचार्य

शिरशूल व बिच्छू शूल पर—प्रतिश्याय के कारण साधारण ज्वर एवं शिरशूल अर्धावभेदक और प्रतिश्याय में निम्न प्रयोग तत्क्षण लाभप्रद है—

नौसादर, कपूर, चूनाकली या कार्बोनेट सोडा १-१ भाग, इलायची तेल १० बूंद, सब दवा को एकत्र एक शीशी में रखकर हिलाकर एक दिल कर ले। मजबूत कार्क लगा शीशी का मुख बन्द कर रखें। आवश्यकतानुसार हाथ से एक नासा मुख बन्दकर दूसरे नासा (नाक) का मुख के सूंघते ही शिर दर्द गायब।

२. पैत्तिक शूल या तज्जन्य शिरः शूल—शिवाक्षार २ भाग, टारटरिक निम्बू सत्त १ भाग मिलाकर खाकर गरम पानी पियें। शूल (दर्द) तुरन्त साफ। अजीर्ण का एवं सभी उदर वायु शूल पर उपयोगी है।

३. प्रबल उदरशूल के समय भुना हींग १ भाग, काला नमक १ भाग खौलता पानी घोलकर पीने को दें।

४. प्रतिश्याय कास, ज्वर शिरशूल में गोदन्ती भस्म १ भाग, नारदीय लक्ष्मीविलास रस १ गोली, दोनों निगल खाकर पानी या चाय पीले। एक घण्टा में तीनों साफ या पानी पर घर चल लें।

५. मलहम—शिरशूल सर्दी ज्वर (प्रतिश्याय)—पेपरमेन्ट, कपूर, सत्त अजवाइन १-१ भाग, दालचीनी तेल आधा भाग, वेसलीन ४ भाग में मिलाकर ललाट (शिर) में मलहम घिसने से दर्द शान्त होगा।

६. हृदयशूल—हृदयार्णव रस १ गोली अर्जुन (कहुआ) के छाल का क्वाथ साथ दें। अथवा केवल अर्जुन छाल का काढ़ा मधु के साथ पीने से हृदयशूल तत्क्षण नष्ट होगा।

७. दन्तशूल—लौंग का तेल या चूर्ण कपूर दोनों दन्तशूल स्थान पर प्रयोग से तत्क्षण दन्तशूल में लाभ।

८. रक्तस्राव—फिटकिरी का चूर्ण २ ग्राम, लाक्षा रस (क्वाथ) ४० ग्राम पीने से आभ्यन्तर रक्तस्राव बन्द होगा। फिटकिरी चूर्ण बुरक के गेंदा या कुकरौंधा के रस का पट्टी देने से बाहर का जख्म रक्तस्राव बन्द होगा।

९. अग्निदग्ध—आग से जलते ही जले स्थान पर पानी का प्रयोग न करें। तीसी (अलसी) के तेल में चूना का निथरा पानी लेकर फेंटकर जले स्थान पर प्रयोग करें। जलन फोड़ा सब ठीक होगा। जले स्थान पर आलू पीसकर लेप दें, ग्वारपाठा गूदा की पट्टी दें।

१०. हिचकी में—हींग लौंग की धूनी नासारन्ध्र से दें। नमक जिह्वा पर रख निम्बू का रस निचोड़ दें।

—श्री द्वारका मिश्र आयुर्वेदाचार्य
वैद्य सेवा संघ, पो. कोड़ी (नवादा), बिहार।

★ पृष्ठ २४१ का शेषांश ★

हर पेय—अडूसा शुष्क पत्ता ५० ग्राम, मुलहठी १५ ग्राम, सोंठ ५ ग्राम, कालीमिर्च ४ ग्राम, पीपल छोटी २ ग्राम, नौसादर २ ग्राम, मिश्री १ पाव (२५० ग्राम), पिपरमेन्ट २ रत्ती। सभी काष्ठ औषधियों को कूटकर १ किलोग्राम जल में औटावें। चतुर्थांश शेष रह जाने पर छान लें और मिश्री डालकर अग्नि पर मन्द मन्द आँच से पकावें, चाशनी बन जाने पर अन्य दवाओं का बारीक चूर्ण डाल दें। इस पेय को १-२ चम्मच दिन में ३ बार देने से सब प्रकार की खांसी शीघ्र नष्ट होती है। ★

विभिन्न शूल तथा तात्कालिक चिकित्सा

वैद्य मिश्रीलाल गुप्त इछावरि, भारतीय चिकित्सालय, मु०पो० आष्टा (सीहोर) म०प्र०

• ० ० ०

शिरशूल के लिए निम्न प्रयोग सभी प्रकार के शूल में लाभदायक होंगे—

(१) गोदन्ती भस्म ३/४ ग्राम शुद्ध घृत एवं मधु से दिन में ३ बार प्रयोग करें।

(२) नवसादर और खाने का चूना मिलाकर उसमें २-४ रत्ती देशी कपूर मिला शीशी में रखकर कार्क लगाने से उसमें तीव्र गैस पैदा होगी। उसे २-४ बार सुंघाने से तुरन्त लाभ मिलेगा।

(३) अर्धावभेदक शिरशूल के लिये एक मावे और शक्कर के पेड़े में १ रत्ती देशी कपूर मिलाकर सूर्योदय से पूर्व नित्य खिलाने से शूल नष्ट हो जाता है।

(४) सूर्यावर्त शिरोरोग में गर्म दूध में घृत मिलाकर पिलाए तथा शुद्ध घृत की जलेबियाँ, मालपुए खिलावें। अवश्य लाभ होगा।

(५) थोड़ासा श्वासकुठार रस, कपूर, केशर और मिश्री को बकरी के दूध में पीसकर नस्य देने से तत्काल शूल शान्त होता है।

हृदयशूल—

(१) मृगश्रृङ्ग भस्म ४ रत्ती गाय के एक चम्मच गर्म घृत में मिलाकर खिलाने से हृदयशूल तुरन्त अच्छा होता है।

(२) अर्जुन की छाल को गोघृत से मिलाकर बनावे इस घृत के मिलाने से हृदय का शूल ठीक होता है।

उदरशूल—

(१) शूल वज्रणी वटी २ गोली दशमूल क्वाथ अथवा कुमार्यासव के साथ दिन में ३ बार दिया जाए। पेट पर महानारायण तैल का मर्दन करे अथवा गुदा में पिचकारी से लगावें और गर्म पानी से सेक करे।

(२) पीपर, कुटकी, चिरायता, हरड़ और एलवा, समान भाग लें और पानी में पीसकर गर्म करें, सारे पेट पर गाढ़ा गाढ़ा लेप कर दें। इससे सभी प्रकार के शूल में लाभ होगा। साथ ही एक-दो पतले दस्त भी आकर शूल शान्त हो जाएगा।

(३) कृमिजन्य शूल में एरण्ड स्नेह का जुलाव देकर कृमि मुद्गर रस २ गोली दिन में ३ बार दें तथा विडङ्गारिष्ट ४ चम्मच समान जल मिलाकर भोजनोत्तर दें। साथ ही शूल वज्रणी २ वटी गर्म जल से दो बार दें।

(४) प्रत्येक उदरशूल में वायु की प्रधानता रहती है अतः वायु पर नियन्त्रण करने वाले प्रयोग लाभदायक होते हैं। शूल रोग में हींग का प्रयोग करना चाहिये साथ ही आवश्यकतानुसार वमन, विरेचन, स्वेदन आदि भी होना आवश्यक है। दो दल वाले अनाज नहीं देना चाहिए।

विभिन्न रक्तस्राव तथा उनकी तात्कालिक चिकित्सा—

(१) गेरू, राल सफेद, दम्मुल अखवेन, बेल अंजरूत, संगजराहत, वंशलोचन, कहरवाशमई, दाने इलायची समान भाग कूटपीस कपड़छान कर रखें। मात्रा ३ से ५ माशा जल के साथ या शर्बत अन्जुबार के साथ दिन में ३-४ मात्रा देने से शरीर के किसी भी भाग से होने वाला रक्तप्रवाह २-३ दिन में क्रम से ही बन्द हो जाता है। रक्तार्श, रक्तप्रदर, नकसीर आदि में अद्वितीय है।

(२) कहरवा शमई पिष्टी २ रत्ती, वंशलोचन २ रत्ती, गाधा ४ रत्ती, दाने इलायची १ रत्ती, कामदुधा (मुक्ताहीन) १ रत्ती, नागकेशर असली २ रत्ती। सबको मिलाकर ४-४ घण्टे से देने में रक्तावरोध होता है।

(३) रक्तप्रवाह के स्थान पर शुद्ध स्फटिका २ माशा डालकर उसमें रुई का फाया लगा देने से रक्तप्रवाह बन्द हो जाता है।

विभिन्न रोगों की तात्कालिक चिकित्सा

तमक श्वास—

(१) नारियल का १ गोला लेकर थोड़ा सा छेद करें

गन्ने के सिरके का लेप का हल्दी का धुआं देना, (१०) हाथी घास का स्वरस या चकोड़ के पीस चटनी या अपामार्ग की जड़ को चटनी पीस लेप करना तथा गुग्गुल का धुआं देना, (११) मूली पीस नमक मिला लेप करना. (१२) हरताल, मैनसिल, नौसादर जल में घिस लेप करना, (१३) संखिया जल में घिस लेप करना, (१४) बुझाया हुआ चूना, नौसादर तथा कलमी शोरा जल में पीस लेप करना, (१५) लाल पुटाश (कुओं में डाली जाने वाली दवा) का चूर्ण एक चुटकी दंश स्थान पर रखकर नीबू रस या टाटरिक एसिड या साइट्रिक एसिड चौथाई चुटकी ऊपर रखकर एक-दो बूंद पानी डाल देना, एक फुदकन के साथ विष निर्मूल होता है। या नमक का घोल आंख में १-१ बूंद डालना।

इस प्रकार दादी-नानी के लटकों और पैंथरों के प्रयोग में महर्षि सुश्रुत के समय या और पहिले से प्रयोग होते रहे हैं पर मेरे अपने निजी प्रयोग में होम्योपैथिक का आर्सेनिक एल्बम ३० की एक मात्रा ३-४ गोली खिलाना मात्र बिच्छू विष निर्मूल करने में आशुबद्ध असर करती है। वैद्य बन्धु एक बार उपयोग कर देखें तो अन्य औषधियों कभी भी न छुयेंगे। ऐसा मेरा अटल विश्वास है।

इसी प्रकार आग से जलने पर केन्थरिस १० का आन्तरिक सेवन तथा केन्थरिस (तेलनी मक्खी) Q का दश प्रतिशत जल या तैल में घोल बना पट्टी रखना एक जादूगर का करिश्मा बन जाता है।

योग में अपामार्ग का तैल (लटजीरा काढ़ा उबाल, छालछील जल में पीस घोल बना तैल डाल सिद्ध कर तैल मात्र) लगाना, जलन और जलने पर चमत्कारी प्रयोग है।

जैसे राख का चूर्ण वैसलीन में घोटकर (वैसलीन दस गुनी हो) या सरसों के तैल द्वारा नमक के घोल की पट्टी रखना जलन और जले पर अक्सीर कार्य करते हैं।

शिरः शूल

वैद्य प्रदीप नारायण आयुर्वेद रत्न, विशारद, बिहार आयुर्वेदिक फार्मेसी, गुनापी (गया)

स्रोतस् अवरुद्ध हो जाने के कारण शिरःशूल आरम्भ होता है। अधिकतर प्रतिश्याय काल में शूलशामक अंग्रेजी दवा खाकर लोग प्रतिश्याय और शिरःशूल से छुटकारा पाना चाहते हैं परन्तु इससे स्रोतों में कफ अवरुद्ध होजाता है। इसके लिए निम्नलिखित उपचार अपेक्षित है।

(१) गोदन्ती भस्म ४-४ रत्ती, मिश्री और घी के साथ प्रातः सायं।

(२) षड्बिन्दु तैल दोनों नासारन्ध्रों में दिन भर में ३ बार डालें जिससे नासारन्ध्र स्रोत स्निग्ध हो जाय। ३ दिन के बाद देवदाली को पानी में फुलाकर दोनों नाक के छिद्रों में डाल दें जिससे पूरा शिरोविरेचन हो जाय। भयंकर सर्दी हो जाएगी। कण्ठ-गला सर्दी से भरभराने लगेगा। घबराने की जरूरत नहीं। दिन भर में ठीक हो जाएगा। इस प्रकार औषधि सेवनकाल में रात्रि में सोते समय पंचसकार चूर्ण खाकर कोष्ठ-शुद्धि भी कराते जाएं। कोई गर्म औषधि सेवन न करें। माथे का बाल छोटा कराकर षड्बिन्दु तैल की मालिश दो बार करावें। इस प्रकार आयुर्वेदीय औषधि उपचार से शिरःशूल बहुत शीघ्र आराम हो जाता है। यह योग सहस्रों अनुभूत है।

वृश्चिक दंश शूल—

(१) दंश स्थान पर तारपीन का तैल रुई में लगाकर रख दें। इससे पीड़ा शमन हो जायेगा।

(२) यदि शरीर से पसीना आ रहा हो और रोगी व्याकुलता अनुभव कर रहा हो तथा शरीर में कंपन हो रहा हो तो उसे २-२ रत्ती समीर पन्नग रस पान और मधु के साथ देना चाहिए।

(३) सूरण (ओल) को पीसकर दंश स्थान पर लेप कर दें। उससे बहुत जल्द ठीक हो जाएगा। ★

शक्कर, गुड जैसे अतिमधुर पदार्थ, वनस्पति घी से बनाई गई मधुर मिठाइयां अधिक और बारबार नहीं खाना चाहिए। यदि खाना भी पड़े तो तत्पश्चात् नमक मिश्रित पानी का कुल्ला करके दांत को साफ करना चाहिये। शराब, चाय, पान, तम्बाकू इत्यादि व्यसन दांत को बिगाड़ते हैं। [illegible] का कायमी उपयोग करने से दांत कमजोर पड़ जाते हैं। अतिशीत या अति गरम वस्तु खाने में और उसमें भी ठंडी गरम वस्तु का ऊपराऊपरी तुरन्त खाने से मसूढ़े की विकृति होती है जैसे कि बरफ का ठंडा पानी पीकर ऊपर अति गरम चाय पीने से दांत की रक्त वाहिनियों की तुरन्त संकोच विकास की प्रक्रिया होने से उनकी विकृतियां होती हैं। आलपीन जैसे तीक्ष्ण नोक वाले अर्थात् नुकीली वस्तु से दांत खोदने से दांत खोखला होकर दांत अधिक सड़ते हैं। शीत जल बारम्बार पीने से दांत बिगड़ते हैं। कायजी, सर्दी, अजीर्ण या कब्ज रहने से भी दांत बिगड़ते हैं. नीम, बरगद, [illegible] या बबूल जैसे कटु, तिक्त, कषाय रस वाले ताजा दातुन न करने से दांत के रोगों को अवसर मिलता है।

दांत के विभिन्न रोग हैं। उसमें भी दांत दर्द अथवा दन्तशूल तो आशुकारी चिकित्सा योग्य रोग है। दाढ़ अथवा दांत में कृमि होने से, खोखला होने से, पाक होने शोथ होने से असह्य वेदना के कारण रोगी बेचैन होजाता है तथा आराम की नींद भी हराम हो जाती है। खा-पी नहीं सकता है। तुरन्त आराम मिले इस हेतु से दन्तशूल का रोगी चिकित्सालय की ओर दौड़ता है। अथवा चिकित्सक को घर ही बुलाता है।

दन्तपाक में शोथ उत्पन्न होता है। पक रहा हो ऐसा लबकारा अथवा चसका मारता है। पूय या रक्त भी आता है। जबकि दन्त कृमि में दाढ़ खोखली हो जाती है। आहार भर जाने के कारण आहार दांत के गर्त में सड़ता है जिसके परिणाम स्वरूप शूल उत्पन्न होता है। शीतकाल में सविशेष दुःखता है। शीत जल दांत के गर्त में जाने से असह्य वेदना होती है तथा दन्तहर्ष भी होता है। दांत काला हो जाता है।

दन्तशूल की आत्ययिक चिकित्सा करना अनिवार्य है। फिर भी इसकी [illegible] चिकित्सा भी करना अत्यन्त आवश्यक है। बहुत ही सड़े हुए दांत तथा हिलने वाले दांत को किसी निष्णात् दन्त वैद्य से निकलवाना ही सर्वोत्तम इलाज है।

दन्तशूल का स्वावलम्बी उपाय निम्न लिखित है—

१—[illegible] की हींग के टुकड़े या चूर्ण को दांत के खोखले भाग में भरना चाहिए। हींग के [illegible] में रुई को भिगोकर दांत में रखना चाहिए। पोंछों से घिसना चाहिए या बाहर के प्रदेश में शोथ हो तो हींग को पानी में मिलाकर गरम करम करके लेप करना चाहिए।

२—लवङ्ग, अजवायन (अजमोदा), वचा, पिप्पली तज, कुमारी घन, इत्यादि दांत पर रखना चाहिए।

३—अफीम मिल सकती हो उसको खोखले भाग में रखकर लालास्राव बाहर निकालना चाहिए। अफीम का उपयोग अति अल्प मात्रा में बहुत ही सावधानीपूर्वक करना चाहिये क्योंकि यह विष है।

४—[illegible], अजवायन (अजमोदा) पिप्पली, हींग आदि का तैयार अर्क हो तो उसका (गडूष) करावें।

५—[illegible] तैल नामक औषधि बाजार में तैयार

मिलती है। इस इरिमेदादि तैल का कुल्ला करावें तथा रुई में भिगोकर दांत के खोखले भाग में रक्खें। इसे गरम पानी में मिलाकर कुल्ला करावें या गंडूष धारण करावें। इस तैल के अभाव में सिक्थ तैल का उपयोग कर सकते हैं।

६–त्रिफला, त्रिकटु, शुद्ध फिटकरी, शुद्ध टंकण तथा नीम के रस से कुल्ला (गंडूष) करना चाहिए।

७–कर्पूर हिंगु वटी बाजार में मिलती है उसे लाकर दांत के खोखले भाग में रखने से दन्तशूल में शीघ्र लाभ होता है।

उपरोक्त सभी उपायों से अच्छा, आशुकारी और हमेशा के लिए लाभकारी निम्नलिखित प्रयोग है। वास्तव सम्पन्न रोगियों को यह प्रयोग अवश्य करना चाहिए—

कांटा (पंचांग) के जैसे पत्र, फल, फूल, वाली कटकटैया सर्वत्र उपलब्ध होती है जिसे संस्कृत में कंटकारी, हिन्दी में भटकटैया, गुजराती में भोंयरिंगणी तथा अंग्रेजी में यलो-बेरीड नाइट शेड (Yellow-Berried Night Shade) कहते हैं। गर्मी की ऋतु में इसके फल पकते हैं। पीला पका हुआ फल एकत्र कर या पार्इंट वाला हो तो उसमें से बीज निकालकर तैल सिद्ध करना चाहिए। तैल में सर्षप, करंज, निम्ब तैल उत्तम है। इन तैलों को मिलाया जाय तो अति उत्तम है। एक छोटी सी गगरी लेकर उसको उल्टी रखकर उसके निचली सतह अर्थात् तले (पेंदे) में १ इन्च व्यास का एक गोल छिद्र करना चाहिए। गगरी के बगल में किसी भी जगह २ या ३ इन्च लम्बा और १ इन्च चौड़ा एक लम्बगोल छिद्र करें। तत्पश्चात् उस गगरी को पानी से भरी थाली में खड़ी रखना चाहिए। एक लोहे की कलछी (करछुल) में निर्धूम अग्नि रखकर उस पर बीज वाला तैल आवश्यकतानुसार रखकर जब धुआँ निकलने लगे तब तुरन्त उसे लम्बगोल वाले छिद्र से करछुल को गगरी में प्रवेश करना चाहिए। ऊपर के गोल छिद्र से जब तक धुआँ निकले तब तक छिद्र पर मुँह खोलकर दर्द करते हुए दांत को धूनी देनी चाहिए। मुँह के आस-पास कपड़ा रखें। जिससे धुआँ बेकार न निकल जाय।

पांच-दस मिनट धुआँ देने से तथा लालास्राव बाहर निकालने से भयङ्कर दन्तशूल भी अवश्य मिटता है। सूजन उतरती है। इस प्रकार २-३ बार दुखते हुए दांत को धूनी देने से कितने ही रोगियों को जीवन भर दन्त शूल से मुक्ति मिलती है। लालास्राव पड़ने से अग्नि बुझ न जाय इसका ध्यान चिकित्सक को रखना चाहिए। रोगी की आंख, नाक को धुआँ से बचावें। उपरोक्त दोनों सावधानियां चिकित्सक को रखना अनिवार्य है।

—सद्यः चिकित्सा से साभार।
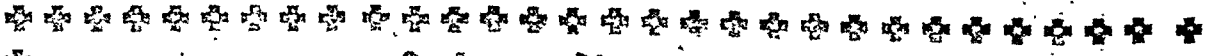
गृध्रसी—शूल में वातहर स्नेह

महारास्नादि क्वाथ में एरण्ड स्नेह को तैलपाक विधि से सिद्ध करलें तो यह तैयार हो जाता है। यह स्निग्ध एवं रेचक है। इससे एरण्ड स्नेह का रेचक गुण कुछ हीन होजाता है। इस कारण से 'वातहर स्नेह' का प्रयोग अधिक दिनों तक करने पर भी दस्त या मरोड़ का भय नहीं रहता है।

विधि—एक छोटे चम्मच से एक बड़े चम्मच तक की मात्रा में प्रातः और रात्रि को इसे इच्छानुसार दूध में मिलाकर दें या वैसे ही सेवन करायें। यह वाताशय को साफ रखता, ऊष्मा तथा स्निग्धता द्वारा वायु के प्रकोप को शमन करता है तथा वातरोगों की मुख्य चिकित्सा है।

स्व० ० शिव शर्मा आयुर्वेदाचार्य
(धन्वन्तरि के 'वात रोगांक' से उद्धृत)

वृक्कशूल

आचार्य पं. विश्वनाथ द्विवेदी

निदान—

अधिक तीक्ष्ण, उष्ण-अम्ल व क्षार के सेवन से तथा अधिक द्विदल (दालें) या प्रोटीन के सेवन से आयास तथा अभिघात के कारण वृक्क का रोग हो जाता है।

क्रियाहानि होने पर अनेक रोग जैसे प्रमेह के रोग वृक्क के रोग, रक्तह्रास, पांडुता, स्वेदावरोध, त्वचा की क्रियाहानि अधिक मधुर से बने; मूत्र, मूत्र शर्करा, मूत्राश्मरी तथा हृदय के रोग होने से वृक्क को अधिक कार्य करना पड़ता है।

यह मर्मत्रय (हृदय, मस्तिष्क, वस्ति शिर) में गिना जाता है। अतः इसके रुग्ण होने पर हृदय के रोग, मूत्र के रोग, मस्तिष्क के रोग हो जाते हैं। इनका आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है अतः एक के रुग्ण होते ही तीनों रुग्ण हो जाते हैं। यह चाहे आंशिक रूप में हो या विशिष्ट रूप में हो।

नया अन्न गुड़ के बने पदार्थ—अधिक आलस्य, अधिक सोना, दुग्ध के बने पदार्थ-दही के बने पदार्थ, मांस का सेवन अधिक करना, शर्बत अधिक पीना, सोडा क्षारीय द्रव पीना, अधिक चाय या काफी का पीना यह सब वृक्क के रोग पैदा करने में सहायक हैं। यों तो इसकी रचना प्रकृति ने ऐसी बनाई है कि यह रोगी नहीं होते बारी बारी से आराम करते हैं परन्तु अधिक काम होने पर इनमें रोग हो जाते हैं। यों तो प्रमेह इनका प्रधान रोग है। प्रभूत मूत्र होना-आविल (गंदला) मूत्र होना, अल्प मूत्र होना इसके प्रारम्भिक विकृति लक्षण हैं।

वृक्कशूल—जब वृक्क की उरसिकायें शोथयुक्त हों जब इनमें क्षय हो, जब अधिक आमिष सेवन से इनके मुख बन्द हो जाये या उरसिकायें कम काम करे, जब मनुष्य अधिक द्विदल के बने पदार्थ खाये तो इनका मुख रुग्ण हो जाता है और रक्त छनने का काम कम हो जाता है। शुक्लामेह (Albument Urea) के देर तक बने रहने व चिकित्सा न करने से। क्षारीय पदार्थ चूना, सुर्ती अधिक खाने से जो, मटर व बेसन के पदार्थ खाने से कई प्रकार के लवण मूत्र में उत्सर्जित होते हैं। क्षारों के उत्सर्जन के वृक्क खण्डों, उरसिका, व सिरामिर्डो में (जो वृक्क की रचना के अंश हैं) क्षार संचय होता है तो कालान्तर में वह जम कर धीरे-२ शर्करा व बराबर वृद्धि होने पर पथरी के छोटे कण के रूप में जमा होने लगते हैं और मूत्र के साथ उत्सर्जित होते हैं। बड़े होने पर गवीनी में अटक (फंस) जाते हैं और जब गवीनी में पतले भाग में अटक जाते हैं तब भयङ्कर शूल पैदा होता है, छोटे होने पर बराबर प्रवाहिका होने से तीव्र वेदना होती है वृक्काश्मरी का रूप बन जाता है। वेदना के मारे रोगी चिल्लाता है रोता है। यह वेदना गवीनी में रुक जाने से होती है। किन्तु वेदना का क्रम कटि, पृष्ठ, वस्ति प्रदेश मूत्रनलिका में अग्रभाग में ज्ञात होता है। वेदना के समय रोगी का मुंह लाल हो जाता है, पसीने छूटने लगते हैं और मूर्च्छित तक होजाता है। चेहरा सफेद पीला होजाता है। यह वृक्काश्मरी जनित शूल होता है। वस्ति के रोग होने पर शूल होता है यूरिया के अधिक निकलने, वृक्कशोथ (Nephritis) में भी वेदना होती है। वृक्कक्षय, वृक्क आघात व्रण में भी शूल होता है। अतः निदान होजाने पर चिकित्सा उचित होती है।

चिकित्सा—

स्नेहन, स्वेदन, औषधि (संशमन) सहयोगी अन्य औषधि प्रदान करना है।

स्नेहन—

(१) वृक्कप्रदेश या वेदनाके प्रदेश पर हिंगुत्रिगुण तैल या महानारायणतैल की मालिश कर तण्त्रान्त्रिक विधि से। स्वेदन करना होता है। प्रगाढ़ स्वेद से कुछ व्यथा कम होतीहै

(२) एरण्ड मूल—मेंहदी के पत्र, धत्तूर पत्र का कल्क बना इसे एरण्ड तेल में गर्म कर पोटली से स्वेद

लाभदायक होता है।

(३) गर्म पानी को रबर के थैले में भरकर तारपीन का तेल वेदना स्थान पर लगाकर स्वेद करना चाहिए।

औषधि—

वेदना हारक, वेदना शामक दवा देनें से वेदना कम होजाती है। धीरे-२ गवीनी में कण या अश्मरी का भाग निकल जाने से दर्द बंद होता है। अहिफेन मिश्रित दवायें या इसके सत्व से बनी औषधियां देने से वेदना शांत होती है।

१. वेदनास्थापन रस—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध कपूर और शुद्ध अहिफेन समभाग मिलाकर १-१ रत्ती की गोली बनाइये। किसी भी प्रकार की वेदना में १-२ गोली उष्ण जल से दें. दर्द बन्द होगा।

२. वेदना—आज अनेकों द्रव्य बाजार में मिलते हैं। दर्द बन्द होने पर आधुनिक चिकित्सक मारफीन व कोडीन आदि का इन्जेक्शन देते हैं। रोगी बेहोश होकर सो जाता है। पेशी शैथिल्य, सिरा शैथिल्य होकर अश्मरी मूत्राशय में पहुँचती है। वेदना शान्त होती है।

स्थायी चिकित्सा—यह शूल अच्छा होने पर भी बार-बार होता है। अतः इसकी चिकित्सा स्थायी की जाती है।

वृक्काश्मरी रोगी की खड़े होने की विशिष्ट आकृति

स्थायी चिकित्सा आयुर्वेद की ही होती है। अतः यह चिकित्सा दर्द बन्द होने के बाद करनी चाहिये।

१. तारकेश्वर रस—२ रत्ती की मात्रा में वरुणादि कषाय ५ तो. के साथ सेवन करें। लगातार सेवन से वृक्कशोथ समाप्त होकर अश्मरी शर्करा बनकर निकल जाती है। मार्ग साफ हो जाता है। (यह रस आप 'निर्मल आयु० संस्थान' से प्राप्त कर सकते हैं)

२. बदरीपाषाण भस्म—२ रत्ती की मात्रा में वरुणादि कषाय से लगातार २१ दिन या ४१ दिन देवें अश्मरी बनना बन्द हो जाती है। वृक्कदोष रहित और क्षार संग्रह नष्ट हो जाता है।

३. श्वेतपर्पटी १ माशा, बदरीपाषाण भस्म २ रत्ती की १ मात्रा बनाकर ऐसी दो मात्रायें नित्य लें गलकर वह जायगी व गवीनी से निकल कर वस्ति चली जायगी और मूत्र के साथ बाहर आ जायगी।

यह नं. १-३ के योग बहुत रोगियों पर परीक्षित हैं। सब योग मूत्रल हैं परन्तु यह सबसे अधिक मूत्रल है।

आयुर्वेद में तीव्र मूत्रल योग नहीं हैं। पंचतृण कषाय, वरुणादि कषाय पाषाण भेद रस, पाषाण भेद के मूल का चूर्ण मूत्रल हैं परन्तु अधिक मूत्रल नहीं है। आधुनिक मूत्रल लैसिक्स के समान कोई योग आयुर्वेद के नहीं ठहरते किन्तु द्विगुण मात्रा में नं. ३ का मूत्रल व पाषाण भेदक है।

४. वृक्कशोथ में वरुणादि कषाय शोथ नाशक व मूत्रल है तथा एंटीसेप्टिक है। अतः बल्य व मूत्रल देकर वृक्क को शक्तिशाली बना सकते हैं।

वृक्क को बलदायक दोषहर रस—

(१) वातकुलान्तक रस—१ से ३ रत्ती सब बलदायक शोथहर वेदनाहर रस है।

(२) वसंत तिलक—यह वेदनाहर, शोथहर, वृक्क-बल्य तथा वृक्कफार्य नियंत्रक रस है। इसे २-३ रत्ती तक की मात्रा में वरुणादि कषाय के साथ प्रयोग करें।

(४) वसंत कुसुमाकर रस—वृक्कशोथहर, वृक्कबल्य व बड़ी मात्रा (३-४ रत्ती) में मूत्र के छनने की शक्ति का नियामक, मूत्र अल्प लाने वाला बलदायक और मूत्र संग करने वाला रस है। वृक्काश्मरी, वृक्कशूल के बाद देवें।

(५) बहुमूत्रांतक रस—वृक्कबल्य और वृक्कशूलहर भी है। बड़ा गोक्षुर बीज चूर्ण के साथ लाभप्रद है।

डा० दाऊदयाल गर्ग ए०एम०बी०एस०, आयुर्वेद बृहस्पति सम्पादक-'धन्वन्तरि'
गुलजार नगर, रामघाट रोड, अलीगढ़।

कभी कभी अचानक मूत्राघात मूत्र प्रसेक नलिका में आक्षेप (spasm) होने से या प्रदाहजनित शोथ के कारण होता है। शनैः-शनैः मूत्राघात होने के अनेकों कारण हैं। इस मूत्राघात का निश्चित कारण जानने हेतु लिंग एवं आयु भेद से निदान में सहायता मिलती है जैसे कि बचपन में मूत्रावरोध मूत्रपथ में अश्मरी के अवरोध के कारण, मूत्रपथ में किसी धात्वीय पदार्थ के अवरोध के कारण, मूत्र प्रसेक नलिका में जन्मजात विकृति के कारण, प्रकश (phimosis) या शिश्न में किसी बन्धन के कारण हो सकता है। स्त्रियों में ऐसे गर्भाशय अर्बुद के कारण, जिसका कि दबाव मूत्राशय ग्रीवा पर पड़ता है, योषापस्मार (हिस्टेरिया) के दौरे में मूत्र त्याग करते ही क्षोभजनित प्रत्यावर्तित क्रिया के कारण हो सकता है, नवयुवकों में या मध्यवय में मूत्रावरोध मूत्र प्रसेक नलिका संकोच, पूयमेह (सुजाक), श्लैष्मिक कला में प्रदाह, एकदम शीत लग जाने पर मूत्र प्रसेक नलिका में आक्षेप (spasm) के कारण हो सकता है। वृद्धावस्था में मूत्रावरोध पौरुष ग्रंथि वृद्धि के कारण या मूत्राशय की निष्क्रियता के कारण हो सकता है। अश्मरी, जलापवृक्कता, ऐसा अर्बुद जो मूत्रपथ पर दबाव डालें, सुषुम्ना या मस्तिष्क पर आघातजनित मूत्राशय का पक्षाघात या श्रोणि प्रदेश में किये गए किसी वृहद शल्य कर्म के पश्चात् जनित प्रत्यावर्तित क्रिया के फलस्वरूप किसी भी वय में मूत्रावरोध हो सकता है।

इन उपरोक्त कारणों से हुए मूत्रावरोध की चिकित्सा मुख्यतः शल्यकर्म है लेकिन कोई भी चिकित्सा करने से पूर्व रक्तगत यूरिया अवश्य ज्ञात कर लें। यदि यह १०० मि० लि० में ७० मि. ग्राम या इससे भी अधिक है तो समझ लें कि वृक्क के कार्य में अवरोध उत्पन्न हो गया है जिसके कारण कोई भी आपरेशन जीवन के लिए घातक रहेगा। ऐसी अवस्था में कैथीटर द्वारा मूत्राशय को रिक्त कर लें। इसके कुछ काल पश्चात् कोई आपरेशन करना सुरक्षित रहता है। आक्षेप (स्पाज्म) की स्थिति में गर्म जल स्नान या उदर पर गर्म सेंक से भी लाभ होता है। हिस्टेरिया या नाड़ी जन्य अन्य स्थितियों को तदनुसार चिकित्सा करें। मूत्राशय निष्क्रियता या अन्य किसी भी मूत्राघात में कुपीलु एवं धुस्तूर के मिश्रित योग या बिजली की मशीन का एक पोल भगास्थिसंधि के ऊपर, दूसरा पोल उदर पर नाभि के नीचे लगाकर चिकित्सा करें।

यदि आपके पास रोगी यह शिकायत लेकर आता है कि उसने दीर्घकाल से मूत्र त्याग नहीं किया है, मूत्राशय भी परीक्षा करने पर तनावयुक्त नहीं है, कैथीटर डालने पर मूत्र नहीं निकलता या बहुत थोड़ा मूत्र निकलता है तो इस स्थिति को पूर्ण मूत्राघात (Anuria) कह सकते हैं। यह एक बहुत गम्भीर अवस्था है तथा इस पूर्ण अमूत्रता का निदान करने से पूर्व कैथीटर अवश्य प्रविष्ट करना चाहिए। पूर्ण अमूत्रता के दो कारण या दो भेद हैं—१. मूत्रपथ में किसी अवरोध के कारण २. वृक्कों के कार्यावरोध के कारण। वृक्कों में मूत्र का निर्माण ही नहीं होता जिससे मूत्राशय रिक्त रहता है और मूत्र त्याग नहीं होता। इसके बाद वाली स्थिति को ही वास्तविक अमूत्रता या वास्तविक मूत्राघात कहा जाता है।

१: अवरोधजन्य मूत्राघात—इसमें वृक्क सामान्यतः स्वस्थ होते हैं लेकिन दोनों मूत्र नलीनी नलिकाओं में निम्न कारणों से अवरोध हो सकता है—

अ—वृक्काश्मरी द्वारा दोनों मूत्र गवीनी नलिकाओं में अवरोध ।

ब—एक मूत्र गवीनी नलिका में वृक्काश्मरी के कारण अवरोध तथा उसकी प्रत्यावर्तित क्रिया के परिणाम-स्वरूप दूसरी मूत्र गवीनी नलिका में आक्षेप (spasm) के कारण ।

स—दोनों मूत्र गवीनियों का अवरोध सल्फोनामाइड क्रिस्टल्स (विशेषतः सल्फाडायजिन, सल्फाथियाजोल या अन्य किसी सल्फा ग्रुप की औषधि का दीर्घकाल तक सेवनोपरान्त) के वृक्क से स्रवित होने के कारण भी हो सकता है । यही कारण है कि प्रत्येक सल्फा औषधि को सेवन करते समय उसके साथ-साथ सोडाबाईकार्ब या एल्कलाइजर भी अवश्य देने का निर्देश रहता है ।

द—मूत्राशय शीर्षाधार पर कोई अर्बुद

ई—जन्मजात विकृति में एक ही मूत्र गवीनी नलिका होती है और वह किसी कारण अवरुद्ध हो जाय ।

जब अवरोध केवल एक मूत्र गवीनी नलिका में होता है तो मूत्र स्वच्छ, अल्प आपेक्षिक घनत्व वाला तथा एल्ब्यूमिन रहित होता है । ऐसी अवस्था में कोई विशेष लक्षण उत्पन्न नहीं होता लेकिन दीर्घकाल तक एक ही वृक्क के अधिक कार्यरत रहने के कारण दूसरे वृक्क की वृद्धि हो जाती है तथा पश्चात् काल में उससे जलापवृक्कता उत्पन्न हो सकती है । यदि किसी कारण से दोनों मूत्र गवीनी नलिकाओं में अवरोध होता है तो उससे गुप्त यूरीमिया (Latent uraemia) की स्थिति पैदा होती है। उसके लक्षण हैं—रुग्ण 'लगभग एक सप्ताह से मूत्र नहीं हुआ' यह शिकायत लेकर आता है, उसे मामूली अवसाद लेकिन १०-१२ दिन होने पर बेचैनी, नेत्र तारक संकुचित, शरीर का तापक्रम सामान्य से कम, जिह्वा शुष्क गहरी बादामी तथा शरीर में चींटी जैसी रेंगना प्रतीत होना आदि, कुछ स्थितियों में इतनी गम्भीर का प्रकार का वमन होता है कि उसमें आन्त्रावरोध (intestinal obstruction) का भ्रम होता है । १० से १४-१५ दिन तक पूर्ण अमूत्रता रहने पर मृत्यु अचानक हो ही जाती है लेकिन रुग्ण का होशोहवास अन्तिम समय तक ठीक रहता है ।

२. अवरोधरहित पूर्ण अमूत्रता—इसके कारण हैं—

(अ) तीव्र वृक्क शोथ, अथवा जीर्ण वृक्क की अन्तिम स्थिति (मृत्यु से १२-२४ पूर्व)

(ब) मधुमेह अन्य संन्यास का एक मूत्र सम्बन्धी प्रकार।

(स) हृदयावसाद की स्थिति जिसमें कि मूत्राघात भी एक लक्षण रहता है जैसे कि औदरिक शल्य कर्म या आघात, गम्भीर अग्निदग्ध, गम्भीर अतिसार या गम्भीर वमन के बाद तीव्र ज्वर या शोथ या अचानक रक्तपात न्यून होने की स्थिति में ।

(द) फिनोल, नाग, फोस्फोरस, तारपीन का तेल या किसी सल्फा औषधि द्वारा उत्पन्न विषाक्तता ।

(इ) अत्यन्त विरल अवस्था में दोनों वृक्क रक्तवाहिनियों में रक्त के थक्का द्वारा अवरोध

(ई) रोगी में ग्रुप से मेल न खाते हुए रक्त का रोगी में आदान कराना

(ग) सिस्टोस्कोप या कैथीटर या किसी अन्य शलाका के मूत्रपथ में किसी भी कारण से प्रवेश के बाद

(ह) कुचलने वाली किसी चोट के कारण

इन उपरोक्त कारणों में से कोई भी कारण हो साधारणतया उसके लक्षण होते हैं—जो भी थोड़ा बहुत मूत्र त्याग होता है बहुत गहरे रंग का तथा अधिक आपेक्षिक घनत्व के कारण अति संपृक्त (concentrated) होता है और उसमें एल्ब्यूमिन, निर्मोक (कास्ट्स) हो सकते हैं जोकि प्रदर्शित करते हैं कि अमूत्रता की यह स्थिति वृक्क के रुग्ण होने से है। अचानक वमन, अतिसार या अधिक पसीना आना हो सकता है । इसके अतिरिक्त तीव्र यूरीमिया के लक्षण भी हो सकते हैं ।

आघात—किसी दुर्घटना में पैर के गम्भीरतया कुचल जाने के बाद मूत्राघात हो सकता है । इसमें हृदयावसाद के कारण मूत्र की मात्रा एकदम काफी कम हो जाती है । यह मूत्र गहरे बादामी रंग के निर्मोक से युक्त होता है तथा उसमें एल्ब्यूमिन की भी काफी मात्रा होती है। प्रायः इसके बाद पूर्ण मूत्रावरोध हो जाता है जिससे गम्भीर वमन एवं तृष्णा उत्पन्न होती है और तत्पश्चात् ७-८ दिनों में मृत्यु हो जाती है ।
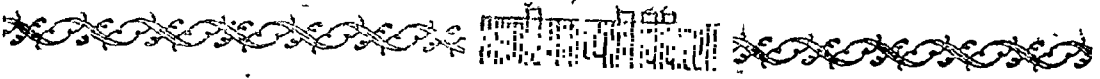
साध्यासाध्यता—अमूत्रता की स्थिति एक गम्भीर अवस्था है जिसकी कि गम्भीरता बहुत कुछ अमूत्रता उत्पन्न करने वाले कारण पर निर्भर करती है। अवरोधजन्य अमूत्रता में यदि एक ओर अवरोध है लेकिन दूसरी ओर का वृक्क पूर्ण स्वस्थ है तो यह सर्वाधिक सुसाध्य स्थिति है। यदि अवरोध दोनों मूत्र गवीनियों पर है तथा वह दूर नहीं होता या दूर नहीं किया जासकता तो जिस समय भी अवरोध उत्पन्न हुआ है उसके १०-१२ दिनों में रुग्ण की मृत्यु निश्चित् है। अवरोधरहित अमूत्रता में या तो कुछ ही दिनों में सुधार प्रारम्भ हो जाता है या कुछ ही दिनों में मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—

गर्म वायु गर्म चादर स्नान या अन्य प्रस्वेदकों के योग में त्वचा को उत्तेजित कर उससे पसीना निकाल कर विषमयता की स्थिति काफी हद तक टाली जासकती है। अवरोधरहित तीव्र अमूत्रता की स्थिति में मुख द्वारा द्रवों का अधिक प्रयोग करावें या ५% डेक्स्ट्रोज विलयन को शिरा द्वारा प्रविष्ट करें। इस डेक्स्ट्रोज विलयन में ४% शक्ति वाला आधे से १ पिन्ट (१ पिंट=२० औंस) सोडियम सल्फेट विलयन अथवा डेक्स्ट्रोज सातूशम आधा सक्रोज विलयन मिला सकते हैं जोकि प्रायः शरीर भार के अनुपात में प्रायः १ मिलि॰ प्रति पौंड होना चाहिए। इन स्थितियों में जबकि रक्तगत लवणों की मात्रा न्यून हो जैसो कि प्रायः दीर्घकाल तक सल्फा औषधियों के सेवन के पश्चात् या गलत ग्रुप का रक्तादान कराने पश्चात् होता है तो क्षारीय औषधियों का सेवन कराना उपयुक्त रहता है। तीव्र आतिसारक औषधियों द्वारा रेचन कराके भी शरीर विषों का निष्कासन किया जा सकता है। कमर पर कपिंग ग्लास द्वारा कपिंग करने पर स्थानीय प्रदाह कम होता है और उससे सुधार लाया जा सकता है। सौषुम्निक संज्ञाहरण द्वारा या प्रोकेन के सुषुम्ना के दोनों ओर प्रक्षेपण द्वारा वृक्कों में जाने वाले सकोचोत्पादक नाड़ी सूत्रों को निष्क्रिय करके भी अच्छा लाभ प्राप्त किया जा सकता है। वृक्कों पर से वृक्कावरण को हटाकर अच्छा लाभ प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि इससे वृक्कों की कार्याविक्यता के कारण स्वयं की आकार वृद्धि के लिए पर्याप्त सुधारात्मक स्थिति प्राप्त होती है जिससे कि वृक्कों के कार्य में सुधार आता है। यदि यह अमूत्रता सल्फा औषधि के सेवन के कारण है तो मूत्र गवीनी कैथीटर द्वारा सोडियम बाई कार्बोनेट के २.५% शक्ति के विलयन को प्रविष्ट कराये जिससे मूत्र गवीनियों में रुकी शर्करा हट जाती है। अन्यथा वृक्कोच्छेदन की आवश्यकता होती है। वैसे अवरोधजन्य अमूत्रता की स्थिति में उपयुक्त प्रकार का शल्य कर्म किया जाना चाहिये।

आयुर्वेद मतानुसार मूत्राघात

आयुर्वेद में मूत्राघात १३ प्रकार के माने जाते हैं। सुश्रुत ने ११ प्रकार के मूत्राघात बताये हैं जिनमें मूत्रोकसाद दो मानकर १२ हो जाते हैं। चरक ने वाताष्ठीला और माना है। यह प्रकार निम्न हैं—

१. वात कुण्डलिका—रूक्षता से या मल-मूत्रादि के उपस्थित वेगों को धारण करने से वस्ति में आश्रित वायु मूत्र को साथ में लेकर अर्थात् रोक कर विरुद्ध गति हो कर वर्तुलाकार बनकर गति करती है जिससे मूत्र थोड़ा थोड़ा वेदना सहित एवं धीरे धीरे प्रवृत्त होता है। इस अवस्था को वात कुण्डलिका कहते हैं। यह अति कष्टसाध्य है।

२. वाताष्ठीला—गुदा और मूत्राशय के मध्य में स्थित अपान वायु स्थिर, ऊंची उठी हुई, अष्ठीला (पत्थर) के समान कठोर, स्थिर, ऊंची उठी ग्रन्थि उत्पन्न होती है जिसके कारण मल मूत्र-वायु का अवरोध होता है, मूत्राशय में आध्मान होता है, वस्ति में (वस्ति प्रदेश में) तीव्र वेदना होती हैं। सुश्रुत ने इसे केवल अष्ठीला कहा है।

३. वात वस्ति—मूत्र के वेग को बलात् धारण करने से वस्ति-स्थित अपान वायु वस्ति मुख को बन्द कर देती है जिससे मूत्र की रुकावट होकर अत्यन्त कृच्छ्रसाध्य वात वस्ति रोग उत्पन्न होता है। इसमें वस्ति (मूत्राशय) और कुक्षि में वेदना होती है।

४. मूत्रातीत—मूत्र के प्रवृत्तोन्मुख वेग को रोक कर जब मनुष्य पुनः प्रवृत्त करना चाहता है तब उसका मूत्र प्रवाहित नहीं होता। यदि आता भी है तो धीरे-२ थोड़ा

थोड़ा करके बार-बार और रुक-रुककर आता है।

५. मूत्रजठर—वातजन्य उदावर्त के कारण मूत्र के वेग रुक जाने से कुपित अपान वायु उदर को अतिशय रूप से व्याप्त हो जाती है जिससे नाभि के नीचे तीव्र वेदना युक्त आध्मान होता है। इसमें उदावर्त के कारण मूत्र मलवाही स्रोत बन्द हो जाते हैं।

६. मूत्रोत्सङ्ग—विमार्गगामी अपान वायु के कारण मूत्र प्रवाहण करते समय वस्ति में या मूत्र प्रसेक नलिका में अथवा मेहन मणि (शिश्नाग्र) में मूत्र सहसा रुक जाये, अथवा प्रवाहण करते समय रक्त सहित थोड़ा-२ धीरे-२ वेदनारहित मूत्रोत्सर्ग होता है तो इसे मूत्रोत्सङ्ग कहते हैं।

७. मूत्र क्षय—रूक्ष एवं क्लांत (थकित) शरीर वाले पुरुष की वस्ति में स्थित वात-पित्त मिलकर कष्टप्रद दाह एवं वेदना उत्पन्न करते हैं जिसे मूत्रक्षय या मूत्र संक्षय कहते हैं।

८. मूत्र ग्रन्थि—वस्ति द्वार के अन्दर गोल, छोटी, स्थिर वेदनासहित, मूत्रमार्ग को रोकने वाली तथा अश्मरी के अन्य लक्षणों से युक्त ग्रन्थि पुरुषों में सहसा उत्पन्न हो जाती है। इसे मूत्र ग्रन्थि कहते हैं। चरक ने सि० स्थान के अध्याय ९/४० में इसे रक्तयुक्त बतलाया है।

९. मूत्र शुक्र—जो मनुष्य मूत्र के वेग को धारण करके सम्भोगरत होता है उसमें वीर्य के साथ मूत्र भी सहसा प्रवृत्त होता है अथवा कभी मूत्र से पहले तो कभी मूत्र के बाद वीर्य प्रवृत्त होता है। इसे मूत्रशुक्र कहते हैं। इस रोग में मूत्र का वर्ण राख सदृश होता है।

१०. उष्णवात—व्यायाम, यात्रा, आतप आदि से ग्रस्त या कुपित वायु से आवृत पित्त वस्ति में पहुँच कर वस्ति, मेहन तथा गुदा आदि में जलन करता हुआ मूत्रको प्रवृत्त कराता है। इसे उष्णवात कहते हैं। इसमें मूत्र का वर्ण हल्दी जैसा पीला या रक्त मिश्रित होने से रक्ताभ तथा कभी-२ केवल रक्त का ही उत्सर्ग होता है। यह कठिनाई से प्रवृत्त होता है।

११. मूत्रोकसाद—यह दो प्रकार का होता है—(अ) पित्तजन्य—जब मूत्र विशद (पिच्छिल के विपरीत), पीत वर्ण, दाहयुक्त एवं बहल, घट्ट होता है, सूखने पर गोरोचन के समान वर्ण का चूर्ण जैसा हो जाता है।

(ब) कफजन्य—जब मूत्र पिच्छिल, घट्ट, श्वेत वर्ण का होता है तथा कठिनाई से प्रवृत्त होता है, सूखने पर शंख के चूर्ण के समान होता है। यह कफजन्य होता है।

इस प्रकार से यह मूत्राघात के १२ भेद कहे गये हैं। मूत्रकृच्छ्र सुश्रुत ने आठ प्रकार के बताये हैं। मूत्राघात में मूत्रप्रवृत्ति नहीं होती लेकिन मूत्रकृच्छ्र में मूत्र प्रवृत्ति तो होती है लेकिन अत्यन्त कठिनाई एवं वेदना के साथ एवं अल्प मात्रा में होती है। इसके आठ भेद निम्न प्रकार हैं—

वात-पित्त-कफ से तीन, चौथा सन्निपात से, पाँचवाँ अभिघात से, शकृत के कारण छठा, अश्मरी और शर्करा से सातवें एवं आठवें प्रकार का होता है। इनके पृथक पृथक लक्षण निम्न प्रकार हैं—

१. वातजन्य मूत्रकृच्छ्र में वायु मुष्क, मेहन, मूत्राशय को पीड़ित करके कठिनाई से थोड़ा-थोड़ा मूत्रोत्सर्ग करता है, फटने के समान वेदना होती है अर्थात् ऐसा प्रतीत होता है जैसे मुष्क, मेहन, वस्ति (मूत्राशय) फट जावेंगे।

२. पित्तजन्य—मुष्क, मेहन, वस्ति में अग्निदग्धवत् दाह, हल्दी की भांति पीताभ या उष्ण रक्ताभ मूत्र आता है।

३. कफजन्य—मुष्क, मेहन, वस्ति में भारीपन, स्निग्ध श्वेत एवं अनुष्ण (किंचिदुष्ण) मूत्र का त्याग करता है। रोगी को मूत्र त्याग के समय हर्ष (रोमांच) होता है।

४. सन्निपातज—रोगी दाह, शीत, वेदना से पीड़ित नाना वर्ण का (अर्थात् दोषों की उल्वणता के आधार पर पीत, रक्त अथवा श्वेताभ) बार-बार अति कष्टपूर्वक मूत्र त्याग करता है। रोगी को ऐसा प्रतीत होता है कि अन्धकार में प्रवेश कर रहा है अर्थात् आंखों के आगे अंधेरा सा छा जाता है।

५. अभिघातज मूत्रकृच्छ्र—मूत्रवाही स्रोतों में किसी शल्य के आघात से अथवा चोट लग जाने पर अतीव वेदना से युक्त मूत्राघात या मूत्रकृच्छ्रता उत्पन्न होती है। इसमें वात वस्ति के समान लक्षण होते हैं।

६. यदि मल का अवरोध होता है तो वायु विपरीतगामी होकर शूल, आध्मान एवं मूत्रोत्सङ्ग उत्पन्न करता है।

७,८—अश्मरी एवं शर्करा से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र—इन दोनों के कारण और लक्षण समान होने के कारण सुश्रुत ने इनका वर्णन एक साथ किया है। कफ से पित्त का परिपाक होने के समय वायु से टुकड़े टुकड़े होने पर कफ के छोटे-छोटे टुकड़े शर्करा नाम से पुकारे जाते हैं। इनके कारण हृदय में पीड़ा, कम्पन, कुक्षि में शूल, अग्निमन्दता, मूर्च्छा और तीव्र मूत्राघात होता है। यदि मूत्र के वेगपूर्वक उत्सर्जन से इस शर्करा का निष्क्रमण हो जाता है तो वेदना भी शान्त हो जाती है। लेकिन यह वेदना उसी समय तक शान्त रहती है, जब तक कि शर्करा का कोई बड़ा टुकड़ा मूत्र स्रोत (मूत्र गवीनी नलिका) में पुनः नहीं फंसे। इसको शर्कराजन्य मूत्राघात कहते हैं। शर्करा ही बड़ी होकर अश्मरी कहलाती है। कारण एवं लक्षण एक समान हैं।

चिकित्सा—

मूत्राघात चिकित्सा—कषाय, कल्क, औषधियों से सिद्ध घृत, भक्ष्य, लेह, दुग्ध, क्षार, मद्य, आसव, स्वेदजनन [कर्म], उत्तरबस्ति और अश्मरीनाशक विधियों से इसकी चिकित्सा करनी चाहिये। मूत्रजन्य उदावर्त के योगों को इसमें प्रयोग करें। ककड़ी, खीरे आदि के बीजों का कल्क [१] तोले में थोड़ा सा सैंधानमक मिलाकर कांजी के साथ पीवें। सौवर्चल-लवणयुक्त सुरा का पान करें। केशर को [म]धु से चाटकर ऊपर से रात को बनाकर ओस में रखकर [ठण्डा] किया शर्बत पीयें।

अनार का रस, इलायची, जीरा, सोंठ, किंचित् नमक [सु]रा में मिलाकर रोगी को पिलावें। विदारिगन्धादि वर्ग, [गोख]रू मूल या गोखरू को दूध में मिलाकर तथा दूध से [चौ]गुना पानी मिलाकर क्षीर पाक विधि से पाक करे [त]था जब दूध मात्र शेष रहे तो शीतल करके शर्करा [ए]वं मधु मिलाकर पीने से वात एवं पित्तजन्य मूत्राघात [न]ष्ट होता है।

मूत्र वेदना की शान्त्यर्थ गधे और घोड़े की लीद को [रस] में निचोड़ कर पिलावें। यह सुश्रुतोक्त योग है [लेकि]न आज के इस युग में इसका प्रयोग श्रेयस्कर प्रतीत [न]हीं होता।

नागरमोथा, हरड़, देवदारु, मूर्वा, मुलेठी समान मात्रा में लेकर पीसकर चटनी जैसी बनाकर १।।-२ माशे की मात्रा में चाटने से मूत्र दोषों का निवारण होता है। अथवा मूत्र वेदना की शान्ति के लिये हरड़-बहेड़ा आंवला समान मात्रा में मिला बारीक चूर्ण कर थोड़ा सा नमक मिलाकर शीतल जल से ही लें।

मुनक्का का कल्क १ तोला भर लेकर जल मे भिगो कर रात भर पड़ा रहने दें तथा प्रातःकाल ही इसे ठण्डा ठण्डा ही पीवे तो मूत्र की वेदना शान्त होती है। कटेरी का स्वरस आधा तोले की मात्रा में प्रात: पीने से भी मूत्र दोषों का निवारण होता है। अथवा ताजे आंवले को कुचल कर निचोड़कर उनका ४ तोला रस निकाल कर उसमें मधु मिलाकर पान करने से मूत्रजन्य वेदना की शान्ति होती है। आंवले के स्वरस में छोटी इलायची का चूर्ण मिलाकर पीने से भी यही लाभ होता है। ताड़ की ताजी जड़ को खीरे के रस या शालि चावलों के ठण्डे पानी में पीसकर पिये या खीरे को दूध के साथ प्रातःकाल पिये तो मूत्र दोषो का निवारण होता तथा वेदना शान्त होती है।

काकोल्यादि मधुर गण से सिद्ध दूध में घृत मिलाकर पीने से मूत्र दोषों एवं अश्मरी का निवारण होता है। बला, गोखरू, कौंच के बीज, तालमखानां, शालि चावल, जल गण्डीर (या दूर्वा), देवदारु, चित्रक मूलत्वक्, बहेड़े की गुठली—इनको सुरा से पीसकर सुरा के साथ ही पीवे तो मूत्र दोषों का शोधन होकर अश्मरी नष्ट होती है।

पाटला के क्षार को जोकि जल में सात बार निथार कर बनाया गया हो, उसमें थोड़ा सा तैल मिलाकर लेने से अथवा नरसर, पाषाण भेद, दर्भ (दाभ), ईख, खीरा, ककड़ी एवं विजयसार को दूध मे पकाकर ठण्डाकर उसमें यथेच्छ शर्करा मिला घी मिलाकर पीने से मूत्र दोषों का निवारण होता है। कुछ आचार्य विजयसार के स्थान पर खीरा या ककड़ी के बीजों का निर्देश करते हैं क्योंकि विजयसार मूत्रल तो है नहीं जबकि खीरा एवं ककड़ी के बीज मूत्रल हैं।

पाटला, यवक्षार, पारिभद्र, तिल इनके क्षारोदक में

दालचीनी, इलायची, पीपल का चूर्ण मिलाकर चटनी के समान चाटें।

मूत्र दोषों से पीड़ित मनुष्य को स्नेहन और स्वेदन देकर पश्चात् विरेचन देवें। इस प्रकार शोधन कर्म के पश्चात उत्तरवस्ति देने से लाभ होता है। अति संभोग के कारण जिस पुरुष को रक्त सहित या केवल रक्त ही मूत्रमार्ग से उत्सर्जित होता है उसे मैथुन से निवृत्त कराकर बृंहण कर्म करायें तथा उपरोक्त विधि से मुर्गे की वसा या तैल से उत्तरवस्ति दें।

मधु १ भाग, खालिस देशी घी दो भाग, शर्करा, मुनक्का का चूर्ण १-१ भाग, कौंच, पीपल, तालमखाना प्रत्येक आधा-आधा भाग, मिलाकर एक डण्डे से खूब मथे, इसको लगभग १ तोला की मात्रा में चाटने से मूत्र दोष जो अन्य दोषों से शांत नहीं होते इससे शांत होते हैं लेकिन इसके सेवन से पूर्व वमनादि से शरीर की शुद्धि कर लेनी चाहिए। बन्ध्या स्त्री को भी इस योग का सेवन कराने से गर्भधारणा होती है।

सुश्रुतोक्त बलाघृत के सेवन से मनुष्य मूत्र दोषों से मुक्त हो जाता है। वंशलोचन एवं शर्करा का चूर्ण समान मात्रा में मिलाकर शहद से चाटकर पीछे से दूध पीने से मनुष्य मूत्रदोषों एवं शुक्रदोषों से मुक्त हो जाता है। अति संभोग के कारण क्षीण मनुष्य को यह योग ओजस्वी एवं बलवान बनाता है। सुश्रुतोक्त महाबलाघृत में शर्करा एवं वंशलोचन मिलाकर चटाने से वात कफ पित्त से दूषित शुक्र वाले, रक्त दूषित दोषों का निवारण होता है। यह जीवनीय, बृंहण एवं बलवर्धक है। मेध्य एवं स्त्री सेवन करें तो उसे पुत्र प्राप्ति होती है।

मूत्रकृच्छ्रता चिकित्सा—

वातादि भेद से सुश्रुतोक्त अश्मरी चिकित्सा को उसकी स्नेहन आदि विधि सहित प्रयोग करें। गोखरू, पाषाण भेद, कुम्भी (जल कुम्भी), हाऊबेर, कटेरी, बला, शतावरी, रास्ना, वरुण, विदारि गन्धादि गण की औषधियों से घृत को सिद्धकर पिये—इसीसे उत्तरवस्ति एवं अनुवासनवस्ति देवे तो वातजन्य मूत्रकृच्छ्र शांत होता है। गोखरू के स्वरस में गुड़, दूध और सोंठ के साथ तैल सिद्ध कर अनुवासन एवं उत्तरवस्ति देने तथा पान कराने से वातज मूत्रकृच्छ्रता का निवारण होता है।

पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्रता के निवारणार्थ तृणोत्पलादि, काकोल्यादि, न्यग्रोधादि गण से सिद्ध घृत या दुग्ध को पान करावें, उत्तरवस्ति एवं अनुवासनवस्ति देवें। पित्त मूत्रदोषों के निवारणार्थ ईख, दूध एवं द्राक्षा से युक्त योग द्वारा विरेचन दें।

कफजन्य मूत्रकृच्छ्र में सुरसादि, ऊषकादि, मुस्तादि वरुणादि गण से सिद्ध तैल तथा इन्हीं गणों से सिद्ध यवागू (लपसी) का प्रयोग करायें।

सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्रता में दोषों की उल्बणता देख कर तदनुसार यथोचित चिकित्सा करें।

अभिघातज मूत्रकृच्छ्रता निवारणार्थ सद्योव्रण की चिकित्सा करें। तात्पर्य यह है कि अभिघात से जो भी अंग विकृत हुआ है उसके अनुसार उचित चिकित्सा करें।

शुक्रजन्य मूत्रकृच्छ्र स्वेदन, अवगाहन, अभ्यंग, वस्ति, धूम्र क्रिया विधि से वातनाशक चिकित्सा करें।

अश्मरीजन्य एवं शर्कराजन्य मूत्रकृच्छ्र में अश्मरी एवं शर्करा की विधि से चिकित्सा करनी चाहिए। ✦

— पृष्ठ २१७ का शेषांश —

सभी औषधि का मिश्रण तैयार करके उसे पानी के अनुपान के साथ देना चाहिए।

'बहुत बार इस योग द्वारा चमत्कारिक परिणाम प्राप्त किया था। इस विशेष केस में इतना अच्छा एवं आशुकारी परिणाम देखकर मैं भी आश्चर्यचकित हुआ। २-३ मिनट में ही श्वास की गति मन्द होने लगी। पसीना भी कम होने लगा। रोगी व्यवस्थित बैठकर पसीना पोंछने लगा। जी जान आयी, २-३ डकारें आयीं। जी को शांति हुई। रोगी के मुरझाये चेहरे पर प्रसन्नता झलक उठी। ऐसा कि रोगी बीमार था ही नहीं। वह तो बिल्कुल स्वस्थ था।

'यह देशी दवा थी।' रोगी ने विस्मयता से पूछा।

हां इस औषधि से तो मैंने कितने ही इस प्रकार के श्वास रोगियों को अच्छा किया है।

एफिड्रीन की जगह अब यही औषधि योग मैं लूंगा। जाते-२ रोगी हंसते हुए मुंह से कह रहा था। ★★

रक्तमेह या रक्तमूत्र

डा० दाऊदयाल गर्ग ए०एम०बी०एस०, आयुर्वेद बृहस्पति, सम्पादक–'धन्वन्तरि'
गुलजार नगर, रामघाट रोड, अलीगढ़।

जब भी कोई रुग्ण रक्त मिश्रित मूत्रत्याग की शिकायत करे तो उससे प्रश्न द्वारा यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मूत्र में रक्त प्रारम्भ में आता है या अन्त में आता है या धूम्र वर्ण का मूत्र आता है जोकि रक्तमिश्रित मूत्र का द्योतक है। मूत्र में हीमोग्लोबिन भी आ सकती है इसका भी ध्यान रखना चाहिए। स्त्रियों में मासिक धर्म के समय मासिक धर्म का रक्त मूत्र में मिल सकता है जिससे रक्तमूत्रता का भ्रम होता है। इसके निवारण हेतु कैथीटर द्वारा मूत्र उपलब्ध कर परीक्षा करनी चाहिये। यदि रक्त चमकीले लाल रङ्ग का है तथा मूत्र त्याग के प्रारम्भ में ही आता है तो अधिक संभावना उसके मूत्र प्रसेक नलिका या पौरुष ग्रन्थि से आने की है। ऐसी स्थिति में मूत्र पथ पर किसी आघात का या पूयमेह का इतिहास प्राप्त होगा। पौरुष ग्रन्थि के शोथ या उसमें विद्रधि होने पर स्थानीय दर्द या स्पर्शासह्यता ज्ञात होगी त था गुदा में दाह भी हो सकता है। मूत्र पथ में अर्बुद तथा पुरुषों में अधिक संभोगरत होने के कारण भी रक्तमूत्रता हो सकती है।

यदि रक्त मूत्रत्याग के अन्त में आता है तथा प्रायः रक्त के थक्के जमे हुए आते हैं तो वह मूत्रवह संस्थान के किसी अवयव से आ सकता है। इस प्रकार का रक्तमूत्रता प्रायः निम्न कारणों से होती है—

१. तीव्र मूत्राशय शोथ के प्रारम्भ में—इसमें रक्तस्राव मामूली होता है।

२. मूत्राशय में अश्मरी—इस अवस्था में रक्तस्राव किसी परिश्रम के कार्य करने के पश्चात् या व्यायाम करने के पश्चात् अधिक होता है, रक्त की मात्रा भी अधिक होती है, शूल होता है जोकि मूत्र त्याग के अन्त में असह्य हो सकता है तथा यह शूल शिश्नाग्र के अन्त तक पहुँचता है। प्रायः मूत्राशय शोथ के भ्रम से मूत्राशय स्थित अश्मरी का निदान नहीं होता, जोकि एक्स-रे परीक्षण, मूत्राशयशलाका (sound) या सिस्टोस्कोप नामक उपकरण द्वारा परीक्षा किये जाने पर ज्ञात होती है एवं सुनिश्चित होती है।

३. मूत्राशय के अर्बुद—इसमें तथा प्रायः पैपिलोमेटा (मूत्राशय अर्बुद) (देखें चित्र) में रक्तस्राव की मात्रा अधिक होती है। अर्बुद के टूटे हुये टुकड़े भी आ
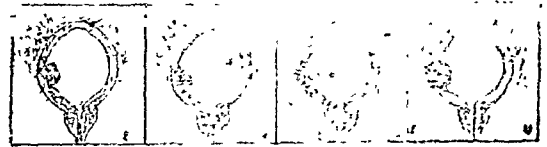
घातक मूत्राशयार्बुद (मूत्राशय की कैंसर) की क्रमशः वर्धमान चार स्थितियाँ, जिनके कारण कि प्रायः रक्तमूत्रता होती है।

सकते हैं और इससे मूत्राशय शोथ उत्पन्न हो सकता है। कैंसर में तो रक्त की मात्रा और भी अधिक होती है, बहुत कम-कम देर पश्चात् ही होता है तथा औषधि उपचार से भी विशेष लाभ नहीं होता। इस स्थिति में लगातार दर्द होता है। कभी-२ मूत्राशय में कैंसर या अर्बुद का ज्ञान हाथ से मूत्राशय-स्थल को दबाकर या गुदा में अंगुली प्रविष्ट कर परीक्षा के द्वारा किया जा सकता है। समीपस्थ अङ्गों से अर्बुद का प्रसार तथा आंत्रपुच्छ शोथ या संग्रहीजन्य क्षत-व्रणों से शोथ का प्रसार मूत्राशय में होने से भी रक्तमूत्रता हो सकती है जिसकी कि सुनिश्चिति सिस्टोस्कोप से ही होती है।

४. पौरुषग्रन्थि की वृद्धि में भी रक्तमूत्रता हो सकती

ोकि या तो पौरुष ग्रन्थि वृद्धि में शोथ (congetion) ; कारण या मूत्राशय ग्रीवा के पास इस ग्रंथि की किसी शिरा के टूट जाने के कारण से होती है।
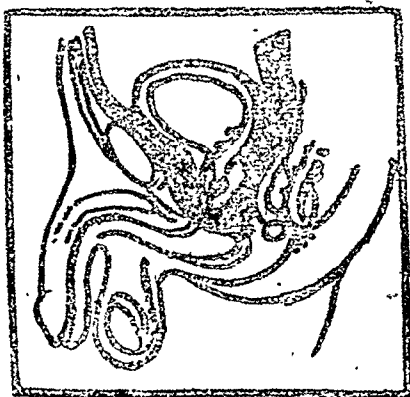
मूत्रप्रसेक नलिका या मूत्राशय के निम्न भाग पर विदर के कारण मूत्र एवं रक्तस्राव से पूरित स्थल, जिसके कारण कि प्रायः रक्तमिश्रित मूत्र आता है।

५. रक्तमूत्रता निम्न कारणों से भी हो सकती है। लेकिन यह कारण प्रायः कम ही मिलते हैं—मूत्राशय का राजयक्ष्मा, स्कर्वी, परप्यूरा।

६. ईजिप्ट तथा दक्षिणी अफ्रीका में प्रायः सिस्टोसोमियेसिस (एक प्रकार का आंत्र कृमि) की मादा मूत्राशय में स्थान ग्रहण कर वहां अन्डे देती है जिससे रक्तमूत्रता होती है।

यदि रक्त मूत्र में मिला हुआ आता है तथा जिसके कारण कि मूत्र का वर्ण धूम्राभ हो जाता है तो यह प्रायः वृक्क से आता है। इस स्थिति में भी मूत्र में रक्त की उपस्थिति की सुनिश्चितता हेतु निश्चित् रक्त परीक्षण करके कर लेनी चाहिये जिससे कोई भ्रम नहीं रहे। वृक्क की विभिन्न परीक्षायें करके और अन्य लक्षणों से वृक्क सम्बन्धी रक्तस्राव के विभिन्न निम्न कारण उपलब्ध हो सकते हैं—

१. वृक्कशोथ—तीव्र वृक्कशोथ में प्रायः निर्मोक (casts) प्राप्त होती हैं। अनुतीव्र वृक्कशोथ या जीर्ण वृक्कशोथ में व्यायाम या किसी परिश्रम के कार्य के पश्चात् मूत्र में रक्त आता है। वृक्कशोथ के साथ उच्च रक्तचाप होने के कारण भी रक्तमूत्रता होती है। (उच्च रक्तचाप में रक्तस्राव नाक से या मस्तिष्क से भी हो सकता है।) जीवाणुजन्य अनुतीव्र हृदयावरण शोथ के कारण उत्पन्न infarction में भी रक्त मूत्रता हो सकती है। किसी एक या दोनों वृक्क में क्षय के कारण भी रक्त मिश्रित मूत्र आ सकता है (इसका पूरा विवरण वृक्क यक्ष्मा शीर्षक अन्य लेख में देखें)। तीव्र मूत्र गवीनी श्रोणि शोथ या मूत्र गवीनी में पूयोत्पत्ति के कारण उत्पन्न शोथ, कुछ आंत्र कृमियों के कारण भी वृक्क में रक्त मिश्रित मूत्र आ सकता है।

२. गम्भीर प्रकार के दाहयुक्त शोथ—साधारण शोथ से मूत्र में प्रायः श्वुविल (एल्ब्यूमिन) मिश्रित आती है लेकिन यही शोथ तीव्र हो जाने पर रक्तमूत्रता भी उपलब्ध होती है।

(अ) सर्वाधिक कारण हृदयावसाद (दाहिनी ओर का) है। इसमें थोड़ा, लेकिन चमकीला तथा प्रथम एल्ब्यूमिन युक्त एवं पश्चात् में रक्त की मात्रा बढ़ने के साथ-साथ एल्ब्यूमिन की मात्रा भी बढ़ जाती है। दीर्घकालीन रुग्णों में हायलाइन कास्ट उपलब्ध होता है।

(ब) उभयपक्षीय जलापवृक्कता में मूत्र से भरे मूत्राशय में कैथीटर प्रवेश करके एकदम खाली कर देने से भी यकायक शोथ उत्पन्न होकर रक्तमूत्रता होती है। इसके पश्चात् मूत्रकृच्छ्रता या मूत्राघात (अमूत्रता) भी हो सकता है। इस स्थिति को ध्यान में रखकर चिकित्सकों को चाहिए कि मूत्राशय को एकदम रिक्त कभी न करे अपितु उसे धीरे-धीरे कई बार में रिक्त करें।

(स) वृक्क की शिरा में कोई थक्का रुकने के कारण तीव्र प्रदाह उत्पन्न हो सकता है। यह प्रायः माला गोलाणुओं (streptococcus) के संक्रमण के कारण उत्पन्न होता है। इसमें मूत्र में यकायक ही रक्त आने लगता है और इसके साथ-साथ ही वृक्क आकार में बड़ा और स्पर्शासह्यता भी होती है।

(द) उर्वास्थि भग्न आदि स्थितियां—जब रोगी दीर्घकाल तक बिस्तरे में पड़ा रहता है उसके पश्चात् जब उसको चलना प्रारम्भ कराया जाता है तो उसके दूसरे

तीसरे दिन प्रायः प्रदाह उत्पन्न होकर मूत्र में रक्त आने लगता है। इस स्थिति में कमर में दर्द, प्रसरणशील शूल, रक्त मूत्रता आदि लक्षण होते हैं जिनका कि शमन रुग्ण के कुछ दिन के लिए पुनः पूर्ण शैय्या विश्राम लेने पर हो जाता है।

३. वृक्क रक्त वाहिनियों के अवरोध युक्त या अवरोध रहित स्थिति में वृक्कावरण शोथ होने पर कुछ-कुछ समय के अन्तर से प्रदाह सहित रक्त मूत्रता होती है।

४. वृक्काश्मरी या शर्करा होने पर वृक्कशूल सह-रक्तमूत्रता होती है।

५. रक्त की कुछ स्थितियां जैसे कि स्कर्वी, परप्यूरा, मलेरिया।

६. कतिपय औषधियों के कारण भी रक्तमूत्रता हो सकती है जैसे कि सैलीसिलेट, फिनोल, सल्फा पायरिडिन, सल्फाथियाजोल, हैक्सामिन, कैंथाराइड्स (दक्षिण अफ्रीका में पाई जाने वाली एक प्रकार की मक्खी का चूर्ण), तारपीन का तैल आदि।

७. वृक्क के अर्बुद यथा कार्सीनोमा, सारकोमा, हाइपरनाफ्रोमा और बहुपुटीय वृक्कशोथ या मूत्र गवीनी श्रोणि में कार्सीनोमा या पैपिल्लोमा होने पर। इस स्थिति में प्रायः शूल होता ही नहीं और रक्तस्राव लगातार समयान्तर से हो सकता है।

८. नवयुवकों में प्रायः वृक्क के एक छोटे से भाग में शोथ होने पर (Patchy nephritis) मामूली या गंभीर प्रकार की रक्तमूत्रता जिसके साथ कि साधारण या गंभीर शूल एक या दोनों ओर भी रहता है हो सकती है। इस स्थिति में वृक्कोच्छेदन करने से रक्तमूत्रता प्रायः समाप्त हो जाती है (लेकिन वृक्कोच्छेदन प्रायः करना नहीं चाहिए)

९. हीमोग्लोबिनूरिया से प्रायः रक्तमूत्रता का भ्रम हो जाता है लेकिन यह वास्तविक रक्तमूत्रता नहीं है। इसकी सुनिश्चितता मूत्र में रक्त परीक्षा करने पर मूत्र में हीमोग्लोबिन तो मिलने लेकिन रक्त की प्लेटलेट (Blood platelets) न मिलने पर होती है।

१०. वृक्क के आघात—वृक्क का कुचलना या फटना (यह प्रायः कमर के बल गिरने पर होता है) या कोई गंभीर दुर्घटना होने जैसे रेल दुर्घटना या सड़क पर दुर्घटना। ऐसा भी हो सकता है कि आघात का कोई बाह्य चिह्न यथा खुरचट आदि न हो लेकिन वृक्क कुचल या फट जाये जिससे दीर्घकाल पश्चात् साधारण चोट लगने पर उसके लक्षण उभर आयें। वृक्क के आवरण में बहुत अधिक रक्तस्राव होने के बावजूद भी रक्तमूत्रता नहीं हो लेकिन इस स्थिति में वृक्क स्थान पर मन्द ध्वनि (dull sound) और तनावयुक्त शोथ होगा। इन स्थितियों में तुरन्त शल्यकर्म करके रक्तस्राव को येनकेन प्रकारेण रोकना आवश्यक है और यदि बहुत अधिक रक्तस्राव हो गया है तो रुग्ण को रक्तदान भी आवश्यक है। लवण जल निक्षेप तो अत्यावश्यक है ही।
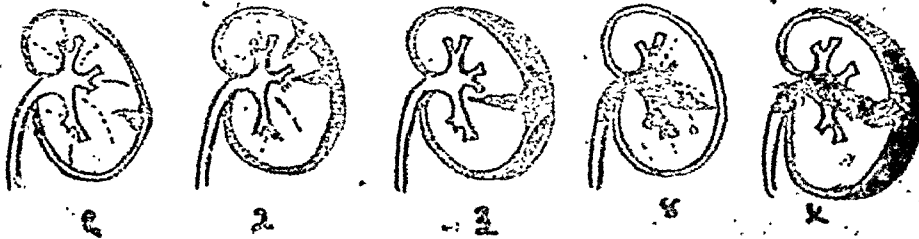
वृक्क पर आघात लगने पर वृक्क में रक्तस्राव की पांच विभिन्न अवस्थायें, जिनमें से कि चौथी एवं पांचवीं अवस्थाओं में वृक्क विवर मूत्र गवीनी श्रोणि तक पूर्ण होने के कारण वृक्क से रक्तस्राव गवीनी नलिका में होकर मूत्राशय में पहुंचकर रक्तमूत्रता उत्पन्न होती है।

चिकित्सा—

कारण एवं लक्षणों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। रक्तमेह में यदि रक्त किस स्थान से आ रहा है और वहां से किस कारण आरहा है यदि यह सुनिश्चित हो जाय तो उस रोग की या उस अङ्ग की यथोचित चिकित्सा करनी चाहिए। साधारणतः विटामिन सी, विटामिन के योग देने चाहिए। कोएगुलिन सिबा या क्लोडेन के इंजेक्शन देने चाहिए। शिरान्तर्गत ग्लूकोज, सामान्य लवण विलियन डैक्ट्रोज आदि का प्रयोग करें। अधिक रक्तस्राव की अवस्था में रोगी का ग्रुप ज्ञात कर उसी रक्त के दाता का रक्त आदान करायें जिससे उसकी जीवन रक्षा हो सके।

आयुर्वेदानुसार रक्त मूत्रता को रक्तपित्त में सम्मिलित किया गया है। इसके लिए किसी पिच्छिल द्रव यथा शाल्मली पुष्प अथवा पंच वल्कल के शीत कषाय की, या गेरू २ तोला, रसौत २ तोला, फिटकरी २ तोला, तूतिया २ माशे को पीसकर १ सेर जल में मिलाये हिम से उत्तर बस्ति या पिचकारी देने से लाभ होता है। पथ्यार्थ पेया का सेवन कराना चाहिये। बलाबल देखकर दोष से संशोधनार्थ वमन करावें। वमन हेतु मुलैठी के क्वाथ में मधु एवं लवण मिलाकर पिलावें। सत्तू के घोल में मैनफल का ६ माशे चूर्ण यथोचित मधु एवं शर्करा मिलाकर पिलावें। शालपर्णी आदि लघु पंचमूल के क्वाथ में बनाई गई पेया पिलावें। अधोग रक्तपित्त में क्योंकि निदान उष्ण और रूक्ष होता है इसी कारण प्रथम पेय द्रवा आदि द्वारा तर्पण करना होता है। यदि वमन कराना अभीष्ट हो तो प्रथम वमन द्वारा संशोधन कराके तत्पश्चात् पेया सेवन करायें। मूत्रमार्ग द्वारा प्रवृत्त रक्तमूत्रता में प्रायः जीव रक्त ही होता है इस कारण जीव रक्त है या दूषित रक्त है इस परीक्षा के चक्कर में न पड़कर उसके रोकने की चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिए। कुछ आयुर्वेदिक योग इस प्रकार हैं—

—काकोदुम्बर (कठूमर या कठगूलर) के फल के रस में शहद मिलाकर पिलावें।

—अडूसा पंचांग अथवा केवल पत्तों के क्वाथ में प्रियंगु, सगजराहत (सेलखड़ी), श्वेतांजन (सफेद सुरमा), लोध्र का चूर्ण और मधु मिलाकर पान करावें।

मूत्र मार्ग से रक्त की अति प्रवृत्ति पर शीत और स्तम्भक औषधियों की उत्तरबस्ति दें अथवा पंचतृणमूल से सिद्ध दूध का पान करायें। तत्पश्चात् प्रियंगु, फिटकरी, लोध्र तथा रसांजन (रसौत) को समभाग में मिश्रित कर आधा माशा चूर्ण को अडूसे के पत्र स्वरस अथवा मधु में मिला सेवन करायें। यदि शस्त्र के आघात से किसी भी जगह से रक्तस्राव हो रहा है तो इस चूर्ण का उस स्थान पर अवचूर्णन अच्छा लाभ प्रदान करता है।

—दूर्वाद्य घृत (भैष० रत्नावली) की उत्तर बस्ति उत्तम है। सप्तप्रस्थ घृत (भै० र०) का ३ माशे से ६ माशे तक का आन्तरिक प्रयोग उत्तम है।

—भैषज्य रत्नावली का उशीरासव २ तोला की मात्रा में दिन में तीन बार सेवन करावें। यदि मूत्र में जलन होवे तो चन्दनासव १-१॥ तोला और मिलालें।

पथ्य—वमन और लंघन लाभदायक हैं। पुराने साठी धान्य, शालि धान्य, कोदों, जौ, मूंग, मसूर, चना, अरहर, मोठ की दाल, सब प्रकार के कषाय रस वाले द्रव्य, गौ और बकरी का दूध, घृत, भैंस का घी, चिरौंजी, कदलीफल (केला), चौलाई, परवल, कोहड़ा के शाक, ताड़ के पके फल (खजूरा), अनार, आंवला, सौंफ, नारियल, डाभ का पानी पीना, कसेरू, सिंघाड़ा, कथा, कमलकन्द (कमल ककड़ी), फालसा, निम्ब का पत्र, चिरायता, तरबूज, सत्तू, दाख, मिश्री, मधु, गन्ने का रस आदि का सेवन। शीतल जल से स्नान, शतधौत घृताभ्यङ्ग आदि उपयुक्त हैं।

अपथ्य—व्यायाम मार्ग गमन, धूप का सेवन, वेग रोध, किसी तेज धक्का लगने वाली सवारी में बैठना, स्वेदन, रक्तमोक्षण, धूम्रपान, मैथुन, कुल्थी, गुड़, बैंगन, उड़द, सरसों, मद्य सेवन, लहसुन, कटु अम्ल एवं लवण रस वाले पदार्थ, विदाहकारी द्रव्य हानिकर हैं।

श्वसन संस्थान के रोगों की तात्कालिक चिकित्सा

डा० अविनाश बी० लोपे एम०डी० (आयु०)
कायचिकित्सा विभागाध्यक्ष, वाला हनुमान आयुर्वेद महाविद्यालय, लोदरा, जिला महेसाना (उ०गु०)

श्वसन क्रिया यह एक स्वाभाविक व्यापार (जीवन क्रिया) है, जो यावज्जीवन अबाध रूप से चलती रहती है। इस श्वसन क्रिया की प्रकृतिस्थता फुफ्फुस के क्रियाशील कोष्ठों की पर्याप्त संख्या; उनका लचकीलापन, अवरोध का अभाव तथा रक्त की पर्याप्त मात्रा पर निर्भर रहती है। जब इस क्रिया में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न हो जाती है तब श्वासकष्टता यह प्रधान लक्षण श्वसनतंत्र में व्यक्त होता है। रोग विज्ञान में श्वास शब्द का प्रयोग श्वासकष्टता या श्वासकृच्छ्रता के अर्थ में किया जाता है। यह श्वास रोग स्वतन्त्र रोगस्वरूप तथा अन्य रोगों में लक्षण स्वरूप तथा उपद्रवस्वरूप भी पाया जाता है। श्वसन संस्थान में ऐसे अनेक विकार होते हैं जिनके कारण श्वासकष्टता होती है।

श्वासकष्टता के कारणों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१. श्वसन संस्थान के उपसर्ग अन्य विकार, तुण्डिकेरी, प्रतिश्याय, नासा की अस्थि की वृद्धि, नासार्श, श्वासनलिका शोथ, फुफ्फुसावरण शोथ आदि व्याधियां।

२. रासायनिक—इसमें प्राणियों के शरीर से आने वाली गन्ध, अनेक प्रकार के पदार्थों के सूक्ष्म कण जैसे-कई घास के सूक्ष्म फूलों के कण तथा इसी प्रकार अन्य गन्धयुक्त वायु वाले पदार्थों के सेवन से भी श्वासकष्टता होती है।

३. आन्त्रस्थ विष—आन्त्रस्थ कृमियों के कारण भी श्वासकष्टता होती है।

४. असह्यता—प्राणिज तथा वानस्पतिज प्रोटीनयुक्त द्रव्य जैसे—दूध, अण्डे, मांस, उड़द इत्यादि की दालें तथा मछलियां इत्यादि पदार्थों के सेवन से भी श्वासकष्टता होती है।

विकृति विज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो श्वास वस्तुतः वातरूप ही है। अतः इसमें वात की प्रधानता स्वीकार करना उचित है। किन्तु साधारण अवस्था में केवल वायु श्वासकष्टता को उत्पन्न नहीं करता, परन्तु जब वह कफ से अवरुद्ध हो जाता है तब श्वास रोग को उत्पन्न कर देता है। वस्तुतः कफ की अधिकता से जब फुफ्फुस के वायुकोषों में वायु प्रवेश के लिये स्थान कम हो जाता है तो आवश्यक जारक (Oxygen) या प्राणवायु को ग्रहण करने के लिये पुनःपुनः श्वास की प्रवृत्ति होती है। सामान्यतया वायुकोषों या श्वासनलिकाओं में सर्वदा तरल पदार्थ का स्राव होता रहता है, जो उच्छ्वसित वायु के साथ वाष्प रूप में निकल जाता है। जब कभी फुफ्फुस या नलिकाओं में अधिरक्तता (Congestion) शोथ (Inflamation) तथा क्षोभ (Irritation) आदि कारणों से यह स्राव अधिक मात्रा में होने लगता है तब मात्रानुसार एवं कारण और सम्बन्ध के अनुरूप थोड़ा या अधिक तरल, सान्द्र या घन कफरूप में कास के साथ निकलता है। फुफ्फुस और श्वासनलिकाओं में कफ होने
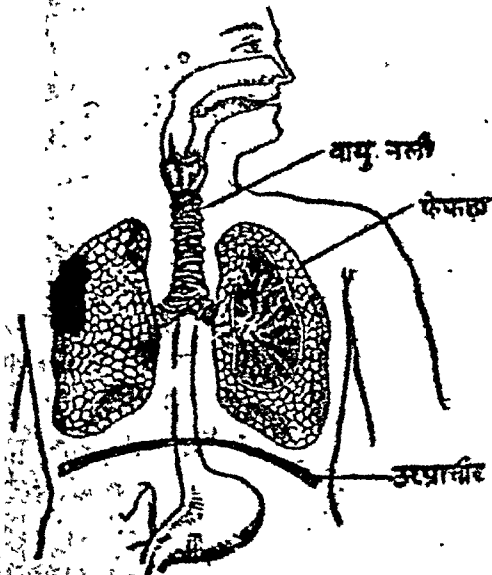
से क्षोभ और प्राणवायु के लिए स्थान की कमी से प्रतिक्रिया स्वरूप वात प्रकोप होकर कास और शीघ्र श्वास लेने की क्रिया आरम्भ होती है। यदि कास के साथ कफ का निष्क्रमण आसानी से नहीं होता है तो श्वास की तीव्रता बढ़ती है। कफ या कफोत्पादक कारण की प्रबलता एवं आधिक्य दौर्बल्य या विगुण वातकृत श्वासनलिका संकोच आदि कारण कफ के सरलता से निकलने में बाधक होते हैं।

इस प्रकार विकृति को ध्यान में रखते हुए श्वास कष्ट के कारणों का विभाजन इस प्रकार किया जाता है—

(१) श्वासकेन्द्र की विकृति—

यह निम्न कारणों से होती है।

१—अधिरक्त हृदयातिपात (Congestive heart Failure)।

२—अत्यधिक रक्ताल्पता—इसमें प्राणवायु की कमी हो जाती है।

३—मधुमेहजन्य संन्यास (Diabetic Coma)।

४—जानपादिक शोफ (Epidemic dropsy)।

इन उपर्युक्त कारणों से होने वाली श्वासकृच्छ्रता निष्ठ (Paroxysmal) होती है।

(२) श्वासमार्ग में किसी प्रकार का अवरोध एवं वायु का संचारार्थ फुफ्फुसीय सतह की कमी—

१. तुण्डिका शोथ, रोहिणी आदि अवरोध के कारण

२. न्यूमोनिया, राजयक्ष्मा जैसे रोग वायु संचरण के लिये फुफ्फुस की सतह को कम कर देते हैं।

इन उपर्युक्त कारणों से होने वाली श्वासकृच्छ्रता अन्तः श्वसनिक (Inspiratory) स्वरूप की होती है।

(३) श्वास में सहायक पेशियों के कार्य में बाधा होना—

१. पीड़ा—वक्षःस्थ या उदरस्थ किसी अङ्ग पर शोथ होने पर।

२. उरोवात (Emphysema) स्वाभाविक लचकीलापन कम होने के कारण फुफ्फुस निरन्तर वायु से भरा रहता है और उसे पूर्णतया नहीं निकाल पाता।

३. अनुकोष्ठिका नाड़ी तथा वक्ष की पेशियों की वातनाड़ी का घात—इससे महाप्राचीरा तथा वक्ष की पेशियां क्रिया नहीं कर पाती जिससे श्वास में भी कष्ट होता है।

(४) आमाशय या दूसरे उदरस्थ अङ्गों का फूला हुआ होना—ये अवस्थायें भी श्वास पेशियों के कार्य में बाधा उपस्थित करती हैं। इसके अतिरिक्त ये फुफ्फुस पर दबाव डालकर भी श्वासकृच्छ्रता उत्पन्न करती हैं।

इन उपर्युक्त कारणों से होने वाली श्वासकृच्छ्रता बहिः श्वसनिक (Expiratory) स्वरूप की होती है।

चिकित्सा—यहां पर तात्कालिक चिकित्सा की दृष्टि से प्रयुक्त कुछ औषधियों को प्रस्तुत किया जाता है—

(१) कुष्ठ—कुष्ठ में सासुराइन नामक क्षाराभ पाया जाता है, जिसकी क्रिया सुषुम्नाशीर्ष स्थित प्राणदा नाड़ी केन्द्र पर तथा श्वसनिका एवं पचन संस्थान की अनैच्छिक मांसपेशी तन्तुओं पर अवसादन के रूप में होती है, जिससे श्वसनिकाओं का विस्फार होता है। श्वसनिका विस्फार की यह क्रिया एड्रिनेलीन के जितनी तीव्र नहीं होती है तथा इसका कार्य उतना जल्दी भी नहीं होता है, लेकिन इसका प्रभाव अधिक समय तक बना रहता है।

तमक श्वास के लिये यह औषधि बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई है। इसके लिये इसका मद्यसारीय प्रवाही सत्व आधा से दो ड्राम की मात्रा में प्रयुक्त होता है अथवा इसका चूर्ण दिन में ३ से ४ बार दिया जाता है। रात को सोते समय तथा जब भी श्वास के आवेग आने की संभावना हो तो इसकी एक मात्रा देने से आवेग नहीं आता है। इसमें उद्वेष्टन निरोधी गुण होने के साथ केन्द्रीय वात नाड़ी संस्थान पर इसका अवसादक प्रभाव भी होता है। इसके प्रयोग से एड्रिनेलीन के इन्जेक्शन अथवा उसे सिगरेट आदि की तरह निद्रानाश आदि दुष्परिणाम नहीं होते हैं।

यह प्राणदा नाड़ी की उत्तेजना से होने वाले आवेगों को रोकने में विशेष समर्थ है। इसके क्षाराभ तथा तैल दोनों मिलकर सयुक्त कार्य करते हैं। तैल श्वसनिकाओं के उद्वेष्टन को दूर करने के साथ-२ श्लेष्मा को भी बाहर निकालता है। तथा उससे श्लैष्मिक कला की सूजन दूर होती है। इसके प्रवाही सत्व को पोटेशियम आयोडाइड

मिश्रण के साथ भी दे सकते हैं। इसका अल्प मात्रा में धूम्रपान भी लाभदायक है।

इस औषधि को लगातार १० से १५ दिन तक देकर कुछ दिन रोककर देखना चाहिए कि फिर श्वास के आवेग तो नहीं आते। आवेग पुनः आने पर फिर इसे प्रयुक्त करना चाहिये। इसका कोई संचयी दुष्परिणाम नहीं है तथा इससे सहनशीलता (सात्म्यता) भी उत्पन्न नहीं होती है जिससे प्रत्येक बार मात्रा में वृद्धि करनी पड़े।

(२) लहसुन—इसमें एक बादामी पीले रंग का उड़नशील तैल पाया जाता है। इसके अतिरिक्त लहसुन के मद्यसारीय सत्व से एक अल्लीसिन नामक प्रतितृणाणवीय (Anti bacterial) तरल द्रव्य प्राप्त किया गया है। इसके साथ ही साथ गार्लीसेथन नामक तीव्र प्रतिजैविक पदार्थ भी पाया गया है। यह निःसारक तथा उत्तम प्रतिदूषक (एन्टीसेप्टिक) इसके उड़नशील तैल का उत्सर्ग त्वचा, फुफ्फुस एवं वृक्क द्वारा होता है। फुफ्फुस के उत्सर्ग के समय इससे कफ ढीला हो जाता है तथा उसके जीवाणुओं का नाश होकर कफ की दुर्गन्ध दूर होती है।

यक्ष्मा दण्डाणु से उत्पन्न सभी विकृतियों जैसे फुफ्फुस विकार, स्वरयन्त्र शोथ आदि में यह निश्चित लाभदायक सिद्ध हुआ है। लहसुन के रस को इनमें पिलाया जाता है तथा इसका स्थानिक उपयोग भी किया जाता है। स्वर यन्त्र शोथ में इसका टिंक्चर १/२ से १ ड्राम दिनमें २ से ३ बार देते हैं। पुराने कफ विकार जैसे कास श्वास, स्वरभग, श्वसनिका शोथ, श्वसनिकाविस्तीर्णता एवं श्वासकृच्छ्र आदि में इसका अवलेह बनाकर उपयोग किया जाता है। लहसुन एवं वायविडङ्ग का सेवन भी लाभदायक है। बच्चों के कुकास में इसको ३ से ४ घण्टे पर सुंघाया जाता है तथा इसके रस को पिलाते भी हैं। फुफ्फुस कोथ में इसके टिंक्चर का उपयोग बहुत सफल रहा है। प्रारम्भ मे इसकी मात्रा कम देनी चाहिए, बाद में २० बूंद तक दिन में ३ बार देना चाहिए। इसी प्रकार खण्डीय फुफ्फुस पाक (lobar pneumonia) में भी इसके टिंक्चर को २० बूंद हर ४ घन्टे पर जल के साथ देने से ४८ घण्टे के अन्दर ही लाभ मालूम होने लगता है तथा ५ से ६ दिन मे ज्वर कम हो जाता है। इन सभी विकारों में आन्तरिक प्रयोग के साथ-२ इसको छाती पर भी लगाते हैं। रोहिणी (Diphtheria) नामक अत्यन्त उग्र गले के विकारों में इसकी एक एक कली चूसने को दी जाती है। ३-४ घंटे में १ छटांक तक लहसुन देना चाहिए। शिशुओं के लिए इसके रस को २० से ३० बूंद हर ४ घण्टे पर शर्बत के साथ देना चाहिये।

(३) भल्लातक—भिलावे को दीपक पर गरम करने से तेल टपकता है। वह दूध में टपकाकर हरिद्रा एवं मिश्री मिलाकर फुफ्फुस विकारों में रात के समय दिया जाता है। प्रारम्भ एक बूंद शुरू करके बाद में धीरे धीरे बढ़ाते हैं। तमकश्वास पीड़ित रोगियों के लिए शीत ऋतु में इसका नित्य प्रयोग लाभदायक है। फुफ्फुस पाक में मुलेठी साथ मिलावा दिया जाता है।

(४) कपूर—अवसाद तथा नशीली औषधियों के दुष्परिणाम से जब श्वसन क्रिया अवसादित होती है तब कपूर के प्रयोग से उत्तेजना आकर श्वास गति तथा उसकी गहराई बढ़ती है। कुकास, तमक श्वास एवं जीर्ण श्वसनिका शोथ आदि कफविकारों में इसके प्रयोग से श्लेष्मल कला का रक्तप्रवाह बढ़कर कफ पतला होकर निकलने लगता है। तमकश्वास में कपूर हिंगु वटी ४-५ घण्टे पर जब तक श्वास का आवेग रहता है तब तक देते हैं। कपूर हिंगुवटिका बनाने के लिए १ भाग कपूर १ भाग हींग तथा थोड़ासा मधु एक साथ घोटकर २ रत्ती की गोली बनावें तथा आर्द्रक रस के साथ पिलावें। रोगी गोली निगलने में असमर्थ होने पर आर्द्रक रस में घोटकर आवश्यक होने पर कस्तूरी आधी रत्ती मिलाकर चटावें। कपूर का तैलीय सूचिकाभरण हृदय एवं श्वसन को उत्तेजित करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

(५) सरल निर्यास—इस सरल वृक्ष के निर्यास को गन्धाविरोजा कहा जाता है, इससे तारपीन का तेल प्राप्त होता है। इसका प्रचूषण महास्रोत, श्वसन संस्थान एवं त्वचा द्वारा होता तथा उत्सर्ग मूत्र एवं श्वसन संस्थान से होता है।

जीर्ण श्वसनिका शोथ (Bronchitis) में इसे देने से कफ निकलने लगता है। जीवाणुओं का नाश होने से

दुर्गन्ध भी दूर होती है। रोगी के कमरे में तेल को छिड़कने से अपने साथ यह श्वास में जाकर अपना कार्य करता है। फुफ्फुसों के कोथ में इससे विशेष लाभ होता है। सारपीन का तेल २॥ तोला, मुलेठी २॥ तोला एवं मधु २ तोला, एक साथ घोटकर ३० से ६० रत्ती मात्रा में इन विकारों में दिया जाता है।

(६) तालीस पत्र—जीर्ण श्वसनिका शोथ, राजयक्ष्मा तथा अन्य कफ विकारों में इसके क्वाथ या फांट का प्रयोग करते हैं। पत्रों का चूर्ण मधु एवं वासा स्वरस के साथ कास, श्वास में दिया जाता है। बच्चों में श्वसनी फुफ्फुस पाक में १॥ रत्ती चूर्ण तथा कस्तूरी वटी १ रत्ती, इनकी छः मात्रा बनाकर हर ४ घण्टे पर देने से लाभ होता है। तालीसादि चूर्ण १० से २० रत्ती की मात्रा में प्रयुक्त होता है।

(७) नागवल्ली—नागरबेल के पत्ते कफ प्रधान रोगों में बहुत लाभदायक हैं। तमक श्वास, श्वसनिका शोथ एवं स्वरयन्त्र शोथ आदि में पान का रस पिलाते हैं एवं पान को ऊपर से बांधते हैं। बच्चों के कास, श्वसनिका शोथ, श्वासकृच्छ्रता एवं प्रतिश्याय आदि में पान के पत्तों को एरण्ड तेल लगाकर गरम कर छाती पर बांधने से बहुत लाभ होता है। रोहिणी नामक बच्चों के गले के रोग में ४ पत्तों का रस थोड़े गरम पानी में मिलाकर गण्डूष कराने को देते हैं। पान के तेल को १ बूंद की मात्रा में करीब आध पाव उष्ण जल में मिलाकर इसी प्रकार प्रयोग करते हैं तथा वाष्प को सूंघते हैं।

(८) कण्टकारी—इससे गला एवं श्वासनलिका की शुष्कता कम होकर कफ ढीला होने लगता है। इसलिए गले का शोथ, स्वरयन्त्र शोथ एवं श्वासनलिका शोथ इनकी प्रथमावस्था में इससे अच्छा लाभ होता है।

कफ की प्रथमावस्था में मूल के क्वाथ के साथ मधु एवं सैंधव दिया जाता है। द्वितीयावस्था में पत्रस्वरस या मूल क्वाथ में छोटी पीपल एवं मधु मिलाकर देते हैं जिससे खांसी तकलीफ कम होती है। तमकश्वास एवं उद्वेष्टनयुक्त कास में इसके मूल के क्वाथ में सैंधव एवं हींग मिलाकर देते हैं।

सुश्रुत ने तमकश्वास के लिए इसका मूल चूर्ण १ तोला तथा हींग आधा तोला मधु के साथ ३ दिन सेवन करने को लिखा है। कास, श्वास तथा स्वरभेद में इससे सिद्ध घृत का उपयोग लिखा है।

(९) अर्क (रक्तार्क)—सभी प्रकार के कफ विकारों में इससे लाभ होता है। १५ से ३० रत्ती चूर्ण को खिलाने से इपिकाक की तरह १ घण्टे के अन्दर वमन होकर कफ बाहर निकल जाता है तथा कभी कभी विरेचन भी होता है। गले का नूतन शोथ, श्वासनलिका शोथ आदि में घोड़ावच के साथ अर्कादि चूर्ण का उपयोग किया जाता है। अर्कादि चूर्ण के लिये अर्क चूर्ण ३ भाग, अफीम १ भाग, सैंधव ७ भाग इनकी मिश्रित मात्रा में से ३ से ७ रत्ती प्रयोग किया जाता है। तमकश्वास तथा श्वसनिकाभिस्तीर्णता (Bronchiectasis) आदि व्याधियों में इसके प्रयोग से पर्याप्त लाभ मिलता है।

(१०) वचा (घोड़वच)—श्वास तथा कास में वमन कराने के इसको नमक और जल से पिलाना चाहिए। अधिक मात्रा में (१ से २ माशा) यह वामक है। इससे बिना किसी कष्ट के कफ निकल जाता है। यह इपिकाक की अपेक्षा अधिक अच्छी औषधि है। गले की सूजन, कास तथा बच्चों के सूक्ष्म श्वसनिका शोथ में इसका क्वाथ बहुत उपयोगी होता है।

(११) कुलिंजन—इसकी अल्प मात्रा से श्वसन क्रिया उत्तेजित तथा अधिक मात्रा से श्वसन केन्द्र का घात होकर अवसादित होती है। इसकी अल्प मात्रा से भी श्वसनिकाओं का विस्फार होता है। यह पाइलोकारपीन द्वारा कृत्रिम रूप से उत्पन्न श्वसनिकाओं के संकोच को भी दूर करता है। श्वास, कास, कुकास के लिये यह बहुत अच्छी औषधि है। बच्चों एवं वृद्धों के श्वसन संस्थान के विकारों में इसको मधु के साथ चटाने से बहुत लाभ होता है। श्वास में इसके उद्वेष्टन विरोधी गुण के कारण लाभ होता है।

(१२) धत्तूर—इसमें हायोसायमीन, एट्रोपीन तथा हायोसीन नामक क्षाराभ रहते हैं। धतूरे की क्रिया बेलाडोना की तरह होती है किन्तु श्वासनलिकाओं पर इसकी क्रिया अधिक तीव्र होने के कारण उनका अधिक विस्फार होता है। यह असीटिलकोलीन के कार्य को रोकता है जिससे श्वासनलिकाओं का विस्फार होता है।

तमकश्वास में उद्वेष्टन रोकने के लिये इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। इसके चूर्ण का धूआं या इसकी बनी सिगरेट का धूम्रपान इसमे लाभदायक है। इसका आन्तरिक प्रयोग भी किया जाता है।

(१३) अडूसा—इसके पत्तों में वासिनिन नामक क्षाराभ पाया जाता है। इससे श्वासनलिकाओं में अल्प किन्तु स्थायी विस्फार होता है जो अट्रोपीन साथ में देने से अधिक हो जाता है।

कफ विकारों में इसका बहुत प्रयोग करते हैं। नवीन श्वसनी शोथ में इससे आराम मिलता है विशेषकर जब कफ गाढा तथा चिपचिपा होता है। जीर्ण श्वसनी शोथ में इससे खांसी में आराम मिलता हैं तथा कफ ढीला होकर आसानी से बाहर निकल जाता है। इनमें इसके पुटपाक करके निकाले स्वरस को १/२ से १॥ तोला की मात्रा में आर्द्रक स्वरस या छोटी पीपल, कुछ सैंधव एवं मधु के साथ देते हैं। श्वास-कास मे अडूसा, द्राक्षा एवं हर्रा इनका क्वाथ मधु एवं शर्करा के साथ उपयोगी है। नये श्वसनी शोथ में कण्टकारी, जवासा, नागरमोथा, सौंठ एवं अडूसा इनका क्वाथ उपयोगी है। बच्चों के कफविकारों में इसके स्वरस के साथ टंकण देते हैं। वासावलेह का भी अच्छा उपयोग होता है।

तमकश्वास में इसके पत्तों का धूम्रपान लाभदायक है। इसके साथ धतूरे के पत्र का उपयोग करने से तुरन्त लाभ होता है। इससे सिद्ध घृत का आन्तरिक प्रयोग किया जाता है।

काले अडूसे का प्रयोग फुफ्फुस के विकारों में करते हैं। तीव्र कफविकारों में इसके २ से ४ पत्ते एवं अपामार्ग की राख १/४ तोला, एक तोला मधु के साथ देते हैं। न्यूमोनिया में चार पत्रों का रस, सहजने की छाल का रस एवं समुद्र नमक मधु के साथ देते हैं।

(१४) विशाला (इन्द्रायण) तमकश्वास, रोहिणी एवं गले के शोथयुक्त विकार तथा श्वासनलिका शोथ मे कफ चिपचिपा होकर श्वासावरोध होता है तब इसके फलत्वक् या मूल की छाल को थोड़ा सा चिलम में रख कर धूम्रपान कराते हैं जिससे वमन होकर कफ निकलने लगता है। इससे श्वासावरोध कम होता है तथा गले की सूजन भी कम होती हैं। फुफ्फुस शोथ में मूलत्वक् का क्वाथ देने से श्वासावरोध कम होता है।

(१५) जवासा—कफज विकारों की प्रारम्भिक अवस्थाओं में मुलेठी एवं जवासे का मिश्रित घन क्वाथ बहुत लाभदायक है। इनमें इसका क्वाथ पीने को देते हैं तथा इसके वाष्प से धूपन करते है जिससे कफ ढीला होकर कफ निकलने लगता है। तमकश्वास में इसका धूम्रपान लाभदायक है।

(१६) धमासा गले और श्वसन संस्थान में इससे अच्छा लाभ होता है। इससे गले की खुश्की कम होकर कफ निकलने लगता है। श्वास में धूम्रपान लाभदायक है। इसको ईख के रस के साथ उबालकर अवलेह बनाते हैं जिसका गले तथा फुफ्फुसों के विकारों में अनुपान के रूप में प्रयोग करते हैं।

(१७) सोमलता—इसमें इफेड्रीन नामक क्षाराभ पाया जाता है। इसका रक्तभार श्वसनिका एवं मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों पर हलका प्रभाव पड़ता है। तमकश्वास के आवेगों को रोकने के लिये सोम का सत्व उपयोगी है। न्यूमोनियां, रोहिणी आदि औपसर्गिक रोगों के कारण उत्पन्न हृदय की विषाक्तता मे यह बहुत ही अच्छा हृदयोत्तेजक सिद्ध हुआ है।

(१८) पलाण्डु (प्याज)—बच्चों एवं वृद्धों के कफविकारों में यह लाभदायक है। कच्चे प्याज के रस को मिश्री मिलाकर बच्चों को चटाया जाता है तथा वृद्धों को इसको पकाकर दिया जाता है। क्षयजकास में इससे कष्ट कम होजाता है। श्वसनियों के जीर्णशोथ मे लाभदायक औषधियों में यह श्रेष्ठ औषधि है।

जंगली प्याज का उपयोग बच्चों के जीर्ण श्वसनी विकारों में शर्बत के रूप में १० से १५ बूंद की मात्रा में किया जाता है। जीर्ण कफ विकारों में इससे तीन तरह से लाभ होता है। जीर्ण कफविकारों में हृदय के दक्षिण विभागों में जो शिथिलता आयी रहती है वह दूर होती है। कफ ढीला होकर निकलने लगता है तथा पाचन सुधरकर शौच भी साफ होने लगता है। यह इपिकाक की अपेक्षा अधिक प्रक्षोभक है।

(१९) गुग्गुलु—पुराने कफविकारों में गुग्गुलु को

छोटी पीपल, अडूसा, मधु एवं घृत के साथ दिया जाता है। राजयक्ष्मा में इसके प्रयोग से कफ की मात्रा कम होती है तथा जीवाणुनाशन भी होता है। जिन रोगों में कफ अत्यधिक एवं चिपचिपा होता है उनमें इससे विशेष लाभ होता है। श्वास में इसको घृत के साथ खिलाते हैं।

(२०) निर्गुण्डी—फुफ्फुसपाक तथा फुफ्फुसावरण शोथ आदि में इसके पत्तों का स्वरस या क्वाथ छोटी पीपल के साथ खिलाते हैं तथा पत्तों से सेंकते हैं। गले के शोथ में इसके सूखे पत्तों का धूम्रपान कराया जाता है तथा पत्तों का क्वाथ छोटी पीपल एवं घोड़ावच के साथ खिलाते हैं। कास में पत्रस्वरस सिद्ध घृत का उपयोग लाभदायक है। राजयक्ष्मा में इसके पंचांग के स्वरस से सिद्ध घृत या स्वरस में घृत मिलाकर प्रयोग करते हैं।

अन्य सहायक औषधि योग—

१. श्वास में गरम पानी के साथ अजवायन का चूर्ण दिया जाता है अथवा इसको चिलम में रखकर पीते हैं।

२. फुफ्फुस के रोगों में हींग का अच्छा उपयोग होता है। जीर्ण श्वासनलिका शोथ, श्वास, कुकास, बच्चों के फुफ्फुसपाक एवं शुष्क कास आदि में इसका व्यवहार किया जाता है। इसके लिये जल के साथ हींग के घोल का व्यवहार करना चाहिए अथवा हींग को घृत में भूनकर प्रयोग करना चाहिए।

३. कफ विकारों में रास्ना के चूर्ण को घोड़ावच एवं मुलेठी के साथ देने से लाभ होता है।

४. काकड़ासिंगी, भारङ्गी, सोंठ, छोटी पीपल, कचूर, मुनक्का इनका चूर्ण १५ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ देने से श्वसन संस्थान के विकारों में लाभ होता है।

५. सोंठ एवं दालचीनी के साथ कायफल का प्रयोग तमकश्वास, जीर्ण श्वासनलिका शोथ आदि में लाभप्रद है।

५. भारङ्गी कल्क सोंठ तथा उष्ण जल के साथ तमकश्वास में लाभदायक है।

७. निमोनियां में नमक (सैंधव) की पोटली बनाकर इससे छाती को सेका जाता है जिससे कफ ढीला होकर निकलता है तथा वेदना शान्त होती है। इसका आभ्यन्तरिक प्रयोग ४ रत्ती की मात्रा में जल के साथ किया जा सकता है।

८. शुष्क कास तथा श्वसनिका शोथ में यवक्षार ४ रत्ती, अडूसा का रस १० बूंद तथा लौंग का चूर्ण २ रत्ती देने से लाभ होता है। यवक्षार से कफ पतला होकर निकलने लगता है।

९. तमकश्वास के आवेग को रोकने के लिए सुवर्चिका (सोरा) के २०% घोल में सुखाये हुये सोख्ते के कागज को जलाकर उसका धुआं नाक से सूंघने से आवेग रुक जाता है।

१०. उरस्तोय (प्लूरिसी) में पुनर्नवा, सोंठ, काली कुटकी आदि के क्वाथ में सुवर्चिका प्रयोग किया जाता है।

११. पांच साल से बड़े बच्चों की खांसी में सोरा ५ भाग, हीराकसीस, नौसादर एवं गन्धक ७-४ भाग इनका चूर्ण आधा रत्ती की मात्रा में देते हैं।

१२. कंकोल (कबाबचीनी) के चूर्ण को मधु के साथ खांसी में चटाते हैं। इसका धूम्रपान श्वास में लाभप्रद है। यह श्वसन संस्थान के विकारों में प्रतिदूषक एवं उत्तेजक निःसारक रूप में चूसने को प्रयुक्त होता है।

१३. गले एवं श्वासनलिका की सूजन में पर्पट के धूम्रपान से कफ ढीला होकर शीघ्र गिरने लगता है। तमकश्वास में छोटी पीपल, मुलेठी एवं पर्पट मधु के साथ देते हैं तथा इससे थोड़ा धूम्रपान भी कराते हैं।

१४. श्वास तथा कास में पारिजातक की छाल के चूर्ण को १ से २ रत्ती की मात्रा में पान में रखकर दिन में ३ से ४ बार देने से कफ का चिपचिपापन कम होता है।

१५. यष्टिमधु में स्नेहन और सौम्य कफनिःसारक गुण होने से स्वरभङ्ग, कास, श्वसनिका शोथ, गलशोथ आदि में प्रयोग होता है। इसके लिये इसके टुकड़े को मुख में रखकर चूसने को दिया जाता है।

१६. काकड़ासिङ्गी, सोंठ, पिप्पली, नागरमोथा, पोहकर मूल, कचूर तथा कालीमिर्च इन सब औषधियों का चूर्ण बनाकर सम परिमाण में मिश्री मिलावें। पुनः इस चूर्ण को गुडूची, अडूसा तथा पंचमूल के क्वाथ में मिलाकर पीने से महाघोर श्वास भी ३ दिन में नष्ट हो जाता है।

तमक श्वास की अनुभूत आत्ययिक चिकित्सा

वैद्य शोभन वसाणी आयुर्वेदाचार्य, 'आयु सेण्टर' सर्वोदय कॉमर्सिल सेण्टर, रिलीफ सिनेमा के पास, अहमदाबाद–1
अनुवादक–वैद्य भानुप्रताप आर. मिश्र बी: एस. ए. एम. आयु. मध्यमा
विवेचक–श्री बाला हनुमान आयु. महाविद्यालय, लोदरा ता. विजापुर, जिला महेसाना (उ. गुजरात)

तमक श्वास के तीव्र आक्रमण को लेकर एक रोगी रिक्शा में आया था। रोगी का श्वास वेग इतना तीव्र था कि श्वासोच्छ्वास की आवाज फुसकार की भांति दूर तक सुनाई देती थी। सम्पूर्ण उर:प्रदेश उछलता था श्वास काफी था। प्रस्वेद की धार सिर से पड़ रही थी। बोल नहीं सकता था। बैठ नहीं सकता था। सो नहीं सकता था। भयङ्कर चिन्ता थी। आंखें ऊपर की ओर चढ़ी हुई थी। तमक श्वास के सम्पूर्ण लक्षण रोगी में विद्यमान थे। श्वासाधिक्य के अनेक रोगियों की चिकित्सा मैंने की थी परन्तु इतना उग्र केस यह प्रथम ही था।

'साहब एफिड्रिन टिकिया दीजिये।' रोगी बहुत ही लाचारी भरे स्वर में विनती कर रहा था। आयुर्वेद का आग्रही हूं। एलोपैथी कम जानता हूं और मानता हूं उससे भी कम। आयुर्वेद में लगभग सभी प्रकार की इमर्जेन्सी होनी ही चाहिए और न हो तो प्रयत्न करके प्रारम्भ करना चाहिए ऐसा मेरा दृढ़ मन्तव्य है। एक महिना में हमारी चार-पांच इमर्जेन्सी आती हैं। एक वर्ष में ५०-६० इमर्जेन्सी तो अवश्य ही आती थीं। इस प्रकार ७ वर्ष में तीन सौ के लगभग इमर्जेन्सी ड्यूटी की होगी। हजारों केसों का इसी प्रकार आत्ययिक अवस्था में चिकित्सा की होगी। परन्तु कभी आयुर्वेद के अतिरिक्त एलोपैथी का प्रयोग नहीं किया। सद्योव्रण अभिघात, शूल, कर्णशूल, दन्तशूल, अतिसार, हृदयशूल, प्रवाहिका ज्वराधिक्य, रक्तस्राव मूत्रावरोध, श्वासाधिक्य, छर्दि, शिर:शूल, उर:शूल, आध्मान इत्यादि सद्यः चिकित्सा के केस जहां तक हो सके करता हूं। परन्तु यह रोगी सामने से एफिड्रिन मांगता था और रोग का प्रमाण भी अधिक था इसलिए मैं अधिक धर्म का संकट में था।

एलोपैथिक इमरजेन्सी बाक्स सामने ही पड़ा था। चाहे तो कम्पाउडर, नर्स या सामान्य ज्ञान वाला चौकीदार भी श्वास रोग में एफिड्रिन टिकिया दे सके तो मैं भी दे सकता था। परन्तु आयुर्वेद के हित के लिए रोगी को एफिड्रीन नहीं देना चाहता था।

कामदार बीमा योजना के २० नम्बर चिकित्सालय में से औषधि लेता हूं। डाक्टर ने एफिड्रीन दिया था। जब अधिक श्वास चढ़ता है तब ले लेता हूं। आज एफिड्रीन खत्म हो गई थी। इसलिये श्वास बढ़ गया है। बहुत ही तकलीफ में मुश्किल से यहां तक पहुँचा हूं। इस प्रकार रोगी ने कहा। आप यदि एफिड्रिन ही लेना चाहते हो तो कानून की हैसियत से मैं वैद्य होने के नाते नहीं दे सकता हूं। डी १६ में भी इमर्जेन्सी चालू है। वहां भी कोई डाक्टर होगा। फोन करता हूं। आप वहां जाओ। नहीं तो एम्ब्युलन्स कार मंगवाकर सिविल में भेज दूं। वहां पर टिकिया, इन्जेक्शन आदि उचित चिकित्सा मिलेगी।

आपको अच्छा होने से काम है कि एफिड्रीन से काम है? उसे आप हमेशा खाते हैं। फिर भी आपकी यह परिस्थिति है। रोग का जड़मूल से मिटाने का कोई चिकित्सक क्यों नहीं प्रयत्न करता है? अखण्डानन्द आयुर्वेद चिकित्सालय अहमदाबाद में भर्ती हो जाओ अथवा आप अपने चिकित्सालय में से वैद्य से दवा लो तो हमेशा के लिये फायदा हो जायेगा। आप कहे तो इस आक्रमण को बैठाने के लिये आयुर्वेद औषधि दूं बहुत ही अच्छी दवा है। बोलो दूं।

रोगी की आशा और परिणाम बताने का प्रथम अवसर मिलते ही मैंने तुरन्त ही निम्नलिखित योग तैयार करके पिलाया—

कनकासव १५ मिली., श्वासकुठार रस १/४ ग्राम, सोमकल्प १/२ ग्राम, शिलासिंदूर १/१६ ग्राम।

—शेषांश पृष्ठ २५६ पर देखें।

दमा (श्वास रोग)

वैद्य मुरारी प्रसाद आर्य, प्रधान चिकित्सक—संत विनोवा भावे आयु० चिकित्सालय, शेरवा (अदलहाट) मीरजापुर

—:❀:—

भेदानुसार श्वास के लक्षण—

१. क्षुद्रश्वास—रूक्ष आहार के सेवन से तथा कठिन परिश्रम करने से जो क्षुद्र वायु पैदा होती है, तो वह साधारण वायु कुपित हो उदर से होकर श्वास नलिकाओं में प्रवेश करती है, तब क्षुद्रनामक श्वास हो जाता है।

यह श्वास शरीर को अधिक कष्ट नहीं देता है तथा अङ्गों की गति में कोई रुकावट नहीं डालता। अन्य दूसरे श्वास के मुताबिक दुखदाई नहीं होता। न खान पान में कष्ट देता है। यह इन्द्रियों को खिन्नता अथवा अन्य प्रकार की एक साधारण, पीड़ा को ही उत्पन्न करता है। यह साध्य होता है। वैसे तो बलवान पुरुष य भी श्वास के सम्पूर्ण लक्षण विद्यमान न हो जावें तब तक के लिए साध्य माने जाते हैं।

२. तमक श्वास—जब श्वासवाहि स्रोतों में कफ के कारण गतिरोध होता है, तो कुपित वायु ग्रीवा व सिर में प्रवेश कर कफ को उखाड़ कर जुकाम कर देता है। इसी कारणवश कफ से रुका हुआ वायु घुर-घुर ध्वनि उच्चारण वाले भीषण वेग से प्राणी को कष्ट देने वाले तमक श्वास को कर देते हैं। इस श्वास के वेग से रोगी की आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है, प्यास की अधिकता हो जाती है। वह सुस्त हो जाता है, कभी कभी श्वास के वेग से कास उत्पन्न होकर रोगी खासते-२ बेहोश हो जाता है। कफ स्राव न होने के कारण अति दुःख पाता है। यदि कफ ढीला होकर निकल जाता है, तो रोगी को आराम मिल जाता है, इसके बाद स्वरभंग-कष्टपूर्वक वाक्य उच्चारण करता है, श्वास वेग बढ़ जाने के कारण नींद में बाधा पड़ती है, अगर रोगी सोने लगता है तो उसके पसलियों में दर्द होने लगता है। अगर बैठ जाता है तो आराम मिल जाता है। रोगी गर्म खाद्यों एवं पेयों की इच्छा प्रकट करता है, आंखें ऊपर चढ़ी हुई तथा मस्तिष्क के अग्रभाग में पसीना आता है। मुख सूखा रहता है तथा श्वास के वेग से झूमता है। इस श्वास की बढ़ोतरी बादल—वर्षा-ठण्डक पूर्वी हवा एवं कफजनित वस्तुओं से होती है।

तमक श्वास नवीन लगभग १ वर्ष का साध्य होता है। आजकल जितने भी रोगी श्वास के दिखलाई पड़ रहे हैं वे सब तमक श्वास के ही होते हैं। अतः तमक श्वास के दो भेद हैं।

(क) प्रतमक श्वास

(ख) सन्तमक श्वास

(क) प्रतमक श्वास—जब तमक श्वास के साथ ज्वर और बेहोशी के लक्षण हों तो प्रतमक श्वास मानना चाहिए। यह पेट फूलने, धूल जो उड़कर श्वास स्रोतों में चली जाती है, अजीर्ण से बुढ़ापा व वेगावरोध से उत्पन्न होता है, यानि कृष्ण पक्ष में इसके वेग बढ़ सकते हैं व शुक्ल पक्ष में घट जाते हैं। यह शीत उपायों से शीघ्र ही शांत हो जाता है।

(ख) सन्तमक श्वास—इस तमक श्वास में रोगी के सामने चकचौंध या अंधेरा य चिनगारियां उड़ते हुयी दिखाई देती हैं तो सन्तमक श्वास कहना चाहिए। यह श्वास कमजोरी, दुर्बलता एवं अत्यधिक मैथुन के कारण होता है।

३. छिन्न श्वास शरीर के अनेक कष्टों व रोगों से घिरा हुआ रोगी क्रमशः रुक-रुक कर श्वास लेता है अथवा श्वास का क्रम रुक जाता है, रोगी को हृदय फटने की पीड़ा मालूम पड़ती है तथा बहुत कष्ट होता है। आनाह, स्वेद-मूर्च्छा-वस्ति में दाह, आंखों में अश्रु, शरीर का क्षीण होना, श्वास प्रश्वास में एक नेत्र रक्त वर्ण का हो जाता है, रोगी हमेशा बेचैन ज्ञान हीन बदरंग-और प्रलापी हो जाता है, उसका मुख हमेशा खुला रहता है। छिन्न श्वास से पीड़ित रोगी अपने प्राण खोने में विलम्ब
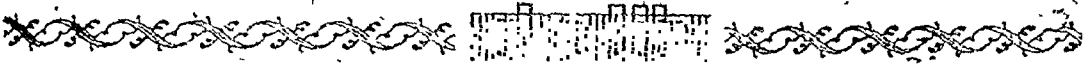
नहीं करता है। अतः छिन्न श्वास के लक्षण से ज्ञात होता है कि इसका उपनाम मृत्युगामी श्वास होना चाहिए।

४. ऊर्ध्व श्वास—ऊर्ध्वश्वास का रोगी कफ की अधिकता से इतना पीड़ित होता है कि उसके श्वास मार्ग बन्द होकर मुख हमेशा रोगी के कफ से भरा रहता है। उसके रास्तों में कुपित वायु अनेक कष्ट देता है। इस कष्टमय श्वास में रोगी सांस अधिक देर तक लम्बा सांस ऊपर को लेता है। जो पुनः नीचे नहीं आता है। ऊपर का श्वास जाने से उसके नेत्र का दृष्टि ऊपर की ओर हो जाती है या माया वशीभूत प्राणी अपने सभी वस्तु के ऊपर होकर प्रेम मयी वस्तु को देखने की अभिलाषा रहती है। पुतलियां इधर उधर नाचती रहती हैं। फिर भी ठीक ढङ्ग से नहीं देख पाती, वह बेहोश होकर अनेक कष्टों से पीड़ित हो जाता है। मुख का वर्ण श्वेत रङ्ग का हो जाता है।

ऊर्ध्व श्वास से पीड़ित रोगी का श्वास जो बाहर निकलता है, वह भी रुक जाता है, अर्थात बेहोशी बढ़कर वह भी तन जाता है और रोगी अपने प्राण को गवा बैठता है, यानी ऊर्ध्वश्वास से पीड़ित रोगी बच नहीं सकता है।

५. महाश्वास—जो रोगी मतवाले सांड के समान रात्रि दिन वायु की ऊर्ध्वगति हो जाने के कारण ऊपर को ऊर्ध्वध्वनि के साथ श्वास लेते हुए अत्यधिक दुःखी हो जाता है। जिसका इन्द्रिय ज्ञान और मस्तिष्क ज्ञान बिलकुल समाप्त हो जाता है, आंखें घूम-२ कर मुख के साथ खुल जाती हैं, मूत्रादि वेग रुक जाते हैं। बोली बन्द हो जाती है और बिलकुल निर्जीव सा पड़कर अपने श्वास प्रश्वास की आवाजों को दूर से सुनता है, वह रोगी शीघ्र ही शरीर त्याग कर दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है।

श्वास रोग की आयुर्वेदिक औषधियां

क्र. स.	नाम औषधि	पुस्तक का नाम
१.	अमृतार्णव रस	रसराज सुन्दर
२.	भैरव रस	,, ,, ,,
३.	महालक्ष्मी विलास रस	रसेन्द्र चिन्तामणी
४.	महाश्वासारि लौह	भैषज्य रत्नावली
५.	गजेन्द्र गुटिका	रसेन्द्रसार संग्रह
६.	श्वास कास चिन्तामणि	,, ,, ,,
७.	श्वासकुठार रस	भावप्रकाश
८.	श्वासान्तक रस	रस चंडांशु
९.	सूर्यावर्त्त रस	शार्ङ्गधर संहिता
१०.	सोमयोग	सिद्ध योग संग्रह
११.	हेमादि पर्पटी रस	रसप्रकाशसुधाकर
१२.	बब्बूलादि वटी	रस चंडांशु
१३.	श्वासरोगान्तक वटी	रस तन्त्रसार
१४.	कनकासव	भैषज्य रत्नावली
१५.	सोमकल्पासव	एलो. सिद्ध योग संग्रह
१६.	सोमकल्प रस	,, ,, ,,

श्वास रोग नाशक अन्य औषधियां—

क. सं.	नाम औषधि	निर्माता
१	डायले ट्रेन टेबलेट	ग्रीमाल्ट गुलाबी रंग
(क)	,, ,, ,,	,, नीला रङ्ग
२.	स्मेमोनिया सीगरेट	,, ,,
३.	ट्रेडाल टेबलेट	वार्नर
४.	म.कालीन टेबलेट	जर्मन रेमेडी
५.	एमेर्सक प्लूमूल्स	लिली
६.	रिकोलमीन रिथमार्स निकपेय	स्टेण्डफार्मा
७.	हूपको ड्राप्स	ओ० आर० सी०
८.	पेया फोलीन टेबले	यूनीकेम
९.	पेया फोल टेबलेट	शाजोयन यूनकेम
१०.	अन्थ्री समन टेबलेट	टी. सी. यफ.
११.	अज्मोसोल पेय	स्टेडमेड
१२.	कोरामीन इफेड्रीन टेबलेट-इन्जेक्शन	शिवा
१३.	वेलाकोलीन इन्जेक्शन	सैण्डोज
१४.	एफेड्रीन हाईड्रोक्लोराईड टेबलेट	एम एण्ड बी.
१५.	एण्टिएर्लासन इन्जेक्शन	,, ,, ,,
१६.	इफेडेक्स पेय	एलम्बीक
१७.	इफेडेक्स एन कैपसूल	,, ,, ,,

१८.	श्वास टेबलेट	एलम्बिक
१९.	मेराक्स कैपसूल	फेजर
२०.	सोमा कैप. पेय इन्जे.	मार्तण्ड
२१.	दमदमा	डाबर
२२.	अस्थम रिलीक पाउडर	बूट्स
२३.	एफ्रानडेगीज	होचेस्ट
२४.	अस्घमीनो कैपसूल	जगसनपाल
२५.	अस्थमापान विथ प्रेडनी-सोलन टेबलेट	खण्डेलवाल
२६.	एज्मापाक्स पेय	
२७.	अस्थमापाक्स डिपो	इण्डियन शचारिंग
२८.	एफड्रेक्स सीरप	नेफा
२९.	श्वासारि कैपसूल	निर्मल
३०.	श्वासान्तक इन्जेक्शन	जी० ए० मिश्रा

नोट—इसी तरह विभिन्न कम्पनियां अलग-२ अनेक नामों से श्वास रोग के लिए औषधि निर्माण करती हैं। जिसमें श्वास रोग की प्रधान औषधि—

१. इफेड्रीन हाईड्रोक्लोराईड सहायक औषधि थियोफायलीन, फेनोवार्बिटोन क्लोराफेनाशिमोन मिलिएट प्रेडनीसोलन आदि हैं।

मिश्रित चिकित्सा

आयुर्वेदिक—(अ)

(क) सुबह, शाम, दुपहर पीपल का चूर्ण मधु के साथ दें। स्वास कास चिन्तामणि रस १ ग्राम, अभ्रकभस्म शतपुटी ३ ग्रा. महालक्ष्मी विलासरस १ ग्रा. मात्रा—१७

(ख) १० बजे, ४ बजे—च्यवनप्राशवलेह २५० मि.ग्रा. तालीसादि चूर्ण ५ ग्राम, अभ्रकभस्म शतपुटी ३ ग्राम मात्रा—११। गाय के दूध के साथ।

(ग) प्रत्येक ६ घण्टा बाद मार्तण्ड कम्पनी का सोमा सीरप अथवा आयुर्वेद प्रचार समिति पटना का सोमापान २-२ चम्मच जल से लेना चाहिए।

(घ) भोजन के बाद—द्राक्षारिष्ट १० मि.लि, वासारिष्ट १० मि.लि., सोमकल्पासव १० मि.लि. जल मिला कर पान करे—दोनों समय।

(ङ) मार्तण्ड कं. का सोमा-हिरण्य मिलाकर १२ इन्जे एक दिन नागा देकर त्वचान्तर्गत लगावें।

आयुर्वेदिक—(ब)

(क) स्वास कुठार रस, चन्द्रामृत रस, सोम योग ये तीनों ३-३ ग्राम—मात्रा १८ आद्रक स्वरस व मधु के साथ सुबह दुपहर शाम दें।

(ख) १० बजे, ४ बजे—भार्गीगुड़ २५० ग्राम, स्वास कुठार रस ५ ग्राम—मात्रा २१ गोदुग्ध के साथ दें।

(ग) भोजन के बाद दोनों समय जल मिलाकर दें। कनकासव १५ मि.लि. वासारिष्ट १५ मि.लि. दें।

(घ) प्रत्येक ६ घन्टे के बाद दमदमा मात्रानुसार दें।

(ङ) इन्जेक्शन सोमा हिरण्य का त्वचान्तर्गत १२ लगावे एक दिन नागा देकर प्रयोग करें।

१. जब स्वास वेग अधिक होता है तो देहात वर्ग के लोग (घोड़े के) चारों पैरों के पास चमड़ी वाला १ ग्राम पान के स्वरस से खूब घिसाकर शहद के साथ देते हैं।

(२) होमियोपैथिक में भारतीय औषधि की प्रमुख औषधियों में स्वास के लिए ब्लाटा ओरियण्टल (मदर टिन्चर)-१०-१० बूंद दिया जाता है। इसे अब विदेश वाले भी निर्माण करते हैं। अतः ब्लाटा ओरियेन्टल Q वी. टी. का ही प्रयोग कुछ दिन तक करने से स्वांस के वेग शान्त होते हैं तथा लाभ मिलता है।

(३) चरक संहिता चिकित्सा स्थान में अध्याय १७ वाले प्रकरण में हिक्का व स्वास दोनों रोगों की चिकित्सा शामिल है। अस्तु चरक चिकित्सा की अनिवार्य बातें सेवा में सेवार्पित हैं जो हिक्का व स्वास दोनों के लिये हितकर है—

१—	स्वास-हिक्का हितकर		निदिग्धिकारी योग।
२—	,,	,,	रास्नादि यूष।
३—	,,	,,	क्षार यूष।
४—	,,	,,	मातुलुंगादि मुद्ग यूष

५. पथ्य—पुराना शालि का चावल, साठी चावल, गेहूं या जौ, स्वास-हिक्का में पथ्य है।

६. यवागू—हिंग्वादि यवागू, दशमूलादि यवागू।

७. प्यास रोकने हेतु जल (पीने के लिए) दशमूल क्वाथ, देवदारु क्वाथ।

८. आसव—पाठाद्यासव

९. चूर्ण—सौवर्चलादि चूर्ण, शट्यादि चूर्ण, मुक्तादि

चूर्ण (अतिशीघ्र लाभकार औषधि)

१०. घृत—दशमूलादि घृत, तेजोबलादि घृत, मनःशिलादि घृत।

एलोपैथिक में—एक रोगी को एय.वी. का एसेटि कलिन मांसपेशीगत ३ मिलि. का एक दिन नागा देकर इन्जेक्शन लगाया गया। नागा वाले दिन न्यूरीवाल एच चूतड़ में लगाया गया जो लगभग बहुत दिन हो गया पुनः श्वास का आक्रमण नहीं हुआ। इससे समझा गया कि उसे दुर्बलता एवं वीर्य नाश की वजह से कमजोरी बढ़ जाने के कारण श्वास का रोग हो गया था।

श्वास रोग की एलोपैथिक चिकित्सा—

क. इन्जेक्शन—सर्व प्रथम डेकाड्रान १ वायल लगाकर पुनः १ घण्टे बाद एमीनोफायलीन का इन्जेक्शन लगाना चाहिए। पुनः दूसरे दिन से डाईकिस्टासीन १/२ ग्राम-वाटर फार इंजेक्शन २ मिलि., मैकलविट २ मि.लि., एक में मिलाकर मांसपेशीगत लगावें।

ख. मुख से खाने के लिए—सुबह-शाम मेराक्स कैपसूल १, डेकाड्रान टेबलेट १-१ मात्रा।

ग. १० बजे—रिकोलशीन विद आर्सेनिक पेय स्टैंडर्ड फार्मा का २-२ चम्मच देना चाहिये। भोजन बाद दोनों समय—जल मिलाकर दें।

मोनाडेक्स १५ मिलि. (ग्लैक्सो), कोरामीन ड्राप्स २० बूंद (सीच), डिज्रीप्लेक्स १० मिलि. (टी.सी.यफ.)

घ. कुछ श्वास के रोगी हमेशा एफेड्रीन हाईड्रोक्लोराईड एवं वाईसोलन टेबलेट १-१ सुबह-शाम लेते हैं। इन्जेक्शन में ओम्नामाईसीन वाटर फार इन्जेक्शन ३ मि. लि. घोल बनाकर मांसपेशीगत लगाते हैं। कमजोरी दूर करने के लिये केडिला कम्पनी का न्यूरोक्सीन की १२ को २ मिलि. या ग्लैक्सो का मैक्राबीन १००० का १ मिलि. मिलाकर लगवाते हैं।

अत्यधिक श्वास के वेग में डेकाड्रान इंजेक्शन मांसपेशीगत बाद १ घण्टा के एमीनोफायलीन लगवायें।

ङ. आर्सेनोटायफायड इंजेक्शन शरद् ऋतु में वाई नम्बर मांसपेशीगत हफ्ते में दो बार लगवायें। इससे भी श्वास का वेग शान्त हो जाता है।

मार्तण्ड कम्पनी का सोमा, हिरण्य इंजेक्शन अमृत तुल्य है, एक दिन नागा देकर १२ इंजेक्शन त्वचान्तर्गत लगावें। साथ-२ श्वासकास चिन्तामणि रस (निर्मल) १ ग्राम, अभ्रक भस्म शतपुटी २ ग्राम, शृङ्गभस्म ३ ग्राम मिला मात्रा ११ बनाकर शहद के साथ दे। भोजन के बाद सोमापान २-२ चम्मच प्रयोग करें।

ट्रापिकल इसिनोफीलिया

आजकल श्वास की तरह की नयी श्वास की बीमारी होती है जिसे अंग्रेजी में हम ट्रापिकल इसिनोफीलिया कहते हैं। उस पर अपने विचार इसी श्वास रोग प्रकरण में कर देना चाहता हूं।

कारण—हवा के झोकों में आने जाने से, खान-पान में गड़बड़ी हो जाने से, अत्यधिक दही खाने से, एक रक्ताणु जिसका नाम इयासिनोफिल्स है उसकी संख्या बढ़ जाती है जिससे कि इस रोग की उत्पत्ति होती है।

लक्षण—सभी लक्षण तमक श्वास की तरह होते हैं मन्द मन्द ज्वर या ज्वर का वेग तेज होना एवं साथ-२ खांसी एवं श्वास का वेग बढ़ जाता है परन्तु कफ नहीं निकलता है। श्वास की औषधि प्रयोग करने पर लाभ नहीं होता है। अस्तु निदान केन्द्र में जाकर (टी.सी/डी. सी.) रक्त की परीक्षा करानी चाहिए।

प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य के रक्त में चार चीजें होती हैं।

१. श्वेत कैशिकायें	२. लाल कैशिकायें
३. प्लेटलेट	४. रक्त सीरम

(१) श्वेत कैशिकाएं (Leucocytes)—यह रक्त के एक हजार अंश में औसतन घन मिलि. मीटर छः हजार से आठ हजार तक पाये जाते हैं। लेकिन अत्यधिक स्वस्थ पुरुष में चार हजार से ग्यारह हजार मानी जाती है। इसलिये चारों का औसत मिलाने पर ७२५०. मानना चाहिए। यह भी अनेक प्रकार के कैशिकाए सम्मिलित होकर होती हैं। जैसे प्रतिशत में लिखा जाता है कि १०० घन मिलि. कौन कौन से स्वस्थ मनुष्य के अन्दर होते हैं—

१. बहुरूपमींगीयुक्त श्वेत कैशिकाएं (Polymorphonuclear)— ६५ से ७० %

२. क्षुद्र लसीकाणु (Small lymphocytes)— २ से १५%

३. बृहद् लसीकाणु (Large lymphocytes)— ५ से १०%

4. Neutrophils— 6 to 7%
5. Monocytes— 2 to 6%
6. Eosinophil—अम्ल रंगेच्छु कोशिकाएं १ से ४%
7. Besophils 1/2%
8. P C V 42 to 50

E S S R—Sedimentation rate—
Wintorobe 1 hour 12 m.m.
Wester gram 1 hour 10 m.m.

M C V—1. 42 to 50
2. 27 to 33

रक्त जांच के लिए पुर्जे का विधान

Blood Test—T. C/D. C.
– E S S R. M. C. V.

अगर इसिनोफील की संख्या अधिक हो और रक्त में अन्तर प्रतिशतादि में पड़े तो तमक प्रागरूप रोग समझना चाहिए।

स्वेत कोशिकाएं का ५ वां भाग इसिनोफील की संख्या की वृद्धि होना ही अनेक रोगों का कारण है जो रक्त जांच करने पर ही पता चलता है। अस्तु दोहदे वदन वाले के दमा में इसकी संख्या विशेष पायी गयी है। मैंने कई एक रोगी को परीक्षण कराके देखा है।

इसीनोफिल के बढ़ जाने से श्वास कास रोग का होना मुख्य हैं। इसके अलावा चर्मरोग, शीतपित्त, उदररोग, क्षय, यकृत वृद्धि आदि हैं। इस प्रकरण में इयोसीनोफील से होने वाले श्वासकास की चिकित्सा लिखी जा रही है।

चिकित्सा—

क—श्वासकास चिन्तामणि रस १ ग्राम, कृमि कुठार रस १ग्राम, अभ्रक भस्म शतपुटी १ग्राम, लौह भस्म शतपुटी १ ग्राम, यह १७ मात्रा हैं। सुबह, दोपहर, शाम मधु से या कपसूलों में भरकर जल से निगलवाए।

ख—भार्गी गुड़ २५० ग्राम, कुमुदेश्वर रस २ ग्राम, यह २१ मात्रा। १० बजे, ४ बजे दूध या जल से।

ग—भोजन के बाद दोनों समय समान भाग जल मिलाकर कनकासव १० मिलि., विडङ्गासव १५ मिलि. लोहासव १ मिलि.।

हमदर्द की—हब्बेरीन भोजन बाद १-१ गोयी जल से प्रयोग करें।

एलोपैथिक चिकित्सा—

जांच करने के बाद—एम्पीसिलीन ५०० मिग्राम, वाटर फार इन्जेक्शन २ मिलि., मांसपेशीगत घोल बनाकर लगावे। कुल १० इन्जेक्शन। शाम को सुबह यूनीकार्बाजान एम्पुल २ मिलि. का खाली पेट मांसपेशीगत लगावे। कुल १० इन्जेक्शन।

रक्त की जांच १० दिन के बाद अवश्य करावे। अगर पुनः इयोसिनोफिल के कीटाणु हो तो निम्नांकित दवा चालू रखे, केवल इन्जेक्शन बन्द कर दें। इन्जेक्शन के समय भी यह दवा देते रहे।

ख—डाक्सीसाईक्लीन १०० मिग्राम १ कैपसूल, डेक्सोना (केडिला) १ टेबलेट, कोरामीन १ टेबलेट, यह १ मात्रा। सुबह शाम जल से दें।

ग—१० बजे—४ बजे एलम्बिक, एफनेनस एन कैपसुल १-१, जल से दें।

घ—भोजन बाद वेसीटोन फोर्ट कैपसुल १-१ दोनों समय जल से दें। अथवा

ङ—फास्फोमीन, डिजीप्लेक्स, यूनीजाईम प्रत्येक १०-१० मिलि. जल मिलाकर दोनों समय दें।

रात को सोते समय यूनीकार्बाजन फोर्ट टेबलेट १ जल से दें। ध्यान रहे कि जिसे यूनीकार्बाजन का इन्जेक्शन लग रहा हो तो इसे न दें।

निर्धन रोगियों के लिए—

यूनीकार्बाजान, डेक्सामैथासोन १-१ टेबलेट, बिका डेक्सामीन १ कैपसुल सुबह, दोपहर, शाम, बराबर १ माह खिलाकर १५ दिन पर रक्त की जांच करायें।

इसिनियोफिलिया के अन्य औषधि—

१. डेज कम्पनी का इयोसीनपेन टेबलेट–सीरप
२. फेगोसिप्य—प्रोपाजीन सीरप
३. लीडरलो—हेट्राजन सीरप

इस रोग में डाय एथिल कार्बामेजीन सायट्रेट के योग चलते है। विस्वस्त कम्पनी की द्रव्य अच्छी होतीहै।

—शेषांश पृष्ठ २७८ पर देखें—

तमक-श्वास रोग निवारण

वैद्य मोहर सिंह आर्य, स्थान-मिश्री, जिला-भिवानी (हरियाणा)

—:o:—

सामान्य चिकित्सा—वेग के समय रोगी को उष्ण वस्त्र ओढ़ाकर उष्ण स्थान में शय्या पर लिटा दें व सुखपूर्वक बैठा दें। पीने के लिये गरम चाय या पानी घूंट घूंट दें। पांव गरम पानी में रखवा दें। छाती पर सैंधवयुक्त गरम तैल का मर्दन करें। वाष्प के द्वारा स्वेदन कर्म करें।

आवेग शमनार्थ—धुस्तूर पत्र शुष्क, कलमी शोरा २५-२५ ग्राम, लोबान सत्व ३ ग्राम, सौंफ ६० ग्राम लें। पहले सौंफ को १ लिटर पानी में उबालें। जब जल आधा रह जाए तो उतार कर छान लें। अब सब द्रव्यों को खरल में डालकर सौंफ के पानी से घोटते रहें। जब सब पानी समाप्त हो जाए तब चूर्ण को सुरक्षित रखलें।

उपयोग विधि—यह चूर्ण २ ग्राम लेकर दहकते हुए कोयलों पर डालकर धुएं को भीतर खींचें या चिलम में पियें।

गुण—४-५ बार धुआं भीतर जाने की देर है कि श्वास का वेग समाप्त हो जाता है। अथवा

धतूर फल १ भाग, गुड़ १ भाग ले। दोनों को कूट कर चिलम में रख कर धूम्रपान करावें। धूम्रपान की प्रत्येक फूंक या कश के पश्चात् वासा घृत १०-१० ग्राम पिलावें।

यदि रोगी चिलम पकड़ कर धूम्र खींचने में भी असमर्थ हो, तो श्वास कुठार रस की नस्य दें। श्वासारि धूम्र का धुआं सुंघावें। इससे आवेग मन्द हो जाता है, पुनः धूम्रपान करावें। अथवा श्वासकास चिन्तामणि रस कनकासव के साथ दें। अथवा काश्मीरी कूठ (कुष्ठ) का सत कनकासव के साथ दें। कूठ का चूर्ण या फाण्ट दशमूल कषाय से दें।

यदि सोने से १०-१५ मिनट पूर्व उष्णोदक से स्नान करके सो जाएं तो रात्रि को वेग नहीं होता।

'तमके तु विरेचनम्' विरेचन से श्वास का दौरा शमन होता है। विशेषरूपेण तमक श्वास को शमन करने के लिये विरेचन अत्यन्त लाभप्रद है। अन्यत्र कहा भी है—'विरेचनं श्वास शमनम्' विरेचन से श्वास शमन होता है।

विरेचन से आमाशय शुद्ध हो जाता अर्थात् विरेचन सम्पूर्ण आमाशय के दोषों को बाहर निकाल देता है। एतदर्थ—

सनाय, कुटकी, यवानी २-२ भाग ले, सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण बना ६ ग्राम की मात्रा में सुखोष्ण जल के साथ खिला दें। इससे आधे घण्टे के पश्चात् आंव मिश्रित शौच होगा। श्वास का आवेग शमन हो जायेगा। मलावरोध दूर हो जायेगा।

इसी प्रकार वमन भी श्वास रोग में सिद्ध है। कहा भी है - 'कफाधिके बलस्थे च वमनं सविरेचनम्।' अर्थात् श्वास रोगी दुर्बल एवं बलवान भी होते हैं। दुर्बल श्वास रुग्णों में वात की अधिकता और बलवान रुग्णों में कफ की अधिकता रहती है। अतः कफाधिक्य में वमन एवं विरेचन करावें। चरक ने कहा है—वमनं श्वासीय-श्लेष्म नाशनम्। तात्पर्य यह है कि श्वास रोग से पीड़ित बलवान रोगी को कफ की अधिकता में वमन एवं विरेचन करावें।

वमन तथा विरेचन से पूर्व स्नेहन-स्वेदन कराना परमावश्यक है। कफ ढीला किये बिना विशोधन (पंचकर्म) करना उपयुक्त नहीं। अतः सर्वप्रथम रोगी को ७ दिन स्नेहन करावें। यदि सद्यः स्नेहन कराना हो तो २ से ३ दिन तक स्नेहपान करावें।

स्नेहन कर्म—रोगी को सात दिन स्नेहन पान करावें एतदर्थ वासाकर्म २५ ग्राम की मात्रा में ३ दिन देकर पीछे ५० ग्राम की मात्रा में चार दिन दें।

बाह्य स्नेहार्थ—गोघृत, लवण (सैंधव) युक्त का मर्दन छाती तथा पार्श्वों में करावें।

पथ्य भी स्नेहयुक्त दें। यथा—हलुवा, घी, भात,

पूड़ी तथा बादाम आदि।

स्नेहन काल के मध्य आवेग को शमन करने के लिए धूम्रपान, नस्य एवं धूम्र सुंघावें, जिससे दौरा शान्त हो जाए। एतदर्थ—श्वास कुठार रस का नस्य दें। वासारि धूम्र का धुआं सुंघावें। धुस्तूर फल+गुड़ का धूम्रपान करावें।

स्वेदन कर्म—स्वेदन कर्म भी ७ दिन किया जाता है। एतदर्थ—कण्टकारी, बला, गिलोय, सेहुण्ड, एरण्ड पंचाङ्ग, तुलसी पत्र, दशमूल, अर्क पत्र समभाग लेकर यवखण्ड कर लें। इसमें से २५० ग्राम को १० लिटर जल में डालकर क्वाथ करें। इस क्वाथ को द्रव्य सहित स्टोव पर रखें, जिस पात्र में क्वाथ हो उसके मुख पर ऐसा ढक्कन रखें कि उसके मध्य छिद्र हो। उस छिद्र में रबड़ की नली फिट कर दें। रोगी को एक शय्या पर बिना बिछावन के लिटा दें, ऊपर से कम्बल ओढ़ा दें। निर्वात स्थान हो, अब नली को खाट के नीचे घुमा-घुमाकर सर्वत्र वाष्प लगावें। नली का मुंह रोगी के शरीर से इतनी दूरी पर रखें कि शरीर पर सीधी वाष्प न लगकर थोड़ी दूर रहे। प्रातः सायङ्काल वाष्प स्नान करावें। वाष्प देते समय रोगी को शय्या पर कभी चित्त, कभी औंधा तो कभी करवट लेने को कहते रहें। विशेष रूप से वक्ष एवं पार्श्व पर वाष्प लगावें।

स्वेदन के पश्चात् रोगी को सुखुम जल पीने को दें। तौलिया से सम्पूर्ण शरीर को पोंछकर सुखावें। शीतलता से बचावें।

वमन कर्म—एक सप्ताह स्वेदन कराने के बाद रोगी को पथ्य में कफवर्धक आहार दें। यथा-भात, दही, दुग्ध, गुड़ आदि। शीतल जल पिलावें, दिन में सोने दें। इस प्रकार कफवर्धक पथ्य दें। जब कफ बढ़ जाए, तब वमनकारक योग दें। एतदर्थ—मदनफल ६० ग्राम को २ लिटर जल में उबालें। जब आधा शेष रहते, उतार कर छान लें। फिर उस क्वाथ में मधु ६ ग्राम, पीपल चूर्ण ६ ग्राम मिलाकर थोड़ा-२ करके तमाम क्वाथ पिला दें। इससे वमन होकर कफ निकल जायेगा, श्वास आवेग शान्त होगा। अथवा

मदनफल चूर्ण १० ग्राम, खिरनी बीज चूर्ण १०० ग्राम मधु मिलाकर खिला दें। वमन होंगे। यदि ३० मिनट तक वमन न हों, तो कण्ठ में तृण, दातुन या अंगुली डाल दें। इससे लालास्राव होकर कफ मिश्रित वमन होंगे। पहले पित्तयुक्त हरी तथा पीली के (वमन) होगी, फिर ७-५ वमन होकर डकारें आ जायेंगी।

वमनोपरान्त रोगी को सुखुम जल देकर हाथ-पांव स्वच्छ करा दें और शैया पर लिटा दें। भूख लगने पर चावल का माण्ड दें। दो दिन चावल का माण्ड देकर पुनः मूंग की दाल भात दें, तत्पश्चात् समाहार दें।

विरेचन—पुनः श्वास के रोगी को स्नेहन स्वेदन कर्म करायें तत्पश्चात् विरेचन दें। एतदर्थ—

कृष्ण त्रिवृत्त १० ग्राम, कुटकी ५ ग्राम, त्रिकटु १०० ग्राम मिला खिलाकर ऊपर से अमलतास के क्वाथ में एरण्ड स्नेह १०० मिलि० मिलाकर पिला दें। इससे विरेचन होकर शरीर शुद्ध हो जाता है। पञ्चकर्म से श्वास रोग में बड़ा लाभ मिलता है।

सद्यः स्नेहनादि कर्म—

पुराण गोघृत में सैंधव लवण मिलाकर रोगी की वक्ष, पार्श्व पर रात्रि के समय मर्दन करें और कम्बल ओढ़ाकर शय्या पर लिटा दें। गोदुग्ध में ५० ग्राम वासा घृत मिलाकर पिलाकर सुला दें।

प्रातःकाल शुण्ठि साधित गोदुग्ध में एरण्ड स्नेह १० ग्राम मिलाकर पिला दें और एक घण्टे में स्वेदन द्रव्य (एरण्ड मूल, वासा मूल, कटेरी पञ्चाङ्ग, देवदारु, हरिद्रा, लाख) इनका यवखण्ड चूर्ण १५० ग्राम, जल १० लिटर डाल आंच पर रखें। पात्र के मुख पर छिद्रयुक्त ढक्कन रख कपड़मिट्टी कर दें, छिद्र में रबड़ की नली लगा दें। रोगी को खाट निर्वात स्थान में रखें। रोगी को खाट पर लिटाकर कपड़ा ओढा नली द्वारा वाष्प दें। रोगी को कभी चित्त, कभी पट, कभी करवट के बल बदलते रहें। मुख को वस्त्र से बाहर रखें।

इस प्रकार सद्यः स्नेहन-स्वेदन तथा विरेचन कर्म करें। अगले दिन प्रातःकाल घृत भात खिलाकर वमनार्थ मदनफल योग अथवा तिक्तातुम्बी स्वरस ५० ग्राम पिला दें। इस विधि से जमा हुआ कफ पतला होकर निकल

जाता है। स्रोतो मार्ग एवं छिद्र कोमल हो जाते हैं। फलत: वात भी अनुलोम हो जाता है। श्वास-शमन हो जाता है। पीछे मूत्रपान तथा नस्य दें।

शरीर शोधनोपरान्त श्वासमें के बाद

चिकित्सा सिद्धान्त—

१. संशोधन के उपरान्त अनुलोमक, वातनाशक, बृंहण उपचार करें। यदि रोगी दुर्बल है तो प्रारम्भ से ही सद्य: संशोधन करावें। पीछे उपचार प्रारम्भ कर दें।

२. भोजनोपरान्त न्यून से न्यून एक घण्टा तक जल न पीवें। जल एक बार गटगट न पीकर थोड़ा थोड़ा घूंट घूंट पीवें।

३. दिन में न सोवें।

४. वेग धारण न करें।

५. स्वच्छ वायु मण्डल में भ्रमण करें।

६. श्वास रोग में कफ का निर्हरण करना ही मुख्य उपचार है।

श्वास रसायन—

शुद्ध पारद १० ग्राम, शुद्ध गन्धक १० ग्राम, सुवर्ण भस्म ५, सुवर्ण माक्षिक भस्म १० ग्राम, मुक्तापिष्टी ५ ग्राम, अभ्रक भस्म शतपुटी २० ग्राम, लौह भस्म (हिंगुल) ४० ग्राम ले।

सर्व प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर शेष भस्मों को अनुक्रम से मिलाते हुए खरल करें। फिर कण्टकारी स्वरस, वासा स्वरस, अजा दुग्ध, पान रस, यष्टिमधु क्वाथ, विडङ्ग क्वाथ, कुठ (काश्मीरी कुष्ठ) क्वाथ तथा सौंफ क्वाथ की २१-२१ भावनायें देकर खरल करें।

मात्रा—१२५ से २५० मिग्राम तक दिन में ३ वार दें। अनुपान–मधु+पीपल चूर्ण, सहपान–शर्बत जूस।

गुण—यह रसायन समशीतोष्ण, रक्तपोष्टिक, फुफ्फुसबलवर्धक, हृद्य और कफस्रावी है। मूलभूत श्वासरोग तथा उपद्रवरूप श्वासरोगनाशक है। आवेग शमनोपरान्त इस रसायन का सेवन करावें।

यह रसायन श्वास रोग की प्रसिद्ध औषधि है। शीघ्र ही अपना प्रभाव दिखाती है। छाती को गाढ़े कफ से साफ करता है। इसके सेवन से श्वास रोग जैसे जटिल दुःखदायी रोग से छुटकारा मिल जाता है।

हृदय विकृति सहश्वास रोग में पान स्वरस में मिला पिला दें, ऊपर अर्जुनारिष्ट पिलावें, दिन में २ वार दें।

चिपके हुए कफयुक्त श्वासरोग में मरिच्यादि क्वाथ के साथ दें। (कालीमरिच १ भाग, बनपसा १६ भाग, वासा पत्र १२ भाग, गावजुवां ८ भाग, मुलेठी ४ भाग लें। यथाविधि क्वाथ बना लें।)

श्वासघ्नावलेह—

शुद्ध भल्लातक २५० ग्राम, बादाम गिरी १ किग्राम, चारों मगज ५०० ग्राम, अखरोट १ किग्राम, काले तिल सालममिश्री, पलास गोंद ६२-६२ ग्राम, मूंग का चूर्ण ५०० ग्राम, रौप्य भस्म, फौलाद भस्म, बंग भस्म १२-१२ ग्राम, अभ्रक ६० ग्राम, सुवर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी १२-१२ ग्राम ले।

चूर्ण द्रव्यों का वस्त्रपूत चूर्ण बना लें। भस्मों को छोड़ शेष द्रव्यों को एकत्र कूट पीस वस्त्रपूत करलें। फिर सब मिला १ सप्ताह तक घोट लें। तत्पश्चात् गोघृत १ किग्राम, खांड २ किग्राम मिलाकर घोट लें।

मात्रा—१० से १५ ग्राम तक। अनुपान–गोदुग्ध।
समय—प्रात:काल। गुण–तमकश्वास नाशक है।

★ पृष्ठ १७२ का शेषांश ★

पथ्यापथ्य—दमा के रोगियों के लिये कफवर्द्धक खाद्य एवं सब्जी नहीं देनी चाहिये। तैल, मिर्च, खटाई, अम्ल पदार्थ, दही, चावल, केला, मठ्ठा अपथ्य हैं। अग्नि सताप, धूप मे बैठना, विशेष स्नान, वर्षा में भीगना, पैदल चलना, साईकिल चलाना हानिकारक है। क्वाथ निस कार्य से बड़े उसे नही करना चाहिये।

रोटी, अरहर की दाल, मूंग की दाल, आलू परवल की सब्जी आदि सुपाच्य एव हल्का भोजन ग्रहण करें। दूध पीना हितकर है। ब्रह्मचर्य का सेवन करना परमावश्यक है।

पुष्पायुर्वेद-श्वास रोग (सङ्कटकालीन चिकित्सा)

डा० के० पी० वर्धन एम.ए., रामकृष्णायुर्वेदाश्रम, गद्वाल (आं० प्र०)
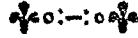
महा श्वास के लक्षण—

महा श्वास से पीड़ित मनुष्य का प्राण वायु बैल की तरह अत्यन्त कष्ट से शब्दयुक्त ऊंचा श्वास लेता है। उसका ज्ञान-विज्ञान नष्ट हो जाता है। नेत्र भ्रांति युक्त हो जाते हैं आंख और मुख फैल जाते हैं मलमूत्र रुक जाता है जीभ लड़खड़ा जाती है। रोगी म्लान होजाता है और उसके श्वास का शब्द दूर से ही सुनाई देता है और शीघ्र ही मर जाता है।

ऊर्ध्व श्वास का लक्षण—

जो मनुष्य का श्वास बहुत ऊंचा चलता है नीचे मुंह करके भीतर को नहीं खींच सकता उसके मुख स्रोत कफ से घिर जाते हैं और उसके कुपित वायु तीव्र पीड़ा दिया करता है दृष्टि सदा ऊपर को ही रहती है व्याकुल चित्त से चारों ओर देखता है मुख सूख जाता है ऊर्ध्व श्वास तीव्र चलने पर अधः श्वास रुक जाता है। उससे अत्यन्त कष्ट होता है और शीघ्र ही प्राणघातक हो जाता है।

छिन्न श्वास के लक्षण—

जिस मनुष्य का श्वास टूट-२ कर निकलता है तथा सम्पूर्ण बल से श्वास को छोड़ता है उसके कारण ही श्वास कम निकलता है तथा मर्मस्थलों में वेदना होने लगती है जिससे आनाह स्वेद और मूर्छा होजाती है वस्ति में जलन पैदा होने लगती है नेत्रों में पानी भर जाता है कमजोरी बढ़ती जाती है। नेत्र लाल पड़ जाते हैं। संज्ञा नष्ट हो जाती है मुख सूख जाता है। देह का वर्ण बिगड़ जाता है प्रलाप होता है। इस रोग से पीड़ित मनुष्य शीघ्र प्राणों को त्याग देता है।

इन तीनों श्वास के भेदों पर दृष्टि डालने पर यह अनुमान लगता है कि महाश्वास में वात की, ऊर्ध्व श्वास में कफ की, छिन्न श्वास में कफ और वात की प्रधानता रहती है।

तमक श्वास के लक्षण—

जब वायु प्रतिलोम अर्थात् उल्टी होकर प्राणवह स्रोतसों में ठहर जाती है तब गर्दन तथा शिर को जकड़ कर कफ को बढ़ाकर पीनस, कण्ठ में घुर-२ शब्द तथा हृदय में पीड़ा उत्पन्न करने वाले तीव्र श्वास को उत्पन्न कर देता है। आंखों के सामने अन्धकार प्रकट हो जाती है। कष्ट के कारण बार-२ मूर्छित हो जाता है। कफ के न निकलने से रोगी अत्यन्त क्लेश में पड़ जाता है थोड़ा-सा भी कफ निकलने पर रोगी को आराम सा मालूम पड़ता है। गले में धुआं सा मालूम पड़ता है। नींद नहीं आती है उष्ण पदार्थों के सेवन की इच्छा करता है नेत्र ऊंचे उठे रहते हैं। ललाट प्रदेश में पसीना आता है। लेटने से श्वास कोशों पर भार पड़ने से श्वास अधिक होता है इसके कारण वह लेट नहीं सकता। बैठे-२ ऊंघने लगता है। नासिका द्वार से श्वास नहीं ले सकता। मुख खोलकर वायु अजगर की भांति खींचता रहता है इससे मुख सूख जाता है। इस व्याधि में बादल घिरने पर वर्षाकाल में, शीत से पूर्व की वायु तथा कफ कारक पदार्थों के सेवन करने से श्वास का कष्ट तीव्र हो जाता है। यह तमक श्वास यदि नवीन हो तो कभी-२ साध्य होता है।

प्रतमक श्वास का लक्षण—

यदि तमक श्वास में रोगी को ज्वर और मूर्छा हो तो उसे प्रतमक श्वास कहते हैं।

संतमक श्वास का लक्षण—

उदावर्त, धूल, अग्निमांद्य आदि अजीर्ण, अङ्ग में वेगों के निरोध से, वृद्धावस्था से मल मूत्रादि वेगों को रोकने से श्वास होता है। इस प्रकार की श्वास में अन्धकार से पीड़ा बढ़ती है शीतोपचार से शमन होता है।

क्षुद्र श्वास लक्षण—

रूक्षता तथा अत्यन्त श्रम से उत्पन्न होने वाला श्वास क्षुद्र श्वास कहलाता है। यह क्षुद्र श्वास ऊपर कह चुके

इतर श्वास के अपेक्षा अधिक कष्टदायक है और शरीर को भी विशेष रूप से पीडित नहीं करता। अन्नपान में भी बाधा नहीं डालता। यह क्षुद्र श्वास साध्य है।

सहायक कारण

१. आयु—यह रोग प्रत्येक अवस्था में हो सकता है स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में दुगुना अधिक दिखाई देता है।

२. किन्तु प्रायः युवावस्था में होता है।

३. कुलज प्रवृत्ति—प्रायः खास-वंश परम्परागत होते देखा जाता है।

४. जल वायु, साधारणतया ठंडी हवा में शीतऋतु में यह रोग अधिक हुआ करता है।

५. पचन संस्थान के विकार अधिक मात्रा से भोजन का सेवन, दुष्पाच्य पदार्थों का सेवन रातों में देर से भोजन करना तथा मलावरोध।

६. मूत्र और प्रजनन संस्थान के विकार होने से स्त्रियों में इस रोग की उत्पत्ति में सहायता मिलती है। स्त्रियों में श्वास का विकार मासिक धर्म के समय और गर्भावस्था में अधिक हुआ करता है।

७. वातिक तथा मानसिक विकार, आमाधिपय भीति तथा चिन्ता इन विकारों से बहुत बार श्वास की उत्पत्ति में सहायता होती है।

वास्तविक कारण—

१—सांस संस्थान के उपसर्ग जन्य विकार एडीनयाइड्स (Adenoids) टांसिल का शोथ नासा कोटर (Nasal Sinus) इसमें पूयजनक जीवाणुओं का उपसर्ग प्रतिश्याय की वृद्धि नासार्श की वृद्धि फुफ्फुसगत लसिका ग्रन्थियों की वृद्धि अर्थात श्वास नलिका शोथ प्लूरा का शोथ।

२—रासायनिक प्रयोगों अथवा पदार्थों से आने वाली गन्ध, अनेक प्रकार के पदार्थों के सूक्ष्म कण जैसे घास के सूक्ष्म, फलों के कण तथा इसी प्रकार अन्य गन्ध युक्त वायु वाले पदार्थों के सेवन से भी श्वास रोग होता है जैसा कि सुश्रुत ने भी कहा है—

विषौषधि पुष्प गन्धेन वायुनोपनीते क्रम्यते
यो देशस्तत्र दोष प्रकृत्य विशेषेण कास श्वास
वमथु प्रतिश्याय शिरोरुग्ज्वरैरुपतप्यते॥

—सु० अ० ६ सूत्र २०

इन गन्ध युक्त पुष्पों के कणों से पाश्चात्य वैद्यक में हे फीवर नाम से एक प्रकार का ज्वर होता है जो कि श्वास का एक कारण माना जाता है इनके अतिरिक्त कुछ पदार्थों के खाने से भी श्वास रोग होता है तथा प्राणिज वनस्पतिज प्रोटीन युक्त द्रव्य जैसे दूध, अण्डे, मांस, उड़द इत्यादि के दाल तथा मछलियां इत्यादि अभिष्यन्दी पदार्थों के सेवन से सद्यः दोष प्रकुपित होकर जो श्वास रोग होता है उसे एलर्जी के अन्तर्गत मानते हैं।

३. आन्त्रस्थ विषः—यथा अन्त्रस्थ कृमियों के कारण भी श्वास रोग होता है।

रोग का आक्रमण विधान—

यह रोग दौरे के साथ आता है और दौरे की अवधि कुछ घंटों तक रहती है। रोग का पुनरावर्तन सहायक कारणों के ऊपर निर्भर करता है। जो रोगी दौरे के पूर्व रोग का ज्ञान कर लेता है वह किसी प्रकार दौरे को दूर भी कर सकता है। इस रोग की पूर्ण अवधि अनिश्चित है। यह रोग घातक नहीं किन्तु अतीव त्रासदायक होता है बार-२ दौरे आने से श्वास नलिका शोथ (Emphysema) और हृदय के दक्षिणार्ध की वृद्धि होजाती है। यदि रोगी पथ्य आहार से और अनुकूल जल-वायु स्थान से रहे तो आयु कम नहीं होती है। इसके अतिरिक्त भी दो प्रकार के श्वास होते हैं। जिन्हें पाश्चात्य विद्वान "हृद्विकार जन्य श्वास और वृक्क विकार जन्य श्वास कहते हैं।

श्वास रोग में साधारण चिकित्सा—

श्वास तथा हिक्का रोग से पीड़ित रोगी को प्रायः नमक मिला हुआ उष्ण जल पेट भर पिलाकर वमन करावें। जरूरी हो तो मदनफल का चूर्ण भी इसी में मिलाया जा सकता है। नमक तथा तेल युक्त स्निग्ध स्वेदन करा के बाद में विरेचन करावे अथवा निरूह वस्ति देकर कफ और वातादि दोषों को निकाल देने से श्वास की तीव्रता का शमन होता है।

पुष्पयोग द्वारा चिकित्सा—

(१) केला, कुन्द (चमेली) तथा सिरस के फूलों को पिप्पली के साथ पीसकर चावलों के धोवन के साथ पीनेसे

स्वास नष्ट हो जाता है। यह भावमिश्र जी द्वारा प्रेषित पुष्प योग है।

(२) मोर की टांगों के नख, पंख, गधा और घोड़ा, गौ महिष आदि जंतुओं के खुर सर्प अस्थि इनको जलाकर भस्म करके आक के फूल, अपामार्ग की मंजरी को उपरोक्त भस्म और मधु के साथ मिश्रित करके चाटने पर स्वास शमन हो जाता है। यह चरक महर्षि जी का चुटकला है।

(३) स्वेतार्क पुष्प वटी—आक में स्वेत पुष्प वाला श्रेष्ठ है।

ताजा आक के फूल १० तो., काली मिरच १० तो., एक-पोथीवाला लहसुन ५ तो.—सब वस्तुओं को अच्छी तरह पीसकर जंगली बेर के समान गोलियां बनाकर छाया में सुखाकर शीशी में रखलें।

मात्रा—१-२ गोली जरूरत के अनुसार गरम जल अथवा सूंठ हल्दि की चाय के साथ देने से स्वास रोग का शमन होता है। भूख खुल जाती है।

(४) कनक पुष्पासव—धतूरे के फूल ३२ तोला, वासा पुष्प ३२ तोले, छोटी कटेली के फूल १६ तोला, नागकेसर ८ तोला, तुलसी की मंजरी ८ तोला, धाय के फूल ६४ तोला, मुनक्का ८० तोला।

प्रक्षेप द्रव्य—पीपल, सोंठ, भारङ्गी, तालीसपत्र, मुलेठी—प्रत्येक ८-८ तोला सबका जौकुट चूर्ण बनावें।

सन्धान विधि—पहले फूलों को एक पात्र में रख दें। फिर २४॥ सेर ८ तोला जल में देशी खांड अथवा चीनी ४ सेर मधु २॥ सेर घोलकर प्रक्षेप द्रव्य मिलाकर संधान करके सुस्थापित करे। एक मास के बाद छानकर रखलें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से स्वास कास, यक्ष्मा, पुराना ज्वर, रक्तक्षय रक्तपित्त आदि रोग शांत होते हैं।

दमे को तत्काल उपशमन करने वाला यह योग स्वास नलिका में संकोच को दूर करता है और स्वास को खोल देता है, स्वास नलिका की सूजन को दूर करता है। इससे कफ ढीला हो जाता है दमे का वेग बन्द होजाता है।

(५) वासा पुष्पावलेह—अडूसे के फूल १०० तो., पिप्पली १० तो., तालीस पत्र २ तो., नागकेसर २ तो., लवंग २ तो., जायफल २तो., दालचीनी २ तो., इलायची छोटी २ तो., चीनी ६० तो. लें।

पहले स्टील पात्र में पुष्पों को मन्दाग्नि पर थोड़ा तिल का तेल डालकर भून लें। बाद में शक्कर की चाशनी बनाकर फूलों को पिप्पली आदि वस्तुओं के वस्त्रपूत चूर्ण को डालकर चमचा से हिलाते हुए लेह्यपाक बनाकर ठंडा होने पर अच्छा मधु ५ तोला मिलाकर शीशी में रखलें।

मात्रा और उपयोग—६ माशे से १ तोला सुबह-शाम उचित अनुपान के साथ दें। हर प्रकार के स्वास कास पर यह लाभ करता है। रक्त प्रदर, रक्तपित्त आदि रोगों को दूर करता है। नवीन रोगों के अपेक्षा पुराने कफ रोगों में यह विशेष लाभ करता है।

(६) लवण भास्कर चूर्ण—आक की कली, अडूसा की कली, कटेली की कली, धतूरे की कली, अनार की कली १००-१०० ग्राम, तालीस पत्र, कालीमिर्च, सोंठ, छोटी पिप्पली, सेंधा नमक, कालानमक बिडनमक, स्याहजीरा, पीपलामूल, भारङ्गी ये सब १०-१० ग्राम लें।

उपरोक्त औषधियों को जौकुट चूर्ण बनाकर एक हांडी में संपुट कर गढ्ढे में रखकर ४०-५० उपलों से आग लगाए। कोयला बनने पर निकाल लें सफेद भस्म न बन जावे। चूर्ण करके शीशी में भरलें।

मात्रा और उपयोग—आधा माशे से दो माशे तक भोजन के पूर्व मधु अथवा गरम दूध के साथ दें। इसके सेवन से वात कफज कास स्वास चले जाते हैं उदर विकार में भी अतीव गुणकारी है।

नोट—जिनको मतली, चक्कर महसूस होवे वे भोजन के बाद ले सकते हैं।

(७) स्वासपुष्पार्क—असली रेक्टीफाइड स्प्रिट १६ औंस, उत्तम कपूर १ औंस, छोटी इलायची के बीज १ तोला, कचूर १ तोले, लवङ्ग १ तोले, आक की कली (छाया में शुष्क किया हुआ) ४ तोले, फूल अजवाइन १ औंस, फूल पिपरमेण्ट १ औंस।

बनाने की विधि—पहले इलाची, नरकचूर, लवंग को वस्त्रपूत चूर्ण बनालें। उसके उपरान्त एक शीशी में

सत अजवायन पिपरमेन्ट और कपूर को डालकर हिलाते बाद बड़ी बोतल में रेक्टीफाइड स्प्रीट को लेकर उसमें यह अमृतधारा को डाल दो। बाद में फूलों को काष्ठौषधियों के चूरण सहित मिलाकर कार्क लगाकर रखलें। एक सप्ताह के बाद छान लेवें शुद्ध अर्क को दृढ़ कार्क वाली शीशी में सुरक्षित करे।

मात्रा और उपयोग--५ से १० बूंद बनफसा के अर्क अथवा शर्बत तथा निर्मल जल के साथ देने से श्वास कास तथा हिक्का में फौरन लाभ करता है। इसके अतिरिक्त उदर विकार कालरा, पेट का शूल अजीर्ण शूल, मतली तथा हृल्लास में अद्भुत गुण देता है।

(८) पंच पुष्प धूम्रपान—आक के फूल और पत्ते, धतूरे के फूल और पत्ते, वांसा के फूल और पत्ता, अजवाइन के फूल और पत्ते, विष्णुक्रांता के फूल और पत्ते सभी के छायाशुष्क किये हुए १-१ तो. लें।

ऊपर लिखित फूल पत्तों का चूर्ण बनाकर शुद्ध घी में मिलाकर चिलम में भर कर ऊपर अंगार रखकर धूम्र को खींचकर निगला करें तुरन्त स्वास कम हो जायेगा। चिलम खींचने में संकोच करने वालों को बेर, इमली, कीकर की लकड़ियों के अङ्गार पर चूर्ण बरक कर सिर पर एक मोटा कपड़ा अथवा चादर ओढ़कर धुआं खींचने के लिये हिदायत करें।

(९) स्वासहर मोदक—सफेद आक के फूलों के अन्दर की घुंडी, कालीमिर्च, एक पोथा लहसुन, नौसादर, काला नमक, गुड़ पुराना प्रत्येक ५-५ तोले (गुड़ में शराब की गंध हो किन्तु खटास लेशमात्र भी न हो) लें।

पहले पुष्पों को बारीक पीस लें बाद काली मिर्च का चूर्ण डाल दें उपरांत लहसुन नवासार पीस लें तत्पश्चात नमक और गुड़ डालकर १-२ दिन खरल कर चने के बराबर गोलियां बनाकर छाया में सुखा लें।

मात्रा और उपयोग—यह १-२ वटी ताजा गर्म पानी के साथ रोगाधिक्यता को दृष्टि में रखकर १-१ अथवा २-२ घंटों से सेवन करावें। पथ्य में लहसुन की चटनी गरम फुल्का अथवा भात। तीव्र स्वास कास के अतिरिक्त यह योग अपस्मार (मृगी) रोग पर भी अच्छा फायदा करता है।

(१०) स्वास दमन सूचिकाभरण—स्वेतार्क पुष्प (छाया में सुखाकर वस्त्रपूत चूर्ण करलें) १/४ तो., धतूरा फूल अडूसे के फूल, कंटकारी के फूल, बनफसा के फूल (गुलबनफशा) रक्त करवीर के फूल। इन सबको छाया में सुखाकर चूर्ण कर १/४-१/४ तो. सुरासार (Rectified Spirit) ६ औंस लें।

सूचीवेध निर्माण विधि—कांच की डाट वाली एक बड़ी शीशी में स्प्रिट को लेकर उसमें उपरोक्त फूलों के चूर्ण डालकर हिलाकर डाट लगा दें। प्रतिदिन एक दो बार हिलाते रहें। एक सप्ताह तक गरम धूप में रखने के बाद फिल्टर पेपर से छानकर सुरक्षित रखें।

सूचि मात्रा—उपरोक्त द्रव १ बूंद (Distilled water Pyrogen free) परिश्रुत जल २० बूंद कुल १ c.c मांसगत प्रतिदिन अथवा ६ घण्टे में एक बार इस सूचि के प्रभाव से स्वास से दम घुटकर तीव्र पीड़ा का अनुभव करने वाला रोगी क्षणों में ही उपशमन पाता है। हृदय विकार के सहित स्वास, कास में भी अद्वितीय गुणकारी है। मेघरंजनी अथवा तमक स्वास में पुष्पार्क के साथ लगाने इस सूचि से तुरन्त लाभ होता है।

—डा० के० पी० वर्धन एम० ए०
श्रीरामकृष्णायुर्वेदाश्रम
गढ़वाल (उ० प्र०)

—✽—

मूत्रकृच्छ्ता

डा० हर्षवर्धन सिंह रावत शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, बी.ए. एल.एल.बी.
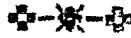
अत्यधिक व्यायाम, तीक्ष्ण औषधि, प्रदाही अन्नपान, मद्य सेवन अति व्यवाय, आघात, घोड़ा ऊंट आदि की सवारी अधिक करना या इनको तीव्र गति से दौड़ाना, अधिक नृत्य करना, खाने के ऊपर रूक्ष उष्ण विदाही पदार्थों का सेवन, जलचरों का मांस तथा मयूर आदि उष्ण प्रकृति के पक्षियों व पशुओं का मांस सेवन, विषैली दवा या विष प्रयोग, सुजाक, आतशक आदि रोगों का संक्रमण इत्यादि कारणों से मूत्र प्रवहण में अत्यधिक कष्ट होने लगता है। इस कृच्छ्ता के कारण ही इस रोग को मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। यह रोग शास्त्रज्ञों ने आठ प्रकार का बताया है।

सम्प्राप्ति—उक्त विभिन्न कारणों से कुपित हुए दोष बस्ति (मूत्राशय) प्रदेश में पहुंचकर मूत्रमार्ग को पीड़ित या विकृत कर देते हैं जिससे पेशाब बहुत कष्ट व जलन से होता है।

मूत्रकृच्छ्र रोग के भेद—

१. वातिक मूत्रकृच्छ्र—इसमें बस्ति लिङ्ग व वंक्षण प्रदेश में तीव्र वेदना होती है और बार-२ थोड़ा-२ पेशाब आता है। इसकी चिकित्सा स्नेहन व निरूहण वस्ति, स्वेदन, उत्तर बस्ति, तथा वातहरलेप व सेक से होती है।

२. पित्तज मूत्रकृच्छ्र—इसमें पीला लाल रक्त मिश्रित व जलन के साथ मूत्र आता है। इसकी चिकित्सा शीतल लेप, ठण्डेपेय, शीतल जल का अवगाहन पान, घृत सिद्ध शीतल विरेचन, मूत्र लाने वाली ठण्डी चीजों का प्रयोग करें तथा उशीर चन्दन गुलाब जल की उत्तर बस्तियां दें।

३. कफज—इसमें बस्ति में गुरुत्व शोथ और स्वल्प दाह होता है, इसमें जौ का क्वाथ, मूत्ररेचक यवक्षार व वासाक्षार मिश्रित तीक्ष्ण क्वाथ पिलाना चाहिए, तिक्तोष्ण औषधियों से परिपाचित तैल की बस्तियां दें।

४. त्रिदोषज—तीनों दोषों के प्रकोप से उत्पन्न कृच्छ्र में तीनों प्रकार के मिश्रित लक्षण होते हैं, इसमें त्रिदोष नाशक विरेचन, मूत्ररेचन बस्ति देनी चाहिए। बृहत्यादि क्वाथ एवं गुडदुग्ध का योग यथेष्ट पीवें।

५. शल्यज (अभिघातज)—मूत्र वाहिनियों में किसी प्रकार का आघात चिकित्सा वातिककृच्छ्र के समान करते हुए मिट्टी व पञ्च वल्कल का लेप करना चाहिए, शुद्ध घृत मिश्री कदुष्ण दुग्ध का प्रयोग करें।

६. शुक्रविबन्धज—वीर्य विकारों से उत्पन्न होता है। इसकी चिकित्सा में शुद्ध शिलाजतु और शहद का सेवन दूध के साथ करना चाहिए, साथ ही प्रमदाओं का सेवन करें, तृणपञ्चमूल सिद्ध घृत पीना चाहिए।

७. पुरीषज—मल के अवरोध से कुपित हुआ वायु मूत्र नलिका में अवरोध व कृच्छ्ता उत्पन्न कर देता है। इसमें विरेचन उत्तर बस्ति वातानुलोमक गोक्षुर क्वाथ यवक्षार के साथ पीवें। इससे शीघ्र ही पुरीषजकृच्छ्र शांत हो जाता है।

८. अश्मरीज—अश्मरी के कड़े टुकड़े मूत्र मार्ग में रुकावट कर मूत्र का अवरोध व कृच्छ्ता उत्पन्न करते हैं, इसका उपाय वरुणादि क्वाथ, गोक्षुरादि क्वाथ, यवक्षार, सूर्य क्षार आदि क्षार २-२ रत्ती मिलाकर प्रातः सायं पिलावें। इससे अश्मरी कण गलकर मूत्र मार्ग से निकल जाते हैं, कुलत्थ का चूर्ण भी ६-६ माशे पानी से सेवन करते रहने से अश्मरी जन्य मूत्रकृच्छ्र दूर होता है।

विशेष—विष या विषैली दवाइयों के प्रयोग से यदि मूत्रकृच्छ्ता हो जाय तो शुद्ध घृत में चन्दन, छोटी इलायची कमल, उशीर मूल व दूर्वा का समभाग सूक्ष्म चूर्ण करके ६-६ माशे मिलाकर हिलावें, यदि घृत अरुचिकर हो तो दुग्ध के साथ में उक्त चूर्ण मिलाकर पिला सकते हैं, जब तक विष का प्रभाव दूर न हो और मूत्र बिना कष्ट व जलन के न आने लगे, तावत् उक्त योग का सेवन १।।-१।। छटांक शुद्ध घृत के साथ करते रहें और विष नाशक अन्नपान का प्रयोग करते रहें।

हिक्का की आत्ययिक चिकित्सा
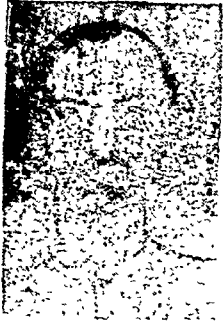
मूल लेखक—वैद्य श्री शोभन वसाणी
आयु० सेन्टर, सर्वोदय कोमर्सियल
सेंटर, रिलीफ सिनेमा, अहमदाबाद
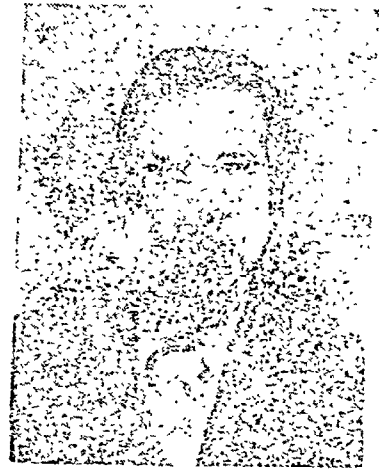
अनुवादक—वैद्य भानुप्रताप आर. मिश्र
विवेचक श्री—दोलाहनुमान आयु. महावि.,
लोदरा ता. बिजापुर (महेसाणा) उ.गुज.

लोक भारती के पुस्तकालय में 'दिव्य औषधि' नामक पुस्तक लिख रहा था। वहां अध्यापन मन्दिर की दो बहनें मुझे बुलाने के लिए आईं। त्रिवेणी बहन को हिचकी (हिक्का) आती है इसलिए मालिनी बहन जी ने बुलाया है।

कोई साधन अथवा औषधि लिए बिना ही गया। त्रिवेणी बहनजी अहमदाबाद से हिचकी (हिक्का) को साथ में लेकर आई थी। वहाँ खूब चिकित्सा कराया था परन्तु कोई आराम नहीं हुआ। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की औषधियां साथ में थीं। परन्तु प्रातःकाल से ही हिचकी (हिक्का) का प्रमाण अधिक बढ़ गया था हिचकी में संपूर्ण शरीर हिल रहा था। वेदना खूब थी। २-३ बहनें उन्हें गोद में लेकर पकड़ रक्खा था। आस-पास में १५ बहनें थी। मेरे जाने के बाद गृह माता मालिनी बहन जी आयी और देखते-देखते ही छात्रालय की तमाम बहन जी चिकित्सा कार्य का निरीक्षण करने आ गई।

मैं उन बहनों को चिकित्सा का प्रयोग बता रहा हूं। ऐसे सदा से कहा। आयुर्वेद में आत्ययिक चिकित्सा नहीं है। ऐसी मान्यता है। परन्तु ऐसे सीरियस इमर्जेन्सी केस को भी आप लोग देखो कि दो पांच मिनट में ही अच्छा हो जायेगा और वह भी एक मात्र आपके छात्रालय के घरेलू निर्दोष दवा से ही।

पूछ तांछ करने से ज्ञात हुआ कि छात्रालय में सोंठ ही नहीं थी। गृह माता अपने घर से ले आई। चुटकी भर सोंठ,और कंकड़ी गुड़ में थोड़ा सा पानी मिलाकर उसका ४-४ बूंद नाक में डाला। डालते ही चमत्कार हुआ हिचकी (हक्का) बिल्कुल बन्द हो गई। आधा घण्टा वहां बैठा परन्तु आयी ही नहीं। यह सरल निर्दोष और घरेलू प्रयोग सभी बहनों को अच्छी तरह समझाया और सन् १९८४ में वैद्य श्री प्रजाराम रावल ने बढवाण राज्य के दीवान साहब श्री हरिभाई रावल को बड़े-२ निष्णात डाक्टरों से भी काबू में नहीं आयी हिचकी (हिक्का) को इस प्रयोग से तुरन्त ही बिल्कुल जड़-मूल से मिटाकर हिचकी वाले वैद्य की मानद् उपाधि प्राप्त किया था। गुजरात राज्य के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री श्री घनश्याम भाई ओझा के पिता श्री छोटालाल पीताम्बरभाई ओझा को भी इसी प्रयोग से वैद्य श्री प्रजाराम भाई रावल जी ने हिचकी (हिक्का) मिटायी थी। इसकी चर्चा की तब तो उन सब लोगों का विश्वास सौ प्रतिशत बढ़ गया। ३-३ घण्टा पर इस औषधि को ४-४ बूंद के नस्य देने की

—शेषांश पृष्ठ २८१ पर देखें।

हिक्का या हिचकी

वैद्य बद्रीलाल गुप्त आयु० रत्न, मु० पो० नाटाराम (छापीहेड़ा) जि. राजगढ़ (ब्यावरा) म० प्र०

वैसे तो सृष्टिकर्ता ने मानव शरीर के निमित्त दुःखद एवं सुखद दोनों ही परिस्थितियों का निर्माण किया है। ठीक इसी प्रकार बड़े पैमाने पर शारीरिक एवं मानसिक दो समूहों में व्याधि (रोग) बनाये हैं। इन शारीरिक रोगों में अनेक रोग साधारण (सामान्य) एवं कुछ रोग शीघ्र ही प्राणनाशक होते हैं। इसी क्रम में प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों ने आशु प्राणनाशक व्याधियों में 'हिक्का या हिचकी' नाना को रोग माना है। इसकी घातकता एवं भयंकरता को सिद्ध करते हुए प्राचीन आयुर्वेद संहिताकारों ने भी यही बात अच्छी प्रकार से समझाई है यथा—

कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा।
यथा श्वासश्च हिक्का च प्राणनाशु निकृन्ततः॥

—च. सं. चि. अ. ७

वैसे तो बहुत रोग हैं जो प्राणों को हर लेते हैं किंतु वे इतनी जल्दी प्राणों को नहीं (अर्थात्) मृत्यु का कारण नहीं बनते परन्तु श्वास और हिक्का तो शीघ्र ही प्राणों का नाश कर देते हैं। इस प्रकार शीघ्र प्राणान्त करने वाली व्याधि की दुःखद परिस्थिति मानव मात्र को विकट रूपेण अनुभव करने में आती है। आचार्य सुश्रुत ने इसके हेतुओं का उल्लेख करते हुए बताया है कि विदाही, गुरु-विष्टम्भी पदार्थों का सेवन, रूक्ष तथा वातकारक आहारों का सेवन करने से, धुआं, धूल, दूषित वायु सेवन, अग्नि की प्रचण्ड उष्णता वातावरण में रहने से, आहार-अतियोग, मिथ्यायोग, हीन योग होने से, मल-मूत्रादि वेगों को रोकने से, अति शीतल पदार्थों के सेवन करने से इस रोग की उत्पत्ति होती है। इधर आधुनिक चिकित्सा ग्रन्थों में पाश्चात्य विद्वानों ने हिचकी को उत्पन्न करने वाले संभावित कारणों का उल्लेख करते हुए बताया है कि कभी-कभी जल्दी-जल्दी में किसी ठोस पदार्थ का सेवन करने से, एक साथ अधिक अन्न खाने से, हंसते हुए किन्हीं चीजों को खाने से, हिस्टीरिया या गुल्म रोग के कारण, जीर्ण वृक्कशोथ एवं मूत्र विषमयता, मूत्र में रक्त-विषमयता, रक्त-क्षार विषमयता तथा अन्य विषजन्य रोग के लक्षणों में तथा रक्त प्राणवायुजन्य अभाव होने से, विषजन्य मदात्यय रोग के पश्चात्, श्वास, आध्मान, आन्त्रावरोध होने से, हृदयावरोध एवं हृदयावरण प्रदाह, अन्ननलिका शोथ और अन्य सहयोगी अङ्गों में अवरोध हो जाने से, मस्तिष्क संबन्धी विकारों से तथा मस्तिष्कावरण प्रदाह, मस्तिष्कार्बुद प्रादुर्भाव होने से, सन्निपातज ज्वरों में मृगी, उन्माद, मदात्यय, मस्तिष्क गतिहीनता तथा मांसपेशियों के अनैच्छिक व्यापार होने से, किन्हीं विषज द्रव्यों का आत्मघात हेतु अतिसेवन कर लेने से या भूल से विषैले द्रव्यों का सेवन हो जाने से आदि अनेक कारणों से एवं उपरोक्त वर्णित प्रादुर्भाव होने के पश्चात् या उपरोक्त हेतुओं के योग से इस महाभयंकर कालरूप रोग का होना संभव माना गया है। इस आशुप्राणनाशक व्याधि को हमारे साधारण जीवन क्रम में साधारण सी व्याधि के रूप में ही जाना जाता है। परन्तु उपरोक्त हेतुओं पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि कितने घातक रोगों के कारण से इस रोग की उत्पत्ति संभव है। प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों ने इस को मुख्यतः ५ भागों में विभक्त किया है यथा—

(१) अन्नजा हिक्का (२) यमला हिक्का (३) क्षुद्रा हिक्का (४) गंभीरा हिक्का (५) महती हिक्का।

लेख प्रसंग बढ़ जाने से सभी भेदों का पृथक्-पृथक् वर्णन करना उचित नहीं समझता हूं। विद्वान वैद्य निदान ग्रंथों का अवलोकन कर प्रमुख-प्रमुख लक्षणों को देख सकते हैं। भेद स्वरूपों का वर्णन करते हुए आचार्यों ने गंभीरा एवं महती हिक्का को असाध्य बताया है जो कि लक्षणानुसार वास्तविक रूप से उचित है। इन भेदों के अतिरिक्त आचार्य सुश्रुत ने एवं अन्य आचार्यों ने भी इसकी असाध्यता घोषित करते हुए उपदेश किया है कि जिन हिक्काओं में रोगी का शरीर हिचकी लेते हुए तन

जावे, आंखें ऊपर की ओर चली जावे, रोगी की आंखों के सामने अंधेरा-सा छा जावे, रोगी को अन्न से द्वेष हो जावे, संपूर्ण शरीर कान्तिहीन हो जावे तो यश को चाहने वाला वैद्य ऐसे रोगी को त्याग देवे अर्थात् चिकित्सा हाथ में न लेवे। आचार्य चरक का कथन भी उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि करने में पर्याप्त प्रतीत होता है यथा—

अंसाभितापो हिक्का च छर्दनं शोणितस्य च।
आनाहः पार्श्वशूलं च भवत्यन्ताय शोषिणः॥
—च. सं. इ. स्थान अ. ६

अर्थात् जिसके पार्श्वों में शूल होता हो, हिचकी आती हो तथा रक्तयुक्त वमन हो, आध्मान हो एवं कंधों में शूल हो, ऐसा शोष रोगी नहीं बच सकता।

अन्य स्थानों पर भी अवलोकन करने से यही व्याधि दूसरे रोगों में भी अरिष्ट लक्षणों के रूप में मानी गई तथा मृत्यु का प्रमुख अग्रणी लक्षण मानी गई है। प्रसंगवशात् कई स्थानों पर आचार्यों ने वैद्यों को भी उपदेश करते हुए वर्जित किया है कि जिस रोगी को भी हिचकी नाभि-प्रदेश से चले और इन्द्रियों की विकृति हो ऐसे रोगी को असाध्य जानकर चिकित्सा ही न करें। यह तो ठीक है। आचार्यों के उपदेश को भी हम (वैद्य) शिरोधार्य करते हैं और उनके उपदेशों का अनुशीलन-अनुसरण ही हमारा कर्तव्य है परन्तु मानव जैसे शरीर के लिये असाध्य-भयङ्कर कारणों का अनुभव करते हुए भी यश की परवाह न करते हुए भी चिकित्सा करना हमारा परम-धर्म है।

चिकित्सा क्रम—सर्वप्रथम रोगी के रोगजन्य प्रमुख लक्षणों एवं सार्वदेहिक लक्षणों का अनुसरण वैद्य को सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपेण करना चाहिए। ताकि रोग मूलक कारणों का मूलोच्छेद हो सके। कारणों का नष्ट करना ही वास्तविक चिकित्सा है। वैद्य विद्वानों का कथन भी है यथा 'निदानं परिवर्जनम्'।

तथापि आचार्य चरक एवं अन्य आचार्यों के सिद्धान्तानुसार सर्वप्रथम स्वेदन चिकित्सा ही उचित है। क्योंकि इस रोग में दोष कल्पनानुसार आचार्यों ने वात-कफज-विकृति को ही प्रमुख माना है। स्वेदन से उष्णता पाकर शरीर के ऊर्ध्व भाग में जमा कफ पिघलता है तथा स्रोतों में कोमलता आने से वायु का भी अनुलोमन हो जाता है। पश्चात् रोगशमनीय स्नेहन, धूम्रपान, वमन आदि आवश्यकीय क्रियायें करनी चाहिये। वैसे इसके रोगी बहुसंख्यक तो रोजाना आते नहीं लेकिन चिकित्साकाल में कुछ रोगियों को देखने का, चिकित्सा करने का अवसर मुझे भी प्राप्त हुआ और निम्न प्रयोगों का उपयोग मेरे चिकित्सा काल में अत्यन्त सफल रहा—

१. हिक्का वाले रोगी को उड़द (माष) यथावश्यक लेकर बारीक यवकुट पीसकर तमाकू पीने की चिलम में भर ५-१० बार धूम्रपान कराना चाहिये। धूम्रपान १०-२० मिनट के अन्तर से करवायें। तुरन्त ही शीतल जल न पिलाया जावे। परिणाम अत्यन्त सफल रहा।

२. सण (सन) तन्तुओं (जिसकी रस्सी बनाने में उपयोग किया जाता है) का भी इस प्रकार धूम्रपान कराना सत्वर लाभदायक अनुभव में आया है।

३. मयूर पिच्छ भस्म २ से ४ रत्ती अनुपान मधु दिन भर में ५-६ बार देना उचित रहा।

४. अविपत्तिकर चूर्ण दिन भर में कई बार मुंह में चुटकी भर डालकर चूसना अति उत्तम है।

५. सूतशेखर रस (स्व० यु०) १-१ रत्ती दिन में ४-५ बार दूध के साथ देना अत्यन्त सफल प्रयोग रहा।

६. पीपल वृक्ष की छाल के कोयले कर पानी में बुझावें तथा इस जल को यथावश्यक पिलाते रहने से हिचकी जन्य पिपासा (प्यास), घबराहट आदि में कमी आ जाती है।

उपरोक्त चिकित्सा-क्रमों को उपयोग करते समय रोगी को शीतल जल; अम्ल और गरिष्ठ भोजन, वातकारक आहार, शीतल जल स्नान, लालमिर्च, तैल आदि का सेवन वर्जित रखें।

उपरोक्त प्रयोगों का अनुभव मैंने साधारण हिक्काओं में किया है और परिणाम सन्तोषजनक रहे हैं। असाध्य हिक्का के रोगी न मुझे देखने को मिले हैं न ही चिकित्सा अवसर प्राप्त हुआ।

गल शुण्डिका प्रदाह [(UVULITIS]

डा० चैतन्यस्वरूप दाधीच बी.एस-सी., बी.एड., आयु० रत्न, एवं आयु० बृह., आयु० वारिधि
C/o. बैन्क आफ इण्डिया, इण्डस्ट्रियल एरिया ब्रान्च, कोटा (राज०)

रोग परिचय—कण्ठ के अन्दर गले के बीच में स्थित कौवा ढीला और लम्बा होकर लटक जाता है इसे साधारण बोल चाल में कौवा गिरना या काग लटकना, घाटी बढ़ना कहते हैं।

अन्दर गले की अंगुली द्वारा परीक्षा किया जाना

कारण—धूलीकण या किसी संक्षोभकारक पदार्थ या बाल वगैरह का असावधानीवश कण्ठ के भीतर चला जाना, शीत एवं नम वायु में रहना, प्रसेक एवं प्रतिश्याय वश कफ की अधिकता आदि से कौवा लटक जाता है।

सम्प्राप्ति—उपरोक्त कारणों से रक्त पित्त अथवा कफ की अधिकता से कण्ठ के अन्दर संक्षोभ होकर गलशुण्डी के (Uvula) शोथयुक्त होजाने से यह रोग प्रकट होता है। कौवा लटक जाते और उसके जिह्वा पर स्पर्श से कण्ठ के अन्दर सुरसुराहट होकर खांसी आया करती है।

लक्षण—कौवा शोथयुक्त (प्रायः लालिमा लिए अथवा दोषानुसार) लम्बा होकर नीचे लटका हुआ दिखाई देता है जिससे कण्ठ के भीतर क्षोभ होकर बारम्बार सूखी खांसी आया करती है। चित्त लेटने से खांसी में वृद्धि होती है। कभी खांसी की तीव्रता से इतना जी मिचलाता और कष्ट होता है कि वमन हो जाती है।
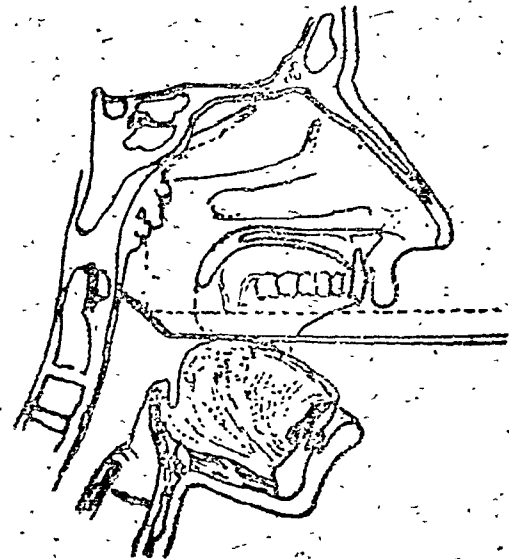
दर्पण द्वारा कण्ठ परीक्षा विधि
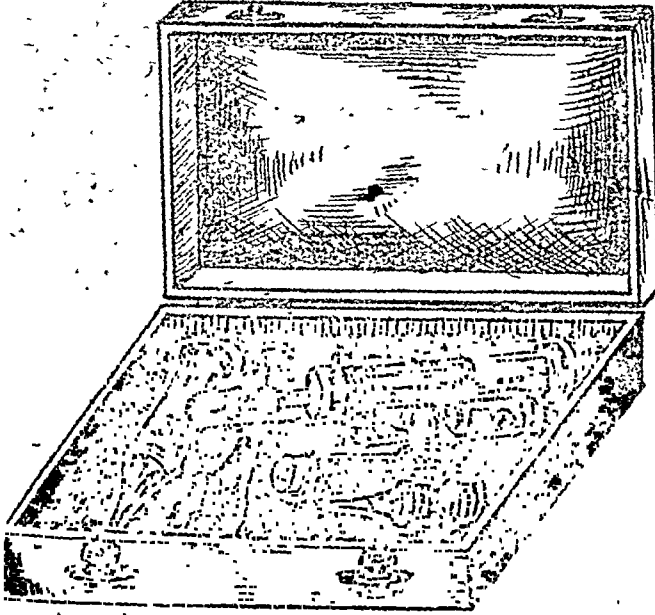
कान, नाक एवं गले की परीक्षार्थ डाइग्नोस्टिक सेट

चिकित्सा—

अन्तः प्रयोगार्थ—(१) यशद भस्म १२५ मि. ग्रा. शुभ्राभस्म १२५ मिग्रा. प्रवाल पिष्टी २५० मि. ग्रा. गन्धक रसायन २५० मिग्रा. । प्रातः सायं शहद के अनुपान से देवें ।

(२) यवक्षारादि गुटिका—जवाखार, तेजबल, पाढ़, रसौत, दारुहल्दी, हल्दी और पीपर समभाग लेकर पीस छान लें । फिर शहद में मिलाकर गोलियां बनालें । इन गोलियों के मुख में रखकर चूसने से सब तरह के कण्ठ रोग नष्ट होते हैं ।

गण्डूषार्थ—(१) फिटकरी, माजूफल, गुलनार और सुहागा प्रत्येक ३-३ ग्राम, ५०० ग्राम पानी में काढ़ा करके उससे गरारे करवायें ।

(२) फिटकरी ६ ग्राम फिटकरी २५० ग्राम पानी में पकाकर गरारा करवायें ।

बाह्यप्रलेपार्थ—(१) फिटकरी के चूर्ण को शहद में मिलाकर लगवायें ।

(२) गुलाब के फूल, हरा माजू, सुपारी गुलनार और सुमाक सबको १-१ ग्राम लेकर बारीक पीस लें । महीन कपड़े में छान कर अंगुली से कव्वे पर लगावें ।

चुटकला (टोटका)—कछुवे को पकड़ कर उसका मुंह रोगी के मुंह के समीप इस तरह रखें कि कछुवे की सांस की वायु रोगी के मुंह में जाती रहे । यह प्रयोग गलशुण्डिका प्रदाह समेत समस्त कण्ठ रोगों के लिए विलक्षण चमत्कारी उपक्रम है ।

पेटेण्ट औषधियां—(१) कूका (मुलतानी आयुर्वेद फार्मेसी) टेबलेट प्रति ४ ४ घण्टों के बाद जिह्वा पर रख कर चूसें ताकि टेबलेट जिह्वा रस में घुलकर धीरे-२ गले से नीचे उतर जावे । इस प्रकार औषधि को आक्रांत स्थल पर कार्य करने का पूरा-२ समय मिल जाता है एवं रोगी राहत अनुभव करता है ।

(२) टांनजिल (हमदर्द)—रुई की फुरेरी से गले के चारों ओर विशेषकर कव्वे पर लगावें । कौव्वा पूर्वावस्था में लौट आवेगा ।

वक्तव्य—इस रोग में जब किसी औषधि से लाभ प्रतीत न हो-बार-बार कौवा लटक जाता हो तो किसी "कुशल शस्त्र चिकित्सक" से शस्त्रकर्म करवाना अभिप्रेत है । कौवे को एक तिहाई कटवा देने से यह रोग हमेशा के लिए दूर हो जाता है ।

अपथ्य—लेमनेड, अधिक गर्म या ठण्डे खाने पीने के पदार्थ लाल मिर्च, गर्म मसाले, चटनी, अचार, तम्बाकू, सिगरेट, सूखे मेवे (यानी मूंगफली, चिलगोजे, अखरोट, पिस्ता इत्यादि) तेल और खटाई से बनी वस्तुएं सेवन नहीं करनी चाहिए । ठण्डी और गर्म वस्तुओं का एक साथ सेवन निषेध है ।

पथ्य—नरम हल्का एवं शीघ्रपाकी आहार यथा गेहूं का दलिया, मूंग की दाल, हरी तरकारियों का सूप प्रभृति तरल भोज्य पदार्थ दें ।

रक्तवह संस्थान की आकस्मिक व्याधियाँ

आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी आयु० शास्त्राचार्य, चरक चिकि०, नगवा, वाराणसी।

—※—

हृच्छूल (Acute Myocardial Infarction)

परिचय—हृदय मर्मत्रय में प्रधान मर्म है। ऐसा प्राचीन ऋषिगण मानते हैं। इसकी रचना में विशेष प्रकार के नाड़ीतन्तु मांसपेशी रहती है। अतः इसकी क्रिया नियमित होती है और जब से यह कार्य करना प्रारम्भ करता है लगातार काम करता है और बन्द हो जाता है तो शरीर की क्रिया भी समाप्त हो जाती है। इसकी क्रिया एक नियमित गति क्रम (Rhythmical movement) में चालित होती है। इसमें कई नाड़ी केन्द्र व नाड़ी सूत्र होते हैं। वे ही इसकी क्रिया के उत्तरदायी हैं यह क्रिया स्वतः शैरीय कोण (Sinus Venosos) से उत्पन्न होकर नीचे अलिन्द व निलय में होती हुई हृदयाग्र भाग तक पहुँचती है। हृत्पेशी की आकुंचन क्रिया प्राणदा नाड़ी (Vagus) व सांवेदनिक नाड़ी द्वारा संचलित हो जाती है।

हृदय गति—हृदय की गति पर स्वतंत्र नाड़ीमण्डल का नियन्त्रण रहता है इसके साधक दो केन्द्र हैं।

(१) गति प्रसादक केन्द्र (Accelerator centre)

(२) अवसादक केन्द्र (Inhebitor centre)

यह केन्द्र सांवेदनिक व उपसांवेदनिक दोनों नाड़ी स्थानों में पृथक्-२ होते हैं। इनमें प्राणदा नाड़ी केन्द्र कन्द उत्तेजना प्राप्त कर गति मन्द करता है और सांवेदनिक नाड़ी केन्द्रोंपर उत्तेजना मिलने पर बढ़ जाती है। इस प्रकार लगातार यह गतियां होती हैं और हृदय काम करता है।

रक्तवह संस्थानीय आकस्मिकता
(Cardio-vascular Emergencies)

तीव्र हृत्पेशी शूल (हृच्छूल) (Acute Myocardial Infarction)

परिचय—यह एक तीव्र व भयानक हृद्रोग है जबकि यह उत्पन्न होकर चिकित्सक को कठिनाई में डाल देता है। रोगी तड़फता हुवा बेहोश होकर आतुरालय में आकर चिकित्सक को सचेत कर तात्कालिक क्रिया के लिये बाध्य करता है। पहले यह धीरे-२ प्रारम्भ होता है। रोगी को तीव्र पीड़ा होकर शांति हो जाती है। चिकित्सा करने पर कुछ शान्ति मिलती है और फिर कुछ समय बाद तीव्र पीड़ा होकर रोगी की आकृति श्यामवर्ण मुख होकर रोगी व घरवालों को बेचैन, तीव्र आक्रमण होकर सम्बन्धित चिकित्सक को भी विचलित कर देता है और प्रतिकार न होने पर मृत्यु सामने खड़ी दिखाई पड़ती है।

रोगोत्पादक हेतु—हृत्पेशी आक्षेप होकर शूल उत्पन्न होता है। इससे हृत्पेशीय रक्तावरोधक (Coronary thrombosis) होकर यह लक्षण होते हैं, इसके ठीक हेतु ज्ञात नहीं हैं फिर भी मानसिक विषाद, रोगाक्रांत होना रक्त संवहन की तीव्रता, हार्दिकी धमनी की विकृति और मिथ्या आहार विहार प्रधान हेतु हैं। तीव्र रक्तचाप, तीव्र आध्मान (Gastroenteritis) शस्त्रकर्मक्रियाकाल में विसंज्ञ कर द्रव्याधिक्य भी बनते हैं।

१. आयम्यतेमारुतजे हृदयंतुद्यते तथा। निर्मथ्यते दीर्यतेच स्फोट्यते पाट्यतेऽपिच। सु.उ.त.अ. ४३ श्लो. ७

२. हृच्छून्यभावद्रवशोषभेद-स्तम्भा संमोहाः पवना-द्विशेषः। च. चि. अ. २६

३. वातेन शूल्यतेऽत्यर्थं तुद्यते स्फुटतीव च। भिद्यते शुष्यतेस्तब्धं हृदयंशून्यताद्रवः॥ अकस्माद्दीनता शोषो—भयं शब्दा सहिष्णुता। वेपथुर्वेष्टसंमोहः श्वासरोधोऽल्पनिद्रता॥

—हृत्प्रदेश पर तीव्र पीड़ा—बेचैनी, मुखश्यावता, अरति, हृत्पेशी आक्षेप आदि लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

लक्षण—प्रायः यह रोग भयानक होता है और दौरे के रूप में होता है, शीघ्रता से रोगी पर आक्रमण करता है वक्षप्रदेश में पीड़ा होती है। हृच्छूल (Angina) सहसा होता है—थोड़ी-२ देर पर आक्रमण होता है—धीरे-२ यह समय कम होता जाता है और तीव्र पीड़ा होकर यह लक्षण पैदा होते हैं। तीव्र वेदना हार्दिकी धमनी का

अवरोध सूचित करता है यदि वेदना लगातार होती हो। वक्षशूल की वेदना शंकुस्फोटमवत (कील गाड़ने जैसी) तीव्र होती है। वेदना का स्थान बदलता रहता है। अरति–बेचैनी, हृत्स्पंद वृद्धि या रुकावट (Tachycardia), बहुत पसीना आना, मुखश्यावता होती पाई जाती है जो रोग की तीव्रता का पोषक है। इसके साथ हृदय की पेशी की एंठन होने से तीव्र पीड़ा (Infarction), तीव्र श्वास, अर्धश्वास के साथ हृदय कार्य विरोध होता है। गम्भीर चिन्ता-तीव्रशोक-वक्षप्रदेश पर अभिघात-अनिद्रा-आदि भी लक्षण को तीव्रावस्था में उत्पन्न करते हैं। वमन, जी मिचलाना यह लक्षण हो सकते हैं किन्तु यह आवश्यक नहीं है।

शारीरिक लक्षण–तीव्रावस्था में चेहरे पर पीलापन, श्यावता, तीव्र पसीना· हृदयाभिताड़न पर शब्दाभिश्रवण स्पष्ट सुनाई पड़ता है जो हार्दिकी धमनी के अवरोध का सूचक है। हृदय के प्रसार कालिक मरमर ध्वनि, निलयों की क्रिया स्पष्ट सुनाई पड़ती है। हृदय की धड़कन के स्वरूप तीव्र होकर सुनाई पड़ते हैं। नाड़ी तीव्र या मन्द हो सकती है।

निदान–हृदप्रदेश पर तीव्रपीड़ा हृदय की धमनी का अवरोध सूचित (Myocardial infarction) करती है। एलेक्ट्रोकार्डिग्राफ को ध्यानपूर्वक देखने से पता चल जाता है। नाड़ी अनियमित-तीव्र या मंद गति की मिल सकती है। परीक्षा में रक्तवारि की प्राप्ति तीव्र होती है। फुफ्फुसीय धमनी अवरोध, प्लूरिसी हृदयावरण शोथ, पैत्तिक शूल, महामातृका धमनी का अवरोध, ग्रहणी में व्रण बनकर छिद्र होने से–आंत्रव्रणों का फूटना–आंत्रावरोध आदि लक्षण हो सकते हैं। ऐसे समय में रोगी का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। हार्दिकी धमनी में या हृत्पेशी के भीतर प्रणालियों अवरोध होकर रोग होता है।

प्रबन्ध–रोगी को आते ही तत्काल आतुरालय में रख कर उसकी उचित चिकित्सा व निदान का प्रबंध करना चाहिऐ। यदि रोगी के घर पर साधन हों तो घर पर भी रखा सकता है। रोगी को मधुमेह आदि होने का ज्ञान तत्काल करके शीघ्र रोग परिचर्या का प्रबंध करायें।

उपचार:—

अवसादक वेदनाहर (१) वेदनाहर अवसादक औषधियां (अहिफेन के योग मारफीन सल्फेट) पेथेडिन १०० ग्राम का प्रबन्ध कर वेदना शांत्यर्थ प्रयोग करना चाहिए। इससे रोगी संज्ञाशून्य होकर पड़ा रहता है–वेदना की अनुभूति कम होती है। यदि किसी उपद्रव का भय हो तो रोगी को पेथीडिन देकर वेदना को विस्मृत करने की चेष्टा करते हैं। इस बीच रोगी के साथी व परिचारक से उसके हृद्रोग के होने का ज्ञान व इतिहास का ज्ञान कर के किसी रोग का उपद्रव हो तो उसका उचित परिमार्जन करना चाहिए। हृद्रोग के लक्षण निम्न रोगों में मिलते हैं—

नामरोग	रुजा का वर्ग	हृ[illegible]	संघात	तोदभेद	हृद्रोग
वात ज्वर	हृद्ग्रह्	हृदयोत्क्लेश	हृदभिघात	हृत्तरोग	हृत्स्पंदन
आम ज्वर	हृदय वेदना	हृदयाविशुद्धि	शूलवात	हृत्प्रपीडन	
श्वास	हृत्पीड़ा	हृत्पेशी प्रपीडन			
रक्तस्थ ज्वर	,,	,,			
असाध्यज्वर	,,	,,			
अतिसार		हृदय प्रपीडन			
रक्तपित्त	हृदपीड़ा	—			
वातिककास	हृच्छूल	—			
अरोचक	,,	—		हृत्तोद	
श्लै. ग्रहणी	,,	—	हृद्-गौरव		
पान विभ्रम	,,				
उदावर्त	,,				
हृदय रोग	हृद्ग्रहः	हृद्गुरुता			हृत्स्पंदन
कृमिहृद्रोग	हृद्ग्रसक				
क्षयज कास	हृत्च्युति				
उन्माद	हृत्सोत्सोदुष्टि				
अपस्मार	हृत्स्तंभ				
पुरीषज	हृत्स्तंभ				
आनाह					

हृतशोथ-गुल्म में

हृत्क्लम (हृदय की गति की कमी)–हृद्रोग में, अश्मरी,

गुल्म-उदावर्त्त शूल, आमवात, अपस्मार, उन्माद, पान-विभ्रम, मूर्च्छा-मूत्रकृच्छ्र, तृष्णा, छर्दि-अरोचक श्वास कास में मिलता है।

हृदशून्यता-यक्ष्मा, रक्तपित्त, पांडु, कृमि, विशूची, ग्रहणी, अतिसार व ज्वर में।

इस प्रकार विभिन्न रोगों में हृदय के रोग व हृच्छूल के लक्षण मिलते हैं। इनका निदान करके प्रारम्भिक हृच्छूल की चिकित्सा करनी चाहिए।

इन लक्षणों में हृतशूल प्रधान लक्षणहै। इसका कारण कई ऊपर कहे रोग हैं या स्निग्धाहार, तैल, घृत के बने पदार्थ-आदि हैं जिनसे रक्त में स्नेह जातीय प्रोटीन बढ़ जाते हैं और रक्त को थक्का बनाने में सहायक होते हैं और सूक्ष्मनाड़ियों में रक्तकण जमकर अवरोध पैदा करते हैं। बहुसूक्ष्म धमनी में रक्त का जमाव होना रक्त स्कंदन होना और धमनी में अवरोध करके हृच्छूल पैदा करना लक्षण होता है। ऐसे रक्तसंवहन में रक्तप्रवाह रुक जाता है या कम रक्त पहुँचता है। ऐसी दशा में हृदयप्रदेश पर भारीपन और हल्कीसी बेचैनी होती है और जोर से रक्त प्रवाह में स्वय टूटकर ठीक हो जाते हैं। अतः ऐसा आहार व विहार करना आवश्यक है जो कि रक्त का संघात (थक्का या Thrombus) न बनने दें।

अतः शूलहर औषधि के बाद रक्तसंघात भेदी औषधि की आवश्यकता पड़ती है जो रक्त में जमाव न होने दें।

रक्त संघात हर औषधि (Anticoagulants)—

इस प्रकार-१. अवसादक वेदनाहर औषधि

२. रक्तसघातहर-या रक्तसंघात-भेदी (Anti Coagulative Drugs)

३. आक्सीजन प्रयोग

४. अवसादक व निद्राकर-जनन (Sedative and tranquelizer)

अवसादक वेदनाहर-

आयुर्वेद में वेदनाहर कई प्रकार की औषधिया हैं--

१-स्थानीय वेदनाहर २-केन्द्रीय वेदनाहर

स्थानीय वेदनाहर-यह वेदना हृदय के किसी विशेष स्थान पर होती है और प्रान्तीय नाड़ी मण्डल पर प्रभाव कर वेदना दूर करती है। यथा-वत्सनाभधुस्तूर, भंगा-बेलाडोना, कलिहारी, कोकीन, कस्तूरी, अम्बर आदि।

केन्द्रीय वेदनाहर-अहिफेन सत्व (पेथीडीन-एमाइडोन) एसपिरीन व सैलिसिलेटस। शालनिर्यास, शल्लकी निर्यास, हींग, शिलाजतु आदि।

चिकित्सा—

हृच्छूल से पीड़ित, बेचैन रोगी के सामने आने पर अतुरालय में या रोगी के घर पर वेदना प्रशमन के लिए केन्द्रीय वेदनाहर अवसादक औषधियों में से निम्न औषधि दें—

१. अहिफेन के योग-अहिफेन सत्व (पेथीडीन या एमाईडोन-कोडीन के सूचीवेध)

२. सुरा के योग, निद्राकर योग, तीव्रसुरा।

३. वेदना शामक कस्तूरी के योग-वातकुलान्तक, कस्तूरीभैरव, वृ. कस्तूरी भैरव।

४. वत्सनाभ व धुस्तूर के योग-स्वर्ण सूतशेखर, योगेन्द्र रस।

५. धमनी विस्फारक तीव्र शूलहर-पुष्करमूल-कूठ, हिंगु-कर्चूर, अर्जुन, नागवलामूलत्वक् चूर्ण, हरीतकी-वचा. अम्लवेतस के योग (वचादि चूर्ण-हिंग्वादि चूर्ण)।

आत्ययिक काल के योग-

जो ऊपर दिये हैं शीघ्र लाभ करते हैं।

अहिफेन-सत्व के सूचीवेध प्रयोग करने पर पीड़ा, बेचैनी को दूर कर केन्द्रीय नाड़ी मंडल पर प्रभाव डालकर संज्ञाहीन बना देते हैं। वेदना की तीव्रता-बेचैनी-अरति, श्यावमुखता-स्वेदागम की दशा में देना रोगी को शांति प्रदान करता है।

वेदना स्थापन रस-अहिफेन का योग है। बड़ी मात्रा में देने पर वेदना की कमी करते हैं और निद्राकर होते हैं यथा-वेदनान्तक रस। जब वेदना, रक्तस्कंदनकर क्रिया होकर, हार्दिकी धमनी में अवरोध होकर हो तो-पुष्कर मूल-कूठ-हिंगु कर्चूर के योग दें। यथा—

१. पुष्करमूल-पुष्करमूल चूर्ण १ माशे की मात्रा में संजीवनी सुरा के साथ आधा-२ घंटे पर दें। यह धमनी

:: शेषांश पृष्ठ २६६ पर देखें। ::

❋ हृदय शूल की चिकित्सा ❋

डा० कृष्ण चन्द्र शर्मा आयुर्वेदाचार्य, शिव मैडीकल हाल
निकट सराफा बाजार, अम्बाला छावनी (हरियाणा)

—❋—
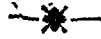
१. आयुर्वेदिक चिकित्सा

ये मेरे आजमाए हुए कुछ अनुभूत योग हैं—

(१) मृगश्रृङ्ग भस्म को घृत के साथ मिलाकर पीने से हृदयशूल एकदम शान्त हो जाता है।

(२) पारद, गन्धक की कज्जली को मुलहठी, द्राक्षा, खजूर व आंवला प्रत्येक के क्वाथ से १-१ दिन मर्दन करके वटी बनालें। २ रत्ती की मात्रा में आंवले के चूर्ण और खांड के साथ दें।

(३) पोस्त की ५ डोडी को पाव भर पानी में उबाल कर उसमें खतमी के फूलों से बनाई पोटली भिगोयें और इस पोटली को दर्द के स्थान पर लगायें। दर्द एकदम शान्त हो जाएगा।

(४) पारद, गन्धक, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, मुक्तापिष्टी, शिलाजीत, वङ्ग भस्म प्रत्येक १-१ तोला, स्वर्ण भस्म ३ माशे, रजत भस्म ६ माशे इन सबको एकत्र कर भांगरे के रस व चित्रक के क्वाथ, अर्जुन के क्वाथ से पृथक्-पृथक् ७-७ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। इन्हें छाया में सुखाकर गेहूं के क्वाथ से सेवन करायें।

२. यूनानी चिकित्सा

१—चन्दन को गुलाब के अर्क में घिसकर हृदय के स्थान पर लेप करने से शूल दूर हो जाता है।

२—खमीरा संदल ६ माशा को अर्क बेदमुश्क ५ तोला, अर्क केवड़ा ५ तोला शर्बत गुड़हल २ तोला मिला कर दें।

३—जवाहरमोहरा १/२ से १ रत्ती की मात्रा में खमीरा आबरेशम ७ माशा में मिलाकर दें। ऊपर से नाशपाती का रस, मीठे सन्तरे व अनार का रस प्रत्येक ५-५ तोला और शर्बत संदल २ तोला मिलाकर पिलावें।

४—हृदय की जगह पर 'जिमाद आफराम जदीद' लगाएं, इससे दर्द कम हो जाता है।

५—मारवाबीद १ माशा में नीबू रस थोड़ा-थोड़ा मिलाकर खरल करें, मोतदिल होने पर छानकर १० बूंद, *अर्क गुलाब १ तोला में मिलाकर दें।*

६—हृदय को बल देने के लिए यह दवा दें। दवा-उल-मिस्क मोतदिल जवाहर वाली ५ माशा, या खमीर गाजबान ५ माशा दें।

७—मुफर्रेह याकूती मोतदिल ५ ग्राम की मात्रा में लेकर ऊपर से २५० मिलि० पियें।

८—अर्क अम्बर ६० मिलि० को शर्बत अनार १५ मिलि० मिलाकर पिलायें।

३. एलोपैथिक चिकित्सा

१. रोगी की जबान के नीचे ट्राइनाइट्रिन $\left(\frac{1}{120} \text{ से } \frac{1}{100} \text{ ग्रेन}\right)$ की गोली रखने से २ मिनट में शूल शांत हो जाती है।

२. नाईट्रोबिड ओइण्टमेंट (मरहम) को शूल के स्थान पर मालिश करें, चन्द क्षणों में ही पीड़ा शान्त हो जाएगी।

३. सोरबीट्रेट की गोली जिह्वा के नीचे रखें तत्काल पीड़ा शान्त हो जाएगी।

४. हाई ब्लड प्रैशर होने पर बैटामाल-डी की गोली *तथा लैसिक्स की गोली का यथावस्था सेवन करायें।*

५. रोगी को पूर्ण आराम दें तथा स्वच्छ व शान्त वातावरण में रखें। लघु व सुपाच्य आहार दें।

❋

आधाशीशी का दर्द
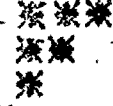
—डा० धनराज शर्मा, शिव मेडिकल हाल—
निकट सरोफा बाजार, अम्बाला छावनी (हरियाणा)

आयुर्वेदिक चिकित्सा—

१—रीठे के छिलके को पानी के साथ घिस कर नासा छिद्र में डालें तो शिरःशूल तत्काल शांत हो जाता है। यदि दर्द दांये हिस्से में हो तो बांये नासा छिद्र में बूंद डालें और यदि बांये हिस्से में दर्द हो तो दांये नासा छिद्र में बूंद डालें।

२—मोथा घास की हरी पत्तियां लेकर थोड़ा गरम करें, नरम होने पर निचोड़कर इसका अर्क निकाल लें। इसमें १ ग्राम शुद्ध घी, पांच कालीमिर्च पीसकर मिलायें। इस दवा को तीन-तीन घण्टे बाद सूंघें, दर्द एकदम ठीक हो जायेगा।

३—चूना कलई १० ग्रा., नौसादर १० ग्रा., कपूर ३ ग्रा. को मिलाकर शीशी में भर लें। इसको सुंघाते ही तत्काल दर्द शांत हो जाएगा।

४—समुद्रफल को बकरी के दूध में पीसकर नाक में टपकायें। दर्द एकदम बन्द हो जायेगा।

५—आक के दूध में ऊंट की मेंगनी को भिगोकर छाया में शुष्क करें फिर इसको जलाकर राख को महीन पीसकर शीशी में भर लें। नस्य देने से दर्द शांत होता है।

६—अकरकरा को छीलकर, जिस ओर दर्द हो, उस ओर की दाड़ में दबाकर धीरे-धीरे चबाने से तत्काल दर्द शांत हो जाता है।

७—लहसुन का स्वरस निकाल कर रख लें। शिर के जिस तरफ दर्द हो उस ओर के नथुने में ३-४ बूंदें डालें। दर्द शांत हो जाएगा।

८—कपूर देशी १ ग्राम, असली केशर १ ग्राम गाय का घी ६ ग्राम लें। केशर को बारीक पीसकर कपूर तथा घी गर्म करके मिलाकर केशर डाल कर जिस तरफ दर्द हो उसी तरफ नाक से सूंघने से दर्द एकदम शांत होता है।

९—पीले भांगरे के साथ समभाग बकरी का दूध मिलाकर धूप में रख दें। गरम होने पर इसका नस्य लें दर्द शांत हो जायेगा। इसी रस में कालीमिर्च पीसकर लेप करने से भी बहुत लाभ होता है।

१०—६ ग्रा. लौंग को बारीक पीसकर, पानी में घोल कर लेई जैसा तैयार करके थोड़ा गरम करके कनपटियों पर लगाने से दर्द एकदम शांत हो जाता है।

एलोपैथिक चिकित्सा—

१. वेगानिन गोली १-१ गर्म पानी के साथ ४-४ घंटे बाद लेने से आधाशीशी का दर्द शांत हो जाता है।

२. मैजेटोल गोली १-१ गर्म जल से ४-४ घण्टे बाद लें। दर्द शांत हो जाता है।

३. स्टैरीटिक नामक गोली ३-३ घण्टे बाद १-१ जल के साथ सेवन करें। दर्द शांत हो जाएगा।

४. डिसप्रिन २ गोली जल से लें। दर्द एकदम शांत हो जाएगा।

५. एस्प्रीन गोली २ की मात्रा में ३-३ घण्टे बाद गर्म जल से लेने पर दर्द शांत हो जाता है।

६. जिमालिजन गोली १-१ की मात्रा में ३-३ घण्टे बाद जल से सेवन करें।

७. कैफरगाट गोली २ जल के साथ दर्द शुरू होते ही लें। शांत हो जायेगा।

८. हाइड्रजीन गोली १-१ दिन में तीन बार जल से लें दर्द समाप्त हो जायेगा।
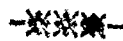
अर्श रोग की संकटकालीन अवस्था—निदान एवं चिकित्सा

डा० मन्मथनाथ पाण्डेय जी०ए०एम०एस०
टाउन हाल के नजदीक, सीतामढी (बिहार)

अर्श रोग के कारण—अर्श रोग मुख्यतः दो कारणों से होता है। (१) वंशानुगत (२) आहार-विहार जनित।

यथ—द्विविधान्यर्शांसि सह जानि कानि चित्कानि चिज्जातस्योत्तर काल जानि। तत्र विवं गुद वलि बीजो-पतप्तमायतनमर्शसां सहजानाम्। तत्र द्विविधो बीजो उपतप्तौ, हेतु माता पित्रोरपचारः पूर्व कृतं च कर्म तथा अन्येषामपि सहजानां विकारणां सहजानि, सहजातानि शरीरेव अर्शांसीत्यधि मांस विकाराः। (च. चि: स्था. ६)

(१) वंशानुगत—यह रोग वंशानुगत होता है, माता, पिता, दादा, नाना, मामा के दोष से भी व्यक्ति विशेष इस रोग से आक्रान्त होते हैं।

(२) आहार-विहार-जनित— तैला, कडुआ, तीखा रूखा, खट्टा खाने से, भोजनकाल के उल्लंघन से तीव्र मद्यपान करने से, अत्यन्त मैथुन करने से, दाह कारक गरम वस्तु पीने से, अन्न तथा गरम औषधियों का सेवन।

अर्श रोग के भेद—अर्श रोग अन्य बीमारियों की तरह ही वातज, पित्तज, कफज, द्वन्दज, त्रिदोषज होता है, पर लोकाचार में दो तरह का है, १. वातज २. रक्तज।

अर्श का लक्षण—गुदांकुर सूखे, चिमचिम पीड़ा युक्त, मुरझाये हुए, काले, लाल, टेढ़े, विशद, कर्कश, तीखे, फटे मुख के, बेर, कपास, खजूर के फल के सदृश होता है। अग्नि का मंद होना, अरुचि, अतिसार, संग्रहणी रोग होना, कफ मिला दस्त होना, प्रवाहिका उत्पन्न होना, मस्सों से रक्त नहीं आना, गाढ़ा मल होने से भी मस्सों का न फटना और शरीर का रङ्ग पीला और चिकना होना, पखवाड़े, कन्धा, कमर, जांघ, पेड़ू इनमें अधिक पीड़ा होना, छींक, डकार, खांसी, श्वास, अग्नि का विषम होना आदि इस रोग के लक्षण हैं।

रक्तज अर्श का लक्षण—मस्सा का मुख नीला, पीला, लाल और सफेदी लिये हो, उन उन मस्सों में से महीन धार से रक्त आये, रक्त की बू आये, शरीर में दाह हो, गुदा का पकना, ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि, हाथ के स्पर्श करने से गरम मालूम हो, जिसके मल का द्रव नीला, पीला, गरम, आम संयुक्त हो, जिसकी त्वचा,
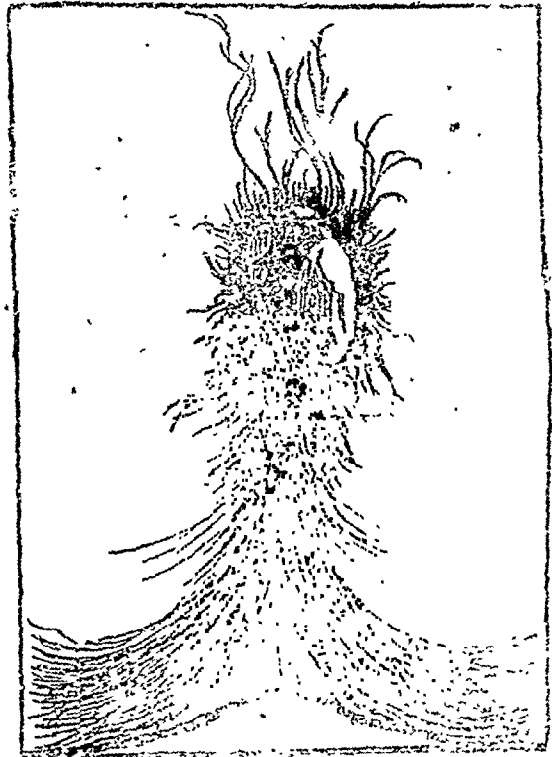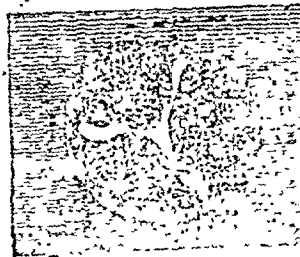
अर्शांकुर गुदा से बाहर निकले हुये हैं
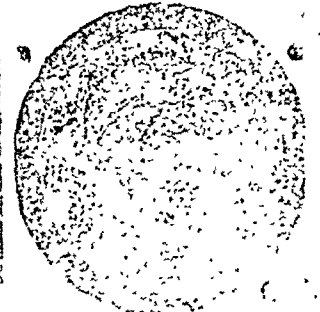
अर्श रोगी का गुदा परीक्षण यंत्र से गुदा परीक्षण

नख, नेत्रादिक हरे, पीले हरताल समान और हल्दी के समान हों तो रक्तज अर्श समझना चाहिये।

अर्श रोग का पूर्वरूप—गुदा पर कैंची जैसी कतरन का आभास, गुदोष्ठ पर खुजली, सूई चूभन जैसी पीड़ा का होना, विष्टम्भ, शरीर में दुर्बलता, कुक्षेराटोप (कुक्षि में तनाव), ऊपर की ओर डकार अधिक होना, सक्थि-साद (अस्थि का जकड़न) मल का कम निकलना, ग्रहणी, पांडु, उदावर्त आदि रोगों की आशङ्का इस रोग के पूर्व-रूप हैं।

विष्टम्भो अगस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एवच।
कार्श्यमुद्‌गार बाहुल्यं सक्तिसादो अल्पविट्‌कता॥
ग्रहणी रोग पांड्वर्तिराशङ्का चादरस्य च।
पूर्वरूपाणि निर्दिष्टन्यर्शसामभि वृद्धये॥
—च. चि. स्थान अ. ६

अर्श रोग की संकटकालीन अवस्था—अर्श रोग जीवन पर्यन्त दुःख देने वाली कष्ट साध्य बीमारी है। उचित उपाय नहीं होने पर यह रोग मन्दाग्नि करते हुए सभी कोष्ठों को आमाभिभूत कर व्यक्ति विशेष को बिछा-वन पकड़ा देती है। ऐसी स्थिति में आमरस की वृद्धि को मध्ये नजर रखते हुए कोष्ठ शोधन करते हुए चिकित्सा करनी आवश्यक हो जाती है। औदर्याग्नि कमजोर होने से धात्वग्नि भी कमजोर हो जाती है। पूरे शरीर में मांस मांस में आम रस भाता है। अङ्गों में भारीपन, जकड़न और दर्द पैदा कर देता है। वायु की उर्ध्वगति हो जाती कभी-कभी वायु को गति इतनी ऊर्ध्व हो जाती है कि आदमी स्थिर खड़ा नहीं रह सकता। व्यक्ति विशेष को मूर्च्छा होने, गिर जाने का भय होता है, सिर में दर्द भी उत्पन्न होता है, छींक या डकार होने पर आदमी कुछ आराम अनुभव करता है। मलद्वार का आपस में जुटना, एवं किसी वस्तु का मलद्वार में ठंसा हुआ सा अनुभव होना होता है। अपान वायु निकलते-२ भी नहीं निकल पाती, पूरे मलद्वार में अजीब सा तनाव बना रहता है। मलद्वार मे बिना उंगली लगाये या एनिमा दिए बाहर नहीं होता, ऐसी परिस्थिति में जीवन हमेशा खतरे में बना रहता है।

वातज अर्श की चिकित्सा—ऐसी परिस्थिति में मला-वरोध को दूर करने के लिए सुबह-शाम विजय चूर्ण एक चम्मच मात्रा रोगी के बलाबल के अनुसार एरण्ड तैल के साथ देनी चाहिये एवं औदर्याग्नि को प्रदीप्त करने हेतु एवं आमाभिभूत मांस पेशियों को आमरस से छुटकारा दिलाने हेतु भोजन के बाद वैश्वानर चूर्ण सुरा के साथ देना श्रेयष्कर होता है। साधारणतया रसोन इस बीमारी में नहीं दिया जाता पर उपरोक्त परिस्थिति में एक या दो जावा रसोन प्रयोग कराना आवश्यक होता है। वैश्वा-नर चूर्ण के साथ रसोन सुरा का प्रयोग विशेष-लाभकर होता है। यह मेरा अनुभूत है। यह प्रयोग आमाभिभूत कोष्ठ में बहुत ही लाभकारी है। यथा—

गृजनकसुरा सिद्धां भृष्टांचमंकेनवापिबेत्येयाम्।
रक्तातिसार शूल प्रवाहिका शोथ निग्रहणीम्॥

पथ्य—गेहूं की रोटी, परवल, आलू, सजीवन, पपीता की सब्जी सिर्फ जीरा, गोल मिर्च, हल्दी, धनिया देकर यवागू आदि रोगी के बला-बल के अनुसार एवं दोष वृद्धि के अनुसार पथ्य देना चाहिए। अर्श रोग मे तीनों दोष कुपित होते हैं, अतः दोषों को देखते हुए औषधि के साथ-साथ पथ्य पर भी ध्यान देना जरूरी होता है। इसके अलावे अमृत भल्लातक या भल्लातक गिरी का पाक भी त्रिवृत चूर्ण के साथ देना श्रेयस्कर होता है।

पित्तज अर्श एवं उसकी चिकित्सा—पित्तज या रक्तार्श रहने पर मलद्वार के मस्सों से रक्त आते हैं। पाखाने के लिए बैठते ही मस्से फटकर रक्त आने लगता है। मस्सों एवं मलद्वार में सूजन हो जाती है। मल निक-लने में बहुत कष्ट होता है। मस्से जब तक नहीं फटते व्यक्ति विशेष अधिक कष्ट का अनुभव करता है। रक्त निकलने पर व्यक्ति विशेष कुछ आराम अनुभव करता है। मलद्वार में पाक हो जाता है तथा मलद्वार में कटा-पन एवं जलन का अनुभव होता है। अधिक रक्त निक-लने से व्यक्ति विशेष बहुत कमजोर हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में मलद्वार के कटापन, जलन एवं पाक हेतु निम्नलिखित द्रव्यों द्वारा बनाया हुआ मलहम विशेष लाभ कर होता है।

करायल ५० ग्राम, नारियल तैल २५० ग्राम, भीम-

सैनी कपूर १/४ तो., शुद्ध अफीम १/४ तो. लें।

विधि—पहले करायल को खरल में अच्छी तरह खरल कर लेनी चाहिए तथा नारियल तैल मिलाकर लुगदी बना लेनी चाहिए, तत्पश्चात उस पर ठंडा जल थोडा-२ देते हुए एक थाल में रख कर अच्छी तरह मलना चाहिए, मलते-२ जब यह मक्खन की तरह हो जाये तब इसमें १/४ तो. अफीम एवं १/४ तो. भीमसैनी कपूर मिला कर मथ कर रखलें। यह मलद्वार के फटापन, जलन को आराम करता है एवं मलद्वार में हुए घाव घाव का रोपण भी करता है। लगाते हो रोगी बहुत आराम अनुभव करता है।

मलद्वार से रक्त आने पर दूब स्वरस चीनी के साथ सुबह-शाम या भंगरैया स्वरस चीनी के साथ सुबह-शाम लेना चाहिए। ऐसी स्थिति में विषतिन्दुक प्रयोग भी विशेष लाभकर होता है।

हरीतकी, छोटी पीपल एवं सहजन की छाल बराबर मात्रा कूट छानकर मिश्री या चीनी के साथ लेने से भी अच्छा लाभ होता है।

पथ्य—उपरोक्त स्थिति में मूंग की दाल, गेहूं की रोटी, रोटी नहीं पचने पर मूंग के दाल की खीचड़ी, परवल, सजींवन पपीता की सब्जी, सिर्फ जीरा, मिर्च, हल्दी, धनियां, नमक देकर देना चाहिये। लाल मिर्चा थोड़ा देना चाहिए। अगर आनाह सदृश उपद्रव हो तो परवल, सजीवन, पपीता को उबाल कर महीन पीसकर चीनी या नमक के साथ देना चाहिए। गाय या भैंस का दूध नहीं देना चाहिए, क्योंकि मन्द अग्नि के कारण प्रोटीन का पाचन नहीं हो पाता; जिससे आम रस की वृद्धि होती है। यथा—

"आमाभिभूत कोष्ठस्य क्षीरं विषमहेरिव।"

अर्श रोग, अतिसार, सग्रहणी प्रायः तीनों ही परस्पर एक दूसरे के कारण होते हैं। इन तीनों में ही जठराग्नि का बल क्षीण होने से रोग की वृद्धि होती है और जठराग्नि बलवान होने से रोग का ह्रास होता है। अतः इन तीनों में अग्नि बल की विशेष रूप से रक्षा करीन चाहिये। यथा—

अर्शांसि चातिसारश्च ग्रहणी दोष एव च।
एषामग्नि बले हीने वृद्धि वृद्ध परिक्षयः॥
तस्मादग्नि बलं रक्ष्यमेषुविषु विशेषत:॥
(च. चि. स्थान अ. ...)

—※—

— पृष्ठ २८१ का शेषांश —

सूचना दी। घर आया। तब प्रथम प्रयोग के सफलता आनन्द था।

इसके बाद तो ऐसे कितने साध्य हिक्का के रोगियों में अच्छी ऐसी ही सफलता मिली हैं। ऐसी ही सफलता मिली थी एक भूत बाधा के लक्षण रूप उत्पन्न हुई हिचकी (हिक्का) के केश में। इसका हर एक अनुभव रसप्रद है परन्तु उसकी चर्चा फिर कभी करेंगे।

हिचकी (हिक्का) की सम्प्राप्ति में कफावृत प्राणोदान बताया गया है। इसके अनेक उपाय भी शास्त्र में बताये हैं। परन्तु उसमें यह "विश्वागुड़ नस्य" का प्रयोग तो अति उपयोगी हैं ही। सोंठ कफ के आवरण को और गुड़ वायु को मिटाने में त्वरित कामयाब होने के कारण पानी की जगह जो तिल तैल में मिलाकर नस्य दिया जाय तथा थोड़ा छाती, गला, नाक, और कपाल पर सेक (स्वेद) करने के बाद नस्य दिया जाय तो अतिशीघ्र लाभ होता है। हिचकी (हिक्का) के कितने जीर्ण या उग्र रोगी में कब्ज, प्रतिलोम वायु या उदावर्त कारणभूत होता है। तब स्निग्ध वस्ति, एरंड तैल या दशमूल तैल की पिचकारी (वस्ति) अथवा एरंड तैल अथवा हर्रे (हरीतकी) मुख द्वारा देने से उसकी पुनः उत्पन्न होने की संभावना दूर हो जाती है।

नागरं गुड़ संयुक्तं नस्यं हिक्काघ्नं परम्॥

सोंठ और गुड़ का मसाया हुआ नस्य परम हिक्का नाशक है। इस सूत्र का केवल वैद्य ही नहीं परन्तु सामान्य मनुष्य भी अवसर मिलते ही अनुभव करने योग्य हैं ही।

कष्ट प्रसूति

वैद्य श्रीशोभन वसाणी 'आयु-सेण्टर' सर्वोदय कार्मशियल सेण्टर दूसरा महल, रिलीफ सिनेमा के पास अहमदाबाद-१
अनुवादक—श्रीमती कमलेश बी. मिश्रा बी. ए., मु० पो० विजापुर जि महेसाना (गुजरात)

पहले के समय की अपेक्षा आज के प्रसवकाल में कष्ट प्रसूति होने से और माता अथवा नवजात शिशु के मृत्यु के भय से बड़े-बड़े शहरों या सुविधा वाले गांवों में प्रसूतिगृह में जाने की प्रथा बढ़ती जा रही है। परन्तु प्राचीन काल में प्राकृत प्रसव अधिक होता था। वर्तमान काल में भी ग्राम्य प्रदेश या आदिवासी प्रदेश में प्राकृत प्रसव ही अधिक होता है। साधन सम्पन्न परिवार प्रसूति होने के पहले ही सम्पूर्ण व्यवस्था कर लेते हैं। परन्तु गरीब, असुविधा अथवा पिछड़े बस्ती वाले विस्तार में प्रसूति के समय विकराल समस्या खड़ी होने की संभावना रहती हैं। परिचारक शिक्षित न हो, डाक्टर वैद्य या नर्स की सुविधा न हो वहां अधिकतर स्त्रियां अकाल-मृत्यु का शिकार हो जाती हैं।

आज भी सद्भाग्य से किसी-२ गांव में ही निश्चित प्रदेश के बीच एकाद ऐसी ग्राम वैद्य अथवा निपुण परिचारिका होती हैं जो वंशपरम्परागत ज्ञान, हस्त कौशल्य अथवा अनुभव के आधार पर उत्तम स्त्री डाक्टरों से भी अच्छा काम करती हैं।

प्रसूति तंत्र अर्थात गायनेक के निष्णात डाक्टर भी निराशा का अनुभव करते हैं, वहां भी उनके सामने घरेलू वैद्यक के योग द्वारा चमत्कार करने के उदाहरण को यदि एकत्रित किया जाय, सैकड़ों होंगे। चिड़चिड़ी अर्थात अपामार्ग (Achyranthes Aspera) जैसे कोई वनस्पति का मूल, पिसी हुई अन्य कोई सामान्य औषध विशेष प्रभावशाली जंत्र-मन्त्र अथवा हस्त कौशल इसमें से जो संभव हो उस हाथ द्वारा सैकड़ों हजारों प्रसूता को प्राणदान दिलाया होगा। यह अतिशयोक्ति नहीं है।

बाजार में से शुद्ध टंकण क्षार की शीशी लाकर अपने घर में रखो अथवा अपने इमर्जेन्सी बेग में व्यवस्थित रखो। क्षार होने के कारण वह बिगड़ेगा नहीं। मूल्य भी अधिक नहीं होता है। ऐसे गंभीर (इमर्जेन्सी) केस के समय २ से ३ ग्राम जितना अथवा १/४ तोला जितना शुद्ध टंकण का चूर्ण लेकर शहद में या गरम पानी में पिलाने मात्र से २०-२५ मिनिट में ही चमत्कारिक परिणाम देखने को मिलेगा। अवस्था में उपरोक्त मात्रा आधे-आधे घण्टे पर २-३ बार औषधि दे सकते हैं। बालक की मृत्यु हुई होगी तो भी प्रसूति होकर बाहर निकल जायेगा। यदि यह औषधि बांस (Bambusa Arundinacea) पत्र के क्वाथ में दिया जाय तो बहुत जल्दी परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। गरम दूध अथवा चाय में भी दिया जा सकता है।

जहां टंकण (सुहागा) क्षार की सुविधा न हो वहां सांप की कांचली अर्थात सर्प त्वचा के धुआं का प्रयोग याद रखने योग्य है। सांप के कांचली के टुकड़े को आग पर डालने से जो धुआं निकले उसे स्त्री के प्रसव मार्ग अर्थात योनि मार्ग में लगे ऐसा रखना चाहिए। दस ही मिनट में प्रसव हो जाता है।

एक से दो ग्राम शुद्ध टंकण शहद में चटाने और उपरोक्तविधि से सर्प त्वचा का धुआं देने का यह दोनों प्रयोग एक ही साथ करने से कोई नुकसान होने की संभावना नहीं होती है। दोनों प्रयोग निर्दोष एवं पूरक हैं।

—वैद्य चिकित्सा से साभार

आज के इस गतिशील युग में आयुर्वेद को अन्य पैथियों के साथ संघर्ष करना पड़ रहा है। आयुर्वेद में तात्कालिक चिकित्सा का कोई विचार नहीं किया गया है। केवल जीर्ण रोगों को ठीक करने वाली यह पद्धति है ऐसा प्रचार हुआ है। सूक्ष्मतः अवलोकन से पता चलता है कि आयुर्वेद शास्त्र में भी तात्कालिक चिकित्सा का उल्लेख था।

शास्त्र का अवलोकन करने से पता चलता है कि शस्त्राघातजन्य, तीव्र शिरःशूल, विविध शूल, उग्र प्रदर, रक्तार्श पीड़ा, रक्तार्श में तीव्र रक्त स्राव, तीव्र रक्तातिसार अग्नि दग्ध, तीव्र कण्डू, नेत्र शूल, तीव्र छर्दि, तीव्र कास, तीव्र श्वास, दन्तशूल आदि विविध रोगों में जब तात्कालिक अवस्था उत्पन्न होती थी तब आयुर्वेद में चिकित्सा की जाती थी। इन रोगों की आत्ययिक चिकित्सा का वर्णन सुश्रुत संहिता, भाव प्रकाश चक्रदत्त अष्टांग हृदय, चरक संहिता आदि, ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। स्त्रियों की विभिन्न रोगावस्थाओं में जिनमें तात्कालिक चिकित्सा की आवश्यकता हो यदि तत्काल चिकित्सा उपलब्ध न हो तो वे प्राणघातक होती हैं उदाहरण के लिये रक्त प्रदर।

ऋतुकाल या ऋतुकाल के अतिरिक्त दिनों में योनिमार्ग से अत्यधिक मात्रा में अधिक काल तक रक्तस्राव का होना रक्तस्राव या असृग्दर कहलाता है। (अनृतुकाल में असमात्रा में भी होने वाले आर्तव स्राव को असृग्दर कहते हैं।

व्यायाम, शोक, अत्यधिक कटु, विदाही, इत्यादि अन्न के सेवन से वायु प्रकुपित गर्भाशय गत-शिराओं के रक्त के प्रमाण का अतिक्रमण कर अत्यधिक रक्त का संचय कर अत्यधिक स्राव करती है। विभिन्न दोषों का समावेश होने से चार प्रकार का असृग्दर वातज, पित्तज, कफज एवं सन्निपातज होता है।

दोषानुसार रक्त प्रदर की चिकित्सा

वातिक रक्तप्रदर की चिकित्सा—

१. भारङ्गी, मुलेठी एवं देवदारु से सिद्ध घृत का प्रयोग करें।

२. तिल का चूर्ण मधु के साथ प्रयोग करें।

३. बकरी के दूध में रसौत मिलाकर सेवन करें।

४. दही में चीनी, मुलेठी, सोंठ एवं मधु मिलाकर सेवन करें।

५. पुष्यानुग चूर्ण का सेवन करें।

६. एला, शालपर्णी, द्राक्षा, खस, कुटकी, लाल चन्दन, सौवर्चल नमक, सारिवा व लोध्र को समभाग चूर्ण कर गो दधि के साथ सेवन करें।

पित्तज रक्त प्रदर की चिकित्सा—

१. वासा अथवा अमृता के स्वरस में मधु एवं शक्कर मिलाकर सेवन करें।

२. विदारी (क्षार) नील कमल, कमलकन्द कमल दण्ड नागरमोथा इन सभी को या किसी एक को दूध, चीनी एवं मधु मिलाकर सेवन करें।

३. लाक्षा चूर्ण को अजा दुग्ध से सेवन करना चाहिए।

४. आंवला ० १ तोला स्वरस में शर्करा मिलाकर सेवन करें।

५. श्वेत चन्दन का कषाय मिलाकर सेवन करें।

कफज (श्लैष्मिक) रक्त प्रदर की चिकित्सा—

१. रोहितक के मूल को पानी में पीसकर पानी मिलाकर प्रयोग करें।

२. आंवले के बीजों के कल्क में मधु एवं चीनी मिला कर प्रयोग करें।

३. कपास की जड़ के कल्क को चावल के धोवन के साथ सेवन करें।

४. नीम की पत्ती व गुडूची क्वाथ मधु मिलाकर सेवन करें।

५. क्षीरी वृक्ष के पत्तों का क्वाथ या इन्हीं का चूर्ण छानकर मधु मिलाकर सेवन करें

सन्निपातिक रक्त प्रदर की चिकित्सा—इसमें वातिक, पैत्तिक एवं श्लैष्मिक रक्त प्रदर की मिश्रित चिकित्सा करें।

साधारण एवं एकौषधि प्रयोग—

१. वासा पत्र स्वरस १० ग्राम में समभाग में मिला कर दिन में ३-४ बार सेवन करने से लाभ होता है।

२. अरहर के पत्ते २० ग्राम जल के साथ पीसकर उसमें १०० ग्रा. से १५० ग्राम तक जल मिलाकर छान कर पिलाने से रक्तप्रदर या असृग्दर में लाभ होता है।

३. अशोक की छाल १० ग्रा. को सिल पर महीन पीसकर उसमें तुखमलङ्गा के लुआब को मिलाकर बकरी के दुध के साथ नित्य प्रातः सेवन कराने से रक्त प्रदर में लाभ होता है।

४. अश्वगन्धा का महीन चूर्ण ३ ग्रा. और मिश्री १० ग्रा. दोनों का मिश्रण गो दुग्ध से प्रातः सायं सेवन कराने से असृग्दर में लाभ होता है।

५. कुकरौंधा की ६ ग्रा. से १० ग्रा. तक जड़ को घिसकर दूध के साथ पिलाने से भयंकर असृग्दर में भी लाभ होता है। रोगी को औषधि २-३ दिन तक स्थाई लाभ के लिये पिलानी चाहिए।

६. केला की कोमल जड़ का रस पिलाने से असृग्दर में लाभ होता है।

७. केवड़ा मूल को ६ ग्राम से १० ग्राम तक की मात्रा में गाय के दूध में या जल में पीस छानकर मिश्री मिलाकर प्रातः सायं पिलाने से रक्त प्रदर में लाभ होता है।

८. गाजर के स्वरस को १०० ग्राम की मात्रा में देने से रक्त प्रदर में लाभ होता है।

९. गूलर की ताजी छाल २० ग्राम कूटकर २५० ग्राम पानी में पका लें। आधा पानी शेष रहने पर छानकर उसमें २० ग्राम मिश्री मिलाकर सेवन करायें।

१०. जामुन की गुठली का चूर्ण चावलों के पानी या माँड के साथ सेवन कराने से रक्त प्रदर में लाभ होता है।

११. नागकेशर का चूर्ण ३ ग्राम बराबर मिश्री मिलाकर दिन में २-३ बार लेने से असृग्दर में लाभ होता है।

१२. पका केला ६-६ ग्राम घी के साथ सुबह शाम सेवन कराने से असृग्दर में लाभ होता है।

१३. जिन स्त्रियों का रक्त स्रावे बन्द न हो उनके लिए १ ग्राम मेंहदी के बीज लेकर पीस लें और २५० ग्रा. गाय के दूध में डालकर मिश्री मिलाकर प्रातः सायं सेवन कराने से विशेष लाभ होता है।

१४. जब भयङ्कर रक्तप्रदर हो तो तब ऊन को जला कर, जब धुआं निकल जाये तब उस भस्म को थोड़ा पीस कर रखलें इसमें से १ ग्राम से ३ ग्राम तक ठण्डे जल के साथ देने से रक्त प्रदर में लाभ होता है। ❋

— पृष्ठ २८८ का शेषांश —

विस्फारक वेदनाहर—मनसः प्रिय, निद्राकर होता है। तीव्रतम पीड़ा में पुष्कर मूल ४ रत्ती व वातकुलान्तक १ रत्ती की एक मात्रा बनाकर दें—मधु अनुपान से। सत्वर वेदनाहर व ट्रंकोत्साहकर होता है। आक्रमण के बाद भी लेते रहने से हृद्रोग से रक्षा करता है। इस योग को आधे-२ घंटे पर देना चाहिये।

२. हिंग्वादि चूर्ण—हींग वचा—कर्पूर, पुष्करमूल चूर्ण क्रमशः भाग वृद्धि कर बनावे। हींग १ भाग, वचा २ भाग; पुष्करमूल ७ भाग का मिश्रित चूर्ण ४ रत्ती की मात्रा में दशमूलारिष्ट के साथ थोड़ी-थोड़ी देर पर दें। यह तीव्र शूलहर, हृदय पेशी आक्षेपहर होता है। वाह्यंत भाग को संज्ञाहीन करके धमनी को फैलाकर ग्रन्थि (थक्के) को तोड़ता है और आक्षेपहर है। यह केवल वात प्रकोपज-नाड़ी वैगुण्य में देने पर तत्काल फायदा करता है। ❋
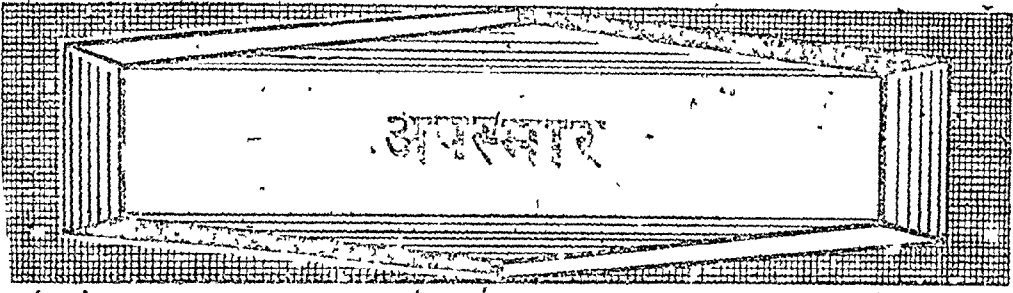
डा० प्रेमप्रकाश अवस्थी, डिमॉन्स्ट्रेटर रसशास्त्र, ल० ह० राज० आयु० कालेज, पीलीभीत

अपस्मार के भेद—वातज, पित्तज, कफज और सन्निभेद से यह चार प्रकार का होता है। नीचे हम स्मार के इन चारों भेदों के पृथक-२ लक्षण लिख हैं—

वातिक अपस्मार के लक्षण—वातज अपस्मार का कांपता है, दांत किटकिटाता है, मुख से फेन गिराता है और जोर-जोर से श्वास लेता है तथा रोगी दौरे में वस्तुओं को रूक्ष, अरुण या काले वर्ण का देखता है।

पैत्तिक अपस्मार के लक्षण—पैत्तिक अपस्मार के को सब वस्तुयें पीली या लाल ही दिखाई पड़ती हैं, के मुख से पीतवर्ण का फेन गिरता है, रोगी को अधिक लगती है एवं वह अत्यधिक गर्मी का अनुभव करता है तथा संसार की प्रत्येक वस्तु को जलती हो देखता है।

कफज अपस्मार के लक्षण—इसमें रोगी के मुख से वर्ण का फेन निकलता है, उसका शरीर शीतल और हो जाता है, उसे रोमांच होता है, उसका मुख और श्वेत वर्ण के हो जाते हैं। वह सब वस्तुओं को सफेद देखता है तथा वातज और पित्तज अपस्मार की अपेक्षा अपस्मारी अधिक समय तक बेहोश पड़ा रहता है दौरा देर से शांत होता है।

सन्निपातज अपस्मार के लक्षण—पृथक-पृथक दोषों के जो लक्षण बताये गये हैं वे ही लक्षण एक साथ में मिलें तो वह सन्निपातज अपस्मार से पीड़ित है—जानना चाहिए। यह सन्निपातज अपस्मार असाध्य है।

अपस्मार के वेग आने का काल—आचार्य चरक के अनुसार प्रकुपित वातादि दोष १०-१० दिनों पर, १५-१५ दिनों पर, १-१ महीने पर अपस्मार रोग के वेगों को उत्पन्न करते हैं। और कभी-२ इन समयों के पूर्व में भी दोष वेगों को उत्पन्न कर देते हैं। वास्तव में वेगों के आक्रमण की संख्या तथा समयान्तर के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पेज ने भी कहा है—वेगों के आक्रमण की संख्या के बारे में व्यापक वैयक्तिक भिन्नता पाई है। कुछ लोगों पर तो जीवन भर में १-२ बार ही, पर कुछ पर वर्ष में सैकड़ों बार आक्रमण होते हैं।

आधुनिक दृष्टि से अपस्मार के प्रकार

अपस्मार दो प्रकार का होता है—

१. लाक्षणिक अपस्मार—जो अपस्मार सकारण अर्थात किसी अन्य रोग के लक्षण स्वरूप होता है उसे लाक्षणिक अपस्मार कहते हैं। यह आघात, हृदय, रक्तवाहिनी तथा मस्तिष्क रोग एवं विषमयता जैसे कारणों से होता है। कारण के ज्ञान होने के साथ-साथ इसमें अंगीय विकृति भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

२—अज्ञात कारणजन्य अपस्मार—इसका कोई स्पष्ट कारण नहीं दिखाई देता जिससे दौरे का सीधा सम्बन्ध प्रमाणित किया जा सके और न ही मस्तिष्क में कोई अंगीय विकृति ही दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि इसके निश्चित कारण का ज्ञान नहीं हो सका है फिर भी कतिपय आधुनिक विद्वानों का मत है कि चयापचय (Metabalism) के दोषों से शरीर में एक विशिष्ट प्रकार का विष,

जिसे कोलीन (Choline) कहते हैं; बनता है जिसका प्रभाव मस्तिष्क पर होने से रोग का दौरा होता और वह निःसंज्ञ होकर गिर पड़ता है।

लक्षणों की प्रबलता के अनुसार इसके दो रूप होते हैं—

(क) साधारण या लघु अपस्मार—अपस्मार की तीव्रता जब अल्प होती है तब इसको लघु अपस्मार कहते हैं। इस अवस्था में रोगी अत्यन्त अल्प समय के लिए चेतनाहीन होता है; आक्षेप प्रायः नहीं होते और रोगी प्रायः गिरता भी नहीं। इस रोग के दो प्रकार होते हैं—

१—साधारण प्रकार—रोगी वार्तालाप करते-२ चुप हो जाता है, प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाता, चेहरा सफेद हो जाता है, नेत्र स्थिर हो जाते हैं तथा पुतलियां फैल जाती हैं।

२—गम्भीर प्रकार—इस अवस्था में रोगी के मूर्च्छित हो जाने के परिणाम स्वरूप यदि वह हाथ में कुछ वस्तु लिए हो तब वह वस्तु छूटकर गिर जाती है, सिर एक पार्श्व में झुक जाता है अनजाने मूत्र त्याग हो जाता है।

(ख) उग्र या गुरु अपस्मार—लक्षणों की क्रमिकता के अनुसार इसकी निम्न अवस्थाएं होती हैं—

१. पूर्व रूप आक्षेप आरम्भ होने के एक दिन पूर्व रोगी को अस्वस्थता, आलस्य, शिरः शूल, भ्रम हो जाता है। इस अवस्था में रोगी के स्वभाव तथा चरित्र में परिवर्तन हो जाता है।

२. पूर्व-ग्रह—वेग प्रारम्भ होने के तत्काल पूर्व जो रूप होते हैं उन्हें Aura कहते हैं। आक्षेप प्रारम्भ होने के पूर्व रोगी को उसका आभास हो जाता है। यह अवस्था कुछ सेकण्ड ही रहती है। पूर्वग्रह के निम्न स्वरूप होते हैं—

(अ) चेष्टावह या मोटर पूर्वग्रह—शाखाओं की पेशियों में कम्प होता है।

(आ) संवेदनिक या सेन्सरी पूर्वग्रह—त्वचा में एक प्रकार की लहर का अनुभव होता है, एक झनझनाहट, घंटानाद, कर्णनाद, विशेष रङ्ग की ज्योति दिखलाई देना आदि लक्षण होते हैं।

(इ) मनोवैज्ञानिक पूर्वग्रह—प्रेत दिखलाई देना, भय प्रतीत होना आदि।

(ई) शारीरिक पूर्वग्रह—आमाशय में कष्ट, आदि लक्षण होते हैं।

३. चीत्कार—पूर्वग्रह के पश्चात रोगी चिल्लाकर [illegible] हो जाता है और पृथ्वी पर गिर पड़ता है।

४. निरन्तरितावस्था—उपरोक्त तृतीय अवस्था के तुरन्त बाद ही यह अवस्था उत्पन्न होती है। यह आधे मिनट तक रहती है। इस अवस्था में सारा [illegible] कड़ा हो जाता है, दांत बैठ जाते हैं, मुट्ठी बंध जाती है, श्वास रुकने लगती है, ग्रीवा की सिराओं में [illegible] होने लगता है। नाड़ी गति तीव्र हो जाती है, कुछ स्त्रियों में कभी-कभी नाड़ी की गति क्षीण भी हो जाती

५. सान्तरितावस्था (Clonic Stage)—निरन्तरितावस्था के बाद यह अवस्था उत्पन्न होती है। यह तीन मिनट पर्यन्त रहती है। इसमें रुक-रुक कर [illegible] आने लगते हैं, शाखायें क्रमशः आकुञ्चित और प्रसारित होने लगती हैं, नेत्र तथा मुख खुलते और बन्द होते हैं, पुतलियां फैल जाती हैं, प्रकाश-प्रतिक्षेप तथा [illegible] प्रतिक्षेप नष्ट हो जाते हैं। अन्त में श्वसन ध्वनि घर्घराहट युक्त हो जाती है। मुख से झाग के समान लार [illegible] है। मुख या जीभ में चोट लग जाने के कारण लार रक्त मिश्रित भी हो सकता है। रोगी अनजाने में मल त्याग देता है।

६. तन्द्रावस्था (Drowsiness)—इस अवस्था में रोगी शनैः-२ चैतन्य होने लगता है। रोगी को स्वाभाविक निद्रा आ जाती है और वह कुछ घंटों तक सोता रहता

अपस्मार के जिन रूपों का वर्णन ऊपर किया गया है उनके अतिरिक्त भी कई अन्य रूप होते हैं यथा जैक्सन का अपस्मार, मानस अपस्मार अपस्मारिक पेशी संकोच, सतत अपस्मार आदि। इनमें चिकित्सक की आपत्कालीनता की दृष्टि से सतत अपस्मार के विषय में जानकारी लेना जरूरी है। अतः नीचे उसका वर्णन किया जा रहा

सतत अपस्मार (Status Epilepticus)—

यह अपस्मार का घातक प्रकार है। इस अवस्था में एक के बाद दूसरा, फिर तीसरा इस प्रकार रोग के आक्रमण निरन्तर होते रहते हैं। इस अवस्था में सम

अवधि में रोगी चेतना हीन रहता है। इस अवस्था में अपस्मार का दौरा निरन्तर कई घंटों या कई दिवस पर्यन्त रहता है। तीव्र ज्वर अवस्था आक्षेप की थकावट के कारण रोगी की मृत्यु हो सकती है। पाश्चात्य विद्वानों तथा माधव ने भी इसे असाध्य माना है।

अपस्मार के रोगी का परीक्षण—

अपस्मार के रोगी को देखने के लिए जब तक डाक्टर पहुँचता है तब तक आक्षेप समाप्त हो चुके होते हैं। रोगी या तो अपस्मारोत्तर संन्यास की अवस्था में रहता है अथवा सिर दर्द से बेचैन और भ्रमयुक्त अवस्था में होता है। दौरा अज्ञात हेतुक अपस्मार का हो सकता है अथवा योषापस्मार (Hysteria) या एपोप्लेक्सी (Apoplexy) का हो सकता है। अपस्मार में पिछले दौरों का पूर्ववृत्त मिलेगा। सिर पर चोट के निशान तथा गर्दन में अकड़न देखें। पूरे तन्त्रिका तन्त्र की संक्षिप्त परीक्षा करें। रक्तदाब नापें। यदि स्वयं दौरे को नहीं देखा है तो ऐसे व्यक्ति से पूछ-ताछ करनी चाहिये जिसने देखा हो। पूरा विवरण सुन लेने पर पूछें कि गिरने से पूर्व रोगी ने कोई आवाज की? रोगी श्वास कैसे ले रहा था? दौरे के समय चेहरे का रंग कैसा था? क्या वह उस समय प्रश्नों का उत्तर देता था? दौरा कितनी देर रहा? यदि रोगी चैतन्य हो गया हो तो उससे पूछें क्या तुम दौरा आने पर गिर पड़ते हो? तुमको पहिले आभास हो जाता है? दौरे के समय अनजाने कभी मूत्रत्याग हुआ है?

रोगी का चेहरा, सिर, जीभ, हाथ-पैर आदि पर चोट के निशान ढूंढें। यदि रोगी को दौरे के समय देख रहे हों तो उसके मुंह में रूमाल मोड़कर रख दें फिर उसके आक्षेपों का क्रम देखें। आक्षेपों के बाद अङ्गों की शिथिलता, पुतली, कण्डराओं का प्रतिवर्त (Tendon reflex) तथा पादतल प्रतिवर्त (Planter reflex) देखें।

रोग के निदान हेतु विशेष अन्वेषण—मूत्र परीक्षा, चक्षुगोलकों की परीक्षा, इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राम, कपाल का एक्स-रे चित्र, रक्त की वाजरमैन की प्रतिक्रिया तथा प्रमस्तिष्क मेरुद्रव की परीक्षा करें। अपस्मार के पुराने रोगियों में सम्भव इनसेफेलोग्राफी (Lumber encephalography) तथा एन्जियोग्राफी (Angiography) भी करनी चाहिये।

निदान—

किसी प्रत्यक्षदर्शी के वर्णन से इसका निदान होता है। जीभ कटने का लक्षण, अनजाने मूत्रत्याग, घर्घराहट युक्त श्वसन, चोट का इतिहास आदि लक्षणों से इसका निदान हो जाता है। ठीक-ठीक निदान के लिये दूसरे दौरे की प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है। यदि तन्त्रिकातंत्र की परीक्षा करने पर किसी कारण का पता चल जाता है तो लाक्षणिक अपस्मार समझना चाहिये। हिस्टीरिया से इसका पार्थक्य करना चाहिये।

अपस्मार की साध्यासाध्यता—सन्निपातिक अपस्मार एवं क्षीण पुरुष को हुआ अपस्मार तथा पुराना अपस्मार ये तीनों असाध्य हैं। इसके अतिरिक्त जिस रोगी को बार-बार आक्षेप आते हों, जो अत्यन्त क्षीण हो, जिसकी भ्रुकुटियां ऊपर को चढ़ जाये एवं जिसकी आंखें भी विकृत हो जाये उसका अपस्मार भी असाध्य ही होता है।

अपस्मार की चिकित्सा—

अपस्मार की चिकित्सा के दो पक्ष हैं—वेगकालीन चिकित्सा एवं वेगान्तरकालीन चिकित्सा। नीचे इन दोनों का ही वर्णन किया जा रहा है—

वेगकालीन चिकित्सा—

अपस्मार के वेग के समय शीघ्र ही रोगी को स्वच्छ वायु में लिटाकर पंखा आदि करना चाहिये। उसकी गर्दन, सीने और कमर के बन्धनों को ढीला कर दे। सिर को कुछ ऊंचा रखे। रोगी का मुख खोलकर दांतों के बीच में रूमाल मोड़कर रख दे ताकि उसकी जीभ दांतों के बीच पड़कर कट न जाये। मुंह और आंखों पर शीतल जल के छींटे मारें। सिर पर बरफ की थैली रखें। फिर आवश्यकतानुसार मूर्छा को दूर करने के लिए मुग्धमुखार का नस्य अथवा भ० सं० में वर्णित प्रधमन नस्य अर्थात् पीपल, कौवाठोढी, कडुआ कूठ, सेन्धानमक और भारङ्गी इन सबको समान मात्रा में लेकर कपड़छन चूर्ण बनाकर एक नली के मुख में चूर्ण रखकर नासिका छिद्र में प्रवेश कर मुंह से फूंक देवे या श्वास कुठार रस का नस्य दे।

वेगान्तरकालीन चिकित्सा—

वेग के शान्त हो जाने के बाद रोगी की ठीक से परीक्षा करे। यह जानने का प्रयत्न करे कि उसके रोग का वास्तविक कारण क्या है। कारण का ज्ञान हो जाने पर तदनुसार चिकित्सा की उपयुक्त व्यवस्था करे।

अपस्मार का चिकित्सा सिद्धान्त—वातज अपस्मार मे बस्तिकर्म, पित्तज अपस्मार में विरेचन कर्म और कफज अपस्मार में वमन कर्म कराना चाहिये। जब रोगी सभी प्रकार से शुद्ध हो जाय तब उसे धीरज देकर अपस्मार को विनष्ट करने के लिये संशमनकारक योगों का प्रयोग करना चाहिये। अपस्मार रोगनाशार्थ कल्याण चूर्ण, भूत भैरव रस, चण्डभैरव रस, वातकुलान्तिक रस, पंचगव्यघृत कूष्मांडघृत आदि योगों से काम लेना चाहिये।

सामान्य चिकित्सा व्यवस्था—

१. योगराज २ माशा—२ माशा। अनुपान–त्रिफला चूर्ण ३ माशे, घी ६ माशे, शहद १ तोले, समय–६ बजे प्रातः और रात में सोते वक्त।

२. स्मृतिसागर १ रत्ती, चिन्तामणि चतुर्मुख १ रत्ती दोनों मिलाकर एक मात्रा वच चूर्ण ४ रत्ती और मधु के साथ ८ बजे दिन में।

३. सारस्वतारिष्ट ४ तोला–२ मात्रा, समभाग जल के साथ भोजन उपरान्त।

४. पंचगव्यघृत १ तोला–१ मात्रा। मिश्री गोदुग्ध के साथ २ बजे दिन में सेवन करे।

५. वातकुलान्तक १ रत्ती—१ मात्रा। शङ्खपुष्पी और ब्राह्मी रस ६ माशा और शहद के साथ सायं ६ बजे

अपस्मार की आधुनिक चिकित्सा—

औषधियों में फीनोबार्बिटोन १/२ ग्रेन दिन में २-३ बार, फेनीटोइन सोडियम ३/४ ग्रेन से १॥ ग्रेन दिन में २-३ बार अथवा दोनों का सम्मिलित प्रयोग करें।

सतत अपस्मार में पाईनाल सोडियम ३ ग्रेन की मात्रा में अन्तःशिरा दे। आवश्यकतानुसार पुनः दे सकते हैं या आक्षेप को कम करने के लिये ५ सी. सी. पैराल्डीहाइड मांसपेशी में प्रविष्ट करावें। आवश्यकता पड़ने पर ६-८ घण्टे के अन्तर पर इसे दुहरा भी सकते हैं। अथवा सतत अपस्मार के आक्रमण नियन्त्रण पाने केलिये डायजीपाम जिसका बाजारू नाम वेलियम है उसको १० मिग्रा. की मात्रा में सिरा मार्ग से दें। इसे सतत अपस्मार के आक्रमण पर नियन्त्रण पा लेने के पश्चात् बन्द कर देना चाहिये। रोगी के शरीर में एसीटोसिस न बढ़ने पाये इसलिये उसे खाने के लिये ग्लूकोज, दूध आदि इमका ट्यूब द्वारा देते रहना चाहिये। यदि आक्षेप काफी उग्र रूप का दिखाई दे और पैराल्डिहाइड आदि के प्रयोग से आक्षेप बन्द न हों तो क्लोरोफार्म सुंघाकर आक्षेप बन्द करने चाहिये। ज्वरघ्न औषधियों के प्रयोग से उच्च ज्वर को कम करने का भी उपाय करना चाहिये। आक्षेप बन्द हो जाने पर रोगी को फिनोबार्बीटोन १/२ ग्रेन २-३ बार, फेनिटोइन सोडियम ३/४ से १॥ ग्रेन दिन में २-३ बार अथवा दोनों का सम्मिलित प्रयोग कराते रहें।

अपस्मार से पीड़ित रोगी के लिये आवश्यक सावधानियां—इस रोग के रोगियों को घोड़ा-साईकिल आदि की सवारी नहीं करना चाहिये। तैरना, अग्नि के पास बैठना, मशीनरी का काम, पेड़ पर चढ़ना इत्यादि कार्य भी नहीं करना चाहिये क्योंकि दौरा हो जाने पर अज्ञानावस्था होने से गिर जाने के कारण प्राण तुरन्त निकल सकता है।

वात के कारण होता है।

अर्थः प्रकुपितो वायुरन्तर्पूर्वं हृदयमाश्रया।

नाड़ी प्रतिश्यद्हृदयाशिरः मज्जी च पीडयन् ॥

आक्षिपेत परिशोगात्रं धनुर्वच्चशस्य नामयेत्।

कृच्छ्राद्च्छ्वसितस्तस्य स्तब्धाक्षिमिलित इक्तवः॥

कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतन्त्रकः॥ मा.नि १५.

आचार्य वाग्भट ने इसके लक्षण निम्नांकित बताये हैं—स्व कारणों से कुपित वात के मन के अधिष्ठान हृदय में प्रवेश करने पर हृदय, शिर तथा कनपटियों में वेदना होती है। समस्त शरीर में आक्षेप होता है। शरीर को धनुष के समान झुका देता है। श्वास प्रश्वास में बड़ी कठिनाई होती है। आँखें कभी खुली और कभी अधखुली रहती हैं। रोगी बेहोशी की अवस्था में कबूतर के समान शब्द करता है।

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुस्थानो नाभि संश्रयः।

संदूष्य हृदयस्थं च मनो व्याकुलयेत्ततः॥

पीडयन् हृदयं प्राप्य शिरः शङ्खौ च पीडयन्।

आक्षिप्य चाखिलं देहं मोहयेच्च पुनः पुनः॥

स कृच्छ्रादुच्छ्वसेच्चापि स्तब्धे वीस्यम् तोबहिः।

स निद्रा लभते नीरं प्राप्य आशु प्रबुध्यते॥

असते; कम्पते भूयो निःसंज्ञ सोऽपतन्त्रकः।

—आतंकदर्पण टीकाकार (वात व्याधि निदाने)

नाभि जिसका स्थान है, वह अपान वायु स्वप्रकोपक कारणों से प्रकुपित होकर हृदय में स्थित मन को संदूषित कर व्याकुल कर देता है। साथ ही वायु हृदय, शिर और शंख प्रदेश में प्रविष्ट होकर उन्हें भी पीड़ित कर देता है। सर्वाङ्ग में प्रसर को प्राप्त कर यह वायु सम्पूर्ण शरीर में आक्षेप तथा मोह उत्पन्न कर देता है। यह दौरे रह रहकर आते हैं। वेगकाल में रुग्ण को उच्छ्वास में कठिनता होती है। स्वेद तथा शैत्य होता है। वह समय समय पर निद्राधीन होता है। उसकी संज्ञा लुप्त हो जाती है। बल प्राप्त कर पुनः संज्ञा लाभ करता है। रुग्ण निःसंज्ञ होकर त्रास अनुभव करता है, उसके अंगो में कम्पन होता है।

भेद—योषापस्मार को तीन निम्नांकित भेदों में विभक्त किया गया है—

(१) वात प्रधान अपतन्त्रक।

(२) पित्तानुबन्धी अपतन्त्रक।

(३) कफानुबन्धी योषापस्मार।

वातोल्वणेऽङ्गस्फुरणं शिरोमन्याकटि व्यथा।

धैर्यादि विप्लवो दैन्यं विषयेष्वनवस्थितिः॥

१. वात प्रधान योषापस्मार—वात प्रधान अपतंत्रक में अङ्गों में फड़कन, शिर, मन्या तथा कटि में शूल, धैर्य आदि का नाश, मन उदास होना एवं विषयों के ग्रहण में चित्त स्थिर न होना ये लक्षण हैं।

प्रलापो वक्त्रकटुता भ्रमोमूर्च्छाऽरुचिस्तृषा।

तस्मिन पित्तान्विते स्वेदः पीताङ्गः शीतकामिता॥

२. पित्तानुबन्धी हिस्टीरिया—पित्तानुबन्धी अपतन्त्रक में प्रलाप, असम्बद्ध एवं अति भाषण, मुख के रस की कटुता-तिक्तता, भ्रम, चक्कर, चेष्टा के बिना भी, मूर्च्छा, अरुचि, अतितृषा, स्वेद, त्वचादि पीत वर्ण होना, शीत वस्तुओं के स्पर्श एवं सेवन इच्छा होना, लक्षण है।

शिरोऽङ्ग गौरवं ग्लानिः शीतद्वद् मन्दवेदनः।

कफान्विते च सदनं शैत्यं च हृदय ग्रहः॥

कफानुबन्धी अपतन्त्रक—कफानुबन्धी अपतन्त्रक में सर्वाङ्ग में विशेषतया सिर में गौरव भारीपन, ग्लानि हर्ष का अभाव, शीत वस्तु के प्रति अप्रीति, शरीर में मन्द वेदना, अङ्गसाद, शैत्य शरीर का स्पर्श, शीत होना, ठंड लगना और हृदय प्रदेश पर जकड़ाहट आदि लक्षण हैं।

सापेक्ष निदान—

योषापस्मार	अपस्मार
१. अधिकतर स्त्रियों में होना है।	१. स्त्री एवं पुरुषों में समान रूप से पाया जाता है।
२. कुमारी अवस्था या युवावस्था में अधिकतर पाया जाता है।	२. इसकी कोई निश्चित आयु नहीं होती है।

योषापस्मार	अपस्मार
३. रोगी मूर्छित होकर संभलकर गिरता है कोई चोट नहीं आती।	३. इसमें संभलकर नहीं गिरता है एवं चोट भी आ सकती है।
४. यह कभी भी एकांत में नहीं आता बल्कि परिवार के सदस्य उपस्थित होने पर आता है।	४ यह एकांत में भी आ सकता है।
५. मूर्च्छावस्था में झाग कभी-कभी निकलते हैं एवं रक्त कभी नहीं आता।	५. इसमें मूर्च्छावस्था में हमेशा झाग निकलते हैं एवं रक्त भी आता है।
६. दौरे के समय रोगी को ज्ञान रहता है।	६. दौरे के समय रोगी को ज्ञान नहीं रहता है।
७. दौरा कुछ मिनटों से लेकर कई घंटों तक चलता है।	७. इसमें ५ मिनट से ज्यादा दौरा नहीं आता है।
८. मिथ्या औषधियों के प्रयोग से ठीक होता है।	८. मिथ्या औषधियां देने से कोई लाभ नहीं होता।
९. रोगी के शारीरिक लक्षण सामान्य होते हैं यथा नापकन, रक्तदाब, पुतलियों की स्थिति, मल-मूत्रादि।	९. इसमें परिवर्तन आ जाता है।
१०. रुग्णा की गति इतनी वेगवान होती है कि कभी-२ कई मनुष्यों को पकड़ना पड़ता है।	१०. आक्षेप में रोगी को जोर से पकड़ना पड़ता है एवं दौरे तक पकड़ा रखना पड़ता है।
११. चित्तभ्रम होता है, रुग्ण का ध्यान दूसरी ओर लगाया जा सकता है।	११. आक्षेप के बाद चित्तभ्रम असंगत व उसमें शीघ्र निरर्थक होता है।
१२. आक्षेप के समय रोगी की जीभ आदि नहीं कटती है।	१२. आक्षेप में रोगी की जीभ कट जाती है।
१३. रोगी का मल-मूत्र नहीं निकलता।	१३. रोगी का मल-मूत्र निकल जाता है।
१४. दृष्टि क्षेत्र में संकुचन होता है।	१४. कोई विकार नहीं।
१५. रोग शनैः शनैः प्रारम्भ होता है।	१५. रोग एकाएक प्रारम्भ हो जाता है।
१६. किसी प्रकार का विचार, क्रोधादि होने से दौरा आता है।	१६. दौरे का कोई विशेष कारण नहीं होता है।
१७. रोगी रोग की बढ़ी हुई दशा में ही चिल्लाता है।	१७. आक्षेप का प्रारम्भ एक विशेष चीख से होता है।
१८. अग्नि से जलने। जल में डूबने या यातायात में मोटर आदि से दुर्घटना होने की समस्या नहीं होती।	१८. रोगी के जलाशय में डूबने, अग्नि से जलने या मोटर आदि द्वारा दुर्घटना होने का भय हमेशा बना रहता है। इससे रोगी को बचाना चाहिए। ऐसे रोगियों के साथ रहना चाहिए।
१९. मस्तिष्क का विद्युत चुम्बकीय रेखाचित्र ई. ई. जी. सामान्य रहता है।	१९. इसमें विशेष प्रकार की (विद्युत चुम्बकीय रेखा चित्र में) रेखायें मौजूद रहती हैं।
२०. रोगी के मन की इच्छा पूर्ण होने पर तथा विवाह आदि पर यह रोग स्वतः ही दूर हो जाता है।	२०. इसमें ऐसा कुछ नहीं होता।
२१. रोगी में कुछ काल तक विभिन्न व्यक्तित्व विद्यमान हो सकता है।	२१. इसमें ऐसा नहीं है।

सामान्य चिकित्सा सिद्धांत—

योषापस्मार रोग में औषधि इतना फायदा नहीं करती है जितनी कि सामान्य चिकित्सा व्यवस्था। सर्व प्रथम यह देखना चाहिए कि रोगी के यह रोग किस कारण से यथा सम्भव उसको दूर कर देने से स्वतः ही योषापस्मार ठीक हो जाता है। अगर घरेलू लड़ाई झगड़े से ऐसा है तो उसे दूर करना चाहिये। रजावरोध से है तो रजावरोध दूर करने से यह रोग स्वतः ही ठीक हो जायेगा। रोगी से कठोरता का व्यवहार त्याग कर उससे अगर प्रेमपूर्वक व्यवहार करें तो यह रोग ठीक हो सकता है। इसकी

नवयुवतियों का रोग योषापस्मार (HYSTERIA)

काव्यभूषण वैद्य व्रजविहारीलाल मिश्र एम.ए. (द्वय), आयुर्वेद रत्न
प्रधान चिकित्सक—श्री मन्नू बाबा धर्मार्थ चिकित्सालय, पोस्ट--बिन्दकी जिला--फतेहपुर ।

यह रोग प्रायः नवयुवतियों को होता है। विवाहोपरान्त एक-दो प्रसव के बाद स्वतः ही ठीक हो जाता है। बड़ी आयु की स्त्रियों को इसके आक्षेप (दौरे) नहीं होते। छोटी आयु की युवतियों को गर्भाशय दोष, मानसिक क्लेश, चिन्ता, शोक, दुःख, प्रेम भग्नता, डिम्बाशय और जरायु रोगों के कारण यह हो जाता है। इसमें अपस्मार (मृगी) के समान दौरे पड़ते हैं। प्रायः नाड़ी दौर्बल्य भी इसका कारण होता है।

आक्षेप काल में रोगिणी का मुख रक्तिमायुक्त हो जाता है। कण्ठ में कोई वस्तु चढ़ती सी प्रतीत होती है और उदर में गोला सा उठता है।

रोग के प्रमुख लक्षण—

इस रोग की यह विशेषता है कि रोगिणी को आक्षेप (दौरा) आने का पूर्वाभास हो जाता है तभी वह सावधान हो, कपड़े कसकर पहन लेती है ताकि मूर्च्छाकाल में वस्त्र ढीले न हो जायें। मूर्च्छा के पूर्व रोगिणी को पेट से गले तक गोला चढ़ता सा मालूम पड़ता है। मूर्च्छित होने पर रोगिणी की मुठ्ठियां बंध जाती हैं और शरीर धनुष के समान टेढ़ा हो जाया करता है। इधर उधर हाथ पैर पटकती रहती है। श्वास लेने में आवाज होती है। रोगिणी कभी हँसती है तो कभी रोती है। कभी शान्त रहेगी तो कभी क्रोध करेगी। दौरा समाप्त होने के पश्चात बहुत अधिक मूत्र विसर्जन करती है।

इस रोग की यह विशेषता है कि मूर्च्छावस्था में भी रोगिणी का ज्ञान पूर्णतया लुप्त नहीं होता।

रोग की चिकित्सा—

औषधि चिकित्सा के पूर्व रोग के मूल कारणों को हटाने की चेष्टा करनी चाहिये यथा रोगिणी यदि कुमारी है तो शीघ्र उसके विवाह का प्रबन्ध करना चाहिये और यदि विवाहिता है तो उसे उसके पति का पूर्ण प्रेम मिलना चाहिये तथा उसकी वासना शान्ति का उपाय होना चाहिये। रोगिणी को प्रातः सायं भ्रमण तथा साधारण व्यायाम कराना चाहिये।

आक्षेप (दौरे) के समय कस्तूरी को मद्य में घुटवाकर योनि में रखायें। शरीर के कपड़े ढीले करा दें। मस्तक एवं मुंह पर ठण्डे जल का छींटा दें। कलाई, टखने एवं हथेलियों को रगड़वा दें। यदि दांती बंध गई हो तो चम्मच आदि से दांत खोलकर पानी डाले। जल पीते ही रोगिणी होश में आ जायेगी।

औषधि प्रयोग—स्नायुदौर्बल्य के कारण होने वाले योषापस्मार में महालक्ष्मी विलास रस, योगेन्द्र रस, सहस्रपुटी अभ्रक भस्म, बृहत्वात चिन्तामणि या वातकुलान्तक रस में से किसी एक रस (मात्रा १ रत्ती) पान के साथ प्रातः सायं देकर ऊपर से गर्म जल दें।

कब्जियत दूर करने के लिये आरोग्यवर्धिनी रात्रि में शयन के समय २ गोली गर्म जल से दें। भोजनोपरान्त अश्वगन्धारिष्ट एवं सारस्वतारिष्ट २-२ बड़े चम्मच समान जल मिलाकर दे।

अनुभूत प्रयोग—

सत्व गुडूची, अपामार्ग, वायविडङ्ग, शङ्खपुष्पी, दुधवच, हर्रे छोटी, कूठ, शतावर को समान भाग लेकर चूर्ण कर वस्त्र से छान रख ले। यह चूर्ण ६ ग्राम प्रातः, ६ ग्राम सायं पंचगव्य घृत के साथ अथवा गर्म दूध से देने से योषापस्मार, अपस्मार, उन्माद, अनिद्रा एवं मानसिक विकारों को शीघ्र अच्छा करता है। हमारे पिता स्व० अवध विहारी मिश्र शास्त्री, रस चक्रपाणि वातकुलान्तक रस के साथ उपर्युक्त चूर्ण का प्रयोग कराते थे और योषापस्मार में शतप्रतिशत शीघ्र लाभ प्राप्त करते थे।

पथ्य—फल, दूध, घी, हरे साग-सब्जी, हल्के भोजन, अनार, अमरूद आदि, शिर में ठण्डे तैलों का सेवन अच्छा है।

अपथ्य—गर्म मिर्च मसाला, रात्रि जागरण, तीक्ष्ण एवं अम्ल खटाई आदि का सेवन, क्रोध, शोक, चिन्ता।

अपस्मार

वैद्य मुरारीप्रसाद आर्य, प्रधान चिकित्सक--संत विनोबा भावे आयु० चिकि०, शेरवां (अदलहाट) मीरजापुर

विशेष—यह मस्तिष्क सम्बन्धी रोग है। इसको तीन भागों में बांट कर लिखा जा रहा है—

१. अपस्मार २. योषापस्मार ३. बालापस्मार

परिभाषा—जिस रोग में आंखों के सामने अंधेरा छा जाता हो, नेत्र विकृत हो जाते हों, हाथ-२ हाथ-पांव को पटकते हुए, नाक मुंह से झाग निकलते हुए, स्मृति का नाश कर देता है उसे अपस्मार कहते हैं।

स्त्रियों को अपस्मार रोग होता है परन्तु अधिकतर रजोकाल के समय होता है।

पूर्वरूप—हृदय में कम्पन, घबराहट, मानसिक शून्यता स्वेद-चिन्ता (सोचते रहना) ऊर्ध्वमूर्च्छा, मूर्च्छा-नींद न आना अपस्मार के पूर्वरूप हैं।

कारण—चिन्ता शोक मिथ्या आहार विहार इत्यादि कारणों से कुपित वातादि दोष मनोवाही स्रोतों में स्थित होकर स्मरण शक्ति का विनाश करके अपस्मार या मृगी रोग उत्पन्न कर देते हैं।

नाम—हिन्दी—मिरगी, संस्कृत—अपस्मार, अंग्रेजी—इपिलेप्सी (Epilepsy)।

भेद—यह चार प्रकार का होता है-१. वातज अपस्मार, २. पित्तज अपस्मार, ३. कफज अपस्मार, ४. सन्निपातिक अपस्मार।

पाश्चात्य चिकित्सकों के अनुसार दो भेद हैं—

१. लाक्षणिक मृगी—सिम्पटामटिक इपीलेप्सी।

२. अज्ञात हेतुक मृगी—इन्डियो पैथिक इपीलेप्सी।

भेदानुसार लक्षण—

१. वातज अपस्मार—वातजन्य अपस्मार में रोगी अधिक कांपता है, दांत लग जाते हैं, जोर-२ या धीरे-२ श्वास लेता है एवं वस्तुओं को भयानक लाल या काला देखता है।

२. पित्तज अपस्मार—पित्तज अपस्मार में रोगी के मुख से झाग निकलता है, आंखें एवं मुख पीला पड जाता है, सभी वस्तुओं का रंग लाल एवं पीला देखते हुए विशेष कर वसन्ती रङ्ग के समान दिखाई देता है। प्यास की अधिकता हो जाती है। रोगी को जहां तक नजर जाता है, अग्निमय मालूम होता है।

३ कफज अपस्मार—कफज अपस्मार में मुख से काफी फेन निकलता है, नेत्र एवं मुख श्वेत रङ्ग के हो जाते हैं। शरीर ठण्डा एवं भारी रहता है, आलस्य बना रहता है, सर्दी मालूम पड़ती है, सभी वस्तुयें सफेद दिखाई पड़ती हैं।

४. त्रिदोषज अपस्मार—उपरोक्त लक्षण सभी विद्यमान रहते हैं, तीनों दोषों से युक्त सन्निपातिक अपस्मार असाध्य होता है।

अपस्मार सम्बन्धी विशेष बातें—

१. अपस्मार स्त्रियों को भी होता है जो रजोदर्शन के समय ही विशेषकर दौरे आते हैं।

२. मानसिक आघात के कारण भी इसके दौड़े आने लगते हैं।

३. दौड़े आने के पहले रोगी आं आं गो गों आया आया गया गया मरे मरे का शब्द करता है।

४. दौड़े आने के समय की बातें तो रोगी को याद रखता है, परन्तु बेहोशी हो जाने पर या हो जाने के बाद

कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है। होश आ जाने के बाद रोगी रोता है या डरता है दुर्बलता बढ़ जाती है कभी कभी जीभ पर चोट लग जाती है।

५. अग्नि सन्ताप से या सूर्य के प्रकाश की गर्मी से दौरे आते देखे गये हैं।

६. रोगी को जब दौरा आने को होता है तो वह आवाज करता हुआ धड़ाम में हाथ-पैर पटकता हुआ जमीन में गिर जाता है। मुख से फेन निकलता है, भौंहें टेढ़ी हो जाती है। शरीर का वर्ण बदल जाता है, घाव लग जाते हैं।

७. रोगी का दांत खोलने का प्रयास कभी नहीं करना चाहिये वर्ना अपनी अंगुलीं कट सकती है।

८. रोगी का दौरा ५ से लेकर १० मिनट तक लगभग रहता है।

९. कभी कभी हृदय गति बन्द हो जाने से मौत भी हो जाती है या रक्त का संचालन कम हो जाने से पक्षाघात हो जाता है।

१०. अपस्मार के रोगी को सर्वत्र अग्नि से, जल से, ऊंचाई से बचाना चाहिये क्योंकि पता नहीं कब दौरा आ जायेगा। वर्ना खतरे से खाली नहीं है।

११. रोगी के साथ एक सहयोगी होना आवश्यक है। मृगी के रोगी को अकेले नहीं छोड़ना चाहिये।

१२. पुराना व दुर्बल रोगी का अपस्मार असाध्य होता है।

१३. बारम्बार वेग आना, अङ्गों में अधिक कम्पन, क्षीणता, भौंह का टेढ़ा हो जाना, आंखों का भयानक दिखाई देना, अपस्मार में ऐसे लक्षण हों तो असाध्य समझें।

१४. कुपित वातादि दोष बारह, पन्द्रह, तीस दिन के अन्दर ही अपस्मार के वेग पैदा करते हैं यानि दौरा आ जाता है, परन्तु याद रखना चाहिये कि वेग कभी भी आ सकते हैं।

१५. जिस प्रकार वर्षा ऋतु में वर्षा होने पर पृथ्वी पर पड़े हुए बहुत से बीज शरद ऋतु में आकर अंकुरित होते है। ठीक इसी प्रकार परमेश्वर की तरफ से कर्मफल मिलते हैं जो विभिन्न कष्टों में प्राप्त होते हैं।

१६. आक्षणिक अपस्मार—किसी भी प्रकार से मस्तिष्क में आघात लगने के कारण अथवा चोट लगने से या मस्तिष्क सम्बन्धी बीमारियों एवं शोक चिन्तादि के कारण रक्त नाड़ी मण्डल प्रदाह के कारण भयानक अपस्मार का रोग हो जाता है, किसी किसी को मादक द्रव्यों के दुष्परिणाम से भी अपस्मार रोग होता है। इसमें सभी लक्षण विद्यमान रहते हैं।

१. स्मरण शक्ति का ह्रास।

२. हाथ पैरों में जकड़ना या पटकना।

३. शरीर में भारीपन एवं बेहोशी।

४. मुख एवं नासिका से झाग निकलना आदि। यह अपस्मार साध्य होता है।

१७. अज्ञात हेतुक अपस्मार—अभी तक पूर्ण जानकारी वैज्ञानिकों को नहीं हो सकी है। इसका प्रमुख कारण मज्जवाहिनी रक्त नलिकाओं की गड़बड़ी से ही होती है। जिसका सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है। जो १५ वर्ष से २५ वर्ष के ऊपर के लोगों को हुआ करता है।

वंशज दोष के कारण अपस्मार रोग हो सकते हैं।

अपस्मार रोग की शास्त्रीय औषधि—

१. उन्माद भंजन रस	रससार संग्रह
२. उन्माद गज केशरी	रसराज सुन्दर
३. कृष्ण चतुर्मुख रस	भैषज्य रत्नावली
४. वात सूर्योदय रस	रसयोगसार
५. पंच लौह रसायन	योग रत्नाकर
६. चतुर्मुख रस	सिद्ध योग संग्रह
७. चिन्तामणि चतुर्मुख रस	भैषज्य रत्नावली
८. प्रचण्ड भैरव रस (अपस्मार)	रस रत्नाकर
९. वात कुलान्तक रस	भैषज्य रत्नावली
१०. स्मृतिसागर रस	योग रत्नाकर
११. अमर सुन्दरी वटी	बृ० निघण्टु रत्नाकर
१२. इन्द्र ब्रह्म वटी (अपस्मार)	रसेन्द्रसार संग्रह
१३. सारस्वत घृत	बृ० निघण्टु रत्नाकर
१४. सारस्वतारिष्ट	भैषज्य रत्नावली
१५. सीरप ब्राह्मी	[illegible]

★ वैद्य मुरारी प्रसाद आर्य ★

एलोपैथिक मतानुसार—

१. फेनोवार्बिटोन—यह औषधि अधिक दिन तक यहां तक कि दो वर्षों तक सेवन करना पड़ती है। यदि दौरा न आवे तो बन्द कर देना चाहिए। अगर पुनः दौरे का आक्रमण शुरू हो जाए तो औषधि आरम्भ कर देनी चाहिये। यह औषधि निम्नांकित नामों द्वारा बाजारों में उपलब्ध है—

१. गार्डिनाल टेबलेट १०-६०-१०० मि. ग्रा. एम.बी.
२. गार्डिनाल सोडियम टे. ,, ,, ,, ,, ,,
३. गार्डिनाल सोडियम इन्जेक्शन २०० ,, ,,
४. ल्युमिनाल टेबलेट बेयर १५,३०,१०० मि. ग्रा.
५. फेनो बी कम्पलेक्स—माण्ट मेटर—इसमें १६ मि.ग्रा. फेनोवार्बिटोन व विटामिन बी कम्पलेक्स रहता है।

२. डेक्स ऐम्फी टैमिन—यह औषधि स्मिथ क्लिने एण्ड फ्रेन्च ५ मिग्रा. टैबलेट के रूप में बनाया है जिसका नाम डेक्सेड्रीन टेबलेट रक्खा है। यही कम्पनी अपस्मार के लिये स्पिनामील नाम से अपस्मार के लिये दूसरा टेबलेट बनाया है जिसमें डेक्स ऐम्फी टैमिन सल्फेट (डेक्सेड्रीन) ५ मिग्रा., एमीलोबार्बिटोन ३२ मि.ग्रा.

३. टेग्रीटाल टेबलेट (गेयगी)—यह टेबलेट अपस्मार के लिये बनाया गया है जिसकी मात्रा क्रमशः १ से २ टेबलेट देते हुए ६ टिकि० प्रतिदिन दिया जा सकता है।

चिकित्सा सम्बन्धी अपस्मार के लिये आवश्यक निर्देश—

१. रोगी के दौरे आते ही सभी कपड़े ढीले कर देना चाहिये, मुंह पर जल के छींटे दें।

२. रोगी के नासिका के पास चर्म के जूते सुंघाना चाहिए। अगर होश आ जाय तो अच्छी बात है वर्ना नौसादर चुना मिला या अमोनिया कार्ब सुंघाना चाहिये।

३. अग्नि, जल, पेड़, ऊंचाई से बचाना चाहिये।

४. होश आते ही दूध घृत मिलाकर उसमें मिश्री डालकर पिलाना चाहिए।

५. रोगी को कब्ज नहीं होने देना चाहिये।

आयुर्वेदिक मिश्रण चिकित्सा—

(क) वात कुलान्तक रस १ ग्रा., स्मृतिसागर रस १ ग्रा., इन्दु ब्रह्म वटी २ ग्रा., मोती पिष्टी सर्वोत्तम नं. १ एक ग्रा., मात्रा २१। सुबह-शाम-दोपहर सारस्वत घृत ५ ग्रा., मिश्री ५ ग्रा. में मिलाकर चटावें।

(ख) १० बजे, ४ बजे सीरप ब्राह्मी ३० मिलि० जल में घोलकर पिलाना चाहिए।

(ग) भोजन के बाद दोनों समय—अश्वगन्धारिष्ट १० मिलि०, सारस्वतारिष्ट १५ मिलि०, द्राक्षारिष्ट १० मिलि०, एक मात्रा। जल मिलाकर देना चाहिये।

(घ) रात सोते समय, हिमसागर तैल हल्के हाथों द्वारा मालिश सिर पर करनी चाहिये।

एलोपैथिक औषधि—

(क) सुबह-शाम—गार्डिनाल टेबलेट ३० मिग्रा. १, विविडाक्स टेबलेट १।

(ख) १० बजे-४ बजे—डेक्सेड्रीन टेबलेट १ सेंडोज कं. का कैकालमीट सीरप २-२ चम्मच जल मिलाकर दें।

(ग) भोजन के बाद दोनों समय अण्डू फार्मास्युटिकल्स का ब्रेन्टो दो-दो चम्मच जल मिलाकर दें।

(घ) अति दुर्बलता हो तो न्यूरोविझान का इन्जेक्शन ४०, एक दिन नागा देकर लगावें।

नोट—उपरोक्त औषधि आयुर्वेदिक अथवा एलोपैथिक ६ माह तक सेवन करने के बाद २० दिन नागा देकर पुनः चालू करें।

— पृष्ठ ११४ का शेषांश —

चाहिए। यह रक्त में शर्करा की मात्रा के कम हुए अंश को ठीक करता है। हृदयस्थल पर अभ्यङ्ग से भी लाभ न हो तो १ से २ सी.सी. १:१०००० घोल का Adrenaline की सूचिका का प्रयोग सीधे हृदयपेशी पर करें। इन क्रियाओं के दौरान बेबी को पोंछकर सूखा करके ढंक कर रखें।

संन्यास, मूर्च्छा—रक्त परिभ्रमण में अनियमितता जन्मकाल से सम्भव है। कपालास्थि में रक्तस्राव या अन्य कहीं रक्तस्राव, गर्भावस्था काल में रक्तस्राव, प्रसवकाल में रक्तस्राव या अन्य रक्त की विकृतियां, पाण्डु, जन्मजात हृदयरोग आदि बहुत से इसके कारण हैं। उचित निदान एवं चिकित्सा ही उपयुक्त है। सामान्य क्रम में ऑक्सीजन, रक्त अम्लीयता को ठीक करना एवं आक्षेप की अवस्था में Hyponitremia उचित मात्रा में 3% Sodium chloride solution शिरा से दें।

अपस्मार-चिकित्सा

डा० वेदप्रकाश शर्मा त्रिवेदी संस्कृतशिरोमणि (आयु०) ए.,एम.बी.एस. (लखनऊ) एच० पी. ए. (जामनगर)
भू.पू. का. परियोजना अधि.-औषधस्तर निश्चितिकरण अनुसंधान अधिकारी (जी.ए.वी.एम. अहमदाबाद)
वर्तमान कार्यवाहक अनुसंधान अधिकारी (आयुर्वेद) अध्यक्ष-मानसिक व्याधि अनुसंधान विभाग,
शल्यानुसंधान विभाग, भारतीय काय चिकित्सा संस्थान पटियाला (अन्तर्गत केन्द्रीय आयुर्वेद
एवं सिद्धि पद्धति की) अनुसंधान परिषद नई दिल्ली
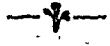
निदान—(१) कुलज-गोपापस्मार; उन्माद, अर्धावभेदक, मदात्यय, (२) मानसिक-उत्तेजना, चिन्ता, भय, क्रोध, श्रम, निद्रा, शोक अनशन, व्यवाय हीनता।

(३) शारीरिक—(क) अभिघात, चिन्ता, शोक, अर्धभाव, अतिव्यसन।

(ख) अत्यध्ययन, कुलज विवाह, ज्वर, मन्दाग्नि, अनियमित मासिक।

(४) कतिपय व्याधियाँ—ज्वर, एक्लेम्पशिया, यूरेमिया लेड्पायजीनस, मदात्यय, मस्तिष्कावरण अर्बुद, मस्तिष्क में स्फीत कृमि के अण्डे, मस्तिष्कीय फिरङ्ग, मस्तिष्क शोथ, मस्तिष्कावरण शोथ आदि।

(५) यकृत विकार, थायराइड, पिट्यूटरी विकार, आन्त्रशूल, आमाशय शूल, अग्निमांद्य, मूत्र विषमयता, अस्थिक्षय, रक्तक्षारीयता।

सम्प्राप्ति—त्रिदोष दृष्टया सम्प्राप्ति दर्शक तालिका

अवस्था भेद	परिगमन
प्रथमावस्था	मिथ्याहार-विहार
द्वितीयावस्था	उदीर्णश्लेष्मा
तृतीयावस्था	स्थानभ्रष्ट श्लेष्मा
चतुर्थावस्था	विमार्गगमन
पंचमावस्था	आमसंग
षष्टमावस्था	वातादि दोषावृतहृदय (मस्तिष्क)
सप्तमावस्था	मनोवह स्रोतोसं
अष्टमावस्था	स्मृति विनाश
नवमावस्था	अपस्मार

योग रत्नाकर, माधवनिदान के अनुसार सम्प्राप्ति

अवस्थाभेद	परिगमन
प्रथमावस्था	निदानजन्य कुपित दोष
द्वितीयावस्था	हृदयमस्तिष्क के स्रोतस प्रभावित
तृतीयावस्था	स्मृति विनाश
चतुर्थावस्था	अपस्मार

अष्टाङ्गहृदय, चरक के मतानुसार सम्प्राप्ति—

अवस्था	परिगमन
प्रथमावस्था	निदानजन्य कुपित दोष
द्वितीयावस्था	हृदय (मस्तिष्क) के स्रोतस् प्रभावित
तृतीयावस्था	स्मृतिनाश
चतुर्थावस्था	बुद्धिनाश
पंचमावस्था	धैर्यनाश
षष्ठमावस्था	भय
अष्टमावस्था	चित्त में आघात
नवमावस्था	मानसिक व शारीरिक दोष प्रकोप
दशमावस्था	हृदय तथा संज्ञावह-स्रोतस् व्याधि
एकादशावस्था	अपस्मार

अपस्मार के पूर्वरूप—

(१) हृदय में कम्पन (२) शून्यता की प्रतीति (३) स्वेद (४) चिन्ता (५) मन तथा इन्द्रियों की क्रिया हानि (६) अनिद्रा।

अपस्मार के रूप (लक्षण)

अपस्मार

वातिक भेद	पैत्तिक भेद	श्लेष्मक भेद	सन्निपातिक भेद
१—पूर्व में वस्तुयें रूक्ष, अरुण कृष्णवर्ण की दीखती हैं	१—पूर्व में वस्तु लाल पीली दीखती है	१—मुख नेत्र श्वेत	तीनों दोषों के संयुक्त लक्षण
२—मूर्च्छा	२—शरीर मुख नेत्र पीले होते हैं	२—मुख का वर्ण श्वेत होता है	
३—शरीर स्पन्दन	३—मुख से पीले फेन निकलते हैं	३—शीत स्पर्श	
४—दांत किटकिटाने लगते हैं	४—तृषाधिक्य	४—रोमांचित गुरु शरीर	
५—मुख से फेना देना	५—अत्युष्णता	५—सभी वस्तुयें श्वेत दीखती हैं	
६—श्वासगति तीव्र	६—सभी वस्तु जलती दीखती हैं	६—अधिक काल तक वेग	

अपस्मार का सापेक्ष निदान—

अपस्मार	योषापस्मार
आक्रमण बड़े वेग से होता है।	आक्रमण शनैः-२ होता है।
रोगी संभल नहीं सकता	रोगी सावधानीसे लेटता है
सोते समय भी होता है।	सोते समय कभी नहीं होता है।
वेगाक्रमण एकान्त या समूह की अपेक्षा नहीं रखता है।	एकान्तमें कभी नहीं होता सहयोगीके रहते होता है।
नेत्र, ग्रीवा वक्र होती है।	नेत्र, ग्रीवा वक्र नहीं होतीहै
अचानक गिरने से चोट सम्भव है।	सावधानीसे गिरनेके कारण चोट लगना संभव नहीं
कदाचित जिह्वा कट जाती है।	जिह्वा कटने का प्रश्न ही नहीं उठता है।
अनैच्छिक मल मूत्र त्याग होता है।	अनैच्छिक मल मूत्र विसर्जन नहीं होता है।
कण्डरा प्रतिक्षेप व अन्य प्रतिक्रियायें लुप्त होती हैं।	प्रतिक्षेप/प्रतिक्रियायें लुप्त नहीं होती हैं।
आक्रमण प्रायः निश्चित समय के बाद होते हैं।	ऐसी नियमितता नहीं रहती
गर्भाशय से सम्बद्ध नहीं मूर्छा निद्रा में बदल जाती है।	गर्भाशय से सम्बद्ध शीघ्र होश आजाता है।

अपस्मार	उन्माद
मस्तिष्कगत प्रत्यक्ष विकार लक्षित नहीं होता है।	मस्तिष्क विकृति लक्षित होती है।
बुद्धि विभ्रम नहीं होता है।	बुद्धि विभ्रम होता है।
असम्बद्धवाक्य नहीं होता है।	असम्बद्ध वाक्य होता है।
आहार का स्वाद ज्ञान होता है।	आहार का स्वाद ज्ञान नहीं होता है।
अचानक मूर्च्छा होती है।	मूर्च्छा नहीं होती है।
आवस्थिक बुद्धि नाश होती है	बुद्धि विभ्रम होता है।
वेग आवस्थिक होता है	वेग आवस्थिक नहीं होता
वेग किंचित्कालावस्थायी	वेग स्थायी होता है

अपस्मार	मूर्छा
आक्रमण अति शीघ्र प्रारम्भ	आक्रमण शनैः-२ होता है।
इसका पूर्व इतिहास होता है।	पूर्व इतिहास अनिवार्य
आंखें फिरी हुई होती हैं।	आंखें फिरी हुई नहीं
मुख से फेन निकलता है।	मुख से फेन नहीं निकलता
जिह्वा या गात्र में आघात के चिह्न मिलते हैं।	आघात के चिह्न प्रायः नहीं मिलते हैं।
शरीर उष्ण रहेगा	शरीर शीत रहेगा।
इसमें पूर्वग्रह(Aura)होता है।	पूर्वग्रह नहीं होता है।
कोई निश्चित कारण नहीं	कारण स्पष्ट दिखाई देताहै।
हृल्लास या आध्मान नहीं	हृल्लास या आध्मान
अङ्गों की गति होती है।	अंगों की गति नहीं

अपस्मारवेग काल—१२ दिन, १५ दिन, १ माह या अन्य किसी निश्चित समय के बाद या पूर्व भी संचितदोष प्रकुपित होते हैं। उस समय अपस्मार रोग का वेग होगा।

साध्यासाध्यत्व—सान्निपातिक एवं दुर्बल रोगियों तथा पुराने सभी अपस्मार असाध्य हैं जिसको पुन:-२ आक्षेप आते हों अत्यन्त क्षीण हो भृकुटियां ऊपर चढ़ गई हों नेत्र विकृत हों वह भी असाध्य है।

चिकित्सानुसंधानजन्य परिणाम—

नाम औषधि—ब्राह्मीघृत, मात्रा—१० ग्रा.।

अनुपान/सहपान—दूध के साथ दो बार।

१००% लाभ	७५% लाभ	५०% लाभ	२५% लाभ	अलाभ	पंचत्व	मध्यावधि गमन	योग
१४	१४	६	४८	×	×	×	८१

उपद्रव—किसी भी आतुर को उक्त औषधि सेवनोपरान्त किसी भी प्रकार का उपद्रव लक्षित नहीं हुआ है। क्षुद्रापस्मार में अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ है।

नवजात शिशुओं में आपात अवस्थायें

डा० देवेन्द्रनाथ मिश्र एम० डी० (आयु०)

डा० देवेन्द्रनाथ मिश्र 'बालरोग विशेषज्ञ' तथा अखिल भारतीय आयुर्वेद बालरोग विशेषज्ञ संघ के महामंत्री हैं एवं प्रसूतितन्त्र तथा कौमारभृत्य के अधिकारिक विद्वान हैं। आपने प्रस्तुत लेख में प्रसव कक्ष में होने वाली नवजात शिशुओं की आपातकालीन अवस्थाओं पर बिल्कुल प्रायोगिक प्रकाश डाला है तथा चिकित्सक अपने प्रत्युत्पन्न मतित्व से बिना किसी औषधि के सहारे सामान्य उपचारों द्वारा ही सफलता प्राप्त कर सकता है। लेख पठनीय एवं मननीय है।

—गिरिधारीलाल मिश्र

ज्यों ही शिशु माता के गर्भ से बाहर आता है, त्यों ही उसमें कई एक परिवर्तन होते हैं जिसमें प्रथम श्वसन क्रिया का प्रारम्भ है। गर्भस्थ शिशु में यह क्रिया अपरा द्वारा होती है। प्रसवोपरान्त यह क्रिया शिशु को स्वयं ही करनी पड़ती है। श्वसन क्रिया प्रारम्भ होने हेतु फुफ्फुस के विस्फारण के लिये रोना अत्यावश्यक है। इसके लिये भी बाहरी उत्तेजनायें आवश्यक हैं। जिसके लिये आचार्यों ने निम्न क्रियायें कही हैं—

१. कर्ण के पास तीव्र स्वर करना
२. शीत एवं उष्णोदक से परिषेक
३. सैंधवसर्पि का चटाना (वमनार्थ)
४. कृष्ण कपालिका सूप से हवा करना

यह समस्त उपचार मात्र बाह्य उत्तेजनायें हैं जिससे गर्भ में चेतनता आये, वह रोना प्रारंभ करे एवं श्वसन क्रिया प्रारंभ हो सके।

१—श्वसन गति का प्रारंभ न होना या कष्टप्रद होना

श्वसन क्रम के उपद्रवों का संकलन नीचे देने का प्रयास कर रहे हैं। यह प्रायः नवजात में ही होते हैं। संपूर्ण उपद्रव दो भागों में बांट सकते हैं। प्रथम वे जो मस्तिष्क में स्थित श्वसन क्रिया केन्द्र के क्रियाशील न होने से सम्बद्ध हैं। दूसरे वे जो फुफ्फुस से संबद्ध हैं। दोनों ही अवस्थाओं का सामान्य लक्षण नीलिमा है। प्रसव कक्ष में इस समस्या का प्रायः प्रमुख कारण श्वसन मार्गावरोध या श्वसन क्रिया को प्रारंभ कराने हेतु उचित कार्य न किये गये हों, ही होता है।

वर्ग	लक्षण	व्याधि या फल
१. मस्तिष्क स्थित श्वसन क्रिया केन्द्र० की अक्रियाशीलता	श्वसन न होना धीमा, अनियन्त्रित हो जाने जैसा श्वसन	औषधि प्रभावकी मूर्च्छा (Narcosis) प्रसव पूर्व या मध्य ओक्सीजन की कमी, मस्तिष्क पर आघात या रक्तस्राव होना या मस्तिष्क की कोई जन्मजात व्याधि।
२. फुफ्फुस स्थित कारण	शीघ्र श्वसन गति बढ़ती हुई श्वसनगति Chest Lag संकोच—पसलियों के मध्य —पसलियों के कुछ मध्य —वक्षास्थि Chin tug Expiratory grant पीठ पर झाग	Primary atelectesis Congestive Pulmonary Failure अज्ञात कारण से श्वसनक्रम कष्ट उल्वक का पीय होना उत्फुल्लिका डायाफ्रामेटिक हर्निया फुफ्फुस ग्रन्थि फुफ्फस कोष विस्फार (Emphysema) वातोरस (Pneumothorax)

यदि श्वसन आरंभ कराने के उचित प्रबन्ध किये जा चुके हों तो वक्ष का अच्छा परीक्षण करना चाहिये। क्योंकि सम्भावना फुफ्फुसान्तर्गत ही रहती है।

कभी कभी शिशु मुख से १-२ बार श्वास लेकर रुक जाता है। यह वस्तुतः ओष्ठ नीलिमा के कारण श्वास नहीं ले पाता और फुफ्फुस में वायु प्रवेश-निकास नहीं करा पाता। ऐसे में प्रायः घ्राणेन्द्रिय की एक व्याधि नाक के एक या दोनों रन्ध्र किसी झिल्ली या उपास्थि या अस्थि के द्वारा बन्द रहते हैं। इस अवस्था में थोड़ी भी देरी मृत्यु को बुलावा देती है। इसमें बच्चे का मुख स्वच्छ करके कुछ ऐसी व्यवस्था कर दें जिससे मुख से श्वसन लेता रहे। २-६ सप्ताह में जब शिशु मुख से श्वसन एवं भोजन कर्म करने लगे तो शल्य कर्म सम्भव है।

इसके अतिरिक्त श्वसन मार्ग में ऊपर कहीं भी अवरोध हो सकता है। शिशु का मुख खोलकर पूरा मुख अन्दर तक स्वच्छ करें। इससे तालु पर उंगली आदि लगने पर प्रतिक्रिया से छींक या खांसी आकर अवरोध साफ हो सकता है तथा घ्राणेन्द्रिय अवरोध नीचे के जबड़े की अस्थि (हनु अस्थि) की वृद्धि-ह्रास का पता चल जाता है। मुख से गले तक यन्त्र डालकर किसी कृत्रिम अवरोध को हटा सकते हैं या अन्य अवस्थाओं में यथा गलशुण्डिका, श्वसन नलिका आदि के किसी अनुपयुक्त अवस्था में नाक से मुख में होते हुये श्वसननलिका तक नलिका डालकर श्वसन की व्यवस्था कर सकते हैं।

हनु अस्थि का त्रुटिपूर्ण विकास एवं जिह्वा का पीछे की ओर हटा होना भी घ्राणेन्द्रिय विकारवत लक्षण देता है। यह भी मुख परीक्षण से स्पष्ट होने पर जिह्वा को बाहर खींचकर तुरन्त श्वसन प्रारम्भ कराके उपर्युक्त व्यवस्था कर सकते हैं। नाव की आकृति का उदर उदर-मध्यस्था पेशी की वृद्धि का संकेत देते हैं। इसमें वक्षाकृति में विकृति, हृदय की धड़कन का स्थान परिवर्तन तथा बाद में वातोरस हो जाने की अति सम्भावना होती है।

२—श्वसन गति सामान्य न होना

प्रारम्भिक श्वसन का स्थापित न होना—इसका निदान केन्द्र मस्तिष्क में होता है तथा अकाल प्रसव भी एक कारण है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के परिणाम भी इसे उत्पन्न करते हैं। अहिफेन आदि शान्तकर तथा निद्राकर औषधियां प्रसव पूर्व ही देने पर या शल्यकर्म के दौरान देर तक निःसंज्ञक द्रव्य देने पर नवजात शिशु नीलिमायुक्त पैदा होता है। धीरे रोता है तथा श्वसन गति धीमी होती है। यह प्रभाव मूर्च्छा शब्द से जाना जाता है और उचित मात्रा में उचित काल पर उचित

वेदनाहर निःसंज्ञक द्रव्यों के प्रयोग से इस उपद्रव से बच सकते हैं।

चिकित्सा के दृष्टिकोण से पैर के तलवे पर थपथपाना, नाक से रबड़ कैथेटर डालना आदि उत्तेजना पैदा करने वाली क्रियायें प्रतिक्रिया से श्वसन गति तीव्र कर सकती है तथा उपरोक्त औषधियों के उपद्रवस्वरूप अवस्था में उनके विपरीत द्रव्य देने चाहिये। ओक्सीजन का प्रयोग, कृत्रिम श्वसन विधियों का प्रयोग हितकर है।

प्रसव पूर्व या प्रसवकाल में श्वासावरोध—कारण कुछ भी हो परन्तु उचित प्राणप्रत्यागमन प्रयत्न, कृत्रिम श्वसन, हृदयस्थल का अभ्यङ्ग, रक्त अम्लीयता को दूर करना (इसके लिये ३ से ४ सी.सी. प्रति किलोग्राम शिशु भार से ७५% का सोडाबाई कार्ब विलयन तथा इसके २ भाग के बराबर ५% मिलाकर नाभिनाल शिरा से देते हैं) शरीर के तापक्रम को स्थिर रखना ही प्रमुख चिकित्सा है।

इसके अतिरिक्त केन्द्रीय मस्तिष्क के कारण हुए उपद्रवों के कुछ अन्य भी कारण हैं। विस्तारभय से यहां विवेचन नहीं दे रहे हैं।

१—केन्द्रीय मस्तिष्क में जन्मजात विकृति

२—कपाल पर आघात तथा कपाल के अन्दर रक्तस्राव

प्राण प्रत्यागमन—इसकी आवश्यकता कुछ अवस्था विशेष में अवश्य पड़ती है। यथा—अकाल प्रसव, अपरा विकृति, गर्भिणी विषमयता, उच्च रक्तचाप, प्रसवकाल के बाद भी प्रसव न होना, प्रसवपूर्व रक्तचाप, रक्तग्रुप विकार, गर्भ में शिशु की अनुचित ढङ्ग से उपस्थिति, शल्यकर्म द्वारा प्रसव, यमल गर्भ, गर्भस्थ शिशु के प्रसव पूर्व ही नाभिनाल प्रसव आदि।

यह सब कारण नवजात शिशु के प्रसव के समय किसी आकस्मिक उपद्रव के हेतु हो सकते हैं। गर्भस्थ शिशु में अति सक्रियता, हृदयगति का बढ़ जाना एवं मल का त्याग हो जाना इसके संकेत हैं।

शिशु के जन्म के तुरन्त बाद नाभिनाल काटने के उपरान्त बालक को ट्रे में रखते समय ध्यान रहे कि शिर वाला भाग थोड़ा नीचे रहे। मुख, नाक, मुखगुहा, गला आदि साफ करें। यदि शिशु श्वसन प्रारम्भ न करे तो निम्न तकनीकों से निर्णय लेते हैं।

अपगार स्कोर (Apgar score)

निरीक्षण	०	१	२
वर्ण	पूर्ण नीला या श्वेत	शाखाओं में नीलिमा	गुलाबी
नाड़ीगति	०	१००/मिनट से कम	१००/मिनट से अधिक
मांसपेशी स्पर्श	शववत ढीला	कुछ कड़ापन	शाखाओं में पूर्ण क्रियाशीलता
गति	०	कुछ गति (Grimace)	चिल्लाना, हाथ पैर चलाना
श्वसन	०	धीमा, अनियमित	चिल्लाना, नियमित श्वसन

यदि यह स्कोर ७ से १० के मध्य है तो किसी भी सहायता की आवश्यकता नहीं है। यदि ४ से ६ के मध्य है तो नाक, गला, मुख की ठीक से पुनः सफाई, ओक्सीजन देना, पैर के तलवे आदि पर थपथपाना चाहिये एवं मां को यदि निद्राकारक औषधि दी हो तो उनका एन्टीडोट दें। यदि स्कोर ० से ३ के मध्य हों तो अति ध्यान से व्यवस्था करें।

१. हृदयगति १०० से अधिक/मिनट, पर श्वसन शून्य—तो ऊपर कही गयी विधि अपनायें। गले में रबर ट्यूब डालकर ओक्सीजन दें (Intubation)।

२. हृदयगति १००/मिनट से कम एवं श्वसन शून्य—उपरोक्त समस्त विधियों एवं दवाब के अन्दर ओक्सीजन देना चाहिये।

३. हृदयगति एवं श्वसन शून्य—Intubation करके दवाब के द्वारा ओक्सीजन दीजिए। मुख से मुख को दबाकर कृत्रिम श्वसन देना, रक्त की अम्लीयता को ऊपर कही विधि से दूर करना चाहिए। शिशु को 10% Dextrose solution बराबर १२ घण्टे के लिये देना

—शेषांश पृष्ठ ३०८ पर देखें।

वृद्धि रोग चिकित्सा

पं० आर० बी० त्रिवेदी विद्या वाचस्पति

नाम भेद स्पष्टीकरण—वृद्धि शब्द का अर्थ बढ़ने से है जो प्रायः अण्डकोष वृद्धि या अन्त्रपुच्छ वृद्धि का द्योतक है। लेकिन किसी किसी शास्त्रकार ने अण्डकोष वृद्धि को ब्रध्न भी बताया जिसका अभ्रजन वाघी वद् या गांठ जो राग या तल पेट में या वंक्षण व नितम्ब सन्धि में कड़ी गांठ के रूप में असह्य वेदना वाली होती है जो पककर फूटती है, वतलाया है। इस ब्रध्न या वाघी से यहां हमारा अभिप्राय कदापि नहीं। केवल अण्डकोष वृद्धि से ही है।

वृद्धि के प्रकार—यह वृद्धि सात प्रकार की मानी गई है यथा—वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मेदज, मूत्र और आन्त्रज हैं।

कारण—मुख्य कारण वात है जो वृद्धि की वृद्धि करता है।

लक्षण—वातज—वायु से पूर्ण गुब्बारे की भांति प्रतीत होना तथा अकारण ही पीड़ा होना।

पित्तज—दाह उष्णता, पाक से युक्त एवं लाल चर्म वाला होता है।

कफज—भारी, कण्डुयुक्त, कठिन तथा अल्प पीड़ा वाला होता है।

रक्तज—काले फफोलों से युक्त और पित्तज लक्षण युक्त होता है।

मेदज—कफ के लक्षण मिलने पर कोमल होता है।

मूत्रज—जल भरे मसक के समान लक्षित होता है।

आन्त्रज—अन्त्रकुच्छ वायु प्रकोप से अण्डकोष में चला जाता है।

नोट—अन्त्र यदि अण्डकोष में जाकर मुड़ जाय तो असाध्य होता है। इसीको हर्निया आंत उतरना कहते हैं। इन वृद्धियों में प्रायः वातज, मूत्रज तथा आंत्रज देखने को मिलती है।

वृद्धि की चिकित्सा—

वातज—एरण्ड तैल १ से २ तोले दुग्ध उष्ण के साथ दें जिससे विरेचन हो वात का नाश हो।

लहसुन लगभग ६ माशे से १ तोले तक दूध के साथ उबालकर दें। इससे किसी को उल्टी भी हो जाती है।

शुद्ध गूगल ३-३ ग्राम प्रातः सायं गोमूत्र से दें। अति लाभकारी है। एरण्ड तैल या नारायण तैल की वस्ति दें

बल व वात शोषण हेतु रससिंदूर वङ्ग भस्म, शुद्ध कुचीलु का प्रयोग घृत के साथ करावें।

मूत्रज व आन्त्रज वृद्धि शल्य कर्मीय है फिर भी प्रारम्भ में सेवन तथा औषधि चिकित्सा लाभकारी होती है।

यदि अण्डकोष वृद्धि के साथ शूल भी है तो गोधूम चूर्ण तथा २ रत्ती अफीम व गेरू मिलाकर बकरी के दूध के साथ गर्म करके लेप करदें व एरण्ड पत्र लगाकर लंगोट बांधे।

वृद्धि वाधिका वटी प्रातःसायं गोमूत्र से सेवन करना अति हितकर है। वातारि रस, एरण्ड मूल क्वाथ से भी लाभप्रद है।

बिल्वादि चूर्ण—बेल, कैथ, अरलू, चित्रक, छोटी तथा बड़ी कटेरी, कालीमिर्च, करंज, सहजनामूलत्वक, सौंठ, पीपल, भिलावा, पीपलामूल, भव्य, पंचलवण, यव-क्षार, अजमोद सभी वस्तु को समभाग लें तथा वस्त्रपूत।

—शेषांश पृष्ठ ३१७ पर देखें।

जमौगा (INFANTILE CONVULSONS)

वैद्य मोहर सिंह आर्य आयु० वृह०, मिश्री, जिला भिवानी (हरियाणा)

—**—
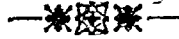
जमौगा बालकों की एक वात प्रधान व्याधि है। इसको साधारण भाषा में कमेड़ा कहते हैं। अरबी में तशन्नुज अत्फाल कहते हैं। अंग्रेजी में इन्फेन्टाइल कन्वल्शन्स कहते हैं। आयुर्वेद वाङमय में आक्षेपक (सुश्रुत) आक्षेपक (चरक) कहते हैं।

इस रोग में शरीर में टांगों अथवा बाहुओं में झटके आते हैं। मूर्ख लोग इसको भूत प्रेत समझते हैं। गण्डे तावीज और झाड़ फूंक से चिकित्सा करते कराते हैं। यह रोग प्रायः छोटी आयु के बालकों को हुआ करता है, वैसे किसी भी आयु में आक्षेप आ सकते हैं।

कारण—सद्यः उत्पन्नशिशु में प्रसवकालीन कठिनाई से उत्पन्न होता है।

(१) प्रथम तीन मास की आयु तक—१. जन्म के समय मस्तिष्क में आघात लगना, २. मस्तिष्क में जल संचय (Hydrocephalas) होना, ३. अर्दित, ४. शीत लगना।

(२) ६ से १८ मास की आयु पर्यन्त—१. मलावरोध या अतिसार, २. अस्थिशोष, ३. अपतानिका, ४. दांत निकलना, ५. आन्त्र में कृमि, ६. तीव्र उपसर्ग जैसे—श्वसनक ज्वर, मस्तिष्कावरण शोथ, मस्तिष्क शोथ, कुक्कुर कास, मसूरिका, तालुमूलग्रंथि शोथ, बहुमज्जकीय शोथ, विषम ज्वर, ७. जीर्ण अतिसार, ८. भयभीत हो जाना, ९ शीत लग जाना, १०. भीग जाना, ११. मूत्राशय में अश्मरी, १२. दौर्बल्य, १३. अपस्मार, १४. श्वास में रुकावट, १५. तीव्र ज्वर, १६. विस्फोटक ज्वर, १७. केंचुए, १८. उदरशूल, १९. आध्मान, २०. विबन्ध, २१. मूत्रविषमता आदि।

विशेष—अनेक बालकों को तीव्र ज्वर की अवस्था में आक्षेप आ जाते हैं किन्तु इसके पश्चात् कभी आक्षेप नहीं आते, किसी-२ बालक को साधारण कारण से दौरे पड़ जाते हैं। बार-बार कमेड़े आने से छोटे बच्चे मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु बड़े बच्चे बहुत कम मृत्यु के शिकार बनते हैं। इस रोग के कारण बच्चे भेंगे अवश्य बन जाते हैं। किसी-२ बालक को अर्दित वा पक्षाघात भी हो जाता है। फलतः चलने फिरने में असमर्थ हो जाते हैं। किसी-किसी बालक की नेत्र ज्योति नष्ट हो जाती है। किसी की श्रवण शक्ति दुर्बल हो जाती है, फलतः ऊंचा सुनाई देता है। किसी-२ बालक को स्मरण शक्ति तथा बुद्धि में विघ्न पड़ जाता है।

जो बालक बार-२ इस रोग से आक्रान्त होते हैं, उनको विशेषतः पाचन विकार तथा मलबन्ध से बचाना चाहिए। बालक क्षीरपायी हो तो दूध पिलाने वाली माता अथवा धाय को तैल तथा घृत में तली हुई वस्तुयें न दें। मलावरोध तथा वातकारक आहार न दें। अम्ल उष्ण रूक्ष पदार्थ न दें। ब्रह्मचर्य का पालन करावें।

यदि बालक क्षीरान्नपायी हो तो उसको सुपाच्य भोजन दें। मलावरोध न रहने दें पाचन क्रिया का विशेष ध्यान रखें। बालक को सदैव आल्हादित रखें। स्मरण रहे—बालक को भयभीत (डराना) धमकाना तथा मारना पीटना नहीं चाहिए। क्योंकि भय के कारण भी आक्षेप आ जाते हैं।

लक्षण—आक्षेप में बालक हाथ-पांव ग्रीवा आदि को पटकता है। रोगी के हाथ-पैर ऐंठने लगते हैं। आंखों की पुतलियां समान नहीं रहतीं, इनमें भेंगापन सा उत्पन्न हो जाता है। नेत्र गोलकों को इधर-उधर फिराने लगता है। मुट्ठी भींचता है, अंगूठों को बार-२ हथेली की ओर ले जाता है। ग्रीवा अकड़ कर पीछे की ओर मुड़ जाती है। बालक हाथ-पांव और सिर को जोर-२ से इधर-उधर मारने लगता है। हाथ-पांव ऐंठने लगते हैं। बालक का मुख मण्डल का वर्ण पहले लाल फिर नीला हो जाता है। होंठ नीले हो जाते हैं। मुट्ठियां बन्द हो

जाती हैं, अंगूठा ऐंठ कर अंगुलियों के नीचे चला जाता है। पांव का अंगूठा तलवे की ओर मुड़ जाता है। यह दशा १-२ मिनट तक रहने के पश्चात शांत हो जाता है। फिर यही दशा हो जाती है। इसी प्रकार बार-बार दौरा पड़ता है।

शरीर की सम्पूर्ण या अधिकांश पेशियों में अकस्मात तथा प्रबल सिकुड़न होती है, उसको आक्षेप कहते हैं।

विशेष लक्षण—१. हाथ-पैरों का ऐंठना, टेढा होना, २. दांती लगना, ३. मुठ्ठी बन्द करना, ४. आंखें फाड़-२ कर देखना, ५. आंखों की पुतलियां फैलना, ६. मूर्छा।

आक्षेप के बाद बालक सुस्त हो जाता है, कई बार पक्षवध होजाता है किंतु वह अंगघात कुछ दिनों में स्वयं ठीक हो जाता है।

चिकित्सा सूत्र—१. बालक को उष्ण वस्त्र ओढाकर रखें, २. उष्ण स्नान करावें, ३. गले छाती तथा उदर के वस्त्र ढीले कर दें, ४. चेहरे पर शीतल जल के छींटे मारें, ५. रोगी के पास गुलगपाड़ा न होने दें, ६. बालक के सिर को थोड़ा ऊंचा रखें, ७. निदान परिवर्जन करें, ८. रोगयुक्त अंग को गर्म तैल के मर्दन से सीधा करते रहें।

चिकित्सा—सर्व प्रथम बालक को गुदवर्ती से विरेक करायें। मलबन्ध न होने दें। माता का आहार सुपाच्य हो। माता ब्रह्मचर्य का पालन करे।

मलावरोध को दूर करने के लिये—उशारारेवन्द २२५ मि.ग्रा. से २५० मि.ग्रा. तक वयानुसार माता के दूध में मिलाकर पिलावें अथवा स्नेह और मधु समभाग मिला ६ से १२ ग्राम तक थोड़े दूध में मिलाकर पिलावें।

अपचन को दूर करने के लिये फुलाया हुआ सुहागा २२५ मि.ग्रा. मधु या माता के दूध में मिलाकर दिन में दो बार पिलावें। उदर पर नाभि के चारों ओर—एरण्ड बीज मज्जा तथा चूहे की लेंड़ी समभाग लेकर निम्बू स्वरस या चियातरोई (घोषा) के पत्तों के रस में या क्वाथ में पीसकर गरम कर लेप करें अथवा हींग पानी में घिसकर गरम कर पेट पर लगावें।

बालक के आक्षेप का दौरा शमन करने के लिये—सुहागा का फूला २५० मि.ग्रा. माता के दूध के साथ या शहद के साथ देने से लाभ होता है। कोई भी औषधि दें एक समय सुहागा अवश्य देते रहें।

आक्षेप के समय नवसादर ३ ग्रा. तथा चूना १२ ग्रा. मिलाकर थोड़े से पानी में डाल हिलाकर रोगी को सुंघायें मूत्राशय में मूत्र रुका हो तो सलाई से निकाल दें। बस्ती द्वारा या हलका विरेचन देकर उदर को साफ कर दें। इसके लिए देशी साबुन १२ ग्रा. मिला बत्ती करें।

दौरा समाप्त हो जाने के पश्चात्—हींग, अकरकरा, जावित्री, कुष्ठ २-३ ग्रा. जुन्दबेदस्तर, कालीमिर्च १॥-१॥ ग्राम लें, कूट पीस वस्त्रपूत चूर्ण बनालें। फिर यथावश्यक मधु मिला मर्दन कर चने के समान गोलियां बना लें। मात्रा—१ से ३ गोली। अनुपान—जल। प्रातः शाम काल। मलावरोध न होने दें, विशेष ध्यान रखें।

खमीरा गावजुवां अम्बरी ऊदसलीब वाला १-१ ग्रा., अर्क गावजुवा में मिलाकर प्रातः सायं काल पिलाना विशेष हितकर है।

ज्वरावस्था में कमेड़ा आता हो तो अपवकंचुकी रस सेवन करावें। कजादुग्ध में वस्त्र की २-४ तह कर भिगो कर बार-बार मस्तिष्क पर रखें।

पृष्ठ ३१५ का शेषांश

चूर्ण कर ६-६ माशे जल या गोमूत्र से प्रातःसायं दें।

लेप—लजालू व गीध की विष्ट समभाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर वृद्धि पर लेप तथा उस पर एरण्ड पत्र बांधना लाभकारी होगा।

पथ्यापथ्य—

गेहूं, जौ, अरहर, मसूर, सहजना, परवल, गूलर, करेला, लहसुन, अद्रक, उष्णजल, बकरा, हरिण, खरगोश का मांस तथा शराब भी लाभप्रद है। अन्त्रवृद्धि वाली पेटी पहन लें।

अजीर्ण, मलावरोधक, गरिष्ठ भोजन व अन्त्रवृद्धि वालों हेतु मैथुन व व्यायाम अहितकर है। शीतल व वातवर्द्धक पदार्थ न लें।

—विद्यावाचस्पति पं. आर. बी. त्रिवेदी वैद्याचार्य
श्री ऋषि आरोग्य सेवाश्रम, जासराना (अलीगढ़)

योग चिकित्सा पद्धति के चमत्कारिक प्रयोग

योगाचार्य विष्णु कुमार आर्य

योग क्रियाओं के दैनिक अभ्यास करने से मनुष्य का शरीर निरोग व कान्तिवान हो जाता है। आसन व प्राणायाम के अभ्यास से हृदय एवं मस्तिष्क में तनाव कम हो जाता है। वही प्राणों को सबल बनाकर मनुष्य संयमी व अनुशासित कर मनको भी नियन्त्रित रखता है। प्राणायाम के दैनिक अभ्यास से मनुष्य मानसिक शक्ति को बढ़ाता है व दीर्घ आयु प्राप्त करता है। व ध्यान के अभ्यास द्वारा अपने अन्तिम लक्ष्य समाधि को प्राप्त कर आत्मा परमात्मा से मेल करता है व मोक्ष का परम पद प्राप्त करता है।

आसन प्राणायाम के अभ्यास से मनुष्य स्वभाव भी बदला जा सकता है। आज यहां देखो विश्व में तनाव बढ़ा है। मानसिक तनाव के कारण लोग दिशाहीन हैं। यह भी नहीं मालूम क्या करना है क्या नहीं करना है। इसीलिए मानसिक तनाव के कारण लोग गोली चलाते हैं, चाकू चलाते हैं, चाकू मारते, ट्रेनों, बसों में तोड़-फोड़, लूटपाट मचाते हैं। यह सब मानसिक तनाव का कारण है। तनाव के कारण ही मधुमेह हाईब्लडप्रेसर, अस्थमा हार्टअटैक, लकवा आदि बीमारियां होती हैं। यदि मानसिक तनाव से दूर होना है शारीरिक रोगों से मुक्त होना है, कलह व अशान्ति से दूर रहना है तो आप अपने जीवन को प्रतिदिन योग अभ्यास में लगायें रखे। आप भी योग करें एवं अपने पुत्र पुत्रियों व देवियों को भी योग सिखावें। सिर्फ ३० मिनिट कुछ आसन, ध्यान, प्राणायाम करें ईश्वर आपको शारीरिक सुख, मानसिक सुख, आध्यात्मिक लाभ देगा।

योग भविष्य में विश्व की योग संस्कृति बनेगी व विश्व को दिशा निर्देशित करेगा।

उच्च रक्तचाप व हाई ब्लड प्रेशर—

कारण—मानसिक चिन्ता, तनाव, अनियमित भोजन, अनिद्रा।

लक्षण—घबड़ाहट होना, दिल धड़कना, सिर दर्द होना, हाथ-पैरों में जलन होना, पसीना आना, नाड़ी की गति बढ़ना आदि।

उपचार—जब उक्त रक्तचाप बढ़ने लगे तब शवासन में तुरन्त लेटे। अपने संपूर्ण शरीर को एकदम ढीला छोड़े शरीर से भी मन से भी। किसी प्रकार का तनाव न हो तब शरीर पूर्ण ढीला हो जावे तब अपनी श्वांस भी ढीली
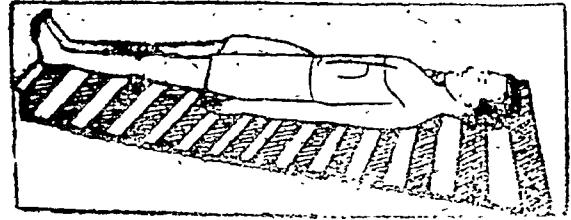
शवासन

छोड़े शरीर व मन दोनों से अपने मन को श्वांस पर ले जावे। मन की दृष्टि से अपनी श्वास को देखे जो श्वास बाहर जाती है व अन्दर आती है। श्वास के साथ उल्टी गिनती मन में कहे २०० से लेकर। एक बार गिने यदि भूले तो दोबारा गिनती मन में गिने। मन को अपनी श्वांस पर लगावे। श्वासन में ही दूसरी क्रिया प्राणायाम भी करे।

भ्रामरी प्राणायाम—

विधि—श्वांस को नाक से अन्दर खींचे थोड़ी देर रोके

व गुन गुना कर (भौंरे के समान) निकाले। क्रम जैसे–५ तक गिनती में श्वास खींचे व १० तक रोके रहे २० में गुनगुना कर छोड़े। इसी प्रकार क्रमबद्ध २० बार करे। व १० बार बांई करवट से १० दांई करवट से करे पुनः सीधे लेटकर १० बार करे रक्तचाप तुरन्त कम होगा।

निम्न रक्तचाप-लो ब्लड प्रेशर—

कारण व लक्षण—मानसिक तनाव, चिन्ता, अनियमित जीवन, व्यायाम, आसन आदि न करना।

जब लो ब्लड प्रेशर होता है। तब शरीर एक दम कमजोर होने लगता है हाथ पैर शून्य होने लगता है, हृदय दुर्बल एवं नाड़ी मन्द होना, गला सूखना, हाथ पैर ऐंठना।

उपचार—जिस समय लो ब्लड प्रेसर का आभास होने लगे तुरन्त पद्मासन में बैठे या वज्रासन में बैठें एवं शरीर सीधा रखें। नासिका के दांये स्वर से श्वास खींचे व बांये से छोड़े। पुनः बांये से श्वास खींचे दांये से पूरा छोड़े। यह क्रिया १० बार करें।

दूसरी विधि—दोनों से पूरा श्वांस खींचे व दोनों स्वरों से श्वास छोड़े। इसी क्रम में ५ बार करें।

तीसरी विधि—आसन योग, मुद्रा, सुप्त वज्रासन सर्वाङ्गासन, भुजंगासन भी आराम से करें। सिर सीना को नीचे की तरफ रखे पैर ऊपर करे और बैठें। जब हृदय की तरफ रक्त वायू के प्रेसर से कम होने से कम हो जाता है। तब हृदय को संपूर्ण शरीर में रक्त भेजने में अधिक शक्ति लगानी पड़ती है। इसलिए वायु की गति कम होने से लो ब्लेड प्रेसर एवं हाई ब्लडप्रेसर वायु की गति अधिक होने से होता है। हाई ब्लड प्रेसर होने में रक्त हृदय की तरफ नियमित मात्रा से अधिक आता है और इससे ब्रेन हेमरेज का भय रहता है और लो ब्लड प्रेसर में लकवा की भी संभावना रहती है।

सिर दर्द-सर्दी जुकाम, साइनूसाईटिस—

कारण–सर्द गरम भोजन करना, नींद न आना, पेट में खराबी रहना अधिक शीत युक्त भोजन करना।

लक्षण—नाक से पानी बहना, सिर दर्द रहना, नाक में खुजली, खुशबू न आना, नाक के अन्दर पस, मवाद पड़ जाना।

उपचार आसन—योग मुद्रा, नौकासन, सर्वाङ्गासन, भुजंगासन, शवासन करना तथा जलनेती व सूत्रनेती करना। घृतनेती भी कर सकते हैं।

नेतीक्रिया—हल्का गुनगुना गरम पानी लेकर पीतल या मिट्टी या तांबे का लोटा (नेतीकर सकने लायक नली-दार बनवालें) लेकर पानी भरें एवं नाक का जो स्वर पहले चल रहा हो उसी से नाक में पानी डाले दूसरे स्वर से पानी निकाले। पुनः इसी प्रकार करे। एक लोटा दाये स्वर से एक-एक लोटा बांये स्वर से पानी डाले। सिर दर्द दूर हो जावेगा व बाद में भ्रामरी प्राणायाम १० बार करें।

साईटिका—जब कमर में कभी चोट लगे व वजन उठाने से कमर में दर्द हो या स्कूटर, सायकिल, आदि पर चलते हैं तो कमर में झटके लगने से कमर में दर्द होता है कमर के दर्द के साथ ही नितम्ब से जांघ से लेकर पैर के पंजे तक एक नस ग्रन्थी चमकती है व असहनीय दर्द होता है। दर्द का कारण रीढ़ के किसी भी गुरिया का अपने स्थान से अलग होना, अलग होने से गुरिया के बीच में मांस जमना और अन्य ग्रन्थि का वेकार होना।

उपचार—कमर में या पैर में दर्द प्रारम्भ हो उसी समय ३ आसन करे। १. मकरासन २. भुजंगासन ३. शलभासन–आसन आराम से करे और प्रत्येक आसन में शक्तिनुसार रुके तत्काल आराम होगा।

वर्जित–आगे न झुके, वजन न उठावें, निवाड़ या रस्सी के पलंग पर न सोवे, जमीन पर या लकड़ी के तख्त पर सोवे। सीधे बैठें। आसन किसी योग्य से सीखें। ★

—०✤०—

श्री मुरारीप्रसाद आर्य

कारण—बच्चों के पाचन शक्ति की गड़बड़ी, बीमार पशुओं अथवा भैंस का दूध पिलाने से (जिसके बच्चे मर गये हों और आक्सीटोसिन के इन्जेक्शन लगाने के बाद दूध दुहा जाता हो; कृमि विकार से या गर्भावस्था के समय मां का मिट्टी खपरैल खाने से या पुरुष सहवास करने से या धाय अथवा मां के अशुद्ध आहार विहार करने से या ठोस कच्ची वस्तु खाने से जैसे जोड़री, भुट्टा; खीरा, ककरी आदि या बरसाती जल के सेवन से बालापस्मार होता है।

इसका प्रारम्भ पहले पहल विशेषकर वर्षात् ही है, इस रोग का प्रमुख कारण कृमि विकार हो सकता है।

लक्षण—जब यह रोग होने को होता है तो पहले हरे-पीले दस्त बच्चा शुरू कर देता है। पेशाब जो करता है सफेद मटमैला करता है। कभी कभी पेशाब जम जाता है। ऐसी स्थिति में उसके मन के विपरीत कार्य कर देने से बच्चा हाथ-पैर पटकते हुए रोना शुरू कर देता है तथा नेत्र की पुतलियों को ऐंठते हुए बेहोश हो जाता है, यह क्रिया कम से कम २ मिनट रहती है। पुनः १२ से २४ घण्टे तक अस्वस्थ बालक पुनः धीरे-२ स्वस्थ हो जाता है लेकिन कमजोरी बनी रहती है।

अपनी आत्मकहानी—

मेरा इकलौता सुपुत्र उमापति जिसकी जन्मतिथि १४-२-५६ शनिवार है (जिसकी मां का नाम स्वर्गीय लालमनी देवी है) को मुझे २१-४-७८ शनिवार को इस जगत में अपने कर्मफल भोगने के लिये त्याग गयी। ३ वर्ष की अवस्था में जोड़री के भुट्ठे भुना २ या ३ दाना निगल गया कि पांच मिनट बाद २-३ दस्त हुए। उसके बाद रोते-रोते हाथ-पैर ऐंठते हुए बेहोश हो गया पूरा एक रात २ बजे दिन को बेहोश हुए दूसरे दिन होश में आया। यही क्रिया लगातार कु... तक चली, जब भी उसके मन के विपरीत कोई कार्य हो जाता था तो वही दशा सामने आ जाती थी। याद रक्खें, कब्ज उस दिन हो जाती थी हम परेशान थे। परमेश्वर की कृपा से निम्नांकित औषधि काफी दिनों तक प्रयोग करने से आशातीत लाभ हुए। अब पूर्ण स्वस्थ है।

वृ० वातचिन्तामणि रस आधा ग्रा., कुमार कल्याण रस एक ग्रा., लक्ष्मीविलास रस, प्रवाल पिष्टी १-१ ग्रा., ३१ मात्रा। इलायची छोटी के चूर्ण व मधु के साथ दिन में तीन बार दिया गया।

नोट—इसे मैं वातज एवं कफज रोग मानता हूं।

बालापस्मार की शास्त्रीय औषधि—

१. कुमार कल्याण रस	भैषज्य रत्नावली
२. मुक्तादि वटी	सिद्धयोग संग्रह
३. त्रैलोक्य चिन्तामणि	रस चण्डांशु
४. वृ० वात चिन्तामणि रस	भैषज्य रत्नावली
५. लक्ष्मीनारायण रस	,, ,,
६. अरविन्दासव	,, ,,

मिश्रित आयुर्वेदिक प्रयोग—

(क) कुमार कल्याण रस एक ग्रा., त्रैलोक्यचिन्तामणि रस आधा ग्रा., लक्ष्मीनारायण रस १ ग्रा. प्रवाल पिष्टी २ ग्रा., इक्कीस मात्रा। छोटी इलायची के चूर्ण व मधु के साथ सुबह दुपहर शाम दें।

(ख) १० बजे, ४ बजे—हिमालया ड्रग की सिप ५२ ड्राप १०-१० बूंद जल मिलाकर पान करावें।

—शेषांश पृष्ठ ३३० पर देखें।
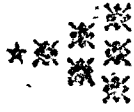
आत्ययिक संक्रामक रोग

वैद्य राकेशकुमार शर्मा, १६/२२ हरीनगर, अलीगढ़ ।

—:०★०:—

प्लेग (PLAGUE)
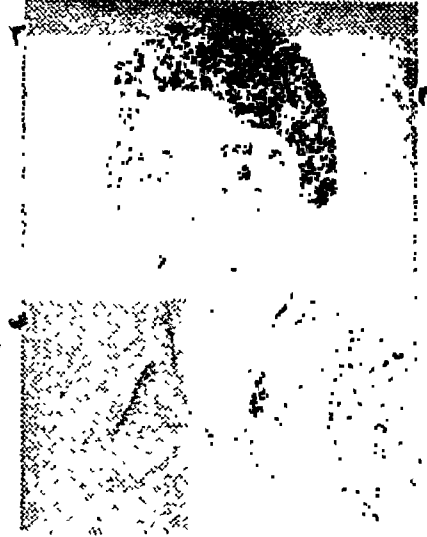
आजकल इस रोग में अग्निरोहिणी, ग्रन्थिज विसर्प, विद्रधि मूषकविषोपद्रव, ग्रन्थिक ज्वर या सन्निपात बतलाये जाते हैं। यह एक छूआछूत का रोग है। जोकि चूहों के ऊपर एक पिस्सू के कारण होता है। इसमें फोडे नहीं निकलते अपितु दोनों रागों में गिल्टी निकलती हैं। कभी कभी बिना गिल्टी निकले भी प्लेग होता है। जब कीड़े खून में मिलते हैं तो शरीर में कष्ट आलस्य, बेचैनी तथा बुखार (ज्वर) १०३° से १०६° तक होजाता है। गिल्टी निकल जाने पर ज्वर कम हो १०५ डिग्री तक या उससे कम हो जाता है लेकिन कम्प, प्रलाप, स्वेद, दाह, मोह आदि होजाते हैं। कभी-कभी वमन भी होती है। तीन चार दिन में गिल्टी पक जाती है और कभी-कभी बैठ भी जाती है।

घातक अवस्था में ज्वर ११० डिग्री तक पहुंच जाता है। यदि गिल्टी कान, या कांख के पास निकलती है तो मार डालती है। ऐसी अवस्था में सम्पूर्ण शरीर नीला पड़ जाता है। इस रोग का कारण बैसिलस पैटिस्स है।

चिकित्सा—

कौडिया लोबान, श्वेत चन्दन, सेमल के पत्ते और जड़, नागरमोथा, गन्धा बिरोजा, वच, मिलावे गुग्गुल, लहसन, नीम और करञ्ज के पत्ते, हरड़, बहेड़ा, आंवला, वायविडङ्ग, गुड़, कोख के फूल, दारू हल्दी, कूठ सफेद सरसों, राल और खस इन वस्तुओं की धूप देनी आवश्यक है।

ज्वर के चढ़ते ही 'महामृत्युञ्जय' ५-५ रत्ती तुलसी के क्वाथ में ३-३ घण्टे में देना चाहिये। पसीना आकर जब ज्वर उतर जाय तब इसे बन्द करदो। ज्वर की

अधिकता में 'सन्निपात भैरव' या मल्ल सिन्दूर देना आवश्यक है।

चाटने के लिये—तुलसी का रस, अद्रक का रस, भांगरे का रस तीनों समभाग लेकर उसमें उतना ही मधु मिलाकर हेमगर्भ गुटिका २॥ रत्ती, सोना वर्क १॥ रत्ती व ५ रत्ती शङ्ख भस्म मिलाकर चटावें।

गांठ पर—चूना २ भाग, पापड़ खार १॥ भाग, सज्जी खार १॥ भाग, सिन्दूर ६ भाग, थूहर की राख ६ भाग इन सबको गुग्गुल के साथ घोटकर मरहम के समान बनाकर लगावें। जब ग्रन्थि फूटकर खून बहने लगे तब हल्दी १॥ तोला, सफेद कत्था १॥ तोला, संगजराहत १ तोला, इनको कपड़छन कर लेप करें।

विशूचिका [हैजा (CHOLERA)]

यह रोग कोमा बैसीलस के कारण होता है जिसे विब्रियो भी कहते हैं। इसमें रोगी को उल्टी तथा

सफेद रक्त के पतले दस्त काफी मात्रा में होते हैं जिनके कारण शरीर में काफी मात्रा में जल निकल जाता है और रक्त गाढ़ा होकर धमनियों में जमने लगता है, वृक्क निष्क्रिय होजाते हैं जिसके कारण मूत्र निर्माण क्रिया बहुत अल्प या बन्द हो जाती है। यही कारण है कि इसमें मूत्राघात हो जाता है तापक्रम ९३-९४° तक हो जाता है। लेकिन गुदा में तापक्रम १०° अधिक मिलता है, नाड़ी अत्यन्त मन्द हो जाती है। कभी कभी नाड़ी बहुत कठिनता से प्रतीत की जाती है। जिस रोगी के दांत, होठ एवं नाखून काले हो गये हों, संज्ञा (होश) घट गई हो, आवाज बैठ गई हो, सन्धि बन्धन ढीले पड़ गये हों तो उस रोगी की घातक अवस्था समझें।
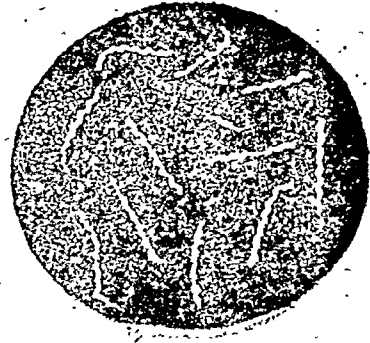
चिकित्सा—

विधि—लहसुन, जीरा, सेंधानमक, शुद्ध गन्धक, हींग, त्रिकुटा इनका बारीक चूर्ण बनाकर नीबू के रस मे गोली बनाकर सेवन करे तो विषूचिका निश्चय ही ही शान्त हो जाता है। यह योग लशुनादि के नाम से प्रसिद्ध है।

इस रोग में कर्पूरादि वटी, विषूची विध्वंस रस, कर्पूरासव तथा अहिफेनासव का प्रयोग भी अत्यन्त प्रशंसनीय है।

एक दूसरा योग इस प्रकार है—

मीथा, भांग, पीपल, कपूर, हींग तीनों १-१ भाग, इन सबके चूर्ण को मिश्रित कर कर्पूरोदक से मर्दन कर २ रत्ती की गोली बनावें और उग्र विषूचिका में भी प्रयोग करें तो अवश्य ही सफलता मिलती है।

उपदंश [फिरङ्ग—SYPHILIS]

इस रोग का प्रसार क्लोरिडूडियम पैलिडा नामक जीवाणु के कारण होता है। यह वेश्याओं के साथ व्यभिचार करने, रजस्वला स्त्री के साथ सम्भोग करने, पैतृक (इस रोग से ग्रस्त मां या बाप) अथवा डाक्टरों, नर्सों की गलती से होता है। इस रोग की चार अवस्थायें होती हैं जोकि चिकित्सा न होने पर क्रमशः एक अवस्था से दूसरी अवस्था में बदलती जाती हैं—

उपदंश के जीवाणु

(१) प्रथमावस्था—मैथुन के तीन सप्ताह या कुछ और दिन पश्चात् पुरुष या स्त्री की जननेन्द्रिय पर एक छोटा सा दाना पड़ जाता है जिसे Hard chancer कहते हैं। यह दाना या घाव कठोर प्रतीत होता है तथा इसी व्रण में फिरङ्गाणु रहते हैं।

(२) द्वितीयावस्था—प्रथमावस्था में चिकित्सा न कराने पर कुछ सप्ताह पीछे जंघा की लसिका ग्रन्थियां कुछ बड़ी और सख्त हो जाती है, त्वचा के कई प्रकार के रोग हो जाते हैं, प्रायः ताम्रवर्ण मसूराकार दाने निकलते हैं या कभी कभी ताम्रवर्ण के चकत्ते पड़ जाते हैं। कभी कभी मवाद के दाने निकलते हैं। त्वचा की भांति श्लैष्मिककलाओं पर जैसे होठ, गाल, तालु पर भी दाने या चकत्ते पड़ जाते हैं। होठों के किनारे, बालों के कोने और मलद्वार पर विशेष प्रकार के दाने निकलते हैं। नाक, ठोड़ी, मलद्वार के पास अंग पर और अण्डकोषों पर चौड़े चौड़े मस्से के रूप में दाने निकलते हैं जिनसे बदबूदार स्राव निकला करता है। इस स्राव के आंखों में लग जाने से आंखें दुखने लग जाती हैं, उपतारा प्रदाह हो जाता है और नेत्रदृष्टि घट जाती है।

(३) तृतीयावस्था—कभी कभी यह अवस्था छः माह में ही प्रारम्भ हो जाती है और कभी कभी २०-३० साल पीछे, पर प्रायः तीन साल पीछे होती है। कोई रोग ऐसा नहीं जिसके चिन्ह इस अवस्था में न दिखाई देते हों। हथेली और तलवों पर कई प्रकार के चकत्ते पड़ जाते हैं, कभी त्वचा मोटी और सख्त हो जाती है।

अस्थ्यावरणकला और अस्थियों का प्रदाह होता है, चलने फिरने में दर्द होता है। अस्थियां सड़ गल भी जाती हैं। त्वचा लसिका ग्रन्थियों में, पेशियों में, अस्थियों में मस्तिष्कावरण में अण्ड कोषों और आंतों में विशेष प्रकार के गुल्म बनते हैं जो धीरे धीरे सड़कर मुलायम हो जाते हैं और फोड़े की तरह फूट जाते हैं। इनके फूटने पर जिस अङ्ग पर वह है उनके अनुसार विविध प्रकार के लक्षण पैदा होते हैं।

(४) चतुर्थावस्था में—इस अवस्था में नाड़ी संस्थान पर विशेष असर पड़ता है। रोगी चलने फिरने से लाचार हो जाता है, लड़खड़ाकर चलता है। रोगी को एक प्रकार का पागलपन भी हो जाता है।

पैतृक फिरंग—

माता-पिता के कुकर्मों का फल सन्तान को भोगना पड़ता है। इसमें विभिन्न प्रकार के लक्षण होते हैं जोकि विस्तारभय के कारण यहां नहीं लिखे।

चिकित्सा—कोई औषधि देने के पूर्व साधारण जुलाब द्वारा आमाशय को शुद्ध करा देना चाहिये। गर्मी वाले मरीज को कभी भी शीतल वस्तु का सेवन नहीं कराना चाहिए अन्यथा गठिया हो जाने की आशंका रहती है।

निश्चित् निदान हो जाने पर शीघ्रातिशीघ्र इस रोग की चिकित्सारम्भ कर देनी चाहिये। एण्टीबायोटिकों के आविष्कार के पहले इस रोग की चिकित्सा के लिये सल्फा औषधि का व्यापक प्रयोग होता था किन्तु आजकल नहीं होता क्योंकि इस रोग की चिकित्सा के लिये पेनसिलीन के विभिन्न योग बहुत अधिक गुण प्रभावकारी सर्वसुलभ सस्ते और निरापद साबित हुए हैं। किन्तु जो रोगी पेनसिलीन असह्य हों उनमें उसका व्यवहार नहीं करना चाहिये। ऐसे रोगियों के लिए टेट्रासाइक्लीन, ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन, क्लोरटेट्रासाइक्लीन, ऐरीथ्रोमाइसीन और क्लोरम फेनीकोल आदि का प्रयोग किया जा सकता है। आवश्यकता होने पर पहले के प्रभावकारी योग जैसे बिस्मथ और संखिया के इन्जेक्शन (जैसे एन० ए० बी० मार्फासाईड एसीटिलार्सन आदि) भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

सिफलिस या उपदंश की चिकित्सा के लिये पेनसिलीन के अनेक योग विभिन्न रूप में और विभिन्न मार्गों से व्यवहार के लिये मिलते हैं। पेनसिलीन चिकित्सा का मूल सिद्धान्त रक्त में प्रभावकारी मात्रा में पेनसिलीन की निरन्तर सांद्रण बनाये रखना है जिससे कि सिफलिस के रोगाणु निश्चित रूप से नष्ट हो जावे।

(१) जलीय प्रोकेन पेनसिलीन का मांसपेशी में छः लाख से नौ लाख यूनिटों का इन्जेक्शन रोजाना एक या दो बार लगातार आठ से चौदह दिन दिया जाता है।

(२) बेन्जेथीन पेनसिलीन २ से ४ मैगायूनिट का मांसपेशी में दिया गया केवल एक इन्जेक्शन प्रायः १ से ३ सप्ताह तक प्रभावकारी रहता है।

(३) ऐसे रोगियों के लिये २ प्रतिशत एल्यूमिनियम मोनोस्ट्रीयरेटयुक्त प्रोकेन पेनसिलीन का योग, जिसे संक्षेप में पी. ए. एम. या पाम भी कहते हैं बड़ा ही सुविधाजनक होता है। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीयावस्था के लिए इसकी कुल मात्रा ४.८ मेगायूनिट है जिसे अनेक मात्राओं में विभाजित कर छः लाख यूनिट का मांसपेशी में एक इन्जेक्शन प्रतिदिन ८ दिनों तक लगाया जाता है। वातनाड़ी संस्थान के उपदंश की चिकित्सा के लिये एक मैगायूनिट का मांसपेशीगत इन्जेक्शन रोज १५ दिनों तक लगाया जाता है। उपरोक्त सभी चिकित्सा क्रम पूरा होने पर खून की डब्ल्यू आर परीक्षा फिर करनी चाहिए और कोई शङ्का रहने पर चिकित्साक्रम एकबार दोहराना चाहिए। जन्मजात उपदंश की चिकित्सा के लिये ५ वर्ष से कम उम्र वाले बच्चों को पेनसिलीन की कुल मात्रा २ लाख यूनिट प्रति पौण्ड शरीर भार की दर से और इससे अधिक उम्र वाले बच्चों को वयस्कों के समान ही यानी उपर्युक्त मात्राओं में ही पेनसिलीन इन्जेक्शन लगाया जाता है। बच्चों में प्रोकेन पेनसिलीन ३ लाख यूनिट प्रतिदिन की दर से १० दिनों तक लगा सकते हैं।

पेनसिलीन असह्य रोगियों के लिए—

१. टेट्रासाइक्लीन और इसके यौगिक योग—कुल मात्रा ३०-४५ ग्राम जिसे अनेक छोटी मात्राओं में विभाजित करके १०-१५ दिनों में मुख मार्ग से देते हैं जैसे

एक कैपसूल प्रति छः घण्टे पर मुख मार्ग द्वारा। एरीथ्रोमाइसीन आधा ग्राम प्रति छः घण्टे पर १०-१५ दिनों तक मुख मार्ग से देते हैं। क्लोरमफेनीकोल की मात्रा प्रायः आधा ग्राम छः घण्टे पर १० दिन मुख मार्ग से दें।

उपदंशनाशक प्रयोग—

(१) पटोलादि क्वाथ—परवल, त्रिफला, नीम की छाल, चिरायता, कत्था, विजयसार सब औषधियां समान भाग लें। इन सब ओषधियों को कूटकर क्वाथ बनालें। फिर २ तोला ओषधि को ३२ तोला जल में पकावें और ८ तोला शेष रहने पर छानलें। फिर इसमें ६ रत्ती शुद्ध गुग्गुल डालकर रोगी को पिला दें।

(२) आम्रस्वरस योग—आम की ताजी भीतर की छाल को जल के साथ पीसकर और कपड़े में छानकर स्वरस निकालें। फिर इसमें ४ तोला आम्र स्वरस को १६ तोला बकरी के दूध में मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल रोगी को ७ दिन पिलावें।

(३) वरादि गुग्गुल—रोगी प्रतिदिन प्रातःकाल १ गोली व् मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ २१ दिन खावें।

(४) महातिक्त घृत—रोगी को प्रतिदिन प्रातःकाल १ तोला घृत एक कप दुध में डालकर २१ दिन पिलावें।

(५) करंजादि घृत—मात्रा १ तोला घृत को एक कप दूध में डालकर प्रातःकाल रोगी को पिलावें और उपदंश के व्रणों पर लगावें। इस घृत के प्रयोग से उपदंश रोग के कारण होने वाला दाह पाक स्राव तथा ललामी दूर हो जाती है।

डिफ्थीरिया

यह डिफ्थीरिया बैसिलस के संक्रमण के कारण बच्चों में (५-७ वर्ष की आयु तक) होने वाला रोग है जिसमें गले में एक झिल्ली बन जाती है जिसके कारण श्वासावरोध होता है। ज्वर १०३ से १०५ डिग्री तक, रोगी खांसने, रोने में अक्षम हो जाता है। अन्त में बच्चे की मृत्यु हो जाती है। यह झिल्ली मकड़ी के जाले के समान गले में जमी हुई दिखाई देती है।

भयप्रद लक्षण—अनियमित नाड़ी विशेषतः मन्दगति ह्रास के सहित न्यून उत्ताप औजोमेह, आक्षेप,
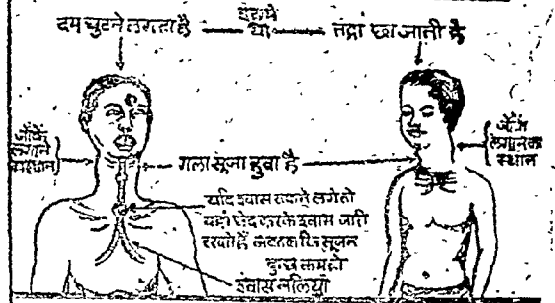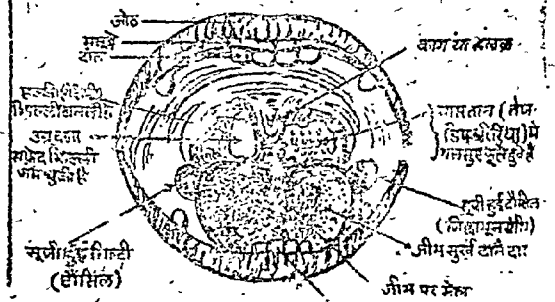
कण्ठस्फूर्ति सहित गम्भीर शोथ आदि-२ भयानक लक्षण होते हैं। गलतोरणिका प्रकार में मिथ्या कला का विस्तार तथा ग्रन्थियों की अतिवृद्धि, स्वरयन्त्र प्रकार में श्वासावरोध और श्वासनलिका प्रदाह, नासाप्रदाह में अतिरिक्त स्राव, इसके अतिरिक्त पक्षवध, नाड़ी वध, श्वसन संस्थान की मांसपेशियों का पीड़ित होना, हृदय की निर्बलता तथा वमन आदि भयंकर लक्षण होते हैं।

उपद्रव—श्वास नलिका प्रदाह, श्वास प्रणालिका प्रदाह, हृदय की नियमितता, रक्तस्राव की अति वृद्धि, पुनरावृत्ति, पक्षाघात, हृदय पतन आदि विशेषतया देखे गये हैं।

चिकित्सा—

बच्चों के लिये एलम प्रेसिपिटेट टाक्सायड (ए.पी.टी.) अति उत्तम औषधि है। यह टाक्सायड में स्फटिका मिलाने से बनता है। इसकी दो मात्रायें होती हैं और आधे सी. सी. की एक मात्रा मांसपेशी में दी जाती है। ३-४ सप्ताह के पश्चात् दूसरी मात्रा दी जाती है। दूसरी

मात्रा के तीन सप्ताह के बाद बच्चे के अन्दर इस प्रकार की शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि रोहिणी रोग फिर उस बच्चे को आक्रमणकारी नहीं हो सकता। बच्चों में प्रथम वर्ष के पश्चात् ही उपरोक्त अन्तःक्षेपण कर देना चाहिये। स्कूल जाने के समय में पुनः आधी सी. सी. का अन्तःक्षेपण कर देना लाभकारी होता है। यदि ७० से ८० प्रतिशत विद्यार्थियों को उपरोक्त अन्तःक्षेपण कर दिये जाये तो शायद डिफ्थीरिया रोग का नाश ही हो जाय।

प्रतिविष का अन्तःक्षेपण अधोत्वचा से मांसपेशियों में देना अधिक लाभदायक है। तीव्रावस्था में रक्तज रोहिणी में प्रतिविष शिरा द्वारा दिया जाता है। यह प्रतिविष जलरहित होना चाहिये तथा उक्त उष्णता की तरह उनकी उष्णता होनी चाहिये। अन्तःक्षेपण धीरे-धीरे तथा अति सूक्ष्म सुई द्वारा देना चाहिये। इसके पश्चात् रोगी को गर्म कपड़े में तथा गर्म बोतलों द्वारा लपेट देना चाहिये और चारपाई के पांव थोड़ा ऊंचा कर देना चाहिए। ५० हजार यूनिट व उससे भी अधिक प्रतिविष इस प्रकार दे देना चाहिये। तत्पश्चात् तत्काल २० ग्राम ग्लूकोज, ५० प्रतिशत साधारण लवण जल में शिरा द्वारा तथा २० हजार यूनिट प्रतिविष मांसपेशी द्वारा दिया जाता है। यदि इससे लाभ दृष्टिगोचर न हो तो पुनः १२ घण्टे के बाद एक मात्रा और दे देनी चाहिये।

प्रतिविष चिकित्सा के साथ-साथ यदि ज्वर केशरी वटी, आनन्द भैरव, त्रिभुवनकीर्ति रस, लक्ष्मीनारायण या अन्य बच्छनाग प्रधान औषधि का प्रयोग कम मात्रा में किया जाय तो अधिक लाभकारी होता है। मलावरोध हो तो पहले ज्वरकेशरी वटी देनी चाहिये। उदर शुद्धि का सर्वदा लक्ष्य रखना चाहिये। बालकों के लिये वच का घासा देने से वमन होकर झिल्ली, कीटाणु तथा विष बाहर निकल जाते हैं।

सौषुम्निक ज्वर

(CEREBROSPINAL FEVER)

यह रोग सामान्यतः असाध्य माना जाता है जो सुषुम्ना द्रव में संक्रमण पहुँच जाने के कारण होता है। चिकित्सा तत्व प्रदीप के लेखक ने इसे क्रकच सन्निपात बतलाया है जिसमें ग्रीवाभङ्ग होकर मृत्यु होना निश्चित् है। सिर में भयानक वेदना होती है। गर्दन जकड़ जाती
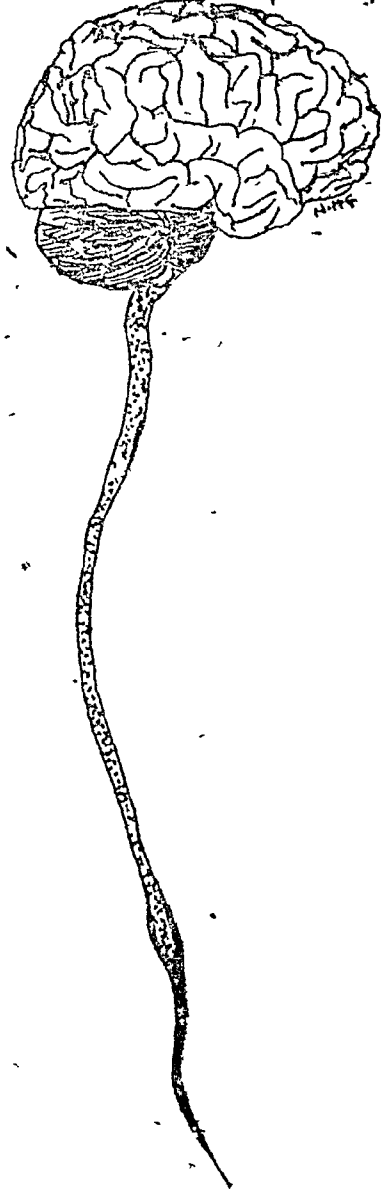
है। हाथ या पैर या दोनों ही बेकार हो जाते हैं। तृषा, वमन, सर्वाङ्ग वेदना, ज्वर आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—आयुर्वेद प्रणाली में इसकी वातहारक तथा जलशोषक चिकित्सा की जाती है।

बृहद् वातचिन्तामणि, महायोगराज गुग्गुल, योगेन्द्र

रस, समीरपन्नग रस, मल्लचन्द्रोदय आदि का प्रयोग करना चाहिये।

निम्नलिखित क्रियाक्रम उपयोगी पाया गया है—

बृहद् वातचिन्तामणि रस २ रत्ती, मल्लसिन्दूर १ रत्ती, महायोगराज गुग्गुल ४ रत्ती, लहसोन स्वरस तथा घृत के साथ दिन में ३ बार देवें। वमन तथा तृषा की चिकित्सा में त्रिभुवनकीर्ति रस, अमृतासत्व का मिश्रण गुडूच्यादि अर्क या रास्नादि क्वाथ या एरण्ड सप्तक का क्वाथ या अर्क के साथ देवें।

मर्दन तथा हाथ पैर में वातहर तेल, जैसे महा-नारायण तेल, प्रसारणी तेल का मर्दन करें।

कभी-कभी इसमें शीर्षाम्भ (Hydrocephalus) हो जाने के कारण शिर का बाह्य भाग भी शोथयुक्त हो जाता है। ऐसी अवस्था में शङ्ख प्रदेश (कनपटी) में विष्णु तैल मर्दन करें। दशांग लेप को सारे सिर में लगाना चाहिए। सिर पर हल्का सेक करना चाहिये। विबन्ध पर अधिक ध्यान देवें जिससे पेट में मल एकत्रित नहीं होने पावे। यदि रोगी सहन कर सके तो एरण्ड स्नेह द्वारा प्रतिदिन विरेचन करावे। बड़ी हरड़, सनाय, द्राक्षा तथा अमलतास का क्वाथ भी विरेचनार्थ दिया जा सकता है। अनिद्रा हो तो नींद लाने वाली औषधि प्रयोग करे, ज्वर दूर हो जाने पर उसके पुनराक्रमण का भय रहता है।

विसर्प

मर्मों में चोट लगने से बल और अग्नि के नाश से अन्तर्विसर्प होता है इसके विपरीत वायुविसर्प होता है।

वातज विसर्प में वातज ज्वर के लक्षण वाला ज्वर, शोथ, धड़कन, कांटा चुभने का सा दर्द, काटने जैसी पीड़ा तथा थकावट होती है। यह फैलता है और रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पित्तज विसर्प बड़ी तेजी से फैलता है। इसका रङ्ग लाल तथा पैत्तिक ज्वर के लक्षण वाला होता है। कफज विसर्प में खुजली होती है, चिकनाहट रहती है तथा कफज ज्वर के समान पीड़ा होती है।

अग्नि विसर्प—यह ज्वर वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास, चक्कर आना, गांठ, पीड़ा, अग्निमांद्य, तमक श्वास, अरुचि आदि से युक्त रहता है और सारा शरीर जलते हुए अङ्गार की तरह हो जाता है अर्थात् लाल हो जाता है। जिस अङ्ग में विसर्प फैलता है वह भी वैसा ही हो जाता है। अंगार के ठंडा हो जाने के समान काला, नीला या लाल वर्ण का हो जाता है और शीघ्र ही आग से जलने के समान फफोले उठ आते हैं।

ग्रन्थिविसर्प, कर्दम विसर्प आदि का वर्णन सम्बन्धित ग्रन्थों में देखें।

चिकित्सा—विसर्प में पहले उपवास, वमन, विरेचन करावे परन्तु स्नेहन न करावे फिर आलेपन सेवन करावें। यदि आवश्यकता हो तो रक्त मोक्षण करा दें अर्थात् फस्द खोलकर रक्त निकाल दें, दोषानुसार दोषों को शान्त करने केलिये चिकित्सा करें, परन्तु विदाही पदार्थ सेवन न करें। इसके बाद दशाङ्ग लेप लगावें और दोषों को जल्द शान्त होने के लिये निम्बादि क्वाथ या गुडूच्यादि क्वाथ या पटोलादि क्वाथ का प्रयोग किया जा सकता है।

विरेचन कराने के लिये निशोथ का चूर्ण उचित मात्रा में घी के साथ चटाकर ऊपर से त्रिफले का क्वाथ पिला दें और परवल और नीम की छाल के काढ़े से वमन करावें।

दशांग लेप—सिरस की छाल, मुलहठी, तगर, लाल चन्दन, बड़ी इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारूहल्दी, कूठ, नेत्रवाला।

विधि—इन सबको घी मिलाकर लेप करने से विसर्प, कुष्ठ, ज्वर और शोथ ये सब नष्ट हो जाते हैं।

भूनिम्बादि क्वाथ—चिरायता, वासा, कुटकी, पटोल पत्र, त्रिफला, लाल चन्दन, नीम की अन्तर छाल। इनका क्वाथ विधि से काढ़ा बनाकर पीने से विसर्प, दाह, ज्वर, सूजन, कण्डू, विस्फोट, प्यास और वमन नाश होते हैं।

अमृतादि क्वाथ—गुडूचि (गिलोय), वासा, परवल के पत्ते, नागरमोथा, सप्तपर्ण, खैर की लकड़ी, काला बेंत, हल्दी, नीम की पत्ती। इन सबका काढ़ा बनाकर पीने से अनेक प्रकार के विष-दोष, विसर्प, कुष्ठ, कण्डू, विस्फोट, मसूरिका, प्रभृति अनेक प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं।

ब्राड स्पैक्ट्रम ड्रग के प्राणघातक दुष्प्रभावों पर आयुर्वेदीय प्राणदायिनी औषधियाँ

श्री डा० गिरिधारी लाल मिश्र आयु० चक्र०

तथाकथित वैज्ञानिक औषधियों के दुष्प्रभावों से आक्रान्त रोगी जब आयुर्वेद की शरण में आते हैं तो आयुर्वेदज्ञों का इनसे प्राण-रक्षा का कर्त्तव्य हो जाता है।

प्रस्तुत है एक उदाहरण – श्रीमती प्रणति गुप्ता आयु ४५ वर्ष, २८-१-८५ को कर्णशूल एवं गले मे दर्द हुआ कलकत्ते के तेजपुर के सुप्रसिद्ध चिकित्सकों ने Roscelin cap-20. oxymag-20 tab. Brinerdess tab. दी तथा तत्काल लाभ हो गया। १५-२-८५ को कलकत्ते से तेजपुर के लिये प्रस्थान किया। रात्रि में रेल में एलर्जी का प्रकोप हुआ तथा १७-२-८५ को प्रातः तेजपुर पहुँचते ही डाक्टर को दिखाया तथा पूर्व डाक्टर के व्यवस्था पत्र के अनुसार उक्त दवाओं की एलर्जी का लक्षण बताया एवं eatromycitin cap-20 Insidel-10 दिया लगाने के लिए caledrylotion दिया। इससे गर्मी बढ़ी लोशन लगाने से त्वचा झुलस गई। दूसरे दिन दूसरे डाक्टर को दिखाया पर जैसे जैसे दवा की मर्ज बढ़ता गया तथा १८-२-८५ को हमारी चिकित्सा मे आयी तथा निम्न व्यवस्थापत्रानुसार दवाएं दी गयः—

(१) आमलकी रसायन २–२ गोली सुबह शाम पानी से
(२) गुरुच्यादि लोह ,, १० बजे, ३ बजे ,,
(३) आरोग्यवर्धिनी ,, भोजनोत्तर ,,

पथ्य में केवल साबूदाना + दूध। २५-२-८५ को पूर्णतः रोगमुक्त।

आधुनिक औषधिया	प्रतिक्रिया	आयुर्वेदीय चिकित्सा
(१) पेनसिलीन—बीसवी सदी का वरदान पर इसका आंख मींचकर प्रयोग करना रोगी को जान के साथ खेलना है। दुधारू तलवार है जितनी लाभदायक, उतनी जानलेवा भी है	पित्ती उछलना, चेहरा लाल और फूल कर भयावना हो जाता है। भयङ्कर एलर्जी करता है और तत्काल चिकित्सा न हो तो अकस्मात हृदयावरोध एव मस्तिष्क नाड़ियों की शक्ति का ह्रास, गलत लग जाने से, रोगी मेज पर ही दम तोड़ देता है।	आयुर्वेद की सजीवनी वटी—इसमें वास्तव में जीवनदायिनी है। दवाउलमुश्क मोतदिल जवाहर वाली खास ३ ग्राम में २ रत्ती मोती पिष्टी मिलाकर दें। तत्काल फलदर्शी है। रोगी को होश आ जाने पर अन्य लाक्षणिक चिकित्सा भी दें।
(२) सल्फा औपधियां— व्रण, गनोरिया, ज्वर,	शरीर का नीलाभ हो जाना, वमन, उत्क्लेश, वातनाड़ियों की शक्ति का	कुमार्यासव, कालमेघासव, पुनर्नवारिष्ट, पंचकोल कषाय, पुनर्नवा मण्डूर आदि

आधुनिक औषधियां	प्रतिक्रिया	आयुर्वेदीय चिकित्सा
विसर्प, न्यूमोनियां, प्रवाहिका पर प्रभावशाली	ह्रास, अग्निमांद्य, आंख की रोशनी का कम होना, पुंसत्वहीनता	का प्रयोग उपद्रव शामक एवं ओजवर्धन कर प्राण रक्षा करता है
(३) क्वीनाइन—मलेरिया की महौषधि बुखार तोड़ने के लिये भी।	मलेरिया पर ब्रह्मास्त्र है पर रक्ताल्पता होकर पाण्डुरोग, मूकत्व बधिरता, दौर्बल्य	ताप्यादि लौह का प्रयोग करावें। बधिरता होने पर लक्ष्मीविलास और अमरसुन्दरी वटी, गोदन्ती, अमृतासत्व दें।
(४) कोरामीन—प्राणघातक अवस्था में हृदय गति नियामक।	हृदय की अनियमित धड़कन में तुरंत लाभप्रद, पर हृद्द्रव, हृदयावसाद से मृत्युभय, अत्यधिक पिपासा	डूबते हुए हृदय को सहारा देने के लिये मोती पिष्टी का प्रयोग वरदान तुल्य, दाड़िम स्वरस व अर्क बेदमुश्क से दें।
(५) क्लोरोमाइसेटीन—आन्त्रिक ज्वर एवं ज्वर उतारने में आंख मूंदकर प्रयोग की जाती है	टायफाइड को ३-४ दिन में उतार देती है पर कभी कभी ज्वर का प्राणघातक पुनराक्रमण, अत्यधिक दौर्बल्य, बाल झड़ना, प्रलाप, स्मृतिनाश	बृहत् वातचिन्तामणि रस+मुक्तापिष्टी ब्राह्मी+जटामांसी क्वाथ से। उशीरासव रक्तशोधक एवं पित्तशामक होने से विपाक्त प्रभाव को दूर कर शुद्ध रक्त की वृद्धि करता है
(६) स्ट्रेप्टोमाइसीन—क्षय गनोरिया, प्लेग, बीकोलाई संक्रमण कामलादिरोगों में प्रयुज्य	बेचैनी, चक्कर, प्रदाह, पैर लड़खड़ाना, हृदयस्पन्द, वमन, उत्क्लेश, सन्धियों में शूल, कानों में शूं शूं शब्द, त्वचा पर पिड़िकायें एवं घातक रक्ताल्पता, स्मृतिनाश एवं प्रलाप	बृहद वातचिन्तामणि+मुक्ता प्रवाल पंचामृत मधु से, शङ्खपुष्पी व शतावरी सिद्ध घृत सेवनीय। विश्वेश्वर रस, जहरमोहरा, खमीरा गाजवान अम्बरी जवाहरवाला आदि बल्य औषधियां दें।
(७) टैरामाइसीन—बहुशः जीवाणुनाशक	हृल्लास, वमन, पेट दर्द अथवा अतिसार	प्रवाल पञ्चामृत, आमलकी रसायन, कामदुधारस का प्रयोग लाभप्रद
(८) डेकाड्रोन—दमा का सख्त दौरा, एलर्जी रोगों के गम्भीर लक्षणों में प्रयुक्त	उच्च रक्तचाप के रोगियों पर प्राण घातक लक्षण, रक्तचाप को बढ़ा देता है। शरीर नीलाभ और बेचैनी।	रसराजरस व बृहद्वात चिन्तामणि रस+मोतीपिष्टी मधु से खमीरा गाजवान, अम्बरी जवाहरवाला अश्वगन्धारिष्ट+अर्जुनारिष्ट लाभप्रद
(९) एस्प्रीन—दर्दनाशक में बहुप्रचलित है।	अवसन्नता, अत्यन्त सुस्ती और हृदय दौर्बल्य	मुक्तापिष्टी+प्रवालपिष्टी मधु से जवाहरमोहरा एवं दूध, घी की उपयुक्तमात्रा दें।
(१०) लारजेक्टिल—वमन, सदमा, अनिद्रा, दर्द, चिन्ता, तनाव, पागलपन	बहुत अधिक सुस्ती आती है, अधिक नींद तथा रक्तचाप गिर जाता और रोगी सोया हुआ ही मृत्यु मुख में चला जाता है	वातकुलान्तक रस दूध से दें, योगेन्द्र रस चिन्तामणि चतुर्मुख आदि का प्रयोग लाभप्रद

दैनिक रोगों की
सरल आशुकारी चिकित्सा
आचार्य कवि० हरदयाल वैद्य वाचस्पति

आचार्य श्री हरदयाल जी इस युग के वयोवृद्ध सर्वोत्कृष्ट आयुर्वेदज्ञों की प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित हैं। जटिल रोगों की सफल चिकित्सा में आपने असीम ख्याति अर्जित की है, बड़े ही मिलनसार एवं सहृदय व्यक्ति हैं, सहज स्नेहवश वृद्धावस्था जन्य हस्तकम्प से आक्रान्त होने पर भी लेख प्रेषित किया है एतदर्थ भगवान् धन्वन्तरि से आपकी दीर्घायु की कामना करते हुये अभिनन्दन करते हैं। —गिरिधारी लाल मिश्र आयु० चक्र०।

(१) आधा सीसी की दर्द—सैन्धानमक १ तोला, गुड़ से बना सिरका ५ तोला दोनों को शीशी में मिलाकर रखलें, रोगी को सीधा सुलाकर डापर भर कर नाक में डालें। ५ मिनिट बाद रोगी को बैठा दें, जमा हुआ कफ निकलेगा और दर्द हमेशा के लिए दूर हो जायेगा।

(२) सूर्यावर्त—यह सिर दर्द सूर्योदय पर प्रारम्भ होता है जैसे-जैसे सूर्य चढ़ता है दर्द भी बढ़ता जाता है और सूर्य के ढलने पर घट कर सूर्यास्त होने तक अपने आप मिट जाता है।

ठीकरी का नौसादर पीसकर १ माशा सूर्योदय से १ घण्टा पहले पानी में घोल कर पीने से उसी दिन या दूसरे-तीसरे दिन दर्द बिल्कुल ठीक हो जायेगा। नं. १ दवा भी नाक में अवश्य डाली जावे।

(३) लड़कियों का सिर दर्द—आजकल कालेज में पढ़ने वाली लड़कियां प्रायः सिर-दर्द की शिकायत करती हैं जिसका कारण अश्लील उपन्यास पढ़ना अधिक सिनेमा देखना तथा मासिक धर्म के पालनीय नियमों की अवहेलना करना तथा असंयमित खान-पान है। अतः पथ्य पालन आवश्यक है।

चिकित्सा—सतगिलो ४ रत्ती, कौड़ी की भस्म ४ रत्ती मुश्की काफूर १ रत्ती यह १ मात्रा है। प्रातः सायं दूध से लेनी चाहिए। १-२ मास के प्रयोग से यह रोग हमेशा के लिए चला जाता है।

(४) बच्चों का शय्या मूत्र—गूलर, पीपल वृक्ष, अर्जुन की छाल, सोंठ १०-१० ग्राम तथा राई ८० ग्राम सबका चूर्ण बनालें। २-२ ग्रा. की ३ पुड़िया प्रातः मध्याह्न सायं शहद से दें। चाय लस्सी, शर्बत पीना बन्द करावें रात में दूध भी नहीं पिलावें, तो इस रोग से छुटकारा मिल जायेगा।

(५) वृद्धों की बहुमूत्रता—प्रायः वृद्धावस्था में मूत्र अधिक और बार-बार आता है रात में उठना पड़ता है जिसमें तारकेश्वर रस ४ रत्ती, चन्द्रप्रभावटी २ गोली, ऐसी ४ मात्रा मर्दन करके मधु से देनी चाहिए।

(६) जीर्ण प्रतिश्याय—बड़ी दुष्ट बीमारी है इसमें प्रातः सायं त्रिफला चूर्ण ४ माशा+नौसादर ठीकरी ४ रत्ती, काला नमक १ माशा, उष्ण जल से दें, भोजनोत्तर—चित्रक हरीतकी ४ माशा प्रवाल भस्म १ माशा उष्ण जल से एवं रात्रि को सोते समय लक्ष्मीविलास रस २ रत्ती, मधु+अदरख रस से दें, षड्बिन्दु तैल का नस्य दें।

(७) नव प्रतिश्याय में तुलसी पत्र १०, कालीमिर्च १० दाने कुटे हुए १ कप दूध, १ कप पानी की चाय बना

कर चीनी मिलाकर गरम-२ चाय की तरह पीने से सिर दर्द, बुखार, जुकाम तत्काल ठीक होते हैं।

(८) कर्ण स्राव—गोमूत्र या बकरी का मूत्र गर्म कर के गुनगुना रहने पर ५-१० बूंद कान में डालें। इससे कर्ण स्राव एवं कान की सूजन में लाभ होता है। क्षार तैल का प्रयोग भी अत्युत्तम है।

(९) दन्तशूल—दांत के गढ्ढे में बढ़िया हींग या भुनकी कपूर भर कर सलाई से दबा दें और ऊपर से जरा-सी रुई रखकर उसे भली प्रकार जमा दें। अमृतधारा व लौंग के तैल का फोहा भी इसी प्रकार दबा देने से तत्काल शूल शमन होता है। दांतों में सरद-गरम चीजों का लगना भी कष्टदायक है। इसके लिए रात में सोते समय गर्म घी के फोहे से दांत और मसूढ़ों को १५-२० मिनिट सेंकार करें। सेंक करने बाद तत्काल कोई वस्तु नहीं खानी चाहिए। २-३ दिन ऐसा करने से यह कष्ट दूर हो जाता है।

(१०) तेजाब से जल जाने पर—खाने का सोडा १ तोला + शीतल जल २० तोला मिलाकर भीगी पट्टी बार-बार रखने पर कष्ट शांत होता है।

(११) हैजा—प्याज का रस २ तोला, लहसुन का रस २ तोले, काली मिर्च ३ माशा, नौसादर ३ माशा, नमक १ तोले, नीबू का रस ५ तोला मिलाकर प्याली में रख लें और २-२ चम्मच १५-१५ मिनिट बाद पिलावें उपद्रवों की शांति होकर दूर हो जावेगा।

(१२) युवान पिटिका (मुंहासे) १ नीबू के रस में २ औंस ग्लिसरीन मिलाकर मुख पर लगावें तथा सारिवादि आसव १-२ तोला + बराबर पानी मिलाकर भोजनोत्तर पीना चाहिए।

(१३) प्रवाहिका—हरड़ का चूर्ण ४ माशा, पीपल का चूर्ण १ माशा, काला नमक १ भाग ऐसी मात्रा दिन में ४ बार लें तो आम का मल द्वारा निस्सारण होकर रोग का शमन होगा।

(१४) उदर शूल—यदि तीव्र हो तो शूलवज्रिणी वटी २ गोली, नारिकेल लवण १ माशा गर्म पानी से दिन में ३-४ बार दें। पेट में बार-बार होने वाली पुरानी दर्द तथा अम्लपित्त एवं परिणाम शूल, अन्नद्रव शूल में तत्काल लाभ होता है। अमृतधारा की ८-१० बूंदें बताशा या मिश्री के टुकड़े या पानी के १ चम्मच डाल कर लेने से भी उदर शूल में तत्काल लाभ होता है।

पृष्ठ ३२० का शेषांश

(ग) भोजन बाद दोनों समय सबान शाम बल मिलाकर दें। अरविन्दासव १० मिलि., विडंगासव ५ मिलि. एक मात्रा।

अगर अतिसार के साथ बालापस्मार हो तो कुमार कल्याण रस १ ग्रा.

(क) लक्ष्मीनारायण रस १ ग्रा., महागन्धक रस (भैषज्य रत्नावली) २ ग्रा., प्रवाल पंचामृत रस १ ग्रा., ३१ मात्रा।

(ख) बालार्क रस केशरयुक्त, मुक्तादि वटी १-१ गोली, ३ मात्रा। मधु से दें या लिव ५२ सीरप से दें।

(ग) भोजन बाद (अ) औषधि का ही प्रयोग करे।

एलोपैथिक मतानुसार—

(अ) एमोक्सीलीन ड्राई सीरप १०० मिग्रा. डोज

(क) बेन्ड्रान सीरप आधा चम्मच, एनजीमीन ड्राप्स १५ बूंद, बेटनैसोल ड्राप्स १० बूंद, एक मात्रा। सुबह शाम दुपहर दें।

(ख) १० बजे=४ बजे—पी. डी. कम्पनी का जेरोण्टीन सीरप १-१ चम्मच दे।

(ग) भोजन बाद ग्लैक्सो कम्पनी का ओस्टेलीम विथ विटामिन १२ सीरप १-१ चम्मच दे।

(ब)(क) लोमोमाईसीन सीरप ५ मिलि., अरिस्टोजील एक सीरप ५ मिलि., सेसोन ड्राप्स १० बूंद, एक मात्रा। सुबह शाम दोपहर को दें।

(ख) १० बजे=४ बजे—पी. डी. कम्पनी का डिलान्टीन सस्पेन्शन् २ मिलि. देना चाहिये। यह औषध प्रत्येक अपस्मार में चलता है। इसके इन्जेक्शन, कैपसूल भी आते हैं।

आशुफलप्रद योगशतक

वैद्य भानुप्रताप आर० मिश्र, डा० गिरिधारीलाल मिश्र आयु० चक्र०

मूत्र रोग चिकित्सा में हमने १०० शास्त्रीय व अनुभूत प्रयोगों का संकलन योग शतक शीर्षक से प्रकाशित किया था जिसको चिकित्सक बन्धुओं और पाठकों ने अत्यन्त ही पसन्द किया तथा कई पत्र इस आशय के मिले कि 'योग शतक' प्रकाशित करें। इस बार हमारे समक्ष प्रमुख समस्या यह रही कि हमें लेखकों के लेख बड़े ही विलम्ब से प्राप्त हुए। इसी बीच हमने महत्वपूर्ण विषयों पर लेख तैयार कर लिये थे फिर अन्य प्रसिद्ध लेखकों के भी उत्तम लेख एक ही विषय पर मिलने लगे। फलस्वरूप हमने अपने 'विशेष सम्पादकत्व' का ध्यान रखते हुए लेखकों से प्राप्त लेखों को ही प्रथम व प्रमुख स्थान देना अपना कर्तव्य समझकर कई स्वलिखित लेखों को प्रकाशन से रोक लिया। किन्तु 'योग शतक' के सन्दर्भ में प्राप्त आग्रहपूर्ण पत्रों से इच्छा बलवती हुई। श्री वैद्य भानुप्रताप मिश्र जी का 'सङ्कट कालीन औषधि पेटी' शीर्षक लेख हमें मिला जिसमें ३६ योग थे तथा अधिकांश वही योग थे जिन्हें हम भी 'योगशतक' में देना चाहते थे अतः उनके ३६ योगों में ही ६१ योग हमने जोड़कर 'योग शतक' का निम्नानुसार संकलन किया है जिसके सभी प्रयोग तत्काल फलप्रदर्शी परीक्षित एवं अनुभूत है चिकित्सक लाभान्वित हो यशस्वी बनें।
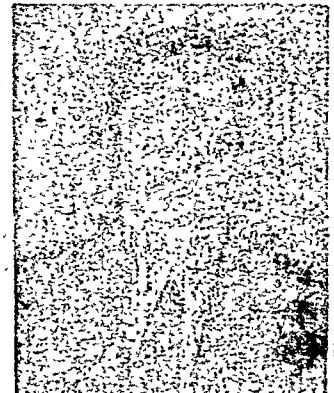
३६	सङ्कटकालीन औषधि पेटी—वैद्य भानु प्रताप आर. मिश्र				
१४	ब्राडस्पेक्ट्रम चतुर्दश आयुर्वेदीय योग रत्न—आयुर्वेद चक्रवर्ती गिरिधारीलाल मिश्र				
१४	चतुर्दश आयुर्वेद कैपसूल योग रत्न—	,,	,,	,,	,,
१४	चतुर्दश आयुर्वेदीय इन्जेक्शन योगरत्न—	,,	,,	,,	,,
१४	चतुर्दश यूनानी योगरत्न—	,,	,,	,,	,,
५	प्रयोग पंचक—रसोईघर बनाम रसायनशाला—	,,	,,	,,	,,
१००					

—गिरिधारीलाल मिश्र

प्रस्तुत आलेख 'आयुर्वेदीय सङ्कटकालीन औषधि पेटी' वैद्य श्री शोभन वसाणी के 'आपणां इमर्जेन्सी औषधो' पर आधारित है। इस लेख पर शास्त्रीय विचारणा पाठक स्वयं करेगा तो अन्य रत्न मिलने की पूरी संभावना है जिसें विस्तार के भय से लेखक ने नहीं लिखा है। यदि लिखा होता तो 'संकटकालीन चिकित्सा' का दूसरा भाग भी प्रकाशित करना पड़ता अतः हमारी मजबूरी पाठक समझने का प्रयास करेंगे ऐसा मेरा आत्म विश्वास है।

(१) अजमोदादि चूर्ण (भावप्रकाश)—

अजमोद, कालीमिर्च, पिप्पली, विडङ्ग, देवदारु, चित्रक, सोया, सेंधव, पिप्पलीमूल प्रत्येक औषधि द्रव्य १-१ भाग, सोंठ १० भाग, विधारा १० भाग तथा हर्रे ५ भाग सभी औषधि द्रव्य को कूट कपड़छन करलें। इसे १ से २ माशा तक उष्णोदक या रोगानुसार अनुपान के साथ देना चाहिये।

उपयोग—आमवात, प्रतितूनी, विश्वाची, गृध्रसी,

कटिशूल पृष्ठशूल, गुदा में पीड़ा, जंघाशूल तथा सर्वसंधि शोथ में अजमोदादि चूर्ण उपयोगी है। वायु के विभिन्न रोगों में तथा आम एवं अजीर्णजन्य अन्य विकारों में अजमोदादि चूर्ण अति उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग-(१) आमवात की आत्ययिक अवस्था में अजमोदादि चूर्ण १ ग्राम, रसराज रस २५० मि.ग्रा., वृहद् वात चिन्तामणि रस २५० मि.ग्रा. शहद के अनुपान के साथ देने से संधिशूल, शोथ स्थान पर लेप गुटीका लेप करने से लाभ होता है।

(२) उदरशूल की आत्ययिक अवस्था में अजमोदादि चूर्ण १ ग्राम, वृहद् शंखवटी १ ग्रा: उष्णोदक के साथ दें।

(३) मक्कलशूल की आत्ययिक अवस्था में अजमोदादि चूर्ण १ ग्रा., यवक्षार १ ग्रा:, प्रताप लंकेश्वर रस २५० मि.ग्रा. देवदार्व्यादि क्वाथ १० मि.ली., दशमूल क्वाथ १० मिली. के साथ देने से तथा चक्रमर्द के मूल के चूर्ण की पोटली योनि में रखने से तुरन्त शांत होजाता है।

(४) आध्मान में अजमोदादि चूर्ण १ ग्रा., वृहद् शङ्खवटी १ ग्रा., क्रव्यादि रस १२५ मि.ग्रा:, शूलवज्रिणी रस १२५ मि.ग्रा., दशमूलारिष्ट १५ मिली. उतना ही जल के साथ देने से आध्मान में तात्कालिक लाभ होता है।

(५) वात कफज गृध्रसी की आत्ययिक अवस्था में अजमोदादि चूर्ण १ ग्रा:, रसराज रस २५० मिग्रा., वेदनान्तक रस २५० मिग्रा., महारास्नादि क्वाथ २० मिली. के साथ देने से तथा वेदना स्थान पर पंचगुण तैल का अभ्यंग करके सेक करने से शूल में शीघ्र लाभ होता है।

(२) अभयारिष्ट (भैषज्य रत्नावली)—

१० से २० मिली. तक बराबर पानी मिलाकर दें।

उपयोग—यह विभिन्न प्रकार के अर्श, उदर रोग, मल एवं मूत्र के विबंध में उपयोगी है। यह पक्वाग्नि को प्रदीप्त करके आहार का सम्यक् पाचन करता है तथा क्षुधा की वृद्धि करता है।

आमयिक प्रयोग—(१) मलावरोधजन्य उदरशूल की आत्ययिक अवस्था में अभयारिष्ट १० मिली. तथा कुमारीआसव १० मिली समान भाग जल के साथ एवं नाराच रस १२५ मि.ग्रा. शङ्खवटी १२५ मिग्रा. अग्नितुण्डी वटी १ गोली शहद के साथ देने से मलावरोध जन्य उदरशूल में अतिशीघ्र लाभ करता है। मल प्रवृत्ति होती है। अपानवायु का अनुलोमन होता है।

(२) आध्मान की आत्ययिक अवस्था में अभयारिष्ट तथा दशमूलारिष्ट १०-१० मिली., वृहत् शङ्खवटी २ ग्रा. स्वर्जिकाक्षार १ ग्रा. पानी के साथ चार-चार घंटा पर देने से तथा उदर प्रदेश पर हींग को पानी में मिलाकर लेप करके सेक करने से अपानवायु का अनुलोमन होता है जिससे आध्मान में अतिशीघ्र लाभ होता है।

(३) गुल्म की आत्ययिक अवस्था में अभयारिष्ट १-२ मिली. तथा कुमारी आसव १५ मिली, समान भाग पानी के साथ देने से अतिशीघ्र लाभ होता है। इसके सहायक औषधि के रूप में गंधक वटी, वेदनान्तक रस, शिवाक्षार पाचन चूर्ण, लवण भास्कर चूर्ण, हिंग्वाष्टक चूर्ण, कर्पूर हिंगुवटी चिकित्सक को युक्तिपूर्वक देना चाहिए।

(४) उदरशूल की आत्ययिक अवस्था में अभयारिष्ट १५ मिली. में स्वर्जिक क्षार १ ग्रा:, कर्पूरहिंगु वटी२५० मिग्रा. मिला पिलायें तात्कालिक शूल में फायदा होगा।

३. अर्जुनारिष्ट (भैषज्य रत्नावली)—

इसे १० से २० मिलि: तक या चिकित्सक के परामर्श अनुसार बराबर पानी के साथ दें।

हृदय और फुफ्फुस के विकारों में अर्जुनारिष्ट उपयोगी है। न्यून रक्तभार, हृदयशूल, श्वासावरोध में यह हितकारी है। यह वल्य है।

आमयिक प्रयोग—(१) न्यून रक्तभार की आत्ययिक अवस्था में अर्जुनारिष्ट १५ मिलि. समान भाग जल के साथ तथा वृहत् वातचिन्तामणि रस २ गोली, गोदन्ती भस्म १/२ ग्राम, सूतशेखर रस १/२ ग्राम, कणामूल चूर्ण १/२ ग्राम दिन में ३ बार शहद में दें।

(२) उच्च रक्तभार की आत्ययिक अवस्था में अर्जुनारिष्ट १५ मिलि., एलर्ट २ कैपसूल पानी के साथ दिन में तीन बार देने से उच्च रक्तभार अतिशीघ्र नार्मल हो जाता है। इससे हृदय एवं मस्तिष्क को बल मिलता है तथा हृदयशूल का शमन होता है। एलर्ट आयुर्वेदीय औषधि है। इसके निर्माता वासु फार्मास्युटिकल्स प्रा. लि. वाजुवा वड़ोदरा गुजरात है।

(३) श्वासावरोध में अर्जुनारिष्ट १५ मिलि., श्वास कास चिन्तामणि रस १२५ मिग्रा. पानी से दें।

(४) किसी भी कारण से चक्कर (भ्रम) आता हो ऐसी परिस्थिति में अर्जुनारिष्ट १५ मिलि. समान भाग जल के साथ २-२ घण्टे पर देने से चक्कर आना तत्काल बन्द हो जाता है।

(५) हृदशूल में अर्जुनारिष्ट १५ मिलि. बराबर पानी के साथ प्रति घण्टे देने से शूल में अतिशीघ्र लाभ होता है और हृदय को बल प्राप्त होता है। इसके सहायक औषधि के रूप में बृहत्वात चिन्तामणि रस, हेमगर्भ पोटली रस, बृहद् कस्तूरी भैरव रस देना चाहिए।

४. अश्मरी कण्डन रस (रस योग सागर)—

पलाशक्षार, केले का क्षार, तिलक्षार, करेले का क्षार, यवक्षार, इमलीक्षार, अपामार्गक्षार, हल्दी का क्षार, लोह भस्म प्रत्येक औषधि द्रव्य २-२ भाग, शुद्ध गन्धक तथा शुद्ध पारद १-१ भाग समाविष्ट हैं। सर्वप्रथम शुद्ध पारद एवं शुद्ध गन्धक की कज्जली कल्पना विधि अनुसार कज्जली का निर्माण कर लें। तत्पश्चात् पलाश क्षार से लोह भस्म तक के औषधि द्रव्यों का चूर्ण कल्पना विधि अनुसार चूर्ण बना लें। उसके बाद कज्जली एवं चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह घोटें, जब सभी औषधि मिश्रित हो जाय तब चिकित्सा प्रयोगार्थ शीशी में सुरक्षित रख लें। इसे १ से २ ग्राम तक अथवा चिकित्सक के परामर्श अनुसार तक्र अथवा अश्मरीहर क्वाथ के अनुपान से दें।

उपयोग—यह विभिन्न प्रकार के अश्मरी और शर्करा रोग मे उपयोगी है। इससे मूत्र प्रवृत्ति होती है।

आमयिक प्रयोग—(१) मूत्र शर्करा की आत्ययिक अवस्था में अश्मरी कण्डन रस १ ग्राम को वरुणादि क्वाथ १५ मिलि. के साथ देने से लाभ होता है।

(२) अश्मरी की आत्ययिक अवस्था में अश्मरी कण्डन रस १ ग्राम, वेदनान्तक रस २५० मिग्रा. को अश्मरीहर क्वाथ १५ मिलि. के साथ दें।

(३) बस्तिवातजन्य मूत्रावरोध की आत्ययिक अवस्था में अश्मरी कण्डन रस १ ग्राम हजरतवेर पिष्टी १ ग्राम चन्द्रप्रभावटी ५०० मिग्रा. को चन्दनासव २०-मिलि. समान भाग जल के साथ देने से तुरन्त लाभ होता है।

५. अस्थिसंधानक लेप (रसतन्त्रसार और सिद्धयोग संग्रह)—

एलआ हीरावोल गुग्गुलु कुन्दरू रूमामस्तकी रेवन्दचीनी मेदा लकड़ी आम्राहरिद्रा सज्जीखार लोध्र तथा सरेश सभी औषधि द्रव्य समान मात्रा में समाविष्ट हैं। सर्वप्रथम सभी औषधि द्रव्यों को एकत्रित करके चूर्ण कल्पनानुसार वस्त्रगाढ़ चूर्ण बनावें। बाह्य प्रयोगार्थ इसमें पानी- पचगुण तैल अथवा लाक्षादि तैल मिलाकर गर्म करके लेप करना चाहिए।

आमयिक प्रयोग—(१) सद्यः अभिघात में अस्थिसंधानक लेप पंचगुण तैल मे मिलाकर लगायें।

(२) अस्थिभग्न अस्थिशोथ विभिन्न प्रकार के शोथ एवं शूल चोट मोच. एवं मूढ़मार में अस्थिसधानक लेप को धत्तूर पत्र स्वरस मे मन्दाग्नि से पकाकेर लेप करदें।

६. कनकासव (भैषज्य रत्नावली)—

इसे १० से १५ मिलि. तक बराबर पानी दें।

उपयोग—यह विभिन्न प्रकार के श्वास कास राजयक्ष्मा क्षतक्षीण जीर्ण ज्वर रक्तपित्त उरःक्षत इत्यादि व्याधियों में उपयोगी है। यह उष्ण होने से कफ का स्राव करने वाला शोथघ्न थोड़ा मादक वेदनाशामक और वल्य है। श्वास एव कास के लिये सर्वोत्तम औषधि है।

आमयिक प्रयोग—(१) श्वासाधिक्य में कनकासव १५ मिलि. में श्वासकुठार रस १/८ ग्रा. सोमकल्प चूर्ण १/२ ग्रा. भारग्यादि चूर्ण १/२ ग्रा. शिला सिन्दूर १/१६ ग्राम जल के अनुपान के साथ देने से श्वास के आक्रमण में तात्कालिक लाभ होता है।

(२) कफ प्रधान श्वास कास की आत्ययिक अवस्था में कनकासव १५ मिग्रा, शुद्ध टंकण ५०० मिग्रा. अपामार्ग क्षार १२५ मिग्रा, अर्क लवण १ ग्रा., कंटकारी लवण १ ग्रा. जल के अनुपान के साथ देने से तुरन्त लाभ करता है। कण्टकारी लवण के अभाव मे तम्बाकू क्षार का भी प्रयोग किया जा सकता है।

(३) विषम ज्वर में कनकासव १५ मिलि., महालक्ष्मीविलास रस नारदीय २५० मिग्रा., एम. पी. मिक्स

२ कैपसूल जल के अनुपान के साथ देने से अतिशीघ्र लाभ होता है। इससे ज्वर, अङ्गमर्द, शिराशूल, कंप तथा देहशीतता में तात्कालिक लाभ होता है।

(४) रक्तपित्त की आत्ययिक अवस्था में कनकासव १५ मिलि., चन्द्रकला रस २५० मिग्रा., बोल पर्पटी २५० मिग्रा., मुक्तापिष्टी १२५ मिग्रा. जल से दें।

(५) उदरशूल की आत्ययिक अवस्था में कनकासव १५ मिलि., वृहत् शङ्ख वटी १ ग्रा., सामुद्रादि चूर्ण १ ग्रा., शूल गजकेशरी रस २५० मिग्रा. पानी के अनुपान के साथ देने से वायु का अनुलोमन होकर शूल की तात्कालिक शान्ति होती है।

६. कर्पूर रस (भैषज्य रत्नावली)—

घटक द्रव्य एवं निर्माण विधि—इसमें कर्पूर, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध अहिफेन, नागरमोथा, इन्द्रयव तथा जायफल समान मात्रा में समाविष्ट है। सर्वप्रथम सभी औषधि द्रव्यों का चूर्ण निर्माण कर लें। तत्पश्चात् एक खरल में कर्पूर, शुद्ध हिंगुल तथा शुद्ध अहिफेन का चूर्ण डालकर अच्छी तरह घोटें। जब अच्छी तरह मिश्रित हो जाये तब उसमें नागरमोथा, इन्द्रयव तथा जायफल का चूर्ण डाल कर घोट लें। फिर आर्द्रक स्वरस अथवा पानी के साथ घोटकर २५०-२५० मिग्रा. की गोलियां बनाकर छाया शुष्क करके चिकित्सा प्रयोगार्थ शीशी में सुरक्षित रखलें।

मात्रा—१२५ से २५० मिग्रा. तक।

अनुपान—इसे शहद, तक्र, पानी अथवा रोगानुसार अन्य अनुपान के साथ देना चाहिये।

उपयोग—यह विभिन्न प्रकार के अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी-संग्रहणी, विसूचिका इत्यादि व्याधियों में ज्वरातिसार तथा बालातिसार में उपयोगी हैं।

आत्ययिक प्रयोग—(१) अतिसार की आत्ययिक अवस्था में कर्पूर रस २५० मिग्रा. वेकटेफार २ कैपसूल कुटजारिष्ट १० मिलि. उतने ही पानी के साथ दिन में तीन बार देने से अति शीघ्र लाभ होता है। वेकटेफार २ कैपसूल आयुर्वेदीय औषधि है। इसके निर्माता अश्विन फार्मस्युटिकल्स रोजकोट गुजरात हैं।

(२) ज्वरातिसार की आत्ययिक अवस्था में कर्पूर रस २५० मिग्रा. वृहत् कस्तूरी भैरव रस १२५ मिग्रा. बिल्वावलेह १० ग्रा. के साथ दिन में तीन बार दें।

(३) रक्तातिसार की आत्ययिक अवस्था में कर्पूर रस २५० मिग्रा. चन्द्रकला रस २५० मिग्रा. उशीरासव १५ मिलि. के साथ दिन में तीन बार देने से लाभ होता है। इसके सहायक औषधि के रूप में सुखदा कैपसूल एवं वेकटेफार कैपसूल २-२ दिन में तीन बार पानी के साथ दें।

(४) विसूचिका की आत्ययिक अवस्था में कर्पूर रस २५० मिग्रा. संजीवनी वटी २५० मिग्रा. मृत संजीवनी सुरा १० मिलि. नीबू स्वरस मिश्रित पानी के अनुपान के साथ देने से अतिशीघ्र लाभ होता है। आवश्यकतानुसार बार बार नारियल का पानी अथवा नीबू स्वरस मिश्रित जल रोगी को देना चाहिए।

(५) पक्व प्रवाहिका की आत्ययिक अवस्था में कर्पूर रस १२५ मिग्रा, जातीफलादि चूर्ण १ ग्रा., अहिफेनासव १० बूंद तक्र के अनुपान के साथ देने से आशुफलप्रद है।

(८) कर्पूरासव (भैषज्य रत्नावली)—

शुद्ध सुरा ४०० भाग, शुद्ध कर्पूर ३२ भाग, एला, नागरमोथा, शुण्ठी, अजमोद तथा विडङ्ग प्रत्येक औषधि द्रव्य ४-४ भाग समाविष्ट है। सर्व प्रथम शुद्ध कर्पूर से विडङ्ग तक के औषधि द्रव्यों का चूर्ण कल्पना अनुसार चूर्ण निर्माण करके उसे शुद्ध सुरा में मिलाकर संधान हेतु पात्र में भरकर संधान विधि अनुसार संधान करके एक महिना अथवा एक सप्ताह बाद उसे छानकर रख लें। इसे ५ से १० बूंद स्वच्छ जल के साथ देना चाहिए। विशूचिका तथा अतिसार में बहुत ही उपयोगी औषधि है। यह दन्तशूल. उदर शूल तथा छर्दि में भी उपयोगी है।

आत्ययिक प्रयोग—(१) विशूचिका की आत्ययिक अवस्था में कर्पूरासव १०-१० बूंद संजीवनी वटी १-१ गोली नींबू के रस में आधा-आधा घण्टा पर दें।

(२) कृमिदन्तशूल में कर्पूरासव आवश्यक मात्रा में रुई में भिगोकर दांत के नीचे रखें।

(३) छर्दि (उल्टी) की आत्ययिक अवस्था में कर्पूरासव १०-१० बूंद, छर्दिरिपु चूर्ण १ ग्रा., मयूर पिच्छ भस्म १/२ ग्रा., संजीवनी वटी १-१ गोली नींबू के रस

में १-१ घण्टे पर देने से उल्टी में अतिशीघ्र लाभ होता है।

(४) उदरशूल की आत्ययिक अवस्था में कर्पूरासव १०-१० बूंद, बृहत शंखवटी २-२ गोली गरम पानी के साथ २-२ घण्टे से दें। पेट दर्द में चमत्कारिक लाभ होगा।

(५) अतिसार की सद्य चिकित्सा में कर्पूरासव १० बूंद, कर्पूर रस २५० मिग्रा. बिल्वावलेह १० ग्राम के साथ देने से शीघ्र लाभ होता हैं।

(६) कर्पूरहिंगुवटी (रसोद्धार तन्त्र)—

कर्पूर, हींग, कंकोल, कालीमिर्च, शुण्ठी, पिप्पली सभी औषधि द्रव्य समान मात्रा में समाविष्ट हैं। सर्व प्रथम सभी औषधि द्रव्यों का चूर्ण कल्पना विधि अनुसार चूर्ण तैयार करके एकत्र मिलाकर जल के साथ मर्दन करके १००-१०० मिग्रा. की गोलियां बना लें। तत्पश्चात् छाया शुष्क करके चिकित्सा प्रयोगार्थ शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें। १ से ४ गोली पानी, शहद, आर्द्रक स्वरस, दूध, तक्र इत्यादि रोगानुसार अनुपान के साथ देना चाहिए।

उपयोग – कास, श्वास, सन्निपातज ज्वर, बुद्धिभ्रम मूर्च्छा, योषापस्मार, विषूचिका, उदरशूल, गुल्म, अतिसार प्रवाहिका दन्तशूल आदि में कर्पूर हिंगुवटी उपयोगी है।

आत्ययिक प्रयोग—(१) कृमिजन्य दन्तशूल की आत्ययिक अवस्था में दांत के गड्ढे में रखें।

(२) गुल्म की आत्ययिक अवस्था में प्रति आधा घन्टा पर कर्पूर हिंगुवटी की एक-एक गोली गरम पानी अथवा नींबू के रस के साथ देने से तथा गुल्म स्थान पर कर्पूर हिंगुवटी का गाढ़ा लेप करके ऊपर रूई या कपड़ा रखकर सेंक करने से शीघ्र लाभ होता है।

(३) एप्पेण्डिसाईटिस की सद्यः चिकित्सा में कर्पूर हिंगुवटी २ से ४ गरम पानी के साथ दिन मे ३ बार देने से वायु का अनुलोमन होकर शूल का अतिशीघ्र प्रशमन होता है। इसकी सहायक औषधि के रूप में अग्नितुण्डी वटी, त्रिफला गुग्गुलु, अभयारिष्ट एवं शिवाक्षार पाचन चूर्ण चिकित्सक को युक्तिपूर्वक देना चाहिए।

(४) हिक्का की आत्ययिक अवस्था में कर्पूर हिंगुवटी का चूर्ण बनाकर प्रधमन नस्य देने से हिक्का का वेग तुरन्त शांत हो जाता है। इसकी सहायक औषधि के रूप में मयूरपिच्छ भस्म, छर्दिरिपु चूर्ण वैश्वानर चूर्ण, कर्पूर हिंगुवटी तथा लशुनादि वटी युक्तिपूर्वक देना चाहिए।

(५) उदरशूल की आत्ययिक अवस्था में कर्पूर हिंगुवटी २ से ४ गोली तक दिन में तीन बार गरम पानी के साथ देने से तथा उदर प्रदेश पर कर्पूर हिंगुवटी को जल में मिलाकर लेप करने से उदर शूल तुरन्त शांत होता है।

(१०) कल्पतरु रस (रसराज सुन्दर)—

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध मनःशिला, विमल भस्म, शुद्ध टंकण प्रत्येक औषधि द्रव्य १-१ भाग, शुण्ठी २ भाग, मरिच २ भाग, पिप्पली २ भाग, तथा मरिच १० भाग समाविष्ट हैं। भावना द्रव्य के रूप में आर्द्रक स्वरस समाविष्ट हैं। सर्व प्रथम शुद्ध पारद तथा शुद्ध गंधक को एक खरल में एकत्रित करके कज्जली कल्पना अनुसार कज्जली बना लें। तत्पश्चात् शुद्ध वत्सनाभ से मरिच तक के सभी औषधि द्रव्य का अलग-अलग चूर्ण कल्पना अनुसार चूर्ण निर्माण करले। कज्जली एवं चूर्ण को एक खरल मे एकत्रित करके छः घन्टा तक आर्द्रक स्वरस में घोंटकर २२०-२५० मिग्रा. की गोलियां बनाकर छायाशुष्क करलें। २५० से ५०० मिग्रा. तक आर्द्रक स्वरस, शहद अथवा उष्णोदक के साथ दें।

उपयोग–यह वातज और पित्तज विकारों में उपयोगी हैं। इसे शहद और आर्द्रक स्वरस के साथ देने से वातज ज्वर, श्वास, कास, अग्निमांद्य विषूचिका मुख मे लालास्राव की अधिकता तथा ठंडी लगने में उपयोगी हैं। यह आमपाचक एवं अग्निवर्धक हैं। कफवात जन्य शिरःशूल तथा मूर्च्छा में इसका नस्य देने से लाभ होता है।

आत्ययिक प्रयोग—(१) कफज शिरःशूल की आत्ययिक अवस्था में कल्पतरु रस का प्रधमन नस्य देने से अतिशीघ्र कफज शिरःशूल में लाभ होता है।

(२) मूर्छा तथा संन्यास की आत्ययिक अवस्था में कल्पतरु रस का प्रधमन नस्य देने से तथा कल्पतरु रस २५० मिग्रा. दिन में तीन बार आर्द्रक स्वरस अथवा शहद के अनुपान के साथ देने से आशुकारी लाभ होता है।

(३) शीताधिक्य की आत्ययिक अवस्था में कल्पतरु रस २५० मिग्रा. तुलसी स्वरस अथवा आर्द्रक स्वरस या पलाण्डु (प्याज) के स्वरस में दिन में तीन बार दें।

(४) विषम ज्वर की आत्ययिक अवस्था मे कल्पतरु

रस २५० मिग्रा. गोदन्ती भस्म २०० मिग्रा., करंज बीज चूर्ण १ ग्रा. तुलसी पत्र स्वरस के अनुपान के साथ तथा एम. पी. सिक्स २ केपसूल तीन बार उष्णोदक से दें।

(५) समकश्वास की आत्ययिक अवस्था में कल्पतरु रस २५० मि.ग्रा., शिलासिन्दूर ३० मिग्रा., सोमकल्प चूर्ण ५०० मिग्रा., कनकासव १५ मिली. पानी के साथदें।

(११) चन्द्रकला रस (आयुर्वेदीय रसशास्त्र)—

शुद्ध पारद, ताम्र भस्म, कटुकी, गुडूची सत्व, पित्तपापड़ा, खस, चमेली पुष्प, चन्दन, सारिवा प्रत्येक औषधि १-१ भाग तथा शुद्ध गंधक २ भाग समाविष्ट हैं। भावना द्रव्य के रूप में नागरमोथा, दाडिम, दूर्वा, कमल, सहदेवी, कुमारी, पित्तपापड़ा, मरुवा, शतावरी प्रत्येक की १-१ भावना समाविष्ट हैं।

सर्व प्रथम शुद्ध पारद एवं शुद्ध गंधक को खरल में अच्छी तरह घोटकर कज्जली कल्पना अनुसार कज्जली बना लें। तत्पश्चात् उसमें ताम्र भस्म एवं अभ्रक भस्म मिलाकर अच्छी तरह घोटकर मिश्रण तैयार करलें। फिर भावना द्रव्यों का स्वरस या क्वाथ लेकर प्रत्येक द्रव्य की अलग-अलग एक-एक भावना दें। कटुकी, गुडूची सत्व, पित्त पापड़ा, खस, चमेली पुष्प, चन्दन, सारिवा इन द्रव्यों को कूटकर कपड़छन चूर्ण तैयार कर मिला लें। फिर द्राक्षादि गण की औषधियों के क्वाथ की एक भावना देकर एक गोला बना लें। इस गोले को आम के पत्तों में लपेटकर अनाज के ढगले में रख दें। सात दिन के बाद गोले को बाहर निकालकर आम के पत्ते दूर करके पुनः द्राक्षादि गण की औषधियों की १-१ भावना देकर चना के बराबर गोलियां बनाकर छाया शुष्क करके रखलें। इसे १ से ४ गोली तक शीतल जल, दूध, घी, द्राक्ष का पानी एवं गुलकन्द आदि रोगानुसार दें।

उपयोग—यह विभिन्न प्रकार के रक्तप्रदर, मूत्रकृच्छ्र अश्मरी, प्रमेह, अम्लपित्त, अन्तर दाह, बाह्य दाह, भ्रम, मूर्च्छा, रक्त की उल्टी तथा ज्वर आदि रोगों में उपयोगी हैं। यह रसायन शीतल होने पर भी जठराग्नि मंद नहीं करता तथा वातपित्त प्रकोप एवं उर्ध्वगामी रक्तपित्त रोग में तथा ग्रीष्म ऋतु में भी शान्तप्रद असर करता है।

आत्ययिक प्रयोग—(१) रक्त प्रदर की आत्ययिक अवस्था में चन्द्रकला रस १/२ ग्रा., बोलपर्पटी १/४ ग्रा., प्रवालपिष्टी १/४ ग्रा., शोणितार्गल रस १/४ ग्रा., अशोकारिष्ट १५ मिली. समानभाग जल के साथ दिन में तीन बार देने से योनि द्वारा रक्तस्राव तात्कालिक बन्द हो जाता है। इसमें पथ्य आहार के रूप में दूध भात, दूध रोटी के अतिरिक्त कुछ नहीं देना चाहिए।

(२) महाताप ज्वर की आत्ययिक अवस्था में चन्द्रकला रस १/२ ग्रा. प्रवाल भस्म १/४ ग्राम, लक्ष्मीनारायण रस १/४ ग्रा., पटोलपत्र स्वरस के अनुपान के साथ ४-४ घण्टा पर देने से तथा कपाल प्रदेश पर चन्द्रकला रस में घी मिलाकर बार-बार लेप करने से ज्वर अतिशीघ्र उतर जाता है।

३. नासामार्गीय रक्तस्राव की आत्ययिक अवस्था में चन्द्रकला रस आधा ग्राम, गोदन्ती भस्म १ ग्राम, प्रवाल पिष्टी १/४ ग्राम, नागपुष्प चूर्ण १ ग्राम वासा स्वरस के अनुपान के साथ दिन में तीन बार देने से एवं दाडिम पुष्प के स्वरस को अजा दुग्ध में मिलाकर नस्य देने से रक्तस्राव शीघ्र बन्द हो जाता है।

४. रक्तपित्त की आत्ययिक अवस्था में चन्द्रकला रस आधा ग्राम, मोतीपिष्टी १/८ ग्राम वासा स्वरस के अनुपान के साथ ४-४ घण्टा पर देने से रक्त का स्राव अति शीघ्र बन्द हो जाता है।

५. उष्णवात जो मूत्रकृच्छ्र का एक प्रकार है। उसमें चन्द्रकला रस आधा ग्राम नारियल के पानी के साथ ४-४ घण्टा पर देने से मूत्रदाह की शीघ्र शान्ति होती है तथा मूत्रप्रवृत्ति भी सम्यक् हो जाती है।

१२. छर्दिरिपु चूर्ण (अनुभूत)—

इसमें शटी का मूल समाविष्ट है। शटी का प्रतिनिधि द्रव्य कचूर है। सर्वप्रथम शटी के मूल को चूर्ण कल्पना विधि अनुसार चूर्ण निर्माण करके चिकित्सा प्रयोगार्थ शीशी में भरकर सुरक्षित रखलें। इसे आधे से १ ग्रा. तक शहद, जामुन पत्र स्वरस अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

उपयोग—यह अरुचि, वमन, उदरशूल, श्वास, कास, इत्यादि विकारों में उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग—(१) छर्दि की आत्ययिक अवस्था में छर्दिरिपु चूर्ण १ ग्रा., मयूर पिच्छ भस्म आधा ग्रा. शहद में दो-दो घण्टे के अन्तर पर चटाने से तथा संजीवनी वटी १-१ गोली शहद एवं नीबू के रस में १-१ घंटे के अन्तर पर देने से उल्टी में आशुकारी फलप्रद है।

(२) हिक्का की आत्ययिक अवस्था में छर्दिरिपु चूर्ण १ ग्रा., पिप्पली मूल चूर्ण १ ग्रा. शहद में १-१ घण्टे के अन्तर पर चटाने से तथा छर्दिरिपु चूर्ण को पानी में मिला नस्य देने से हिक्का का वेग तुरन्त शांत होता है।

१३. जात्यादि तैल (शार्ङ्गधर संहिता)—

इसमें जातिपत्र, निम्बपत्र, तिक्त पटोल पत्र, करंज पत्र, मोम, यष्टिमधु, कूठ, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, त्रायमाणा, मंजिष्ठा, पद्माक, लोध्र, हरीतकी, नीलोत्पल, मयूरतुत्थ, सारिवा, करंज बीज प्रत्येक औषधि द्रव्य १-१ भाग, तिल तैल ७२ भाग, पानी २८८ भाग समाविष्ट हैं। सर्वप्रथम जाति पत्र से करंज बीज तक के औषधि द्रव्यों का कल्क कल्पना अनुसार कल्क बनाकर उसमें तिल तैल एवं पानी मिलाकर स्नेहपाक अनुसार सिद्ध करके सुरक्षित रखलें।

उपयोग—नाड़ी व्रण, स्फोट, कच्छु, सद्योव्रण, दग्ध व्रण, नख तथा दन्त अभिघातजन्य व्रण, दुष्ट व्रण इत्यादि में सिंग, शोधन, रोपण तथा अभ्यङ्ग हेतु उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग—(१) सद्यव्रण के रक्तस्राव में व्रण पर सर्वप्रथम शुद्ध सौराष्ट्री का चूर्ण लगाकर जात्यादि तैल में रुई भिगोकर रखकर पट्टबन्धन करने से तात्कालिक रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

(२) अग्निदग्ध व्रण की आत्ययिक अवस्था में व्रण पर जात्यादि तैल की धार करने से अथवा बार-बार जात्यादि तैल लगाने से या मलमल के कपड़े को जात्यादि तैल में भिगोकर व्रण पर रखने से दाह में लाभ होता है।

(३) अभिघात की आत्ययिक अवस्था में जात्यादि तैल का अभ्यङ्ग करके सेक करने से अथवा जात्यादि तैल को गर्म करके वेदना स्थान पर धार करने से शूल में अतिशीघ्र लाभ होता है तथा शोथ एवं पाक नहीं होताहै।

(४) विस्फोटक के व्रण में जात्यादि तैल में शुद्ध टंकण मिलाकर लगाने से दाह की शान्ति होती है।

१४. यष्टिमधु चूर्ण (भावप्रकाश)—

मुलेठी की जड़ को सुखाकर चूर्ण कल्पना विधि अनुसार बना सुरक्षित रखलें। इसे १ से ४ ग्रा. तक पानी दूध, घी, शहद आदि रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

उपयोग—श्वास, कास, ज्वर, विबन्ध, स्वरभेद, अम्लपित्त आदि व्याधियों में यष्टिमधु चूर्ण उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग—(१) सद्यव्रण में से रक्तस्राव हो रहा हो उस स्थान पर यष्टिमधु चूर्ण रखकर पट्टबन्धन करने से रक्तस्राव तुरन्त बन्द हो जाता है।

(२) शिरःशूल की आत्ययिक अवस्था में यष्टिमधु चूर्ण १ ग्रा. शुद्ध वत्सनाभ १/४ ग्रा. को लेकर खरल में घोटकर अतिसूक्ष्म चूर्ण तैयार कर लें। उसमें आवश्यक मात्रा में सरसों तैल मिलाकर दो से छः बूंद तक नस्य देने से विभिन्न प्रकार के शिरःशूल में लाभ होता है।

(३) अर्धावभेदक की आत्ययिक अवस्था में अतिसूक्ष्म यष्टिमधु चूर्ण में शहद मिलाकर नस्य दें।

(४) रक्त की उल्टी होती हो ऐसी परिस्थिति में यष्टिमधु चूर्ण १ ग्रा. छर्दिरिपु चूर्ण १ माशा चन्दन चूर्ण १ माशा शोणितार्गल रस २ रत्ती वासा स्वरस के साथ दिन में तीन बार देवें।

(५) शीतपित्त की आत्ययिक अवस्था में यष्टिमधु चूर्ण हरिद्रा चूर्ण अजमोद चूर्ण तीनों १-१ माशे दिन में ३ बार गर्म पानी से और सोड़ा बाई कार्ब अर्थात् खाने का सोडा पानी में मिलाकर सम्पूर्ण शरीर में लगावे।

१५. शुद्ध टंकण क्षार (आयुर्वेदीय रसशास्त्र)—

इसमें टंकण समाविष्ट है। सर्वप्रथम एक प्रज्वलित सगड़ी पर लोहे की कढ़ाई रक्खें। उसमें टंकण डालकर करछुल से धीरे-२ चलाते रहें। जब टंकण सफेद फूल जैसे अथवा लाई जैसे हो जाय तब उसे नीचे उतार कर चूर्ण कल्पना विधि अनुसार चूर्ण कर लें। इसे १/२ से १ माशे तक अथवा चिकित्सक के परामर्श अनुसार शहद पानी अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

उपयोग—शुद्ध टंकण कटु उष्ण तीक्ष्ण रूक्ष और सारक होने के कारण कफघ्न हृद्य और वातज व्याधियों में हितकारी है। यह कास श्वास में उपयोगी है। यह स्थावर विष का प्रतिविष है। यह जठराग्नि प्रदीप्त करने

में सहायभूत है। यह आर्तव प्रदीप्त को सम्यक् करता है तथा मूढगर्भ प्रवर्तक है।

आमयिक प्रयोग—(१) संक्रामक वातकज्वर की आत्ययिक अवस्था में शुद्ध टंकण १ माशे हिंगुलेश्वर रस १ रत्ती तुलसी पत्र स्वरस के साथ ३ बार दें।

(२) सद्यव्रण के रक्तस्राव में व्रण पर शुद्ध टंकण आवश्यक मात्रा में रखकर पट्टबन्धन करने से तात्कालिक रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

(३) ब्रोन्को न्यूमोनिया की आत्ययिक अवस्था में शुद्ध टंकण १ माशे मृगश्रृङ्ग भस्म आधा माशे श्वासकास चिन्तामणि रस २ रत्ती शहद या आर्द्रक स्वरस के अनुपान से दिन में तीन-चार देने से लाभ होता है।

(४) बाल धनुर्वात की आत्ययिक अवस्था में शुद्ध टंकण आधा माशे लक्ष्मीनारायण रस १/२ रत्ती- दशमूल क्वाथ १० मिलि. में दिन में तीन बार दें।

(५) मूढगर्भ की आत्ययिक अवस्था में शुद्ध टंकण १ माशे वंशपत्र क्वाथ २० मिलि. के साथ देने से २० ही मिनट में मूढगर्भ की प्रसुप्ति हो जाती है। वंशपत्र क्वाथ के अभाव में दशमूल क्वाथ, उष्णोदक या शहद लें।

१६. दंष्ट्रा पीड़ाहरि वटी (रसोद्धारतंत्र)—

इसमें अकरकरा कर्पूर इन्द्रायणमूल गुग्गुलु तथा वायविडङ्ग समान मात्रा में सभी औषधि द्रव्य का चूर्ण कल्पना अनुसार चूर्ण निर्माण कर अरिष्टक के स्वरस अथवा क्वाथ की एक भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाकर छायाशुष्क करके रखलें। आधी से एक गोली देनी चाहिये।

उपयोग—यह विभिन्न दन्तशूल में उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग—१. विभिन्न प्रकार की आत्ययिक अवस्था में दांत के नीचे १ गोली रखने से तात्कालिक दन्तशूल में आराम होता है।

२. दन्तहर्ष के आत्ययिक अवस्था में दंष्ट्रा पीड़ाहरि वटी शुद्ध सौराष्ट्री और सैंधव चूर्ण को आवश्यक मात्रा में लेकर मंजनवत् करने से आशुकारी लाभ होता है।

१७. निद्रोदय रस (रसयोग सागर)—

इसमें रससिंदूर वंशलोचन शुद्ध अहिफेन प्रत्येक औषधि द्रव्य १-१ भाग धातकी पुष्प आमलकी प्रत्येक औषधि द्रव्य ४-४ भाग बीजरहित मुनक्का द्राक्ष २४ भाग समाविष्ट हैं। भावना द्रव्य के रूप में भांग का स्वरस अथवा क्वाथ समाविष्ट हैं। सर्वप्रथम रससिंदूर से आमलकी तक के औषधि द्रव्यों का चूर्ण निर्माण कर भांग के स्वरस या क्वाथ की तीन भावना दें। भावना देने के बाद उसमें बीजरहित मुनक्का द्राक्ष मिलाकर अच्छी तरह घोटकर १- माशे की गोलियां बना छाया-शुष्क कर आधी से एक माशे दूध के से दें।

उपयोग—यह हानिरहित निद्राप्रद औषधि है। यह शुक्रस्तम्भन करता है और बल वीर्य वर्ण और तेज की वृद्धि करने में उपयोगी है। एन्टीस्पाज्मोडिक औषधि की जगह पर इसका प्रयोग करना हितावह है।

आमयिक प्रयोग—१. अनिद्रा में निद्रोदय रस १ माशे रात्रि को सोते समय उष्ण दूध के साथ दें।

२. कृमिजन्य दन्तशूल की आत्ययिक अवस्था में निद्रोदय रस १ माशे पानी के साथ देने से और अहिफेनासव को रुई में भिगोकर दांत के नीचे रखने से दन्तशूल में तात्कालिक लाभ होता एवं नींद आ जाती है।

३. मानसिक चिन्ता के कारण उत्पन्न उच्च रक्तचाप की आत्ययिक अवस्था में निद्रोदय रस १ ग्राम एलार्ट २ कैपसूल के साथ देने से उच्च रक्तचाप मोमंम हो जाता है तथा नींद भी अच्छी आती है।

४. शिर.शूल कर्णशूल कटिशूल अभिघातजन्य शूल अग्निदग्धजन्य शूल सद्यव्रणजन्य शूल आदि विभिन्न प्रकार के शूलों की आत्ययिक अवस्था में निद्रोदय रस १ माशे पानी उष्ण दूध या रोगानुसार अनुपान के साथ देने से शूल में लाभ होता है तथा तुरन्त नींद आ जाती है।

५. गार्डिनल पोटेशियम ब्रोमाइड आदि क्षारकिय क्षार निद्राप्रद औषधियों की जगह पर निद्रोदय रस का प्रयोग उत्तम एवं शीघ्र फलप्रद है। निर्दोष निद्राप्रद है।

१८. निर्मली बीज—

निर्मली को संस्कृत में कतक पय.प्रसादी अम्बुप्रसादी तथा हिन्दी में निर्मली कहते हैं। इसे लेटिन में स्ट्रिक्नस पोटेटोरम (Strychnos potatorum) कहते हैं तथा

अंग्रेजी में क्लियरिंग नट (clearing nut) कहते हैं। चिकित्सालय में निर्मली का बीज उपयोगी है। मात्रा—बाह्य प्रयोगार्थ आवश्यकतानुसार।

आमयिक प्रयोग—बिच्छू विष की यह सर्वोत्तम औषध है। रोगी को जहां बिच्छू का दंश हो उस स्थान पर निर्मली बीज चूर्ण को पानी में मिलाकर लेप करने से तात्कालिक लाभ होता है। रोगी के बिच्छू के दंश स्थान पर इसका बीज घिसकर लगाने से चिपक जाता है। जब निर्मली का बीज विष खींच लेता है तब बीज अपने आप गिर जाता है। इस प्रयोग द्वारा वैद्य श्री शोभन वसांणी जी ने हजारों बिच्छू के दंश के रोगियों को तात्कालिक अच्छा किया है। इसका मैंने भी अनुभव किया है।

१९. पथ्यादि क्वाथ (शार्ङ्गधर संहिता)—

इसमें हरीतकी, बिभीतकी, आमलकी, हरिद्रा, किरा-ततिक्त तथा नीम के पेड की गुडूची समान मात्रा में समाविष्ट हैं। सर्वप्रथम सभी औषधि द्रव्यों को एकत्रित करके यवकूट चूर्ण का निर्माण करके तत्पश्चात् क्वाथ कल्पना अनुसार क्वाथ बना छानकर रखलें। २० से ४० मिलि. तक गुड़ और पानी के साथ देना चाहिए।

उपयोग—यह शिर शूल, भ्रूशूल, शङ्खशूल, कर्णशूल, अर्धावभेदक, सूर्यावर्त, शङ्खक, दन्तपात, दन्त पीड़ा, नक्तान्ध्य पटल, शुक्र, नेत्र पीड़ा विकारों में उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग—१. अर्धावभेदक शिर:शूल में पथ्यादि क्वाथ ३० मिलि. में शिर:शूलादि वज्र रस २५० मिग्रा. देने से तथा पथ्यादि क्वाथ का नस्य देने से आधाशीशी शिर:शूल में तात्कालिक लाभ होता है।

२. सूर्यावर्त शिर:शूल में पथ्यादि क्वाथ ३० मिलि. में महालक्ष्मीविलास रस १२५ मिग्रा., अपामार्ग क्षार १२५ मिग्रा., गोदन्ती भस्म ५०० मिग्रा. देने से तथा शुण्ठी चूर्ण का प्रधमन नस्य देने से सूर्यावर्त शिर:शूल में अतिशीघ्र लाभ होता है।

३. कर्णशूल में पथ्यादि क्वाथ ३० मिलि. के साथ वेदनान्तक रस १२५ मिग्रा., वातविध्वंसन रस १२५ मि. ग्रा. देने से तथा क्षार तैल से कर्णपूरण करने से एवं पथ्यादि क्वाथ में गुड़ मिलाकर नस्य देने से कर्णशूल में आशुकारी लाभ होता है।

२०. पंचगुण तैल (रसतन्त्रसार और सिद्धयोग संग्रह)—

इसमें हरीतकी, विभीतकी, आमलकी, प्रत्येक औषधि द्रव्य ५-५ भाग, निम्बपत्र, निर्गुण्डी पत्र प्रत्येक औषधि द्रव्य १४ १४ भाग, पानी ३५० भाग, तिल तैल ८० भाग गुग्गुलु, राल, शिलारस, गंधा बैरोजा प्रत्येक औषधि द्रव्य ४-४ भाग, कर्पूर ५ भाग, कार्बोलिक एसिड २॥ भाग समाविष्ट है। सर्वप्रथम हरीतकी से निर्गुण्डी पत्र तक के सभी द्रव्यों का यवकुट चूर्ण तैयार करके पानी मिलाकर क्वाथ कल्पना विधि अनुसार क्वाथ तैयार कर लें। क्वाथ में तिल तैल से मोम तक के सभी द्रव्य मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब खरपाक हो जाय तब नीचे उतारकर छान रखलें। कर्पूर एवं कार्बोलिक एसिड को एक शीशी में भरकर रखलें। जब उसका पानी जैसा प्रवाही तैयार हो जाय तब उसे तैल में मिलाकर शीशी में सुरक्षित रख लें।

उपयोग—आगन्तुक व्रण, अग्निदग्ध व्रण, संधिवात, कर्णशूल, दन्तशूल आदि में पंचगुण तैल उपयोगी हैं।

आमयिक प्रयोग—(१) शिर:शूल की आत्ययिक अवस्था में पंचगुण तैल ५-५ बूंद नाक में डालने अर्थात् नस्य देने से तथा मस्तिष्क प्रदेश पर पंचगुण तैल का अभ्यङ्ग करके सेक देने से तुरन्त शिर:शूल मे लाभ होता है। इसकी सहायक औषधि के रूप में शिर:शूलादि-वज्र रस ५०० मिग्रा. पथ्यादि क्वाथ ३० मिली. के अनुपान के साथ दिन में तीन बार देना चाहिए।

(२) कान में कोई जीव जन्तु चला गया हो इसके कारण उत्पन्न कर्णशूल की आत्ययिक अवस्था में पंचगुण तैल से कर्णपूरण करने से कान में गया हुआ जीव-जन्तु तुरन्त मर जाता है जिससे कर्णशूल में लाभ होता है।

(३) सद्य: व्रण में से रक्तस्राव हो रहा हो ऐसी अवस्था में यष्टिमधु चूर्ण व्रण पर रख कपड़ा पर पंचगुण तैल लगाकर पट्टबंधन करने से तात्कालिक रक्तस्राव बन्द हो जाता है। तत्पश्चात् पंचगुण तैल का ड्रेसिङ्ग करें।

(४) कृमिजन्य दन्तशूल की आत्ययिक अवस्था में दांत के ऊपर पंचगुण तैल में भिगोकर रुई रखने से दन्त शूल अर्थात् दांत के दर्द में तुरन्त आराम मिलता है।

संधिशूल, कटिशूल, पार्श्वशूल आदि शूलों में पंचगुण

तेल की मालिश करके सेक करें ।

(५) अग्निदग्ध की आत्ययिक अवस्था में सद्यः अग्नि दग्ध व्रण पर पंचगुण तेल बार-बार लगाने से दाह की शीघ्र शांति होती है तथा पूय की उत्पत्ति नहीं होती है ।

(२१) वृहत् कस्तूरी भैरव रस (भैषज्य रत्नावली)—

घटक द्रव्य तथा निर्माण विधि—इसमें कस्तूरी, कपूर, ताम्र भस्म, धातकी पुष्प, कपिकच्छु बीज, रौप्य भस्म, सुवर्ण भस्म, मोती पिष्टि या भस्म, प्रवाल भस्म, लौह भस्म, वायविडङ्ग, नागरमोथा, शुण्ठी, उशीर, शुद्ध हरताल या रसमाणिक्य, अभ्रक भस्म सभी औषधि द्रव्य समान मात्रा में समाविष्ट हैं । भावना द्रव्य के रूप में अर्कपत्र स्वरस समाविष्ट हैं । सर्व प्रथम सभी काष्ठ औषधि का चूर्ण कल्पना अनुसार चूर्ण निर्माण कर लें । तत्पश्चात् एक खरल में ताम्रभस्म एवं रौप्य भस्म को एक खरल में डालकर घोंट लें । जब अच्छी तरह मिश्रित हो जाय तब उसमें सुवर्ण भस्म डालकर घोंट लें । इसी क्रम से सभी भस्मों को मिलाकर घोंट लें । तत्पश्चात् काष्ठौषधि मिलाकर घोटते रहें । उसके बाद दो दिन तक अर्क पत्र स्वरस डालकर भावना दें । फिर उसमें कस्तूरी एवं कपूर मिलाकर पुनः एक दिन अर्क पत्र स्वरस की भावना देकर २५०-२५० मिग्रा. की गोलियाँ बनाकर रखलें ।

मात्रा—२५० से ५०० मिग्रा. तक आर्द्रक स्वरस, पान के स्वरस तथा देवदार्व्यादि क्वाथ के साथ दें ।

उपयोग—यह सन्निपात ज्वर, प्रलाप, तन्द्रा, नाड़ी क्षीणता इत्यादि विकारों में उपयोगी हैं । जीरक तथा बिल्व चूर्ण और शहद के अनुपान के साथ यह अतिसार एवं ग्रहणी में भी उपयोगी हैं ।

आत्ययिक प्रयोग—(१) टाइफाइड ज्वर में वृहत् कस्तूरी भैरव रस १२५ मिग्राः आर्द्रक एवं शहद के अनुपान के साथ चार-चार घण्टे पर दें ।

(२) विषम ज्वर में वृहत् कस्तूरी भैरव रस १२५ मिग्रा. एम. पी. सिवस २ कैप्सूल सुदर्शन फांट के साथ दिन में तीनबार देने से सद्यः लाभ होता है । एम. पी. सिवस आयुर्वेदीय औषधि हैं । इसके निर्माता वासु फार्मास्युटिकल्स प्रा. लि. वाजुवा वडोदरा गुजरात हैं ।

(३) वातज्वर में वृहत् कस्तूरी भैरव रस १२५ मिग्रा. हिंगु कर्पूर वटी २५० मिग्रा. शहद के अनुपान के साथ दिन में तीन बार दें ।

(४) इन्फ्लुएन्जा में वृहत् कस्तूरी भैरव रस १२५ मिग्रा. त्रिभुवन कीर्ति रस १२५ मिग्रा. गोदन्ती भस्म २५० मिग्रा. शहद और आर्द्रक स्वरस के साथ देने से तात्कालिक लाभ होता है । उपरोक्त योग प्रतिश्याय, तीव्र शिरःशूल तथा असह्य सर्वाङ्गशूल में भी सद्यः फलप्रद हैं ।

(५) न्यूनरक्तचाप में वृहत् कस्तूरी भैरव रस १२५ मिग्राः, गोदन्ती भस्म २५० मिग्रा., सूतशेखर रस १२५ मिग्राः, कणामूल चूर्ण आधा ग्रा. शहद अथवा दूध के अनुपान के साथ दिन में तीन बार देने से तथा अर्जुनारिष्ट १० मिली. द्राक्षासव १० मिली. समान भाग जल के अनुपान के साथ दिन में ३ बार दें ।

(२२) वृहत् शङ्खवटी (भावप्रकाश)—

इसमें स्नुही क्षार, अर्कक्षार, चिंचाक्षार, अपामार्ग क्षार, कदली क्षार, तिल क्षार, पलास क्षार १-१ भाग । पंच लवण २० भाग, स्वर्जिका क्षार, यव क्षार, टंकण, शंख के टुकड़े पिप्पली ४-४ भाग । शुण्ठी १२ भाग, मरिच ८ भाग । शुद्ध हींग, पिप्पली मूल, चित्रक मूल, अजवायन, जीरक, जायफल, लवंग २-२ भाग । शुद्ध गंधक, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध टंकण, शुद्ध मनःसिल १-१ भाग । नींबू स्वरस ६४ भाग तथा चुक्र १६ भाग समाविष्ट हैं । सर्व प्रथम स्नुहीक्षार से शुद्ध टंकण तक के सभी औषधि द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करके एकत्र करके थोड़े नींबू के रस में डालकर रख लें । तत्पश्चात् शंख के टुकड़ों को अग्नि पर तपा-तपा कर सात बार नींबू के रस में बुझावें । शंख के टुकड़े नींबू के रस में द्रवित हो जायें तब उसको पूर्वोक्त औषधियों के द्रावण में मिला देवें । तब शुण्ठी से शुद्ध मनःशिल तक के सभी द्रव्यों को विधिवत एकत्र मिलाकर ऊपर के द्रावण में मिला देवें । पीछे उसमें आवश्यकतानुसार १६ भाग जितना चुक्र (खट्टी कांजी या खट्टा सिरका या तीन दिन की खट्टी छाछ) डालकर अच्छी तरह घोटकर १-१ ग्राम की गोलियां बना छाया शुष्क कर रखलें । इसे १ से ३ गोली तक अथवा चिकित्सक के परामर्श अनुसार तक्र, जल अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देना चाहिए । यह अजीर्ण, शूल, विसूचिका आदि

पाचन संस्थानगत विकारों में उपयोगी हैं।

आमयिक प्रयोग—(१) परिणामशूल की आत्ययिक अवस्था में वृहत् शंखवटी २-२ गोली प्रति दो घण्टे पर उष्णोदक के साथ देने से आशुकारी लाभ होता है।

(२) विशूचिका की आत्ययिक अवस्था में वृहत् शंख वटी २-२ गोली प्रति दो घण्टा पर नींबू के रस के साथ देने से तथा मृत संजीवनी सुरा ५ मिली. नारियल के पानी अथवा उष्णोदक के साथ २-२ घण्टे पर दें।

(३) उदरशूल की आत्ययिक अवस्था में वृहत् शंख वटी २०० मिग्रा., सामुद्रादि चूर्ण २ ग्राम, कनकासव १० मिली. के साथ देने से अतिशीघ्र शूल में लाभ होता है।

(४) पक्व अतिसार की आत्ययिक अवस्था में वृहत् शंखवटी २०० मिग्रा., कर्पूर रस २५० मिग्रा., कुटजारिष्ट १० मिली. में पानी मिलाकर देने से पक्व अतिसार में अतिशीघ्र लाभ होता है। इससे आटोप तथा आध्मान होने की कोई संभावना नहीं रहती हैं।

(५) आध्मान की आत्ययिक अवस्था में वृहत् शंख वटी २०० मिग्रा., अभयारिष्ट १० मिली., दशमूलारिष्ट १० मिली., जल के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

(२३) महालक्ष्मी विलास रस (भैषज्य रत्नावली)—

कृष्णाभ्रक भस्म ८ भाग, शुद्ध गंधक, पारद ४-४ भाग, बंग भस्म २ भाग, रौप्य भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म १-१ भाग, ताम्र भस्म आधा भाग, कर्पूर ४ भाग, जावित्री, जायफल, विधारे के बीज, धत्तूर बीज २-२ भाग, स्वर्ण भस्म १ भाग समाविष्ट हैं। भावना द्रव्य के रूप में पान का रस है। सर्वप्रथम पारद गंधक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्यों को मिलाकर पान के रस में एक दिन तक घोंटकर २५०-२५० मिग्रा. की गोलियां बना सुखाकर रख लें। १ से २ गोली तक दूध, दही, शहद, सीधु अथवा रोग अनुसार अनुपान के साथ दें।

उपयोग—यह सन्निपातज रोग, गल रोग, आंत्र वृद्धि, अतिसार कुष्ठ, प्रमेह, श्लीपद, कफ विकार, नाड़ीव्रण, अर्श, भगन्दर, उदर विकार, कास, श्वास, पीनस, क्षय, आमवात, गलग्रह में उपयोगी रसायन एवं वाजीकरण हैं।

आमयिक प्रयोग—(१) असह्य शिरःशूल में महालक्ष्मी विलास रस २५० मिग्रा. शहद के साथ दिन मे तीन बार देने से सिर दर्द में शीघ्र फायदा होता है।

(२) सन्निपातिक ज्वर की आत्ययिक अवस्था में महालक्ष्मीविलास रस २५० मिग्रा. वृहत् कस्तूरी भैरव रस १२५ मिग्रा. तुलसी स्वरस के अनुपान के साथ देवें।

(३) जिह्वास्तंभ की आत्ययिक अवस्था में महालक्ष्मी विलास रस २५० मिग्रा., पुष्करमूल चूर्ण १ ग्रा., मण्डूर भस्म २५० मिग्रा. आर्द्रक स्वरस से तीन बार चटायें।

(४) परिणामशूल की सद्यः चिकित्सा हेतु महालक्ष्मी विलास रस २५० मिग्रा., नारिकेल लवण १ ग्रा., कर्पूर हिंगुवटी २०० मिग्रा. उष्ण जल के साथ देवें।

(५) उदर शूल की आत्ययिक अवस्था में महालक्ष्मी विलास रस २५० मिग्रा., समुद्रादि चूर्ण १ ग्रा., वृहत् शंखवटी २५० मिग्रा. उष्णोदक के साथ देने से पेट के दर्द में अतिशीघ्र लाभ करता है।

(२४) मृगश्रृङ्ग भस्म (आयुर्वेदीय रसशास्त्र)—

इसमें मृगश्रृङ्ग समाविष्ट हैं। सर्व प्रथम मृग श्रृङ्ग का छोटा-छोटा टुकड़ा करके २४ घण्टा तक्र में रक्खे रहने से मृगश्रृङ्ग की शुद्धि होती है। शुद्ध मृगश्रृङ्ग को सपुट में रखकर एक गजपुट अग्नि देने से कृष्ण वर्ण की भस्म प्राप्त होती है। उसे कुमारी स्वरस की तीन भावना देकर छोटी-छोटी टिकिया बनाकर संपुट में रखकर पुन गजपुट अग्नि देने से श्वेत वर्ण की भस्म प्राप्त होती है। उसे अर्क दुग्ध की तीन भावना देकर छोटी-छोटी टिकिया बनाकर सम्पुट में रखकर पुनः गजपुट अग्नि देकर तत्पश्चात् उसका चूर्ण निर्माण कर इसे बालकों को १२५ से २५० मिग्रा. तक तथा वयस्क को २५० से ५०० मिग्रा. तक शहद, आर्द्रक स्वरस, पान के स्वरस अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देना चाहिए।

उपयोग—यह प्रतिश्याय, कास, श्वास, पार्श्वशूल उरस्तोय, हृत्शूल इत्यादि व्याधियों में उपयोगी हैं। यह हृदय के लिये अति हितकारी औषधि हैं।

आमयिक प्रयोग—(१) हृदयशूल की आत्ययिक अवस्था में मृगश्रृङ्ग भस्म ५०० मिग्रा., हेमगर्भ पोटली रस ६० मिग्रा. शहद में मिलाकर देने से तथा अर्जुनारिष्ट १५ मिली में पानी मिलाकर देने से हृदय शूल में

तत्कालिक लाभ होता है।

(२) कफज शिरःशूल की आत्ययिक अवस्था में मृगश्रृङ्ग भस्म ५०० मिग्रा., अपामार्गक्षार १२५ मिग्रा., त्रिकटु चूर्ण १ ग्रा. शहद के अनुपान के समय दिन में ३ बार देने से तथा मृगश्रृङ्ग को पानी घिसकर कपाल प्रदेश पर लेप करने से कफज शिरःशूल में लाभ होता है।

(३) श्वसनक ज्वर की आत्ययिक अवस्था में मृगश्रृङ्ग भस्म ५०० मिग्रा. वृहद् कस्तूरी भैरव १२५ मिग्रा. शहद से तीन बार देने से आशुकारी लाभ होता है।

(४) बाल कुक्कुर कास की आत्ययिक अवस्था में मृगश्रृङ्ग भस्म २५० मिग्रा., बाल चातुर्भद्र २५० मिग्रा., शुद्ध टंकण २५० मिग्रा. शहद के अनुपान के साथ दें।

(५) बाल निमोनिया की आत्ययिक अवस्था में मृगश्रृङ्ग भस्म २५० मिग्रा, शुद्ध टंकण २५० मिग्रा., रससिन्दूर ३० मिग्रा शहद के अनुपान से देने से तथा वक्ष प्रदेश पर मृगश्रृङ्ग को पानी में घिसकर लेप लगाकर ताम्बूल पत्र रखकर बार-बार सेक करें।

(२१) मृत संजीवनी सुरा (भैषज्य रत्नावली)—

घटक द्रव्य एवं निर्माण विधि—इसमें पुराना गुड़ २५६ भाग, बबूल की छाल २० भाग, दाडिम की छाल, अडूसा, वराहक्रांता, अतीस, अश्वगंधा, देवदार, बिल्वत्वक, श्योनाकत्वक्, पाटला, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोक्षुर, इन्द्रायण, बेर की छाल, चित्रकमूल, शुद्ध कौंचबीज, पुनर्नवा प्रत्येक औषधि द्रव्य १०-१० भाग, जल १६८० भाग, सुपारी ३२ भाग, काले धतूरे का मूल, लवङ्ग, पद्मकाष्ठ, खस, चंदन, सौंफ, अजवायन, काली मिर्च, श्वेत जीरा, स्याह जीरा, कपूर, जटामांसी, दालचीनी, एला, जायफल, नागरमोथा, ग्रंथिपर्णी, मेथी, मेदालिगी, लाल चन्दन प्रत्येक द्रव्य २-२ भाग समाविष्ट है। सर्व प्रथम बब्बूल की छाल से पुनर्नवा तक के औषधि द्रव्यों का जोकुट चूर्ण बना लें। तत्पश्चात् एक बड़े मिट्टी के पात्र में उक्त चूर्ण गुड़ एवं जल मिलाकर पात्र का मुँह बन्द करके २० दिन तक एकांत मे पड़ा रहने दें। २१ वें दिन पात्र का मुख खोलकर उसमें सुपारी से लाल चन्दन तक के द्रव्यों का चूर्ण डाल दें पुनः पात्र का मुँह बन्द करके पन्द्रह दिन तक रख छोड़ें। बीच में एक या दो बार भांड का मुख खोलकर औषधि को डंडे से हिला दें। फिर मिट्टी के मोचिका यंत्र या मयूर यंत्र से यथाविधि अर्क खींच सुरक्षित रख लें।

मात्रा—इसे १० से २० मिली. तक बराबर पानी अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

उपयोग—यह शरीर को सद्यबल प्रदान करता है। यह जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। सन्निपात ज्वर, विशूचिका देहशीतता इत्यादि विकारों में यह उपयोगी है।

आत्ययिक प्रयोग—(१) सन्निपात ज्वर की आत्ययिक अवस्था में मृत संजीवनी सुरा १० मिली. में वृहत् कस्तूरी भूषण रस १२५ मिग्रा. दिन में ३ बार उष्णोदक के साथ देने से आशुकारी लाभ होता है।

(२) विशूचिका की आत्ययिक अवस्था में मृतसंजीवनी सुरा १० मिली., अग्नितुण्डी वटी २ गोली, चित्रकादि वटी २ गोली प्रति ४ घण्टे पर देने से अतिशीघ्र लाभ होता है। रोगी को बार-बार नारियल का पानी अथवा नाबू रस मिश्रित जल देना चाहिए।

(३) देहशीतता की आत्ययिक अवस्था में मृतसंजीवनी सुरा १० मिली., कल्पतरु रस २५० मिग्रा. उष्णोदक के साथ ४-४ घण्टा पर देने से लाभ होता है।

२६. रसराज रस (भैषज्य रत्नावली)—

इसमें रससिंदूर ८ भाग, अभ्रक सत्व भस्म अथवा शतपुटी अभ्रक भस्म २ भाग, सुवर्ण भस्म २ भाग, लोह भस्म, रौप्य भस्म, वंग भस्म, अश्वगन्धा, लवंग, जावित्री, क्षीर काकोली प्रत्येक औषधि द्रव्य १-१ भाग समाविष्ट है। सर्वप्रथम अश्वगन्धा से क्षीरकाकोली तक के औषधि द्रव्यों का चूर्ण बना लें। तत्पश्चात् रससिंदूर एवं अभ्रक सत्व भस्म को काकमाची स्वरस में घोट लें। जब दोनों औषधि द्रव्य अच्छी तरह मिश्रित हो जाय तब उसमें सुवर्ण भस्म मिलाकर घोट लें। इसे १ से २ गोली तक अथवा चिकित्सक के परामर्श अनुसार दुग्ध, शर्करा साधित जल अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

उपयोग—यह उत्तम रसायन एवं बाजीकरण औषधि है। पक्षाघात, अर्दित, हनुस्तम्भ, अपतन्त्रक, धनुस्तंभ, अपतानक, बाधिर्य, शिरोभ्रम इत्यादि में उपयोगी है।

आत्ययिक प्रयोग—१. नवीन अर्दित की आत्ययिक

अवस्था में रसराज रस २५० मिग्रा. माषादि क्वाथ से दें।

२. नवीन पक्षाघात की आत्ययिक अवस्था में रसराज रस २५० मिग्रा. रास्नादि या दशमूल क्वाथ से दें।

३. अपतानक की आत्ययिक अवस्था में रसराज रस २५० मिग्रा. शहद के साथ चटाने से तात्कालिक लाभ होता है। इसकी सहायक औषधि के रूप में दशमूल क्वाथ अथवा दशमूलारिष्ट युक्तिपूर्वक देना चाहिए।

४. शीतापित्त में रसराज रस २५० मिग्रा. शुण्ठी क्वाथ के साथ दें।

५. विभिन्न शूल में रसराज रस २५० मिग्रा., वेदनान्तक रस १२५ मिग्रा. शुण्ठी क्वाथ के साथ दें।

२७. लक्ष्मीनारायण रस (योगरत्नाकर)—

शुद्ध हिंगुल, अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध टंकण शु. वत्सनाभ निर्गुण्डी बीज अतिविष, पिप्पली कुटजत्वक् तथा सैंधव समान मात्रा में, दन्तीमूल क्वाथ एवं त्रिफला क्वाथ की भावना दें। १२५ से २५० मिग्रा तक आर्द्रक स्वरस शहद अथवा रोगानुसार अनुपान से दें।

उपयोग—यह दुष्ट ज्वर सन्निपात विषूचिका विषमज्वर अतिसार ग्रहणी रक्तातिसार प्रमेह शूल सुतिका रोग वातव्याधि तथा बालकों के धनुर्वात में उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग—१. बाल धनुर्वात की आत्ययिक अवस्था में लक्ष्मीनारायण रस १२५ मिग्रा. आर्द्रक स्वरस अथवा शहद से दें।

२. एन्टीटिटनस सिरम के रूप में लक्ष्मीनारायण रस १२५ से २५० मिग्रा. जल के साथ हितावह है।

३. आन्त्रिक ज्वर की आत्ययिक अवस्था में लक्ष्मीनारायण रस २५० मिग्रा प्रवालपिष्टी २५० मिग्रा, गुडूची सत्व ५०० मिग्रा, दशमूलारिष्ट १० मिलि. के साथ प्रति चार घण्टा पर दें।

४. विषूचिका में लक्ष्मीनारायण रस संजीवनी वटी दोनों १२५-१२५ मिग्रा. प्रति चार घण्टे पर नींबू के रस के साथ एवं मृतसंजीवनी सुरा १० मिलि. नारियल के पानी के साथ एक एक घण्टे पर दें।

२८. वेदनान्तक रस (रसतरंगणी)—

इसमें शुद्ध अफीम कर्पूर पारसीक अजवायन तीनों १-१ भाग रससिंदूर २ भाग समाविष्ट है। भावना द्रव्य के रूप में भांग की पत्ती के क्वाथ की एक भावना समाविष्ट है।

इसे १२५ से २५० मिग्रा. तक या चिकित्सा के परामर्श अनुसार जल या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

उपयोग—यह विविध शारीरिक प्रदेश की वेदना के शमन के लिये आशुकारी औषधि है।

आमयिक प्रयोग—१. अर्धावभेदक अर्थात् अवकपारी की आत्ययिक अवस्था में वेदनान्तक रस २५० मि. ग्रा. को बलामूल क्वाथ २० मिलि. के साथ दिन में तीन बार देने से लाभ होता है। दर्द में अतिशीघ्र आराम होता है और नींद अच्छी तरह से आती है।

२. कर्णशूल में वेदनान्तक रस २५० मिग्रा. के साथ दशमूलारिष्ट १५ मिलि. देने से एवं पञ्चगुण तैल से कर्णपूरण करने से कर्णशूल तुरन्त अच्छा हो जाता है।

३. उदरशूल में वेदनान्तक रस २५० मिग्रा, बृहत् शङ्ख वटी २ ग्रा., अभयारिष्ट १५ मिलि. के साथ दें।

४ पित्तज एवं रक्तज वृद्धि या वृषण पाक में वेदनान्तक रस २५० मिग्रा. प्रातःसायं पानी के साथ देने से आशुकारी लाभ होता है। इसकी सहायक औषधि के रूप में वृद्धिहरी मोगठी, वृद्धि बाधिका वटी, वरुणादि क्वाथ, पुनर्नवादि क्वाथ है।

५ विभिन्न प्रकार के शूल एवं वातव्याधिजन्य शूल की आत्ययिक अवस्था में वेदनान्तक रस २५० मि. ग्रा. जल के साथ शूल में तात्कालिक लाभ होता है।

२९. शिराशूलादि वज्र रस (भैषज्य रत्नावली)—

इसमें शुद्ध पारद, शु. गन्धक, लोह भस्म, त्रिवृत प्रत्येक औषधि द्रव्य ४-४ भाग, शु. गुग्गुलु १६ भाग, त्रिफला ८ भाग, कूठ, यष्टिमधु, पिप्पली, शुण्ठी, गोक्षुर विडङ्ग प्रत्येक औषधि द्रव्य १-१ भाग, दशमूल क्वाथ १० भाग और गोघृत यथावश्यक मात्रा में समाविष्ट है। भावना द्रव्य के रूप में दशमूल क्वाथ समाविष्ट है। सर्वप्रथम शु. पारद एवं शु. गन्धक को एक खरल में कज्जली निर्माण कर कज्जली के साथ लोह भस्म को घोटकर मिला लें। त्रिवृत त्रिफला, कूठ से लेकर दशमूल क्वाथ तक के औषधि द्रव्यों का चूर्ण निर्माण कर लें।

कज्जली, लोह भस्म एवं चूर्ण में गोघृत और गुग्गुलु मिलाकर अच्छी तरह कूट लें। जब सभी औषधि द्रव्य मिश्रित हो जाय तब दशमूल क्वाथ की एक भावना देकर ५००-५०० मिग्रा. की गोलियां बना इसे १ से २ गोली तक अजा दुग्ध, गोदुग्ध, पथ्यादि क्वाथ या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

यह विभिन्न प्रकार के शिरःशूल में उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग—१. सूर्यावर्त शिरःशूल में शिरःशूलादि वज्र रस ५०० मिग्रा., प्रवाल भस्म १ ग्रा. अजा दुग्ध के अनुपान के साथ दिन में तीन बार दें और श्वास कुठार रस का प्रधमन नस्य दें।

२. अर्धावभेदक शिरःशूल में शिरःशूलादि वज्र रस ४ रत्ती, पथ्यादि क्वाथ २० मिलि. के साथ दिन में तीन बार एवं शुण्ठी चूर्ण का प्रधमन नस्य दें।

३. अम्लपित्तजन्य शिरःशूल में शिरःशूलादि वज्र रस ४ रत्ती, कामदुधा रस २ रत्ती, सूतशेखर रस २ रत्ती, पथ्यादि क्वाथ २० मिलि. के साथ दिन में तीन बार तथा गोघृत का नस्य दें।

४. उच्च-रक्तचापजन्य शिरःशूल में शिरःशूलादि वज्र रस ४ रत्ती, सर्पगंधा २ कैपसूल पानी के साथ दें।

५. विभिन्न प्रकार के शिरःशूल में शिरःशूलादि वज्र रस, अपामार्ग क्षार, गोदन्ती भस्म तीनों ४-४ रत्ती उष्णोदक के साथ दें।

३०. शोणितार्गल रस (रसतरंगिणी)—

इसमें लोह भस्म, अभ्रक भस्म, यशद भस्म, रसांजन (दारुहरिद्रा घन), शु. सौराष्ट्री प्रत्येक औषधि द्रव्य १-१ भाग, रससिंदूर, रक्त चन्दन, शु. सुवर्ण गैरिक, अश्वत्थ लाह प्रत्येक औषधि द्रव्य २-२ भाग समाविष्ट है। सर्व प्रथम रसांजन को चार गुना पानी में गलाकर छान लें। तत्पश्चात् उसमें सभी औषधि द्रव्यों को युक्तिपूर्वक मिला कर अच्छी तरह घोटकर २५०-२५० मिग्राम की गोलियां बनालें। १२५ से ५०० मिग्रा. उशीरासव, लोध्रासव, जल अथवा रोग अनुसार अनुपान के साथ देना चाहिए।

उपयोग—यह रक्तस्तंभक एवं शक्ति संरक्षक औषधि है। रक्तार्श, रक्तप्रदर, रक्तातिसार, रक्तपित्त, व्रण इत्यादि के रक्तस्रावों में यह उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग—१. रक्तप्रदर में शोणितार्गल रस २५० मिग्रा., गोदन्ती भस्म ५०० मिग्रा., नागकेशर ५०० मिग्रा. शहद के साथ दें।

२. हीमोफिलिया में शोणितार्गल रस २५० मिग्रा. दो-दो घण्टे के अन्तर पर मिश्री मिश्रित जल के साथ दें। इसकी सहायक औषधि के रूप में चन्द्रकला रस, बोल पर्पटी, लोध्र चूर्ण, वह्निमधु चूर्ण, शु. सौराष्ट्री दें।

३. गर्भस्राव की आत्ययिक अवस्था में शोणितार्गल रस १ ग्रा., शतावरी चूर्ण २ ग्राम, पुष्यानुग चूर्ण २ ग्रा., गोदन्ती भस्म १ माशे, बोल पर्पटी १/४ माशे, मण्डूर भस्म १/४ मा. दिन में तीन बार घी मिश्रित मिश्री के साथ दें।

४. रक्तार्श की आत्ययिक अवस्था में शोणितार्गल रस २ रत्ती, बोलबद्ध रस ४ रत्ती, कामदुधा रस १ रत्ती, तृणकान्त मणि पिष्टी ४ रत्ती, उशीरासव १५ मिलि. में मिलाकर दिन में तीन बार दें।

५. रक्तज प्रवाहिका में शोणितार्गल रस २ रत्ती, कर्पूर रस १ रत्ती, कुटजावलेह १० माशे के साथ दिन में तीन बार दें।

३१. श्वासकुठार रस (भावप्रकाश)—

शु. पारद, शु. गन्धक, शु. वत्सनाभ, शु. टंकण, शु. मनःशिला प्रत्येक औषधि द्रव्य १-१ भाग, कालीमिर्च ८ भाग, त्रिकटु ६ भाग इसमें समाविष्ट है।

मात्रा—इसे १ से २ रत्ती तक पान के स्वरस, आर्द्रक स्वरस, शहद, भार्ग्यादि क्वाथ आदि रोगानुसार अनुपान के साथ देना चाहिये।

उपयोग—इसके सेवन से कफ पिघलकर बाहर निकल जाता है। श्वास नलिकाओं का आक्षेप दूर होता है। यह अवरुद्ध वायु का शमन करता है। यह श्वास मार्ग की कर्कशता को दूर करता है। श्वासकुठार रस ज्वर, प्रतिश्याय, कास, श्वास, हिक्का में लाभकारी है। यह मन्दाग्नि, यक्ष्मा, हृदय रोग, सन्निपात ज्वर, तन्द्रा, मूर्च्छा तथा स्वरभेद में उपयोगी है। नवीन फुफ्फुस आवरण शोथ (उरस्तोय) में श्वासकुठार रस उपयोगी है। बेहोश होने पर श्वासकुठार के नस्य से बेहोशी दूर हो जाती है। हिक्का, सूर्यावर्त, अर्द्धावभेदक में इसका नस्य दें।

आमयिक प्रयोग—(१) तमक श्वास रोग की आत्ययिक अवस्था में श्वासकुठार रस १/४ ग्रा. सोमकल्प चूर्ण आधा ग्रा., शिलासिन्दूर १/१६ ग्रा., कनकासव १५ मिली. जल के साथ दें सद्यःपरिणाम मिलता है।

(२) अर्धावभेदक शिरःशूल की आशुकारी चिकित्सा हेतु यथावश्यक मात्रा में श्वासकुठार रस का नस्य देना चाहिये। इससे तुरन्त वेदना का शमन होता है। इसके सहायक औषधि के रूप में पुष्कर मूल चूर्ण, शुण्ठी चूर्ण, चित्रक चूर्ण १-१ ग्राम शहद या पेड़ में मिला ३ बार दें।

(३) शिरःशूल, बेहोशी, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, सन्निपात, सन्यास तथा श्वासावरोध में नस्य से लाभ होता है।

(४) मूर्च्छा की अतिउग्र अवस्था में श्वासकुठार रस का नेत्र में अंजन करने से रोगी शीघ्र मूर्च्छा से मुक्ति प्राप्त करता है। रोगी जब होश में आ जाय तब उसके नेत्र में घी का अंजन अथवा दूध डालना चाहिए।

(५) अपस्मार का वेग आने से रोगी बेहोश हो गया हो ऐसी स्थिति में आशुकारी चिकित्सा हेतु यथावश्यक मात्रा में श्वासकुठार रस का नस्य देने से रोगी तुरन्त होश में आ जाता है। उसके बाद अपस्मार निवारण हेतु सारस्वतारिष्ट १० मिली. के साथ स्मृतिसागर रस १/८ ग्राम और मेध्य रसायन चूर्ण १ ग्रा. प्रातः-शाम दूध से दें।

(३२) सामुद्रादि चूर्ण (भैषज्य रत्नावली)—

इसमें सामुद्र लवण, सैंधव लवण, यवक्षार, स्वर्जिका क्षार, रुचक लवण, रोमक लवण, बिड़ लवण, दन्तीमूल, लोह भस्म, मण्डूर भस्म, त्रिवृत, सुरण प्रत्येक औषधि द्रव्य १-१ भाग, दधि, गोमूत्र, दुग्ध प्रत्येक औषधि द्रव्य १२-१२ भाग समाविष्ट हैं। सर्व प्रथम सामुद्रलवण से सुरण तक के औषधि द्रव्यों का चूर्ण कल्पना अनुसार चूर्ण निर्माण करके उसे दधि, गोमूत्र, दुग्ध में डालकर मंदाग्नि से पाक करें। जब गाढ़ा हो जाय तब उसे नीचे उतारकर छाया शुष्क हो जाने पर औषधि द्रव्य का चूर्ण निर्माण करें। इसे १/२ से १ ग्राम तक उष्णोदकसे देना चाहिए।

उपयोग—यह नाभिशूल, प्लीहावृद्धि जन्य शूल, यकृच्छूल गुल्म जन्य शूल, विद्रधि, अष्ठीलाजन्य शूल, आदि कफ और वात से उत्पन्न शूलों में उपयोगी हैं।

आमयिक प्रयोग—(१) परिणामशूल में सामुद्रादि चूर्ण, धात्री लोह, शङ्खभस्म १-१ ग्राम दूध के साथ दें।

(२) नाभिशूल की आत्ययिक अवस्था में सामुद्रादि चूर्ण १ ग्राम उष्णोदक के साथ ३ बार तथा नाभिप्रदेश पर सामुद्रादि चूर्ण में खट्टी तक्र मिलाकर लेप करें।

(३) गुल्म में सामुद्रादि चूर्ण १ ग्राम, अजमोदादि चूर्ण १ ग्राम उष्णोदक के साथ देने से तथा नाभि पर या शूल प्रदेश पर सामुद्रादि चूर्ण में गर्म पानी मिला लेप करें।

(४) उदरशूल की आत्ययिक अवस्था में सामुद्रादि चूर्ण १ ग्राम, बृहद् शंखवटी २५० मिग्रा., वेदनान्तक रस १२५ मिग्रा. चित्रकादि क्वाथ के साथ दें।

(५) अष्ठिलिका में सामुद्रादि चूर्ण १ ग्राम उष्णोदक के साथ दिन में तीन बार देने से तथा वेदना स्थान पर सामुद्रादि चूर्ण को पानी में मिलाकर गरम कर लेप करें।

(३३) सुखप्रसवकर चूर्ण (रसोद्धार तन्त्र)—

पिप्पली, मरिच, कटुकी, सैंधव, जीरक, स्याहजीरा, हिंगु, अजमोद, शुण्ठी, रास्ना, अजवायन प्रत्येक औषधि १-१ भाग तथा अश्वगंधा २८ भाग चूर्ण बनाकर रखलें। ३ से १५ ग्राम तक जल के साथ देना चाहिए।

उपयोग—यह सुखप्रसवार्थ उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग—(१) कष्ट प्रसूति की अवस्था में सुखप्रसवकर चूर्ण १० ग्रा. उष्णोदक के साथ देने से मात्र २० ही मिनट में सुखप्रसव हो जाता है। इसे बंशपत्र क्वाथ के साथ भी दिया जा सकता है।

(३४) सुवर्ण रत्नगिरि रस (भैष. रत्ना.)—

इसमें शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, सुवर्ण भस्म १-१ भाग, लोह भस्म १/२ भाग तथा वैक्रांत भस्म चौथाई भाग समाविष्ट हैं। भावना द्रव्य के रूप में भृङ्गराज स्वरस, सहिजन त्वक क्वाथ, वासा स्वरस, निर्गुण्डीपत्र स्वरस, वचा क्वाथ, चित्रक मूल क्वाथ, भृङ्गराज स्वरस, गोरखमुण्डी क्वाथ, कटेरी का क्वाथ, गिलोय स्वरस, जयन्तपत्र स्वरस, अगस्त्यपत्र स्वरस, ब्राह्मी स्वरस, चिरायता क्वाथ, घृतकुमारी स्वरस हैं। इस चूर्ण को १२५ मिग्रा. से २५० मिग्रा. तक धान्यक चूर्ण, पिप्पली चूर्ण अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

उपयोग—यह विभिन्न प्रकार के ज्वर में उपयोगी हैं।

आमयिक प्रयोग—(१) इन्फ्लुएञ्जा ज्वर की आत्य-

यिक अवस्था में सुवर्ण रत्न गिरि रस १ ५ मिग्रा., गोदन्ती भस्म १ ग्रा., यष्टिमधु चूर्ण २ ग्रा., तुलसी स्वरस से दें।

(२) आन्त्रिक ज्वर में सुवर्ण रत्नगिरि रस १२५ मिग्रा., प्रवालपिष्ठी १२५ मिग्रा, गुडूची सत्त्व २५० मिग्रा., महासुदर्शन चूर्ण १ ग्रा. शहद के साथ दें।

(३५) सूतिकाभरण रस (योगरत्नाकर)—

इसमें सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, ताम्र भस्म, प्रवाल भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, अभ्रक भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मनःशिल, शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, कटुकी प्रत्येक औषधि द्रव्य १-१ भाग समाविष्ट हैं। भावना द्रव्य के रूप में अर्क दुग्ध, चित्रक मूल क्वाथ, पुनर्नवा स्वरस द्रव्य इसमें समाविष्ट हैं। सर्व प्रथम पारद एवं गंधक की कज्जली बनाकर उसमें अन्य सब औषधों का चूर्ण मिलाकर अर्क दुग्ध, चित्रक मूल क्वाथ तथा पुनर्नवा स्वरस की पृथक्-पृथक् एक-एक भावना देकर गोला बनाकर सुखाकर मूषा में बन्द करके लघुपुट में पकाकर स्वांगशीत होने पर निकालकर चूर्ण करलें। इसे ६० से १२० मिग्रा. तक शहद, घी अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देना चाहिए। यह सूतिका रोग, धनुर्वात एवं अन्य त्रिदोषज विकारों में उपयोगी हैं।

आमयिक प्रयोग—(१) सूतिकाभरण रस को एण्ट्री टिटनेस सीरम की जगह प्रयोग करना चाहिए। सूतिकाभरण रस से कोई विषाक्त लक्षण नहीं उत्पन्न होते।

(२) धनुर्वात की आत्ययिक अवस्था में सूतिकाभरण रस १२० मिली., रसराज रस १२० मिग्रा. मृतसंजीवनी सुरा के अनुपान के साथ देने से तथा कटफल चूर्ण का प्रधमन नस्य देने से आशुकारी लाभ होता है।

(३) मक्कलशूल में सूतिकाभरण रस १२० मिग्रा., प्रताप लंकेश्वर रस १२० मिग्रा., यवक्षार १ ग्रा. देवदार्व्यादि क्वाथ के साथ दें।

(३६) शुण्ठी चूर्ण (अनुभूत)—

सोंठ का चूर्ण—१ से २ ग्रा. तक पानी, तक्र, दूध, शहद अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देना चाहिए।

उपयोग—यह अतिसार, प्रतिश्याय, श्वास, कास, शूल ज्वर, शिरःशूल, आमवात, अरुचि, अजीर्ण, मन्दाग्नि इत्यादि रोगों में उपयोगी हैं।

आमयिक प्रयोग—(१) हिक्का की आत्ययिक अवस्था में यथावश्यक मात्रा में शुण्ठी चूर्ण एवं गुड़ को पानी में मिलाकर नस्य देने से आशुकारी परिणाम मिलता है।

(२) अर्धावभेदक में शुण्ठी चूर्ण यथावश्यक मात्रा में पानी मिश्रित करके सिर में जिस ओर दर्द हो उसी ओर की आंख में अंगुली से दवा आंज दें। अंजन आंजते से आंसू गिरेंगे। पांच मिनट पश्चात् आंख को जल से धो डालें और थोड़ा-सा घी लगा दें। आधाशीशी दर्द दूर होगा।

(३) वृश्चिक दंश में शुण्ठी चूर्ण को पानी में पीस कर नस्य दें। उदरशूल में शुण्ठी चूर्ण १ग्रा., सज्जीखार १ ग्रा. और भुनी हींग ६० मिग्रा. उष्णोदक के साथ दिन में ३ बार दें। आमातिसार में शुण्ठी चूर्ण २ माशे, वराटिका भस्म ४ रत्ती आनन्द भैरव रस २ र. भुने जीरे के चूर्ण और तक्र के साथ दिन में ३ बार दें।

३७. संजीवनी वटी (शार्ङ्गधर संहिता)—

विडंग, सोंठ, पिप्पली, हरीतकी, विभीतकी, आमलकी, वच, गुडूची, शु. भल्लातक, शु. वत्सनाभ प्रत्येक औषध द्रव्य समान मात्रा में लेकर गोमूत्र की भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर छायाशुष्क कर रखलें। १२५ से २५० तक आर्द्रक स्वरस, नींबू का रस, प्याज का रस, पुदीना का रस के साथ देना चाहिये। यह आम पाचक एवं वातानुलोमक है। अजीर्ण गुल्म, विषूचिका ज्वर, अतिसार, छर्दि में उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग १—छर्दि की आत्ययिक अवस्था में संजीवनी वटी २५० मिग्राम, छर्दिरिपु चूर्ण १ ग्राम, मयूर पिच्छ भस्म १ ग्राम चार चार घण्टे पर शहद एवं नींबू के रस के साथ लेवे से अपानवायु की अधो प्रवृत्ति होती है, आम का पाचन होता है। उल्टी में अतिशीघ्र फायदा होता है।

२. कफज प्रवाहिका की आत्ययिक अवस्था में संजीवनी वटी २५० मिग्राम, अजमोदादि चूर्ण १ ग्राम, शुण्ठी चूर्ण १ ग्राम शतपुष्पार्क के साथ दिन में तीन बार दें।

३. आमज्वर की आत्ययिक अवस्था में संजीवनी वटी २५० मिग्राम; वृहत् कस्तूरी भैरव रस १२५ मिग्राम, आर्द्रक स्वरस १० मिलि. शहद के साथ तीन बार दें।

४. विषूचिका की आत्ययिक अवस्था में संजीवनी

वटी १२५ मिग्राम, कर्पूरासव १० बूंद नींबू स्वरस के अनुपान में प्रति घंटा देने से शीघ्र फलप्रद है। रोगी को बार-बार नारियल का पानी या नीबू रस मिश्रित जल दें।

५. सर्पदंश की आत्ययिक अवस्था में संजीवनी वटी ५०० मिग्रा० शिरीष त्वक् स्वरस या मरुआ के पत्र स्वरस के अनुपान के साथ प्रति दो घण्टे पर देने से अति शीघ्र लाभ होता है। उपरोक्त औषधि के सहायक औषध के रूप में मरिच चूर्ण १ ग्राम, घृत ५० ग्राम के साथ देना चाहिये। मरिच चूर्ण एवं घृत का जब तक पाचन होता रहे तब तक देना चाहिए। मल प्रवृत्ति में घी आने लगे तब यह समझें कि सर्पविष अब समाप्त हो गया।

३८. सर्जरस मलहर (रसतंत्रसार और सिद्धप्रयोग संग्रह)—

इसमें तिल तैल १६ भाग, सर्जरस ४ भाग, मयूर तुत्थ १/१६ भाग तथा स्वच्छ शीत जल यथावश्यक मात्रा में समाविष्ट है। सर्वप्रथम तिल तैल को मन्दाग्नि से गरम करें। जब उसमें धुआं निकलने लगे तब उसमें सर्जरस एवं मयूरतुत्थ का चूर्ण डालकर नीचे उतार लें। जब तैल सर्जरस मयूरतुत्थ का अच्छी तरह मिश्रण तैयार हो जाय तब गरम गरम ही वस्त्र से छानकर ठंडा होने दें। तत्पश्चात् जैसे घी को पानी में धोते हैं उसी प्रकार इसे पानी में धोते रहें। दस से पन्द्रह बार धोने से मक्खन जैसा सर्जरस मलहर तैयार होता है।

उपयोग—यह अग्निदग्ध व्रण, कच्छू, दुष्ट व्रण, मूत्रेन्द्रिय शोथ, अर्श का शोथ, वेदना, पाक में उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग—१. सद्य अग्निदग्ध व्रण में सर्जरस मलहर यथावश्यक मात्रा में लगाने से दाह की तुरन्त शान्ति होती है। पूय नहीं उत्पन्न होता।

२. सद्य अभिघातजन्य रक्तस्राव में सर्वप्रथम रक्तस्राव की जगह पर शु. सौराष्ट्री का चूर्ण लगाकर उस पर सर्जरस मलहर रखकर पट्टबन्धन करें।

३९. हेमगर्भ पोटली रस (रसामृत)—

शु. पारद ४ भाग, शु. गन्धक २ भाग, सुवर्ण भस्म १ भाग, ताम्र भस्म ३ भाग और शु. गन्धक चूर्ण यथावश्यक मात्रा में समाविष्ट हैं। भावना द्रव्य के रूप में कुमारी स्वरस इसमें समाविष्ट है। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक कज्जली निर्माण करके उसमें सुवर्ण भस्म डालकर मर्दन करें। फिर उसमें ताम्र भस्म डालकर मर्दन करें। तब ७ दिन तक कुमारी स्वरस की भावना देकर शंकु आकार की गोठी बनाकर छायाशुष्क कर लें। उसके बाद, शुद्ध गन्धक का चूर्ण रखकर रेशमी वस्त्र से बांधकर एक मिट्टी के पात्र अथवा एनेमल बोल (Enamel bowl) में वह गोठी पका सके उतना शु. गन्धक चूर्ण भरकर उसे मन्दाग्नि से दोलायन्त्र विधि से गन्धक का द्रव आसमानी रंग का हो जाय वहां तक पकायें। ठण्डी होने पर रेशमी वस्त्र दूर कर एक चाकू द्वारा पोट्टली पर चिपका हुआ गन्धक दूर करके चिकित्सा प्रयोगार्थ शीशी में भरकर सुरक्षित रखलें। ३० से ६० मिग्रा. आर्द्रक अथवा ताम्बूल पत्र के स्वरस में घिसकर शहद मिलाकर देना चाहिए।

उपयोग—सन्निपात ज्वर या किसी भी रोग में जब रोगी को अत्यधिक पसीना हो, शरीर शीतल होने लगे, नाड़ी की गति मन्द होने लगे, हृदय की धड़कन एवं गति मन्द होने लगे, ऐसी सद्य अवस्था में यह उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग—१. श्वास के तीव्र आक्रमण में हेमगर्भ पोट्टली रस ६० मिग्रा. पान के रस में चटायें।

२. मूर्च्छा, सन्यास, अपस्मार, हिस्टेरिया आदि व्याधियों में रोगी बेहोश हो गया हो, नाड़ी शिथिल हो गई हो, शरीर ठण्डा होने लगा हो एवं श्वासकृच्छ्रता हो हेमगर्भ पोट्टली ६० मिग्रा. शहद में घिस जीभ पर लगावें

३. सन्निपात ज्वर में हेमगर्भ पोट्टली रस ६० मिग्रा. आर्द्रक स्वरस या पान के रस में घोटकर चटावें।

४. न्यून रक्तभार में हेमगर्भ पोट्टली रस ६० मिग्रा. पान के स्वरस मे घोटकर चटावें।

आशुकारी चिकित्सोपयोगी तालिका—

१. अग्निदग्ध व्रण—पंचगुण तैल, सर्जरस मलहर, निद्रोदय रस, यष्टिमधु चूर्ण, वेदनान्तक रस, जात्यादि तैल।

२. अतिसार—कर्पूर रस, संजीवनी वटी, कर्पूर हिंगु वटी, कर्पूरासव, शुण्ठी चूर्ण, वेदनान्तक रस, वृहद् शङ्ख वटी।

३. अनिद्रा—निद्रोदय रस, वेदनान्तक रस।

४. अश्मरी—अश्मरी खण्डन रस, वेदनान्तक रस।

५. अष्ठिला—सामुद्रादि चूर्ण।

६. अस्थिभग्न—अस्थिसंधानक लेप, निद्रोदय रस, वेदनान्तक रस, जात्यादि तैल।

७. अस्थिशोथ—अस्थिसंधानक लेप, मृगश्रृङ्ग भस्म, वेदनान्तक रस।

८. आध्मान—अभयारिष्ट, वृहद् शङ्ख वटी।

९. आमवात शूल—रसराज रस, अजमोदादि चूर्ण

१०. आक्षेप—शु. टंकण, लक्ष्मीनारायण रस।

११. उरःशूल—श्वासकुठार रस, महालक्ष्मीविलास रस, निद्रोदय रस, शुण्ठी चूर्ण, मृगश्रृङ्ग भस्म, वेदनान्तक रस, वृहद् शङ्ख वटी।

१२. उदरशूल—कर्पूर हिंगु वटी, कर्पूरासव, निद्रोदय रस, अभयारिष्ट, वेदनान्तक रस, वृहद् शङ्ख वटी

१३. उल्टी (छर्दि)—संजीवनी वटी, कर्पूरासव, छर्दिरिपु चूर्ण, यष्टिमधु चूर्ण।

१४. ऊर्ध्वस्थित—हेमगर्भपोट्टली रस।

१५. कटिशूल—अस्थिसंधानक लेप, पंचगुण तैल, निद्रोदय रस वेदनान्तक रस, रसराज रस, अजमोदादि चूर्ण

१६. कर्णशूल—पंचगुण तैल, महालक्ष्मी विलास रस निद्रोदय रस वेदनान्तक रस, जात्यादि तैल।

१७. कष्ट प्रसूति—सुखप्रसवकर चूर्ण, शुद्ध टंकण, हेमगर्भपोटली रस।

१८. कोलेरा (विशूचिका)—कर्पूर रस, संजीवनी वटी, कर्पूरासव हेमगर्भपोटली रस, निद्रोदय रस, मृतसंजीवनी सुरा, वृहद शंखवटी।

१९. उदावर्त—कर्पूरहिंगुवटी, अभयारिष्ट, शुण्ठी चूर्ण, सामुद्रादि चूर्ण, वृहद् शंखवटी, अजमोदादि चूर्ण।

२०. गुल्म—कर्पूरहिंगुवटी अभयारिष्ट, शुण्ठी चूर्ण, सामुद्रादि चूर्ण अजमोदादि चूर्ण, वृहद् शंखवटी।

२१. ग्रहणी—कर्पूर रस, कर्पूरहिंगुवटी, कर्पूरासव, शुण्ठी चूर्ण, वेदनान्तक रस, वृहद् शंखवटी।

२२. ज्वर—वृहद् कस्तूरी भैरव रस, संजीवनी वटी महालक्ष्मी विलास रस, चन्द्रकला रस, कल्पतरु रस।

२३. दन्तशूल—कर्पूरहिंगुवटी, कर्पूरासव महालक्ष्मी विलास रस, निद्रोदय रस, वेदनान्तक रस, दंष्ट्रापीडहरी वटी, जात्यादि तैल।

२४. दाह—चन्द्रकला रस, अर्जुनारिष्ट।

२५. धनुर्वात—हेमगर्भ पोटली रस, शुद्ध टंकणक्षार सूतिकाभरण रस, लक्ष्मीनारायण रस।

२६. परिणामशूल—वृहद् शंखवटी, सामुद्रादि चूर्ण।

२७. पार्श्व शूल—श्वासकुठार रस, महालक्ष्मी विलास रस, निद्रोदय रस, शुण्ठी चूर्ण, मृगशृङ्ग भस्म, वेदनान्तक रस, सामुद्रादि चूर्ण, वृहद् शंखवटी, अजमोदादि चूर्ण।

२८. प्रतितुनि—अजमोदादि चूर्ण।

२९. प्लुरिसी—श्वासकुठार रस, महालक्ष्मी विलास रस शुण्ठी चूर्ण, शुद्ध टंकणक्षार, मृगश्रृङ्ग भस्म, यष्टिमधु चूर्ण, वेदनान्तक रस, कनकासव।

३०. प्रवाहिका—कर्पूर रस, निद्रोदय रस वेदनान्तक वृहद् शंखवटी अजमोदादि चूर्ण, कर्पूर हिंगुवटी।

३१. मोच आना—अस्थिसंधानक लेप, पंचगुण तैल, वेदनान्तक रस, निद्रोदय रस, जात्यादि तैल।

३२. मूढमार—अस्थिसंधानक लेप, पंचगुण तैल, निद्रोदय रस मृगश्रृङ्ग भस्म, वेदनान्तक रस जात्यादि तैल।

३३. मूर्च्छा—श्वासकुठार रस, अर्जुनारिष्ट, हेमगर्भ पोटली रस, शुण्ठी चूर्ण, कल्पतरु रस, मृतसंजीवनीसुरा।

३४. उष्णवात—चन्द्रकला रस, यष्टिमधु चूर्ण।

३५. मेनन्जाइटिस—वृहद् कस्तूरी भैरव रस, संजीवनी वटी, महालक्ष्मीविलास रस, मृगशृङ्ग भस्म।

३६. रक्तातिसार—कर्पूर रस, शोणितार्गल रस, चन्द्रकला रस, शुण्ठी चूर्ण यष्टिमधु चूर्ण, वेदनान्तक रस

३७. रक्तपित्त—शोणितार्गल रस, चन्द्रकला रस, यष्टिमधु चूर्ण।

३८. रक्तप्रदर—शोणितार्गल रस, चन्द्रकला रस, वेदनान्तक रस, यष्टिमधु चूर्ण।

३९. रक्तार्श—शोणितार्गल रस, चन्द्रकला रस, अभयारिष्ट वेदनान्तक रस, यष्टिमधु चूर्ण।

४०. रक्तस्राव—शोणितार्गल रस, शुण्ठी चूर्ण, यष्टिमधु चूर्ण जात्यादि तैल।

४१. गृध्रसी—पंचगुण तैल, निद्रोदय रस, वेदनान्तक रस, रसराज रस, अजमोदादि चूर्ण।

४२. न्यून रक्तचाप—वृहद् कस्तूरी भैरव रस, संजीवनी वटी, महालक्ष्मी विलास रस, अर्जुनारिष्ट, हेमगर्भ पोटली, मृगशृङ्ग भस्म, वेदनान्तक रस, मृतसंजीवनीसुरा

४३. बिच्छूविष—शुण्ठी चूर्ण, निर्मली बीज, वेदनान्तक रस।

४४. शिरःशूल—महालक्ष्मी विलास रस, निद्रोदय रस शुण्ठी चूर्ण यष्टिमधु चूर्ण, कल्पतरु रस, वेदनान्तक रस शिरःशूलारिवज्र रस, पथ्यादि क्वाथ।

४५. शीतांगता—बृहद् कस्तूरीभैरव रस, शुण्ठी चूर्ण कल्पतरु रस, मृतसंजीवनी सुरा।

४६. शूल—अस्थिसंधानक लेप, कर्पूरहिंगुवटी, पंचगुण तैल, महालक्ष्मी विलास रस, निद्रोदय रस, शुण्ठी चूर्ण, मृगशृङ्ग भस्म, वेदनान्तक रस, सामुद्रादि चूर्ण, जात्यादि, तैल, वृहद् शंखवटी।

४७. श्वासाधिक्य—श्वासकुठार रस, अर्जुनारिष्ट शुण्ठी चूर्ण, शुद्ध टंकण, मृगशृङ्ग भस्म, यष्टिमधु चूर्ण,

४८. सर्पदंश—संजीवनीवटी, अर्जुनारिष्ट, हेमगर्भपोटली रस, मृतसंजीवनी सुरा।

४९. सद्यःव्रण—शोणितार्गल रस, पंचगुण तैल, यष्टि मधु चूर्ण, वेदनान्तक रस, जात्यादि तैल।

५०. हिस्टिरिया—श्वास कुठार रस, कर्पूरहिंगुवटी, अर्जुनारिष्ट, हेमगर्भ पोटली रस शुण्ठी चूर्ण, कल्पतरु, रस मृतसंजीवनी सुरा।

५१. हृदय रोग—अर्जुनारिष्ट, हेमगर्भपोटली रस, अभयारिष्ट, शुण्ठी चूर्ण, मृगशृङ्ग भस्म, यष्टिमधु चूर्ण वेदनान्तक रस, मृतसंजीवनी सुरा, रसराज रस।

५२. हिक्का—श्वासकुठार रस, कर्पूरहिंगुवटी, पंचगुण तैल, अभयारिष्ट, शुण्ठी चूर्ण, छर्दिरिपु चूर्ण।

अन्त में इस आलेख को तैयार करने में 'आपणां इमर्जेन्सी ओषधो' के लेखक वैद्य श्री शोभन वसाणी जी ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जो सहकार दिया है तथा वैद्य श्री गिरिधारी लाल जी मिश्र संकट-कालीन चिकित्साङ्क के लिए इस लेख की स्वीकृति प्रदान की एवं धन्वन्तरि के प्रधान सम्पादक वैद्य श्री दाऊदयाल गर्ग जी ने इस लेख को प्रकाशित करने में जो योगदान दिया है उसके लिये उपरोक्त तीनों का मैं ऋणी तथा आभारी हूँ।

१४ ब्राड स्पेक्ट्रम चतुर्दश आयुर्वेदीय योगरत्न

आयुर्वेद चक्रवर्ती वैद्य श्री गिरिधारीलाल मिश्र

ब्राडस्पेक्ट्रम-बनाम बहु कार्यकारी ओषधि—ब्राडस्पेक्ट्रम (Broad Spectrum) ड्रग का अर्थ है वह ओषधि जो अनेक प्रकार के जीवाणुओं पर प्रभावशाली हो। ऐसी ओषधियों का प्रयोग विभिन्न जीवाणुओं द्वारा होने वाले विभिन्न रोगों पर किया गया है। चरकाचार्य ने "सूक्ष्मत्वाच्चैके भवन्त्यदृश्या" लिख कर जीवाणुओं की व्यापक सत्ता को स्वीकार किया है अतः प्राचीन तत्वदृष्टा आत्मवादी आयुर्वेदज्ञों को जीवाणु विज्ञान का पूर्ण ज्ञान था फिर भी उन्होंने जीवाणु विज्ञान को प्राथमिकता नहीं दी कारण शारीरिक क्रियाओं के हेतु तीन मौलिक पदार्थ-त्रिदोष-वात पित्त कफ हैं तथा जीवाणु भी रोगोत्पत्ति के लिए दोष प्रकोप की अपेक्षा रखते हैं एतदर्थ-दोष प्रत्यनीक चिकित्सा लिखी अतः आयुर्वेदीय ओषधियां दोषों की विषमता और उनके बलाबल की समीक्षा करके ओषधि कल्पना की गई है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने जीवाणु नाशन के आधार पर तथा प्राचीन आयुर्वेदज्ञों ने त्रिदोष के आधार पर—बहु कर्यकारी ओषधियों की कल्पना की एक ही ओषधि से अनेक रोगों की चिकित्सा करने की कल्पना अति प्राचीन है तथा सैकड़ों बहु कार्यकारी ओषधियां इसनी सफतापूर्वक प्रयोग करते रहते हैं—

सिद्ध मकरध्वज (रसतरंगिणी)—यह जरा भरण नाशक ऐसी दिव्य ओषधि है जो अनुपान भेद से बहुत से रोगों पर प्रभावशाली हैं तथा किसी भी रोग के कारण आयी हुई कमजोरी इसके सेवन से दूर होती है।

नाड़ी क्षीणता में—मकरध्वज २ रत्ती, कर्पूर आधा कस्तूरी चौथाई, तुलसीदल स्वरस + मधु से। सन्निपात में—ब्राह्मीस्वरस + मधु से। आन्त्रिक ज्वर में—मोती पिष्टी के साथ मधु से। विषम ज्वर में—करंजबीज चूर्ण—पिप्पली चूर्ण से। राजयक्ष्मा में—प्रवाल + सितोपलादि चूर्ण से। हैजा में प्याज स्वरस + मधु से। पांडु रोग में—कुटकी चूर्ण के साथ मधु से। हृदय रोग में—मोती पिष्टी + अकीक पिष्टी के साथ अर्जुन सिद्ध क्षीर से एवं

लेखक—वैद्य श्री गिरिधारीलाल मिश्र आयु० चक्र०
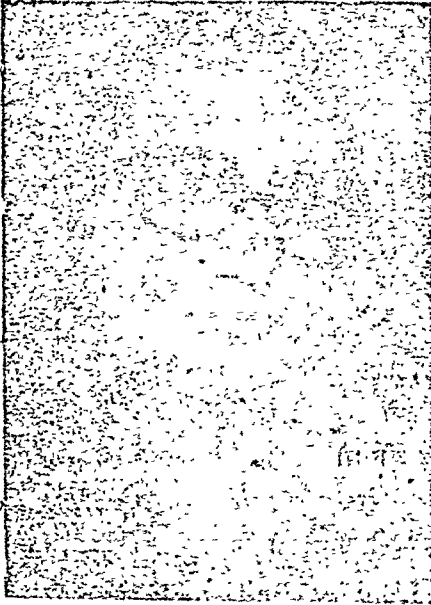
रक्ताल्पता–में लोह भस्म + मधु से इसका प्रयोग प्रशस्त है। यह एक ऐसी योगवाही दिव्य महौषधि है जो किसी भी रोग में तत्सम्बन्धित प्रयोग के साथ उसको आशुगुण-कारी एवं प्रभावशाली बनाने के लिए प्रयुक्त की जाती है। बालक, वृद्ध युवा, स्त्री-पुरुष सबके लिए समान रूप से लाभकारी है। इसके सेवन से रोग प्रतिरोधक शक्ति की अपूर्व वृद्धि होती है तथा ज्वर, निमोनियाँ, श्वास-कास राजयक्ष्मा, उरःक्षत, सर्वाङ्ग, शैत्य, नाड़ी क्षीणता, उन्माद अपस्मार मृगी मूर्च्छा आदि रोगों पर इस औषधि का सफल एवं चमत्कारिक प्रयोग होता है। इसे औषधि का प्रभाव स्नायुमण्डल, वातवाहिनियाँ मस्तिष्क एवं हृदय पर शीघ्रता से होता है।

सेवन विधि—१ रत्ती मकरध्वज को खरल में घोट कर मधु मिलाकर फिर अन्य अनुपान घोटकर लेवें।

(२) स्वर्णवसन्त मालती (सि. यो. स.) यह रसायन जीर्ण ज्वर, सप्तधातुगत ज्वर तथा राज यक्ष्मा आंत्र क्षय, प्लुरसी, गण्डमाला, मस्तिष्क की दुर्बलता, हृदयरोग, मक्कल्लशूल स्त्रियों के प्रदर रोग बालकों के सुखा रोग में अत्यन्त लाभदायक है, स्त्री पुरुष एवं बालक वृद्ध सबके लिये सब ऋतु में सेवनीय महौषधि है।

राजयक्ष्मा में—प्रवाल पिष्टि + रुदन्ती चूर्ण के साथ मधु से चटाकर बकरी का दूध पिलावें। जीर्ण ज्वर में–चौसठ प्रहरी पिप्पली के साथ स्त्रियों के अति रजःस्राव जन्य दुर्बलता एवं पाण्डु, शोथ में-लोह भस्म के साथ तथा अनुपान भेद से अनेक रोगों पर व्यवहृत होता है। किसी भी रोग के कारण आयी हुई दुर्बलता इसके सेवन से निश्चय दूर होती है। यकृत और प्लीहा के दोष को दूर करके पाचन क्रिया को नियमित बनता है अतः दीपन पाचन होने से मन्दाग्नि को दूर कर अजीर्ण दोष को नष्ट करता है। फलस्वरूप पाचन क्रिया में सुधार होकर रस-रक्तादि धातुओं को भी पुष्ट करता है। स्त्रियों के अत्यधिक रज स्राव से आयी हुई दुर्बलता एवं श्वेतप्रदर के कारण आयी दुर्बलता में रोग का नाश कर दुर्बलता दूर करता है। निरुत्साहित जीवन को यह उत्साह से भर देता है। मस्तिष्क की कमजोरी, अत्यधिक परिश्रमजन्य शिर शूल अत्यधिक स्त्री-प्रसव से हुई धातु क्षीणता में यह सफल महौषधि है।

विशेष—यदि स्वर्ण वसन्त मालती के सेवन से किसी को पित्त बढ़ता हो, गर्मी अधिक लगती हो या रक्तस्राव हो तो प्रवाल पिष्टी के साथ मिलाकर देनी चाहिए। किसी को शुष्क कास होने पर यह सहन नहीं होती अतः उनको पहले कामदुधारस व अमृता सत्व प्रवालपिष्टी देकर उग्रता का दमनकर फिर इसका प्रयोग लाभकारी है।

(३) शिवागुटिका (चक्रदत्त)—आयुर्वेद की महौषधि विगत ७ वर्षो से मधुमेह के रोगियों पर सफलता पूर्वक प्रयोग कर रहे हैं। यह शिलाजीत प्रधान औषधि है।

इसके प्रयोग से शरीर स्वस्थ और आनन्दमय बन जाता है, शोथ, कम्पवात पाण्डु, श्लीपद, प्लीहावृद्धि, अर्श, प्रदर, प्रमेह, प्रमेह पिड़िका, अश्मरी, अर्बुद, भगन्दर उरुस्तम्भ, उन्माद, वातरक्त, कुष्ठ, मद, अपस्मार अति स्थूलता, अतिकृशता मूत्रकृच्छ्र और हलीमक, यक्ष्मा तथा यक्ष्मा तथा अकाल पलित रोग का नाश होता है। उरुस्तम्भ और वातरक्त में, कुष्ठ और श्लीपद में, यक्ष्मा और वालिपलित के कारणों में कोई साम्य नहीं पर यह गुटिका समान रूप से गुणकारी है। यदि शिवागुटिका आप स्वयं निर्माण कर सकें तो निर्मल आयुर्वेद संस्थान से मंगा

सकते हैं।

(४) योगेन्द्र रस—(भैषज्य रत्नावली)—यह रसायन वातवाहिनी नाड़ियों, मन, मस्तिष्क और रक्तवाहिनी नाड़ियों पर विशेष रूप से प्रभावशाली है। इसके सेवन से वात-पित्त रोग, प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्राघात, बालपक्षाघात (Polio) उन्माद, मूर्च्छा, हिस्टीरिया, पक्षाघात हनुग्रह, अर्दित, मन्यास्तम्भ, शारीरिक दुर्बलता आदि दूर होकर रोग नष्ट होते हैं। रोगानुसार अनुपान से देने पर आशुफलप्रद है। हृदय रोग, मधुमेह, पक्षाघात पर इसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाता है। पित्तविकार में त्रिफला जल + मिश्री, हिस्टेरिया में जटामांसी क्वाथ + मिश्री, वातरोगों में रसोन घृत + मिश्री, हृदयरोग में अर्जुनछाल के क्वाथ से इसका प्रभाव प्रशस्त है। अति मवाद वाले से हुए क्षय रोग में इस का प्रयोग शीघ्र लाभ प्रद है। पक्षाघात पोलियो की यह सफल दवा है।

(५) वात कुलान्तक रस (भै.र) — रक्तचाप हीनता में यह अत्यन्त ही सफल औषध है। दूध के साथ इसकी पहली मात्रा से हीन रक्तचाप सामान्यावस्था में आ जाता है मगर रोगी शक्ति और स्फूर्ति अनुभव करता है उन्माद अपस्मार एवं मूर्च्छा की यह प्रशस्त महौषधि है। मानसिक विकृति जन्य अपस्मार व मानसिक व्याघात जन्य मूर्च्छा में अभ्रक भस्म के साथ इसकी योजना तत्काल फलदर्शी है। आक्षेप युक्त वात व्याधियों में धनुर्वात, वाल कम्प, हृदय कम्प, सूतिका रोग में आक्षेप तथा निद्रानाश को दूर कर यह मन को प्रफुल्लित करता है। बाल पक्षाघात में भी यह सफलतापूर्वक प्रयुक्त होता है। सन्निपात, न्यूमोनिया में बुद्धि भ्रंश एवं प्रलाप का शमन कर निद्रादायक है। वातवाहिनी की विकृतियों पर सफल है।

(६) वातचिन्तामणि रस (बृहद)—(भै० र०)—आयुर्वेद में वातरोग के लिए यह महौषधि है। उच्च रक्तचाप में अकेले या सर्पगन्धा के साथ इसका प्रयोग लाभदायक है। वात और पित्त सम्बन्धी रोगों में इसकी बड़ी प्रशंसा है। हृदय और मस्तिष्क के लिए उत्तम बलकारक है। आक्षेप और हिस्टेरिया में इसका मांस्यादि क्वाथ से सन्निपात ज्वर की प्रलापावस्था में तगरादि क्वाथ से पक्षाघात, अर्दित, धनुर्वात आदि कठिन वात रोगों में रसोन सिद्ध घृत से, हृदय रोग में अर्जुनछाल क्वाथ से इसका प्रयोग प्रशस्त है। रोग की सङ्कट कालीन अवस्थाओं में नाड़ी क्षीणता, हाथ पांव कांपना तथा पसीना अधिक होकर शरीर ठण्डा पड़ जाने में प्रयोग करें।

(७) मोती पिष्टी (र. त.)—हृदय शक्ति वर्धन व डूबते हुए हृदय को सहारा देकर जीवनीय शक्ति की रक्षा करती है। हृदय की धड़कन में मधु से व खमीरा गाजवान अम्बरी के साथ इसकी पहली मात्रा ही फलप्रद है। रक्तस्राव दाहयुक्त में नागकेशर चूर्ण + मक्खन के साथ; रक्तचाप में— अनार स्वरस क्षय रोग में— सितोपलादि चूर्ण व मधु के साथ अन्तर्दाह में—अमृता सत्व + मधु से मूत्र कृच्छ्र में—नारियल के पानी से अम्लपित्त में—आंवला के मुरब्बे के साथ तथा समस्त पित्तज विकारों में पिष्टी का प्रयोग प्रशस्त है। मुक्ता पिष्टी नेत्ररोग धातुक्षीणता क्षय उरःक्षत जीर्ण ज्वर कास हिक्का नकसीर, हृदय तथा मस्तिष्क की निर्बलता शिरःशूल दाह प्रमेह मूत्रकृच्छ्र निद्रानाश अत्यन्त त्रास अत्यन्त क्रोध रात्रि जागरण जन्य दाह अति मानसिक श्रम अति उष्ण पदार्थ सेवन इत्यादि के बढ़े हुए विकारों में आशुफलप्रद है।

(८) पुनर्नवा मण्डूर (भा प्र.)—सर्वाङ्ग शोथ और पांडु में आयुर्वेद का बहुप्रचलित सुप्रसिद्ध योग है जो शरीर में रक्ताल्पता की पूर्ति कर शोथ, पांडु का नाश कर आंतों को बलवान बनाता है। मल-मूत्र के द्वारा शरीर के दोषों का संहरण कर रोगमुक्त करता है। विषम ज्वर ग्रहणी विकार यकृत्प्लीहा वृद्धि, अर्श आन्त्र क्षय वात रक्त कफ, श्वास क्षय कुष्ठ रोगनाशक उत्तम योग है पुनर्नवामण्डूर वृक्क हृदय यकृत् रक्त आमाशय और आन्त्र पर प्रभावशाली महौषधि है जो अपनी शोधन क्रिया द्वारा मूत्रल और शोथहर औषधि के रूप में प्रसिद्ध है। वैद्यगण अनुपान भेद से विविध रोगों में इसको व्यवहृत करते हैं। सर्वाङ्ग शोथ में मधु एवं गोमूत्र से, पांडुरोग में पुनर्नवा स्वरस व मधु से उदर रोग एवं आमप्रधान कब्ज में हरड़ चूर्ण के साथ वात रोग में महायोगराज गुग्गुल के साथ इसका प्रयोग प्रशस्त है। पक्वाशय, रक्त और रस धातु की

शुद्धि कर रक्तानिस्सरण क्रिया को बलवान कर वात रक्त एवं कुष्ठ का नाश करता है।

(९) आरोग्यवर्धिनी वटी (र. र. सु)—यह उत्तम दीपन पाचन स्रोतोरोध हर हृद्य मेदघ्न मूत्रल जन्तुघ्न शोथघ्न रक्तशोधक रक्तचापहर अलर्जी नाशक कुष्ठघ्न पांडु-जलोदर जीर्ण ज्वर हिक्का नाशक है। अलर्जी यह रोग आधुनिक एण्टीवयोटिक्स के दुष्प्रभावों से आज बहुप्रसरित है इसमें मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ ७ दिन का प्रयोग पर्याप्त रहता है। आधुनिक सभ्यता का रोग रक्त-चाप में अमलताश के क्वाथ व सहंजना स्वरस से लाभप्रद है। वैद्यगण कामला में भृंगराज स्वरस से यकृत्प्लीहाशोथ में गोमूत्र तथा सर्वाङ्ग शोथ में पुनर्नवा स्वरस के साथ इसका सफलतापूर्वक प्रयोग करते हैं। हिक्कारोग में आरोग्यवर्धिनी तत्काल फलप्रद है। वृद्धान्त्र एवं लघु आन्त्र विकृति नाशक होने से रक्तदोष नाशक एवं कुष्ठ हर है कुष्ठ की प्रारम्भिक अवस्था में इसका प्रयोग उपादेय है।

(१०) दुर्जलजेता रस (यो. र.)—दूषित्र जल से उत्पन्न विकार दूषित वायु से उत्पन्न होने वाले रोग तथा मौसम परिवर्तन के समय उत्पन्न होने वाले विकारों के दुष्प्रभावों को तत्काल जीतने के कारण दुर्जलजेता नाम सार्थक है। दुष्ट जलवायु जनित ज्वर, जुकाम सहित ज्वर शीत ज्वर अजीर्ण मन्दाग्नि आमवृद्धि अफरा मलावरोध शूल-श्वास-कास रोग नाशक है। नवीन ज्वर में यह तत्कालफलदर्शी है रात को एक गोली खाकर सोने से प्रातः ही स्वस्थ अनुभव होता है। असम प्रदेश में भारत के उत्तर प्रांतों से व्यवसायिक कार्य हेतु व्यापारी प्रतिनिधि आते रहते हैं तथा यहां वर्षा में भीगते ही वे बीमार हो जाते हैं खास कर ऐसे ही व्यक्तियों के लिए हम इसका प्रयोग करते हैं तथा तत्काल फलप्रद है।

(११) श्वेतपर्पटी (सि. यो. सं)—आयुर्वेद का आशु-फलप्रद सुप्रसिद्ध मूत्रल योग है। डाभजल (कच्चे नारियल के जल) से व दूध व दही की लस्सी से देने से १०-१५ मिनिट में ही मूत्र त्याग हो जाता है मूत्र में दाह हो तो १ चम्मच चीनी के साथ मिलाकर शीतल जल से देने पर मूत्र त्याग के साथ दाह की भी शान्ति होती है वैसे तो यह प्रमुख रूप से मूत्रल योग है पर शरीर शोष हरण के लिए मूत्रल क्रिया सरल एवं सर्वोत्तम है एतदर्थ चिकित्सक अपनी प्रत्युत्पन्नमतित्व से व्यापक रूप से इसका प्रयोग कर सकते हैं। सर्वाङ्ग शोथ में यह मूत्र निःसरण क्रिया तीव्र कर शोथ का हरण करता है हम इसका प्रयोग शोथ की लगभग सभी अवस्थाओं में करते हैं आघातज व्रण व सेप्टिक के कारण हुई स्थानिक शोथ भल्लातक प्रयोग जन्य शोथ सब में समान रूप से गुणकारी पाया है। तीव्र ज्वर में मूत्रल क्रिया द्वारा ज्वर का वेग शमन हो जाता है उच्चरक्तचाप में जो भी प्रयोग चल रहा है इसका साथ में प्रयोग अत्यन्त हितावह है तथा सर्पगन्धा के साथ देने से तो इसकी पहली मात्रा ही रक्तचाप को नियन्त्रित करती है आसाम में डाभ बहुतायत से होते हैं, तथा सर्व सुलभ है। बस, हम इसकी १ पुड़िया १-२ ग्राम तक डाभ में मिलाकर पीने को दे देते हैं इससे अम्लपित्त छाती की जलन खट्टी डकारें आना आदि उपद्रव १०-१५ मिनिट में ही शांत हो जाते हैं तथा मूत्र द्वारा दोष निर्हरण हो जाता है अतः यह उत्तम मूत्रल स्वेदल वातानुलोमक दीपन पाचक वृक्कशूल उदरशूल नाशक है।

(१२) बाल चातुर्भद्र चूर्ण (सि. यो. सं.)—यह मात्र चार द्रव्यों—नागरमोथा पीपल अतीस काकड़ासिंगी से निर्मित है पर बालकों के बहुरोगों पर आशु गुणकारी होने से अपनी भद्रता-कारण जागता के प्रदर्शित कर बाल चातुर्भद्र नाम को सार्थक करता है। बालकों के अरुचि अग्निमांद्य अतिसार यकृत्प्लीहा वृद्धि छर्दि ज्वर ज्वरातिसार कास श्वास प्रति श्वास दन्तोद्भव विकारों में अत्यन्त लाभप्रद है। बच्चों के ज्वर के साथ पतले दस्त दूध न पचना दूध का फटा-फटा वमन हो जाना आदि में श्रेष्ठ गुणकारी है। इसे बच्चों के किसी भी रोग में निर्भय प्रयोग कर सकते हैं तथा इस योग में रोग के लक्षणानुसार अन्य दवाओं का भी मिश्रण कर सकते हैं। सामान्यतः १ रत्ती टंकण मिला कर देना तो इसे अमृत तुल्य गुणकारी बना देता है।

(१३) प्रतापलंकेश्वर रस (यो. र.)—प्रसूत रोग के लिये यह रसायन अमृत तुल्य है। प्रसूत रोग और तज्जन्य

व्याधियों—ज्वर कास श्वास पार्श्वशूल न्यूमोनिया भयङ्कर अतिसार धनुर्वात (Tetanus) दन्त-बन्ध (दांती लगना) आदि में लाभप्रद हैं। इसके सेवन से गर्भाशय का दूषित व संचित रक्त का स्राव होकर गर्भाशय शुद्ध हो जाता है। सूतिकाज्वर अति दुष्ट और भ्रमप्रद है। इसमें ज्वर के साथ व्याकुलता भ्रम प्रलाप आदि बढ़ कर धनुर्वात की स्थिति उत्पन्न कर देता है व उन्माद हो जाता है जिसमें यह रसायन अत्यन्त ही आशु फलप्रद है।

प्रारम्भ में हम इसका प्रयोग केवल प्रसूत ज्वरादि पर ही किया करते थे किन्तु जब धनुर्वात ग्रसित प्रसूत रुग्णा इस महौषधि से पूर्ण स्वस्थ हो गयी तो मेरा ध्यान इसके संक्रमणनाशक गुणों को ओर गया और मैंने इसका प्रयोग "Tetanus Anti Toxin" की जगह प्रारम्भ किया। असम प्रदेश में वर्षा अधिक होने से व यहां की जलवायु का भी कुछ विशेष प्रभाव है कि बांस गढ़ जाने व लोहे से फट जाने से या दुर्घटनाग्रस्त होजावे से 'सेप्टिक' या टिटनस होने का भय बना ही रहता है। मैंने विगत १५ वर्षों में सहस्त्रों रोगियों पर इसका सफल परीक्षण किया। बहिरंग विभाग में प्रतिदिन दर्जनों रोगियों पर प्रयुक्त होता रहता है। शरीर के किसी भी भाग में पीव पड़ जाने। जल-कट जाने घाव हो जाने पर इसका प्रभाव शीघ्र ही मवाद सुखा देने में लाभप्रद है। अतः यह आधुनिक 'पेनसिलिन' समान गुणकारी आयुर्वेद ATS है।

(१७) विषमुष्टकादि वटी (आ. नि.)—यह कुचला प्रधान औषधि है जो सभी प्रकार की शारीरिक वेदना नाशक है तथा प्रताप लंकेश्वर के साथ इसका संयोग तो मणिकांचन योग ही समझिये कारण दुर्दान्त व आघातज वेदना में इसका प्रयोग तत्काल वेदनाहर है। नवीन ज्वर व अचानक जुकाम आकर छींकें आने लगे तो इसकी पहली मात्रा ही ज्वर का नियन्त्रण कर देती है। पक्षाघात अर्दित कम्पवात गृध्रसी आमाशय और पक्वाशय वात प्रकोप तथा ज्ञान तन्तुवों की विकृति स्नायु मण्डल का तनाव दूर होकर कठिन वात रोगों को नष्ट करने में यह औषधि आशु फलप्रद है। अजीर्ण अतिसार अफरा मन्दाग्नि में यह अग्नि को बढ़ाकर क्षुधा वृद्धि करती है। स्नायुमण्डल को शक्ति प्रदान कर कामशक्ति को जागृत करती है। अफीम का व्यसन छुड़ाने के लिये इसे अफीम की मात्रा के बराबर देने से उतना ही नशा आता है और अफीम के प्रति अरुचि होकर एक सप्ताह में व्यसन छूट जाता है। चिकित्सक अनेक रोगों में अनुपान भेद से व अन्य मिश्रण के साथ इसका बहुलता से प्रयोग करते हैं बहुकार्यकारी द्रव्य है।

द्रष्टव्य—आयुर्वेद महासागर में अनन्त महर्घ्य रत्न भरे पड़े हैं 'जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ' वाली कहावत इस सन्दर्भ में अक्षरशः खरी उतरती है। सैकड़ों प्रयोग अहर्निश चिकित्सा में प्रयुक्त होते रहते हैं 'चतुर्दश योग रत्न'। शीर्षक होने से हमने १७ बहुत प्रचलित बहुलित बहुशः परीक्षित शास्त्रीय योग ही प्रस्तुत किये हैं जिन की मात्रा आदि दोष-बल-बलानुसार चिकित्सक स्वयं निश्चित करें। सामान्यतः सभी की १-२ गोली प्रातः सायं उचित अनुपान से सेवनीय है।

अनुपान में आसवारिष्ट—आसवों का मद्यांश योगवाही और आशुगुण के कारण औषधि के कार्यों को बढ़ाता है तथा तत्काल फल प्रदर्शित करता है तथा जिस प्रकार खाली पेट मद्यपान करने से तुरन्त नशा चढ़ जाता है उसी तरह सङ्कटकालीन अवस्था में रोग के तत्कालीन लक्षणों को शान्ति हेतु निर्धारित मात्रा से दुगनी मात्रा में अनुपान रूप में विविध रसों व उपयुक्त औषधियों के साथ प्रयोग आशु फलप्रद है। तीव्र उदर शूल में—कनकासव व अहिफेनासव; मूत्रकृच्छ में चन्दनासव + सारिवाद्यासव रक्त प्रदर व अधोगत रक्तपित्त में—अशोकारिष्ट + लोध्रासव रक्तातिसार में-कुटजारिष्ट + लोध्रासव, रक्तचाप, चक्कर में—अर्जुनारिष्ट + अश्वगन्धारिष्ट की दुगनी मात्रा दें।

सस्ती दवाओं का व्यामोह—आयुर्वेद की दवायें सस्ती हैं इस व्यामोह में मत पड़िये तथा रोगी पर खासकर सङ्कटकालीन स्थिति में स्वर्णघटित प्रयोग ही काम में लीजिये आज का रोगी जब एलोपैथिक की मंहगी से मंहगी चिकित्सा ले सकता है फिर आयुर्वेद की महंगी दवायें क्यों नहीं लेगा बशर्ते उसको तत्काल लाभ होना चाहिए। विश्वस्त कम्पनियां जैसे निर्मल संस्थान स्वर्ण घटित योग बनाती हैं और प्रयास करने पर सर्व सुविधाएं सर्वत्र सुलभ की जा सकती हैं।

चतुर्दश आयुर्वेदीय कैप्सूल योग रत्न

आयुर्वेदीय कैपसूल—आयुर्वेदीय औषधियों का कैप्सूल के रूप में प्रयोग युगानुरूप तो है ही, रोगियों के लिए रुचिकर एवं मनोवैज्ञानिक प्रभावदायक भी है। आजकल कई कम्पनियों के पेटेन्ट योग कैपसुल के रूप में उपलब्ध हैं। हम अपने स्वानुभूत १४ कैपसूल प्रयोगों को ही चिकित्सकों की सेवा में प्रस्तुत करते हैं—

(१) अतिसारघ्न कैपसूल—बिल्वादि चूर्ण १०० ग्राम, लाई चूर्ण ३० ग्राम, भुवनेश्वर रस ३० ग्राम, शङ्ख भस्म २० माशे, अफीम १० माशे को खरल में घोटकर भांग स्वरस एवं डोडा क्वाथ की भावना देकर सुखाकर कैपसूल नं० ० साइज में भरकर रख लें।

उपयोग—सभी प्रकार के अतिसार में यह लाभदायक है। विशेषतः तीव्र अंत्राहिका व दस्तों के तीव्र वेग को तत्काल रोकने के लिए इसका प्रयोग आशुफलप्रद है।

(२) अस्थि सन्धान कैप्सूल—लाक्षादि गुग्गुलु, मंजीष्ठ, मधुयष्टि, हड़जोड़, हरिद्रा, शु. कुचला, प्रवाल भस्म, कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म, पीपल लाख तथा अश्वगन्धा इन दस दवाओं को १०-१० माशे लेकर खरल कर कैप्सूल नं० ० में भर कर रख लें।

उपयोग—अस्थि भङ्ग की सभी अवस्थाओं में सुबह शाम दूध से दें, अस्थि को जोड़ने में अद्भुत लाभदायक है। अस्थिभङ्ग की वेदना का भी शमन करता है। ४० दिन का कोर्स पर्याप्त है। साथ में अस्थि सन्धान लेप का प्रयोग करना उत्तम है। अस्थि सन्धान में पलास्टर कटाकर भी आभ्यन्तर प्रयोगार्थ प्रयुज्य है। कई ऐसे रोगी भी चिकित्सा में आये जिन को १ महिने के लिए प्लास्टर किया गया। पर पुनः एक्स रे करने पर सन्धान नहीं हुआ। उन रोगियों पर १०-२० कैप्सूल के प्रयोग से पुनः एक्स-रे करने पर आशातीत सफलता के प्रत्यक्ष प्रमाण मिले हैं।

(३) अर्धावभेदक कैप्सूल—मुक्तापिष्टी पांच माशे, प्रवालपिष्टी १० माशे, गोदन्ती २० माशे, शिरःशूलादि वज्र रस ४० माशे सबको खरल में घोटकर नं. ० मझले साइज के कैप्सूल भर लें। १-१ कैप्सूल सुबह-शाम पथ्यादि क्वाथ से दें।

उपयोग—अर्धावभेदक कष्टसाध्य दुष्ट रोग है। रोगी आधे सिर के दर्द से बेचैन हो जाता है। १० कैप्सूल का कोर्स पर्याप्त है। इस कैप्सूल से शिरःशूल के ऐसे जटिल रोगी भी ठीक हुए हैं जिन्हें बचपन में यदाकदा सिर दर्द रहता था पर बाद में यह स्थायी हो गया और दस-पन्द्रह वर्षों स्थायी रूप से शिरःशूल रहने लग गया था। ऐसे असाध्य रोगियों पर भी इस कैप्सूल से आशातीत लाभ हुआ है।

सहायक औषधि—षड्बिन्दु तैल की ६-६ बूंद रात में सोते समय नाक में डालें।

पथ्य में—बादाम का हलवा, दूध+जलेबी एवं स्निग्ध और पौष्टिक पदार्थ लेवें।

(४) सोमा कैप्सूल—शु. मैनसिल, सोमसत्व पांच-पांच माशे, मल्लसिंदूर २ माशे, वासा चूर्ण १। तो०, सबको खरल कर छोटी साइज के नं. २ कैप्सूल भरें।

उपयोग—श्वास रोग में तत्काल फलप्रद हैं। दमकशी एवं श्वास कष्ट में पहला ही कैप्सूल तत्काल लाभ करता है। श्वास का दौरा पड़ने की सम्भावना होने पर ले लेने से दौरा नहीं पड़ता। श्वास के रोगी रात के समय १ कैप्सूल दूध से लेकर सो जाने से निश्चिंत सोते हैं। आशुफलप्रद स्वानुभूत प्रयोग है।

विशेष—हम सोमसत्व के स्थान पर इफेड्रीन क्लोराइड की गोलियां डालते हैं और जिन श्वास रोगियों को उच्च रक्तचाप है तथा रात में नींद नहीं आती है उनके लिए मल्ल सिंदूर के स्थान पर ताल सिन्दूर डालते हैं जिससे रोगी गहरी निद्रा में सोता है।

(५) रक्तरोधक कैप्सूल—कहरवा पिष्टी १० माशे, अकीक पिष्टी, शुभ्रा भस्म, खून खराबा, लाक्षा चूर्ण २०-२० माशे खरल में घोटकर नं. १ मझले साइज के कैप्सूल भर लें। १-१ कैपसूल रोग की अवस्थानुसार ३-४ बार दिया जा सकता है।

उपयोग—किसी भी प्रकार के रक्तस्राव को तत्काल बन्द करने में यथानाम तथा गुण है। दुर्घटना ग्रस्त होने पर रक्त बह रहा हो तो इसका प्रयोग लाभदायक है। रक्तप्रदर, रक्तातिसार रक्तवमन रक्तार्श नासा रक्तस्राव

सभी में लाभदायक हैं। रक्तप्रदर में दूर्वा स्वरस के अनुपान से देना आशुफलप्रद है। रक्तार्श, रक्तातिसार नासा रक्तस्राव के रोगियों को रात में सोते समय एक कैपसूल देना चाहिए।

(६) रसमाणिक्य कैपसूल—रसमाणिक्य अमृतासत्व, प्रवालपिष्टी ५-५ माशे, शुद्ध गन्धक आरोग्यवर्धिनी महामंजिष्ठादि चूर्ण १।-१। तोला, सबको खरल करके नं. १ साइज के कैपसूल भर ले। १-१ कैपसूल मंजिष्ठाद्यारिष्ट से दिन में २ बार दे।

उपयोग—एलर्जी में अत्यन्त लाभप्रद है। रक्तविकार, कुष्ठ, एक्जिमा में इसका प्रयोग आशातीत लाभदायक है। दुसाध्य चर्मरोगों एवं पुराने रक्तविकारों पर इसका प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है।

(७) अम्लपित्तान्तक कैपसूल—बड़ी इलायची के बीज, इमली छाल का कोयला स्टोन जवाहरड ५-५ माशे माशे, शङ्ख भस्म ३० माशे, सोडा बाई कार्ब सौ माशे, सबको खरलकरके नं. ० नम्बर साइज के कैपसूल भर ले। १-१ कैपसूल ठण्डे पानी से लें।

उपयोग—अम्लपित्त की सभी अवस्थाओं में एवं तीव्र उदरशूल और वृक्कशूल में आशुगुणकारी अव्यर्थ योग है जो अपने तीव्र प्रभाव से अम्लपित्त के सभी उपद्रवों छाती में जलन खट्टी डकारें आना मितली उदरवात आदि का तत्काल शमन करता है। गरिष्ट भोजन को हजम करने में एवं शराबियों की प्रातःकालीन छाती की जलन में १ कैपसूल ही रामबाण है।

(८) निद्रोदय कैपसूल—स्वर्ण माक्षिक भस्म, सर्पगन्धा चूर्ण जटामांसी वच भांग ब्राह्मी शङ्खपुष्पी फेनो बारबिटोन सबको १०-१० माशे लेकर खरल करके नं. ० साइज के कैपसूल भर लें। १ कैपसूल रात को सोते समय देना चाहिए।

उपयोग—उत्तम निद्रादायक प्रयोग है जो रक्तचाप को नियन्त्रित करता है। रक्तचाप के रोगी रात को सोते समय इसका प्रयोग करने से शान्त गहरी नींद में सोते हैं और रक्तचाप भी सामान्य हो जाता है। मस्तिष्क पर अवसादक सशामक एवं निद्रा प्रभावकारक है। अतः इस कैपसूल को लेकर सो जाना चाहिए।

(९) रक्तचापहर कैपसूल—सर्पगन्धा चूर्ण १० मा.शे.श्वेतपर्पटी १० माशे को घोटकर नं. १ साइज के कैपसूल भर ले। एक-एक कैपसूल दिन में २-३ बार दें, इससे मूत्र क्रिया की वृद्धि होकर तत्काल उच्च रक्तचाप सामान्य हो जाता है। रक्तचाप के रोगी इसका कुछ दिन लगातार भी प्रयोग करते रहें तो कोई हानिकारक प्रभाव नहीं होता। प्रयोग सामान्य है पर तत्काल फलप्रद है।

(१०) विड्विहीन कैपसूल—कबूतर की विष्टा (बीट) १० माशे अहल सिन्दूर २ माशे कस्तूरी १ माशे हरताल पुष्प आधा माशा को खरल में घोटकर नं. १ छोटे साइज के कैपसूल भरले। दिन में ३ बार अदरक रस+मधु व दूध से दे।

उपयोग—पक्षाघात कम्पवात तथा अर्दित की अद्वितीय महौषधि है। १० दिन के प्रयोग से ही आशातीत लाभ होता है। विशेषतः कम्पवात के रोगियों पर एक-एक कैपसूल सुबह ... तथा सिद्ध भैरव तैल की मालिश कराकर हमने सफलता पायी है।

(११) ज्वर संहार कैपसूल—ज्वर संहार रस विषमुष्टी वटी त्रिभुवन कीर्ति रस कल्पतरु रस २०-२० माशे गोदन्ती भस्म शु स्फटिका अमृता सत्व एपीन १०-१० माशे महासुदर्शन चूर्ण ४० माशे सबको घोट कर बड़े साइज के नं. ०० के कैपसूल भर लें। एक एक कैपसूल दिन में ३ बार दे सकते हैं।

उपयोग—सान्निपातिक ज्वर को छोड़कर सभी प्रकार के ज्वरों में इसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। तीव्र ज्वर में ज्वर के तापमान को कम करने के लिये पहला ही कैपसूल तत्काल फलप्रद है। ज्वर के साथ अंगमर्द, शिरःशूल, वमन आदि उपद्रवों को भी शान्त करता है। नवीन ज्वर में रात को सोते समय १ कैपसूल लेकर सो जाने से प्रातः ही रोगी अपने को स्वस्थ तथा तरोताजा महसूस करता है। विषम ज्वर में ज्वर वेग के पूर्व लेने से ज्वर के आक्रमण को रोक देता है। तीव्र नजला, जुकाम एवं बार बार छींकें आना आदि भी इससे तत्काल रुक जाता है।

(१२) प्रताप लंकेश्वर कैपसूल—प्रताप लंकेश्वर

रस, विषमुष्टि वटी, लक्ष्मीविलास रस, शु. गन्धक, मधुयष्टि चूर्ण १०-१० ग्राम को खरल में घोटकर नं. ० साइज के कैपसूल भर लें। १-१ कैपसूल दिन में तीन बार देना चाहिए।

उपयोग—आयुर्वेदीय ए. टी. एस. के रूप में अप्रतिम लाभदायक है। आघातज व्रण पर व्रण बन्धन कर यह कैपसूल खाने को दे देने से व्रण पाक होने का भय नहीं रहता तथा घाव शीघ्र भरता है। जहां जहां भी ए. टी. एस. इन्जेक्शन देने की आवश्यकता हो इसका प्रयोग आशातीत फलप्रद है। अग्निदग्ध व्रण व अन्य व्रण व सेप्टिक में बहुशः परीक्षित सफल प्रयोग है।

(१३) हृदय वल्लभ कैपसूल—जवाहर मोहरा ५ माशे, मोतीपिष्टी ५ माशे, अकीक पिष्टी, मृगशृङ्ग भस्म, अर्जुन चूर्ण ११-११ तो० को खरल से अच्छी तरह घुटाई कर नं. १ (छोटी साइज) के कैपसूल भर लें। १-१ कैपसूल दूध से दें।

उपयोग—यथा नाम तथा गुण है। हृदय रोगियों के लिए अमृततुल्य गुणकारी है। हृदय की धड़कन पर पहला ही कैपसूल आशातीत लाभदायक है। दिल घबराना, दिल बैठना, हृदय व नाड़ी की गति मन्द होना आदि में इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। हृदय शक्तिवर्धक उत्तम रसायन है।

(१४) शाकोमा कैपसूल—रसमाणिक्य, गन्धक रसायन, अमृतासत्व, सप्त विंशति गुग्गुल, कांचनार गुग्गुल १०-१० माशे, खून खराबा, उदम्बर महामंजिष्ठादि चूर्ण, अनन्त मूल चोक (स्वर्णक्षीरी मूल) १५-१५ माशे सबको खरल करें नं. ०० बड़े साइज के कैपसूल भर ले। १-१ कैप. दिन में तीन बार महामंजिष्ठादि अर्क से दें।

उपयोग—इस कैपसुल का निर्माण कैन्सर रोग पर करने के लिए किया है पर अभी तक व्यापक प्रयोग नहीं कर पाये हैं। कारण कैन्सर का निदान साधन Biopsy परीक्षण एकमात्र आधुनिक एलोपैथिक साधन सम्पन्न चिकित्सालयों में ही है। फलस्वरूप Biopsy परीक्षण के लिए रोगी को भेजने पर वह एलोपैथिक की शरण में चला जाता है। आधुनिक युग का यह ऐसा दुर्जेय प्राणघातक रोग है कि रोगी कैन्सर का नाम सुनते ही 'गृहीत इव केशेषु' मौत ने केश पकड़ लिया है, जैसे भयभीत होकर मर जाता है। आधुनिक शल्य चिकित्सा और विकरण चिकित्सा (Radio therapy) से रोग २-३ साल के लिए किसी तरह दब जाता है पर कैन्सर रोगी की मृत्यु कैन्सर रोग से ही निश्चित है। हमने स्तन कैन्सर, गर्भाशय कैन्सर के रोगी पर अन्य सहायक औषधियों के साथ इस कैपसुल से सफलता पायी है। पर जब तक हमारे द्वारा १०० रोगियों पर परीक्षण नहीं हो तब तक अनुभूत कैसे मानें?

चतुर्दश आयुर्वेदीय इन्जेक्शन योग रत्न

आयुर्वेदीय इन्जेक्शन (सूचीवेध)—आयुर्वेदीय सूचीवेध का निर्माण आयुर्वेदीय औषधियों के क्रियाशीलसार में आधुनिक औषधियों के उपादेय क्रियाशील तत्वों को मिलाकर किया जाता है जो तत्काल फलप्रद है अतः चिकित्सकों को धड़ल्ले से इनका प्रयोग कर धन यश अर्जित करते हुए रोग की सङ्कट-कालीन स्थितियों में रोगी की प्राण रक्षा करनी चाहिए। आजकल आयुर्वेदीय रस, भस्म एवं काष्ठौषधियों के इन्जेक्शन बनने लगे हैं जिनका प्रयोग योगानुसार मिश्रित करके भी किया जा सकता है। "चतुर्दश इन्जेक्शन योग रत्न" शीर्षकानुसार यहां १४ प्रमुख इन्जेक्शन योगों का ही प्रयोग प्रतिष्ठित किया जारहा है जो मार्तण्ड (बड़ौत) एवं प्रताप फार्मा (देहरादून) द्वारा निर्मित है—

(१) तापीकर—१ मिलि. एम्पुल में—कण्टकारीक्षार २ मिग्रा. वसाकाक्षार २ मिग्रा. तुलसीक्षार ३ मि.ग्रा. बनफशाक्षार १ मिग्रा. स्ट्रिकनीन हाइड्रोक्लोराइड १ मिग्रा.।

प्रयोग विधि—त्वचान्तर्गत देना चाहिए। इसमें कुचला है अतः बच्चों को आयु के अनुसार आधी व चौथाई मात्रा देनी चाहिए।

उपयोग—इन्फ्लुएन्जा, वात कफ ज्वर में यह आशुफलप्रद योग है। ज्वर यदि होने वाला ही हो व नजला

जुकाम खांसी उग्ररूप में हो एवं रोगी छींकते-२ परेशान हो रहा हो तो इसका पहला ही इन्जेक्शन तत्काल रोग को नियन्त्रण करता है। तीव्रज्वर में यह ज्वर के वेग को नियन्त्रित करता है। नाड़ी का मन्दगति चलना नियमित हो जाता है एवं दिल और फेफड़ों को ताकत मिलती है। पाचन को सुधारकर क्षुधावृद्धि कर दौर्बल्यजन्य अग्निमांद्य एवं मलावरोध को भी दूर करता है। नाड़ी दौर्बल्य की अवस्था में एवं मनोवसाद तथा पक्षाघात की प्रारम्भिक अवस्था में लाभदायक है।

(२) विषमांत—विषमज्वर (मलेरिया) का अन्त करने में अद्वितीय होने के कारण इसका विषमांत नाम सार्थक है। प्रताप फार्मा द्वारा निर्मित इस इन्जेक्शन का प्रयोग हमने सहस्त्रों रोगियों पर सफलतापूर्वक किया है। ३ इन्जेक्शन का कोर्स है। योग २ मिलि. प्रति एम्पुल में सप्तपर्णक्षार ४ मिग्रा., नायक्षार ८ मिग्रा., रसोत क्षार ८ मिग्रा., सर्पगन्धाक्षार १ मि.ग्रा., सोमल ०·३ मिग्रा.।

प्रयोग विधि—२ मिलि. प्रतिदिन व एक दिन छोड़कर मांसपेश्यान्तर्गत देना चाहिए।

उपयोग—नये व पुराने विषम ज्वरों पर अचूक है गर्भवती स्त्री को भी लगाया जा सकता है। शीत लगना शरीर का टूटना व सम्पूर्ण शरीर में वेदना होना मतली व वमन आदि उपद्रवों को तत्काल शांत करता है। यह ज्वरको उतारता भी है तथा उतरे हुए ज्वर को रोकता भी है। अतः तीव्र ज्वर में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

विशेष—मलेरिया ज्वर निश्चित समय पर शीत लग कर आता है अतः ज्वर आने के ३ घण्टे पहले यह इन्जेक्शन लगा दिया जाय तो उसी दिन यह तीव्र ज्वर के वेग को रोक देता है। अतः सुबह ही इन्जेक्शन लगा दिया जाना चाहिए। सुबह नाश्ता करके पानी पीकर इन्जेक्न लेना चाहिए। खाली पेट लेने पर किसी-किसी को वमन व चक्कर आ जाता है जो पानी पीते ही शांत हो जाता है।

(३) विटासिल—योग प्रति १ मिलि. में सायनोकोबालमिन इस इन्जेक्शन को अनेक रोगों की सङ्कटकालीन अवस्थाओं में अन्य आयुर्वेदीय इन्जेक्शनों के साथ मिलाकर प्रयोग करना अत्यन्त लाभ कर है। किसी भी कारण से शरीर में रक्त की कमी हो गई हो व रक्तकणों की कमी हो गयी हो रक्ताल्पता की अवस्था में इसका प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है। रक्त की कमी के कई कारण हैं जैसे चोट लगने से रक्त का निकल जाना, पेचिस व रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तप्रदर, गर्भावस्था में रक्त की कमी, मलेरिया बुखार के कारण व जब शरीर में कमजोरी अधिक हो तो इसका प्रयोग लाभदायक है। हम इसका प्रयोग हमेशा आयुर्वेदीय इन्जेक्शनों में मिश्रित करके ही करते हैं। जीर्ण ज्वर में गुडूची इन्जेक्शन १ मिलि. में १ मिली. विटासिल मिलाकर ६ दिन तक देना अत्यन्त लाभप्रद है। जीर्ण ज्वर से क्षीण काय मरणासन्न रोगी को भी जीवनदान मिल जाता है।

(४) स्वर्ण मूंगा—विटासिल का इसके साथ मिश्रण मणिकांचन योग ही समझिये। रक्त न्यूनता, व मस्तिष्क दुर्बलता में अत्यन्त उपयोगी है। स्नायु दुर्बलता के कारण उदासीन रहना इससे दूर हो जाता है रक्तचापहीनता में विटासिल १ मि लि. स्वर्णमूंगा मिलि. मिलाकर देने से तत्काल लाभ होता है तथा ६ इन्जेक्शन का कोर्स पर्याप्त रहता है। किसी भी रोग के बाद की कमजोरी दूर करने के लिए भी आशुफलप्रद है। हृदयदौर्बल्य, हृदय की धड़कन बढ़ जाना, चक्कर आना, मन उद्विग्न व बेचैन रहना आदि अवस्थाओं में तथा रोग की घातक अवस्थाओं में रोग से सम्बन्धित इन्जेक्शन के साथ इन दोनों को मिलाकर दिया जा सकता है।

(५) खटिक—प्रति २ मिलि. एम्पुल में—प्रवालक्षार १० मिग्रा. शुक्तिक्षार १० मिग्रा. फलशर्करा २ मिग्रा. कैलशियम ग्लूकोनेट १०० मिग्रा.।

उपयोग—रक्तस्रावी व्याधियों—जैसे रक्त पित्त, रक्तप्रदर, रक्तार्श, रक्त वमन, नासा रक्तस्राव तथा अनेक आन्तरिक रक्तस्रावी व्याधियों जैसे आन्त्रशोथ, संग्रहणी, रक्तातिसार फुफ्फुसक्षय में लाभदायक है। रक्तस्राव किसी भी प्रकार का हो इसका प्रयोग निर्भय होकर धड़ल्ले के साथ किया जा सकता है। खटिक २ मिलि. + विटासिल १ मिलि का प्रयोग किसी भी प्रकार के रक्तस्राव में किया जा सकता है। इससे रक्त का स्तम्भन भी

तत्काल होता है एवं शक्ति का ह्रास भी नहीं होता। गर्भावस्था में तथा दूध पिलाने वाली माताओं की दुर्बल अवस्था में जहां कैलशियम की कमी हो, अत्यन्त लाभदायक है। गर्भपात जन्य रक्तस्राव में यदि अधिक दुर्बलता आगयी हो तथा रक्तस्राव बन्द न हो रहा हो तो—खटिक २ मिलि.+प्रदरारि २ मिलि.+स्वर्ण मूंगा १ मिलि+विटासिल १ मिलि=६ मिलि. मांसपेशी द्वारा धीरे-धीरे प्रविष्ट करें। हमने कई मरनासन्न रुग्णाओं को इस मिश्रण से जीवनदान दिया है। सन्देह के लिए कतई स्थान नहीं है निर्भय होकर प्रयोग करें। रक्तातिसार में—कुटजा ० मिलि.+विटासिल १ मिलि+खटिक २ मिलि. का मिश्रित प्रयोग तत्काल फलप्रद एवं प्राणरक्षक है। नासा रक्तस्राव, रक्तार्श में खटिक २ मिलि. विटासिल १ मिलि पहला ही इन्जेक्शन रक्तरोधक है। ६ इंजेक्शनों का कोर्स पर्याप्त है।

(६) कुर्चीनन प्रति १ मिलि.—कर्पूर ५ मिग्रा., अर्कमूल १ मिग्रा. कुर्चीक्षार ५ मिग्रा. स्ट्रिकनीनहाइड्रोक्लोराइड १ मिग्रा., एमीटीन हाइड्रोक्लोराइड ३० मिग्रा।

प्रयोग विधि – सभी प्रकार के अतिसार में १ मिलि. मांसपेशी में देना चाहिए।

उपयोग – समस्त प्रकार के अतिसार पर अनुभूत है तथा प्रथम इन्जेक्शन ही दस्तों को रोक देता है। आमातिसार तथा अमीबिक प्रवाहिकाजन्य यकृत शोथ (Hepatitis) पर यह अमोघ है। बेसिलरी पेचिस, खूनी पेचिस, पेट में आम बढ़ जाना, गर्मी के कारण अतिसार, बड़ी आंत में शोथ मलाशय में जमा आंव व कीटाणुओं को नष्ट करता है। इसके प्रयोग में प्यास, लगना, खुश्की आना आदि इमेटीन के कुप्रभाव को दूर करने के लिये स्ट्रीकनीन (कुचला सत्व) मिलाया गया है जो दस्तों के कारण उत्पन्न थकान को भी दूर करता है। रक्तातिसार में खटिक के साथ दिया जा सकता है।

(७) गिरपार प्रत्येक एम्पुल में—गिरिबूटी ३·६८ मिग्रा., पारसीक यवानी २·८१ मिग्रा. एट्रोपिन सल्फेट ·०८ मिग्रा.।

प्रयोग विधि—१ मिलि. त्वचान्तर्गत दें। ५ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को न दें। इन्जेक्शन के बाद मुख सूखने लगता व प्यास लगती है अतः पानी पीने के बाद देना चाहिए।

उपयोग—पीठवाली शूल, उदर शूल, वृक्कशूल, आंत्रपुच्छशूल, दन्तशूल, वृश्चिक दंश शूल, हृदयशूल तथा सब प्रकार की वातिक वेदनाजन्य शूल में यह तत्काल फलप्रद रामबाण इन्जेक्शन है। हमने हृदयशूल से छटपटाते हुए रोगी पर भी इसका प्रयोग किया है तत्काल वेदना का शमन होता है। हृदयशूल के रोगी को इन्जेक्शन लगाकर बोबी पिष्टि २ रत्ती खमीरा गाजवान अम्बरी जवाहर वाला खास ३ ग्राम के साथ दूध से दे देने पर तत्काल लाभ होता है तथा कोई उपद्रव नहीं होता। वैसे किसी भी दर्द से रोता हुआ आने वाला आपका रोगी इस इन्जेक्शन को ले लेने पर हंसता हुआ ही जायेगा पर यह केवल तात्कालीन लाभ के लिये ही है। अतः दर्द से छटपटाते हुए रोगी पर इसका प्रयोग कर रोगानुसार अन्य उपयुक्त औषधि व्यवस्था भी तत्काल कर देनी चाहिए। वमन, हैजा, राजयक्ष्मा का रात्रिस्वेद, शैय्यामूत्र त्याग, बलगमी खांसी में भी लाभदायक है। प्रतिनिधि—शूलान्तक इन्जेक्शन का प्रभाव भी गिरपार तुल्य ही है पर उदरशूल, वृक्कशूल, मांसपेशी शूल में तथा दन्त शूल में विशेष प्रभावशाली है।

(८) रसोन—प्रति २ मिलि. एम्पुल में—लसुनक्षार ८ मिग्रा., रास्नाक्षार १ मिग्रा. कुचलाक्षार ३ मिग्रा. सोडियम सेलीसिलेट १२० मिग्रा.।

प्रयोग विधि २ मिलि. मांसपेश्यान्तर्गत प्रति दिन व सप्ताह में ३ बार ८ से १२ का कोर्स दें।

उपयोग—आमवात और वात रोगों में तुरन्त फलप्रद तथा स्थायी लाभदायक है। नाड़ीशूल, सन्धिशोथ गृध्रसी आमवातज वेदना एवं आमवातज ज्वर में लाभदायक है। कुचला और लहसुन जैसी वेदनानाशक औषधियों के साथ सोडियम सेलीसिलेट का मिश्रण अपनी मूत्रल क्रिया द्वारा आमवात-शोथयुक्त सन्धियों के अन्दर का मवाद बाहर निकालता है जिससे सूजन एवं दर्द का तत्काल शमन होता है। सभी प्रकार के वातरोगियों पर आप इसका धड़ल्ले से प्रयोग कर सकते हैं। इससे वेदना की शांति तुरन्त होती है।

(९) हृदयामृत प्रत्येक १ मिलि. के एम्पुल में—अर्जुनक्षार १ मिग्रा. स्ट्रिकनीन हाईड्रोक्लोराइड १ मिग्रा. निकेथिमाइड २५० मिग्रा.।

प्रयोग विधि—मांसपेश्यान्तर्गत आवश्यकतानुसार।

उपयोग—हृदय, फुफ्फुस नाड़ी संस्थान सभी को शक्ति देकर भयंकर रोगों में हृदय को अमृतवत सहारा देकर रोगी की प्राणरक्षा में यह यथा नाम तथा गुण है। हृदय और नाड़ी की गति मन्द चलना, दिल घबराना, दिल बैठना सभी अवस्था में यह शीघ्र प्रभावशाली है। आधुनिक 'कोरामिन' का प्रतिनिधि है। जब हृदय और *नाड़ी की गति मन्द पड़ गयी हो श्वास भी मन्दगति से* आता हो तो इसके प्रयोग से तुरन्त आशातीत लाभ होता है। सन्निपात ज्वर, निमोनिया की सङ्कटकालीन अवस्थाओं में यह शीघ्र फलप्रद है। अफीम व नींद व बेहोशी लाने वाली औषधियों के उपद्रव-सर्वाङ्ग शैत्य (Collaps) तथा श्वास की गति मन्द पड़ जाना, रक्तक्षता (सदमा Shock दिल घबड़ाना) में शरीर में उष्णता उत्पन्न करके हृदय को शक्ति देता है। आकस्मिक आघात; दुर्घटना जीवन रक्षा के लिये यह चमत्कार का नमस्कार है। मूर्च्छावस्था में होश लाने के लिए भी यह अत्युत्तम है।

(१०) हिस्टामैक्स प्रति १ मिलि. में—रसौतक्षार सत्यानासी क्षार, चिरायताक्षार १-१ मिग्रा., क्लोरफिनिरामीन मेलियेट १० मिग्रा.।

प्रयोग—१ मिलि. आवश्यकतानुसार मांसपेश्यान्तर्गत देना चाहिए।

उपयोग—एन्टी बायोटिक्स तथा सल्फा दवाओं के अत्यधिक प्रयोग से आजकल एलर्जी जन्य उपद्रवों से आक्रान्त रोगी भी काफी आने लगे हैं। आयुर्वेद जहां "विकार नामोकुशलोन जिह्लीयात कदाचन" कहकर रोग के नामकरण की अपेक्षा दोषानुसार चिकित्सक का निर्देश देता है वहां आधुनिक चिकित्सक जब किसी रोग का नामकरण नहीं कर पाते तो एलर्जी नाम निश्चित है। किसी भी औषधि की किसी को भी एलर्जी हो सकती है। हमारे पास आधुनिक चिकित्सालयों से एक औषधि पर दूसरी औषधि की और दूसरी औषधि पर तीसरी औषधि की प्रतिक्रिया से ग्रस्त रोगी 'आयुर्वेद की' शरण में आते हैं और लाभान्वित होते हैं। एलर्जी पर अनुभूत पंचक (१) रस माणिक्य कैपसूल १-१ सुबह शाम, (२) गुडूच्यादि लोह २-२ गोली १०-२ बजे (३) आरोग्यवर्धिनी वटी २-२ गोली भोजन के बाद (४) महामंजिष्ठादि ४-४ चम्मच+बराबर पानी से और (५) हिस्टामैक्स १ मिलि. इन्जेक्शन मांसपेशी में—तीव्र पित्ती निकलना, त्वचा प्रदाह खुजली; गुदा और योनि में खारिश में तत्काल लाभप्रद है। किसी प्रकार की भयंकर एलर्जी में इस इन्जेक्शन का आप भरोसे के साथ प्रयोग कर सकते हैं।

(११) शांता—प्रति १ मिलि. में सर्पगन्धाक्षार १२ मिग्रा., अर्जुनक्षार ६ मिग्रा.।

उपयोग—उच्च रक्तचाप में-रक्तचाप को नियन्त्रित करने के लिए यह अत्यन्त लाभदायक है तथा सायंकाल इस इन्जेक्शन का प्रयोग करने से रोगी आराम से गहरी नींद सोता है। उन्माद में भी यह अत्यन्त लाभदायक है। जब रोगी बकवास करता हो, कपड़े फाड़ता हो, चीखता चिल्लाता हो और नींद न आती हो तो इसका प्रयोग अवश्य कराना चाहिए। उच्च रक्तचाप में २ मिलि. इन्जेक्शन देकर १ माशा श्वेतपर्पटी रोगीको पानी से खिला दें तुरन्त रक्तचाप का नियन्त्रण होकर सामान्य अवस्था में आ जायेगा। कई रोगी चिन्तातुर रहते हैं तथा थोड़ा-थोड़ा रक्तचाप भी उच्च रहता है सिर चकराता रहता तथा गर्दन में दरद व खिंचाव की शिकायत करते हैं। उन्हें शान्ता १ मिलि.+विटासिल के साथ दें। तत्काल लाभ होगा। ५ इन्जेक्शन का कोर्स पर्याप्त है।

१२. सोमा—प्रति मिलि. में भारङ्गी क्षार १ मि. ग्रा. वसाका क्षार १ मिग्राम, कण्टकारी क्षार १ मिग्रा., एड्रेनलिन हाइड्रोक्लोराइड ०.५ मिलि.।

प्रयोग—त्वचान्तर्गत आवश्यकतानुसार दमे के रोगियों में ८०% १ ही इंजेक्शन से दौरा शान्त हो जाता है। अत्यन्त व पुराने रोगियों को ३० मिनट बाद दूसरी बार भी दे सकते हैं।

उपयोग—श्वासरोग का दौरा बड़ा कष्टदायक होता है। शरीर में दम रहता नहीं और दम निकलता भी नहीं ऐसी दमकशी में कष्ट से मुंह फाड़-फाड़कर दम लेने की कोशिश करने वाले दमा के रोगी के लिए सोमा

का सहारा जीवन रक्षक एवं कष्ट संहारक है। पहला ही इन्जेक्शन १५ मिनट में ही श्वास कष्ट को दूर करता है। श्वास नलिकाओं की ऐंठन (Spasm) को दूर कर वायु कोषों के उद्वेष्टन का शमन करता है जिससे श्वास प्रश्वास की कठिनाई तुरन्त दूर हो जाती है, श्वास सरलता से आने लगता है तथा पर्याप्त प्राणवायु मिलने लगती है जिससे श्वास प्राकृतिक दशा में आने लगता है। श्वास रोगियों के लिए तत्काल फलप्रद वरदान तुल्य है। सर्वांग शैत्य (Collapse) में चाहे रोग से हो या शस्त्रकर्मजन्य हो तथा जल में डूबने के श्वासावरोध में सोमा का एक ही इन्जेक्शन रोगी के प्राणों को खतरे से बाहर निकाल देता है। इसके प्रयोग से शरीर की सब ग्रन्थियों में उत्तेजना उत्पन्न होती है जिससे वे अपना उद्रेचक रस तेजी से बनाने लगती हैं। फलस्वरूप हृदय को शक्ति मिलती है तथा श्वास-प्रश्वास नियमित हो जाता है। अतः जब किसी कारण से हृदय बलहीन होने लगे या हृदय की गति सहसा रुकने लगे तब इसका त्वचान्तर्गत इन्जेक्शन आश्चर्यजनक आशातीत लाभप्रद है।

१३. पुनर्नवा—प्रति २ मिलि. में पुनर्नवा क्षार २ मिग्राम, कालमेघ क्षार २ मिग्राम, मरसेलिल ५० मि. ग्राम, थियोफाइलिन २५ मिग्रा.।

प्रयोग—नितम्ब प्रदेश की मांसपेशी में लगाना चाहिए, रुका हुआ पेशाब यदि १ घण्टे में न हो तो दूसरा इंजेक्शन तुरन्त देना चाहिए।

उपयोग—पुनर्नवा मूत्रल इन्जेक्शन है जिसके प्रयोग से १५ से ३० मिनट के अन्दर मूत्र हो जाता है। फलतः मूत्र रोगों में तथा वृक्क रोगों में अत्यन्त सफल मूत्रल इन्जेक्शन है। यह वृक्कों तथा मूत्राशय में आयी सूजन को मूत्रल क्रिया द्वारा समाप्त करता है तथा रक्त में मिले हुए दूषित पदार्थ व यूरीमिया में दूषित पदार्थ को शरीर से बाहर निकालता है। विशेषतः हृदयविकारजन्य शोथ, हृदयविकारजन्य श्वास एवं वृक्कविकारजन्य जलोदर (Renal dropsy) में यह अपनी मूत्रल क्रिया द्वारा सूजन को कम करके रोगी को तत्काल आराम पहुँचाता है।

१४. मृगनाभि—प्रति १ मिलि. में मृगनाभि (कस्तूरी) ३ मिग्राम।

प्रयोग—सन्निपात ज्वर की संकटकालीन अवस्था में यह प्राण रक्षक है। हृदयदौर्बल्य, दिल का बैठ जाना, नाड़ी की गति मन्द पड़ जाना, ठण्डा पसीना आना, सर्वांग शैत्य तथा न्यूमोनिया के उपद्रवों में इसे पूरे भरोसे के साथ प्रयोग किया जा सकता है तथा तत्काल फलप्रद हैं। मृगनाभि १ मिलि., स्वर्ण मूंगा २ मिलि. का मिश्रित इन्जेक्शन मरणासन्न व्यक्ति को जीवन देने वाला चमत्कारिक योग है।

द्रष्टव्य—आजकल प्रायः सभी रस वनौषधियों के इन्जेक्शन आने लगे हैं किन्तु हमने लेख के शीर्षक के अनुसार "चतुर्दश आयुर्वेदीय इन्जेक्शन योगरत्न" प्रमुख योगों का ही जोकि हमारे द्वारा सहस्रानुभूत हैं तथा हमारे हास्पीटल में अंतरंग विभाग में रात-दिन प्रयोग होते हैं दिया है। चिकित्सक बन्धुओं को लाभ उठाना चाहिये। इन्जेक्शन लगाना सलाइन चढ़ाना तथा आक्सीजन देना थोड़ी सी लगन से अभ्यास करके सीखा जा सकता है। हमारे हास्पीटल में २ आक्सीजन गैस के सिलेण्डर भी हैं जो सङ्कटकाल में रोगी को जीवन दान देने का कार्य करते हैं। आधुनिक उपादेय उपलब्धियों को आयुर्वेद में आत्मसात कर लेना चाहिए।

चतुर्दश यूनानी योग रत्न

यूनानी चिकित्सा पद्धति—आठवीं शताब्दी में बगदाद के खलीफा हरुन-अल-रसीद ने अपनी चिकित्सा के लिए (ई० सन् ७८६ से ८०९ तक) भारतीय आयुर्वेदज्ञ माणिक्य (मनकान्ह-अल-हिन्द) को बगदाद बुलाया और स्वस्थ होने पर उन्हें पुरस्कृत किया और शाही सम्मान के साथ बगदाद के अस्पतालों एवं महाविद्यालयों का संचालक नियुक्त किया। इस समय आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थों का अरबी भाषा में सरक (चरक), सुसरद (सुश्रुत) बदान (माधव निदान) तथा शंकुर (अष्टांग संग्रह) आदि अनुवाद हुआ और यूनानी चिकित्सा पद्धति की नींव पड़ी जिसे अकबर ने राज्यमान्यता प्रदान कर उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचाया। हकीम बुकरात ने इस

चिकित्सा विज्ञान को अनुसन्धान की दिशा दी तो हकीम जालीनूस ने अनेक प्रयोगों से इसके योग भण्डार को समृद्ध किया। हकीम बूअली जकरिया राजी ने विकीर्ण साहित्य का संकलन किया एवं हकीम शेखुर्रईस बुअली सीना ने सर्वाङ्गपूर्ण किया और मसीहुलमुल्क हकीम अजमल खां साहब तो यूनानी वैद्यक के मसीहा माने जाते हैं जिनका कीर्ति स्तम्भ तिब्बिया कालेज, करौलबाग दिल्ली आज भी शिक्षा एवं चिकित्सा का केन्द्र है। मध्यकाल में भारतीय वैद्यों ने यूनानी हकीमों के सम्पर्क से यूनानी चिकित्सा विज्ञान की बहुत सारी उपादेय सामग्री को आयुर्वेद में आत्मसात् कर लिया और अहिफेन, अमलतास, अकरकरा, अजवायन, हींग, कपूर, रेवन्दचीनी, खूनखराबा, मस्तगी, अकीक, संगेयसब, हजरुल यहूद आदि तथा जवाहरमोहरा, खमीरा, माजून, अर्क, शर्बत के सैकड़ों प्रयोग यूनानी की ही देन हैं। लेख विस्तार भय से अब हम यूनानी चिकित्सा सागर के १४ योगरत्न प्रस्तुत कर रहे हैं।

१. जवाहर मोहरा—चिकित्सा विज्ञान का उत्कृष्ट मणि योग जो आसन्नमृत रोगी में भी आयु शेष हो तो चमत्कार को नमस्कार है। जनाब मसीहुलमुल्क हकीम अजमल खां की खानदान की थाती व प्रधानतम दिव्य महौषधि है।

घटक—माणिक्य, मुक्ता, पन्ना, कहरवा (तृणकान्त मणि) की पिष्टियां २-२ तोले, प्रवाल पिष्टी, शृङ्गभस्म, संगेयसब पिष्टी ४-४ तोला, दरियाई नारियल का चूर्ण ४ तोला, आबरेशम कतरा हुआ २ तोला, जदवार का चूर्ण २ तोला, सोने का वर्क, चांदी का वर्क, कस्तूरी, अम्बर १-१ तो.। ये चौदह रत्न इस योग के उपादान हैं।

निर्माण विधि—न घिसने वाली खरल में पहले पिष्टियों और भस्मों को मिला लें फिर एक-एक वर्क, तत्पश्चात् दरियाई नारियल, आबरेशम, जदवार का कपड़छन चूर्ण मिलाकर १४ दिन तक गुलाबजल में 'मर्दनं गुण वर्धनं' के अनुसार खूब घुटाई करें। पन्द्रहवें दिन कस्तूरी, अम्बर मिलाकर गुलाबजल में मर्दन कर एक-एक रत्ती की गोलियां बनालें या छाया में सुखाकर चूर्ण ही शीशी में भर लें।

मात्रा—१-२ गोली या १-२ रत्ती दिन में २-३ बार शहद या अर्क बेदमुश्क व खमीरा गावजवां से दें।

उपयोग—बहुमूल्य एवं उत्कृष्ट गुणकारी उपादानों से निर्मित यह महौषधि हृदय और मस्तिष्क को बल देने में अपूर्व गुणकारी है। हृदय की दुर्बलता के कारण थोड़ा सा भी चलने पर श्वास भर जाना और मस्तिष्क की कमजोरी से होने वाले भ्रम, विस्मृति, थोड़ा सा टेंशन होने पर मस्तिष्क का थक जाना, थोड़ा सा विरोध होने पर मस्तिष्क का उत्तेजित या गर्म हो जाना, दिल की धड़कन बढ़ जाना एवं निस्तेजता में अतीव लाभप्रद है।

आगन्तुक आघात, मानसिक आघात, सन्निपात, अति रजःस्राव, तीव्र वमन, विरेचन, नाड़ी क्षीणता, जीर्ण ज्वर, आन्त्रिक ज्वर की गम्भीर अवस्थाओं में एवं इन रोगों से हुई शक्तिह्रास में जवाहरमोहरा तत्काल जीवन शक्ति की रक्षा करने में अद्भुत लाभप्रद है। महाधमनी या हार्दिक धमनी की रक्ताभिसरण क्रिया में प्रतिबन्ध होने पर हृदयशूल होता है जिसमें रोगी अति व्याकुल हो जाता है। अतः प्रथम शूल को तुरन्त शमन करके (गिरधारि-मार्तण्ड-इंजेक्शन प्रयोग हृदयशूल को तत्काल शमन करता है) फिर हृदय को बल देने एवं भावी हृदयावरोध (Heart failure) को रोकने के लिए इसका प्रयोग अमृत तुल्य गुणकारी है। इसके प्रयोग से हृदय बलवान होकर भावी आक्रमण की सम्भावना नष्ट हो जाती है। हृदय रोग में जब तक रोगी का हृदय सबल न हो तब तक पूर्ण विश्वास एवं विश्राम के साथ इसका प्रयोग परमावश्यक है।

२. दवाउल मुश्क जवाहर वाला—मरवारीद, दरूनज अकरबी, मोती पिष्टी, कहरवा पिष्टी, प्रवाल पिष्टी प्रत्येक ५०-५० ग्राम, आबरेशम, बहमन सफेद, बहमन लाल, जटामांसी, इलायची २५-२५ ग्राम, छड़ीला, पीपल, सोंठ, २०-२० ग्राम, कस्तूरी, अम्बर, चांदी वर्क स्वर्ण वर्क १०-१० ग्राम। सर्व प्रथम पिष्टियों को मिला कर उसमें चांदी-स्वर्ण के एक एक वर्क घोटकर काष्ठो-

षधियों के कपड़छन चूर्ण को तथा शेष सब औषधियों को घोटकर चाटने योग्य हो सके उतना शहद मिलाकर माजून बनाकर चीनी मिट्टी के इमरतबान या कांच के पात्र में रखें।

मात्रा—१ से ३ ग्राम दिन में २-३ बार चाटकर ऊपर से दूध पीना चाहिये।

उपयोग—तिब्ब यूनानी की अति प्रसिद्ध तथा बेजोड़ औषधियों में खास यह दवाउल मुश्क हृदय, मस्तिष्क एवं यकृत् को शक्ति प्रदान करने वाला उत्तम योग है। शारीरिक क्षीणता व आगन्तुक आघात तथा मानसिक आघात से मूर्च्छित रोगी के हृदय एवं नाड़ी संस्थान को उत्तेजित कर शीघ्र मूर्च्छा दूर करता है। यह हृदय के कार्यक्रम और उसकी गति को नियमबद्ध करके स्पंदनाधिक्य को लाभ पहुंचाता है। हृदय कपाट के विकारों को दूरकर रक्तपरिभ्रमण को ठीक कर हृदय को तुरन्त शक्ति देता है। जब किसी रोगी के हाथ-पांव ठण्डे हो जांय, सांस उखड़ने लगे और बोलने की शक्ति क्षीण होने लगे तो इसका प्रयोग जवाहरमोहरा २ रत्ती के साथ आश्चर्यजनक लाभ पहुंचाता है। मूर्च्छा के दौरे और हृदय बैठने की व्याधि को दूर करने में यह चमत्कारिक योग है। किसी भी रोग के बाद की व प्रसव के बाद की कमजोरी इससे शीघ्र दूर होती है। यह पाचक तत्व को बढ़ाकर आमाशय और यकृत को शक्ति देकर उनके कार्यक्रम को सुधारता है तथा वात प्रकोपज शूल, हृदय शूल, उदरशूल, हिस्टीरिया या अपचनजन्य हृदयशूल एवं फुफ्फुसावरण शूल, स्वरयन्त्रप्रदाह, वातविकार, तीव्र अतिसार, राजयक्ष्मा एवं रोग की घातक अवस्थाओं में यह जीवनदाता अमृततुल्य रसायन है।

३. खमीरा गावजवां अम्बरी जवाहर वाला—गावजवां ३ तोला, गावजवां पुष्प, धनियां मग्ज, अपक्व आबरेशम कैंची से कतरा हुआ, चन्दन सुफेद, बादरञ्ज बोया उस्तेखद्दूस, बालंगा बीज, तुख्म फरंजेमुश्क, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, तोदरी सुर्ख, तोदरी सुफेद ये १२ औषधियां एक-एक तोला सबको अर्क गुलाब २ सेर में रात को भिगो दें, प्रातः क्वाथ करें, तीसरा भाग जल शेष रख शीतल होने पर हाथ से मसल कपड़े से छान उसमें चीनी व मिश्री २ सेर मिला शर्बत से कुछ गाढ़ी चासनी बना शु. मधु मिलाने के बाद चाशनी के २-३ उफान आ जाने पर नीचे उतार लेवें तथा कढ़ाई लकड़ी के सोटे (डण्डे) से हिन्दी अक्षर ४ व अंग्रेजी के अंक 8 के सदृश आकृति बनाते हुए तब तक बहुत घुटाई करें कि गाजवान का रङ्ग बिल्कुल सफेद हो जाये। अब इसमें अम्बर ३ माशा चांदी वर्क स्वर्ण वर्क ६-६ माशा मुक्ता याकूत (माणिक्य) पन्ना तथा जहर मोहरा इनकी पिष्टियां ४॥-४॥ माशे खरलकर मिश्रित करलें। बस दवा तैयार है।

मात्रा—२-३ माशे दिन में २-३ बार दूध से सेवन करना चाहियें।

उपयोग—हृदय मस्तिष्क तथा पाचन संस्थान को शीघ्र बल देने वाली सुस्वादु श्रेष्ठ महौषधि है। दिमाग को ताकत पहुंचाकर चेतना को रोशन करता है। थका हुआ दिमाग इसकी एक ही मात्रा से नव प्रफुल्लित हो जाता है। मस्तिष्क एवं शारीरिक शक्तियां दुर्बल होने लगे नेत्र की दृष्टि शक्ति एवं घ्राण तथा श्रवण शक्ति में रुकावट पड़ जाय तो यह सम्पूर्ण अङ्गों को शक्ति प्रदान करता है।

४. खमीरा मरवारीद (स्वर्णमुक्तायुक्त)—गावजवां पत्ती तथा गुले गाऊजुवान ५-५ तो., कुलफा बीज १० तो., बादरंजबोया एवं सफेद चन्दन २-२ तोले को जौकुट कर रात्रि को कलईदार बर्तन में अर्क बेदमुश्क तथा गुलाब जल एक एक सेर में मिलाकर भिगो देवें। सुबह क्वाथ बना अर्द्धावशेष रहने पर, शीतल होने पर हाथ से मसल छानकर २ सेर मिश्री की चाशनी कर पाक होने पर केशर ६ माशे को अर्क केवड़े में खरल कर मिलावें फिर बहमन सफेद, बहमन लाल, तोदरी लाल, तोदरी पीली एक एक तोला, प्रवाल पिष्टी, अम्बर ६-६ माशे, मोती पिष्टी, सुवर्ण के वर्क तथा कस्तूरी ३-३ माशे मिलावे। कांच के भांड में सुरक्षित रखे।

मात्रा—३-४ माशा तक दिन में २ बार सुबह शाम

अर्क गाजवान व दूध से देवे।

उपयोग—यह हृदय पौष्टिक है, हृदय के स्पन्दनों की अनियमितता, हृदय शोथ, हृदय वृद्धि आदि रोगों मे हृदयशक्ति संरक्षणार्थ इसका प्रयोग अत्यन्त फलप्रद है। मानसिक अशान्ति, व्याकुलता को दूर कर मन को प्रसन्न करता है।

मोतीझला, शीतला, खसरा आदि में इसका प्रयोग करने से हृदय की शक्ति बनी रहती है एवं इन रोगों को दूर करने मे भी सहायता मिलती है। हृदय की बढ़ी हुई धड़कन को नियमित कर हृदय को शक्ति प्रदान करता है।

५. खमीरा आबरेशम (स्वर्ण मुक्तायुक्त)—आबरेशम कतरा हुवा, गुले गाउजबान ६-६ तोले, गाउजबान पत्ते तथा नया सूखा धनियां १।।-१।। तोले का जौकुट चूर्ण चीनीमिट्टी व कलईदार बर्तन मे अर्क केवड़ा, अर्क बेदमुश्क तथा अर्क गाउजुबान २०-२० तोले में भिगो दे। प्रात क्वाथ बंढ़ा आधा शेष रख उसमें तुरञ्जबीन १० तोलें शीरखिस्त ७ तोले, गुलाबजल ३० तोले मिला १ उबाल लेकर छान लेवें। फिर इस जल को निथार कर छानकर चाशनी बना उसमें मुरब्बे की हरड़ धोयी हुई १० तोले मिलाकर १-२ उफान देकर नीचे उतार लें। फिर उसमें सफेद चन्दन १ तोला फिरंज मुश्क काली अगर तथा सफेद बहमन ६-६ माशे, बहमन लाल एवं वंशलोचन ३-३ माशे, कपूर १।। माशे मिलावे एवं मोती पिष्टी, सोने के वर्क १।।-१।। माशे, कहरवा पिष्टी तथा जहरमोहरा पिष्टी २-३ माशे, प्रवाल पिष्टी एवं चांदी के वर्क ६-६ माशे पृथक घोट कर एकजीव कर खमीरा मे अच्छी तरह मिला लें।

मात्रा—२ से ५ माशा तक दिन में २ वार सुबह तथा रात में दूध या जल से दें।

उपयोग—पाचन संस्थान के लिये इसका प्रयोग हितकर है। यह अम्लपित्त के दाह को तत्काल शमन करता है। तृषा वृद्धि, वमन, विदग्धाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण, आमाशय क्षत, अन्नप्रणाली दाह, उदरकृमि, अपचन में चमत्कारिक लाभप्रद है। हृदय मस्तिष्क को शक्ति प्रदान कर मन को खुश रखता है तथा शुद्ध खून का निर्माण कर देह को सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाता है।

६. माजून कुचला—शुद्ध कुचला २० तोले, कालीमिर्च, श्वेतमिर्च, रूमी मस्तङ्गी, केशर, लौंग, दालचीनी, सफेद-लाल तोदरी, चोपचीनी, शीतल मिर्च, आंवला, छोटी इलायची बीज, अजवायन, सफेद चन्दन, पीपल, वंशलोचन, सफेद मूसली, गाजवान, जायफल अगर शुद्ध वच्छनाग, उद्‌बिलासा तेजपात जटामांसी सोंफ सालममिश्री कबाबा (तुम्बरु) ये २७ औषधियां १-१ तोला सोना का वर्क चांदी का वर्क, २-२ माशे शहद ६ गुना मिलाकर माजून बनालें।

मात्रा—१-२ माशे दिन में २-३ वार दूध व निवाये जल से लेना चाहिये।

उपयोग—यह माजून सब प्रकार की वात प्रकोपज वेदना को नष्ट करता है। गृध्रसी सर्वाङ्गवात पार्श्व वेदना तथा कलायखज में अत्यन्त लाभप्रद है। लूले लंगड़े तथा पंगु तक भी कभी इससे ठीक होते देखे गये हैं। यह उत्तम वातवेदनाहर हृदय तथा पाचनशक्ति वर्धक उदरवात निवारक है।

७. जवारिश जालीनूस—हकीम जालीनूस द्वारा निर्मित यूनानी का उदररोगनाशक सुप्रसिद्ध योग है—बालछड़ छोटी इलायची बलमी तज दालचीनी कुलंजन लौंग नागरमोथा सोठ कालीमिर्च पीपल कुठमीठा चिरायता मीठा, केशर प्रत्येक ७-७ माशा रूमीमस्तंगी २ तोला ५।। माशे चीनी सब द्रव्यों के बराबर एव शहद सब-द्रव्यों से द्विगुण। चीनी एवं शहद की चाशनी करके शेष द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण करके मिलाले। इमर्तबान मे रखें।

मात्रा—७ माशे जवारिस शर्बत सोफ व पानी से भोजनोत्तर सेवन करें।

उपयोग—आमाशय यकृत आंत्र एवं मूत्राशय को शक्ति देती है। आमाशयिक ग्रन्थियों की अकर्मण्यता दूर करके भोजन में पाचक तरल की बढ़ोत्तरी कर भोजन को पचाती है एवं भूख को बढ़ाती है। उदरवात का शमन करती है वातार्श के लिए गुणकारी है। जिन लोगों को गुर्दे व मूत्राशय में जल्दी जल्दी पथरी पैदा होती हो, आपरेशन से पथरी निकाल देने पर भी पुनः

बनने लगे, तो इसका निर्दिष्ट प्रयोग पथरी बनने की क्रिया को बन्द करता है। अत्यार्तव में सफेद हुये बालों को काला करने में सहायक है।

८. माजून हजरुल यहूद—हजरुल यहूद भस्म ५० ग्राम कद्दू ककड़ी खीरा खरबूजा के बीजों का मगज एवं कालनुजा ५-५ ग्राम। सबको कपड़छन चूर्ण करके चाटने लायक शहद मिला माजून बनालें। प्रसङ्गवश हजरुल यहूद भस्म विधि—१-२। इसकी लम्बी बेर की आकृति के समान होता है। इसे आग में तपा तपाकर ७ बार कुलथी के क्वाथ में बुझा ठण्डा करलें। फिर मूली स्वरस में मर्दन कर लघुपुट में पुट देकर भस्म बनालें। बिना ऑपरेशन के पथरी निकालने में यह अद्भुत लाभदायक है। बाजार में बिकने वाले पेटेन्ट योग सिस्टोन (हिमालय) कलकपुरी (तुरक) में यह भस्म मुख्यरूप से है। यवक्षार के साथ गोक्षुरादि गुग्गुल के साथ इसका प्रयोग निश्चित रूप से लाभदायक है। माजून का प्रयोग भी १-२ ग्राम की मात्रा में गोक्षुर क्वाथ से अत्युत्तम है।

९. लऊक सपिस्ताँ—लिसोढा ५० नग, उन्नाव २० नग पोस्त की डोंडी २ तोले। इनको २ सेर पानी में क्वाथ कर शीतल होने पर हाथ से मसल छानकर १/२ सेर चीनी से चासनी बनाकर उसमें छिलके रहित जौ शिरा बादाम की गिरी का शिरा पोस्त दाने का शिरा प्रत्येक १-१ तोले गोंद कतीरा, मुलेठी ६-६ माशे का बारीक चूर्ण मिला कर चाटने योग्य बनाले। मात्रा—४-६ माशे।

उपयोग—श्वास नलिका में चिपका हुआ कफ बाहर निकल कर प्रतिश्याय श्वास कास को शीघ्र नष्ट करता है। श्वास का दौरा पड़ जाये और सूखी खांसी से रोगी का खांसते-खांसते दम फूल जाय तो इसको चाटने से कफ पिघल कर सरलता से निकल जाता है। यदि शर्बत जूफा के साथ किया जाय तो तत्काल लाभ होता है।

(१०) माजून चोपचीनी—चोपचीनी २० तोले असगन्धा १० तोले सोंठ सुरंजान ५ तोले का बारीक चूर्ण ४ सेर चीनी की अवलेह समान चासनी बना उसमें मिला कर माजून बनाले।

उपयोग—गठिया वात और समस्त अङ्गों के दर्द को ठीक करता है खासकर सुजाक व उपदंश के कारण होने वाले वातरोग शिरःशूल, नजला में उत्तम लाभदायक है। खून को शुद्ध कर फोड़े-फुन्सी ठीक होते हैं। विशेषतः उपदंश सुजाक से होने वाले रक्त विकार सन्धिवात और कुष्ठ आदि रोगों में इसका प्रयोग विशेष लाभप्रद है। कामशक्ति वर्धक वाजीकरण एवं पौष्टिक रसायन है।

११. माजून नुकरा—कस्तूरी, मोती पिष्टी, माणिक्य पिष्टी, पन्ना पिष्टी, स्वर्ण वर्क अम्बर ये ६ वस्तुयें ४॥-४॥ माशे, संगेयशव पिष्टी, कहरवा पिष्टी, प्रवाल पिष्टी और जहरमोहरा पिष्टी ६-६ माशे, वंशलोचन १ तोला, वा..ठङ ६ माशा, आबरेशम कतरा हुआ १ तोला लें। इन सबको अर्क केवड़ा, अर्कबेद मुश्क में घोटें। फिर सेब और अनार का अर्क १०-१० तोले, केवड़ा, गावजवां, बेदमुश्क का अर्क २०-२० तोले और मिश्री ४० तोले मिलाकर चासनी करें। चासनी में वर्क चांदी ४ तोला मिलाकर खूब घोटें फिर उपरोक्त द्रव्य मिला लें।

उपयोग—यह हृदय शक्तिवर्धक सौम्य योग है जो वात नाड़ियों के दौर्बल्य को दूर करता है। रक्तचापाधिक्यजन्य दुर्बलता एवं उपद्रवों को मिटाने केलिये मस्तिष्कगत कफ, आम, विष का शोधन करने के लिए सर्वोत्तम योग है। इसमें चांदी के वर्क मिले हुए होने के कारण पित्त को नहीं बढ़ने देता अतः ऊष्मा बढ़ने के भय से जहां दवाउलमुश्क नहीं दी जा सके वहां इसका प्रयोग उत्तम है। दिल की घबराहट दूर करके शान्ति व बल प्रदान करता है। १-२ माशा दूध से लेना चाहिए।

(१२) संगदाना मुर्ग माजून—पोस्त, संगदाना मुर्ग वंशलोचन ८-८ माशे, सूखा पोदीना पिस्ता के बाहर का छिलका बिजौरे नींबू का छिलका, पीली हरड़ का वक्कल ४॥-४॥ माशे, गुलाब पुष्प १०॥ माशे, श्वेत बहमन, रक्त बहमन, श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन, भुना हुआ सूखा धनियां सातर हब्बुल आस प्रत्येक ५-५ माशे लें। सबको कूट छान कर ३ गुना शहद में माजून बनायें। ७ माशा मात्रा में लें।

उपयोग—यह उत्तम आमपाचक एवं वायु अनुलोमक दीपन पाचन है। आंतों की कमजोरी से होने वाले दस्तों को रोकने के लिये यह अत्यन्त ही लाभदायक है। हम संग्रहणी के पुराने रोगियों को प्रातः खालीपेट हमदर्द कुर्स मालती बसन्त १ गोली ७ माशा माजून संगदानामुर्ग के साथ खाने को देते हैं ४० दिन में ठीक हो जाता है। दवा को खाली पेट खाना चाहिये तथा दवा खाकर १ घंटे तक कुछ नहीं खाना चाहिए। बल्कि १ घण्टे आराम कर फिर नाश्ता करना चाहिए। संग्रहणी में सफल योग है।

(१३) सफूफ बन्दीश खून—खूनखराबा, वंशलोचन, कहरवा शमई, गिल अरमनी, गुलनार फारसी, गेहूं का सत, गोंद बबूल, गोंद कतीरा जलाया हुवा सदिर शुष्क और शादनज मगसूल प्रत्येक २-२ तोला का कपड़छन चूर्ण कर रखें। ६ माशा चूर्ण सुबह शाम अर्क गाजवां व जल से दें।

उपयोग—रक्त प्रदर, रक्तष्ठीवन, रक्तार्श आंख, नाक, त्वचा कहीं से भी होते हुए रक्तस्राव को यह तुरन्त बन्द करता है। सफूफ चूर्ण को कहते हैं एवं कुर्स गोली को कहते हैं। इसकी कुर्स बन्दीश खून नाम से हमदर्द की गोलियां भी आती हैं। रक्तस्राव को तत्काल बन्द करने में इसका प्रयोग उत्तम है।

(१४) लबूब कबीर—मग्ज पिस्ता, मग्ज बादाम, हिब्बुल खिजरा मग्ज अखरोट, सकाकुल कुलिञ्जन, सकाकुल, बहमन सफेद, बहमन सुर्ख तोदरी सफेद तोदरी सुर्ख, तोदरी जर्द, हब्ब किल्किल काले तिल, दालचीनी ये प्रत्येक ३५-३५ माशा, जायफल १५ माशा, काली मिर्च, नागरमोथा, लौंग, कबाबचीनी तुख्म गाजर, तुख्म हलियुन तुख्म मूली, तुख्म शलगम, तुख्म प्याज, तुख्म शिब्बिस, इन्द्र जौ मीठे, दस नज अकरबी, कबूर ये २३-२३ माशे, सौंठ १५ माशे, जावित्री १४ माशे, पीपल १४ माशे, सालमिवनज्जा, खोपरा ताजा, श्वेत खशखश ६-६ तोले, सुरञ्जान शीरी ३० माशे, बालोदाना २८ माशे, पोदीना २८ माशे माया भुना अहरावी रुजाफरान गुग्गुल लकड़ी २८-२८ माशा, चांदी-सोना के वर्क, अम्बर, मुश्क ८-८ माशे शहद या मिश्री मिलाकर लबूब तैयार करें।

उपयोग—यूनानी में यह सर्वश्रेष्ठ, वीर्यप्रद, वाजीकरण, उत्तेजक स्तंभक, पौष्टिक औषधि है। इसके सेवन से शरीर सुडौल बनता है, मन उत्साहित रहता है।

५ प्रयोग पञ्चक-रसोईघर बनाम रसायनशाला

(१) नमक—आघातज वेदना—में नमक को गर्म कर कपड़े की पोटली बनाकर सेंक करने से तुरन्त वेदना का शमन होता है।

खांसी का दौरा रात को अचानक पड़ जाय और पास में कोई दवा न हो तो नमक की डली को चूसें। जैसे-जैसे मुंह में रस जायेगा दौरा मे आराम हो जायेगा। दन्त शूल में सरसों तेल में नमक का महीन चूर्ण खूब रगड़ कर पेस्ट जैसा बनाकर दांतों पर मंजन की तरह मलें फिर गर्म पानी से कल्ले करने से तुरन्त आराम हो जाता है। टांसिल, कर्णमूल ग्रन्थि शोथ, कण्ठ शोथ में दर्द हो खास कर सुबह उठते-२ गले में बड़ा दर्द हो तो नमक के गर्म पानी के गरारे करने से तत्काल उपद्रव शांत होते हैं।

सेलाइन का घरेलू नुस्खा—हैजा, अतिसार गर्भस्राव रक्तस्राव आदि रोगों की उग्र अवस्था में शरीर में जलाल्पता (Dehydration) हो जाता है जिसमें शिरा द्वारा (Normal Saline) लवण जल सोल्युशन को ड्रिप पद्धति से चढ़ाना पड़ता है जो अस्प. अलाभाव की स्थिति में निम्नोक्त जल की व्यवस्था करनी चाहिए—उबला हुवा ठण्डा पानी १ लिटर चीनी ३० माशे, नमक, सोडा मीठा ३-३ माशे, नींबू व सन्तरा रस ३ मिलि.। रोगी को ५-१० मिनिट से तब तक देते रहना चाहिए जब उसका मूत्र त्याग सामान्य न हो तथा प्यास की तृप्ति न हो गई हो। रोग के संक्रमण काल में इसका प्रयोग सुरक्षा के लिए उत्तम है।

(२) लाल मिर्च—कुत्ते के काटने पर यदि तत्काल ही क्षत में लाल मिर्च का चूर्ण दबाकर पट्टी बांध दी जाय तो स्वतः भर जाता है तथा श्वान विष का कोई प्रभाव नहीं होता। इसके लिए बीज निकाल कर घर में कूटी हुई मिर्च लेनी चाहिए। कई लोग मिर्च में कीड़े न पड़ने के लिये नमक मिलाकर रखते हैं यह काम में

नहीं लें। अर्कादिवटी—श्वान दंश के रोगी को १० दिन तक खाने के लिये भी देते हैं। धटक—आक की जड़ की छाल, धतूरे के पत्ते और मिश्री समभाग का महीन चूर्ण आक के पत्ते के स्वरस में घोटकर चणकमान (४-४ रत्ती) गोलियां बनालें। १ गोली प्रातः खाली पेट निगलवा दें तथा १ घण्टे तक कुछ भी खाने को नहीं दें अन्यथा वमन हो जायगी। यदि वटी बिना पानी के न निगली जाय तो १-२ घूंट पानी से निगल कर भुने हुये चने १०-२० माशे चबाकर खा लेवें। इससे पानी का शोषण होकर वमन का असर कम हो जायेगा।

(३) हल्दी—आघातज वेदना में हल्दी का चूर्ण ३-३ माशे सुबह-शाम गर्म दूध से पीना तुरन्त वेदना हर है। आघातज अङ्ग पर हल्दी—चूना को पानी में मिलाकर लेप करने से मोच, चोट का दर्द ठीक हो जाता है तथा सूजन आदि ठीक होकर शीघ्र ही उक्त अङ्ग ठीक हो जाता है।

घृत भृष्ट हरिद्रा—गो घृत में हरिद्रा चूर्ण को भून लें, श्वास रोगियों में इसका प्रयोग दौरे को तत्काल शांत करता है। इसीनोफीलिया में हमारे द्वारा बहुत परीक्षित है।

सुधाहरिद्रा—१किलो हल्दी + १ किलो चूना एक मिट्टी की हांडी में डाल २ किलो पानी डाल दें। पानी उबलने लगेगा ठण्डा होने पर कपड़मिट्टीकर रख दें। जल सूख जाने पर हल्दी को सुखा कर चूर्ण कर रखलें यही भयङ्कर अलर्जी में तत्काल फलप्रद बहुतशः परीक्षित है। उदरकृमि में नारियल गिरी के साथ, कामला में मट्ठे के साथ हल्दी का प्रयोग लाभदायक है।

(४) धनियां नमक मिर्च हल्दी धनियां अदरख की चटनी अत्यन्त ही स्वादिष्ट तथा रुचिकारक एवं क्षुधा वर्धक होती है। पित्तज विकारों में इसका प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है। धनियां हिम—१० माशे जौकुट धनियां को १ कप पानी में रात को भिगो दें प्रातः मसलकर छान कर मिश्री मिलाकर पीवें। शिरोभ्रम पित्तज शिरःशूल आधाशीशी का दर्द तथा मूत्रदाह एवं मुख पाक खाज-खुजली में तत्काल फलप्रद हैं। रक्तातिसार तथा रक्त-प्रदर, रक्तार्श में भी रक्त को बन्द करने लिये इसका प्रयोग लाभदायक है। गर्भवती की वमन में भी इसका प्रयोग उत्तम है।

(५) अद्रख—अद्रख की चाय—अदरख को चाय की तरह व चाय में ही अदरख को मिलाकर पीना शीत काल में कफज रोगों से बचे रहने का ब्रह्मास्त्र है। प्रसूताओं के लिये यह अमृत तुल्य गुणकारी है। इसका सौभाग्यशुंठी नाम सार्थक है। मक्कलशूल में भी इसे दूध के साथ देने से वेदना का शमन होता है। हृदय रोगियों के लिए दूध में अदरख उबाल कर पीना अत्यन्त लाभदायक है। कास-श्वास में—अद्रख + मधु बराबर मात्रा में मिलाकर रखे अनुपान रूप में या १-१ चम्मच इसका प्रयोग उत्तम है। हिचकी—इसके टुकड़े के चूसने मात्र से शमन होती है।

जलोदर रोग पर मेरे पांच सफल अनुभूत प्रयोग

(१) जलोदरारि रस १ वटी मधु से—अनुपान गोमूत्र आधी छटांक प्रातः।
(२) हृदयार्णव रस १ वटी + ताप्यादि लौह १ वटी—मधु से दोपहर में।
(३) नारायण चूर्ण ३ माशे—पुनर्नवादि क्वाथ से सायं काल।
(४) वृहत लोकनाथ रस १ रत्ती + मुक्ता पंचामृत रस १ रत्ती मधु से रात्रि में।
(५) अभयारिष्ट १॥ तोले + पुनर्नवाम्बु १॥ तोले भोजन के बाद २ मात्रा दिन और रात्रि में।

डा० भागचन्द जैन आयु० वृह०, जनता आयुर्वेद औषधालय, परकोटा वार्ड, सागर (म प्र.)

तत्काल फलप्रद प्रयोग

वैद्य अम्बालाल जोशी आयु० केशरी, मकराना मोहल्ला, जोधपुर।

(१) दारुण सिरःशूल में—अर्क (आकण) की लाल पत्ती (कच्ची पत्ती) तोड़कर लाकर गुड़ में गोली बना कर उग्रशूल होने पर निगल जावे। आधा शूल होने पर (आधा गोली) प्रातः सूर्योदय के पूर्व इसे निगल लेवे। सिरशूल, अर्धावभेदक एक ही दिन में मिट जावेगा।

(२) श्वास शामक योग—आनन्द भैरव रस २ गोली दौरे के समय अहिफेन के जल में निगल लेवे। करीब आध घण्टे में श्वास का वेग कम पड़ जावेगा। अहिफेन जल अहिफेन १ रत्ती के करीब लेकर (या रोगी की सहनशक्ति के अनुसार) पानी में भिगो दे। पूरा घुल जाने पर वस्त्र से छानकर प्रयोग में लेवे।

(३) वृक्कशूल में—मुसब्दर का चूर्ण बनाकर ०० के कैपसूल (जिलेटिन वाले) में भरकर गर्म पानी में निगलवा दे। १ घण्टे में वृक्कशूल कम हो जावेगा।

(४) दन्तशूल—शरपुंखा की जड़ लाकर उसे पानी में उबाले। अष्टमांश पानी शेष रहने पर उसे छानकर मुंह में रखे। ५ मिनट रखकर थूक दें। इस प्रकार ३-४ वार करे। दन्त पीड़ा समाप्त हो जावेगी। रेक्टीफाइड स्प्रिट में घोल तैयार कर इसका फूहा (रुई का) लगाया जा सकता है। इसके इंजेक्शन तैयार किये जा सकते हैं।

(५) छूमन्तर—चूना नौसादर तथा लहसुन का रस। तीनों का मिश्रण कर एयर टायट शीशी में रख लो। जुकाम सिर पीड़ा आदि में सुंघाते ही तत्काल लाभ होता है। यह जादू की तरह काम करता है। परन्तु कमजोर प्रकृति वालों को कभी न सुंघावे। हृदय रोग वालों को भी इससे दूर रखे।

हिंगु कर्पूर कस्तूर्यादि वटी—कच्ची हींग देशी कपूर १-१ तोला कस्तूरी १ माशे मिलाकर गोली बना लो। इसके खरल में मर्दन करने से गोली बन जाती हैं परन्तु कदाचित यदि गोली न बने तो इसे कैपसूल में डालकर (१-१ रत्ती की मात्रा में) गर्म पानी या चाय से सेवन कराने से कफ के विकारों, हृदयशूल तथा उदावर्त शूल में लाभ करता है। सुप्रसिद्ध योग है। आचार्य यादव जी का बनाया हुआ है। अधिक विस्तार के लिये इस प्रयोग के गुणधर्म 'सिद्ध योग संग्रह' में देखें।

(७) शूलहरयोग—अजवायन १ तोला, अफीम २ रत्ती सेकी हुई हींग (घृतभृष्ट हिंगु) १/२ तोला, ताम्र भस्म १/४ तोला। इन्हें बारीक कर खरल में पीसते रहें। फिर अर्क दुग्ध डालकर मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बनावे

मात्रा—१ से २ गोली, अनुपान गर्म पानी। पेट तथा वृक्कशूल में लाभ करती है।

(८) शूलहरी वटी—घृत भृत शु. हींग १ तोले करञ्ज बीज सेके हुए (आग पर) १ तोले भुनी हुई लहसुन की कली १ तोले सोंठ १ तोले यवक्षार २ तोलें जीरा सफेद १ तोले। सभी औषधियों का चूर्ण मिश्रित कर. २ रत्ती की गोली बना लें। आवश्यकता हो तो पानी मिलाकर वटी बनालें। २-४ वटी गर्म पानी के साथ सेवन करे।

यह प्रयोग उदर शूल में बारम्बार लिया जा सकता है जब तक पीड़ा न मिटे। गुल्म आदि उदर रोगों में इसे लम्बे वक्त तक लेना उचितहै। पीड़ानाशक उत्तम योग है।

(९) सिरशूलहर योग—संग जराहत भस्म ४ रत्ती से १ माशे तक की मात्रा में घृत तथा १ माशे शक्कर में मिला चाट लेवे। यह सिर पीड़ा को तत्काल मिटाती है। संग जराहत भस्म निर्माण विधि—

संग जराहत का चूर्ण बनाकर कुमारी स्वरस में पीसकर वटी बना लेवे तथा छायाशुष्क करे। फिर गोरखमुण्डी को सिल पर पीसकर चटनी की तरह कर लें। पानी डाले। चटनी बन जाने पर मिट्टी के सिकोरे में आधी नीचे रखकर वटी उस पर रख दे। फिर सकोरे पर कपड़मिट्टी लगाकर कण्डों की आंच देकर भस्म बनाले ऐसा तीन बार कर ले। भस्म शुद्ध तथा निरापद है। निःशंक होकर प्रयोग करे।

(१०) समीरगजकेसरी रस (परिवर्तित)—

रस सिन्दूर, कालीमिर्च, समीर पन्नग रस, शु. विषमुष्टी, शुद्ध अहिफेन सभी १०-१० ग्राम। चूर्ण होने वाली औषधियों का चूर्ण कर रखें। फिर रस सिंदूर को खरल करे। निश्चन्द्र पिस जानेपर समीर पन्नग को भी कुटे। इसे भी निश्चन्द्र कर फिर विषमुष्टी चूर्ण तथा स्याह मिर्च चूर्ण मिलावे। अहिफेन के पानी में घोलकर पानी डालें। फिर अद्रक के स्वरस की भावना देकर १/२-१/२ रत्ती की वटी बनावे। १-२ वटी, अनुपान दुग्ध या अन्य वातहर क्वाथ। वटी आमवात तथा पीड़ा को तत्काल कम करती है।

(११) वेदनान्तक वटी—शु. अहिफेन १० ग्राम कपूर १ ग्राम खुरासानी अजमोद रस सिन्दूर बहेड़ा तगर कमल गट्ठा अनन्तमूल प्रत्येक २०-२० ग्राम। प्रथम रस सिन्दूर की निश्चन्द्र पिष्टी करे। फिर अहिफेन पानी मिलावें। तदनन्तर अन्य औषधियों का चूर्ण डालकर घोटे। अन्त में कपूर डालकर भांग के रस की भावना देकर १-१ रत्ती की वटी बनावे। हर पीड़ा में लाभकारी है।

यहां कुछ ही योग प्रस्तुत किये गये हैं। परन्तु इस उद्धरण से यह मानने के पर्याप्त कारण सामने हैं कि आयुर्वेद तात्कालिक चिकित्सा में भी समृद्ध है परमुखापेक्षी नहीं। ★

बिच्छू दंश की सफल चिकित्सा

डा० सु० व० काले, परली-वैजनाथ।

एक रीठा का केवल मगज लें। उसके साथ उतना ही गुड़ मिलाये और कूटकर उसकी तीन गोलियां बनाये। बिच्छू दंश वाले रोगी को एक गोली पानी के साथ दे देना और ५ मिनट रुकना। विष उतरा तो ठीक नहीं तो दूसरी गोली देना और ठहरना। उससे भी नहीं उतरा तो तीसरी गोली देना। इससे कैसा भी कितना भी तीव्र विष हो कम होता है। वैसे तो पहली गोली में ही ठीक होता है। यह एक आसान और हुकमी कोई भी कर सकने की दवा है। आजमा के देखें।

—चिकित्सा प्रभाकर के आधार पर।
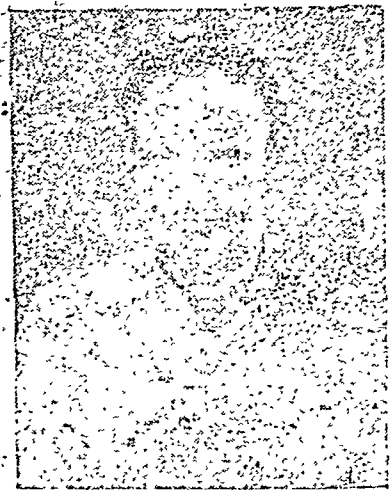
कविराज बी. एस. प्रेमी एम. ए. एम. एस., आयुर्वेदिक व यूनानी तिब्बिया कालेज, करौलबाग, नई दिल्ली

(१) पाला मारना—इस रोग की संकटकालीन चिकित्सा में दो प्रकार की चिकित्सा है। पहली आंतरिक अर्थात् खाने की और दूसरी बाह्य अर्थात् लगाने की।

(क) अन्तः सेवनीय प्रयोग—रस सिंदूर, मल्लसिंदूर, शिलाजतु, शृङ्गभस्म १-१ माशा, कस्तूरी १ रत्ती, अम्बर ४ रत्ती—इन सब द्रव्यों को खरल में आधा घण्टा सूखा ही घोटकर पीपल, जावित्री और जायफल के समभाग काढ़े में एक भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें और गर्म दूध के साथ ६-६ घण्टे में १-१ गोली सेवन करते रहें। रोग पर नियन्त्रण तो २४ घण्टे में ही हो जायेगा किंतु स्थायी लाभ एवं पूर्ण स्वास्थ्य के लिये महीना या १५ दिन तक सेवन करना आवश्यक है।

(ख) बाह्य प्रयोग—मालकांगनी का तेल ५ तोले, जमालगोटे का तेल ५ तोले, धतूरे का तेल ५ तोले, काली-जीरी का पाउडर २ तोले, कलौंजी के बीजों का पाउडर २ तोले, कूठ कड़वा का पाउडर २ तोले, सत्यानासी के बीजों का पाउडर ४ तोले, गोमूत्र १ सेर—इन पदार्थों को गोमूत्र में घोटकर मन्द अग्नि पर ताम्र पात्र में भर कर चढ़ा दें और धीरे-२ पकाते रहें। १२ घण्टों के बाद उतार कर शीतल करलें। बारह घण्टे ही रखा रहना चाहिये। इसके अनन्तर फिर से उसे अग्नि पर चढ़ादें और तेज अग्नि पर पकायें। तेल मात्र शेष रहने पर उतार लें। यह तेल सम्पूर्ण शरीर पर मालिश करें।

(२) सर्वाङ्ग को लू लगना—

क—अन्तः सेवनीय दवा—सुवर्ण भस्म, रजत भस्म, प्रवालपिष्टी, मुक्तापिष्टी १-१ माशे, वंग भस्म, यशदभस्म २-२ माशे, स्वर्णमाक्षिक भस्म ४ माशे, विदारीकन्द का चूर्ण, वाराही कन्द चूर्ण, शतावरी चूर्ण २-२ तोला सभी द्रव्यों को दालचीनी इलायची नागकेशर और मुलैठी के काढ़े में घोटकर १-२ रत्ती की गोलियां बनालें। २४ घण्टों में ६ बार १-१ गोली मुनक्का के गरम काढ़े के साथ सेवन करें।

ख—लू लगने पर लगाने का प्रयोग—मीठा तेलिया, पलाश बीज, निसोत, चौकर, नीम, सहिंजने की छाल, सिरस बीज—इन सब द्रव्यों का चूर्ण २-२ तो., तुलसी के बीज बीज ५ तो., विधारा का स्वरस २ किलो, थोहर का स्वरस २ किलो, महाविषगर्भ तेल २५० ग्राम।

निर्माण-विधि—सर्व प्रथम लोहे की कड़ाही में स्वरस डालें फिर तेल डालें फिर सूखे द्रव्य डालकर कड़छी से चलाते रहें। १ घण्टे के बाद कोमल अग्नि पर चढ़ा दें। ४ घण्टे लगातार पकता रहे। फिर उसे नीचे उतार कर शीतल होने दें। लगभग ३ घण्टे के बाद फिर अग्नि चढ़ा दें और कोमल आंच देते रहें। तेल मात्र अवशेष रह जाने पर उतार कर रखलें। इसकी मालिश शरीर पर और उष्ण अङ्गों पर करें। किन्तु यह मालिश केवल रात्रि में ही की जानी चाहिए।

(३) उरस्तोय की चिकित्सा—गुदामिश्रित रस ३ तो., कल्याणसुन्दर रस २ तो., यवक्षार, शिलाजत्वादि लौह नारायण चूर्ण त्रिकटु चूर्ण, पुनर्नवाष्टक चूर्ण ४-४ तोले, पुनर्नवाष्टक क्वाथ १-२ पुनर्नवाष्टक क्वाथ की घुटाईकर

११ माशे की गोली बना लें। प्रतिदिन सूर्योदय से पहले और दोपहर तथा रात्रि को तीन समय १-१ गोली चूरा करके शहद में मिलाकर चाटें और ऊपर से पुनर्नवा का ताजा रस या क्वाथ २ तो. पीवें।

विशेष निर्देश—यदि उपरोक्त श्वासयुक्त हो तो शृंगाराभ्ररस और अनन्त मालती २-२ रत्ती साथ में मिलाकर सेवन करें।

(४) न्यूमोनिया—

१. सामान्य अवस्था में—रससिंदूर, शृंगसस्म, शृङ्गाराभ्ररस २-२ माशा, शुद्ध टंकणार ४ माशे, शुद्ध विष १ माशे। सभी द्रव्यों को अदरख के समान भाग स्वरस फिर पान के स्वरस की भावना दे २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। प्रतिदिन अथवा संकट काल में प्रातः दोपहर शाम और रात में १-१ गोली मधु के साथ सेवन करावें। तीसरे दिन प्रातः-शाम केवल दो समय ही सेवन करावें।

विशिष्ट अवस्था में—काकड़ासिंगीका चूर्ण २ माशे चिरचिटे का क्षार, जवाखार, टंकण सैन्धव लवण १-१ माशे, मयूरपिच्छ भस्म, पिप्पली चूर्ण चन्द्रामृत रस, वृहत् श्वास चिन्तामणि रस २-२ माशे, तालीसादि चूर्ण ६ माशे। सभी द्रव्यों को अडूसा का रस ताजा (चौगुना) फिर अद्रक के रस में (चौगुना) डालकर घोटें और अन्त में २-२ रत्ती की गोलियां बनालें। ४-४ घण्टे में १-१ गोली वासा के शर्बत के साथ अथवा लिसोड़े के शर्बत के साथ अथवा मधु एवं अद्रक के रस के साथ खिलावें और ऊपर से १ तोला अष्टादशांग क्वाथ पिलावे।

यदि ज्वर का दारुणमोक्ष हो जाए तो रोगी को हृदय दुर्बलता अथवा घबराहट के कारण मृत्यु की संभावना रहती है। अतः इस संकट से बचने के लिए वृहत् कस्तूरी भैरव रस १ रत्ती, विश्वेश्वर रस १ रत्ती, सौभाग्यवटी २ रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण २ रत्ती। इन सबको मिश्रित करके १-१ रत्ती की मात्रा से मधु के साथ २४ घंटों में ६ बार सेवन करावें।

(१) आंत्र पुच्छ शोथहर प्रयोग—अष्टसंस्कारित पारद २० माशे, शुद्ध गंधक २० माशे, अभ्रक भस्म १० माशे, जायफल चूर्ण, त्रिफला चूर्ण, केशर, खुरासानी अजवायन, नाग केशर चूर्ण, एलुवा चूर्ण, जीरा चूर्ण, अपामार्गक्षार, यवक्षार, शंख भस्म, शुक्ति भस्म, प्रवाल भस्म ५-५ माशे, लौंग का तेल दालचीनी तेल, नीलगिरी तेल ३-३ तो., भांग बीज तैल ७ तो.। सर्व प्रथम पारद और गंधक को खरल में भली प्रकार से घोटकर सुन्दर श्याम वर्ण की कज्जली बनालें। फिर एक सुन्दर पात्र में सभी तैलों को भरदें फिर उसमें कज्जली को ठीक से मिश्रित करदें फिर चारों भस्मों को ठीक से मिश्रित कर दें फिर केशर और नाग केशर को हल करदें फिर सभी क्षारों को भी हल करदें। अन्त में सभी चूर्णों को भी हल करदें और पात्र का मुख बन्द करके किसी उष्णस्थान पर एक घण्ट तक रख दें। तत्पश्चात वहां से हटा लें। यह दवा प्रातः दोपहर-शाम और रात्रि को ४ बार गरम पानी की १ चम्मच में ४ रत्ती यह दवा मिलाकर देवें। इसके सेवन से स्वेद आयेगा। अफरा, अजीर्ण और मंदाग्नि नष्ट हो जायेंगे। वेदना चाहे जैसी भी हो उसका शमन तुरन्त होगा।

★ पृष्ठ ३७४ का शेषांश ★

की चारों ओर से लेप लगाकर सेकने से पेशाब होगा।

(४) किरडू (Celosia argentea) के बीज पानी में पीसकर पिलावें जिससे पेशाब होगा।

(५) गोखरू पानी में पीसकर पिलाना जिससे पेशाब होगा।

(६) बाजरा के फुलोरा को जमा करके रखना और समय पड़े तो थोड़ा लेकर पानी में क्वाथ बनाना और चीनी मिलाकर पिलाना। पेशाब होगा। सभी उपाय असफल हुए तो भी सफल होगा।
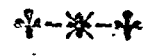
आशुफलप्रद औषधियों से
तात्कालिक उपचार

आचार्य वेदव्रत शास्त्री एवं कुमारी गार्गी शर्मा एम.ए., बी.एड., नदरई गेट, कासगंज।

(१) शिरःशूल—जब शङ्खप्रदेश, मूर्धा या ललाट में भयङ्कर शूल हो रहा हो और किसी भी प्रकार की औषध वहां न सम्भव हो तो केवल हाथों को गर्म कर सेक करता रहे, इससे तत्काल शान्ति प्राप्त होती है। स्मरण रखिये चरक का वाक्य 'शङ्खमूर्धललाटार्तो पाणिस्वेदः।'

(२) नेत्र शूल—नेत्र शूल होने पर पुराना हो तो अच्छा, नहीं तो नया शुद्ध घृत ही गर्मकर अंगुली से आंख के चारों ओर लगाना जिससे सिंकाई भी हो जाय। शूल बन्द होगा। जीर्ण घृतं च सर्वाक्षिरोगघ्नी स्यादुपक्रिया।

(३) कर्णशूल—तैल गुनगुनाकर कान में भरें। सरसों का तैल सबसे उत्तम है। 'कुर्यात् स्नेहांश्च पूरणात्'

(४) दन्तशूल—मधु १० ग्राम, गव्य घृत ५ ग्राम, पिप्पली चूर्ण ४ ग्राम आलोड़न कर मुख में धारण करना लाभ देता है। स्मरण रखिये—माक्षिकं पिप्पली सर्पिर्मिश्रितं धारयेत्मुखे। दन्तशूलहरं प्रोक्तम्''' ॥

(५) हृदय शूल—केवल पुहकर मूल गांठ वाले का चूर्ण शहद में चटाने से लाभ होता है या तैल घी गुड़ का गेहूं का हलुआ गर्म गर्म लाभ देता है।

(६) उदरशूल में तत्काल तैल पान करावे या दही का पानी पिलावे।

(७) कटिशूल में रसोन को कुटकर हींग जीरा, सैंधव, सौवर्चल कटुत्रय मिलाकर एरण्ड मूल क्वाथ से देने पर तत्काल लाभ होता है।

(८) अश्मरीजन्य शूल—वरना और गोखरु तथा अमलतास के क्वाथ को तैल के साथ पीने से तत्काल लाभ होता है। वैसे इसकी वस्ति लगानी चाहिए।

(९) मक्कलशूल में यवक्षार गुनगुने पानी से देने पर लाभ होता है। या 'वज्रकाञ्जिक योग' से भी लाभ होता है। स्मरण रखिये 'मक्कल शूल शमते यवक्षारं समीरितम्।'

विभिन्न रक्तस्राव चिकित्सा—

१. नासागत रक्तस्राव—
नासागत जो रुधिर हो, ता उपाय यह कीजे।
गधे पुरीष निचोड़ रस, नासा में लघु दीजे ॥

२. गुदज रक्तस्राव—
दाडिम छिलका काठ इन, द्विगुण शर्करा बीच।
पीसपास जल ग्रोलिके, पीवे आंखें मींच ॥
रुधिर अर्श का नाश यह, करनी है तत्काल।
अथवा चिरायता कलक, दीजै पट्ठ [illegible] डाल ॥

३. मूत्रमार्गीय रक्तस्राव—
दुरालभा के पत्र कुछ, कालीमिर्च मिलाय।
घोटछानकर पीजिए रक्तमूत्र रुक जाय ॥

४. रक्त वमन—
लौंग धूम के पान से रक्त वमन मिटि जाय।
चार ग्राम हों लौंग तब देखो करो उपाय ॥

५. रक्त प्रदर—
आखु शकृत रज दीजिये, मिश्री सम मिलवाय।
रक्त प्रदर को मेटिके, स्वस्थ बनाओ काय ॥

६. सद्योव्रणजन्य रक्तस्राव—
शिखरी बीजों को सदा, पीसपास कर धाप।
सद्योव्रण के रक्त का, मेटो सब संताप ॥

७. गर्भस्रावजन्य रक्त—
स्फटी दुग्ध पाषाण संग, पलाशद्रुम की छाल।
सिता संग दीजै यही, गर्भस्राव को काल ॥

निर्माण विधि—रेक्टीफाइड स्पिरिट १२ औंस, कर्पूर २ औंस तथा पीपरमेंट आयल(तैल) २ औंस। प्रथम स्प्रिट में कपूर का चूरा डाल २-४ छोटे मुंह की एयर टाइट शीशी में भरकर द्रव बनालें। फिर इसमें पीपरमेंट आयल मिलाकर कर्पूरासव तैयार करलें। २ से १० बूंद तक बताशे अथवा विशुद्ध सौंफ के अर्क में मिलाकर सेवन कराने पर अतिसार पैचिस वमन आदि रोगों में दिन में २ से ४ बार तक दें। दन्त पीड़ा एवं दन्त कृमि में रुई का फोया इसमें तर करके रक्खें। यह अर्क विसूचिका (हैजा) दांत डाढ़ के दर्द आदि सबको अतिगुणकारी सिद्ध होता है। जब वमन का वेग अधिक होने के कारण अन्य कोई औषधि पेट में नहीं पचकर वमन के साथ बाहर निकल जाती हो तब यह अवश्य रुककर पेट में पहुंचकर तत्काल गुण प्रदर्शित करती है।

नोट—पेशाब बन्द होने पर मूत्रेन्द्रिय में कपूर रखें और कलमी शोरा एवं टेसू के फूल जल में पीसकर नाभि के नीचे लेप करावें। प्यास अधिक लगने पर १-१ चम्मच अर्क सौंफ पिलावें अथवा बर्फ की छोटी-छोटी डेली मुंह में रखकर चुसावें।

विषनाशक तैल-बाह्य प्रयोगार्थ—

गुण—मक्खी, मच्छर, भौंरा, बिच्छू आदि किसी भी जहरीले कीटाणु के काटने पर दंश स्थान पर लगाने के लिये तत्काल गुणप्रद द्रव है। विषजनित समस्त पीड़ा नाशक अद्भुत अनुभव सिद्ध योग है।

विशेष गुण—ताजे जख्म पर लगाने से रक्त प्रवाह तत्काल बन्द हो जाता है। घाव दूषित करने वाले कृमियों के आक्रमण से सुरक्षित रखता है एवं पाक नहीं होने देता है। जानवरों के किसी भी अङ्ग में घाव दूषित होकर कीड़े पड़ जाने पर इसकी कुछ बूंदें डालने से कीड़े मर कर झड़ कर लगातार लगाते रहने से जख्म अच्छे हो जाते हैं। दुष्ट ... गले-घाव-(बदबू देने वाले घाव)- प्रथम नीम की पत्ती उबालकर औटाये जल से धोकर इसमें ... इस विष नाशक तैल में रुई का फाया तर करके जख्म पर रख उपरी ... आदि का पत्ता रखें अथवा वाटर पेपर रख ऊपर से रुई रख पट्टी बांधते रहने से समस्त प्रकार के बिगड़े पुराने व्रण भी शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। कान में कृमि पड़ जाने या कान बहने में अच्छा लाभ करता है। छूत के रोगों के कीटाणुओं को भगाने के लिए खौलते जल में १ ... १ औंस तक द्रव डाल कर छिड़काने पर कीटाणु नष्ट हो जाते हैं एवं कीटाणुओं की उत्पत्ति होना बन्द हो जाता है।

निर्माणविधि- तैल तारपीन १ औंस यूकेलिप्टस आयल १ औंस विशुद्ध कर्पूर चूर्ण १ औंस कार्बोलिक एसिड ५० बूंद तथा निम्ब फल तैल १०० बूंद समस्त वस्तु एयरटाईट शीशी में भरकर ३ घण्टे तक तेज धूप में रखने से पातालत्र द्रव जैसा चमत्कारी गुणों वाला विषनाशक तैल तैयार हो जाता है।

अनुभूत औषधि से तात्कालिक उपचार

वैद्यरत्न द्वारिका मिश्र आयुर्वेदाचार्य, पो० ओड़ो, जि० नवादा।

आग से जलने पर— तिसी (अलसी) का तेल में चूना का पानी घोटकर थाली में ... जले स्थान पर मालिश करने से जलन बन्द होकर फोड़ा नहीं उठता है अन्यथा तिसी का तेल ही लगावें। कपूर सम्भव मिले तो और सुन्दर योग होगा।

योषापस्मार (हिस्टेरिया) के दौरे पर—रुग्णा के मुख पर शीतल जल का छींटा देवे, ताड़ के पंखे से हवा करें और कपूर सुंघावें एवं जटामांसी की धूनी नाक में दे ललाट पर चांद पर ग्वार पाठे का गूदा कपूर मिलाकर पट्टी बांध दें। १ गोली वात कुलान्तक रस मधु के साथ चटावें। मस्तक पर चन्दन कपूर पिपरमेन्टका लेप करें।

कुदाल कुल्हाड़ी से कट जाने पर—कुकर मांगरे के रस सहित लुगदी पीस कर पट्टी बांध दें। अथवा गेन्दा फूल की पत्ती पीसकर लेप करें। यह दोनों शरीर के किसी स्थान से रक्तप्रवाह को तुरन्त रोकता है। या फिटकरी का चूर्ण बुरक के पट्टी बांध दें। हल्दी चूर्ण फिटकिरी नोसादर-तीनों १ तम्बर सुरा में भिगोकर फाहे से पट्टी दें।

हिक्का पर आनुभविक प्रयोग

वैद्य नरहरराव कोंडिया उहाले, परली वैजनाथ
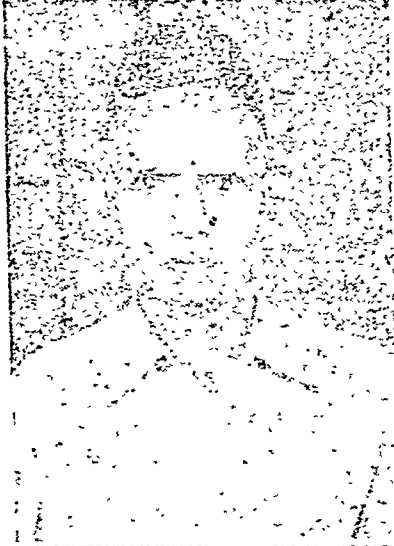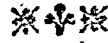
(१) घर में मिट्टी का घर बनाने वाला एक (कीड़ा) कृमि रहता है उसे कुंभारणी बोलते हैं। वो मिट्टी का कुंभारणी का घर लेकर उसकी मिट्टी को वस्त्रपूत बना लेना। उसमें के अण्डे वगैरह नहीं लें। केवल साफ मिट्टी लेना। यह मिट्टी का वस्त्र छान पुड ४-४ गुंज ३ माशे मधु में देना। हिक्का बराबर ठीक हो जाता है।

(२) सरसों के बीज कूटकर उसका दबाव बनाना और थोड़ा पिलाना।

(३) मंजिष्ठा का चूर्ण मधु में चटाना।

(४) केला के पत्ते के नीचे के भाग का रस मुंह में छोड़ना।

धनुर्वात पर आयुर्वेदिक चिकित्सा

राजवैद्य नारायण राव सय्यदपुरकर, राजमाने जिला लातूर (महाराष्ट्र)

(१) जखम (व्रण) होगई हो तो तेल और पानी सम-भाग पिलाने से धनुर्वात नहीं होगा।

(२) ब्रह्मदण्डी की छाल, काली मिर्च, जायफल पान के अन्दर देने से धनुर्वात खत्म होगा।

(३) रीठे का अंजन करना।

(४) ज्वारी, सौंठ, काली मिर्च का अंजन करना।

मूर्च्छा पर आनुभविक चिकित्सा—

१. सौंठ कूटकर नाक में डालें।

२. उन्माद रस नाक में डालें।

३. रीठा आंख में अंजन करें।

मूत्रावरोध होने पर—

(१) केले के खुंधा (गाभा) को कूटकर उसका रस निकाल कर देने से मूत्र हो जायेगा।

(२) कपालफोडी (Cordiospermum Halicaubum) के बीज को पीसकर पानी के साथ दें।
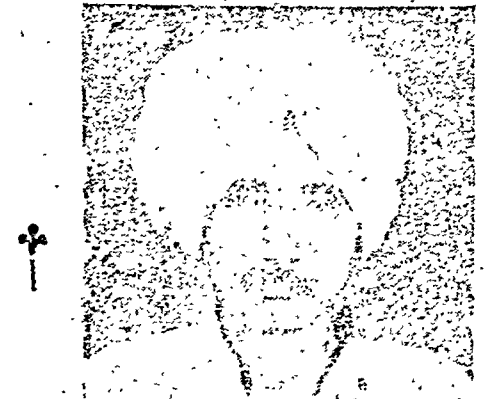
(३) चूहे की विष्टा (लेंडी) पानी में मिलाकर नाभि

(शेषांश पृष्ठ ३७० पर देखें)

कविराज डा० हरिवल्लभ मन्नूलाल द्विवेदी शिलाकारी शास्त्री, चिकित्सक सह०, आयु०, आयु० वृह०
स्वामी निरञ्जन-निवास, चकराघाट, सागर (म. प्र.)

—०✿०—

१. अग्निदग्ध—अलसी का तैल आधापाव, चूने का निथरा हुआ पानी आधा पाव, राल १ तो., देशी कपूर १ तो.। स्वच्छ पात्र में अलसी तैल और चूने के पानी को मिला मथकर जब एक दिन हो जाय तब कपड़छन की हुई राल तथा कपूर को मिला चौड़े मुंह वाली शीशी में काग लगा रख लेना। आग से जले हुए स्थान पर इसको कोमल हाथ से लगाना चाहिये। इससे दाह तथा फफोले नहीं पड़ते और अग्निदग्ध का कष्ट नष्ट होता है।
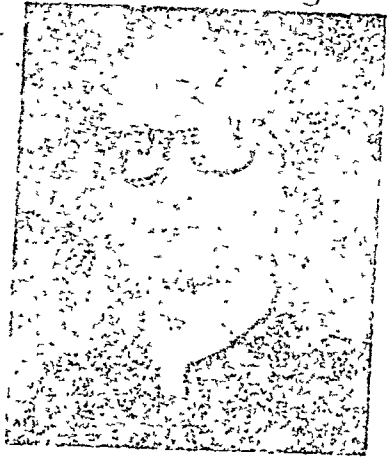
२. पंचगुणादि तैल—राल, गुग्गुलु, मोम, शहद, तिल्ली का तैल। ये पांचो समान भाग लेना। राल और गुग्गुलु के महीन चूर्ण को तथा मोम को तिली के गर्म तैल मे छोड़ देना, पश्चात मिलाना। जब मरहम के समान बन जाय तब स्वरक्षित चौड़े मुंह वाली बर्नी में रख लीजियेगा। इस पंचगुणादि तैल के पांच प्रमुख गुण हैं यथा नाम तथा गुण' अर्थात वेदना, चोट शस्त्र से कटने चाकू-छुरी आदि लगने पर, अग्नि से जलने पर, व्रण पर लगाने से लाभ होता है।

३. शस्त्राघात पर—गेंदा की पत्ती को चटनी के समान महीन पीसकर शस्त्रजनित आघात के स्थान पर इसका मोटा लेप लगा कर कपड़े से सुदृढ़ बन्धन कर देने से सद्यो व्रण तथा रक्तस्राव में शीघ्र लाभ होता है।

४. चोट और मोच पर—हल्दी के चूर्ण को गीले चूने में मिलाकर गाढ़ा लेप लगाने से दर्द, सूजन व मोच मिटती है। यह टिंक्चर आयोडीन के समान कार्यकारी है।

५. रक्तस्राव—दूर्वा स्वरस ९ तो. फिटकरी फूली हुई का चूर्ण १ माशे, दोनों को मिला पिलावें। यह वयस्क व्यक्ति के वास्ते एक मात्रा है। वैद्य-बन्धु अवस्थानुसार मात्रा न्यूनाधिक करके दिन में चार बार सेवन करावें। इससे अधोगामी और ऊर्ध्वगामी एवं उभयमार्गी रक्तपित्त आरोग्य होता है।

६. नासिका का रक्तस्राव—६ माशे पतले किये शुद्ध घृत में ४ रत्ती फिटकरी का महीन चूर्ण मिलाकर ड्रापर से नासिका में डालना अथवा इसका नस्य देना। इससे

नासिका से हुआ रक्तस्राव रुक जाता है। रोगी को कुछ समय सीधा लिटा रखना चाहिये। आहार में दूध चावल देना रोगी को अग्निताप व सूर्य की धूप से बचावें।

७. हृद्रोग—मुक्ता भस्म १ रत्ती, प्रवाल भस्म, अकीक भस्म २-२ रत्ती, इन तीनों को मिश्रित कर एक मात्रा बनाकर १ तो. मलाई के साथ अथवा औटाये हुए गौ दुग्ध के द्वारा सेवन करने से हार्ट अटेक नहीं होता, हृदय बलिष्ट होकर हृद्रोग नष्ट होता है।

८. लू लगना—कच्चे आम को आग में भूनकर शीतल पानी में चीनी डालकर यथा प्रमाण जीरा धनिया का चूर्ण मिलाकर २-२ घण्टे पर पिलावें। मस्तक पर ठंडा पानी या बर्फ की कपड़े की तर पट्टी को रखना।

९. बिच्छू दंश—सांभर नमक पानी में घोलकर जिस ओर बिच्छू ने काटा हो उसकी बांई ओर के कान में ३-४ बूंद टपका देने से शीघ्र ठीक होता है। साथ ही गर्म पानी में नमक घोलकर बिच्छू वाले दंश स्थान को इस गर्म पानी में डुबो रखने से शीघ्र शांत होता है।

१०. मधु मक्खी दंश—लोहे को पानी में घिसकर दंश-स्थान पर लेप करें अथवा सोंठ को पानी में चन्दन के समान घिसकर लेप लगाना चाहिए। नींबू का शर्बत पिलाना चाहिये।

११. निम्न रक्तचाप—स्वर्णघटित मकरध्वज, अभ्रक भस्म सहस्रपुटी १/८-१/२ रत्ती, लोह भस्म, श्रृङ्गभस्म १-१ रत्ती, इन चारों को मिलाकर एक मात्रा तैयार कर लेना। इसको ६ मासे मधु के साथ दिन में ३ बार सेवन करना। लोहासव २ तो., द्राक्षासव २ तो., ताजा पानी ४ तो. मिलाकर भोजनोत्तर दिन में २ बार पीना चाहिए। सरसों के तैल का अभ्यङ्ग करना हितकर है। रक्तचाप की सङ्कटकालीन दशा में वस्त्रपूत कटफल चूर्ण तथा सुंठी चूर्ण दोनों को मिलाकर हाथ की हथेलियों और पैर के तलुओं पर जल्दी-२ खूब रगड़ने से लाभ होता है।

१२. यात्रा में वमन—अमृतवल्लभ—अजवाइन का सत, देशी कपूर, पिपरमेन्ट, इलायची का तैल, चारों को समान प्रमाण मिलाकर स्वच्छ शीशी में कार्क लगा कर सुरक्षित रखलें। वमन प्रारम्भ होने की अवस्था में १०-१० बूंद बताशे में या पानी में डालकर १-१ घण्टे अन्तर से प्रयोग करने से सद्यः आरोग्यलाभ होता है।

१३. कान में कीट प्रवेश—हींग, लहसुन, अजवाइन, वायविडङ्ग, उड़द की दाल, पांचों द्रव्यों को समान भाग लेकर जौकुट कर सरसों के तैल में खूब गर्म करना जब द्रव्य तैल में कोयला रूप में हो जावें तब कपड़े से छानकर शीशी में रख लीजिये। इस तैल की १० बूंद कान में डालने से कान में गया हुआ कीट मरकर बाहर निकल जाता है। साथ ही कान की पीड़ा नष्ट होती है। अथवा कुछ कुनकुने पानी में थोड़ा सा पिसा नमक घोलकर कान में डालने से कान में गया कीड़ा या मच्छर बाहर निकल जाता है।

१४. आई आंख—गुड़ और चूना दोनों को मिला कर कागज को गोलाकार काटकर उस पर लगाकर दोनों ओर की कनपटी पर चिपकाने से अभिष्यन्द अथवा आंखे की पीड़ा को रोकता है।

१५. मूत्रावरोध—

क—हजरुलयहूद भस्म २ रत्ती, गोक्षुरादि गुग्गुल एक माशे, दोनों को मिलाकर १ मात्रा बनाकर गोखरू के क्वाथ अथवा दूध की लस्सी के साथ दिन में प्रति २-२ घंटे पर देना चाहिये।

ख—केले के कन्द का रस २।।तो. तथा गो.घृत २।।तो., दोनों को मिलाकर पिलाना चाहिये।

ग. मूत्राशय पर—टेसू का फूल और कलमीशोरा दोनों समान भाग लेकर पानी में पीस कर कपड़े की तह को इसमें तर करके ऊपर रखना चाहिए।

घ. मूत्रेन्द्रिय के अग्रभाग—मूत्रद्वार पर देशी कपूर को रखने से रुका हुआ मूत्र खुलकर हो जाता है।

१६. उच्च रक्तचाप—सर्पगंधा घनसत्व २ रत्ती, अर्जुन घन सत्व ४ रत्ती, हृदयार्णव रस २ रत्ती, स्वर्ण-माक्षिक भस्म २ रत्ती, कहरवापिष्टी २ रत्ती। सबको एकत्रित कर मात्रा बनाकर दूध मिश्री अथवा आंवले के मुरब्बे में मिलाकर देने से सत्वर लाभ होता है। पालक की भाजी का रस २।। तो. पिलाना हितप्रद है।